परमात्म वैभव

भाग ६

परमात्मप्रकाश प्रवचन

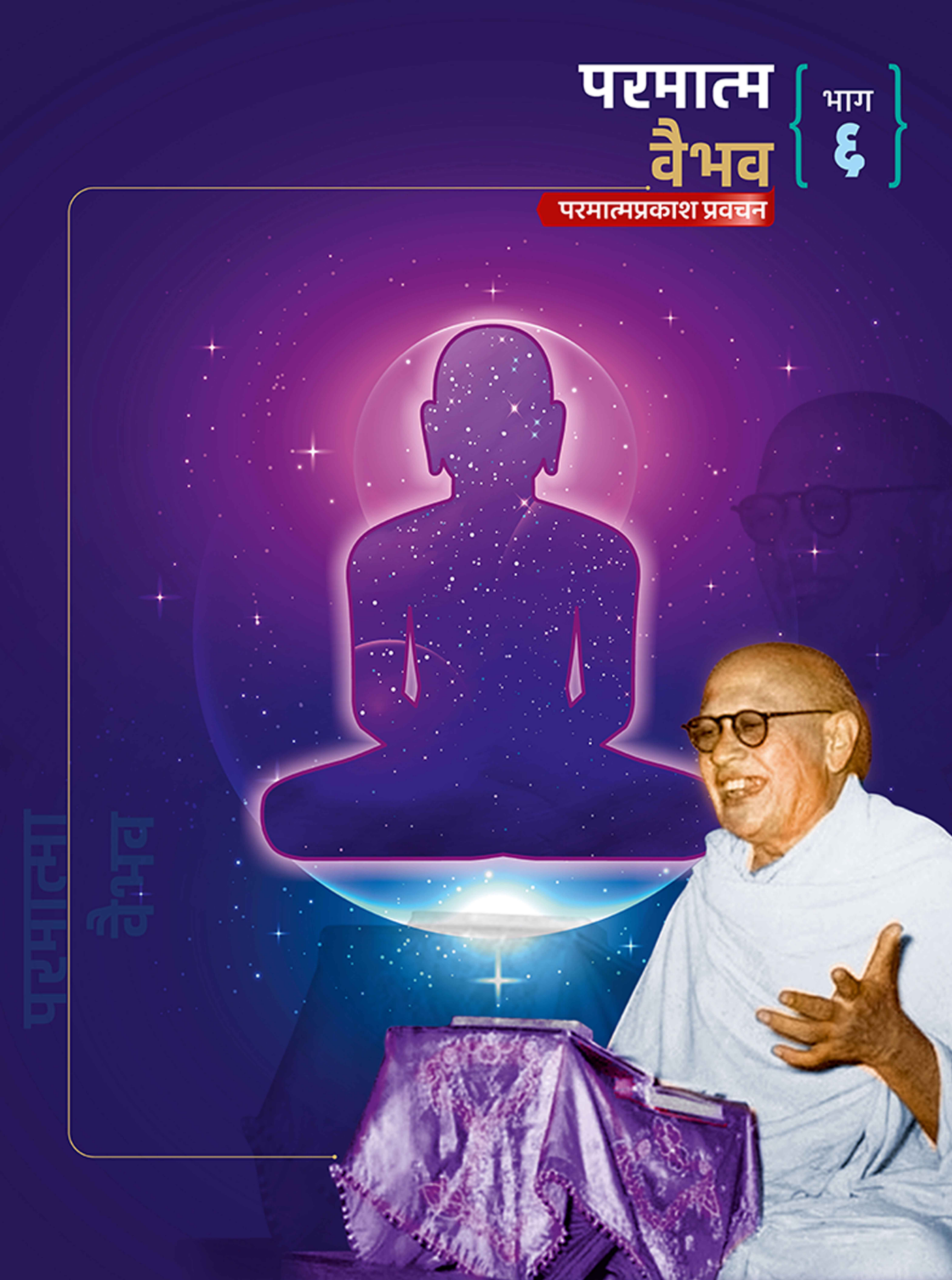

ॐ

परमात्मने नमः

परमात्म वैभव

(भाग - 6)

श्रीमद् भगवत् योगीन्दुदेव प्रणीत श्री परमात्मप्रकाश परमागम पर
अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
ई.स. 1965-66 वर्ष के शब्दशः प्रवचन
प्रवचन क्रमांक 148-180, परमात्मप्रकाश
द्वितीय अधिकार गाथा 107 से 161

: हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन

बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250

फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820

विक्रम संवत	वीर संवत	ई. सन
2082	2552	2025

—: प्रकाशन :—

श्री महावीर भगवान मोक्ष कल्याणक

(कार्तिक कृष्ण अमावस्या)

दिनांक 21 अक्टूबर 2025

के शुभ अवसर पर

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250 फोन : 02846-244334

2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046

www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :

विवेक कम्प्यूटर

अलीगढ़।

ॐ

सहज चिदानन्द

प्रकाशकीय निवेदन

मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैन धर्मोस्तु मंगलं॥

शासननायक अन्तिम तीर्थंकर देवाधिदेव श्री महावीरस्वामी द्वारा प्रवर्तमान जिनशासन अखण्ड मोक्षमार्ग से आज भी सुशोभित है। उनकी दिव्यध्वनि में प्रकाशित हुए मोक्षमार्ग, तत्पश्चात् हुए अनेक आचार्यों तथा सन्तों द्वारा अखण्डरूप से प्रकाशित रहा है। आचार्यों की परम्परा का इतिहास देखने में आवे तो श्री योगीन्दुदेव ई.स. की छठवीं शताब्दी में हुए। उन्होंने स्वयं की सातिशय अनुभव लेखनी द्वारा अनेक महान परमागमों की रचना की। आपश्री ने स्वानुभव दर्पण, परमात्मप्रकाश, योगसार, दोहापाहुड़ इत्यादि अनेक वीतरागी ग्रन्थों की रचना की है। परमात्मप्रकाश ग्रन्थ आपश्री की ही कृति है। इस ग्रन्थ में आपश्री ने स्वरूप की भावना तथा उसके आश्रय से उत्पन्न हुए स्वसंवेदनज्ञान और वीतरागी अतीन्द्रिय सुख का रस प्रत्येक गाथा में नितरता है। भव्य जीवों के हितार्थ हुई ग्रन्थरचना पाठकवर्ग को भी अत्यन्त रस उत्पन्न होने का निमित्त होती है। आपकी लेखनी में द्रव्यदृष्टि का जोर दर्शाती हुई अनेक गाथायें ग्रन्थ में दृष्टिगोचर होती है।

परमात्मप्रकाश ग्रन्थ के टीकाकार श्री ब्रह्मदेवजी भी अध्यात्मरसिक महान आचार्य थे। उनका मूल नाम 'देव' और बालब्रह्मचारी होने से ब्रह्मचर्य का बहुत रंग होने के कारण 'ब्रह्म' उनकी उपाधि हो जाने से 'ब्रह्मदेव' नाम पड़ा था। वे ई.स. 1070 से 1100 के मध्य होने का माना जाता है। पण्डित दौलतरामजी ने संस्कृत टीका का आधार लेकर अन्वयार्थ तथा उनके समय की प्रचलित देशभाषा ढुंढारी में सुबोध टीका रची है। यह ग्रन्थ दो महाअधिकारों में विभाजित हुआ है। आत्मा परमात्मा किस प्रकार हो, उसका अत्यन्त सुन्दर वर्णन दृष्टिगोचर होता है। प्रथम अधिकार में भेदविवक्षा से आत्मा—बहिर्आत्मा, अन्तरआत्मा और परमात्मा ऐसे तीन भेद बतलाये गये हैं। प्रत्येक संसारी जीव को भेदज्ञान निरन्तर भाना चाहिए, उसका विस्तार से वर्णन करके परमात्मा होने की भावना बतायी है। द्वितीय अधिकार में प्रथम मोक्ष और मोक्ष के फल की रुचि होने के लिये सर्वप्रथम मोक्ष और मोक्ष के फल का स्वरूप बतलाया है।

प्रवर्तमान शासन में अपने सबके परमतारणहार भावितीर्थाधिनाथ शासन दिवाकर

अध्यात्मयुगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने लुप्तप्रायः हुए अखण्ड मोक्षमार्ग को पुनः जागृत करके भरतक्षेत्र के जीवों पर अविस्मरणीय अनन्त उपकार किया है। जन्म-मरण से मुक्त होना और सादि-अनन्त स्वरूपसुख में विराजमान होने का मार्ग पूज्य गुरुदेवश्री ने स्वयंबुद्धत्व योग प्रगट करके प्रकाशित किया है। आपका इस काल में उदय वह एक ऐसी अपूर्व घटना है, जैसे सूर्य प्रकाशित होने पर कमल खिल उठते हैं, उसी प्रकार भव्य जीवों का आत्मा रसविभोर होकर पुलकित होकर खिल उठता है। अनेक जीव मोक्षमार्ग प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील बने हैं और पंचम काल के अन्त तक उनके द्वारा प्रस्थापित मोक्षमार्ग अखण्डरूप से चलता रहेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री ने अनेक अध्यात्म शास्त्रों पर अनुभवरस झरते प्रवचन किये हैं। उनमें से एक ग्रन्थ है—परमात्मप्रकाश। प्रस्तुत ग्रन्थ के ऊपर प्रवचन ऑडियो में आज मौजूद है, वह सुनते हुए आपश्री की अमीरस झरती वाणी के दर्शन होते हैं। आपश्री के प्रत्येक प्रवचन में अनेक पहलुओं से आत्मस्वरूप प्रकाशता तत्त्व प्रकाशमान होता है। आपकी उग्र अध्यात्मपरिणति के दर्शन इस वाणी द्वारा हो सकते हैं। पूर्वापर अविरोध वाणी, अनुभवशीलपना, आत्मा को सतत् जागृत करनेवाली वाणी का लाभ जिन्होंने प्रत्यक्ष लिया है, वे धन्य हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री ने किसी भी प्रकार की संस्कृत, व्याकरण के अभ्यास बिना आचार्यों का हृदय खोलकर जो अनुपम भाव उन्होंने जगत के समक्ष प्रकाशित किये हैं, वे अलौकिक हैं! स्वलक्ष्य से स्वयं के भावों के साथ मिलाकर उन्हें समझा जाये तो वह एक अपूर्व कल्याण का कारण है। पूज्य गुरुदेवश्री के लिये या उनकी वाणी के लिये कुछ भी कहना, लिखना या बोलना, वह सूर्य को दीपक दिखाने के समान है। तथापि उनका अपार उपकार हृदयगत होने से शब्द अपने आप ही भक्तिभाव से प्रस्फुटित हो उठते हैं। आपके उपकार का बदला तो किसी भी प्रकार से नहीं चुकाया जा सकता, मात्र आपके द्वारा प्रकाशित पंथ के ऊपर शुद्ध भावना से प्रयाण करें, यही भावना है।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्य देशना को ओडियो टेप में उतारने का महान कार्य शुरु करनेवाले श्री नवनीतभाई झवेरी का इस प्रसंग पर आभार व्यक्त करते हैं। तथा श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ ने इस पवित्र कार्य को अविरत धारा से चालू रखा और सम्हालकर रखा, तदर्थ उनके भी आभारी हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्य देशना की उपलब्धता सी.डी., डी.वी.डी., वेवसाईट www.vitragvani.com, vitragvani app, vitragvani YouTube channel जैसे साधनों द्वारा श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, विलेपार्ला, मुम्बई द्वारा किया गया है। इस कार्य के

पीछे ट्रस्ट की ऐसी भावना है कि वर्तमान के आधुनिक साधनों द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा समझाये गये तत्त्वज्ञान का भरपूर लाभ सामान्यजन लें कि जिससे यह वाणी शाश्वत् जीवंत रहे। पूज्य गुरुदेवश्री के प्रत्येक प्रवचन अक्षरश: ग्रन्थारूढ़ हो, ऐसी भावना के फलस्वरूप यह प्रवचन प्रकाशित किये जा रहे हैं। इससे पूर्व ई.स. 1976-77 में हुए प्रवचन 'परमात्मप्रकाश प्रवचन, भाग 1 से 8' तक प्रकाशित हो चुके हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी तथा तद्भक्त प्रशममूर्ति भगवती माता पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन को सादर समर्पित करते हैं।

सर्व प्रवचनों को सुनकर ग्रन्थारूढ़ करने में सावधानी रखी गयी है। वाक्य रचना को पूर्ण करने के लिये कहीं-कहीं कोष्ठक किया गया है। यह प्रवचन सुनकर गुजराती भाषा में ग्रन्थारूढ़ करने का कार्य पूजा ईम्प्रेशन्स द्वारा किया गया है। प्रवचनों को जाँचने का कार्य श्रीमती पारुलबेन सेठ, विलेपार्ला, मुम्बई; श्रीमती आरतीबेन जैन, मलाड, मुम्बई, श्री अतुलभाई जैन, मलाड, मुम्बई द्वारा किया गया है।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ का हिन्दी रूपान्तरण एवं सी.डी. से मिलान कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां (राज.) द्वारा किया गया है। ट्रस्ट सभी के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता है।

जिनवाणी प्रकाशन का कार्य गम्भीर तथा जवाबदारीपूर्ण होने से अत्यन्त जागृतिपूर्वक और उपयोगपूर्वक किया गया है। तथापि प्रकाशनकार्य में प्रमादवश या अजागृतिवश कोई भूल रह गयी हो तो त्रिकालवर्ती वीतराग देव-गुरु-शास्त्र से क्षमायाचना करते हैं। ट्रस्ट का मुमुक्षुगण से अनुरोध है कि दृष्टिगोचर अशुद्धियों से हमें अवगत कराये, जिससे आगामी आवृत्ति में अपेक्षित सुधार किया जा सके।

प्रस्तुत प्रवचनग्रन्थ www.vitragvani.com तथा vitragvani app पर उपलब्ध है।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ सात भागों में प्रकाशित किया जा रहा है। जिसका यह छठवाँ भाग है।

पाठकवर्ग इन प्रवचनों का अवश्य लाभ लेकर आत्मकल्याण साधे, ऐसी भावना के साथ विराम लेते हैं।

इति शिवम्

ट्रस्टीगण
श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,
विले पार्ला, मुम्बई

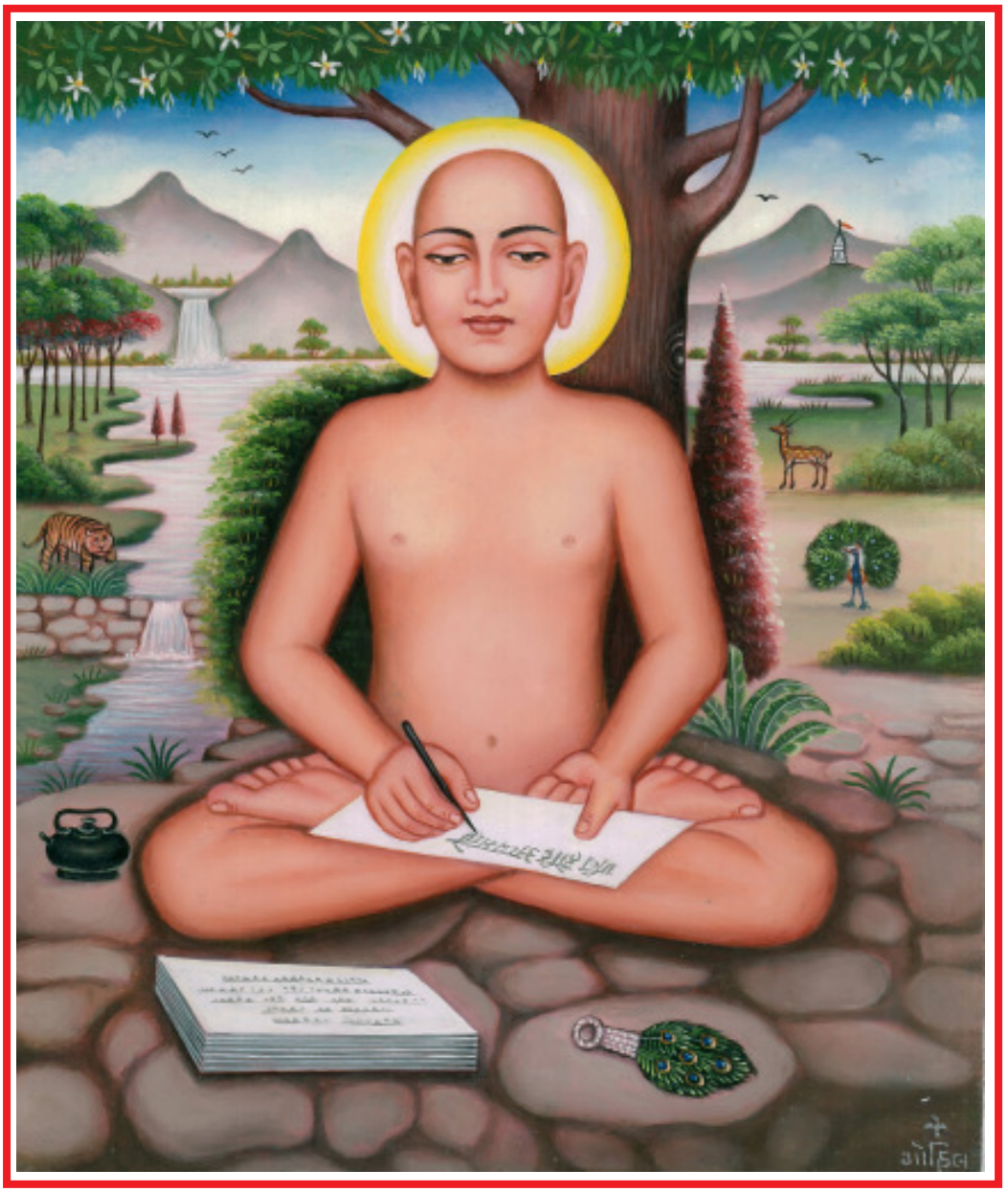

श्रीमद् भगवत् योगीन्दुदेव

अध्यात्मयुगसर्जक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्रार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक - इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।** सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्‌भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल '**श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर**' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्‌घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से)

आत्मधर्म नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन

तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज

परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।

2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।

3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।

4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।

5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।

6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।

7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।

8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।

9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।

10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन नं.	दिनांक	श्लोक / गाथा	पृष्ठ संख्या
१४८	१५-०६-१९६५	गाथा - १०७ - १०८	००१
१४९	१६-०६-१९६५	गाथा - १०८ से ११०	०२१
१५०	१७-०६-१९६५	गाथा - ११०-१११-१११*२	०४१
१५१	१८-०६-१९६५	गाथा - १११*२-३-४	०५९
१५२	१९-०६-१९६५	गाथा - १११*४, ११२	०८०
१५३	२०-०६-१९६५	गाथा - ११२-११३	०९६
१५४	२१-०६-१९६५	गाथा - ११३ से ११६	११५
१५५	२३-०६-१९६५	गाथा - ११७ से ११९	१३३
१५६	२६-०६-१९६५	गाथा - १२३-१२४	१५४
१५७	२७-०६-१९६५	गाथा - १२४ से १२६	१७४
१५८	२८-०६-१९६५	गाथा - १२६-१२७	१९४
१६०	०१-०७-१९६५	गाथा - १२८ से १३०	२१६
१६१	०२-०७-१९६५	गाथा - १३० - १३१	२३६
१६२	०३-०७-१९६५	गाथा - १३२ - १३३	२५५
१६३	०४-०७-१९६५	गाथा - १३४ - १३५	२७५
१६४	०७-०७-१९६५	गाथा - १३७, १३७*५	२९२
१६५	०८-०७-१९६५	गाथा - १३८ - १३९	३०९
१६६	१०-०७-१९६५	गाथा - १४१ - १४२	३२८
१६७	११-०७-१९६५	गाथा - १४३	३४७
१६८	१२-०७-१९६५	गाथा - १४३ - १४४	३६४
१६९	१३-०७-१९६५	गाथा - १४४ - १४५	३८४

१७०	१४–०७–१९६५	गाथा – १४५ – १४६	४०३
१७१	१६–०७–१९६५	गाथा – १४६ से १४८	४२४
१७२	१७–०७–१९६५	गाथा – १४८ – १४९	४४४
१७३	१८–०७–१९६५	गाथा – १५० – १५१	४६६
१७४	१९–०७–१९६५	गाथा – १५१ – १५२	४८७
१७५	२०–०७–१९६५	गाथा – १५३ – १५४	५०७
१७६	२२–०७–१९६५	गाथा – १५४ से १५६	५२८
१७७	२३–०७–१९६५	गाथा – १५६ – १५७	५४९
१७८	२४–०७–१९६५	गाथा – १५८ – १५९	५६९
१७९	२५–०७–१९६५	गाथा – १५९ – १६०	५९०
१८०	२६–०७–१९६५	गाथा – १६० – १६१	६०९

ॐ

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

परमात्म वैभव

(भाग-६)

(श्रीमद् योगीन्दुदेव विरचित श्री परमात्मप्रकाश ग्रन्थ पर
अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
ईस्वी सन् १९६५-६६ वर्ष के शब्दशः धारावाहिक प्रवचन)

ज्येष्ठ कृष्ण १, मंगलवार, दिनांक - १५-०६-१९६५
गाथा - १०७ - १०८, प्रवचन - १४८

... वस्तुरूप से परमब्रह्म पूर्णानन्द शुद्ध सामान्य अखण्ड आनन्द, अखण्ड शान्ति, अखण्ड ज्ञान, अखण्ड दर्शन, अखण्ड वीर्य, ऐसा पूर्ण प्रत्येक आत्मा का स्वभाव है और हम हमारे आत्मा को ऐसा पूर्ण स्वभाव की दृष्टि से निर्णय किया है। सर्वज्ञ भगवान ने पूर्ण प्रगट पर्याय से और द्रव्य-गुण से सबको जाना है। इस प्रकार से हम मानते हैं। देखो, सर्वज्ञ ... केवलज्ञान। केवल अर्थात् पर्याय नहीं। वह गुण। त्रिकाल ज्ञानगुण, त्रिकाल दर्शनगुण, त्रिकाल आनन्दगुण, त्रिकाल स्वच्छता, प्रभुतागुण। वह केवलज्ञानादि **गुण की अपेक्षा...** वर्तमान पर्याय की अपेक्षा नहीं। यह नय विभाग। वर्तमान प्रत्येक प्राणी की पर्याय में अन्तर है, कर्म के आधीन हुई दशा, वह तो व्यवहारनय का विषय है।

यहाँ तो **केवलज्ञानादि गुण की अपेक्षा वीतराग सर्वज्ञप्रणीत...** रागरहित सर्वज्ञ परमात्मा हुए, उन्होंने जो प्रणीत अर्थात् वाणी—दिव्यध्वनि कही। उस **मार्ग से जीवों को ऐसा मानते हैं,...** उस मार्ग को इस प्रकार से हम मानते हैं, हमारा आत्मा भी

परमब्रह्म शुद्ध है। पर्याय की वर्तमान एक अंश की अवस्था को गौण करके लक्ष्य में छोड़कर पूर्ण स्वरूप परमब्रह्म आनन्द शुद्ध मैं हूँ। ऐसे ही सब आत्मायें पूर्ण स्वभाव से है, ऐसा हम भगवान सर्वज्ञ की कही हुई वाणी और जाने हुए भाव के अनुसार हम मानते हैं। आहाहा! समझ में आया? वस्तु तो एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में, एक सेकेण्ड, हों! उसका असंख्य भाग अर्थात् एक समय। काल का छोटे में छोटा भाग। उसमें आत्मद्रव्य के दो भाग। एक समय में आत्मद्रव्य के दो भाग। एक वर्तमान पर्याय हीन, अल्पता, राग और द्वेष, तथा एक समय में ही पूरा पूर्ण द्रव्य ध्रुवस्वभाव पूर्ण ज्ञान, दर्शन और आनन्द।

मुमुक्षु : उसी समय में?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसी समय में। यह किसकी बात चलती है? यह पण्डितजी को हमारे... यह प्रश्न (करे, इसलिए) स्पष्टीकरण हो न। समझ में आया?

अनन्त आत्मा है न अभी अनन्त आत्मायें हैं। कितने अनन्त आत्मायें? कि सिद्ध संख्या की अपेक्षा से संसार की अभी बात चलती है। सिद्ध तो पर्याय में निर्मल और द्रव्य से भी निर्मल। अब यहाँ तो यह सब जीव को परमार्थ से परमब्रह्म (कहते) हैं। भले सिद्ध को पर्याय प्रगट हुई है, निगोद के जीव को अक्षर के अनन्तवें भाग में ज्ञान की अल्प पर्याय प्रगट है। और फिर आगे पढ़ने पर किसी को चार ज्ञान की पर्याय हो, किसी को दो की, तीन की अथवा मति-श्रुत अज्ञान का क्षयोपशम आदि हो—वह वर्तमान अवस्था जितनी दशा है। वर्तमान पर्याय अवस्था जितनी। उसका लक्ष्य छोड़कर, उसका ज्ञान करने का है, परन्तु लक्ष्य छोड़कर पूर्ण स्वरूप अपना, वर्तमान पर्याय का लक्ष्य छोड़कर पूर्ण ज्ञान-दर्शन-आनन्दस्वरूप मैं हूँ, ऐसा पूर्ण सामान्य स्वभाव प्रगटरूप व्यक्त पर्याय में भले नहीं, सत्रूप विद्यमान पदार्थ अपना है, उसका जिस दृष्टि से स्वीकार किया, उस दृष्टि से सब आत्मायें अन्दर में परमब्रह्म और परम आनन्द है। ऐसा हम इस प्रकार से स्वीकारते हैं। देवचन्दजी!

देखो, सर्वज्ञ परमात्मा ने पूर्ण पर्याय में सब देखा है। ओहोहो! सिद्ध है न। सिद्ध तो बहुत ही थोड़े हैं। सिद्ध तो अनन्त (हैं, तथापि) बहुत थोड़े और उनसे अनन्तगुणे

निगोद। अनन्त-अनन्तगुणे निगोद। वह अनन्त-अनन्तगुणा निगोद... निगोद समझ में आता है? यह आलू, शक्करकन्द में जीव रहते हैं। अनन्त-अनन्तगुणे एक शरीर में। वे सब पर्याय में अशुद्ध हैं, पर्याय से अशुद्ध हैं, पर्याय में मलिन हैं। वस्तुरूप से त्रिकाल अखण्डानन्द पूर्णानन्द प्रभु अन्दर शुद्ध है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि हम तो नय का विभाग करते हैं। वर्तमान पर्याय में मलिनता है, अल्पज्ञता है, अनन्त जीवों को या पूर्ण भले पर्याय में सिद्ध की हो एक समय की, परन्तु एक समय जितनी वह पर्याय है। निगोद की एक समय जितनी अवस्था है। उन सबको जानते भले हों, परन्तु वह जानने पर भी वस्तु जो है त्रिकाल, सिद्ध का आत्मा द्रव्यरूप और निगोद का आत्मा द्रव्यरूप, अनन्त आत्मायें द्रव्यार्थिकनय के परम ज्ञायकभाव की दृष्टि से देखने पर वे पूर्ण शुद्ध, पूर्ण परमब्रह्म, पूर्ण विष्णु, परम आनन्द, परम ब्रह्म हैं। इस दृष्टि से हम भगवान आत्मा को पूर्ण मानते हैं। उसकी पर्याय में पूर्ण अथवा एक ही पूर्ण देखते हैं।

देखो, **इस तरह वे नहीं मानते हैं।** अन्यमति इस प्रमाण समझते नहीं। अब कहते हैं, देखो, **वे एक कोई पुरुष जगत का कर्ता-हर्ता मानते हैं।** वजन यहाँ है। **एक कोई पुरुष जगत का कर्ता-हर्ता मानते हैं।** एक कोई पुरुष है, वह जगत का करनेवाला और हरनेवाला—नाश करनेवाला मानते हैं। ऐसा नहीं हो सकता। आगे कहेंगे, देखो, **इसलिए उनको दूषण दिया जाता है, क्योंकि...** अब न्याय देते हैं। **जो कोई एक शुद्ध-बुद्ध नित्य मुक्त है, उस शुद्ध-बुद्ध को कर्ता-हर्तापना हो ही नहीं सकता,...** जब ऐसा कहो कि कोई आत्मा अत्यन्त शुद्ध, बुद्ध और सर्वज्ञ है। यदि ऐसा सर्वज्ञ कहो तो उसे कर्ता-हर्तापना लागू नहीं पड़ता। क्योंकि जब एक समय में सर्वज्ञ है तो भूतकाल का उसे ज्ञान, वर्तमान का ज्ञान, भविष्य का ज्ञान हुआ, परन्तु भूतकाल में उसका कर्ता था और वर्तमान में उसका और भविष्य का ज्ञान, तो दो का ज्ञान और तीसरा ज्ञान नहीं, यह उसे लागू नहीं पड़ता। न्याय समझ में आया?

एक आत्मा जब उसे शुद्ध-बुद्ध (कहो), देखो, शुद्ध-बुद्ध। उसे नित्य शुद्ध, बुद्ध और सर्वज्ञ कहो एक आत्मा को, तो वह सर्वज्ञ पर्याय में किसी काल में किसी का

कर्ता यह हो नहीं सकता। क्योंकि वह सर्व-ज्ञ हुआ, शुद्ध हुआ, बुद्ध है। बुद्ध अर्थात् अकेली ज्ञान की पर्याय पूर्ण। ऐसा जब कहो, तब उस जीव को भूतकाल में इस वस्तु का कर्ता था, ऐसा लागू नहीं पड़ता। उसका जाननेवाला था, ऐसा लागू पड़ता है। वर्तमान जाननेवाला, भविष्य जाननेवाला और भूत जाननेवाला—तीन काल का जाननेवाला बुद्ध सर्वज्ञ को लागू पड़ता है। शुद्धदशा में त्रिकाल जानना लागू पड़ता है। शुद्ध पूर्ण दशा में भूतकाल में वे चीज़ें नहीं थी और उन्होंने बनायी तो उसे सर्वज्ञपना सिद्ध नहीं होता। समझ में आया इसमें?

सर्वज्ञ किसे कहते हैं? कि सर्व द्रव्य, सर्व क्षेत्र, सर्व काल, सर्व भाव। चार बोल आये थे न भाई प्रवचनसार में? उन चार को जाने। तो अब सर्व द्रव्य, सर्व क्षेत्र, सर्व भाव, सर्व काल (जाने)। तो भूतकाल को जाने, परन्तु भूतकाल में स्वयं परवस्तु का कर्ता था, तो भूतकाल का जाननेवाला रहता नहीं, त्रिकाल जाननेवाला रहता नहीं। समझ में आया? किस प्रकार करे? तो त्रिकाल जाना किस प्रकार? भूतकाल में जाना या भूतकाल में नहीं था और किया? नहीं था और किया तो उसने जाना या नहीं, उस समय? जाना नहीं तो करने में रुक गया। चीज़ हो उसे जाने, न हो उसे करे और जाने, ऐसा कैसे बने? समझ में आया? यह तो बड़ा वस्तु का स्वरूप है। यदि उसे शुद्ध एक को कहो तो दूसरी चीज़ का कर्ता बन सकता नहीं और इसीलिए हर्ता भी बन सकता नहीं। हर्ता अर्थात् नाश। करनेवाला नहीं बन सकता, नाश करनेवाला नहीं बन सकता। क्योंकि करना (कहो) तो जानना नहीं रहता और नाश करे तो उस समय था भूतकाल में, उसे जानना यहाँ रहता नहीं। करने में भी जानना त्रिकाल सिद्ध नहीं होता और नाश करने में भी त्रिकाल चीज़ का ज्ञान यहाँ सिद्ध नहीं होता। समझ में आया? यह तो भाई! लॉजिक-न्याय से वस्तु सिद्ध करते हैं।

सर्वज्ञ, ओहोहो! सर्व-ज्ञ उसमें वर्तमान और भविष्य के ज्ञाता और भूत के कर्ता, ऐसा कहाँ आया? और भूत के जाननेवाले और भविष्य में हो, तब जाननेवाले—ऐसा कहाँ आया? अथवा भविष्य का बाद में करेंगे और जानेंगे, यह भी कहाँ आया? और भविष्य में होगा, तब जानेंगे तो वह सर्वज्ञ नहीं रहे। भूतकाल के कर्ता हो तो सर्वज्ञ रहते

नहीं; भविष्य की अवस्था हो, तब जाने तो सर्वज्ञ रहते नहीं। समझ में आया? यह तो मुद्दे की रकम की बात है।

भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी प्रभु चैतन्यसूर्य है। यह (शरीर) तो मिट्टी जड़ है। अन्दर कर्म वह मिट्टी जड़ है, आठ कर्म धूल और पुण्य-पाप के विकारभाव हैं, वे तो मैल हैं। उनके पीछे प्रभु आत्मा पूर्ण ज्ञान, पूर्ण दर्शन, पूर्ण आनन्द, पूर्ण शान्ति, पूर्ण स्वच्छता, पूर्ण प्रभुता, पूर्ण अस्तित्व, वस्तुत्व, अगुरुलघुत्व पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... वस्तुरूप से, द्रव्यरूप से, सामान्य अंशरूप से, अभेदरूप से पूर्ण स्वरूप है वह। इस दृष्टि से हम आत्मा को परमब्रह्म वैष्णव में कहते हैं। तो इस प्रकार से तो अज्ञानी दूसरे मानते नहीं। वह तो एक शुद्ध-बुद्ध नित्य मुक्त और वह भी उसे कर्ता-हर्ता माने तो ऐसा बन सकता नहीं। कहो, समझ में आया?

और इच्छा है वह मोह की प्रकृति है। यदि उसे कर्ता कहो तो इच्छा बिना कर्ता बन सकता नहीं। इच्छा तो मोह की प्रकृति है। वह इच्छा हो, वहाँ मोह है। वह सर्वज्ञ हो नहीं सकता, वह शुद्ध-बुद्ध हो नहीं सकता, शुद्ध-बुद्ध नहीं हो सकता। समझ में आया? **भगवान मोह से रहित हैं,...** सर्वज्ञ प्रभु वीतराग सर्वज्ञदेव जिन्हें एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल-तीन लोक का अर्थात् सब द्रव्य, सब क्षेत्र, सब काल, सब भाव, वह राग की अपेक्षा बिना अपनी ज्ञान की पर्याय अर्थात् अवस्था पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... सबको जानते हैं। (वे) मोह से रहित हैं भगवान। उन्हें इच्छा नहीं हो सकती। इच्छा हो, वहाँ वीतराग नहीं और वीतराग हो, वहाँ इच्छा नहीं। भगवान की वाणी निकले परन्तु इच्छा बिना निकलती है। भगवान को कहाँ इच्छा थी? वे तो सर्वज्ञ हैं, पूर्ण वीतराग हैं। इच्छा बिना वाणी-ध्वनि उठती है पुद्गल की। समझ में आया?

यह अरिहन्त पद पहला समझना कठिन है। णमो अरिहंताणं, ऐसा बोल जाये, रट जाये। परन्तु भगवान! पहाड़े की खबर नहीं। पहाड़ा णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं... परन्तु क्या णमो अरिहंताणं? अज्ञान और राग-द्वेष जो दुश्मन थे, उनका व्यय होकर जिसने स्वभाव के आश्रय से, सर्वज्ञ और वीतराग पर्याय प्रगट की है, उसने निश्चय से तो अपने अज्ञान और राग का नाश किया है। उस समय कर्म उसकी पर्याय के कारण

से परिणमन पहले कर्म का था, वह यहाँ जहाँ परिणमन शुद्ध आत्मा का हुआ, तो वह कर्म की पर्याय अकर्मरूप से वहाँ परिणमने के योग्य हो जाती है। वास्तव में तो भगवान ने कर्म को नष्ट नहीं किया। जड़ को हरे? क्या जड़ का कर्ता-हर्ता कोई आत्मा है? जड़ स्वतन्त्र पदार्थ है। क्या आत्मा कर्म को बाँधे और कर्म को तोड़े? वह तो स्वतन्त्र वस्तु है। अज्ञानी विकारभाव को करे और विकार को टाले, इतना उसके अधिकार में है। तो वह विकारभाव उसे अज्ञान और राग-द्वेष था, उसे अपने स्वभाव की परिपूर्णता के आश्रय से और पहला अज्ञानभाव टला, फिर परिपूर्ण स्वभाव में स्थिरता के आश्रय से अस्थिरता का नाश हुआ। इससे वहाँ पूर्ण ज्ञान और पूर्ण वीतरागदशा भगवान को प्रगट हुई। उसे किसी ने किया है, किसी के कर्ता-हर्ता हैं—ऐसा है नहीं। जैसा जानने में आया, वैसा वाणी द्वारा कथन में आया। भगवान कहीं किसी के कर्ता-हर्ता नहीं। समझ में आया? ओहोहो!

एक बात भी बराबर जाने न... वह आता है न उन जयसेनाचार्य की टीका में आता है, एक भाव जाने, वह सर्व भाव जाने। एक भाव बराबर जाने न, तो सब सीधे भाव समझ में आ जाये। एक भाव आवे। संस्कृत टीका में आता है, जयसेनाचार्य की टीका में। समझ में आया? वह कहीं दोहा भी है। दोहा में किसी का है। दोहापाहुड़। **भगवान मोह से रहित हैं,...** हाँ है, दोहापाहुड़ में है। एक भाव जाने, वह सब जाने। यह श्लोक है। **इसलिए कर्ता-हर्ता नहीं हो सकता। कर्ता-हर्ता मानना प्रत्यक्ष विरोध है।** सर्वज्ञ और वीतरागपना मानना, वह प्रत्यक्ष सम्यक् सिद्ध बात है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कभी तीन काल में कर नहीं सकता। छद्मस्थ किसका करे? अपनी पर्याय को करे और स्वभाव के आश्रय से, उल्टी पर्याय हो उसे टाले। दूसरा करे क्या? भगवान ने कुछ किया नहीं किसी का, छद्मस्थ जीव भी किसी का कर नहीं सकता। परन्तु ऐसा कहते हैं, श्रुतज्ञानी कर सकता है। अरे, भगवान! भाई! तुझे खबर नहीं प्रभु! तेरी सत्ता के सत्त्व में तेरा उल्टा-सुल्टापना हो सकता है। पर की सत्ता की दशा में तुझसे कुछ हो तो वह अनन्त तत्त्वरूप से पदार्थ हैं, वे रहते नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी कर नहीं सकता। कौन करता था दुकान का? राग करे। वहाँ चतुर किसे कहना? दुकान के ऊपर बैठा राग करे, भ्रमणा करे। बाकी जगत की दुकान की व्यवस्था चलना, वह जड़ की पर्याय के आधार से चलती है।

मुमुक्षु : होशियार हो वह तो ....

पूज्य गुरुदेवश्री : होशियार किसका परन्तु होशियार? होशियार बैठा हो, उसकी बुद्धि उसके पास रही। उस बुद्धि की पर्याय पर के अस्तित्व में घुस जाती है? माल जाये-आये उसमें उसका अस्तित्व पर में घुस जाता है? कहो! भगवान ऐसा कहते हैं, अनन्त अजीव पदार्थ हैं वे... वहाँ दुकान के ऊपर हो न कपड़ा, सोना, वे सब पदार्थ अजीव हैं। तो उन अजीव पदार्थ के अस्तित्व की सत्ता का आगमन-गमन वह जीव की सत्ता के कारण से नहीं है। यह जीव राग-द्वेष करे और भ्रमणा करे कि मैंने ऐसा किया, लड़के को बैठाया होता तो व्यवस्थित नहीं होता; मैं बैठा, इसलिए बराबर व्यवस्थापूर्वक लाईन से काम कर बैठा। मूढ़ है। कैसा होगा? कालीदासभाई! होशियारी से नहीं मिलता होगा? मानते हैं न बनिया?

यह तो कहते हैं यहाँ कि वे जीव को कर्ता-हर्ता मानते हैं न। मानो। मानो, इसलिए कहीं वस्तु हो जाये? वस्तु तो जैसी है, वैसी (रहेगी)। सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ परमेश्वर तीर्थंकरदेव जिन्होंने एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल-तीन लोक देखे। जैसे देखे, वैसा वाणी में आया और वैसे हैं, कुछ किया नहीं भगवान ने। भगवान ने तो वाणी भी की नहीं, वाणी तो जड़ है। आहाहा!

मुमुक्षु : भगवान श्रीमुख से बोले न!

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बोलने की बातें संयोग से। संयोग से कथन बोला जाता है। भगवान की वाणी। यहाँ नहीं आया? **सर्वज्ञप्रणीत...** कहा हुआ। यह निमित्त से तो ऐसा ही बोले न! भाषा क्या? भाषा ही ऐसी है व्यभिचारिणी। **सर्वज्ञप्रणीत...** अथवा सर्वज्ञ ने जाना हुआ मार्ग कहा, वह वाणी में आया। ऐसी ही वाणी में शक्ति ऐसी है स्व-पर वार्ता कहने की। वह वाणी की सामर्थ्य है, भाई! जगत को चैतन्य की महत्ता की तो

खबर नहीं, परन्तु परमाणु की पर्याय की स्कन्धरूप से होकर स्व-पर वार्ता कहने की परमाणु में सामर्थ्य है। समझ में आया? ओहोहो! यह शब्दरूप है आत्मा, शब्द का हेतु है। आयी थी न लाईन? पंचास्तिकाय में। असदम-सद हेतु। ... शब्दरूप है। शब्दरूप जो परिणमता है, उसमें वह निमित्त भले हो, परन्तु परिणमन जिस शब्द का है, वह परमाणु की अपनी स्वतः वर्तमान परिणति से परिणम रहे हैं। उसे आत्मा परिणमा सके शब्द की पर्याय को, अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, हे जीवों! मोह में न नाचो। हमने भाषा की है और हम जगत को समझाते हैं, और जगत को प्रमेय बनाकर भाषा, उसे समझा सकती है, (ऐसा मोह में न नाचो)। भाषा भी समझा नहीं सकती। आहाहा!

मुमुक्षु : उपदेश निरर्थक गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : निरर्थक अर्थात् क्या? वाणी के काल में वाणी निकले। वह समझे उसकी योगयता से, तब वाणी को निमित्त कहा जाये। परन्तु दूसरा क्या है? यह आता है न प्रवचनसार में, नहीं उसमें अलिंगग्रहण में? हिन्दी में लिखा है किसी ने। कौन? हेमराज? पण्डित हेमराज। भाई! यह तो सब उपदेश... समझे तो उसे निमित्त कहा जाये। अलिंगग्रहण के थोड़े बोल उतारे हैं पाँच-छह-सात। हिन्दी में उतारे हैं न। अपने... वे थोड़े उतारकर अन्त में कहा यह। समझ में आया? आहाहा!

यह तो 'लक्ष थवाने तेहनो कह्या शास्त्र सुखदायी।' भगवान की वाणी, उसका पूर्ण शुद्ध आत्मा का अखण्ड आनन्दकन्द सामान्य ध्रुवस्वरूप, उसका लक्ष्य कराने के लिये वाणी है। वह लक्ष्य करे तो उस वाणी को निमित्त कहा जाता है। वरना अनन्त बार दिव्यध्वनि सुनी। भगवान के समवसरण में अनन्त बार गया, परन्तु उनकी अपनी ध्वनि में क्या कहना है? वह भगवान भी अपने स्वरूप को पूर्ण प्राप्त हुए हैं। वाणी में ऐसी पूर्ण वस्तु उसके योग्य, वाणी के योग्य निकलती है वाणी के योग्य। उसमें से समझनेवाला... लो, गणधर चार ज्ञान को अन्तर्मुहूर्त में पावे। उस समय कितने ही द्रव्यलिंगी मिथ्यादृष्टि साधु बैठे हों अन्दर तो सम्यक्त्व भी न पावे। वाणी क्या करे? समवसरण में द्रव्यलिंगी भी बैठे हों। गृहीत मिथ्यात्व न हो। समवसरण में है न अन्दर? अगृहीत मिथ्यात्ववाले बैठे हों, वे सम्यक् नहीं पावे। यह (गणधर) अन्तर्मुहूर्त में चार ज्ञान और चौदह पूर्व की

रचना (करे)। वे स्वयं के कारण से है या पर के कारण से है? समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, **हम तो जीव-राशि को परमब्रह्म मानते हैं, उसी जीवराशि से लोक भरा हुआ है।** अनन्त आत्मायें सर्वज्ञस्वभावरूप से कहे हैं, तो उस सर्वज्ञस्वभाव को हम परमब्रह्म कहते हैं। आहाहा! अनन्त आत्मायें अनन्त उनका स्वभाव, सर्वज्ञस्वभावी वस्तु है वह। पर्याय में भले अल्प, उसकी बात अभी नहीं। सर्वज्ञस्वभावी भगवान आत्मा अनन्त है, सर्वदर्शीस्वभावी आत्मा अनन्त है, पूर्ण आनन्दस्वभावी आत्मा अनन्त है। पूर्ण स्वच्छतास्वभावी आत्मा अनन्त है, पूर्ण शान्ति अर्थात् चारित्र शान्ति, शक्ति, हों! उसरूप से पूर्ण हैं। ऐसे आत्मा को हम परमब्रह्मरूप से स्वीकार करते हैं। पर्याय में तो प्रगट हो तो। वस्तुरूप से तो इस प्रकार से है। कहो, समझ में आया इसमें?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अब इसमें कितनी बात थी? दो-पाँच, दस बात इसमें कितनी... ? घर में तो सब कितनी याद रखता है। नहीं करता? दुकान का धन्धा हो तो हजारों चीज़ों में इस भाव में आयी थी और इस भाव से बिकती है और इस भाव से अभी भाव चलता है मुम्बई में। सब खबर होती है इसे। ऐ... हिम्मतभाई!

मुमुक्षु : नुकसान जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ तो नुकसान जाये या न जाये, इसके आधीन नहीं। परन्तु मानता है कि इसका ध्यान नहीं रखूँ तो नुकसान जायेगा। मानता है। नुकसान जाना हो तो हुए बिना रहेगा नहीं। तेरे आधीन कहाँ है वहाँ? गजब बात, भाई!

यहाँ तो कहते हैं कि हमारी और सबकी, पर्याय में अल्पता (है, वह) हमारे ख्याल में है, परन्तु वस्तु के अन्दर स्वभाव का कन्द पड़ा है अकेला ब्रह्मानन्द प्रभु, ऐसी जीवराशि लोक में भरी है, ऐसा अन्यमति मानते नहीं। **जीवराशि से लोक भरा हुआ है। अन्यमती ऐसा मानते हैं, एक ही ब्रह्म अनन्तरूप हो रहा है।** देखो, ऐसा नहीं। वह तो खण्ड-खण्ड हो गया उसे। हम तो एक-एक आत्मा को पूर्ण परमब्रह्म अखण्डानन्द कहते हैं। वह तो अनन्त आत्मा होकर एक कहते हैं। यह तो आत्मा बहुत इतना छोटा हो गया। समझ में आया? अनन्त आत्मा होकर एक। तब हम तो एक होकर पूर्ण ब्रह्म

(मानते हैं)। आहाहा! सर्वज्ञस्वभाव... सर्वज्ञस्वभाव... सर्वज्ञस्वभाव। ज्ञ-स्वभाव है न आत्मा का? ज्ञ-स्वभाव। स्वभाववान आत्मा, ज्ञ-स्वभाव। ज्ञ कहो या सर्वज्ञ कहो। सर्वज्ञस्वभाव अर्थात् ज्ञ में अपूर्णता क्या हो? अर्थात् पूर्णता। अर्थात् सर्वज्ञस्वभाव। जिसे भगवान ने सर्वज्ञ शक्ति कही। वह सर्वज्ञ शक्ति सम्पन्न सब भगवान आत्मायें हैं। अभव्य का जीव भी सर्वज्ञ शक्ति सम्पन्न है। आहाहा! अरे! इस दृष्टि में विश्वास तो लाये यह। यह कहीं बात करने की है? मेरुपर्वत जैसे उठाना सरल है, परन्तु यह पुरुषार्थ करना महादुर्लभ है। आहाहा! बोधिदुर्लभ कहा है न? महादुर्लभ। बोधिधर्म दुर्लभ है, भाई! अनन्त काल में इसमें (किया नहीं)। स्वरूप से सुलभ है, अनन्त काल के अप्रयास से दुर्लभ है।

महा भगवान। आहाहा! मैं सर्वज्ञस्वभावी। अल्पज्ञता होने पर भी सर्वज्ञस्वभावी। अनन्त आत्माओं की अल्पज्ञता बाहर में होने पर भी वह सर्वज्ञस्वभावी। बस! सर्वज्ञस्वभावी अर्थात् परमात्मा अर्थात् परमब्रह्म। समझ में आया? यह वाणी वीतराग सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं नहीं हो सकती, परन्तु यह वाड़ा में जन्मे, उसे अभी खबर नहीं होती कि क्या भगवान कहते हैं। यह और यह... यह... यह... बाहर की माँडी है। यह (आत्मा) तो ज्ञानपिण्ड, सर्वज्ञपिण्ड प्रभु है, अकेला ज्ञान का पुंज प्रभु है। ऐसे सब भगवान आत्मा ज्ञान के पुंज हैं। बड़ी गाँठ हो न रुई की, उसी प्रकार यह ज्ञान की गाँठ आत्मा है। प्रेस में वह दबाते हैं न? गाँठ। गाँठ कहते हैं न, क्या कहते हैं बड़ा? गठरी। बड़ी गठरी होती है न? फिर प्रेस में डाले तो इतनी (हो जाये)। यह तो उससे भी शक्ति में इतना गठ भरा है, एक समय में पूर्ण व्यापक असंख्यप्रदेशी, परन्तु क्षेत्र में सर्वज्ञस्वभाव पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पड़ा है। समझ में आया? आहाहा!

इस प्रकार वर्तमान अल्पज्ञता, वर्तमान विकारता (होने पर भी) उसे स्वीकार करना कि यह सर्वज्ञस्वभावी हूँ, इसका नाम सत्यदर्शन है। समझ में आया? और तत्पश्चात् सर्वज्ञ पर्याय को स्वीकारता है। ओहो! सर्वज्ञस्वभावी मैं हूँ तो जिसे पर्याय प्रगट हो गयी, वह सर्वज्ञ परमात्मा भी अनन्त हैं। जैसे अनन्त सर्वज्ञस्वभावी जीव हैं, तो अनन्त प्रगट सर्वज्ञ पर्यायवाले भी अनन्त हैं। वे भले थोड़े (हों)। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वही यह कहते हैं कि भाना। यह भाया जाता है। भाना अर्थात् क्या? ज्ञान में ख्याल आना। भाना अर्थात् क्या? यह लकड़ी देखी। लकड़ी देखी है? वास्तव में तो ज्ञान का ख्याल देखा है। घट का ज्ञान हुआ तो क्या उस घट के कारण से हुआ है? घट के कारण से ज्ञान हो तो लकड़े के पास घट रखो (उसे भी ज्ञान होना चाहिए)। वह ज्ञान का अपना वर्तमान क्षयोपशम की योग्यता की पर्याय अपने से अपने में हुई है। ऐसा इसे प्रतीति में लाना कि यह अंश जो है और यह उस अंश में वृद्धि पाता है न? अंश में वृद्धि पाता है, वह दिखता है या नहीं? तो पहले अल्प था, उसकी अपेक्षा वृद्धि पाया, तो अल्प गया, उसमें से वृद्धि कैसे आवे? अल्प तो गया, वृद्धि पायी, निर्मल पर्याय बहुत दिखती है। तो पहले नहीं थी और यह निर्मल विशेष आयी कहाँ से? अल्पज्ञ गई, उसमें से आयी? गयी, उसमें से आयी? अभाव में से आयी?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : शास्त्र-फास्त्र से कहाँ से आता था? वह अन्दर पूर्ण ज्ञानस्वभाव का प्रवाह बहता है पर्याय में। भाई! परन्तु उसे ... ऐसी वस्तु अकेली चिद्घन ज्ञानस्वरूप, ज्ञान की शिला, शरीर प्रमाण ज्ञान की शिला प्रत्येक आत्मा परिपूर्ण, उसे हम परमात्मा कहते हैं। इस दृष्टि से। इस दृष्टि से अन्यमति स्वीकार नहीं करते। जैन सम्प्रदाय में भी इस प्रकार से स्वीकार न करे तो वह अन्यमति जैसे ही हैं। अन्यमति अर्थात् क्या? समझ में आया?

एक ही ब्रह्म अनन्तरूप हो रहा है। आहाहा! एक ब्रह्म अनन्तरूप! अर्थात् कि आत्मा तो बहुत छोटा इतना। टुकड़े खण्ड-खण्ड हो गया। और दूसरे प्रकार से (कहें तो) उस आत्मा में ऐसे अन्तर एकाग्र होता है, तब उसका क्षेत्र ही इतने में है कि जिससे ऐसे एकाग्र होने पर वह निर्मलता आती है। ऐसे नजर करने से एकाग्रता होती है? उसकी पृथक्ता और पूर्णता यहाँ है। उसकी पर से पृथक्ता और पूर्णता यहाँ है, उसकी साबिती क्या? कि यहाँ अन्दर में ऐसे एकाग्र होता है तो जितने क्षेत्र में है, उसमें एकाग्र होता है। तो उस क्षेत्र में ही वह परिपूर्ण तत्त्व है। उसमें से एकाग्र होने पर निर्मल पर्याय

प्रगट होती है। इसलिए इतने ही क्षेत्र में पूरा है और उसमें एकाग्र हो, उसमें से निर्मल पर्याय (आती है)। इसलिए क्षेत्र इतना सिद्ध हो गया और निर्मल बढ़ी, वह (पर्याय) गयी, उसमें से नहीं आयी, स्वभाव में से आयी है। इसीलिए क्षेत्र भी इतने में सिद्ध हो गया और पूर्ण स्वभाव भी इतने में है, ऐसा सिद्ध हो जाता है। अब भी यह कुछ ... समझ में आया? देवचन्दजी!

ऐसे नजर करे तो एकाग्र होता है? ऐसे... इसका अर्थ ही यह हुआ कि वह पर से पृथक् है। इसलिए पृथक् के ऊपर ऐसे नजर करने से एकाग्रता हो ही नहीं सकेगी। इसलिए जो स्वयं अन्दर में अनन्त गुणराशि भगवान आत्मा, उसका क्षेत्र इतना है और उसमें पूरा पूर्ण भाव है, उनकी—दोनों की सिद्धि क्या? कि वह स्वयं जब अन्तर में एकाग्र होता है, इसलिए प्रथम जो ज्ञान, अज्ञान आदि था, वह थोड़ा था, वह बढ़ा है, बढ़ता है और बढ़ता है, इतने क्षेत्र में से। इसलिए इतने क्षेत्र में वह द्रव्य है। और वह बढ़ा, पहला गया और बढ़ा, वह अन्दर में से आता है, (जो) गया, उसमें से नहीं। इसलिए अन्दर परिपूर्ण स्वभाव है। क्षेत्र इतना, परिपूर्ण स्वभाव इतना, वह द्रव्यस्वरूप इतना एक समय के काल में। समझ में आया?

परन्तु इससे कहीं अन्दर मंथन करना नहीं, अन्दर विचार करना नहीं। तत्त्व को शोधना और यह सत् कहाँ कैसे है, (उसके) विचार करना (नहीं)। अब ऐसा का ऐसा मान लेना तो कुछ मनाते होंगे? लो, भगवान कहे, वह ऐसा मानो। परन्तु क्या माने? किस प्रकार? भगवान कहते हैं, वह माने किस प्रकार? उसके ख्याल में यह भाव बैठे बिना यह प्रतीति सच्ची बैठे कैसे? ... ऐसा होगा? ऐसा होगा? ऐसा होगा? देखो न, बहुत कितने ही नहीं उड़ाना चाहते हैं? भविष्य की पर्याय हो, तब भगवान देखे। भाई! तो एक समय में त्रिकाल जाना कैसे? एक समय में पूर्ण पर्याय में आया किस प्रकार? एक समय में भूत, भविष्य और वर्तमान। हुआ, हो गया और होगा। वर्तमान में ज्ञान में पूर्ण ज्ञात हो गया है। बस, वह पूर्णपना आया कहाँ से? सर्वज्ञस्वभाव अन्दर में गुण से परिपूर्ण है, उसमें से आता है। वह निमित्त में से नहीं आता, कर्म का अभाव हुआ इसलिए नहीं आता, पूर्व की पर्याय गयी, इसलिए नहीं आता, वर्तमान पर्याय अन्दर में

से आती है। इतने क्षेत्र में भगवान पूरा द्रव्य है। उसके एक समय में यह सब पूरा भरा है। आहाहा! द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव सिद्ध कर दिये। समझ में आया?

मुमुक्षु : अपने अस्तित्व में कार्य छोड़कर....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका कभी मनन ही नहीं किया। अन्तर में धीरे से, शान्ति से अपना अस्तित्व कैसा? कितना? भगवान ने कहा भले, परन्तु इसे अन्दर में भासित होना चाहिए न! यह भगवान कहते हैं, भगवान कहते हैं। जय नारायण। त्वमेव सत्यम्। त्वमेव सत्यम् परन्तु किस प्रकार? समझ में आया? ऐसे तो हमारे बहुत कहते, वे पहले बहुत वर्ष से कि भगवान कहे वह सच्चा। भाई! ऐसा नहीं चलता, कहा। भगवान कहे वह सच्चा। संक्षिप्त रुचि रखो। संक्षिप्त रुचि तो कहा, संक्षिप्त में मिथ्यादृष्टिपना टला, उसे संक्षिप्तरूचि कहा जाता है। कुछ भान नहीं होता और संक्षिप्तरुचि में सम्यग्दृष्टि, ऐसा नहीं होता। बहुत चर्चा हुई थी (संवत्) १९८० के वर्ष में। संक्षिप्तरुचि आता है न दस में? दस संक्षिप्त नहीं? रुचि आता है ... वह संक्षिप्तरुचि का ऐसा अर्थ करने लगे वे लोग कि संक्षिप्त क्या? कि भले विशेष ज्ञान न हो, परन्तु हम भगवान सच्चा मानते हैं, इसलिए अपने को सम्यग्दर्शन है। कहा, ऐसा नहीं। ... कुदृष्टि गयी न हो, दूसरे अभिप्राय अज्ञानी के हैं, उनके लक्ष्य में संस्कार न हो और अल्पज्ञान हो, परन्तु स्वभाव के आश्रय से जिसे प्रगट हुई दृष्टि है, उसे संक्षिप्तरुचि कहा जाता है। यह तो ८० के वर्ष में बड़ा विवाद हुआ था। सब विवाद ही उठाते थे न। ऐसी बात सम्प्रदाय में... ऐसा नहीं होता। भगे एक मूलचन्दजी तो भाग गये थे। मैं तो भाग गया, तेरा सुन नहीं सका। (हमने) कहा ठीक, भाई! वापस ऐसा बोले बेचारे, हों! बोले। मैं तो भाग गया, तेरा सुन नहीं सका। मैंने कहा, संक्षिप्तरुचि का अर्थ यह है। तुम ऐसा मानो कि यह सम्प्रदाय के जीव कुछ समझते ही नहीं और उल्टा मानकर बैठे, उन्हें संक्षिप्तरुचि है, तो ऐसा नहीं। कोई भी उल्टे सम्प्रदाय की दृष्टि उसे नहीं। ऐसा पाठ है, हों! .... ऐसे दो पाठ एक लाईन में हैं। २८वाँ अध्ययन है। उसे जिसने आत्मा में आत्मा का भान वर्ते, परन्तु दूसरे का ज्ञान अल्प है, बहुत विशेष ज्ञान नहीं, परन्तु स्व का भान बराबर है। दूसरे ऐसे वाडा के विपरीत अभिप्राय घुसे नहीं। विपरीत अभिप्राय घुसे और माने, उसे संक्षिप्त रुचि से समकित हो, (ऐसा) तीन काल में बनता नहीं। बहुत बात चली थी।

यहाँ ऐसा कहते हैं कि एक स्वरूप से सबको एक मानता है अज्ञानी। ऐसा नहीं। एक स्वभाव से सब आत्मा हैं, ऐसा भगवान कहते हैं और ऐसा है। समझ में आया? **एक ही ब्रह्म अनन्तरूप हो रहा है। जो वही एक सबरूप हो रहा होवे, तो नरक निगोद स्थान को कौन भोगे?** प्रत्यक्ष दिखता है कि दुःखी दुःख भोगता है। वह क्या है? दशा में दुःख नहीं? दशा में दुःख है, कल्पना है। यदि तुम सबको एक मानो तो एक को कल्पना दुःख की, एक को थोड़ी, एक को अधिक, यह क्या है? इसलिए एक आत्मा सब है ही नहीं, भिन्न-भिन्न भगवान पूरे आत्मा हैं। **इसलिए जीव अनन्त हैं।** समझे? अनन्त जीव। अनन्त की सिद्धि की कि भिन्न-भिन्न दुःख की दशा भोगते हैं, उनकी सत्ता भी भिन्न-भिन्न है। एक जीव कुछ दुःख थोड़ा भोगे, कोई अधिक भोगे। संयोग की अपेक्षा न लो तो भी संयोग में फेरफार है, जीव को और उसके लक्ष्य में, वेदन में भी फेरफार है। तो इस सत्ता के अन्तर में उसमें वेदन में हीनाधिक के अंश दिखते हैं, तो उसकी सत्ता भी भिन्न है। तो सब जीवों की अनन्त सत्ता भिन्न है और अवस्था में भिन्न-भिन्नता के दुःख की अपेक्षा देखने पर उसकी सत्ता अत्यन्त भिन्न है।

इन जीवों को ही परमब्रह्म, परमशिव कहते हैं,... ऐसी अपेक्षा से हम तो परमब्रह्म और परमशिव कहते हैं। बापू! तू एकान्त मान ले कि सब एक है और ऐसा है, ऐसा है ही नहीं। समझ में आया? **ऐसा तू निश्चय से जान।** देखो! **ऐसा तू निश्चय से जान। 'तर्के विचारिता तिष्ठत्यत्र'** प्रत्यक्ष आदि में लिखा है, हों! इसमें नहीं डाला वह। संस्कृत में डाला, देखो। हाँ, वह। **'प्रत्यक्षादिप्रमाणबाधितत्वात् साधकप्रमाण-प्रमेयचिन्ता तर्के विचारिता तिष्ठत्यत्र तू नोच्यते अध्यात्मशास्त्रत्वादित्यभिप्रायः॥'** वरना तर्क और न्याय से इसका स्पष्टीकरण करने का बहुत प्रसंग है, परन्तु अध्यात्म शास्त्र है, इसलिए बहुत नहीं कहते, समझ लेना—ऐसा कहते हैं। ऐसा लिखा है, हों! अर्थ में यह। अर्थ लिखना चाहिए। १०७ गाथा हुई, लो!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तथापि जो है टीका, उसके शब्द डालकर फिर थोड़ा विस्तार करे, वह बराबर है। यह देखो न, यह श्लोकवार्तिक। श्लोकवार्तिक में पहले आचार्यों

का अर्थ किया नहीं और ऐसे का ऐसा इकट्ठा-इकट्ठा अपना और आचार्य का इकट्ठा मिलाया। इसलिए लोगों को वाँचना हो तो... पण्डितजी! श्लोकवार्तिक। वह अर्थ किया है न माणेकचन्दजी ने? श्लोकवार्तिक में आचार्य की टीका है, ऐसे शब्द पहले करके, बाद में लिखना चाहिए, वह तो भावार्थ में लिखना चाहिए तो खबर पड़े न कि यह उसका भाव है। परन्तु यह तो सब वाँचा और खिचड़ा करे। टीका पहले आचार्य का जो अभिप्राय है, वह अक्षरशः रखना चाहिए। फिर स्वयं रखे भावार्थ तो लोगों को खबर पड़े कि यह तो इनका भावार्थ है। बहुत गड़बड़ बहुत है श्लोकवार्तिक के अर्थ में। क्या हो? यह बड़े पण्डित जैसे निवृत्त न हो। श्लोकवार्तिक करने का प्रसंग आया तो माणेकचन्दजी हाथ आये। श्लोकवार्तिक बहुत ऊँची पुस्तक है। बहुत तात्त्विक लॉजिक से बैठे। परन्तु आचार्य ने जो टीका की है न, उसका अर्थ पहले अक्षरशः होना चाहिए।

तुम्हारी बात आयी थी, प्रवचनसार की कल आयी थी, हों! कैलाशचन्दजी ने रखी है। प्रवचनसार में प्रसन्नता बताते हैं। प्रवचनसार हम भेजेंगे। ऐसा कि हिम्मतलालभाई ने प्रवचनसार की टीका शब्दशः बराबर की है। आगे-पीछे देखकर बराबर की है। ऐसा चाहिए न! ऐसा होवे न! आचार्यों के जो अभिप्राय हैं, उन्होंने भाव से जो ऐसी वस्तु रखी, उसका ही भाव होना चाहिए। फिर अपना तर्क उठावे, उसे वह बात करनी हो तो भले नीचे (फुटनोट में) डाल दे तो लोगों को अन्तर तो पड़े न कि भाई! यह इनका है और यह आचार्य का है। यह तो सब इकट्ठा डाला, इसलिए कहीं मेरे जैसे को तो बहुत खबर नहीं पड़ती। गड़बड़ लगती है। १०७ हुई, लो! २१४ है न? १०७ हुई और १०७ रही अब। यह दूसरे भाग की, हों! पहले भाग की १२४ हो गयी। दूसरे की २१४ है। उसमें १०७ हुई।

इस प्रकार सोलहवानी के सोने के दृष्टान्त द्वारा... देखो, सोलहवान सोना। सोलहवान कहते हैं न? **केवलज्ञानादि लक्षण से सब जीव समान हैं, इस व्याख्यान की मुख्यता से तेरह दोहा-सूत्र कहे।** तेरह सूत्र कहे, लो! **इस तरह...** अब यह सब कहते हैं। **मोक्षमार्ग...** यह बात कही। **मोक्षफल...** कहा, **और मोक्ष कहा, तीनों का कहनेवाले दूसरे महाधिकार में चार अंतरस्थलों का इकतालीस दोहों का महास्थल**

समाप्त हुआ। इसमें शुद्धोपयोग,... की बात कही। शुद्धोपयोग का कहा। **वीतराग-स्वसंवेदनज्ञान,...** कहा। **परिग्रह...** की बात की, समझ में आया? **त्याग और सब जीव समान हैं,...** परिग्रह का त्याग और **सब जीव समान हैं, ये कथन किया।**

अब एक बात में दूसरी लेते हैं, देखो! **आगे 'परु जाणंतु वि' इत्यादि एक सौ सात दोहा...** बाकी है। **तीसरा महाधिकार कहते हैं, उसी में ग्रन्थ को समाप्त करते हैं—**

लो! १०७ कहकर समाप्त करते हैं।

★ ★ ★

गाथा - १०८

२३५) परु जाणंतु वि परम-मुणि पर-संसग्गु चयंति।

देखो! यह अधिकार ऐसा लिया है।

पर-संगइँ परमप्पयहँ लक्खहँ जेण चलंति॥१०८॥

महा परम सन्त, मुनि अंश में उसके गर्भित में गृहस्थ भी समकिती (भी) आ जाते हैं। **उत्कृष्ट आत्मद्रव्य को जानते हुए भी... 'परु जाणंतु'** भगवान आत्मा उत्कृष्ट अर्थात् परम स्वभाव, वस्तुस्वभाव। परम ग्राहकनय से जो स्वभाव ज्ञात हो, ऐसे स्वभाव को **जानते हुए भी...** देखो! **परद्रव्य जो द्रव्यकर्म,...** जड आठ कर्म। **भावकर्म,...** दया, दान, आदि विकल्प और **नोकर्म...** शरीर, वाणी। **उसके सम्बन्ध को छोड़ देते हैं।** क्या कहते हैं? एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण स्वभाव का सम्बन्ध करनेवाला परमात्मा द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म का सम्बन्ध छोड़ देता है। पूर्ण स्वभाव का सम्बन्ध करनेवाला... यहाँ शुद्धोपयोग लेंगे, पूर्ण स्वभाव अपना, उसका सम्बन्ध करनेवाला जड़कर्म, नोकर्म और भावकर्म का संग छोड़ देता है।

क्योंकि परद्रव्य के सम्बन्ध से... संसर्ग उसका, हों! परद्रव्य से नहीं। **परद्रव्य के... 'परसंगेन'** ऐसा शब्द पड़ा है। **परद्रव्य के सम्बन्ध से ध्यान करनेयोग्य जो परमपद है, उससे चलायमान हो जाते हैं।** यह धनुष का दृष्टान्त दिया है। धनुष का साधनेवाला

बराबर ऐसा जहाँ बाण मारना है, उसके ऊपर लक्ष्य न रखे तो ऐसा-ऐसा हो जाये, ध्यान चलित हो जायेगा। ऐसे यह ध्येय पूर्णानन्द प्रभु सामान्य के ऊपर जिसका ध्येय और लक्ष्य है, वह जीव यदि दूसरे का ध्येय बनाकर वहाँ अटक जायेगा तो यहाँ से लक्ष्य छूट जायेगा। समझ में आया? पूर्ण स्वरूप सामान्य एकरूप अखण्डानन्द प्रभु का लक्ष्य अर्थात् ध्येय करनेवाला, जो दूसरे के ऊपर ध्येय के लक्ष्य में जायेगा तो यहाँ से लक्ष्य छूट जायेगा, वस्तु साध नहीं सकेगा। समझ में आया? लक्ष्य है न? '**कक्खहं लक्ष्यस्य ध्येयभूतस्य धनुर्विधाभ्यासप्रस्तावे लक्ष्यरुपस्यैव जेण चलंति**' धनुष का मारनेवाला जैसे ऐसे लक्ष्य बाहर ध्यान न रखे न, किस ओर लगा, कुछ ऐसा हुआ वहाँ नजर चली जाये तो काम नहीं कर सकता। एक पत्ता हो न पीपल का, पीपल का पत्ता। उसकी शेड हो न पतली। पत्ते से पतली इतनी हो। जैसे पीपल का पत्ता हो, वैसी ही उसकी शेड लम्बी हो। तो यहाँ से मारे तो शेड के ऊपर मारना चाहिए न उसे। नजर ऐसी बाँधे कि वहाँ ही उसकी गोली जाये। अब वहाँ ध्यान में से चलित हो, ऐसा करने जाये तो कहाँ की कहाँ जाये।

ऐसा कहते हैं कि भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण शुद्ध जिसका लक्ष्य और ध्येय करना है, ऐसा जीव। **शुद्धोपयोगी मुनि...** वजन तो इसके ऊपर है न। शुद्धोपयोगी है। कौन नहीं कहता है? श्रुतकेवली कहा न! पण्डितजी ने बताया न! पण्डितजी कहे, यह ठीक प्रश्न करते हैं। सप्तम गुण (स्थान) वह यहाँ अब वह आयेगा। निश्चयरत्नत्रय के आराधक। इसमें ही आयेगा, हों! यह निश्चयरत्नत्रय मुनि है, उन्हें आहार देना। तो आहार देना और निश्चयरत्नत्रय है, उन्हें।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, आयेगा अन्दर। यह बात पहले बहुत हो गयी। पूरा पाठ लिखा है सब इसका, हों! फिर फूलचन्दजी को कुछ देने का समय नहीं रहा भोपाल। उसमें से सब निश्चयरत्नत्रय का है न एक पूरा लिखा है। निश्चयरत्नत्रय के आराधक जीव को आहार देना। तब इसका अर्थ क्या हुआ कि वह स्वयं छठवें गुणस्थान में आहार लेने का विकल्प उठा है, तथापि उसे निश्चयरत्नत्रय का आराधक कहा है। उसे

श्रावक आहार देता है। तब वह छठवें गुणस्थान में निश्चयरत्नत्रय वहाँ हो गया। ऐसा आगे गाथा में आयेगा। समझ में आया? देखो न, १३१ आदि बहुत गाथायें निकाली है पहले तो। १३१। देखो, यह इसमें लो। यह १३२, १३२। १३२ गाथा है न, १३२ गाथा।

निश्चय-व्यवहाररत्नत्रय के आराधक जो यति उनकी सब तरह गृहस्थों को सेवा करनी चाहिए,... नीचे है। १३२। पूरा उतारा है। इसमें है। पृष्ठ उतारा है एक जगह। दूसरी बुक में है। एक पृष्ठ उतारा है पूरा। पूरे परमात्मप्रकाश के यह बोल उतारे हैं। है भाई? उसका उत्तर है न नीचे। **यहाँ कोई प्रश्न करे कि गृहस्थी धन की तृष्णा न करे तो क्या करे? उसका उत्तर—निश्चय-व्यवहाररत्नत्रय के आराधक...** देखो, संस्कृत में भी है। '**भेदाभेदरत्नत्रयाराधकानां सर्वतात्पर्येणाहारादिचतुर्विधं दानं दातव्यम्।**' संस्कृत टीका है १३२। उसका क्या अर्थ हुआ '**भेदाभेदरत्नत्रयाराधकानां**' दोनों एक समय है, भेद-अभेद एक साथ हैं। निश्चयरत्नत्रय और व्यवहाररत्नत्रय। ऐसे जीव को—ऐसे यति को '**सर्वतात्पर्येणाहारादिचतुर्विधं दानं**' देना। तब वह दान देते समय वह विकल्प है उसे। दान देनेवाला ऐसा है। वहाँ आराधक कहा था। निश्चय और व्यवहार दोनों साथ में एक समय में वर्तते हैं। छठवें गुणस्थान में ऐसा कहा है। आहार लेने की वृत्ति छठवें में है, सातवें में हो कोई? देखो, यह स्पष्टीकरण तो किया है। ऐसे तो बहुत बोल हैं, निकाले हैं। समझे न?

लोगों को शान्ति से, धीरे से जैसा तत्त्व है, उसे समझना चाहिए। अपना पक्ष करनेवाले को सिद्ध करना है, ऐसा नहीं होना चाहिए। सत्य है, सत्य को सत्य रखना। यहाँ तो निश्चयरत्नत्रय और व्यवहाररत्नत्रय एक साथ कहे। पहला व्यवहार और बाद में निश्चय, ऐसा कहा नहीं। और वह निश्चयरत्नत्रय छठवें में नहीं होता, ऐसा कहा नहीं। छठवें में आहार के समय भी निश्चय और व्यवहार के आराधक कहे हैं। और विकल्प उठता है शास्त्र का, वह व्यवहार है। निर्विकल्प परिणति है, उतना निश्चय है। उसे गृहस्थों को आहार (देना चाहिए), सेवा करना अर्थात् आहारदान का भाव करना। ऐसा भाते हैं न। ऐसे बोल तो बहुत हैं। कहो, समझ में आया इसमें?

भावार्थ :- शुद्धोपयोगी मुनि वीतराग स्वसंवेदनज्ञान में लीन हुए,... देखो,

मोतीरामजी! अभी तुमने प्रश्न किया था न? स्वसंवेदनज्ञान। अपना स्वरूप वस्तु जो सामान्य शुद्ध ज्ञानानन्द, उसे राग और मन का सम्बन्ध छोड़कर स्वसंवेदन—स्व अर्थात् अपना, सं अर्थात् अपना प्रत्यक्ष वेदन, अपने से प्रत्यक्ष वेदन, इसका नाम स्वसंवेदनज्ञान कहा जाता है। देखो, **लीन हुए परद्रव्यों के साथ सम्बन्ध छोड़ देते हैं।** द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म का लक्ष्य उसे नहीं होता, ऐसा कहना है। लक्ष्य नहीं होता, इसलिए छोड़ दिया—ऐसा कहा जाता है। **अन्दर के विकार रागादि भावकर्म...** अन्दर का विकार पुण्य-पाप का। देखो! मुनि को पंच महाव्रत का विकल्प भी भावकर्म विकार है। **और बाहर के शरीरादि ये सब परद्रव्य कहे जाते हैं।** आहाहा! यह पंच महाव्रत का विकल्प उठे न, वह परद्रव्य है। स्वद्रव्य में से प्रगट हुआ नहीं, निमित्त के लक्ष्य से (हुआ) है, इसलिए परद्रव्य है। द्रव्य में हो वह हट नहीं जाये, छूट नहीं जाये। **बाहर के शरीरादि...** वाणी और अन्दर के राग-द्वेष विकल्प पंच महाव्रत के, अरे! गुणी-गुण का भेद का विकल्प, वह भी परद्रव्य है। भगवान अभेद स्वभाव की दृष्टि में उसके भेद का संसर्ग उसे छूट जाता है, उसे 'छोड़ देता है' ऐसा कहा जाता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... इस ओर। यह बाद में, यह तो उपदेश में तो क्या करे? उपदेश में तो कहे, यह छोड़ो। परन्तु छोड़े क्या? यहाँ (अन्तर में) जहाँ दृष्टि और लक्ष्य है, (वहाँ) परलक्ष्य रहता नहीं। यह बात है। उपदेश की शैली तो ऐसी ही करे न कि तुम्हारे छोड़ना। छोड़े क्या? वह ऐसे जहाँ मुड़ा, छूट गये। कहाँ है विकल्प और कहाँ है शरीर, इसकी कुछ खबर नहीं।

वे मुनिराज एक आत्मभाव के सिवाय... देखो! **सब परद्रव्य का संसर्ग (सम्बन्ध) छोड़ देते हैं।** इतनी तो बात नहीं परन्तु **रागी, द्वेषी, मिथ्यात्वी, असंयमी जीवों का सम्बन्ध छोड़ देते हैं।** पहले से जिसकी मिथ्याश्रद्धा है और वास्तविक तत्त्व से विरुद्ध मान्यता घुसा डाले, उसका संसर्ग करना नहीं। पहले छठवें गुणस्थान में जब विकल्प है... संसर्ग नहीं करना। रागी-द्वेषी राग-द्वेष जिसको साबित करना है कर्तृत्व में और मिथ्याश्रद्धा जिसकी दृष्टि में है, ऐसे असंयमी जीव तो असंयमी ही है। भले मुनि हो तो

भी वे सब (असंयमी ही है)। ऐसे **जीवों का सम्बन्ध छोड़ देते हैं। इनके संसर्ग से परमपद जो वीतरागनित्यानन्द...** प्रभु। परमपद अपना रागरहित नित्य आनन्दप्रभु अमूर्त अपना निज स्वभाव **परमसमरसीभावरूप...** शान्त... शान्तरसी स्वरूप **जो परमात्मतत्त्व...** यह त्रिकाली की बात की। **ध्यावने योग्य है,...** वह पर्याय हुई। **परमसमरसीभावरूप जो परमात्मतत्त्व...** यह द्रव्य लिया। यह द्रव्य **ध्यावने योग्य है,...** ऐसा द्रव्य ध्यान करनेयोग्य है। ध्यान करनेयोग्य वह पर्याय हुई। ध्येय हो गया द्रव्य। समझ में आया?

उससे चलायमान हो जाते हैं,... परद्रव्य का संसर्ग करने से। **अर्थात् तीनगुप्तिरूप परमसमाधि से रहित हो जाते हैं।** पश्चात् दृष्टि भी खिसक जायेगी। मिथ्यादृष्टि का संसर्ग हो (तो)। मूलाचार में तो कुन्दकुन्दाचार्य ने ऐसा कह दिया कि यदि गण में वास्तविक तत्त्व से विपरीत कथन पद्धति चलती हो, विपरीत मान्यता चलती हो तो उसके गण में न जाना। न जाना, उसकी अपेक्षा विवाह कर लेना। क्योंकि विवाह करने से तो एक चारित्रदोष का राग होगा। यह करने को नहीं कहते, हों! मुनि कुछ करने को कहे? विवाह छोड़ दिया नौ कोटि से, वे कहे? परन्तु तीव्र पाप का बन्ध छुड़ाने को, उसकी अपेक्षा पाप थोड़ा है और वह मिथ्यात्व की विपरीतता घुसा डालेगा। पूर्ण भगवान एक-एक परमात्मा पूर्ण सर्वज्ञ स्वभावी एक-एक समय में त्रिकाल जाननेवाला देव, ऐसा गुरु, उसके प्रमाण में साधकजीव की पर्याय उसकी होती है, और वह कहनेवाला ही शास्त्र है, कोई उससे विरुद्ध विपरीतता घुसा डालेगा तो तुझे शल्य हो जायेगी। दर्शनभ्रष्ट हो जायेगा। इसलिए उसका संग नहीं करना। बाहर का संग नहीं और उसका भी संग करना नहीं। विशेष आयेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

ज्येष्ठ कृष्ण २, बुधवार, दिनांक - १६-०६-१९६५
गाथा - १०८ से ११०, प्रवचन - १४९

१०८वीं गाथा, परमात्मप्रकाश। भावार्थ है, थोड़ा चला है। फिर से लेते हैं। जो कोई **शुद्धोपयोगी मुनि...** अर्थात् आत्मा के परम आनन्दस्वभाव के आचरणरूप व्यापारी जीव। आत्मा परम आनन्दस्वरूप, उसका शुद्ध उपयोग अर्थात् स्वरूप के शुद्ध आचरणरूप व्यापारवाला जीव। उसने **वीतराग स्वसंवेदनज्ञान में लीन हुए...** अपना शुद्धस्वरूप पवित्र आनन्द में जो लीनता है। शुद्ध उपयोग अर्थात् स्वरूप के आचरण की उग्रता, स्वरूप के आचरण की है। शुभाशुभपरिणाम, वे अशुद्ध आचरण हैं और यह ज्ञानानन्दस्वरूप शुद्ध चैतन्य पदार्थ के सन्मुख का अन्तर व्यापार, उसे शुद्ध उपयोगरूपी आचरण कहा है। उत्कृष्ट बात ली है। ऐसे **वीतराग स्वसंवेदनज्ञान में लीन हुए परद्रव्यों के साथ सम्बन्ध छोड़ देते हैं।** उपदेश में तो ऐसा ही आवे न? वह अन्तर में लीन होने से परद्रव्य का संसर्ग नहीं रहता। उपदेश की पद्धति में तो ऐसा ही आवे।

अन्दर के विकार रागादि भावकर्म... पुण्य-पाप का विकल्प है, वह परद्रव्य है, अभ्यन्तर परद्रव्य। समझ में आया? भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन अनाकुल आनन्दकन्द, इसके अतिरिक्त का जो शुभ-अशुभ विकल्प राग, वह अभ्यन्तर परद्रव्य है। उस परद्रव्य का संसर्ग अर्थात् कि उसका लक्ष्य छोड़कर स्वरूप के आचरण के लक्ष्य में आना, ऐसा आचरण करना, वह मुक्ति का कारण है। समझ में आया? **बाहर के शरीरादि ये सब परद्रव्य कहे जाते हैं।** इन्होंने इस प्रकार से लिया है। शरीर आदि बाहर। समझ में आया? **वे मुनिराज एक आत्मभाव के सिवाय...** देखो, धर्मी चिदानन्द निजस्वरूप का पर्वत, महान आनन्द शान्ति का कन्द आत्मा, उसमें लीन होकर **परद्रव्य के संसर्ग (सम्बन्ध) छोड़ देते हैं।** यह निश्चय कहा। **तथा रागी, द्वेषी, मिथ्यात्वी, असंयमी जीवों का सम्बन्ध छोड़ देते हैं।** यह व्यवहार कहा। समझ में आया? अपने में वह विकल्प जो उठता है, शुभ-अशुभराग, उसके बाद कर्म और शरीर, उनके साथ वापस

इकट्ठा ले लिया। ऐसे नजदीक है सही न एकक्षेत्रावगाह। उसे स्वभाव के शुद्धस्वरूप के अन्तर के आचरण के आश्रय से वह पर का तीन का संसर्ग छूट जाता है, उसे उपदेश में ऐसा कहते हैं कि उसे छोड़ दे। और जो कोई रागी, द्वेषी, मिथ्यात्वी जीव हो, वह परद्रव्य है। उससे बाह्य परद्रव्य है, उसका भी सम्बन्ध छोड़ देता है। एक निजस्वभाव भगवान आत्मा पूर्ण शुद्धस्वरूप का संसर्ग अर्थात् उसकी एकाग्रता में रहना, वही मोक्ष का उपाय है। समझ में आया?

इनके संसर्ग से परमपद जो वीतराग नित्यानन्द... प्रभु **अमूर्त...** वीतराग नित्यानन्द। अमूर्त तो धर्मास्तिकाय आदि है, परन्तु वह तो **वीतराग नित्यानन्द अमूर्तस्वभाव परमसमरसीभावरूप जो परमात्मतत्त्व...** परमसमरसी शान्तरसरूप भावरूप अपना परमात्मतत्त्व निज, वह पर के संसर्ग से यह **ध्यावने योग्य है, उससे चलायमान हो जाते हैं,...** किसमें आया यह तुम्हारे? नयी पुस्तक है? पुरानी। कहो, समझ में आया? वह छोटी होगी। ठीक पतली। पहले पतली। यह तो दूसरी है, तीसरी। कहा पृष्ठ क्यों फिराया, इसलिए ऐसा लगा। कहो, समझ में आया इसमें? भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप परम आनन्द की मूर्ति प्रभु आत्मा, वीतराग अकषाय विज्ञानघनस्वरूप आत्मा, उसकी एकाग्रतारूपी आचरण करने के लिये दूसरे का संसर्ग छोड़ दे। दूसरे के संसर्ग से स्वरूप के ध्यान के ध्येय में से हट जाया जाता है। इससे ध्यान से चलायमान हो जाये, इसलिए उसका संसर्ग छोड़ देना। समझ में आया? **तीन गुप्तिरूप परमसमाधि से रहित हो जाते हैं।** भगवान आत्मा मन, वचन, और काया के लक्ष्यवाले विकल्प जो पर के संसर्ग से करे तो उससे रहित शुद्ध परमब्रह्मस्वरूप की स्थिरता में से चलायमान हो जाता है। इसलिए उसे छोड़ दो।

यहाँ पर परमध्यान के घातक जो मिथ्यात्व रागादि अशुद्ध परिणाम... एक बात। देखो, भगवान आत्मा का परमध्यान का घातक मिथ्या भ्रमणा और पुण्य-पाप के भाव, वे अशुद्ध परिणाम हैं। एक बात। **तथा रागी-द्वेषी पुरुषों का संसर्ग...** यह व्यवहार है। वह **सर्वथा त्याग करना चाहिए,...** संयोग के ऊपर से लक्ष्य छोड़ना चाहिए और संयोगी भाव के ऊपर से भी लक्ष्य छोड़ना चाहिए और स्वभावभाव में लक्ष्य और

स्थिरता करना चाहिए। ऐसा मुनियों के लिये उनका वास्तविक आचरण यह है। शुद्ध उपयोग आचरण ध्यान और स्वाध्याय दो ही उन्हें मुख्य हैं। अन्दर में रह न सके, तब-तब स्वाध्याय करे विकल्प आदि। बाकी अन्दर स्वरूप में स्थिर हो, यह उनकी मूल स्थिति और ध्यान, वह उनका आचरण है। यह १०८ (गाथा) हुई।

★ ★ ★

गाथा - १०९

आगे उन्हीं परद्रव्यों के सम्बन्ध को फिर छुड़ाने का कथन करते हैं— यहाँ तो स्वद्रव्य स्वभाव की दृष्टि करके, पश्चात् भी स्वद्रव्य के ही अवलम्बन को करना। परद्रव्य के अवलम्बन में विकल्प उठते हैं, इसलिए उसे छोड़ना, यह बात यहाँ (करते हैं)। अन्तिम अधिकार है। **परद्रव्यों के सम्बन्ध को फिर छुड़ाने का कथन करते हैं—** १०९ (गाथा)।

२३६) जो सम-भावहँ बाहिरउ तिं सहुं मं करि संगु।
चिंता-सायरि पडहि पर अण्णु वि डज्झइ अंगु॥१०९॥

क्या कहते हैं? **जो कोई समभाव अर्थात् निजभाव से...** समभाव कहो या निजभाव स्वभाव, उससे **बाह्य पदार्थ हैं, उनके साथ संग मत करो। क्योंकि उनके साथ संग करने से चिन्तारूपी समुद्र में पड़ेगा... 'चिंतासागरे'** विकल्प की जाल। ऐसा... ऐसा... ऐसा... ऐसा... कल्पना की जाल एक के बाद एक उठे। परमात्मस्वरूप तो उस कल्पना की जालरहित है। अपना निजस्वरूप समभाव वीतरागी समभावरूपी स्वरूप है, वह त्रिकाल एकरूप है। उसका ध्यान करना अथवा उसे ध्येय करके लीन होना। इसके अतिरिक्त परद्रव्य की चिन्ता, वह मन में कल्पना के समुद्र में पड़ता है। स्वभाव के समुद्र में एकाकार पड़ना चाहिए, स्वभाव समुद्र भगवान आत्मा में डुबकी लगानी चाहिए, ऐसा न लगाकर चिन्ता के, कल्पना के समुद्र में पड़ने से शान्ति का भंग होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : मुनियों को शिक्षा करते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सबको शिक्षा है। मुनि को लक्ष्यकर बात है। मुख्यरूप से तो बड़े पुत्र को बात करे तो सब छोटे भी, पूरा परिवार समझ जाये कि ठीक अपने को यह शिक्षा करते हैं। पिता बड़े को लक्ष्यकर कहे, देख भाई! अपने खानदान की पद्धति यह है। अपने दूसरा नहीं होता, हों! वह बड़े को कहे, तब दूसरे को समझ लेना उसे। देख भाई! अपने घर में दूसरा नहीं होता, हों! कहते हैं या नहीं? कोई लड़का सगाई-सम्बन्ध किया हो और कन्या-बन्या बराबर ठीक न लगी हो और फिर तोड़ना चाहे (तो कहे), अपने घर में नहीं होता, भाई! कहते हैं या नहीं? समझते हैं न भाषा? पण्डितजी! भाषा समझते हैं न? कन्या का सम्बन्ध किया हो और लड़का पसन्द न करे। पहले देख आया हो, देख आया हो सब, परन्तु बाद में कहे, नहीं। तो उसका पिता कहे, नहीं, हमारे घर में यह रास नहीं आता। उसके साथ विवाह करना पड़ेगा। हमारे घर में दूसरा होता नहीं। इसलिए दूसरे लड़के समझे कि देख दूसरा नहीं होता तुझसे। अभी तो कहाँ ठिकाना है? यह अभी की बात करता हूँ मैं तो। अभी की हुई बात करता हूँ। थोड़े वर्ष पहले हुई घर की बात है यह तो। समझ में आया? हमारे घर में नहीं होता, भाई! वह तो अनन्त भव किये हैं। उसमें का एक भव इस प्रकार से चला ले। रोडवी ले, समझे न? चला ले, चला ले। दूसरों को भी दे, लड़कों को ख्याल देते हैं कि अपने दूसरा नहीं होता। उसी प्रकार यहाँ बड़ा पुत्र मुनि है। जगतपिता, धर्मपिता परमात्मा त्रिलोकनाथ की वाणी में मुनि वीतरागी सन्तों को मुख्य करके बात आती है, परन्तु गर्भित में सबको समझ लेना।

ओहो! भाई! कहते हैं कि निजभाव से बाह्य पदार्थ का संग न कर, भाई! असंग प्रभु चैतन्य रागरहित चीज़ तेरे पास महान परमात्मा पड़ा है न, वही तू है। उसका संग, उसकी दृष्टि, उसका ज्ञान और उसकी लीनता, भगवान! यह तुझे शान्ति का देनेवाला है। बाकी परद्रव्य के संसर्ग में, चिन्तासागर में, विकल्प के जाल में खो जायेगा, खो जायेगा। खीवाई जाईश, समझते हो न? खो जायेगा, खो जायेगा। ऐसा और ऐसा, ऐसा यह ऐसा। अब यह तो भाई! दुनिया में तो सब चलता है ऐसा का ऐसा। वह तुझसे रोकने से रुके, ऐसा नहीं। यह दुनिया के संसर्ग के कारण से जो विकल्पजाल उठा, तो वह चिन्ता महासागर में पड़ेगा। आहाहा! देखो न, वहाँ कहा है न? पतितं कहा है न

भाई? पुण्य-पाप के अधिकार में। निश्चयरत्नत्रय में से व्यवहाररत्नत्रय से तो पतित हो जाता है। ऐसा जयचन्द्र (जयसेन) आचार्य। जयसेन आचार्य महाराज वह जयसेनाचार्य। वे पुण्य-पाप के अधिकार में अन्त में (कहते हैं), भाई! व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प है, वह निश्चयरत्नत्रय से पतित होता है उसमें। आहाहा!

मुमुक्षु : पतन होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पतन होता है। स्वरूप में अन्दर में शुद्ध भगवान पूर्णानन्द की दृष्टि, ज्ञान और लीनता, वह निश्चयरत्नत्रय है। वह आराधनेयोग्य है। उसमें से यह व्यवहाररत्नत्रय (का विकल्प उत्पन्न होने पर) पतन हो जाता है, च्युत हो जाता है। इसलिए एक यह दूषण है। दूसरा, वह स्वयं व्यवहार है। वास्तव में तो वह पाप है। निश्चय से वह पाप है, ऐसा कहा है समयसार पुण्य-पाप के अधिकार में अन्त में।

यहाँ यही कहते हैं कि भगवान आत्मा... परन्तु वह पदार्थ जिसे दृष्टि में लेना चाहिए, पहले लिया नहीं, उसे उस दृष्टिसहित स्थिर होना, उसकी यहाँ व्याख्या करते हैं। महान पदार्थ भगवान ज्ञान और दर्शन, आनन्दस्वरूप नित्यानन्द प्रभु ऐसा आत्मा। आनन्द की प्रधानता से कथन है। आनन्द प्रिय है न, इसलिए। अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु अकेला निर्विकल्पस्वरूप, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और लीनता को छोड़कर जो पर की चिन्ता में गया, चिन्ता सागर में पार नहीं आवे। समझ में आया? ओहो! 'व्यवहारे लख दोह्यला, कांई न आवे हाथ रे।' आनन्दघनजी कह गये हैं, हों श्वेताम्बर में।

व्यवहारे लख दोह्यला, कांई न आवे हाथ रे,
परमार्थ पंथ सेवता रहे न दुविधा साथ रे।

भगवान आत्मा अपना पूर्ण शुद्धस्वभाव वीतरागी घनस्वरूप प्रभु में एकाग्र होना, वह शुद्धनय और वह शुद्धनय का विषय है। बाकी व्यवहार के पक्ष में पड़ने जाये तो पार नहीं आवे। यह कल्पना का जाल जानपने का, यह श्रद्धा की, यह आचरण की कल्पना की, बहुत कहते हैं कि कल्पना है।

व्यवहारे लख जे रहे तेना भेद अनेक रे,
परमार्थ पंथ सेवता रहे न तंत रे

दूसरा तन्त नहीं रहता, ऐसा।

यहाँ कहते हैं **केवल और भी शरीर दाह को प्राप्त होगा,...** देखो, क्या कहते हैं? कल्पना में जाकर फिर शरीर में बहुत कल्पना उठी तो शरीर में भी नींद नहीं आवे तुझे। निद्रा नहीं आवे, शरीर तपेगा। वह तो उसके कारण से। परन्तु यहाँ चिन्ता... चिन्ता... 'चिन्ता से चतुराई घटे, चिन्ता...' आता है न? 'चिन्ता बड़ी अभागिनी' ऐसा आता है। छोटी उम्र में सीखते थे, कुछ बोलते थे। उसमें आता था। 'चिन्ता से चतुराई घटे, घटे रूप गुण ज्ञान, चिन्ता बड़ी अभागिनी, चिन्ता दाह समान।' अग्नि समान। ऐसा (कवि) दलपतराम में आता था। छोटी उम्र में लड़के सीखते थे। भगवान चिन्तारहित प्रभु निश्चल निभ्रत भगवान, ऐसे स्वरूप में स्थिर होना, वही प्रयोजन और करनेयोग्य है। न कर सके तो निश्चय तो रखना कि यह अन्तर में ध्यान करना, वही कर्तव्य है। नियमसार में आता है न भाई! श्रद्धा पक्की रखना कि अन्तर में स्वरूप की दृष्टि, स्वरूप का ज्ञान और स्थिरता, वही करनेयोग्य है। दूसरा विकल्प आवे, भले स्थिर न हो सके, श्रद्धा में तो रखना कि स्वरूप के आश्रय से ही ज्ञान और मुक्ति कारण है। बाकी मुक्ति का कारण है ही नहीं। अन्तर आश्रय में स्थिर होना, वही मुक्ति का कारण है। यह तो श्रद्धा पक्की रखना। व्यवहार के विकल्प भले उठे। समझ में आया? परन्तु उसमें से हटना और स्वरूप में स्थिर होना, यही तेरा वास्तविक कर्तव्य है।

यदि चिन्ता में पड़ा तो शरीर में दाह लगेगी। नींद आवे नहीं, चिन्ता हो जाये। अरे! इसे ऐसा जवाब देना नहीं आया, यह मेरा रास आ गया, इसे शास्त्र का आधार मिला, मुझे मेरा नहीं मिला। यह कल्पना। कहते थे। वह तेरापंथी है न? लीलाधरजी। यह चर्चा चली थी। एक महीने। तेरापंथी और २२ टोला को—जवाहरलालजी को एक महीने चर्चा। कौनसा बोल? महावीर भगवान को अन्त में स्वप्न आया है। ऐसा उन लोगों में पाठ है श्वेताम्बर के। केवलज्ञान से पहले दस स्वप्न आये हैं। उन दस स्वप्न को उदयभाव कहना या क्षयोपशमभाव कहना? गुण कहना या दोष कहना? उसकी एक महीने तक चर्चा। बाद में कहते थे वे लीलाधरजी। हमारे साथ बहुत रहते न। यह प्रतिदिन चर्चा।

वे तेरापंथी कहे कि स्वप्न है, वह दोष है; इसलिए दोष का फल गुण नहीं हो सकता। यह कहे कि स्वप्न आया है केवलज्ञान से पहले, उस स्वप्न के बाद केवलज्ञान हुआ है, इसलिए उस स्वप्न का फल केवलज्ञान है। वह गुण रूप का काम है। यह चर्चा एक महीने, हों! शास्त्र के आधार से। ३२ सूत्र वे लोग मानते हैं न स्थानकवासी, उनमें से। सब खबर है। वे लोग चर्चा। ऐसा कहते लीलाघरजी, जब हमको कुछ आधार मिले तो हमको ऐसे उत्साह आ जाये और रोटियाँ भावे और जहाँ हमको आधार न मिले और उसका आधार कोई आवे तो हमको चिन्ता-चिन्ता, भूख उड़ जाये और आहार लेने, भिक्षा को जाने में पैर टूट जाये। अन्त में तेरापंथी को रखा वेदान्ती पक्ष में। उन दो के मध्य में रखे न मध्य में? लो, पण्डितजी! इन पण्डितजी को मध्य में रखा, परन्तु यह तो दूसरे प्रकार से मध्य में रखे हैं। इन्हें स्पष्टीकरण नहीं करना, उसको स्पष्टीकरण करने में मध्य में रखा तेरापंथी ने वेदान्ती को। और वेदान्ती ब्राह्मण रखा था। वह तो दोष ही माने। स्वप्न जो है, वह दोष है, ऐसा कहे। ऐसा अन्तिम योगफल कर दिया। दोष है, दोष का फल गुण नहीं हो सकता। और अन्त में दस स्वप्न आये भगवान को। उसमें श्वेताम्बर में आते हैं। पहले सूर्य देखा, फिर चन्द्र देखा, पश्चात् सिंहासन, ऐसे घड़ीक-घड़ीक में स्वप्न आते हैं। उनके फलरूप से केवलज्ञान नहीं हो सकता। वह कहे कि उनके बाद आया, इसलिए केवलज्ञान। इसमें से फैसला वेदान्तवाले ने दिया कि वह दोष है, इसलिए उससे गुण नहीं होता। बहुत समय पहले की बात है। वे लीलाधरजी कहते थे। हमारे साथ रहते थे न वे। ऐसी चिन्ता। अरे भाई! अब छोड़ न।

जितना विकल्प उठे, वह सब दोष का कारण है और स्वरूप में स्थिर होना, वह गुण का कारण है, एक ही बात है। लाख बात की बात आता है न? निश्चय उर लाओ, यह छहढाला में आता है। 'लाख बात की बात निश्चय उर लाओ' बात एक ले न अब। (बाकी) छोड़ न। आता है या नहीं यह? छहढाला में आता है। बहुत सरस! छहढाला में गागर में सागर भर दिया है।

भावार्थ :- जो कोई जीवित,... आयुष्य सम्बन्धी चिन्ता। समझ में आया? **मरण, लाभ अलाभादि में तुल्यभाव उसके सन्मुख....** समभाव रखते हैं यहाँ तो। फिर

विरुद्ध। जीवित कहो या मृत्यु कहो। ज्ञाता, समभाव। लाभ हो या अलाभ हो, शिष्यों का या इज्जत का, पुस्तक का या बाह्य का, अभिनन्दन का या अनअभिनन्दन का। यह बाहर की बातें। समभाव रखने योग्य है। बाहर की चीज़ के साथ आत्मा को क्या सम्बन्ध है? **तुल्यभाव उसके सन्मुख जो निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभाव परमात्मद्रव्य...** देखो, भगवान निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभाव परमात्मद्रव्य। देखो, आया निश्चय त्रिकाल। निर्मल ज्ञान दर्शनस्वभाव, ऐसा परमात्मा अपना द्रव्य। वह अलाभ आदि में तुल्यभाव, उसके सन्मुख समभाव करता हुआ। **उसका सम्यक् श्रद्धान ज्ञान आचरणरूप निजभाव उसरूप समभाव से जो जुदे पदार्थ हैं,...** देखो, भगवान आत्मा, पहले समभाव सन्मुख जो है, उसे **निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभाव परमात्मद्रव्य...** आत्मा **उसका सम्यक् श्रद्धान...** निश्चय, सम्यक् ज्ञान निश्चय, सम्यक् शुद्ध उपयोग आचरण निश्चय, वह निजभाव। उसका नाम निजभाव। **उसरूप समभाव से जो जुदे पदार्थ...** ऐसे समभाव से जो विकल्प आदि परपदार्थ। **उनका संग छोड़ दे।** यहाँ तो भगवान परमस्वभाव शान्त के सन्मुख हुआ, परन्तु समभाव जो कि समभाव स्वरूप के सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप समभाव है। ऐसी व्याख्या की। ऐसी व्याख्या की, भाई!

भगवान आत्मा पूर्ण वीतराग विज्ञान सत्ताधाम के सन्मुख का समभाव, जीव-अजीव सबमें समभाव, वह समभाव अर्थात्? वस्तु जो निर्मल ज्ञान, दर्शन परमात्मद्रव्य के जो सम्यक् श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र, ऐसा जो समभाव। आहाहा! समझ में आया? ऐसा जो निजभाव। देखा! वह विकल्प है, वह निजभाव नहीं। व्यवहाररत्नत्रय वह निजभाव नहीं। आहाहा! वह परद्रव्य है। यहाँ तो भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण निर्मल ज्ञान परमात्मद्रव्य अपना स्वभाव, उसके सन्मुख का समभाव अर्थात् कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप भाव। ऐसा।

उनसे **जो जुदे...** उनसे भिन्न वह विकल्प कोई भी लो। व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प हो या महाव्रत का विकल्प हो या बाहर का किसी के शास्त्र अर्थों का विकल्प हो, **उनका संग छोड़ दे।** आहाहा! असंग प्रभु, जिसे विकल्प का भी, राग का भी संग नहीं, ऐसा वह तत्त्व है। समझ में आया? भगवान चैतन्य पदार्थ महाप्रभु, चैतन्य

महाप्रभु ऐसा जो पदार्थ सम निर्मल ज्ञान-दर्शन से भरपूर, उसके सन्मुख का वीतरागी भाव कहो या समभाव कहो या निश्चयरत्नत्रय कहो। उससे विरुद्ध और विषमभाव कहो, स्वभाव से विरुद्ध भाव कहो या विभावभाव कहो या परद्रव्य कहो। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परद्रव्य ही है। आचार्य ने तो नियमसार में क्षायिकभाव को परद्रव्य कहा है। क्योंकि जिसमें से नयी पर्याय न निकले। जैसे परद्रव्य में से अपनी निर्मल पर्याय शान्ति की, वीतरागी निकलती नहीं, उसी प्रकार क्षायिक पर्याय समकित हुआ, उस समकित में से चारित्र की निर्मल पर्याय प्रगट नहीं होती। यहाँ तो स्वभाव के आश्रय से होता है। इसलिए वहाँ तो चार भाव को परद्रव्य कह दिया है। आहाहा! ५० गाथा, नियमसार। मोक्षमार्ग है न? नियमसार अर्थात् मोक्षमार्ग का कथन है। निश्चय मोक्षमार्ग, वही मोक्षमार्ग है। उससे विरुद्ध जितना भाव... क्षायिक को परद्रव्य कहा। क्योंकि निश्चय नियमसार के मोक्षमार्ग की पर्याय एक क्षायिक पर्याय के अवलम्बन से प्रगट नहीं होती अथवा क्षायिक पर्याय में से नहीं आती। दो बातें। वह त्रिकाल द्रव्य के अवलम्बन से प्रगट होती है और त्रिकाल द्रव्य में से निर्मल पर्याय आती है। कहो, समझ में आया?

देखो, यहाँ तो यह कहा। '**जीवितमरणलाभालाभादि समभावानुकूलविशुद्ध-ज्ञानदर्शनस्वभावज्ञानपरमात्मद्रव्यसम्यक्श्रद्धानज्ञाननुष्ठानरुपसमभावबाह्यः।**' देखो, समभाव की व्याख्या यह। भगवान आत्मा विशुद्ध त्रिकाल ज्ञान, दर्शन, निर्मल स्वभावमय परमात्मद्रव्य अपना। उसके सन्मुख का निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र ऐसे भाव को ही यहाँ समभाव कहा गया है अथवा वीतरागी पर्याय कहा गया है। उससे जितने पर, उन सबको विषमभाव, परद्रव्य, विभावभाव कहा जाता है। समझ में आया?

क्योंकि उनके संग से चिन्तारूपी समुद्र में गिर पड़ेगा। फ्रिक की फाकी करे उसका नाम फकीर। भगवान आत्मा पूर्ण... यहाँ तो दो ही गुण लिये हैं न? विशुद्ध निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभाव, बस। ज्ञान-दर्शनस्वभाव ऐसा भगवान आत्मा, उसकी लीनतारूपी समभाव अथवा निश्चयमोक्षमार्गरूपी निर्मलभाव, इसके अतिरिक्त सब चिन्ता आदि का

भाव, वह छोड़नेयोग्य है। समझ में आया? वह चिन्तारूपी समुद्र में पड़नेयोग्य है। भगवान ज्ञान चैतन्य रत्नाकर में पड़ना या कहते हैं कल्पना के जाल में पड़ना? यह दो भाग है दो ओर।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ पड़ना या यहाँ पड़ना, ऐसा कहते हैं।

भगवान आत्मा शुद्ध चिद्घन अनाकुल आनन्दधाम जहाँ ज्ञान की नजर में अन्दर तैरे, तैरे, उसमें स्थिर होना है। वह वस्तु समभाव है। पंच महाव्रत के परिणाम, अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प, भगवान आदि की भक्ति का भाव, वह सब समभाव नहीं। आहाहा! होता है अस्थिरता के कारण, परन्तु वह समभाव नहीं, वीतरागभाव नहीं। यहाँ वीतरागभाव धर्म सिद्ध करना है। आहाहा! क्योंकि वस्तु वीतराग विज्ञानघन है— भगवान आत्मा ही वीतराग विज्ञानघन है। उसके सन्मुख की वीतरागी पर्याय, वही समभाव है, वही मुक्ति का उपाय है, कारण है, हेतु है। आहाहा! उससे बाहर निकला तो कल्पना की जाल के समुद्र में गिरना पड़ेगा, प्रभु! उसमें कहीं हित है नहीं। अब यह दुनिया के हित के लिये हमारे विकल्प उठाना पड़ता है, कहते हैं। अरे, भाई! उसका हित कहीं तेरे विकल्प से हो ऐसा है? वह तो उसके हित की योग्यता द्वारा उसका हित होता है। मैं दूसरे को मोक्ष करा दूँ, ऐसा अध्यवसाय करे, इसलिए मोक्ष होता है? यह तो बन्ध अधिकार में आचार्य ने कहा। बन्ध-मोक्ष का अध्यवसाय तेरा, उसके वीतरागभाव से मोक्ष प्राप्त करता है और सरागभाव से संसार, तेरा अध्यवसाय क्या काम करे वहाँ?

मुमुक्षु : .... कहीं भूगोल में दिखता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : भूगोल में यहाँ दिखे न अन्दर! अपनी जमीन—भू उपयोग। 'उपयोग भू' नहीं कहा? बन्ध अधिकार में कहा है। शास्त्र में तो बहुत शब्द लिये हैं बहुत। ओहोहो!

मुमुक्षु : यह वहाँ आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह 'भू' वहाँ आया। यहाँ 'भू' आया। उपयोग भू। उसमें जो

राग, द्वेष और एकत्व करता है, वह मिथ्यादृष्टि बन्ध को पाता है। उपयोग भूमिका में अपने स्वरूप को एकाग्र करता है, वह मुक्ति को पाता है। वहाँ राग-द्वेष करे, इसका प्रश्न नहीं लिया। उपयोग भूमिका में राग-द्वेष को एकत्व करता है, वह बन्ध को पाता है, इतनी ही बात है वहाँ। वह राग-द्वेष अस्थिरता का प्रश्न नहीं। उपयोग भूमिका में, ज्ञान की भूमिका में पुण्य-पाप को एकत्व करता है, एकत्व मानता है, वह बन्ध का कारण है, बस एक ही बात वहाँ ली है। बन्ध अधिकार की शुरुआत की गाथा में। समझ में आया?

जिस उपयोग भूमिका में भगवान आत्मा की भूमिका में शुद्ध में जो राग-द्वेष और एकत्व करता नहीं, वह मुक्ति को पाता है। समझ में आया? है या नहीं यह? शब्द निकालना चाहिए अच्छे। बन्ध अधिकार है न? आस्रव, बन्ध। निर्जरा के बाद बन्ध है। देखो, कलश (१६४) है न कलश? **'यदैक्यमुपयोगभूः' 'उपयोग भू' अर्थात् आत्मा रागादि के साथ जो ऐक्य पाता है, वही एक (-मात्र रागादि के साथ एकपना प्राप्त करना वही-) वास्तव में पुरुषों को बन्ध का कारण है। 'यदैक्यमुपयोगभूः समुपयाति रागादिभिः'** बस ऐक्यं। चैतन्य ज्ञानदर्शन उपयोगमय भगवान के साथ जो राग-द्वेष को एकरूप करता है, वह संसार है। राग-द्वेष थोड़े होना, वह संसार नहीं। उस गौण संसार को यहाँ लिया नहीं। यह मुख्य संसार है। वह **'यदैक्यमुपयोगभूः समुपयाति रागादिभिः'** आहाहा! समझ में आया? आचार्य ने तो गजब काम किया है न एक-एक शब्द में! और अर्थ में भी ऐसा है न! **इसलिए न्यायबल से ही यह फलित हुआ कि जो उपयोग में रागादिकरण, वह बन्ध का कारण है।** उपयोग में रागादिकरण, वह बन्ध का कारण है। उपयोग में अस्थिरता राग हो, ऐसा नहीं, उपयोग में रागादिकरण इकट्ठा करना। ज्ञानानन्द दर्शनस्वभाव में रागादि को एक करना, वह बन्ध का कारण है। टीका भी यही है। समझ में आया? देखो, पाठ यह है न।

एवं मिच्छादिट्ठी वट्टंतो बहुविहासु चिट्ठासु।
रागादी उवओगे कुव्वंतो लिप्पदि रएण॥२४१॥

स्वयं भगवान ज्ञान-दर्शन शुद्ध उपयोगमय आत्मा, उपयोगमय आत्मा, जानन-

देखन उपयोगमय आत्मा में राग-द्वेष, पुण्य विकल्प को एकरूप करता है, वही बन्ध है। समझ में आया? पाठ ही है। तत्प्रमाण बाद में कलश कहा है।

कहते हैं, **उनके संग से मन में चिन्ता उत्पन्न होगी,... जो समुद्र राग-द्वेषरूपी कल्लोलों से व्याकुल है।** समुद्र—चिन्तारूपी समुद्र। भाई! राग-द्वेष यह... यह... यह... **उनके संग से मन में चिन्ता उत्पन्न होगी, और शरीर में दाह होगा। यहाँ तात्पर्य यह है कि वीतराग निर्विकल्प परमसमाधि की भावना से विपरीत...** भगवान आत्मा अभेद शान्तिमय समभावरूप समाधि। भावना अर्थात् एकाग्रता की व्याख्या है, हों! कल्पना नहीं। **परमसमाधि की भावना से...** भावना शब्द से एकाग्रता है। उससे **विपरीत जो रागादि अशुद्ध परिणाम वे ही परद्रव्य कहे जाते हैं,...** आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का शुभ उपयोग भी परद्रव्य। भगवान! वह निकल जाता है न? वह कहाँ स्वद्रव्य का स्वरूप है? स्वद्रव्य में हो, वह निकले नहीं और निकले, वह उसका नहीं। ऐसा भगवान आत्मा शुद्धस्वभावी, उसकी अन्तर के सन्मुख के परिणाम के अतिरिक्त जितने विकल्प आदि, उन्हें भगवान परद्रव्य कहते हैं। देखो, **परद्रव्य कहे जाते हैं,...** समझ में आया? **'मिथ्यात्वरागादि-परिणतपुरुषः सोऽपि'** ... और बाहर से व्यवहारनयकर मिथ्यात्व की विपरीत मान्यता, ऐसे विपरीत उल्टे। स्वतन्त्रता की खबर नहीं होती। त्रिकाल स्वतन्त्र क्या है, उसके सामर्थ्य की विरुद्ध बात, ऐसी विपरीतता मिथ्यात्व की जिसे घुसी है।

मुमुक्षु : लाकड़ा को क्या कहते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : लाकड़ा क्या है? शल्य। यह अन्दर लाकड़ा हमारे काठियावाड़ में कहते हैं। अन्दर लाकड़ा... क्या कहते हैं भाषा? लकड़ी लकड़ी अन्दर। ऐसे तो वह शल्य। परन्तु लकड़ी कहते हैं। हमारे काठियावाड़ में बहुत प्रयुक्त होता है यह। लाकड़ा घुस गया है उल्टा, ऐसा। हमारे यह काठियावाड़ी भाषा में विपरीत दृष्टि और विपरीत लाकड़ा घुस गया है, ऐसा कहे। ऐई! पण्डितजी क्या है? शल्य-शल्य। शल्य-शल्य, शल्य ठीक है। शल्य।

व्यवहारनयकर मिथ्यात्वी रागी-द्वेषी पुरुष पर कहे गये हैं। निश्चय से वह

विकल्पादि परद्रव्य। व्यवहार से पुरुष परद्रव्य मिथ्यात्व आदि परिणत है वह। छोड़ दे। भगवान आत्मा शुद्धस्वरूपी प्रभु को दृष्टि में लेकर उसमें स्थिर होना, वही स्वद्रव्य का कार्य है। **इन सबकी संगति सर्वदा दुःख देनेवाली है,...** संगति दुःख देनेवाली, हों! वह दुःख नहीं, उसका संग करे, वह दुःख देनेवाला। **किसी प्रकार सुखदायी नहीं है, ऐसा निश्चय है।**

★ ★ ★

गाथा - ११०

अब दृष्टान्त देकर सिद्ध करते हैं। **आगे परद्रव्य का प्रसंग महान दुःखरूप हैं, यह कथन दृष्टान्त से दृढ़ करते हैं —**

२३७) भल्लहँ वि णासंति गुण जहँ संसग्ग खलेहिं।
वइसाणरु लोहहँ मिलिउ तें पिट्टियइ घणेहिं॥११०॥

क्या कहा यह? आता है न? 'कर्म विचारे कौन भूल मेरी अधिकाई, अग्नि सहे घनघात लोह की संगति पायी।' लोह की संगति तूने की है, अग्नि ने की है, अकेली अग्नि को कोन घन मारे? घन कहाँ गिरे एकदम? टूट जाये। अन्दर पोचा है, उसमें घन कहाँ पड़े? इसी प्रकार अकेले आत्मा के अन्दर में दुःख कहाँ है रागादि कुछ? जैसे वह अग्नि लोहे में घुसे न, कठोर वस्तु है न। घुसती है अन्दर। तब घन सहन करती है।

मुमुक्षु : जोरदार मारे वापस, धीमे-धीमे न हो, वरना शान्त हो जाये वापस।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, घन पड़े लगातार... लगातार। उसी प्रकार भगवान चैतन्य अग्नि शुद्ध प्रभु अकेला तो घन दुःख नहीं होता। वह चैतन्य कर्म के संग के लक्ष्य में जुड़ जाता है, दौड़ जाता है, तब उसे दुःख के घन सहज करना पड़ते हैं। समझ में आया? उसमें आया न? 'भूल मेरी अधिकाई। कर्म बेचारे कौन?' उसकी इसे खबर नहीं। वे कर्म कौन हैं और कौन हैं, होंगे, उसकी इसे खबर नहीं। वह खबर बिना के जड़ तत्त्व, खबर बिना के, उसे कहना कि मुझे तू दुःख देता है, हों! 'भूल मेरी अधिकाई, कर्म बेचारे कौन? अग्नि सहे घनघात, लोह की संगति पायी।'

यह यहाँ कहते हैं। '**खलै**' अर्थात् **दुष्टों के साथ जिनका सम्बन्ध है,...** दुष्ट दो प्रकार के कहेंगे, हों! **वह उन विवेकी जीवों के भी...** '**भद्राणाम्**' ऐसा शब्द प्रयोग किया है। भला का '**भद्राणाम्**' ऐसा कहा न संस्कृत (में)? भलाई। संस्कृत में '**भद्राणाम् अपि**' भद्रिक जीव, भले जीव। उन्हें भी। **विवेकी जीवों के भी सत्य शीलादि गुण...** सत्यस्वरूप भगवान का सत्य शीलस्वभाव ऐसे गुण **नष्ट हो जाते हैं,...** संसर्ग करे तो नष्ट हो। उसमें भला मानकर संसर्ग करता है। समझ में आया? ऐई! जाति को छोडूँ, कुल को छोड़ना आता है न, भाई! उस पद्मनन्दिपंचविंशति में आता है। जिससे अपने श्रद्धा आदि में दूषण कारण लगता हो तो कुल को छोड़ना, उस देश को छोड़ना। पद्मनन्दिपंचविंशति में पद्मनन्दि आचार्य कहते हैं। देश को छोड़ दे, कुल को छोड़ दे, जाति को छोड़ दे। संसर्ग रहने दे। ऐसी विपरीत उल्टी शल्य डाल देंगे। तुझे खबर नहीं पड़ेगी कि यह क्या है। '**भद्राणाम् अपि' उन विवेकी जीवों के भी सत्य शीलादि गुण...** अर्थात् सत्य वस्तु का जो शीलस्वभाव आदि **नष्ट हो जाते हैं, जैसे... 'वैश्वानरः' आग...** आग। **लोहे से मिल जाती है,...** अन्दर जाती है। **तभी घनों से पीटी-कूटी जाती है।** तब उस अग्नि को '**पिट्टयते**' '**घनैः**' घन पड़ते हैं।

भावार्थ :- विवेकी जीवों के शीलादि गुण मिथ्यादृष्टि रागी-द्वेषी अविवेकी जीवों की संगति से नाश हो जाते हैं। पहले व्यवहार से बात ली। **विवेकी जीवों के शीलादि गुण...** सम्यग्दर्शन-ज्ञान आदि गुण-शीलादि स्वभाव, वह पर्याय की बात है, हों! **मिथ्यादृष्टि रागी-द्वेषी अविवेकी जीवों की संगति से नाश हो जाते हैं। अथवा आत्मा के निजगुण मिथ्यात्व रागादि अशुद्ध भावों के सम्बन्ध से मलिन हो जाते हैं।** यह निश्चय। समझ में आया? अपने... पाठ में ही है यह, देखो न! '**स्वकीयबुद्धिदोषरुपैः**' संस्कृत है। '**स्वकीयबुद्धिदोषरुपैः रागद्वेषादिपरिणामैः खलैर्दुष्टैर्व्यवहारेण तु मिथ्यात्व-रागादिपरिणतपुरुषैः**' वास्तव में तो तेरे परिणाम मिथ्यात्व और राग-द्वेष के, वे ही परद्रव्य हैं। उनका संग तू छोड़ दे। आहाहा! समझ में आया?

समयसार में कहा न कि मिथ्यात्व, वह पुद्गलपरिणाम है। विशुद्ध (-शुभ) परिणाम राग, वह पुद्गल परिणाम है। क्योंकि उसकी जाति के अन्दर वस्तु में नहीं। अनुभूति से भिन्न है। भगवान आत्मा अपना जो राग से भिन्न अनुभव करे, उस अनुभूति

से वे सब विकल्प (भिन्न होने से) अनुभूति में आते नहीं, अनुभूति के विषय में भी आते नहीं, इसलिए वे भिन्न हैं। आहाहा! यह वीतराग मार्ग है, भाई! वीतराग मार्ग में कहते हैं कि राग का परिचय कर नहीं। कहो, समझ में आया?

देखो, **मिथ्यात्व रागादि अशुद्ध भावों के सम्बन्ध से...** देखो, यह सम्बन्ध। भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वभाव की दृष्टि, ज्ञान और लीनता, ऐसे जो आत्मा के गुण, वे निजगुण **मिथ्यात्व रागादि अशुद्ध भावों के सम्बन्ध से...** यह भ्रमणा, अरे! ऐसा तत्त्व ऐसा? ऐसा बड़ा होगा? ऐसा होगा? यह विकार उसे कहीं आत्मा करता होगा या पर करता होगा? ऐसी भ्रमणा की विपरीतता घुस जायेगी। उसका सम्बन्ध छोड़ दे, भाई! वस्तु स्वभाव चिदानन्द है। जब पर के संसर्ग से दुःख है, तो स्व के संसर्ग में आनन्द है। समझ में आया? ऐसा करके कोई अभी सत्य समझा न हो और सत्समागम छोड़े तो... यहाँ तो समझण हुई है, यथार्थ भान है, उसे (कहते हैं) अब अस्थिरता में चिन्ता में पड़ मत अब, स्थिर-स्थिर अन्दर हो। और कदाचित् मिथ्या भ्रमणा आदि है, वह परद्रव्य है। उस स्वरूप की दृष्टि करके उन्हें छोड़ दे। उनका आश्रय करनेयोग्य नहीं है। समझे न? इसलिए परपुरुष भी आश्रय करनेयोग्य नहीं। परन्तु कौन परपुरुष? मिथ्यात्व आदि राग-द्वेषवाले हैं वे। ऐसा कहे अपने किसी का संग करना नहीं। समझे नहीं कुछ, तत्त्व को समझे नहीं कुछ। अब अपने किसी का संग करना नहीं, ध्यान करना। किसका धूल में ध्यान करेगा? अभी कितना यह आता है। अपने को किसी का संसर्ग करना नहीं। आँख मींचकर बैठना। क्या आँख मींचकर बैठे वहाँ होता है? आँख तो जड़ की है। आँख मीचती है, वह तो जड़ की क्रिया है।

अभी आत्मा क्या है, गुण क्या है, पर्याय कैसे होती है? विकार कैसे होता है? स्वभाव कैसे होता है? संयोगी चीज़ कैसे है? कैसे उसके कारण से पलटती है? उसका जहाँ नौ तत्त्व का अथवा सात तत्त्वों के भिन्न-भिन्न प्रकार बराबर जानने में न आवे और कहे कि अपने किसी का संग करना नहीं अर्थात् अपने किसी का सुनना नहीं, लो। यहाँ इनकार करते हैं, देखो! वह तो खोटे का संग नहीं करना। सच्चे देव-गुरु-शास्त्र का विकल्प आवे उसे, जब तक स्थिर न हो तब तक। परन्तु वह है तो चिन्ता।

स्वरूप की स्थिरता की अपेक्षा से वह तो चिन्ता है। परन्तु वापस कुछ भान भी हुआ न हो और फिर सच्चे देव-गुरु-शास्त्र को छोड़ दे, सुनना छोड़ दे। सब भ्रष्ट होगा। 'उपादान का नाम ले, वे जो तजे निमित्त' आता है न? 'पावे नहीं सिद्धत्व को रहे भ्रान्ति में स्थित।' उसे विकल्प है, यह बात सच्ची, परन्तु सच्चे देव-गुरु क्या कहते हैं, उसका इसे ज्ञान तो पहले बराबर करना चाहिए। ज्ञान हुआ हो नहीं, कुछ नहीं, अन्त में तो आचार्य ऐसा कहते हैं न, अन्दर स्थिर होना। इसलिए अपने को कुछ समझना नहीं, अब अन्दर स्थिर होओ। कैसे स्थिर होगा? वस्तु स्वरूप कैसा है, ऐसा बराबर भाव में भासन आये बिना और उस वस्तु में स्थिर होने से ही मेरी मुक्ति होगी, ऐसा कब निश्चित हो? यह वस्तु जब दृष्टि में आयी हो तो उसे उसमें स्थिर होने से मुक्ति हो, ऐसा निश्चित होता है। वस्तु समझे बिना ऐसा का ऐसा लो ऐसा करो। आँख मींचकर बैठ जाओ। क्या आँख मींचकर बैठे?

एक व्यक्ति और ऐसा कहता था, आया था। ऐसा एक बता दो एक शब्द में कि शीघ्र मुक्ति हो। अभी एक आया था। १६ वर्ष से करता हूँ, कहे। ॐ... ॐ... ॐ... ॐ... ॐ... ॐ... एक व्यक्ति आया था। बहुत आते हैं। नाम बाहर प्रसिद्ध हो गया न। १६ वर्ष से जपता हूँ, परन्तु कहीं शान्ति दिखती नहीं। एक शब्द ऐसा बताओ। कहा, शब्द-बब्द ऐसा कोई नहीं। अभी वस्तु तो समझ कि आत्मा क्या है? मुझे दीक्षा लेनी थी श्वेताम्बर की। श्वेताम्बर के साधु कहे, दीक्षा ले लो, परन्तु और वापस ऐसा दुःख लगा कि इसमें झगड़ा है। दीक्षा नहीं ली। अब तुझे अभी दीक्षा किसे कहना, इसकी खबर नहीं, चारित्र किसे कहना, इसकी खबर नहीं और तू ध्यान करने बैठा। किसका ध्यान होगा? यह तो थोथा जैसा लगे ऐसे विकल्प की शून्यता जैसा। वह वस्तु नहीं। समझ में आया?

वस्तु जिसकी ऐसी दृष्टि में बराबर बैठी है, जो वस्तु है वह। उसे अन्दर गुरुगम, सत्समागम, शास्त्र स्वाध्याय आदि विकल्प होते हैं। उस द्वारा पहले चीज़ क्या है, उसे नय, निक्षेप, प्रमाण द्वारा इसे निर्णय करना चाहिए। वरना तो अन्यमति का कहा हुआ आत्मा और भगवान के कहे हुए आत्मा में बड़ा अन्तर (नहीं लगेगा)। अन्तर बड़ा है।

आत्मा-आत्मा अकेला नाम ले, ऐसा नहीं चलता। आत्मा तो सभी बहुत करते हैं कि आत्मा। परन्तु कौनसा आत्मा? कितना आत्मा? जिसके ज्ञान की एक पर्याय में छह द्रव्य समाहित हो जाये। ऐसी एक पर्याय, ऐसी अनन्त पर्याय का गुण और अनन्त गुणों का द्रव्य, वह आत्मा। समझ में आया? ऐसा आत्मा कहकर आत्मा-आत्मा किया करे। परन्तु क्या आत्मा? वाचक का सामने वाच्य कैसा है? कैसे है? उसका ज्ञान और उसकी बराबर श्रद्धा आदि की नहीं और वह फिर कहे कि अब अपने ध्यान करो। शास्त्र वाँचन-बाँचन छोड़ दो। छोड़ दे तो ध्यान स्थिर होगी तो न? परन्तु स्थिरता अभी दृष्टि कौन है और विषय कौन है वस्तु, उसका तो सम्यक्रूप से भान हुआ नहीं। कहाँ से स्थिर होगा? आहाहा! गजब! ऐसा जहाँ करने जाये तो यहाँ से भागे। समझ में आया? यह अभी बहुत चलता है। बात बहुत निकली न? इसलिए मानो कि बस, महाराज के पास ऐसा कुछ होगा, और एक शब्द बस ध्यान (करेंगे)। ऐसा कुछ है नहीं, कहा। उस वस्तु का—पदार्थ का बोध कर। ऐसा करके वापस ॐ... ॐ... कर दे, भगवान... भगवान... भगवान... आत्मा... आत्मा... आत्मा... आत्मा... आत्मा... आत्मा... कर तो भी राग है। परन्तु आत्मा कौन है? वीतरागी स्वरूप क्या है? कैसा होना चाहिए? उसका बराबर निर्णय, सात तत्त्व का निर्णय होना चाहिए।

सात तत्त्व भिन्न कब कहलाये? कि कर्म है, वह अजीवतत्त्व में गया। आस्रव है, वह भिन्न तत्त्व हुआ, संवर भिन्न तत्त्व हुआ। तब भिन्न तत्त्व कैसे, अभी निर्णय किया? यहाँ तो कहते हैं कर्म है, इसलिए आस्रव होता है, तो कर्म और आस्रव दोनों एक तत्त्व हो गये। और आस्रव शुभभाव है, इसलिए संवर हो तो आस्रव और संवर एक तत्त्व हो गया। सात कब रहेंगे? सात सातरूप से कब रहेंगे? जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। इन सातपने का अस्तित्व सिद्ध करना है ऐसे। सात को सातरूप से सिद्ध करना है न पहले? तो अजीव को अजीवरूप से, उसके द्रव्य-गुण-पर्यायवाला पूरा द्रव्य-गुण-पर्याय, वह अजीवतत्त्व और आस्रव, वह पुण्य-पाप का विकल्प, वह आस्रवतत्त्व। वह अजीवतत्त्व भिन्न है, आस्रवतत्त्व भिन्न है। दो तत्त्व सिद्ध होंगे कैसे? और आस्रवतत्त्व से संवरतत्त्व भिन्न है। ... शुभराग से संवर हो, धर्म हो,

उसे तो आस्रव और संवर दो तत्त्व अभी तो विकल्प के निर्णय में दो को एक माना है। उसका निर्णय ही खोटा है। समझ में आया?

मुमुक्षु : चारित्र का काम करे न....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु चारित्र कहाँ? यह बात सच्ची चारित्र, परन्तु चारित्र कहाँ से आता था? चारित्र, वह कहीं राग के कारण से है? अजीव के कारण से है? तत्त्व तत्त्व के... जो तत्त्व है, वह अपने द्रव्य-गुण-पर्याय से सहित है अजीव। अब वह द्रव्य-गुण-पर्यायसहित तत्त्व, वह पूरा अजीव है और वे भी अनन्त हैं। तो अनन्त के तत्त्वों की अस्ति अनन्तरूप से वर्तमान स्वतन्त्र रहे, ऐसा अजीव को मानना चाहिए। और उस अजीव के कारण से आस्रव है, ऐसा मानता हो तो अजीव और आस्रव दोनों एक हो जाते हैं। आस्रव पुण्य-पाप के परिणाम का पर्याय तत्त्व, अजीव का द्रव्य-गुण-पर्याय तत्त्व और उस आस्रव से भिन्न यह संवरतत्त्व और संवर से भिन्न शुद्धि की वृद्धि, वह दूसरा तत्त्व और पूर्ण शुद्धि, वह मोक्ष है। वे सभी पर्यायें प्रगटे कहाँ से? ज्ञायकभाव में से आती है। संवर, निर्जरा और मोक्ष। समझ में आया? और वह भी पूरा तत्त्व मोक्ष की पर्याय जितना नहीं, संवर-निर्जरा की पर्याय जितना नहीं। ऐसे उसके तत्त्व की स्थिति जिस प्रकार से है, वैसे उसके ज्ञान में ज्ञेयरूप से भासित नहीं हो, तब तक ज्ञेय की सत्यता का स्वभाव का आदर होगा नहीं उसे। समझ में आया?

मुमुक्षु : बहुत गहराई में ले गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु अब निर्विकल्प में भी सत्य होना चाहिए न? इसलिए आचार्य ने 'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं' जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष—सात तत्त्व ऐसे कहा है न? महासिद्धान्त है, यह कहीं साधारण बात नहीं। लोगों को वह तत्त्वार्थसूत्र ऐसा हो गया न! अपने दसलक्षण में वाँच जाते हैं। परन्तु वह तो एक-एक सिद्धान्त है, महासिद्धान्त है। सत् को सिद्ध करने के महान नियम हैं वे सब। उस वस्तु को इस प्रकार से भगवान सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ ने जिस प्रकार से जाना, उस प्रकार से कहा, उस प्रकार से निर्णय में लाकर स्वभाव-सन्मुख का अनुभव करना और फिर स्थिर होना और दूसरी चिन्ता करना नहीं। ऐसी बात है न यहाँ तो। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा होगा? पास हो, ऐसा है यह। ऐसा कहते हैं कि यह तो भारी कठिन परीक्षा! कोई लड़का पास न हो। यह तो बराबर पास हो। सत्य को सत्य रीति से निश्चित करे और पास न हो, तीन काल में नहीं बनता। जैसा सत् है, उस प्रकार से इसके ज्ञान में तत्प्रमाण निर्णय का, झुकाव का भाव जहाँ सन्मुख करे और बराबर निर्णय न हो, ऐसा होता नहीं।

मुमुक्षु : इसमें किसी की शिक्षा तो हो न।

पूज्य गुरुदेवश्री : शिक्षा-बिक्षा किसी की चलती नहीं, भगवान की चलती नहीं। लोक में आवे, सेठिया पुत्र हो न, पास न हो तो ... चढ़ावा चढ़ा दे। चढ़ावा कहते हैं न कुछ? क्या कहते हैं? हाँ, वह सिफारिश। हमारे चढ़ावा कहते हैं। हमारे यह तलकशीभाई है न। तलकशीभाई सेठ के पुत्र साधारण मानो। मस्तिष्क बहुत नहीं। फिर सेठिया के पुत्र को चढ़ावे। सातवीं कक्षा में आ जाये। तीसरी कक्षावाला परीक्षा करने आवे ... ! यह अभी चौथी पुस्तक के प्रश्न का उत्तर नहीं आता और सातवीं में किसने बैठा दिया इसे? पुस्तक (कक्षा) होती है न? पहली, दूसरी, तीसरी, चौथी, पाँचवीं, छठवी, सातवीं। समझ में आया? इसी प्रकार जिसे नीचे श्रेणी का जो वास्तविक तत्त्व है, उसकी पर्याय क्या? उसका द्रव्य क्या? वह संयोगी चीज़ क्या? कैसे होता है? उसकी स्वतन्त्रता का जहाँ अभी निर्णय नहीं, उसे पूरा द्रव्य जो व्यक्त नहीं और अव्यक्त को महान परमेश्वर मानकर उसकी दृष्टि करना, वह तो महान पुरुषार्थ है। उसमें बहुत सत्यता के भाव प्रगट होते हैं, तब वह स्वभाव-सन्मुख जाये। समझ में आया?

यह तो उसमें क्या आया? वे बहुत ऐसे आवे। अब हमको एक ऐसा बता दो। हमारे दूसरा कुछ समझना नहीं। निर्विकल्प किस प्रकार होयेंगे? अभी खबर नहीं कि सर्वज्ञदेव कैसे होते हैं, वीतराग कैसे होते हैं, मुनिदशा कैसी होती है, तत्त्व कैसे होते हैं, शास्त्र कैसे कहते हैं, अनेकान्त क्या कहते हैं। सब खिचड़ा। और निर्विकल्प होना है। परन्तु कहाँ से होगा? समझ में आया? सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ परमेश्वर जिनचन्द्र भगवान के मुख में से वाणी आयी, उनके कहे हुए तत्त्व जैसे हैं वैसे, संक्षेप में भी जैसे

हैं, वैसे जानना चाहिए। संक्षेप में, भले विस्तार से नहीं। इसीलिए संक्षेप में कहा न?

मुमुक्षु : कुछ भूल न पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : भूल नहीं होनी चाहिए। भले थोड़ा जाने परन्तु उसमें विपरीतता नहीं होनी चाहिए। बहुत जाने और विपरीतता बहुत हो, (उसकी अपेक्षा) थोड़ा जाने और विपरीतता न हो तो वह वस्तु पा जायेगा। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, **व्यवहारनयकर मिथ्यात्वी रागी-द्वेषी पुरुष पर कहे गये हैं। इन सबकी संगति सर्वदा दुःख देनेवाली है,...** समझे न? यहाँ आ गया था यह। **पीटी-कूटी जाती है।** उस पर के संग से तो कुटना पड़ेगा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **जैसे अग्नि लोहे के संग में...** देखा! यहाँ कहा न? **आत्मा के निजगुण...** निज अर्थात् पर्याय यह, हों! गुण अर्थात् त्रिकाली गुण में कुछ अशुद्धता होती नहीं। **आत्मा के निजगुण...** अर्थात् पर्याय लेना। **मिथ्यात्व रागादि अशुद्ध भावों के सम्बन्ध से मलिन हो जाते हैं।** शब्द पड़ा हो गुण, परन्तु वे समझे कि गुण पड़ा, इसलिए गुण ही लेना। गुण का अर्थ पर्याय वर्तमान निर्मल है। वह **आत्मा के निजगुण मिथ्यात्व रागादि अशुद्ध भावों के...** भाव कहो या पर्याय कहो। उसके **सम्बन्ध से मलिन हो जाते हैं। जैसे अग्नि लोहे के संग में पीटी-कूटी जाती है। यद्यपि आग को घन कूट नहीं सकता,...** आगे को घन कूट सके? अग्नि पड़ी हो न, डाले तो कहाँ घन पड़े अन्दर? **परन्तु लोहे की संगति से...** ऐसा कठोर हो गया न कठोर, वह लोहा कठोर... **अग्नि भी कूटने में आती है,...** साथ में कुटती है। **उसी तरह दोषों के संग से गुण भी मलिन हो जाता है।** समझ में आया? इसका सार बाद में कहेंगे, लो।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

ज्येष्ठ शुक्ल ३, गुरुवार, दिनांक - १७-०६-१९६५
गाथा - ११०-१११-१११ *२, प्रवचन - १५०

दृष्टान्त कहकर, भगवान आत्मा वस्तु स्वरूप से शुद्ध और वीतराग स्वभावभाव है, उसका संग छोड़कर पुण्य और पाप आदि अशुद्ध जो दोष, उनका संग करना, वह सब दुःखदायक है, ऐसा सिद्ध करना है। भगवान स्वयं अपना स्वरूप तो निर्दोष, वस्तु तो निर्दोष है। निर्दोष अर्थात् अविकारी स्वभाव। वीतरागी विज्ञानघन शुद्ध तत्त्व, उसके संग से आत्मा को वीतरागता प्रगट होती है। परन्तु दोष का भाव जो विकारी शुभ-अशुभभाव, ऐसे अशुद्धभाव के दोष के संग से आत्मा को कुटना पड़ता है, चार गति में पिटना पड़ता है।

जैसे अग्नि लोहे के संग में पीटी-कूटी जाती है। यह दृष्टान्त। **यद्यपि आग को घन कूट नहीं सकता,...** यद्यपि आग को-अग्नि को घन—लोहे का घन ऐसे मार नहीं सकता, कूट नहीं सकता। **परन्तु लोहे की संगति से अग्नि भी कूटने में आती है,...** लोहे का संग किया अग्नि ने, इसलिए उसके ऊपर घन पड़ते हैं और अग्नि को कूटा जाता है। **उसी तरह...** यह तो दृष्टान्त हुआ। **दोषों के संग से...** देखो, दोष शब्द से भगवान आत्मा वीतरागी विज्ञान का पिण्ड प्रभु, उससे बाहर निकलकर जितने शुभ-अशुभ परिणाम होते हैं, वे सब दोष हैं। समझ में आया? **दोषों के संग से गुण भी मलिन हो जाते हैं।** अपना स्वभाव शुद्ध वीतराग, उसका संग छोड़कर मलिन परिणाम—अशुद्ध परिणाम का संग करने से, गुण की परिणति शुद्ध होनी चाहिए, वह न होकर अशुद्ध होती है। सूक्ष्म बात है। बाहर के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं। शरीर, कर्म आदि तो भिन्न चीज़ है। भगवान अपना पूर्णानन्द प्रभु, वह वस्तुस्वरूप से शुद्ध और वीतराग और आनन्द है। उसकी परिणति में जो अशुद्ध दोष का संग वह करे तो निर्दोष दशा प्रगट होनी चाहिए, उसे वह मलिन कर डालता है। कहो, समझ में आया?

यह कथन (सुनकर) जानकर... कहते हैं कि यह सुनकर उसे क्या करना चाहिए? **आकुलता रहित सुख के घातक...** भगवान आत्मा अनाकुल आनन्दमूर्ति प्रभु की परिणति अनाकुल शुद्ध शान्त होनी चाहिए। परन्तु उसके ऐसे सुख के घातक **जो देखे,...** भोग। **सुने,...** भोग **अनुभव किये...** भोग। विकार का अनुभव किया, वह सुना है, वह देखा है, उसे अनुभव किया है। उसे और उसे बारम्बार स्मरण में लावे तो वह दशा चौरासी के अवतार में भटकने की है। वह **देखे, सुने,...** आत्मा का अनुभव तो अनन्तकाल में अज्ञानी ने सुना नहीं। देखा नहीं और अनुभव नहीं किया। भगवान आत्मा अनाकुल शान्त अकषाय स्वभावस्वरूप, उसका अनुभव सुना नहीं, उसे देखा नहीं, वेदन किया नहीं। इसलिए देखे, सुने भोग जो विकार के, उनकी **वांछारूप निदानबन्ध आदि खोटे परिणामरूपी दुष्टों की संगति नहीं करना...** आहाहा! वह विकारी परिणाम दुष्ट है। आहाहा! वह वास्तव में परद्रव्य है, वास्तव में स्ववस्तु नहीं। इसलिए स्वद्रव्य से उस दोष का, परद्रव्य का संग न करना, ऐसा। आहाहा! कल आया था न 'चिन्तासागर में डूबेगा।' जितने विकल्प के जाल, वह चिन्ता है। भगवान आत्मा उस चिन्ता-विकल्परहित है। ऐसे स्वभाव को स्व के संग में पर्याय को रखना चाहिए, पर्याय को, ऐसा न रखकर उस पर्याय में शुभाशुभ विकल्प ऐसे जो दोष, उनके परिणाम की दुष्टता, उनकी संगति करना नहीं।

अथवा अनेक दोषोंकर सहित रागी-द्वेषी जीवों की भी संगति कभी नहीं करना,... दो बातें लीं। निश्चय में मलिन परिणति का संग नहीं करना, यह निश्चय। व्यवहार में अज्ञानी मिथ्यादृष्टि राग-द्वेष के शल्यवाले ऐसे जीवों का संग नहीं करना। समझ में आया? **यह तात्पर्य है।** इस ११० गाथा का यह तात्पर्य है। पूरे शास्त्र का तात्पर्य वीतरागता है।

मुमुक्षु : संग नहीं करना अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : संग नहीं करना (अर्थात्) उसके लक्ष्य से परिचय में नहीं आना। प्रेम करके उसकी आसक्ति में नहीं आना, जुड़ान नहीं करना।

मुमुक्षु : .... कहाँ नुकसान करता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : इससे कहा न आसक्ति-प्रेम करके कहा न। यह संग करनेयोग्य है और उसकी आश, ऐसा भाव नहीं करना। उसका अर्थ यह। कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र वास्तविक तत्त्व के घातक हैं। समझ में आया? श्रीमद् ने तो यह लिखा। श्रीमद् का (अर्थ) कठोर है। वह कठोर नहीं परन्तु यह... कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र आत्मा के स्वरूप के घातक हैं। घातक अर्थात् उनका प्रेम करना, वह (घातक है)। वे तो पर हैं। समझ में आया? उनका संग नहीं करना। उसका ज्ञान चाहिए न इसे? पहिचान चाहिए कि कौन कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र है और कौन सुदेव-सुगुरु-सुशास्त्र है और उनका कहा हुआ यह आत्मतत्त्व क्या है। उसका इसे ज्ञान होना चाहिए। समझ में आया? यह श्रीमद् में एक जगह है। है न? उसमें खबर क्या पड़े? बड़ा समुद्र है। आना हो तब आवे। है न।

... अनाकुल, वह बराबर शब्द लिखा नहीं, वरना तो उसमें बराबर है। '**अनाकुलत्वलक्षणपारमार्थिकसुखविलक्षणमाकुलत्वोपादकं दुःखं सहमानं**' यह बाद में लेंगे। ११ में। यह तो अपने इसमें है। कहीं है अवश्य। यह लो आया। २६वाँ पृष्ठ है। 'आत्मा को भिन्न-भिन्न प्रकार की कल्पना द्वारा विचारने में लोकसंज्ञा, ओघसंज्ञा और असत्संग, यह कारण है। जिन कारणों में उदासीन हुए बिना निःसत्त्व ऐसी लोकसम्बन्धी जप-तपादि क्रिया में साक्षात् मोक्ष नहीं, परम्परा मोक्ष नहीं, ऐसा माने बिना निःसत्त्व ऐसे असत्शास्त्र और असत् गुरु जो आत्मस्वरूप को आवरण में मुख्य कारण हैं, उन्हें साक्षात् आत्मघाति जाने बिना जीव को जीव के स्वरूप का निश्चय होना बहुत दुर्लभ है। अत्यन्त दुर्लभ है।' २६वाँ वर्ष है। २६ वर्ष, पृष्ठ २५२। पुरानी प्रति। कितनी ही बातें तो बहुत स्पष्ट लिख डाली है इन्होंने। ऐसे देखे थे सब वेषधारी, उसमें कुछ ठिकाना नहीं मिलता। तत्त्व वीतराग का तत्त्व क्या है, उसकी कुछ गन्ध भी नहीं और मानकर बैठे हों कि हम बस आचार्य, हम उपाध्याय, हम साधु। कौन इनकार करता है? इसलिए कहा है कि वह साक्षात् आत्मघाति। समझ में आया? असत् शास्त्र, असत् गुरु जो आत्मस्वरूप को आवरण में मुख्य निमित्त कारण हैं। परन्तु भाव, उसका प्रेम है वहाँ। 'साक्षात् आत्मघाति जाने बिना जीव को जीव के स्वरूप का निश्चय होना बहुत दुर्लभ है, अत्यन्त दुर्लभ है। ज्ञानी पुरुष के प्रगट आत्मस्वरूप को कहनेवाले ऐसे वचन भी उन कारणों के

कारण जीव को स्वरूप का विचार करने में बलवान नहीं होते।' आहाहा! यह पत्र बहुत सरस है। पूरा पत्र अच्छा है। समझ में आया?

यहाँ तो अपने यह दस में आता है न। दस के पाठ में भी संस्कृत है। क्या? '**दृष्टश्रुतानुभूतभोगकांक्षारुपनिदानबन्धाधपध्यानपरिणाम एव**' ऐसा। '**एव परसंसर्ग-स्त्याज्यः**' परसंग का त्याग करना। समझ में आया? पाठ में है न! '**अत्रानाकुलत्वसौख-विधातको**' यही शब्द यहाँ है। भगवान आत्मा विकल्प और चिन्तारहित चीज़, चिन्तारहित चीज़ के संग को छोड़कर और ऐसे कुसंग आदि में जायेगा तो कल्पना के घोड़े ऐसे खड़े होंगे कि शल्य में पड़ जायेगा और आत्मा का संग होगा नहीं।

देखो न, अभी भी आत्मा के नाम से बाहर बातें बहुत आयीं तो आत्मा के नाम से अब बकवास करने लगे। शुद्ध ऐसा है, फलाना है। ऐसा करके वस्तु क्या है, वह नहीं। अपनी कल्पना से आत्मा को ... आत्मा... ऐसा होगा? वस्तु जो है, ऐसा उसकी दृष्टि में, उसके ज्ञान में, उसके भास में सर्वज्ञ ने कहा, वह आना चाहिए या नहीं? 'केवली पण्णंतो धम्मो शरणं।' केवली पण्णंतो धम्मो। आता है न? चार शरण। 'अरिहंता शरणं, सिद्धा शरणं, साहू शरणं, केवली पण्णंतो धम्मो शरणं।' सर्वज्ञ परमात्मा ऐसा मानने पर एक आत्मा सर्वज्ञस्वभावी है, ऐसी इसकी मान्यता हो जाती है। एक जीव की ज्ञान की एक पर्याय तीन काल-तीन लोक सहित स्व को पूर्ण जाने, ऐसी मान्यता होने पर एक द्रव्य ही सर्वज्ञस्वभावी है, सर्वदर्शीस्वभावी है, पूर्णानन्दस्वभावी है, पूर्ण शान्तस्वभावी है, शान्त अर्थात् चारित्र, इस प्रकार से उसे द्रव्य का स्वभाव, उसकी प्रतीति (हो जाती है)। .... इसका अर्थ है।

... अच्छा नहीं होता है। बिल्कुल छोड़ दे, क्योंकि मोह अच्छा नहीं है। मोह अच्छा नहीं है तो मोहरहित वह भाव अच्छा है। क्योंकि वह भद्र है, यह भद्र नहीं। बराबर है? यहाँ सहज ही शब्द आया श्लोक में, लो। लो, धर्मध्यान नहीं होता, धर्म नहीं होता। भद्रध्यान होता है। परन्तु धर्मध्यान और भद्रध्यान... आहाहा! चार प्रकार के ध्यान हैं— आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान। पाँचवाँ कोई ध्यान है? चौथे में धर्मध्यान है। आत्मा के स्वभाव की एकाग्रता की परिणति जितनी निर्मल हुई, उतना ध्यान है।

उपयोग में जब लागू पड़े, तब तो और ध्यान हो ही, परन्तु जितनी शुद्ध परिणति हुई, उतना तो एकाग्रपना सदा ही चालू है। इसका नाम धर्मध्यान है। रागादि, वह तो आर्तध्यान है, मलिनभाव है।

(गाथा-१११) **'भद्रः न भवति' 'मोहासक्तं' मोह से आसक्त सब जगत क्लेश भोगते हुए देखो।** ऐसा कहते हैं न? अरे! राग और विकार की भ्रमणा में पड़े जीवों को दुःख भोगता देख। दुःख भोगता देख, ऐसा कहते हैं। जरा शब्दार्थ बराबर हुआ नहीं भावार्थ में। पाठ में तो ऐसा है, वह बराबर है, देखो। पाठ ऐसा है - **'अनाकुलत्वलक्षण-पारमार्थिकसुख-विलक्षणमाकुलत्वोपादकं दुःखं सहमानं पश्येति।'** तो यहाँ भावार्थ में बराबर नहीं। परन्तु इसका अर्थ यह लेना **जो आकुलता रहित है,...** अर्थात् अनाकुलता। वह अनाकुलता वास्तविक पारमार्थिक सुख है। समझ में आया? उससे विलक्षण **वह दुःख का मूल मोह है।** जरा शब्दार्थ नहीं किया पूरा बराबर। टीका में यह है। **'दुक्खु सहंतउ जोइ' 'अनाकुलत्वलक्षणपारमार्थिकसुखविलक्षण'** देखो, भाषा दो ऐसी गुलाँट मारकर की।

भगवान आत्मा अनाकुल लक्षण सुखस्वरूप, उसकी दृष्टि, ज्ञान वह अनाकुल लक्षण सुख परिणति, उससे विलक्षण अर्थात् विपरीत लक्षणवाले। क्या? **'आकुलत्वो-पादकं दुःखं'** आकुलता का उत्पाद करनेवाला दुःख। पूरे जगत को दुःख का अनुभव करानेवाला देख। भगवान आत्मा संग किया नहीं, शुद्धस्वरूप के परिचय में, अनुभव में आये नहीं, उन सब जीवों को मोहासक्तवाले आकुलतारूप दुःख को भोगनेवाले देख। आहाहा! लो! यह बड़े राजा महाराजा, कहते हैं, होवे तो उन्हें तू आकुलता उत्पन्न करनेवाले दुःखी हैं, ऐसा देख। ऐसा कहते हैं। मलूकचन्दभाई! क्या? यह तुम और तुम्हारा लड़का सब आकुलता उत्पन्न करनेवाले, पैसे में आकुलता उत्पन्न करनेवाले दुःखी देख, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : लाल-गुलाबी मोटर में बैठे हों।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल... लाल-गुलाबी मोटर क्या हुआ परन्तु वहाँ? मोटर जड़ मिट्टी है। इन्हें तो कदाचित् अभी वैसा है, जरा बहुत नहीं, परन्तु होवे तो भी क्या

अनुकूलता? वह कल्पना... कल्पना... कल्पना... इन्हें तो अभी पुण्य का योग जरा अधिक है। बाहर से आवे और सरकार के पास माँगता है एक करोड़। पूनमचन्द। एक करोड़ लाओ। सरकार कहे पचास लाख दूँ। यह तो भाई! पुण्य के परमाणु का उदय हो (तो आवे)। परन्तु यहाँ तो कहते हैं, उसे आकुलता दुःखरूप देख, ऐसा कहते हैं। सुखी न देख, सुखी न देख। समझ में आया? यह लाख रुपये की मोटर में बैठा हो, उसे सुखी न देख। आकुलता उत्पन्न करनेवाला दुःख उसके हृदय में पड़ा है। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु लाओ। पराधीन स्वप्ने सुख नहीं ऐसा शब्द है शास्त्र में, लोगों में। तो पराधीन की व्याख्या क्या? भगवान आत्मा अनाकुल आनन्द, वह स्वाधीन, वह स्वाधीन सुख और इसके अतिरिक्त जितना निमित्त के आधीन दृष्टि जाये, राग जाये, वह पराधीन स्वप्न में सुख नहीं। दुःख है, प्रत्यक्ष है, उसमें क्या? बराबर है? जमीनवाले को सुख नहीं? दस-दस पुत्र हो, उसे सुख नहीं?

मुमुक्षु : आप कहते हो कि जमीन उसकी है ही नहीं, ऐसा कहते हो फिर कहाँ....

पूज्य गुरुदेवश्री : जमीनवाला कहना वह कहाँ था? यहाँ तो कहते हैं। पुत्रवाला कब था? यह रागवाला भी कब आत्मा है? आस्रवतत्त्ववाला आत्मा है? अजीवतत्त्ववाला आत्मा है? भगवान आत्मा तो ज्ञान और अनाकुल आनन्दस्वरूप आत्मतत्त्व है। उसे छोड़कर अज्ञानी जगत के जीवों को, संयोग इन्द्र के इन्द्रासन पड़े हों, चक्रवर्ती के राज देखने में आये हों, छियानवें हजार स्त्रियों के संग में खम्मा-खम्मा होते देख, वह दुःखी उसे देख। वह भगवान आत्मा में से हटकर पर के ऊपर लक्ष्य में गया है, वह आकुलता को उत्पन्न करनेवाले दुःख में पड़ा है।

मुमुक्षु : किसके लिये?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ सम्यग्दृष्टि को कहते हैं न, धर्मी को कहते हैं न। हे योगी! ऐसा कहा है न? हे धर्मी! तेरे आत्मा के अनाकुल आनन्द की तुझे रुचि और अनाकुल

शान्ति तुझे समझ में आयी है तो यह सब पूरे जगत के जीव अनुकूल सामग्रीवाले हों या प्रतिकूल सामग्रीवाले हों, नरक का नारकी हो या इन्द्र हो, देव हो, सेठिया हो, अरबोंपति बनिया हो, मोह में पड़े हैं, पर की आसक्ति में पड़े हैं, इसलिए उन्हें दुःखी देख। वे दुःखी हैं बेचारे। कहो, समझ में आया? जेचन्दभाई! इस शरीर के कारण से नहीं कहा मैंने। इस शरीर के कारण से दुःखी किसने कहा है? इसके—परद्रव्य के अवलम्बन से उत्पन्न किया हुआ विकार, उस विकारी जीव को दुःखी देख, ऐसा कहा। ऐई! मोहनभाई! फिर मोहनभाई सुखी और जेचन्दभाई दुःखी, ऐसा नहीं यहाँ। जितना स्वद्रव्य का आश्रय छोड़कर परद्रव्य के लक्ष्य से विकृति भाव को खड़ा करता है, उस पूरे जगत को दुःखी देख। कहो, बराबर है? आहाहा! देखो न, सकल शब्द पड़ा है या नहीं?

सकल जगत '**दुःखं सहमानं पश्येति**' देखो, पूरा जगत किस दृष्टि से देखेगा? कि जो स्वभाव दृष्टि जहाँ नहीं और जहाँ विभाव और संयोग दृष्टि जहाँ खड़ी हुई है, ऐसे पूरे जगत को कीड़ी से कुंजर (हाथी), नारकी से नौवें ग्रैवेयक और निगोद से लेकर सब पद संसार के, वे सब दुःख के अनुभव करनेवाले हैं, ऐसा देख। निगोद के जीव भी चैतन्य को भूलकर, प्रचुर भावकलंक को परिणम रहे हैं, इस प्रकार से दुःखी देख। उसे संयोग में शरीर मिला, इसलिए दुःखी है, ऐसा नहीं। समझ में आया? यह निगोद के जीव का अनन्त समूह जीवराशि, उसे तू दुःखी देख। क्यों? कि वह स्वद्रव्य के अवलम्बन को छोड़कर, परद्रव्य के लक्ष्य से उत्पन्न किये हुए मिथ्याभाव और राग-द्वेषभाव कलंक प्रचुर ऐसे परिणाम से उस जीव को तू दुःखी देख। ऐसे सेठिया, राजा, देव, उस परिणाम में अकुलता है, स्वभाव की अनाकुलता की गन्ध नहीं, ऐसे जीव को आकुलता से उत्पन्न हुए दुःख को देख। दुःख को देख, दुःखी देख। ओहोहो! यह पाँच-पाँच लाख की आमदनी दिन की। आवक आती हो। कहाँ डालना रुपये? दुःखी... दुःखी... दुःखी....

मुमुक्षु : तीन बार दुःखी क्यों कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, श्रद्धा से दुःखी, ज्ञान से दुःखी और चारित्र से दुःखी। कहाँ गये पोपटभाई? भावनगर गये हैं। यह उनके मामा के पुत्र हैं छोटे, लो। यह गोवा में सगे

मामा के पुत्र ये। पचास हजार की एक दिन की आमदनी। यह तो बहनोई के यहाँ गये थे तो कहते थे कि रुपये कहाँ डालना? आड़े-टेढ़े नोट पड़े हों। एक-एक दिन की आमदनी पचास-पचास हजार की। अलमारी में जहाँ हो वहाँ नोट और पैसे के ढ़ेर पड़े हों।

मुमुक्षु : उन्हें हृदय में हर्ष कितना होगा!

पूज्य गुरुदेवश्री : हर्ष धूल का है, वह तो यह कहते हैं। कषाय की होली सुलगती है। अकषाय भगवान आत्मस्वभाव की दृष्टि नहीं और इन संयोग में सुखी मानता है उसे, हे जीव! तू दु:खी देख। आहाहा! कहो, यह पाँच-पचास लाख की पूँजी और दो-पाँच-दस करोड़ की उपज और... ओहोहो! हमारे भारी सुखी हैं। एक कहते थे, हमारे नानालालभाई सुखी हैं पैसेवाले। उनके रिश्तेदार वढवाण के थे। सुखी की व्याख्या क्या? कहा, सुखी की व्याख्या क्या? यह करोड़ रुपये हुए, वह सुख की व्याख्या होगी? सुख अर्थात् क्या? सुख अर्थात् कहाँ रहता होगा? सुख शब्द है। उसका वाच्य कहाँ? उसका वाच्य कहाँ? पैसे में? उसका वाच्य पैसे की ममता में जो है भाव, वह दु:ख है। वसन्तीलालजी! आहाहा! ऐसे पुत्र सौ-सौ, दो सौ-दो सौ, पाँच सौ पुत्र हों, बड़ा आयुष्य हो तो। स्त्रियाँ, लाखों स्त्रियाँ ऐसे खम्मा-खम्मा देखो न! उन वसुदेव को कितनी थीं? ७२ हजार। यह वासुदेव के पिता वसुदेव उन्हें बहुत रानियाँ थी, ऐसा इतिहास में आता है। और ऐसा रूप था कि जहाँ हो, वहाँ बस वे सब फिदा-फिदा होते।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वे वासुदेव के पिता वसुदेव। उनकी चर्चा चली है अन्दर। समझे न? लड़के... पिताजी! आप तो बाहर घूमे, तब आपको स्त्रियाँ मिली हैं। लड़के कहते हैं, हों! हम तो यहाँ बैठे। आपकी अपेक्षा हम सुखी हैं, ऐसा कहते हैं। ऐसी एक चर्चा चली है कथा में। वसुदेव को बहुत स्त्रियाँ थी न! बहुत रूपवान थे और उन्हें निकाल दिया था और फिर चले गये... आप तो बाहर भटके। वे लड़के कहते हैं। कृष्ण के पुत्र। बाहर भटके समझे न? बाहर फिरे देश छोड़कर, तब आपको रानियाँ मिली हैं।

हम तो यहाँ बैठे, हमको रानियाँ मिली, हों! आपकी अपेक्षा हम ठीक हैं। उन लड़कों का आता है इतिहास में। कथा में ऐसा आता है। एक बार वाँच हो तो ख्याल रहे। समझ में आया? हम यहाँ राज में, द्वारिका में बैठे, हमको कन्या देने आते हैं और तुम गाँव छोड़कर, द्वारिका छोड़कर भागे थे देश में। उन्हें भागना पड़ा था न? बाहर जाना पड़ा था। वहाँ तुमको कन्यायें मिली हैं। इसलिए तुम्हारी अपेक्षा हम ठीक हैं। यदि तुम बहुत अभिमान करते हो कि हम ऐसे हैं। यह बात करते... समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं कि दोनों दुःखी हैं।

पर के लक्ष्य से आकुलता उत्पन्न करता है, उसे सुखी मानना, वह मिथ्यादृष्टि भ्रम में पड़े हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसे खम्मा-खम्मा अन्नदाता। मखमल का कोट पहना हो, सिर पर जरी की टोपी हो, हाथ में मणिरत्न की लकड़ी हो ऐसे और जूते भी अन्दर जूते, समझे न, वे भी ऊँचे मणिरत्न से जड़े हुए। करोड़-करोड़ रुपये के एक, ऐसे। आहाहा! दुःखी देख, दुःखी देख। उस परद्रव्य के आश्रय में दृष्टि पड़ी है, इसलिए उसे दुःखी देख। ऐसा यहाँ कहते हैं। और मुनि जंगल में एकदम काला शरीर, आहार भी मिला न हो महीने-महीने तक, पेट घुस गया हो अन्दर ऐसे, हड्डियाँ ऐसे तैरती हों, उन्हें सुखी देख। आहाहा! आनन्द में देख, हों! दुःखी न देख। तू ऐसा न मान कि यह परीषह पड़ता है तो अरे रे! महामुनि दुःखी हैं। ऐसा नहीं। तुझे चारित्र के वर्णन की खबर नहीं। चारित्र, वह सुख का दातार है। तू ऐसा मानता है कि अरे रे! चारित्र में बहुत दुःख, हों! मूढ़! तुझे चारित्र की खबर नहीं। उस स्वरूप में आनन्द की केलि करता मुनि... आहाहा! उन्हें बाहर में रोटी का कण न मिले और हवा न मिले। एकदम काला शरीर, बबूल के नीचे बैठे हों। बबूल। बबूल न बावळ? ऊपर से काँटे गिरते हों वे कूटे इसलिए। उसको फूल पड़े और इन्हें ऊपर काँटे पड़े। आनन्द में देख, हों! दुःखी न देख, न देख। तेरी दृष्टि खोटी है। देखो, यहाँ काटता है। तो दुःखी होंगे। दुःखी न देख। उन्हें अन्तर आनन्द की रेलमछेल वर्तती है। अरे! परन्तु यह वह दृष्टि का अन्तर! समझ में आया? उन्हें दुःखी न देख। और अज्ञानी अरबोंपति दिखाई दे और पुत्र, परिवार, इज्जत का पार न हो, तू उसे दुःखी देख। आहाहा! दृष्टि का अन्तर है न पूरा? कहो, बराबर होगा यह? ऐई! देवचन्दजी! आहाहा! जहाँ आनन्द पड़ा है, वहाँ नजर नहीं

होती और नजर डाला हुआ आनन्द को वेदे और बाहर की प्रतिकूलता देखकर उसे दुःखी माने, तुझे भान नहीं है।

उसमें कहा है न, नहीं छहढाला में, भाई! संवर, निर्जरा को ऐसा कि वैराग्य को दुःखरूप जाने। नहीं आता? दुःखदायक माने। हाँ... हाँ... हाँ... कष्टदान माने। अरे भगवान! चारित्र कष्टदान है? चारित्र दुःखदायक है? क्या तू चारित्र की व्याख्या और चारित्र के स्वरूप की स्थिति क्या समझता है तू? अरे.. महादुःखी, हों! वह गर्मी के अवसर पर ठण्डा मिले, ठण्डे के अवसर पर गर्म मिले। वह बेचारा रोगी। तू उनकी दया खाता है? वे आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द के झूले में अन्दर झूलते हैं। उस अतीन्द्रिय आनन्द में बाहर की प्रतिकूलता से दुःखी, ऐसा न देख। वे आनन्द में हैं, ऐसा देख। यह बाहर की अनुकूलता से सुखी न देख; अन्दर में दुःखी है, ऐसा देख। दोनों बातों में अन्तर है। आहाहा! देवचन्दजी!

संयोगों के ढ़ेर पड़े, इसलिए सुखी — ऐसा न मान। वह दुःखी है। संयोग का एक भी साधन न हो, प्रतिकूलता देखकर मुनि को दुःखी न मान, दुःखी न मान। वे आनन्द में झूलते हैं, वे आनन्दित हैं। अतीन्द्रिय आनन्दी, उन्हें सुखी जान। उन्हें कष्टदायक माने। आहाहा! मुनियों को कितना सहन करने का, बापू! नंगे पैर चलना। क्या है परन्तु तुझे? वह क्रिया उन्हें अन्दर अवरोधक है? अतीन्द्रिय आनन्द की जहाँ रेलमछेल, पर्वत में से पानी का झरना झरे, पानी का शीतल झरना झरे, ऐसे हर्ष... हर्ष। भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का पर्वत है। एकाग्रता लगाकर अन्दर से आनन्द निकाला है। अतीन्द्रिय आनन्द में झूलनेवाले को दुःखी न देख। एकल-दोकल को दुःखी न देख। हजार करोड़ रानियाँ ... हों, खम्मा-खम्मा करती हों, ऐसे हीरा के थाल में खाता हो, रानी बैठी हो ऐसे पंखा करने। वह मक्खी न गिरे दाल में। सुखी न देख। ऐई! मोहनभाई! आहाहा! दुःखी देख। उन्हें (धर्मी को) सुखी देख। यह वह कहीं बात! परन्तु वस्तु ऐसी है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु ऐसी है न। वस्तु ऐसी है, बापू! आहाहा!

कहाँ आकुलता उत्पन्न करनेवाला दु:ख और कहाँ अनाकुलता उत्पन्न करनेवाला पर्वत भगवान आनन्द! दोनों का कहाँ अन्तर! एक दिशा अन्तर दोनों की। दिशा अन्तर से दशा में अन्तर, दिशा अन्तर से दशा में अन्तर। बाहर के संयोग की दिशा अन्तर से दशा में आकुलता है। अन्तर की दिशा के अन्तर से अन्तर में अनाकुलता की दशा है। आहाहा! समझ में आया? यह तो एक स्त्री मर गयी तो दु:खी, यह मर गया न दु:खी। वह दृष्टान्त दिया है अनुभवप्रकाश में। एक बन्दर था, बन्दर कहे। फिर बड़ा वड़-वड़। सूखे पत्ते। पूरा वड़ सूखा-सूखा। उसमें दो डालियाँ होंगी व्यवस्थित ऐसी। ऐसे निकली हुई। फिर ऐसे बैठे। दो पैर रखकर यहाँ बैठे। उसमें वह हवा आवे हवा। एक पत्ता खड़के। सूखा हो और गिरे। अरे! मेरा पत्ता गया। दृष्टान्त समझते हैं या नहीं? दृष्टान्त नहीं समझते?

वह वड़ होता है या नहीं वड़? वड़ वृक्ष। उसमें ऐसी दो डालियाँ थीं। ऐसे निकली हुई। तो बन्दर यहाँ बैठा और दो पैर यहाँ रखे। बैठा शान्ति से। ऊपर वड़ के पत्ते सूख गये हुए। सूखे। सूखे समझते हैं या नहीं? सूखे समझते नहीं? सूखे पत्ते खिर गये। सूख गये हुए। सूकाई क्या कहते हैं सूखे में तुम्हारे? और फिर सूखे पत्ते में समझते नहीं? सूखा था और हवा आयी। एक पत्ता टूटा, दूसरा टूटा। हाय... हाय.. रोने लगा। परन्तु कितना रोयेगा तू? इसी प्रकार तू जहाँ आया, वहाँ बाहर की सामग्री आयी, उसमें एक सामग्री खिरी, वहाँ रोने लगा बन्दर। बन्दर जैसा है। अनुभवप्रकाश में दृष्टान्त दिया है। जहाँ बैठा, वहाँ सामग्री आयी सब। स्त्री, पुत्र, परन्तु उसमें हटने लगा एक... एक... एक... ऐसे एक-एक हटने लगे। पत्ता टूटने लगे तो वह बन्दर रोवे, उसी प्रकार तू मुफ्त का रोता है। समझ में आया? अरे! हम अकेले रह गये, हों! हमारे कोई ... एक में ऐसा था भाई! अकेला (रह गया)। बीस मनुष्य घर में हों! वह था न इन्फ्लुऐन्जा। इन्फ्लुऐन्जा के समय में ... २० थे। वे विधुर थे न अपने जबुभाई। वे आये थे न। जिस मण्डप में विवाह किया था, उस मण्डप में मर गया वह। जबुभाई आते हैं न अपने। वहाँ विवाह किया, फिर गया वहाँ। वहाँ वह इन्फ्लुऐन्जा हुआ। फिर यहाँ घर में आये। वह मण्डप था अभी। उस मण्डप और मण्डप में मुर्दा निकाला। जिस मण्डप में विवाह, उस मण्डप में मुर्दा। और घर में दूसरे बीस मनुष्य मर गये। एक मनुष्य रहा एक ही।

यह (संवत्) १९६६ की बात है, हों! ६८ (वर्ष) पहले ६६ में इन्फ्लुऐन्जा था न जब। यह तो एक जरा जाये। अरे! मुझे ऐसा हुआ, अरे! मुझे ऐसा हुआ। कितनों को रोयेगा परन्तु? ऐई! मोहनभाई! और एक सुविधा का अंश जहाँ आया... आहाहा! परन्तु कितनों को प्रसन्न करेगा? वह सब दुःख है। भगवान आत्मा का आश्रय (करके) एक अंश भी दर्शन, ज्ञान और चारित्र का प्रगट किया, तू सुखी है। बाकी सुख तीन काल में बाहर में है नहीं। समझ में आया?

देखो न! यहाँ क्या कहा? ऐसे जीव को दुःखी देख, दुःखसहित देख। क्या कहते हैं? स्वभाव का अनादर करके पर के लक्ष्य से विकार उत्पन्न करके जीव सुख मानते हैं। हे जीव! तू सत्यदृष्टि से उसे दुःखी देख। और ज्ञानी धर्मात्मा को, सन्तों को बाहर की अनुकूलता का एक अंश भी न दिखाई दे, प्रतिकूलता का पार न दिखाई दे, ऊपर से पत्थर गिरते हों, अग्नि की ज्वाला व्यन्तर देव आकर ऐसे अग्नि ज्वाला ऐसे-ऐसे ऊपर डालते हों, (उन्हें) दुःखी न देख। आहाहा! वे अन्दर में आनन्द की लहर उड़ाते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द को चाटते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द का आस्वाद... आस्वाद... आस्वाद... वह अन्तर की परिणति से स्वभाव के आश्रय से सुख है। बाहर के आश्रय से परिणति से वे सब जीव एकान्त दुःखी ही हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ भाई... अभी यह वस्तु तो... एक बार तो बाहर, कहा था एक बार। जंगल में गया था एक बार। कोई नहीं था, अकेला था। अरे! कोई मुनि यह तुम्हारी दशा बोलणी कैसी है वह तो बताओ हमको। बाहर जंगल में अकेले। कोई मुनि तो आओ। फिर यहाँ से चला जाता तुम्हारे साथ। भाई! चारित्रदशावन्त परमेश्वर, आहाहा! कहा, उनकी वाणी की पद्धति कैसी! उसकी कल्पना उठे विकल्प और उनकी भाषा की शैली कैसी! उनके देह की गति का गमन कैसा! जहाँ स्थिर हो गया हुआ बिम्ब हुआ है, उसका दिखाव, उसकी लाईन अलौकिक, बापू! यह तो। यह दर्शन दुर्लभ हो पड़े। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, **वह मोह परमात्मस्वरूप की भावना का प्रतिपक्षी...** देखो,

भगवान आत्मा परमस्वरूप की भावना। भावना अर्थात् एकाग्रता, हों! उसके वैरी। प्रतिपक्षी है न? **दर्शनमोह, चारित्रमोहरूप है।** मिथ्याश्रद्धा और मिथ्या राग-द्वेष के परिणाम, उन्हें यहाँ मोह कहा जाता है। वह मोही प्राणी दुःखी है। **इसलिए तू उसको छोड़। पुत्र, स्त्री आदिक में तो मोह की बात दूर रहे, यह तो प्रत्यक्ष में त्यागनेयोग्य ही है, और विषय-वासना के वश देह...** पाठ में ऐसा लिया, भाई! '**परित्यक्ते पुनर्वासनावशेन स्मरणरुपो मोहो न कर्तव्यः।**' संस्कृत टीका ऐसी ली है। '**पुनर्वासनावशेन स्मरणरुपो मोहो न**' यह नहीं चाहिए। याद नहीं करना उन्हें, हों! आहाहा! भले स्त्री, पुत्र तो छूटे हैं, ऐसा कि, परन्तु वह स्मरण जो होता है न... आहाहा! वे इकट्ठे थे, ऐसे खिलाती, ऐसे पिलाती। आहाहा! याद करना नहीं। ऐई! उस दुःख में जाना नहीं ऐसे पर्वत में वापस... देखा! '**पुनर्वासनावशेन स्मरणरुपो मोहो न कर्तव्यः।**' यह शब्दार्थ में नहीं रखा, भाई! मूल तो यह बात है अन्दर। बाह्य चीज़ तो छूट गयी है, अन्तर दृष्टि हुई, परन्तु बाद में यह वापस उसे याद करना नहीं, हों! नाराणभाई को वह याद आने लगा भाई पहले वापस। तब फिरा, कहा, फिरा उसका सब। ओहो! घर में स्त्रियाँ कहीं हलुवा कर देती! ...! परन्तु वह कहाँ याद आने लगा? यह क्या किया तुमने यह? शीरो समझते हो शीरो? हलुवा। हमारे साथ दीक्षित हुआ था न एक नारणभाई। ऐसे वैराग्य से पहले दीक्षा ली। पुत्र था, मर गया। एक कंकोत्री लिखी मेरे प्रति। पूर्व के संस्कार थे, परन्तु फिर ऐसी वृत्ति बदल गयी। बहुत बदल गयी। तो पहले तो पत्र (लिखा)। इकलौता पुत्र था, मर गया। इकलौता पुत्र। सगाई की थी। सगपण क्या कहलाता है? सगाई की थी। तो वह वापस वस्त्र पहनकर... पत्र आया-कंकोत्री आयी उमराला। मुझे आपके पास दीक्षा लेनी है और अपने दोनों एकान्त में शास्त्र का मनन, चिन्तवन करेंगे। ऐसा उसे भाव था। वापस दीक्षित हुए और हुआ और फिर वापस याद आया। एक वहाँ ... गाँव है। वींछिया के पास नहीं अमरापर। वहाँ खाते समय बोलने लगे। कि घर में स्त्री हलुवा गर्म करती और दाल (बनाकर देती थी)। क्या हुआ यह? कहा, और क्या याद आया? फिर यह होली क्या सुलगी? सब दृष्टान्त हो गये हैं। यह बदला, कहा, तुम्हारा यह सब, कितना बदला, ऐसा बदल गया। एकदम वृत्ति बहुत बदल गयी। मस्तिष्क अस्थिर हो गया, फिर मस्तिष्क अस्थिर हो गया। अस्थिर हो गया।

यहाँ कहते हैं कि आहाहा! घर में थे। स्त्री ऐसी तुअर की दाल बघारकर कर देती थी। यह तुअर की दाल आती है न। तूर की दाल कहते हैं न? तुअर-तुअर। अरे! परन्तु क्या लगायी है यह? होली आयेगी, यह तो कहा। हो गया। फिर तो मस्तिष्क फिर गया। यह क्या अंकुर क्या फूटा यह? छोड़कर बैठे स्त्री-पुत्र, तुमने कंकोत्री लिखी थी कि यह सब छोड़ा। अब अपने एकान्त में शास्त्र का मनन करेंगे। तर्कबाजी बहुत थे तर्कबाज। पूर्व से आये हुए न! समझ में आया? परन्तु फिर बहुत बदल गया।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए यह कहते हैं। ऐई! मोहनभाई! याद करे। बाई वह... बैठी याद करे। आहाहा! इसकी कढ़ी बनायी हुई और इसकी रोटी। यह क्या है परन्तु? देवचन्दजी!

यहाँ कहते हैं कि वह स्मरण छोड़ दे। देखो, '**पुनर्वासनावशेन स्मरणरुपो मोहो न कर्तव्यः।**' मुनि हुआ, तू त्यागी। क्या हुआ है तू? आहाहा! प्रवर्तन तो कुछ है नहीं, परन्तु स्मरण न कर। भगवान को स्मरण करना चाहिए या उन्हें स्मरण करना चाहिए? इसे याद करना कि आहाहा! पूर्ण परमात्मा बड़ा यह! यह दृष्टि में लिया है, अब मुझे इसमें स्थिर होना चाहिए। ऐसा हुआ कि यह स्मरण किया? स्मरण में तो अवग्रह, ईहा, अवाय धारणा में निश्चित अनुभव किया है कि यह आत्मा परमात्मा है। तो उसे धारणा में निश्चित किया उसे स्मरण में ला न! उसे याद कर न बारम्बार! यह बात कहाँ से लाया और यह? समझ में आया? जिसकी धारणा हो, उसकी स्मृति आवे न? इसकी धारणा स्वरूप की की हो तो उसका स्मरण कर न। उसकी धारणा की, उसे स्मृति में कहाँ से लाया और वापस?

और विषय-वासना के वश देह आदिक परवस्तुओं का रागरूप मोह-जाल है, वह भी सर्वथा त्यागना चाहिए। अन्तर-बाह्य मोह का त्यागकर सम्यक् स्वभाव अंगीकार करना। लो! भ्रमणा और राग का व्यय करके। उपदेश में तो ऐसा ही आवे न! स्वभाव का आश्रय करने से, स्थिर होने से विपरीत दृष्टि छूट जाती है और राग भी उत्पन्न नहीं होता, उसे राग को दृष्टि में छोड़ता है, ऐसा कहा जाता है। **सम्यक् स्वभाव अंगीकार**

करना। शुद्धात्मा की भावनारूप जो तपश्चरण... देखो, अब जरा। क्या कहते हैं?

अब मुनिपने की व्याख्या करते हैं एक संक्षिप्त शब्द में। '**शुद्धात्मभावनास्वरूपं तपश्चरणं तत्साधकभूतशरीरं**' क्या कहा? कि शुद्धात्मा की एकाग्रतारूप तपश्चरण अर्थात् मुनिपना उसे कहते हैं। मुनिपने की व्याख्या इतनी की है। मुनि कहो, तप कहो। तपकल्याणक में आता है न। मुनि का आता है न? भगवान का तपकल्याणक कब कहलाता है? कि वह मुनिपना ले वह। मुनिपना ले, वह तपकल्याणक कहलाता है। ऐसा मुनिपना अर्थात् क्या? कि शुद्धात्मा की भावनारूप मुनिपना। शुद्धस्वरूप की दृष्टि, उसका ज्ञान और उसमें चारित्र की एकाग्रता। वह शुद्धात्मा की भावनारूप, वह मुनिपना। अट्ठाइस मूलगुण आवे, वह मुनिपना नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! देखो, पाठ है न अन्दर? '**शुद्धात्मभावनास्वरूपं तपश्चरणं तत्साधकभूतशरीरं**' उसका निमित्तभूत शरीर है बाह्य, व्यवहार साधक, निमित्त।

शुद्धात्मा की भावनारूप... भगवान शुद्धस्वरूप प्रभु की दृष्टि से भी उसकी एकाग्रता स्वरूप में है, उसका ज्ञान भी स्वरूप में ही एकाग्रता है और उसका चारित्र, वह भी स्वरूप में ही एकाग्रता है। वह शुद्ध उपयोग यहाँ लिया है। यह आगे अभी लेंगे। **शुद्धात्मा की भावना...** अर्थात् एकाग्रतास्वरूप जो मुनिपना। अर्थात् मुनिपने की यह व्याख्या की। शरीर का नग्नपना, वह कहीं मुनिपना नहीं। अट्ठाईस मूलगुण उत्पन्न हो, वह तो आस्रव है। वह कहीं मुनिपना है? **शुद्धात्मा की भावनारूप...** मुनिपना। इसलिए टोडरमलजी ने यह लिया है न! शुद्धोपयोग मुनि ने अंगीकार किया है। शुद्धोपयोग के साधन द्वारा घातिकर्म का नाश किया है। ऐसा पहले शुरुआत में पाँच पद की व्याख्या की है न, वहाँ ऐसा लिया है। समझ में आया? उन्होंने तो सब शास्त्र के शब्द पकड़कर बहुत लिया है। अब उन्हें अप्रमाण ठहराना चाहते हैं लोग।

'आचार्य, उपाध्याय, साधु का स्वरूप।' 'विरागी बनकर, राग से हटकर, समस्त परिग्रह वह निमित्त छूटकर शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्म अंगीकार करके।' मुनि की व्याख्या ही यह की है। शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्म। और प्रवचनसार में पहली गाथा में साम्य लिया है न? वह 'साम्य अंगीकार करता हूँ' इसका अर्थ कि शुद्धोपयोग अंगीकार करता हूँ।

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं पहली गाथा में। पंच परमेष्ठी को नमन करके, प्रत्येक-प्रत्येक को वन्दन करके और मैं शुद्धोपयोगरूप साम्यभाव को अंगीकार करता हूँ। वह यहाँ शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्म अंगीकार करके। अन्तरंग में तो उस शुद्धोपयोग द्वारा स्वयं अपने को अनुभव करते हैं। परद्रव्य में अहंबुद्धि धारण नहीं करते। अपने ज्ञानादि स्वभाव को वे अपना मानते हैं, परभाव को... करते नहीं, विकल्प आदि को... करते नहीं। बहुत सरस बात की है। यह कठिन पड़े इन वर्तमान लोगों को। वे अट्ठाईस मूलगुणवाले मुनि हैं, ऐसा माने। यहाँ कहे नहीं, नहीं, शुद्ध उपयोग वह मुनिपना है। यह तो व्यवहार से बात की। अट्ठाईस मूलगुण पाले, व्यवहार पाले। आस्रव पाले? रक्षा करनी है आस्रव की? परन्तु आता है भूमिका (प्रमाण), इसलिए व्यवहारनय से पालन करते हैं, ऐसा कहा जाता है। वस्तुस्वरूप तो शुद्ध उपयोग पालते हैं। समझ में आया?

इसलिए यहाँ योगीन्द्रदेव की टीका ब्रह्मदेव ने की, उसमें शुद्धात्मा की भावनारूप जो मुनिपना। इतने शब्द में मुनिपना समाहित कर दिया। आहाहा! शुद्धात्मा की दृष्टि वह सम्यक्; शुद्धात्मा का ज्ञान, वह ज्ञान और शुद्धात्मा में आचरण, स्थिर होना, वह चारित्र। उसका साधक जो शरीर निमित्त। **उसकी स्थिति के लिये अन्न-जलादिक लिये जाते हैं,...** विकल्प उठता है न मुनि को अन्न-जल (लेने का)। **तो भी विशेष राग न करना,...** ऐसा। गृद्धि का राग नहीं करना। **रागरहित नीरस आहार लेना चाहिए।** अर्थात् विशेष आसक्ति कम कर डालना। एक विकल्प उठे आहार लेने का। शरीर का निमित्त है, इसलिए विकल्प ऐसा आता है, परन्तु उसमें गृद्धि करना नहीं। कहो, समझ में आया?

देखो, **स्थिति के लिये अन्न-जलादिक लिये जाते हैं,...** विकल्प है न भाई उस समय? जलादिक लेना, वह विकल्प है। तथापि पाठ में लिया मुनिपना तो शुद्धात्मा की भावनारूप ही वह मुनिपना है। वह शुद्धस्वभाव भगवान, उसकी जो अन्तर एकाग्रता की परिणति निर्मल हुई, वही मुनिपना है। बीच में यह विकल्प आया आहार लेने का, उसे यहाँ मुनिपना कहा ही नहीं। वह तो जाननेयोग्य, जाननेयोग्य है, परन्तु उस काल में

ऐसा ही आवे। गृद्धि का राग करना नहीं, ऐसा उपदेश में आवे। समझ में आया? १११ हुई, लो। दूसरी १११ है। प्रक्षेपक। क्षेपक-क्षेपक। आहार का डाला अधिक स्पष्ट करने के लिये।

★ ★ ★

गाथा - १११ *२

२३९) काउण णग्गरुवं बीभस्सं दड्ढ-मडय-सारिच्छं।
अहिलससि किं ण लज्जसि भिक्खाए भोयणं मिट्ठं॥१११ *२॥

आहाहा! वैराग्य की ... भाई! बापू! तू तो इतना वैराग्य में चढ़ गया। अब यह भिक्षा के लिये जाते हुए तुझे इष्ट आदि की वृत्ति क्यों आती है? कि यहाँ ठीक आहार होगा, गर्म होगा, जरा सर्दी बहुत है, इसलिए जरा गर्म... परन्तु यह तुझे क्या हुआ? समझ में आया? ऊना कहते हैं न ऊना? उष्ण। गरम-गरम। सर्दी के दिन हों तो गरम हो तो ठीक रहे। ठण्डा अभी नहीं हो... परन्तु अब क्या पड़ी है तुझे यह? ऐसा कहते हैं। भाई! शरीर है, उसे विकल्प आया है। मुनिपना तो शुद्धात्म भावना की एकाग्रता, वही है। व्यवहार बीच में आये बिना रहता नहीं, परन्तु उसमें गृद्धि नहीं करना, अच्छा-बुरा नहीं करना। यहाँ आहार मिले और इस घर में अच्छा मिले, बड़ा घर है, इसलिए ठीक मिलेगा। बापू! इस नग्न शरीर को, वीभत्स शरीर को, मुर्दे जैसे शरीर को ऐसा विकल्प शोभता है? मुनि तो मर गये हुए मुर्दे जैसे लगते हैं। आहाहा! अन्दर चैतन्य टकटकता है आनन्द से। यह मुर्दे जैसा ऐसा। और जंगल में कोई खा गया हो थोड़ा बहुत टुकड़ा बटका... तो वह ऐसा का ऐसा भर गया हो और ऐसा का ऐसा खड्डा पड़ा हो। जंगल में से मुनि आवे आहार लेने। जब तक लब्धि न हो, तब तक कहीं पूरा हो जाये, ऐसा कुछ नहीं। खड्डा रह जाये। बटका भरा हो कोई सिंह, लो न!

कहते हैं, अरे योगी! **भयानक देह के मैल से युक्त...** वीभत्स। एक तो भयानक देह मैल है तुझे तो, देख न! ऐसे शरीर के लिये ऐसे आहार की वृत्ति तुझे शोभती है? ऐसा कहते हैं। मुर्दे के ऊपर फूल रखना, तुझे क्या करना है? कचरे पर फूल रखना है

तुझे ? उकरडा समझते हो ? यह ढ़ेर—कचरे का ढ़ेर। इसी प्रकार यह कचरे का ढ़ेर है, मैल। **'दग्धमृतकसदृशम्' जले हुए मुर्दे के समान रूपरहित...** दशा एकदम काली हो गयी हो। यह स्थिति दशा हो। राजा का कुंवर हो, शरीर जीर्ण हो गया। भाई! ऐसे शरीरवाले को आहार की वृत्ति (आवे कि) ऐसा आहार होवे तो ठीक, भाई! शोभता है तुझे ? लज्जा नहीं आती ? आचार्य उलहाना देते हैं।

ऐसे... 'नग्नरुपं' वस्त्र रहित नग्नरूप को धारण करके, हे साधु! तू पर के घर भिक्षा को भ्रमता हुआ उस भिक्षा में स्वादयुक्त आहार की इच्छा करता है, तो तू क्यों नहीं शरमाता ? यह बड़ा आश्चर्य है। इतनी वृत्ति भी, भगवान! तुझे शोभती है वहाँ ? इस भूमिका को शोभती है ? ऐसा करके वैराग्य कराकर स्वरूप में स्थिर कराना चाहते हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

ज्येष्ठ कृष्ण ४, शुक्रवार, दिनांक - १८-०६-१९६५
गाथा - १११ *२-३-४, प्रवचन - १५१

परमात्मप्रकाश, इसकी १११ की दूसरी गाथा है। १११। है न १११? उसकी दूसरी गाथा। भावार्थ... भावार्थ। क्या अधिकार चलता है? गुजराती समझते हैं? गुजराती चलता है। गुजराती नहीं समझते? नहीं समझते। यह ....

मुमुक्षु : मुम्बई में तो चलता था।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, मुम्बई में तो चलता था गुजराती। मुम्बई में गुजराती चलता था।

भावार्थ :- पराये घर भिक्षा को जाते मिष्ट आहार की इच्छा धारण करता है, सो तुझे लाज नहीं आती ? क्या कहते हैं? मुनि को तो आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव होता है। सम्यग्दर्शन होने पर जहाँ आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव हो, उसे परपदार्थ में गृद्धि ज्ञानी को होती नहीं। तो यहाँ तो मुनि की बात है। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दमूर्ति शुद्ध सच्चिदानन्दस्वरूप का जहाँ अनुभव-अनुभूति हुई, वहाँ आत्मा के आनन्द का स्वाद सम्यग्दृष्टि को आता है, तो उसे परपदार्थ में आनन्द का प्रेम और रुचि नहीं होती। समझ में आया? जिसे शुभभाव आवे, उसमें रुचि नहीं होती, उसे अशुभभाव में तो रुचि कैसे होगी? तो यहाँ तो मुनि की बात करते हैं। मुनि का नग्न शरीर, जला हुआ शरीर, जीर्ण शरीर और तूने यह बाह्य त्याग किया और भिक्षा के लिये अच्छे आहार की इच्छा करे, लज्जा है, कहते हैं। लज्जा है, तुझे शोभा नहीं देता। अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद के समक्ष तुझे आहार की गृद्धि का स्वाद आया, तुझे अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद की खबर नहीं। समझ में आया?

देखो, यह कहते हैं, **तुझे लाज नहीं आती ?** भाषा भी ऐसी लिखी है न। **'किं ण लज्जसि भिक्खाए भोयणं मिट्ठं'** भिक्षा में मिष्ट भोजन के लिये (इच्छा करता है)। मिष्ट

स्वाद तो भगवान आत्मा का है। उसके अनाकुल आनन्द की रुचि छोड़कर, हे मुनि! तुझे लज्जा नहीं आती (कि) इस नग्न शरीर में आहार की गृद्धि की वृत्ति तू करता है? शोभता नहीं भगवान! समझ में आया? कहते हैं, **इसलिए आहार का राग छोड़। अल्प और नीरस, आहार उत्तम कुली श्रावक के घर साधु को लेना योग्य है।** आहार का राग छोड़कर अर्थात् तीव्र आसक्ति छोड़कर। आहार लेने का इतना विकल्प तो होता है। समझ में आया? परन्तु वह कहीं आहारसंज्ञा नहीं है। आहारसंज्ञा में तो गृद्धि हो जाती है। यह छोड़ना चाहता है। आहार लेने की वृत्ति होती है, परन्तु गृद्धि नहीं होती। इसलिए आहार का राग छोड़कर अर्थात् गृद्धि का राग छोड़कर **नीरस, आहार उत्तम कुली श्रावक के घर...** अच्छे उत्तम कुल के घर में नीरस आहार **साधु को लेना योग्य है।** ओहो! अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद की भूमिका में, स्वरूप में उपयोग स्थिर न हो, तब शरीर के निभाव में निमित्तरूप आहार का विकल्प आवे, उसे ऐसी गृद्धि का राग होता नहीं। उनकी भूमिका को वह शोभा नहीं देता, ऐसा कहते हैं।

मुनि को राग-भाव रहित आहार लेना चाहिए। ऐसे तो विकल्प उठा है आहार लेने का, उतना तो राग है, परन्तु गृद्धि का राग छोड़कर लेना। आहार लेने की वृत्ति है, वह तो विकल्प है। समझ में आया? परन्तु वह विकल्प उसमें तीव्रता और गृद्धि नहीं, इसलिए **मुनि को राग-भाव रहित आहार लेना चाहिए।** ऐसा कहा है। कहीं वीतरागभाव हो और आहार लेने की वृत्ति आवे, ऐसा नहीं हो सकता।

मुमुक्षु : अल्प और नीरस।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ? **अल्प और नीरस...** थोड़ा। शरीर का निर्वाह हो इतना थोड़ा, ऐसा। पेट भरकर नहीं और अल्प। मात्र शरीर का निर्वाह संयम का निमित्तरूप की बात है अभी। इस निमित्त की व्याख्या लम्बी करेंगे। निमित्त में अतीन्द्रिय आनन्द का... यहाँ आगे कहेंगे। तप, संयम तो शुद्धात्मा की भावना है। भगवान आत्मा... नीचे है। शुद्ध आनन्दमूर्ति अतीन्द्रिय आनन्द की एकाग्रता, वह तप और संयम है। आहाहा! समझ में आया?

मोक्ष की पर्याय साधता है, उसे मुक्तस्वरूप भगवान द्रव्यस्वरूप मुक्त है, ऐसी

दृष्टि का उसे आनन्द आ गया होता है। क्या कहा, समझ में आया? मोक्ष की पर्याय अर्थात् पूर्ण ज्ञान, पूर्ण आनन्द, वह मोक्ष की पर्याय को साधक साधता है, उस साधक को अन्तर द्रव्य वस्तु वह मुक्तस्वरूप है और सर्वज्ञस्वभाव है, अर्थात् वह अटका हुआ स्वभाव नहीं हो सकता। पूर्णानन्द और पूर्ण ज्ञानानन्दस्वरूप है, उसकी अन्तर में दृष्टि हुई तो अतीन्द्रिय आनन्द का और सर्वज्ञस्वभाव की शक्ति का स्वाद उसे पर्याय में आया? समझ में आया? इसलिए उसे बाहर की वृत्ति में आहार की वृत्ति आवे, अल्प आहार और निभाव हो, इतनी वृत्ति अस्थिरता की हो, परन्तु उसे विशेष नहीं हो सकती। उस भूमिका की योग्यता ही उसे राग उस जाति का होता है। समझ में आया? और उसके लिये बनाया हुआ हो, ऐसा ख्याल आवे तो ले नहीं। प्राण जाये तो भी ले नहीं। उसे ख्याल आवे कि मैं एक हूँ, यह घर के दो मनुष्य हैं, इतना अधिक आहार-पानी इसके घर में कैसे? ऐसा ख्याल आया और उसके लिये है, ऐसा लगा (तो) न ले। भले उसके लिये न बनाया हो। परन्तु उसे विकल्प में आया कि ऐसा कैसे? तो न ले। और सहजरूप से लोगों ने बनाया हुआ हो और उसकी वृत्ति में निर्दोष स्वयं को लगे कि यह मेरे लिये नहीं। ऐसा विकल्प आवे तो आहार ले लेवे। किसी समय ख्याल सरलरूप से न भी विचारे, उसके लिये बनाया हुआ भी हो, परन्तु सरलरूप से, सहजरूप से उसके विकल्प में ऐसा नहीं आया कि यह क्या? तो वह ले, तथापि उसे निर्दोष ही है। उसके विकल्प के आधार से बात है। माया से ऐसा विचारे कि ... ऐसा नहीं। यहाँ तो आत्मा शुद्ध चिदानन्द का अनुभव और तदुपरान्त शान्ति चारित्र की तो बहुत उग्र हो गयी है। अब उसे विकल्प तो आहार का आवे, तथापि उस आहारसंज्ञा की गृद्धि नहीं। आहारसंज्ञा को तो पाप कहा है।

मुमुक्षु : गृद्धि....

पूज्य गुरुदेवश्री : गृद्धि को क्या कहते हैं? आसक्ति। लोलुपता-लोलुपता। गृद्धि हिन्दी में नहीं आती? मराठी भाषा। गृद्धि अर्थात् लोलुपता, आसक्ति, तीव्रता।

मुमुक्षु : लम्पटता।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, लम्पटता, तीव्रता। कहो, समझ में आया?

तो कहते हैं मुनि को तो, ओहो! अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में उसे अस्थिरता आयी है, परन्तु उस विकल्प की मर्यादा है कि यह आहार मेरे लिये बनाया हुआ नहीं, ऐसा विकल्प है। ले लेवे। तो उसने रागरहित ही आहार लिया है, ऐसा कहा जाता है। वह राग विकल्प तो है, परन्तु तीव्र राग की आसक्ति नहीं, इसलिए रागरहित लिया है, ऐसा कहा जाता है। वस्तु ऐसी है। समझ में आया?

स्वादिष्ट सुन्दर आहार का राग करना योग्य नहीं है। और श्रावक को भी यही उचित है, कि भक्ति-भाव से मुनि को निर्दोष आहार देवे,... ऐसे अनुकम्पा करके नहीं। अरे! मुनि आये, दुःखी हैं, आहार नहीं। ऐसा नहीं। वह तो अनुकम्पा (हुई)। मुनि अनुकम्पा के योग्य नहीं। मुनि तो भक्ति के योग्य हैं। कृपापात्र नहीं। कृपापात्र तो दूसरे दुःखी प्राणी हों, वे कृपापात्र हैं। यह तो भक्ति के पात्र हैं। समझ में आया? ऐसा इसे बहुमान आ जाये कि आहा! मेरे घर में कल्पवृक्ष आया। ऐसा वस्तु का भान है न? समकितसहित है न? श्रावक समकितसहित भान है, उसे आत्मा के आनन्द का स्वाद आ गया है। और विकल्प ऐसे मुनि आते हैं। ओहो! भरत चक्रवर्ती जैसे ऐसे बाहर निकलते हैं। ऐसा सोना का वह होता है जनोई आदि या रतन की खड़ाऊ ऐसे मणिरत्न के महल है। जब आहार का अवसर होता है तो बाहर निकलें ऐसे बाहर। कोई मुनि (आवे)। वरना तो इस भव में मोक्ष जानेवाले हैं। खबर है कि इस भव में मेरा केवल (ज्ञान) है। मुझे चरमशरीर है, परन्तु उस भूमिका में ऐसा भाव आये बिना नहीं रहता। ऐसे बाहर निकलते हैं। दरवाजे भी बड़े हों न उनके बँगले के। ऐसे बाहर निकलते हैं, बँगले के बाहर देखते हैं। उसमें मुनि ऊपर से आते हैं। आता है न इतिहास में? ऊपर से मुनि आते हैं। पधारो... पधारो... पधारो... मेरे घर में आहार का कल्पवृक्ष आया। ओहो! आहार इस एक शरीर में डालना, इसकी अपेक्षा महासन्त मुनि, जिनका शुद्धात्म आराधन अन्दर में वर्तता है, ऐसे शरीर में निमित्तरूप मेरा आहार (जाता है), मेरे घर में कल्पवृक्ष आया। ऐसा उन्हें प्रमोद आता है। भक्ति का प्रमोद है। ऐसा नहीं कि यह लो, मुनि आये। लो, दो इनको आहार। ऐसा हुआ था भाई एक जगह। एक कोठारी थे न तुम्हारे वहाँ गोंडल में। मस्तिष्क अस्थिर हो गया था।

मुमुक्षु : अमृतलाल।

पूज्य गुरुदेवश्री : अमृतलाल। रास्ते के ऊपर डेलो। एक बार वहाँ गये थे। उनकी बहू बेचारी बहुत प्रेमी। इसका मस्तिष्क ठिकाने नहीं था, इसलिए बोल डाले बेचारा। दो... दो.. यह बेचारे आये हैं, दो आहार।

यहाँ तो महासन्त। आहाहा! मोक्ष के आराधक। एक भव में या दो भव में जिनकी पूर्ण दशा और पूर्ण परमात्मा का जिन्हें अन्तर में आराधकपना वर्तता है। सेवन... सेवन... सेवन... वर्तता है। उन्हें तो भक्तिपूर्वक आहार देना चाहिए। देखो, **भक्ति-भव से मुनि को निर्दोष आहार देवे,...** परन्तु वह निर्दोष। उनके लिये बनाया हुआ नहीं। घर के लिये बनाया हो। ऐसे निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध भी बनना महापुण्य का योग होता है, तब ऐसे सन्त और ऐसे देनेवाले (उनका योग होता है)। आहाहा! समझ में आया? यह जरा भूल है। **जिसमें शुभ का दोष न लगे।** यह शुभ शब्द नहीं चाहिए। परन्तु जिन्हें दोष न लगे, इतना चाहिए। पाठ में—टीका में नहीं। निर्दोष आहार दे और निर्दोषरूप से मुनि ले। उसमें उन्हें दोष उनके लिये उद्देशिक आदि का होना नहीं चाहिए। वह तो यों ही शब्द भूल से छप गया है। **जिसमें शुभ का दोष न लगे।** ऐसा पाठ नहीं है।

और आहार के समय ही आहार में मिली हुई निर्दोष औषधि दे,... फिर आगे-पीछे नहीं होती औषधि। आहार के साथ ग्रास में इकट्ठी दे देवे मुनि को। मुनि तो कहीं माँगते नहीं। यह औषधि दें। **शास्त्रदान करे,...** शास्त्रदान उस समय करे। **मुनियों का भय दूर करे...** कोई बाहर से उपसर्ग आया हो, गृहस्थों का कर्तव्य है, उन्हें ऐसा भक्तिभाव आता है। यह तो शब्द अधिक छप गया है। यह तो वह का वह छापा करते हैं। ऐसा नहीं कि नया सुधारना। नया छापे उसमें भी सुधारना नहीं। **उपसर्ग निवारण करे।** गृहस्थों का कर्तव्य है। ऐसा शुभभाव आये बिना रहता नहीं। **यही गृहस्थ को योग्य है।**

अब आया। **जिस गृहस्थ ने यति को आहार दिया...** देखो, निमित्त से कथन अब। **उसने तपश्चरण दिया,...** निमित्त सम्बन्ध है न? निमित्त सम्बन्ध। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध बताते हैं। नैमित्तिक सम्बन्ध बताते हैं। यह पद्मनन्दि में भी ऐसा आता है। कहा न, दान का अधिकार है। अभी निकाला था न! १२वीं गाथा है। **जिस गृहस्थ ने यति को**

आहार दिया... मूल पाठ में है न। '**श्रावकेण तावदाहाराभयभैषज्यशास्त्रदानं तात्पर्येण दातव्यम्।**' देना। '**आहारदानं येन दतं तेन शुद्धात्मानुभूतिसाधकं बाह्याभ्यन्तरभेदभिन्नं द्वादशविधं तपश्चरणं दतं भवति।**' निमित्त से। उसका भाव क्या है? उसका विकल्प आता है। ओहो! यह मुनि शुद्धात्मा का साधन ऐसा तपपना साधते हैं अन्दर में, आनन्द का साधन करते हैं, उसमें शरीर निमित्त है, उसमें मेरा आहार उसमें निमित्तरूप से है। इसलिए उसे व्यवहार से निमित्त दिया अर्थात् उसने तपश्चरण, ऐसा दिया कहा जाता है। व्यवहार के.. (ऐसे कथन होते हैं)।

उसने तपश्चरण दिया, क्योंकि संयम का साधन शरीर है,... निमित्त है न! **और शरीर की स्थिति अन्न-जल से है।** यह भी निमित्त से। शरीर की स्थिति तो स्वयं से है, परन्तु अन्न-जल के कारण से यह वहाँ ऐसा सम्बन्ध है। **आहार के ग्रहण करने से तपस्या की बढ़वारी होती है।** बढ़वारी अर्थात् अपनी एकाग्रता शुद्धता में आहार का निमित्त है अथवा शरीर का निमित्त है। **इसलिए आहार का दान तप का दान है।** इस अपेक्षा से, हों! आनन्द का दान करते हैं अन्दर में वे मुनि। श्रावक भी अपने अन्दर शुद्धात्मानुभूति का आनन्द का साधन अन्तर सम्यग्दर्शन में है। पूर्ण केवल(ज्ञान) दशा ऐसी जो मोक्षदशा, पूर्ण दशा केवलज्ञान, ऐसा जो केवल—अकेला आत्मा, ऐसा केवल सर्वज्ञस्वभाव, ऐसा केवल द्रव्यस्वभाव मुक्त, उसका सम्यग्दर्शन में प्रतीति और अनुभव हो गया है। समझ में आया? वह दूसरे को आहारदान देते हुए तप का दान देते हैं, ऐसा कहा जाता है।

यह तप-संयम शुद्धात्मा की भावनारूप है,... यह व्याख्या की। '**शुद्धात्मभावना-लक्षणसंयमसाधकस्य**' भावना... संयम। संयम की व्याख्या की। संयम कहो या तप कहो। शुद्ध भगवान पूर्ण एक स्वरूपी आत्मा ज्ञान एक स्वरूप से, दर्शन एक स्वरूप से, आनन्द एक स्वरूप से। यह एक स्वरूप से, वह शुद्ध है, ऐसा कहना है। वह शुद्धात्मा का जो साधक, अनुभूति, उसे स्वानुभूति द्वारा शुद्धात्मा को साधता है। एकपना अन्तर में उसे शुद्ध कहते हैं और उसकी एकाग्रता, उसे शुद्ध की परिणति कहते हैं। है न? '**शुद्धात्मभावनालक्षण**' भावना अर्थात् विकल्प की यहाँ बात नहीं। भगवान शुद्धस्वरूप

एक समय में शुद्ध अर्थात् एकरूप। कलशटीका में तो बहुत जगह (आता है कि) भाई! एक अर्थात् शुद्ध, शुद्ध अर्थात् एक, इसका अर्थ है। शुद्ध अर्थात् एकरूप ज्ञान है अन्दर। सर्वज्ञपद अर्थात् एकरूप पद। ज्ञान का एकरूप पद, आनन्द का एकरूप पद। ऐसा एकरूप, वह शुद्धरूप और शुद्धरूप, वह एकरूप। उसकी जो अन्दर में एकाग्रता, वह शुद्धरूप की एकाग्रता शुद्ध की परिणति को उत्पन्न करती है। वह शुद्ध की परिणति, वह आत्मा की साधकदशा को दिखलाती है कि आत्मा को साधती है। समझ में आया?

ओहो! मोक्षदशा अर्थात् केवलज्ञानदशा। एक समय में तीन काल-तीन लोक को राग बिना जानने की दशा। ऐसी एक समय की पूर्ण मुक्तदशा। उसे प्रतीति करनेवाला, मुक्त द्रव्यस्वभाव के सन्मुख होकर उसने सर्वज्ञस्वभावी आत्मा, सर्वदर्शी आत्मा एकरूपी गुण, एकरूपी शुद्धस्वरूप की अन्तर दृष्टि करके जो शुद्धात्मा को साधता है, वह विशेष साधक है, मुनि है। सम्यग्दृष्टि आदि थोड़ा साधक है। विशेष कषाय उसे, तीन कषाय है, पाँचवें (वाले) को दो कषाय है, इनको तो एक संज्वलन का देशघाति का साधारण भाग रह गया है। ओहोहो! ये तो परमेश्वर पूर्णपद ऐसा! निःसन्देह निःशंक अकेला ज्ञान का पिण्ड पूर्ण प्रभु, उसकी अन्तर की आराधना अर्थात् एकाग्रता है, उसे संयम कहा जाता है। वह **तप-संयम शुद्धात्मा की भावनारूप है,...** इतने टुकड़े में समाहित कर दिया है। समझ में आया?

और ये अन्तर बाह्य बारह प्रकार का तप शुद्धात्मा की अनुभूति का साधक है। निमित्त। कहो, समझ में आया? बाह्य और अभ्यन्तर तप शुद्धात्मा की अनुभूति का साधन है। **तप संयम का साधन दिगम्बर का शरीर है।** वापस स्पष्टता की। और साधु दूसरा नहीं होता वहाँ। यह मुनि की नग्नदशा ही उनकी हो गयी होती है। अन्तर में जिन्हें तीन कषाय (चौकड़ी) का नाश होकर स्वालम्बी शुद्ध आत्मा की स्थिरता जहाँ बढ़ गयी है, उन्हें शरीर की दशा में निमित्तरूप से नग्नपना ही होता है, दूसरा हो नहीं सकता। निमित्त दूसरा नहीं होता। उन्हें निर्दोष आहार का निमित्त होता है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। ऐसे देनेवाले श्रावक भी उन्हें निर्दोष आहार देने की वृत्तिवाले होते हैं। आहाहा! समझ में आया?

तप संयम का साधन दिगम्बर का शरीर है। अर्थात् कि वस्त्रवाला शरीर वह कोई मुनिपने को निमित्त भी नहीं हो सकता। समझ में आया? यह सहज चीज़ है। जहाँ अन्तर में इतनी वीतरागता, वीतराग-विज्ञानघनस्वरूप प्रभु के अवलम्बन से इतनी वीतराग-विज्ञानदशा स्थिरता उत्पन्न हुई है, वहाँ उन्हें बहुत तो अट्ठाईस मूलगुण की विकल्प की जाति ही खड़ी होती है और शरीर की नग्नदशा। बस! इसके अतिरिक्त की दूसरी मर्यादा होती नहीं। ऐसी निर्मल पर्याय की योग्यता में ऐसा ही होता है, उसे यहाँ कहते हैं, वह संयम का और तप का साधन दिगम्बर का शरीर। निमित्तरूप से है न!

इसलिए आहार के देनेवाले ने यति के देह की रक्षा की,... निमित्त है न, निमित्त? **और आहार के देनेवाले ने शुद्धात्मा की प्राप्तिरूप मोक्ष दी।** पाठ है, देखो! क्या पाठ है? देखो, '**शुद्धात्मोपलंभप्राप्तिरुपा भवान्तरगतिरपि दता भवति।**' क्या कहा? भाषा देखो, मोक्ष की व्याख्या की, भाई! '**शुद्धात्मोपलंभप्राप्तिरुपा भवान्तरगति**' भवान्तर अर्थात् इस भव से दूसरी गति।

मुमुक्षु : चार भव (गतियों) से दूसरी गति।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरी गति। संस्कृत टीका है स्पष्ट। '**शुद्धात्मोपलंभप्राप्तिरुपा**' मुक्ति की व्याख्या। शुद्धात्म, पर्याय में उसकी प्राप्तिरूप पूर्ण शुद्धात्म। भवान्तर गति अर्थात् चार भव से अन्य गति। उसका यहाँ अर्थ कर डाला इन्होंने कि शुद्धात्मा की प्राप्तिरूप मोक्ष। भवान्तर गति का अर्थ ही मोक्ष। समझ में आया? भगवान आत्मा जैसा शुद्धस्वरूप से पूरा परमानन्द सर्वज्ञ... सर्वज्ञ... सर्वज्ञ... सर्वज्ञ... पूरा स्वभाव, पूर्ण स्वभाव, शुद्धस्वभाव। उसका अन्तर आराधन करके जो पूर्ण मुक्तिरूपी प्राप्ति का साधन करते हैं, उन्हें आहार देनेवाले ने भी मानो मुक्ति दी, ऐसा निमित्त से कहा जाता है।

मुमुक्षु : परम्परा-परम्परा कहा न।

पूज्य गुरुदेवश्री : परम्परा कहा न। वे मोक्ष साधते हैं न स्वयं? श्रावक भी समकिती है न। समझ में आया?

क्योंकि मोक्ष का साधन मुनिव्रत है, और मुनिव्रत का (निमित्त) साधन शरीर है, तथा शरीर का साधन आहार है। इस प्रकार अनेक गुणों को उत्पन्न करनेवाला

आहारादि चार प्रकार का दान उसको श्रावक भक्ति से... भक्ति से देता है,... वजन यहाँ है। यह गाथा इस जाति की शैली पद्मनन्दिपंचविंशति में दान अधिकार है, उसकी १२वीं गाथा में यह वर्णन पद्मनन्दि आचार्य ने लिया है। पद्मनन्दि। दान-दान अधिकार। पृष्ठ कितना? दान। १२ (गाथा)। देखो, दान, दान है न!

मोक्षस्य कारणमभिष्टुतमत्र लोके
तद्धार्यते मुनिभिरङ्गबलात्तदन्नात्।
तद्वीयते च गृहिणा गुरुभक्तिभाजा
तस्माद्धृतो गृहिजनेन विमुक्तामार्गः॥१२॥

इस संसार में मोक्ष का कारण रत्नत्रय है, उस रत्नत्रय को शरीर में शक्ति होने पर मुनिगण पालते हैं। मुनियों के शरीर में शक्ति अन्न से होती है... निमित्त से (बात है)। **मुनियों के लिये उस अन्न को श्रावक भक्तिपूर्वक देते हैं। इसलिए वास्तविक रीति से गृहस्थ ने ही मोक्षमार्ग को धारण किया है, ऐसा समझना चाहिए।** भगवानस्वरूप साधते हैं और स्वयं भी साधन (करता है)। श्रावक श्रावक की बात है न? श्रावक ... पाठ है उसमें। श्रावक भी मान्य है। ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव आत्मा का आराधन करते हैं, परन्तु थोड़ा आराधन है और विशेष आराधन सन्तों को है। उन्हें भक्तिपूर्वक आहार देते हैं। उनके विकल्प में आगे स्वयं को बढ़ना है और बढ़े हुए को बहुत भक्तिपूर्वक आहार देते हैं, इसलिए मानो मुक्ति दी, ऐसा कहा जाता है।

अब देखो, मुनि की व्याख्या! कोई ऐसा कहता हो कि मुनि पहले अकेले व्यवहार मोक्षमार्ग में होते हैं और निश्चय बाद में। **तो भी निश्चय-व्यवहाररत्नत्रय के आराधक योगीश्वर महातपोधन आहार को ग्रहण करते हुए भी राग नहीं करते हैं।** देखो, इसमें कितनी बात की एक लाईन में! क्या कहते हैं? निश्चय वर्तमान वापस, हों! वर्तमान अकेला व्यवहार हो तो एकान्त है। निश्चय अकेला फिर हो तब तो केवलज्ञान हो जाये, एकान्त हो जाये, तब व्यवहार नहीं होता। परन्तु नीचे अकेला व्यवहार हो और निश्चय न हो तो एकान्त मिथ्यात्व हो जाता है और नीचे साधक में अकेला निश्चय हो और विकल्प का व्यवहार, व्यवहार व्यवहार के कारण से न हो, तो वह पूर्ण हुआ नहीं और व्यवहार न हो तो भी एकान्त हो जाता है।

कहते हैं कि **निश्चय-व्यवहाररत्नत्रय के आराधक...** यह शब्द पड़ा है। पाठ में है, देखो! **'निश्चयव्यवहाररत्नत्रयाराधकतपोधनेन'। 'तपोधनेन'** क्या कहा समझे? बसन्तीलालजी! देखो, कोई कहता है कि चौथे गुणस्थान, पाँचवें, छठवें, सातवें तक अकेला व्यवहारमोक्षमार्ग होता है। भाई! भगवान! तू एकान्तनय से देख तो एकपक्षी नय एकान्त हो गया। साथ में निश्चय नहीं तो एकान्त पक्ष से एक नय हो गया। समझ में आया? और निश्चयमार्ग जहाँ अन्दर प्रगट हुआ है, परन्तु पूर्ण निश्चय हुआ नहीं, तो उसके साथ विकल्प का व्यवहार, व्यवहार के कारण से व्यवहार आता है, तथापि सम्यग्दृष्टि व्यवहार से मुक्त है, परन्तु वह परद्रव्यरूप से, विकल्परूप से ऐसी दशा अन्दर होती है। यह वस्तु की स्थिति ही है। वस्तु की मर्यादा ही ऐसी है। किसी ने की, घडी नहीं।

कहते हैं कि जहाँ निश्चय का आराधन है अन्दर। स्वरूप की, आनन्द की श्रद्धा, आनन्द का ज्ञान और आनन्द का आचरण वहाँ वर्तता है, उसका नाम निश्चय। ऐसे निश्चय की भूमिका में पूर्ण वीतरागता और पूर्ण विज्ञानता नहीं। पूर्ण विज्ञान अर्थात् केवल (ज्ञान)। इससे उसे व्यवहार विकल्प देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, पंच महाव्रतादि के परिणाम, शास्त्र का परसन्मुख झुकता ज्ञान, ऐसा व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प, उसे भी व्यवहाररत्नत्रय, निश्चयरत्नत्रय है, उसे विकल्प में व्यवहाररत्नत्रय का आरोप दिया जाता है, निमित्तपना देखकर। शुद्ध निश्चय के आराधक जीव को अन्दर में उस राग का निमित्तपना, उसी प्रकार के स्वभाव की श्रद्धा, प्राप्त किये हुए की श्रद्धा, प्राप्त सिद्ध आदि की भक्ति का राग, ऐसा राग उन्हें इस साधक में निमित्त गिनकर, सहचर गिनकर, सहचर गिनकर, देखो! कल का शब्द आया टोडरमलजी का, उसे साथ में गिनकर उपचार से उसे व्यवहार कहा गया है।

निश्चय-व्यवहाररत्नत्रय के आराधक... देखो, यहाँ आराधक दोनों को कहा। आराधक निश्चय के हैं, परन्तु व्यवहार विकल्प ऐसी ही भूमिका का है, इसलिए उसका आराधक है, ऐसा उपचार से कथन किया जाता है। आहाहा! गजब! **निश्चय-व्यवहार -रत्नत्रय के आराधक...** अब एक बात। दो नय साथ में हैं। **ऐसे योगीश्वर...** अब यह

महातपोधन आहार को ग्रहण करते हुए... देखो, आहार लेने का काल है छठवें गुणस्थान में विकल्प। उस काल में निश्चय-व्यवहार का आराधक साथ में है। समझ में आया? तीन प्रकार हुए। विकल्प उठा है आहार लेने का। आहार लेते हैं न? ऐसा कहा न? **आहार को ग्रहण करते हुए भी...** ग्रहण तो एक शब्द है, परन्तु विकल्प आया है आहार लेने की वृत्ति। उस विकल्प के काल में वह निश्चय-व्यवहार का आराधक है। वापस निश्चय-व्यवहार के आराधक को छठवें गुणस्थान में विकल्प आहार का होता है, सातवें में होता नहीं। उस समय भी वह निश्चय और व्यवहार का आराधक है निश्चय का, परन्तु देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का भी राग इकट्ठा है, इसलिए उसे भी आराधता है, ऐसा निमित्तरूप से आरोप से कथन किया है। ऐसे मुनि आहार लेते हैं, इसलिए सिद्ध हो गया कि निश्चय-व्यवहार की भूमिका है, उन्हें आहार का विकल्प जो छठवें गुणस्थान में निश्चय-व्यवहार दोनों एक समय में साथ में हो गये। समझ में आया?

अकेला स्वस्वभाव जहाँ पूर्ण स्वरूप है... आहाहा! एक अँगुल के असंख्य भाग में, एक अँगुल के असंख्य भाग में यहाँ अनन्त आत्मा और अनन्त स्कन्ध के परमाणु इतने में (रहे हुए हैं)। ऐसा पूरा लोक ठसाठस भरा है। उसे जो ज्ञान की पर्याय जाने, ऐसी ज्ञानपर्याय पूर्ण। अर्थात् कि जो मुक्तदशा ऐसी पर्याय जिसमें से प्रगट हो, ऐसा जो द्रव्यस्वभाव, मुक्तस्वभाव; वह द्रव्यस्वभाव, मुक्तस्वभाव की अन्तर अनुभूति की प्रतीति बिना उसे मोक्ष का आराधक नहीं कहा जा सकता। समझ में आया? अन्दर सन्देह-सन्देह, शंका में डाँवाडोल हो। केवलज्ञान ऐसा होता है, सिद्धदशा ऐसी होती है, कैसे होगा? इतने में इतने जीव! यहाँ अनन्त अशुद्ध निगोद के जीव अनन्त पड़े हैं यहाँ। और उन अनन्त (जीवों को) अनन्त स्कन्ध साथ में पड़े हैं कर्म के। और इसके अतिरिक्त भी दूसरे वहाँ एक-एक प्रदेश में अनन्त परमाणु और अनन्त स्कन्ध पड़े हैं। तो असंख्य प्रदेश को अवलम्बकर एक जीव रहे, उसमें अनन्त जीव पड़े हैं, वहाँ अनन्ता-अनन्तगुणे स्कन्ध भी वहाँ पड़े हैं। आहाहा! ऐसा पूरा लोक ठसाठस भरा है। उसे एक समय में ज्ञान प्रत्यक्ष करता है। ऐसी जिसकी ज्ञान की पर्याय की महत्ता, ऐसी पर्याय की महत्ता की प्रतीति की स्वीकृति, उस पर्याय का साधक जीव कब कहलाये? कि मुक्तस्वरूप जब एक पर्याय की मुक्तदशा तो सारा द्रव्य मुक्त है, परिपूर्ण सर्वज्ञ-सर्वदर्शी आदि

पूर्णानन्दस्वभाव है, उसे अन्तर में एकाग्र होकर आराधता है, तब वह मोक्ष का आराधक और रत्नत्रय का आराधक कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

सवेरे भाई एक शब्द ऐसा आ गया जंगल जाते हुए। अप्रमाण का प्रमाण करनेवाला। ऐई! छोटाभाई! कहा था। सवेरे ऐसा रास्ते में रास्ते में चलते हुए कहा, केवलज्ञान अर्थात् अप्रमाण का प्रमाण करनेवाला। अर्थात् और क्या? ऐसा शब्द रास्ते में आया। अर्थात् क्या? अप्रमाण का प्रमाण करनेवाला। अप्रमाण अर्थात् अमाप जिसका द्रव्य भी अमाप-अनन्त, क्षेत्र अमाप-अनन्त, काल अमाप आदि और अन्त बिना, एक द्रव्य के गुण अनन्त-अनन्तगुणे अमाप। ऐसे अमाप को माप में लेनेवाला केवलज्ञान, उसे केवली कहा जाता है। आहाहा! ऐसे-ऐसे अनन्त केवलज्ञान के माप जिसमें—गुण में वर्तते हैं, ऐसा एक गुण और ऐसा एकरूप शुद्ध, एकरूप शुद्ध प्रभु, जिसके ज्ञान की अचिन्त्यता, अनन्तता, अपरिमितता, ऐसे स्वभाव की दृष्टि हो, वहाँ विकल्प टूटकर निर्विकल्प अनुभव हुए बिना रहता नहीं। समझ में आया? तब उसने आत्मा को माना, जाना और केवली का आराधक तब (हुआ) कहलाता है। समझ में आया?

यह तो सात तत्त्व में यह आता है न! मोक्षपर्याय की श्रद्धा, संवर-निर्जरा की श्रद्धा, आस्रव की श्रद्धा, इसका अर्थ क्या? इस द्रव्य की श्रद्धा हुई, तब वह पर्याय की श्रद्धा उसमें आ जाती है। ऐसा है मूल तो। समझ में आया? आहाहा! यह मुनि। इस काल में मुनि जो होते हैं कुन्दकुन्दाचार्य (आदि) सब व्यवहाररत्नत्रय के ही आराधक थे? अब सातवें तक व्यवहार कहते हैं। अरे भगवान! बहुत साहस करता है वह, हों! इतना साहस! अन्याय नहीं सहन करे द्रव्य, हों! उस द्रव्य का स्वभाव अन्याय सहन नहीं करे। बहुत विराधकपना हो जायेगा। आहाहा! यह वस्तुस्थिति एक समय में भगवान ऐसा पूर्ण... उसे अकेले पंचम काल के कुन्दकुन्दाचार्य जैसों को साधारण व्यवहाररत्नत्रयवाला कहना और आठवें (गुणस्थान) से निश्चय कहना, भगवान! अति साहस है, हों! अरे रे! यह द्रव्य की पर्याय को बहुत नुकसान है। समझ में आया?

आचार्य तो पुकार करते हैं, ओहो! निश्चय-व्यवहार के आराधक। विवाद-

विवाद करना हो, उसे क्षण-क्षण में विवाद है। देखो, व्यवहार के आराधक कहा है। भाई! वह व्यवहारनय से व्यवहार का आराधक है, निश्चय से निश्चय का आराधक है। वास्तव में व्यवहार का आराधक, वह आराधक निश्चय से है नहीं। भाई! यह बातें ऐसी है। समझ में आया? और वह ऐसे मुनि आहार लेते हैं। वापस ऐसा कहना है न यहाँ तो? आहाहा!

मुमुक्षु : सविकल्प अवस्था में।

पूज्य गुरुदेवश्री : सविकल्प अवस्था में है ... मात्र शरीर का निभाव इस प्रकार से होकर। आयुष्य पूर्ण नहीं अभी, आयुष्य पूर्ण लगता नहीं, स्थिति पूरी होने की नहीं, इसलिए आहार की वृत्ति शरीर को निमित्तरूप से आहार की हुई है। ऐसे आराधक तो उसका है। वास्तव में तो निश्चय का ही आराधक है। समझ में आया? पंचम काल के मुनि। यह मुनि की बात चलती है। आहाहा!

मुमुक्षु : भले चाहे जिस काल के मुनि हों, एक ही प्रकार के होते हैं न।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही हो न, और मुनि में अन्तर क्या हो? पंचम काल के अन्त के मुनि हों सच्चा या भगवान के पास विराजते कोई गणधर हों सीमन्धर भगवान के पास। सब मुनि तो मुनि तो छठवें-सातवें गुणस्थान में आराधक है, यथार्थ है। समझ में आया? सच्चे मुनि पंचम काल के अन्त में कोई (हो)। आते हैं न चार। एक साधु आते हैं न। एक साधु, एक आर्यिका। अन्दर भावलिंग आराधक कोई जीव (हो), ऐसा गणधर आराधक है (और) ऐसे वे हैं। वे सब साधर्मी जीव हैं निश्चय में।

कहते हैं, ऐसे **आहार को ग्रहण करते हुए भी राग नहीं करते हैं।** अर्थात्? आहार ग्रहण करने का विकल्प है और राग करते नहीं। भाषा का विवाद कितना? विवाद उठाना हो तो। निर्दोष आहार की वृत्ति जितनी उठी है, तदुपरान्त तो उन्हें राग नहीं, इसलिए राग करते नहीं, ऐसा कहा जाता है। अथवा आया हुआ राग है, उसका कर्तृत्व नहीं उन्हें। आहार लेने का विकल्प आया है, कर्तृत्वबुद्धि से नहीं। आया है, उसे ज्ञातादृष्टि से जानते हैं, परिणमनरूप से मेरा परिणमन उसरूप से है, ऐसा मेरा धर्म है, यह भी जानते हैं। समझ में आया?

देखो! **निश्चय-व्यवहाररत्नत्रय के आराधक योगीश्वर...** क्योंकि चौथेवाला योगी है, पाँचवेंवाला योगी है। यह तो योगीश्वर हैं। समझ में आया? **महातपोधन...** जिन्हें महान आनन्द की लक्ष्मी इच्छा बिना की प्रगट हुई है। आनन्द लक्ष्मी... आनन्द लक्ष्मी। कहो, मलूकचन्दभाई! वह धूल की लक्ष्मी नहीं यह। आहाहा! यह क्या परन्तु ऐसी बाहर की लक्ष्मीवाले ऐसे धरा जाये पेट मानो। लड़के को दो करोड़, तीन करोड़। आहाहा! कंकड़ उतावली नदी में बहुत हैं। नहीं? वे कंकड़ हैं, उसमें क्या है? यहाँ बहुत कंकड़ हैं। यहाँ की नदी का नाम उतावळी है वापस। पानी रहे ही नहीं। एकदम चला जाये। ऐसे यह पैसे आये और झट परिवर्तन होता-होता चला जाये। कहाँ इसके बाप के थे? बाप के नहीं, परन्तु इसके भी नहीं। नहीं? आहाहा!

एक नदी का पूर चला जाता हो ऐसे। दो, चार, पाँच खेत में गाँव हो न गाँव? पाँच खेत, इतना चौड़ा। लड़के देखने जाये। ऐई! अपना पानी। परन्तु ...! देख तो सही नजर। यह तेरे गाँव की हद का पानी ऐसा चला जाता है, ऐसा का ऐसा चला ही जाता है, किसे तू मेरा कहता है? देखो! यह पानी आया। पानी आया या जाता है? और वह ऐसे क्षेत्र गाँव कितना हो? यहाँ देखो न दो, चार, पाँच, सात खेत हों ऐसे। इतना पानी आया तो कहे, आहा! अपने दो फीट पानी आया, दो फीट पानी आया, परन्तु तू किसे आया कहता है? वह तो चला जाता है ऐसा का ऐसा। तू तो ऐसा का ऐसा खड़ा है वहाँ। चला जाता है। (आया) किसे कहता है इसमें? उसी प्रकार जगत के लक्ष्मी के पूर और शरीर के रजकणों के पूर आकर खड़े रहते हैं, उनके कारण से और उनके कारण से पलटकर चले जाते हैं। आत्मा तो देखनेवाला, देखनेवाला है। यह ऐसा कहे कि मेरे आये, मेरे पास आये। तेरे पास कहाँ आये थे? क्यों धर्मचन्दजी! यह तो परमाणु के पूर चढ़ता पर्याय का ऐसा पूर यहाँ आया है। पैसे का पैसे में आया है, स्त्री-पुत्र उसमें सब आया। मुझे आया। परन्तु कितना काल? देख तो सही। तू तो त्रिकाल खड़ा है और यह चला जाता है ऐसा का ऐसा। परिवर्तन होते-होते (चला जाता है)। मुनियों को शरीर और राग की जहाँ इच्छा ही नहीं। आहाहा! उन्हें कोई कमजोरी की इच्छा से ऐसा आहार ले, तथापि वे राग करते नहीं, ऐसा कहा जाता है। उसकी मर्यादा के ऊपर जाते नहीं, इसलिए राग करते नहीं।

राग-द्वेष-मोहादि परिणाम निजभाव के शत्रु हैं,... ओहो! भगवान आत्मा राग-द्वेष-मोहादि परिणाम निजभाव के शत्रु हैं, वे अनिष्ट हैं। प्रवचनसार में आता है न! विकार, वह अनिष्ट है और स्वभाव, वह इष्ट है। बाकी ज्ञानी को दूसरा कोई इष्ट-अनिष्ट है नहीं। विकार, वह अप्रिय है, शत्रु है। इष्ट तो द्रव्य-गुण-पर्याय निर्मल वह के वह इष्ट है। यह विकार तो शत्रु है। समझ में आया? **यह सारांश हुआ।** यह १११ की दूसरी (गाथा)। मुनि, धर्मात्मा अन्तर का आराधन करते हैं, उन्हें राग-द्वेष तो वेरी—शत्रु हैं। इसलिए उन्हें राग-द्वेष करना नहीं। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : किसके लिये राग शत्रु है?

पूज्य गुरुदेवश्री : सबके लिये शत्रु है। यहाँ तो मुनि की व्याख्या चलती है न अभी। सम्यग्दृष्टि को भी विकारमात्र अनिष्ट है। प्रवचनसार में आता है। सर्वज्ञ भगवान को इष्ट की प्राप्ति सब हो गयी। अनिष्ट कुछ रहा नहीं। ऐसा पाठ है प्रवचनसार में। उसका अर्थ क्या? कि इष्ट ऐसे द्रव्य-गुण शुद्ध, उसकी पर्याय इष्ट की प्राप्ति होती है। अनिष्ट जो विकार, उसका नाश हो गया। पाठ है।

मुमुक्षु : यह तो मुनि की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! सब आत्माओं के लिये। जितनी इष्ट की प्राप्ति अन्दर की द्रव्य-गुण की शुद्धि, उतनी इष्ट; बाकी विकार है, वह अनिष्ट है। समझ में आया? आहाहा!

गाथा आती है न? उस समाधिशतक में नहीं आता? '**आत्मज्ञानात्परं कार्यं न बुद्धो धारयेच्चिरम्**' (गाथा ५०)। ऐसा एक शब्द आता है। आत्मा के ज्ञान के अतिरिक्त धर्मात्मा दूसरे विकल्पों को चिरकाल धारते नहीं। आया, चला गया, ऐसा। '**आत्मज्ञानात्परं कार्यं**' है न? क्या है? शब्द भूल जाते हैं। यह समाधिशतक में है। आत्मा के ज्ञान के अतिरिक्त अन्य विकल्प का कार्य '**न बुद्धो धारयेच्चिरम्**'। लम्बा काल रहेगा नहीं, उसमें रहेगा नहीं। विकल्प आता है। आहाहा! उन्माद है, गहलपन है, घेलछाई है। शुभराग, वह पागलपन है, गहलता है।

मुमुक्षु : मुनि को?

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि को। शुभराग, उतना पागलपन है। समाधिशतक में है। ऐसा तो दिगम्बर (सन्त) वे आकाश के स्तम्भ हैं न। उनके तीव्र वचन। कड़क अन्दर से वस्तु। वीतरागभाव है, वही तेरी चतुराई दशा है। राग गहलता है। छोड़... छोड़... छोड़... स्थिर... स्थिर... स्थिर हो... आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - १११ *३

आगे फिर भी भोजन की लालसा का त्याग कराते हैं — देखो! इसमें अकेली बात नहीं। इसमें बहुत-बहुत भाव भरे हुए हैं। यह तो सन्तों की कथा है। भगवान परमात्मा की भेंट कर रहे, उन्होंने कहे हुए कथन और उन मुनि की बात कर रहे हैं। १११ की तीसरी। यह तीसरी है।

२४०) जइ इच्छसि सो साहू बारह-विह-तवहलं महा-विउलं।
तो मण-वयणे काए भोयण-गिद्धी विवज्जेसु ॥१११ *३ ॥

हे योगी!... देखो, साधु को लक्ष्य कर कहते हैं न! भाषा तो ऐसा ही उपदेश आवे न! आहाहा! **जो तू बारह प्रकार का तप का फल बड़ा भारी स्वर्ग-मोक्ष...** शुद्धता से मोक्ष और जितना शुभराग रह जाये, उसका फल स्वर्ग, ऐसा। ऐसा **चाहता है, तो वीतराग निजानन्द एक सुखरस का आस्वाद उसके अनुभव से तृप्त हुआ,...** संस्कृत में टीका है। **'वीतरागनिजानन्दैकसुखरसास्वादानुभवेन तृप्तो भूत्वा मनोवचनकायेषु भोजनगृद्धिं वर्जय इति तात्पर्यम्।'** हे मुनि! वीतराग निजानन्द। रागरहित निज—अपना आनन्द। एकरूप हुआ। वह शुद्धरूप हुआ है न एकरूप। शुद्ध एकरूप परमात्मा अपना निजस्वरूप, उसकी एकाग्रता में एकरूप स्वाद जो आया है सुखरस, अतीन्द्रिय आनन्द की रस शक्ति प्रगट हुई है। उसका आस्वाद, उसका स्वाद। **उसके अनुभव से तृप्त हुआ...** देखो, यह मुनि की (दशा)। यह छठवें गुणस्थान में मुनि आहार की वृत्ति उठने पर भी इसमें तृप्त है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भोजन गृद्धि वर्ज्यते, ऐसा कहा है न? छठवें गुणस्थान में भी मुनि महा वीतराग निजानन्द एक सुखरस अतीन्द्रिय आनन्द,

उसमें अनुभव करके स्वाद लेने में तृप्त, अनुभव से तृप्त हैं... तृप्त हैं... तृप्त हैं।

ओहो! उसे **मन, वचन और काय से भोजन की लोलुपता को...** लो! लोलुपता आयी, लो! गृद्धि का अर्थ लोलुपता आया। **भोजन की लोलुपता को त्याग कर दे। यह सारांश है।** अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद के समक्ष यह भोजन की गृद्धि के स्वाद की लम्पटवृत्ति तुझे नहीं होती, भाई! आहाहा! यह भगवान के भेंट में जा, उसमें ऐसी रंक वृत्ति तुझे कैसे हो? रंकपना, भिखारी वृत्ति ऐसी कैसी? आनन्द का भोजन करनेवाला। नित्यानन्द अमृत भोजी। आता है न बन्ध अधिकार में आता है श्लोक में। नित्य आनन्दामृत भोजी आता है न। नित्या आनन्दामृतनित्य भोजी। एक आनन्द के अमृत का (भोजी)। अमृत का अर्थ... अपूर्व लब्धि ऐसा अर्थ किया है भाई ने। कलशटीकाकार ने। नित्यानन्द अमृत का भोजी, उसे बन्धभाव क्या हो?

मुमुक्षु : आनन्द के भोजी को बन्ध कहाँ से हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : आनन्द अर्थात् अबन्धस्वरूपी भगवान अबद्धस्पृष्ट पर से। यहाँ अबद्धस्वरूप, मुक्तस्वरूप ऐसा भगवान आत्मा के स्वाद में जहाँ पड़ा है, आनन्द में पड़ा है, ऐसे नित्यानन्दामृत के अनुभवी को बन्ध का भाव कैसा? अबन्धस्वरूपी भगवान को अवलम्बकर बन्ध का भाव कैसा? मुक्तस्वरूपी भगवान आत्मा के आश्रयवन्त को पर के आश्रय का बन्धभाव कैसा? ऐसा यहाँ कहते हैं कि हे मुनि! वीतराग निजानन्द के निजस्वरूप के आनन्द के स्वाद में अनुभव से तृप्त-तृप्त हो गया हुआ। लो, **तृप्त हुआ...**

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ... ज्ञान में दिख जावे। ... बाहर का क्या काम है? कहो, समझ में आया? समझ में आया? अन्दर में ज्ञान बिना कौन जानेगा? यह ज्ञान के भान बिना जानेगा कौन? यह समकिती ही उसे पहिचान सकता है। अज्ञानी को भान होता नहीं।

वीतराग निजानन्द एक सुखरस का आस्वाद उसके अनुभव से तृप्त हुआ... मुनि। **मन, वचन और काय से भोजन की लोलुपता को त्याग कर दे।** उपदेश तो ऐसा

ही आवे न! उपदेश के वाक्य उसे अन्तर में स्थिर होने को। क्योंकि उपदेशक भी स्वयं अन्तर में स्थिर होना चाहते हैं। विकल्प आया है, तथापि अन्तर में स्थिर होना ही चाहते हैं। इसलिए उपदेश के वाक्य ही ऐसे उन्हें आते हैं। भाई! यह रहने दे... रहने दे... स्थिर हो-स्थिर हो, ऐसा कहे न? कहो, समझ में आया? अधिकार आता है न, भाई! वह कैसा? कवच अधिकार। भगवती आराधना। मुनि समाधि में स्थित हैं। आनन्द में, हों! उसमें कोई विकल्प आ जाये जरा ऐसा बोलते हैं। पानी, ऐसा बोले। मुनि होते हैं न कडाया। कडाया अर्थात्? साथ में सेवा करनेवाले मुनि होते हैं। अरे महाराज! कहाँ है? क्या पानी? अमृत का पानी पड़ा है न, उसका अनुभव करते हो न! यह कहाँ विकल्प आया तुमको? जागृत करते हैं। वह विकल्प टूटकर तुरन्त क्षण में टूटकर सातवाँ (गुणस्थान) हो जानेवाला है उन्हें। परन्तु उपदेश के वाक्यों में (ऐसा आवे)। कडाया कहा न? क्या शब्द आता है उसमें? शास्त्र में कडाया। कडाया अर्थात् क्या कि यह कडाया हो न, वह स्वयं तपे और हलुवे को बराबर पका दे। हलुवे को पका दे। शीरा होता है न हलुआ? उसमें स्वयं परीषह सहन करे और उसे ऐसे बराबर उपदेश के (वाक्य सुनावे)। तथापि उन उपदेश के वाक्य से वहाँ स्थिर होता है, ऐसा नहीं है। भारी व्यवहार और भारी निश्चय! वह अन्दर वहाँ स्थित आनन्द में। बहुत ऐसी तृषा लग गयी। बोला जाता है। भाषा आ जाती है। पानी। ऐसा पाठ है, हों! कवच अधिकार में।

मुनि कहते हैं कि महाराज! आप तो अतीन्द्रिय आनन्द के सुधारस का पानी पीते हो न! सुधारस के अमृत का पानी (पीते हो), यह क्या? उनके ख्याल में नहीं? उन्हें खबर है, मुनि हैं। अस्थिरता की जरा सी वृत्ति होती है। वहाँ एकदम छूटकर सातवाँ हो जाता है। निजानन्द में तृप्त। वह तो अस्थिरता का योग होता है, ऐसा होता है, वह ज्ञान कराते हैं। समझ में आया? और इसलिए मुनि कहे, तुम यह हो। उसके कारण वहाँ स्थिर हुए हैं? परन्तु निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध में उपदेशक ऐसे होते हैं, अपने को स्थिर होना है न अन्दर? स्थिर होने की ही जागृति का भाव उसे है। दूसरे को विकल्प आया तो भी, उसे विकल्प आया तो भी (कहते हैं), स्थिर होओ। यह क्या? यह क्या? समझ में आया?

मुमुक्षु : उन्हें खबर नहीं क्रमबद्धपर्याय की?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह क्रमबद्धपर्याय परन्तु पुरुषार्थ की ओर है उनकी? पुरुषार्थ स्वभाव-सन्मुख है या उसकी पर्याय के ऊपर उसकी पुरुषार्थ गति है? उसका लक्ष्य कहाँ है? राग के ऊपर है? निमित्त के ऊपर है? पर्याय के ऊपर है? लक्ष्य ज्ञायक के ऊपर है। ज्ञायक जाननेवाला... जाननेवाला। ऐसे विकल्प होते हैं निर्बलता के। उपदेशक भी इसी प्रकार से उपदेश के क्रम में ऐसा ही उपदेश होता है। बापू! मार्ग समझना कठिन है। अकेला चैतन्यपिण्ड प्रभु, उसे वह विकल्प आवे और वापस समझावे और उन्हें विकल्प टले, यह सब दशाओं की सहज स्थिति क्या है, उसे समझना चाहिए। समझ में आया? वह तो ऐसा कहे, लो क्रम है न। अब सुन न! क्रमवाले की दृष्टि कहाँ होती है?

मुमुक्षु : क्रमवाले को ऐसा क्रम नहीं था?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु क्रमवाले की दृष्टि कहाँ नहीं होती? ऐसा कहना है। वह तो अकर्तापने की दृष्टि सिद्ध करते हैं क्रम में। अकर्ता। पर की पर्याय का कर्ता नहीं, राग का कर्ता नहीं। यह निर्मल पर्याय आवे, उसे करूँ—ऐसा विकल्प नहीं। उसने क्रमबद्ध का अकर्तापना प्रगट किया है, वह जाननेवाला—देखनेवाला रहता है। इसका नाम अकर्तापने का पुरुषार्थ है। मैं करूँ... करूँ... करूँ... करे और फिर वापस अकर्ता, दो कहाँ से आया? समझ में आया? कर्ताकर्म में आता है न? जानना और करना दो इकट्ठा कब हुआ? आयेगा। आज अधिकार आयेगा। जानना और करना दो इकट्ठा कहाँ से आया? तू कहता है कि यह भोग भोगता है, उसमें इच्छा है तुझे? इच्छा है और फिर जाननेवाला रहे और फिर इच्छा भोगने की, ऐसा दो कहाँ से आया? अधिकार ऐसा देते हैं। निर्जरा अधिकार में, हों! भोग की इच्छा है तुझे? ज्ञानी भोग की इच्छारहित है। उसे आ पड़े हुए भोग को भोगता है, ऐसा लोग देखते हैं, इसलिए हम कहते हैं। भोगता नहीं। ज्ञानी तो आनन्द को भोगता है। लो!

निर्जरा अधिकार में नहीं आया? इन्द्रिय सचेत को-अचेत को ज्ञानी भोगता है। महाराज! आप और निर्जरा अधिकार में सचेत-अचेत को भोगता है, (ऐसा) कहो और

एक ओर कहो कि यह ज्ञानी अनुभव को ही भोगता है। निमित्त को, शरीर, इन्द्रिय को नहीं और राग को नहीं। और फिर यह क्या आपने कहा यहाँ वापस पहली गाथा में निर्जरा (अधिकार) में? सचेत और अचेत दोनों को भोगता है, उसे निर्जरा होती है। भोगता होगा। लोग देखे, उनकी शैली से कथन-भाषा आयी है। लोग ऐसा देखे कि यह इन्द्रिय को भोगता है। यह सचेत-अचेत को भोगता है। यह सचेत-अचेत को स्पर्शता नहीं और भोगे कौन? अज्ञानी भोगता है कहीं? लोगों की संयोग दृष्टि से देखनेवालों के लक्षण से वाणी की शैली ही ऐसी आयी कि यह सचेत-अचेत भोगता है, तथापि उसे निर्जरा होती है। वह भोगने के विकल्प से निर्जरा होती होगी? और भोगता है सचेत-अचेत को वह? शब्द की तकरार करनी हो तो शब्द-शब्द में विवाद उठे, ऐसा है। ज्ञानी सचेत-अचेत को भोगता है, ऐसा पाठ है। किस प्रकार भोगता है? स्पर्शता है वह भोगता है सचेत-अचेत को? समझ में आया? आहाहा!

विकल्प उठता है, उसे अस्थिरता का भाव है, उसे भी तेरा स्वरूप नहीं, छूट जा। और दृष्टि का जोर स्वभाव के ऊपर है, इसलिए जरा विकल्प उठा अशुभ का, परन्तु उसकी शुद्धता की दृष्टि के जोर से उसे निर्जरा कही गयी है। वह अशुभभाव निर्जरा का कारण है? भोग का भाव निर्जरा का कारण है समकिती को? समझ में आया? वह तो बन्ध ही है। मुनि हो तो भी विकल्प उठे तो वह राग है। परन्तु किस अपेक्षा से उसकी शैली आती है, उसे समझे नहीं (और कहे कि) देखो इसमें लिखा। लिखा, सब लिखा है। किस अपेक्षा है?

यहाँ आचार्य महाराज कहते हैं कि हे मुनि! भोजन की लोलुपता को छोड़ दे। समझ में आया? १११ की तीन (हुई)। अभी और चौथी है।

मुमुक्षु : जी हाँ!

पूज्य गुरुदेवश्री : ठीक।

★ ★ ★

गाथा - १११ *४

२४१) जे सरसिं संतुट्ट-मण विरसि कसाउ वहंति।
ते मुणि भोयण-धार गणि णवि परमत्थु मुणंति॥१११ *४॥

जो जोगी स्वादिष्ट आहार से हर्षित (सन्तुष्ट) होते हैं,... भगवान अतीन्द्रिय आनन्द के सन्तोष की उसकी खबर नहीं, ऐसा कहते हैं। देखो, '**णवि परमत्थु मुणंति**' भगवान आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद है और जो इन्द्रिय के स्वाद में गृद्धि होती है, उसे परमार्थ अतीन्द्रिय के स्वाद की खबर नहीं। समझ में आया? **स्वादिष्ट आहार से हर्षित होते हैं,...** हाश! बहुत अच्छा आज तो आहार आया, हों! बहुत सरस। ठण्डा-ठण्डा ऐसे गर्मी थी न और ऐसा मिला। ठण्डा, क्या कहलाता है? ऐसी कोई चीज़ होती है। ठण्डी-ठण्डी बादाम का मैसूर या बादाम... ऐसा बादाम का घी में सराबोर। बादाम एक सेर और चार सेर घी पिलाया हुआ मैसूर और यहाँ गर्मी हो। दो टुकड़े पड़े थे पिघलकर... आहाहा! क्या है? वे तो मिट्टी के टुकड़े थे। ऐसे तो अन्दर पिघलते नहीं। पिघलते हैं, तब ऐंठ होती है। कुत्ते की ऐंठ होती है। ऐंठ होने के बाद गले में उतरती है। इतना टुकड़ा ऐसा चार सेर का पिलाया हुआ बादाम का। वह क्या है? कहाँ तक रहेगा। खबर है तुझे? पाँच सेकेण्ड, दस सेकेण्ड, जहाँ ऐसे छुआ थूंक, कुत्ते की ऐंठ हो जाती है। ऐंठ होने के बाद गले से उतरती है। वरना दर्पण से देख लेना कि क्या उतारता हूँ। मानी हुई कल्पना हटती नहीं कि अच्छा... अच्छा... अच्छा। ऐंठ होकर उतरे तो कहे अच्छा। अज्ञानी की कल्पना कहाँ काम करती है! यहाँ कहते हैं कि ज्ञानी को ऐसी कल्पना आती नहीं। गृद्धि की कल्पना ही नहीं। वस्तु की लीनता की दृष्टि पड़ी है। अस्थिरता का विकल्प होता है, परन्तु ऐसा भाव उसे होता नहीं। विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

ज्येष्ठ कृष्ण ५, शनिवार, दिनांक - १९-०६-१९६५
गाथा - १११ *४, ११२ प्रवचन - १५२

१११ की चौथी। यह प्रक्षेप गाथायें हैं। इसका **भावार्थ :- जो कोई वीतराग के मार्ग से विमुख हुए योगी...** क्या कहते हैं? वीतरागमार्ग अर्थात् आत्मा का आनन्द स्वभाव, उसकी रुचि छोड़कर। आत्मा वीतरागस्वरूप है, अकषायस्वरूप है, आनन्दस्वरूप है, उसकी रुचि और ज्ञान और रमणता छोड़कर। इसका नाम **वीतराग के मार्ग से विमुख हुए योगी रस सहित स्वादिष्ट आहार से खुश होते हैं,...** बाह्य के पदार्थ के रस में खुश होते हैं, उन्हें आत्मा के आनन्द की प्रसन्नता अन्तर में नहीं। यहाँ खुशी हो गयी। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय रसमय, अतीन्द्रिय रस के स्वादिष्ट स्वरूप मधुर स्वाद, अतीन्द्रिय मधुर स्वाद। उसके स्वाद की रुचि, उस ज्ञेय का ज्ञान करना, उसमें लीनता का विरोध है, वह वीतरागमार्ग से विमुख हुए हैं। उन्हें यह स्वादिष्ट आहार, स्वादिष्ट आहार मिलने पर प्रसन्न होते हैं। उसका अधिकपना स्वादिष्ट रस की गृद्धि में गया। समझ में आया?

कभी किसी के घर छह रसयुक्त आहार पावें... कहीं भिक्षा के लिये जाते हुए ऐसे रस के स्कन्ध, परमाणु उसे रसरूप मिले **तो मन में हर्ष करें,...** अरे! रस के स्कन्ध मीठे, उसमें हर्ष करे, उसे भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का हर्षभाव, रुचिभाव छूट जाता है। समझ में आया? आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द... है न सब विशेष ९७वीं गाथा में है, समयसार। अत्यन्त मधुर मीठा रस आत्मा का, ऐसा वर्णन किया है। ९७ की टीका। ऐसे आत्मा के रस को भूलकर स्वादिष्ट आहार में प्रसन्न होता है। **आहार के देनेवाले से प्रसन्न होते हैं,...** ओहो! तुमने बहुत अच्छा किया। वह रस की मिठास होकर उसके कारण प्रसन्न (हुआ)। आप बहुत भक्तिवाले और बहुत अच्छा आहार दिया। आहाहा! कहाँ उन पुद्गलों का रस, कहाँ भगवान आत्मा का रस—दोनों का उसे विवेक रहा नहीं, ऐसा यहाँ कहना चाहते हैं। समझ में आया? क्योंकि पाठ में ऐसा शब्द पड़ा न, '**णवि परमत्थु मुणंति**' जानता नहीं। परम पदार्थ भगवान आत्मा, जिसमें अतीन्द्रिय

आनन्द का स्वाद पूर्ण भरा है। ऐसा भगवान आत्मा, उसे वह जानता नहीं। पर के रस के स्वाद में प्रसन्न होकर, देनेवाले के ऊपर प्रसन्न होता है, उसे भगवान आत्मा के परमार्थ आनन्द की खबर नहीं।

और किसी के घर रस रहित भोजन मिले तो कषाय करते हैं,... ऐसे रूखा दलिया। दलिया क्या (-भुना हुआ) चना, मुरमुरा। मन में अरुचि करे, वह कषाय। उसे अच्छे-बुरे रस के ऊपर प्रीति-अप्रीति है। भगवान आत्मा के आनन्द की रुचि छूट जाती है। **उस गृहस्थ को बुरा समझते हैं,...** उसको विवेक नहीं होता। यह अभी गर्मी के दिन, कैसी प्यास लगी हो। ठण्डा पानी पीने को देना चाहिए, मौसम्बी का पानी देना चाहिए, उसको भान नहीं होता। हमारे वहाँ ऐसा होता था। भिक्षा के लिये हमारी कठोर भिक्षा थी न सब। सम्प्रदाय की कठोर थी। फिर हमारे गुरुभाई थे न वे कड़क के साथ। आहार लेने जाये वहाँ यदि व्यवस्थित वह न हो। हं... परन्तु मैंने कहा, उसके ऊपर किसलिए करते हो तुम? भिक्षा की हमारी बहुत कड़क क्रिया थी पहले। कोई ऐसे भिक्षा में-आहार में कुछ भी एक दाना भी पैर में कुचले, आहार निर्दोष हो, सब पानी निर्दोष, परन्तु एक कण हो न दाने का? उसके ऊपर उसका पैर आ जाये तो कपड़ा... भिक्षा नहीं लेते। ऐसा बहुत वर्ष किया है। ऐसा आहार एकदम छोड़ दें। पानी भी नहीं पीते।

मुमुक्षु : पूरे दिन....

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरे दिन छाछ से चलायें। अपवास करें। पहले तो ऐसा सब जाना था न, तत्प्रमाण सम्प्रदाय की पद्धति। यह फिर हमारे गुरुभाई जरा कषाय करें। मैंने कहा, किसलिए कषाय करते हो? उसे नहीं आया। उसे बेचारे को... तुमको अन्तराय का कारण, उसमें है क्या, कहा? सालवडा है न, यह वींछिया के पास। अमरापुर नाम दिया है। बेचरभाई के ससुर का गाँव। वहाँ गये थे। वे सब लोग मन्दिरमार्गी। यह स्थानकवासी। प्रेम सही उन लोगों को बेचारों को। परन्तु जरा झाड़ डाला वह। ओसरी होती है न ओसरी? ओसरी को क्या कहा जाता है? कमरे का बरामद, बाहर का भाग बरामदा। अनाज के दाने-बाने पड़े हों तो झाड़ डाला हो कि

महाराज अभी पधारते हैं। फिर वहाँ नहीं लेते। बात सच्ची। कोई दाना पड़ा हो और झाड़ू करे तो आहार बन्द। आहार लें नहीं उस दिन। इसलिए जरा गाँव छोटा और पाँच-सात घर, उसमें यह हुआ। इसलिए साधु खीझ गये। मैंने कहा, परन्तु यह क्या करते हो तुम? यह वह कहीं व्यवहार है? नहीं मिला तो उसमें क्या? शान्ति रखो न। बहुत वर्ष की बात है, हों! (संवत) १९७२-७३।

मुमुक्षु : .... पूरे दिन भूखे रहना।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उस पूरे दिन भूखे रहना। बापू! यह तो ऐसा समझना कि उस समय शान्ति रख। अभी शान्ति का आहार ले। समाधान कर न। वह तो संयोग नहीं आनेवाला। उसमें उसका दोष निकालकर क्या? यह तो सब हमारे बन गये सब (प्रसंग), हों! पहले तो कड़क क्रिया थी न, बहुत कड़क क्रिया। १०-१५ वर्ष तो कड़क क्रिया। हमको भिक्षा देना अर्थात् तो मुश्किल। बड़ी लाखोंपति की महिलायें ध्रुजे, ध्रुजे। भिक्षा के लिये ऐसे जायें वहाँ ऐसे ध्रुजे। अरे! महाराज कहीं से दोष निकालेंगे, कुछ दोष निकालेंगे। हं... कहलाये समझ में आयी हमारी शैली। ऐसा कि जरा भी दाना, कोई पानी की बूँद पड़ी हो सचेत। असंख्य जीव है न बिन्दु में। पानी, समझे न? जल। कलश-लोटा तो साफ हो, परन्तु लोटा में जरा पलळेलुं... पलळेलुं क्या कहते हैं? भींगा हुआ हो। यह वहाँ उसका हाथ छू जाये तो भोजन नहीं लेते। आहार छोड़ देते थे। ऐसा तो बहुत बार किया न। समझे न? परन्तु वह तो न मिले तो शान्ति रखना। छह काय के जीव हैं, एकेन्द्रिय के जीव हैं। एक पानी की जल बिन्दु में असंख्य जीव हैं। अब उन्हें घातकर साधु को दे तो ले नहीं, ले सकता नहीं। यह स्थानकवासी का रिवाज ऐसा है। सम्प्रदाय का रिवाज ऐसा है। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि भाई! उस स्थान में ऐसा नहीं मिला तो कषाय किसकी? और गृहस्थों की बुराई किसकी? यह कहा न? **गृहस्थ को बुरा समझते हैं,...** बापू! वह तो है वह है। तुझे तेरे आत्मा के आनन्द के रस की अन्दर यदि प्रीति हो तो फिर क्यों मिला और क्यों नहीं मिला, इस पर तुझे वृत्ति हो नहीं सकती। वह तपोधन नहीं, यहाँ तो ऐसा कहा। मुनि नहीं। आहाहा! मुनि तो अतीन्द्रिय आनन्द में झूलते होते हैं। क्षण में

विकल्प उठे। हजारों बार दिन में छठवाँ-सातवाँ गुणस्थान आता हो। जिसे आनन्द का, अतीन्द्रिय आनन्द का रस, सिद्ध भगवान के जैसा अतीन्द्रिय आनन्द (आता हो), पर्याय में उफान। उभरो समझे? उफान आता है। अन्तर आनन्द में जितनी एकाग्रता का दबाव पड़ा, इतना आनन्द बाहर आता है। ऐसे आनन्द में यह क्या? यह क्या? ऐसा कहते हैं यहाँ। आचार्य कहते हैं कि अरे! लज्जा नहीं आती भगवान? यह उस आहार का भिखारी है तू? तपोधन नहीं, जा। समझ में आया?

भोजन के लोलुपी हैं। तीसरा विशेषण। **गृद्ध पक्षी के समान हैं।** है न। गृद्ध पक्षी होता है न, यह गृद्ध पक्षी। वह मुर्दे को खाता है न। वह होगा। यह पाठ आया न पहले? १११ में आया था। '**भोयण-गिद्धी विवज्जेसु**' गृद्धि वर्जित करे। वरना गृद्ध पक्षी जैसा है, ऐसा समझना। इसमें आता है आगे। श्वेताम्बर में भी आता है। सूयगडांग में आता है। गृद्ध पक्षी जैसा है। क्योंकि उसमें से सब थोड़ा-थोड़ा लिया हुआ है न उन लोगों ने (श्वेताम्बरों ने)। गृद्ध पक्षी जैसा है। आहार लेने जाये और यदि गृद्धि हो... गृद्ध पक्षी नहीं होता गीधड़ा? गीधड़ा जैसा है? ऐसा सूयगडांग में पाठ है, सूयगडांग में। थोड़ा-थोड़ा तो लिया हो न इसमें से। निकले थे इसमें से। पद्धति थोड़ी-थोड़ी सब ली है। वस्तु ही भूल गये हैं पूरी। कहो, समझ में आया?

ऐसे लोलुपी यति देह में अनुरागी होते हैं,... देह में प्रेम है, भगवान आत्मा के आनन्द का प्रेम नहीं उन्हें। जिसका ज्ञान शरीर है, जिसका आनन्द शरीर है, ऐसा चैतन्य उसकी उसे रुचि और प्रेम, उसकी दृष्टि नहीं। इसलिए वह देह, मिट्टी, माँस को पोषने के लिये रस का रागी हो गया। रस का रागी हो गया, रस का अनुरागी हो गया है। **परमात्म-पदार्थ को नहीं जानते।** वह यह चौथे पद का अर्थ किया। चौथा पद है न। '**णवि परमत्थु मुणंति**' इसका अर्थ किया। भगवान परमपदार्थ प्रभु अकेला अतीन्द्रिय आनन्द, नित्यानन्द, आनन्दं। पण्डितजी! ब्रह्मणु रूपमं। आत्म ... ब्रह्मस्वरूपम्। ब्रह्म अर्थात् भगवान आत्मा आनन्द उसका रूप है। अतीन्द्रिय उसका स्वाद है। ऐसे स्वरूप को, कहते हैं कि भूल गया, भाई! तू उसे जानता नहीं।

गृहस्थों के तो दानादिक ही बड़े धर्म हैं। धर्म अर्थात् शुभभाव। अशुभ से बचने

के लिये गृहस्थों को शुभ परमधर्म कहा गया है। प्रवचनसार में चरणानुयोग (सूचक चूलिका) में भी आता है। है न! अशुभभाव से बचता है। महान मुनि भक्ति करनेयोग्य आवे, उनका प्रेम उल्लसित होता है, ऐसा भाव उसे शुभभाव व्यवहार से परमधर्म कहा जाता है। धर्म तो निर्विकल्प शान्ति और दृष्टि, स्थिरता, वह धर्म है। कहते हैं, ऐसे मुनि को आहार, वह गृहस्थ भक्ति से समकिती दे, उसमें क्या? समझ में आया? **श्रावक का तो यही बड़ा धर्म है।** इस अपेक्षा से शुभ को, अशुभ से बहुत छूटता है, इसलिए उसे धर्म कहा गया है व्यवहार।

जो कि यति, अर्जिका, श्रावक, श्राविका इन सबको विनयपूर्वक आहार दे। समझ में आया? '**शुद्धोपयोगपरमधर्मरतैस्तपोधनैस्त्वन्नपानादिविषये मानापमानसमतां कृत्वा**' उसे समता करना ऐसा। अब कहते हैं यहाँ तो। **यति, अर्जिका, श्रावक, श्राविका इन सबको विनयपूर्वक आहार दे। और यति का यही धर्म है, अन्न जलादि में राग न करे,...** आगे परमात्मप्रकाश में आया है। पहले वाँचन हुआ था न। मुनि (आदि) चार संघ को श्रावक महा भक्ति से आहार दे। चार संघ को, हों! साधु, आर्यिका साधु। समझ में आया? वे रत्नत्रय, भेदाभेदरत्नत्रय के आराधक गिने हैं चारों को। द्रव्यसंग्रह में, परमात्मप्रकाश में भेदाभेदरत्नत्रय के आराधक गिने हैं। समझ में आया? कहा था या नहीं? पहले निकाला था। एक शब्द अभी निकाला था न? यह सब बोल तो बहुत लिखे हैं परन्तु अब कहीं होंगे। एक बार अभी निकाला था। समयसार, परमात्मप्रकाश। निकाला था। परसों निकाला था। अब आयेगा देखो। ३१२ है। यह परसों शाम को बताया था। ३१२ है देखो। ३१२ पृष्ठ है इसमें, हों!

निश्चय-व्यवहाररत्नत्रय के आराधक यति आदि चार प्रकार संघ उनको चार प्रकार का दान भक्तिकर नहीं दिया... क्या किया तूने? यह गाथा १६८, १६८। संस्कृत टीका में है। १६८। '**मुणिवरहं निश्चयव्यवहाररत्नत्रयाराधकानां मुनिवरादिचतुर्विध-संघस्थितानां पात्राणां**' यह है, लो! १६८ है। ऐसी बहुत गाथायें हैं। द्रव्यसंग्रह में है, उसमें है। यह तो एक नमूना। चार संघ को निश्चय-व्यवहाररत्नत्रय के आराधक कहे हैं। ऐसा नहीं कि अकेले व्यवहार के करनेवाले और निश्चय नहीं। निश्चय नहीं तो व्यवहार किसका? चारों को—साधु, आर्यिका, श्रावक और श्राविका। अन्तर निश्चय

स्वद्रव्य की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता और परद्रव्य की ओर का विकल्प व्यवहाररत्नत्रय का एक साथ में होता है। इसलिए निश्चय-व्यवहाररत्नत्रय यहाँ तो स्पष्ट शब्द है। कहीं भेदाभेदरत्नत्रय कहा है, कहीं बाह्य-अभ्यन्तर रत्नत्रय कहा है। बाह्य और अभ्यन्तर। बाह्य रत्नत्रय व्यवहार और निश्चयरत्नत्रय निश्चय। ऐसे भिन्न-भिन्न शब्द से (कहा है)। कहीं शुद्ध रत्नत्रय, अशुद्ध रत्नत्रय कहा है। बहुत प्रकार की शैली है। पाठ में सब शैली। द्रव्यसंग्रह में है। यह सब बहुत इसमें लिखा था।

मुमुक्षु : दो पृष्ठ इसके हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, इसके नहीं। समयसार का है, बहुत है। यह तो एक नमूना। एक गाथा और इतना लिखा हो। इतना अधिक कौन... यह तो अभी पृष्ठ हैं। देखो, यह द्रव्यसंग्रह का है, यह सब। यह है। समझे न? द्रव्यसंग्रह का है। यह है वह समयसार का है। यह है वह परमात्मप्रकाश का है। भोपाल ले गया था यह। समय नहीं मिला। कहो, समझ में आया? इसका समय मिले तब हो न।

क्या कहते हैं? यह निश्चय-व्यवहाररत्नत्रय के चार संघ आराधक भगवान आचार्य ने कहे हैं। श्राविका भी निश्चयरत्नत्रय की आराधक। भले एक विशेष है मुनि को चारित्र की स्थिरता। परन्तु यहाँ चारित्र है या नहीं? नहीं? दो कषाय (चौकड़ी) का अभाव। आहाहा! एक तो अनन्तानुबन्धी का अभाव होकर अनन्त स्वरूपाचरण प्रगट हुआ और दूसरा अप्रत्याख्यानी का नाश होकर अन्दर चारित्र का, शान्ति का प्रगट हुआ। ऐसा उसे निश्चयरत्नत्रय कहा जाता है। श्राविका आठ वर्ष की लड़की / बालिका हो। आठ वर्ष की बालिका। परन्तु अन्दर में पंचम गुणस्थान प्राप्त हो, निश्चयरत्नत्रय आराधक उसे कहा जाता है।

अरे! पशु। असंख्य पशु पड़े हैं पंचम गुणस्थानवाले ढाई द्वीप के बाहर। यह मनुष्य तो कितने हैं? थोड़े-थोड़े संख्या (में)। असंख्य का बड़ा थोक (तिर्यंच का)। वहाँ भी एक समकिती पंचमवाला और असंख्य मिथ्यादृष्टि। इतनी तिर्यंच की संख्या। ऐसे पंचम गुणस्थानवाले श्रावक असंख्य पड़े हैं बाहर, ढाई द्वीप के बाहर। कोई तो तीन ज्ञान के धनी, कोई जातिस्मरण ज्ञानी पंचम गुणस्थान। ओहोहो! स्त्री हो कोई, कोई

पुरुष हो पशु, मगरमच्छ हो, मच्छ हो, मेंढ़क-मेंढ़की, सिंह-सिंहणी, बाघ-बाघिन। आहाहा! आत्मा है न! शरीर भले रहा ऐसा। अन्दर में निश्चय-व्यवहार दोनों को आराधता—सेवन करता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ढोर में, मनुष्य में कहीं सुख नहीं। आत्मा में सुख है। वहाँ उसमें—आत्मा में सुख है, वहाँ ढोर में नहीं। ढोर अर्थात् वे पशु। पशु तो चमड़े के आकार को कहते हैं। आत्मा कहाँ पशु था? आहाहा! एक हजार योजन का लम्बा मच्छ। हजार योजन, चार हजार कोस। स्वयंभूरमण समुद्र। ऐसे पूँछ ऐसे हिलावे वहाँ कितने ही पानी के जीव मरते हों। यह स्थिति नहीं। अन्दर में वस्तु का आश्रय-दृष्टि हो गयी है और रमणता भी दूसरे कषाय के अभाव की भी हुई है तो वह भी निश्चय -व्यवहाररत्नत्रय के आराधक हैं। परन्तु वह तो यहाँ आते नहीं। क्या आवे? यह है देखना हो तो। वह नहीं भरत का हाथी? त्रिलोकमण्डन हाथी। भरत ने जब दीक्षा ली, जातिस्मरण हुआ हाथी को, देखो! आहार देते हैं, देखो यह। यह पंचम गुणस्थान अन्दर प्रगट हुआ है। आहाहा! लो, यह तो और प्रत्यक्ष आया।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, माया तो बाद में ... हो गया न। श्रावक हो गया बाद में।

मुमुक्षु : पहले .... था।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह होगा तो बहुत खबर नहीं। यह तो अभी की मेरी इतनी। बहुत इतिहास की खबर नहीं होती। परन्तु यह भरत का भाई था। यह वह भागकर, क्या कहलाता है? पूर्व भव के मित्र। भरत ने दीक्षा ली, इसलिए उसे वैराग्य हो गया। जातिस्मरण हुआ कि अरे! हम तो साथ में थे। जातिस्मरण हुआ इकट्ठा ... पन्द्रह-पन्द्रह दिन में आहार करे। उदास-उदास। यह देह... ऐसे रानियाँ... समता है। दो कषाय (चौकड़ी) का नाश है। समझ में आया? आत्मा है न। पंचम भूमिका तो हो सकती है। मुनिपना नहीं हो सकता। समझ में आया? ऐसे तो असंख्य श्रावक पड़े हैं असंख्य। आहाहा! आत्मा... आत्मा... आत्मा...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह और अलग। आहाहा! आठवें देवलोक में जहाँ जीव उपजते हैं न? शास्त्र में ऐसा लेख है कि एक समय में असंख्य उपजते हैं कोई। असंख्य वहाँ उपजे पशु मरकर। एक समय में, हों! तब प्रश्न उठता था पहला। यह तो १९७६-७७ से पहले। असंख्य उपजे, तो समकिती आराधक एक समय में असंख्य उपजे या नहीं? कि वे उपजे। समान स्थिति में उपजे या नहीं? यह प्रश्न उठा था पहला। क्या कहा? ऐसा कि असंख्य, पाठ शास्त्र में है कि असंख्य एक समय में उपजे वहाँ तिर्यंच। एक समय में, हों! तब एक समय में उपजे तो समकिती एक समय में असंख्य उपजे या नहीं? कि भाई! उपजे। परन्तु समान स्थिति में उपजे या नहीं? नहीं उपजे। क्योंकि समान स्थिति में असंख्य आराधक समकिती यदि वहाँ उपजे तो उन्हें देह की स्थिति पूरी होकर मनुष्य में आना है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह होगा। यह तो दूसरी बात चलती है। समझ में आया? यह तो ७८-७९ में सब प्रश्न बहुत उठते ऐसे। यह पूछा था, लिखा हुआ प्रश्न है। ७९ में नहीं? १८५। १८५ प्रश्न लिखे हुए हैं ७९ के वर्ष के। एक साधु आया था। बहुत जानते हैं हम, कहे। मैंने कहा दो उत्तर दो इसके थोड़े। एक साधु था। २२ भाषाएँ जानता हूँ। मैंने तो इतना प्रश्न पूछा था कि ३२ सूत्र में उत्पाद-व्यय-ध्रुव कहाँ है? उत्पाद-व्यय-ध्रुव। ३२ सूत्र, ७१ हजार श्लोक है मूल पाठ। ७९ की बात है, संवत् (१९७९)। तो मूल पाठ में उत्पाद-व्यय-ध्रुव कहाँ है? यदि बहुत जानपना कहते हैं न। बहुत जानपना धराते। कहा, यह हमारा एक प्रश्न है। तो ऐसे तो प्रश्न कहीं नहीं आते। मैंने कहा, नहीं चलता इसका अर्थ क्या? उत्पाद-व्यय-ध्रुव वस्तु का स्वरूप है। वह उत्पाद-व्यय-ध्रुव किसे कहना, ऐसा नहीं पूछता, मैंने कहा। मैं तो पूछता हूँ कि उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीन शब्द ३२ सूत्र के ७१ हजार श्लोक हैं। सब पढ़े हुए न तब तो ७९ में। उसमें शब्द कहाँ हैं तीन, बस इतनी बात है। उलझन में आया। वह पाठ में शब्द कहाँ है वह लाओ।

उस समय यह प्रश्न उठे थे। आराधक जीव तिर्यंच समकिती एक समय में असंख्य समान स्थिति में नहीं उपज सकते। यदि समान स्थिति में उपजे तो स्थिति पूरी होकर जाना कहाँ असंख्य को? मनुष्य तो थोड़े हैं। आड़ी-टेढ़ी (कम-ज्यादा) स्थिति में उपजते हैं। बहुत काल असंख्य वर्ष का हो जाये न। तो नम्बर से... नम्बर से... मनुष्य में आवे। यह तिर्यंच इतने असंख्य पड़े हैं। आहाहा!

कहते हैं कि **श्रावक का तो यही बड़ा धर्म है, जो कि यति, अर्जिका, श्रावक, श्राविका इन सबको विनयपूर्वक आहार दे।** देखा! ये चारों ही रत्नत्रय के आराधक हैं। **और यति का यही धर्म है, अन्न-जलादि में राग न करे,...** विकल्प आया इतना है। इससे विशेष होता नहीं। समता... समता... समतारस के सागर मुनि शान्ति में स्थित हों (स्वरूप में) डुबकी (लगाकर)। समता... समता... समता... मोह-क्षोभरहित जहाँ परिणाम हों, उस शान्ति का क्या कहना? समझ में आया? **मान-अपमान में समताभाव रखे।** बाहर के अनुकूल-प्रतिकूल तो पुण्य-पाप के निमित्त से ऐसा संयोग हो बाहर में। संयोग में आत्मा कहाँ है? बाहर के मान-अपमान में आत्मा को क्या है? अपने स्वरूप का शुद्ध श्रद्धा, भान का अनुभव वर्तता है। भगवान कहते हैं कि वह आराधक जीव है। अब तुझे मान किसका लेना है? समझ में आया?

आनन्दघनजी कहते हैं, 'लही भव्यता मोटुं मान, कौन अभव्य त्रिभुवन अपमान।' जिसे सर्वज्ञ परमात्मा के ज्ञान में आया हो और अपना आत्मा आराधकरूप से वर्तता है, उसे कहते हैं कि भगवान के ज्ञान में है कि वह आराधक है। अब तुझे किसका मान चाहिए है? और सर्वज्ञ के ज्ञान में वर्तता हो कि विराधक मिथ्यादृष्टि है, मूढ़ दृष्टि है, किसका अपमान चाहिए तुझे अब? समझ में आया? यह शब्द है आनन्दघनजी का। 'लही भव्यता मोटुं मान।' भगवान के मुख में ऐसा आवे कि ज्ञान में आया कि यह तो आराधक समकिती जीव एकावतारी हो गया। और (यह) अभव्य है अथवा नालायक है, ऐसा उनके ज्ञान में आया। अब तुझे किसका अपमान चाहिए है? उनके ज्ञान में आया कि आराधक है तो तुझे अब किसका मान चाहिए है? समझ में आया?

कहते हैं, मुनि **मान-अपमान में समताभाव रखे। गृहस्थ के घर जो निर्दोष**

आहारादिक जैसा मिले... देखो, **जैसा मिले, वैसा लेवे,...** लेवे, यह ग्रहण-त्याग की बात नहीं। अभी लेते हैं, ऐसा विकल्प है न। इसलिए लेना और देना, वह विकल्प आया, इसलिए क्रिया करते हैं, यह कुछ अभी सिद्ध नहीं करना। अभी तो यह निर्दोष की वृत्ति है तो निर्दोष आहार ले, ऐसी अपेक्षा से बात है। **चाहे चावल मिले, चाहे अन्य कुछ मिले।** चावल अकेले मिलें चावल। छिलके जैसे हों वापस। व्यवस्थित पके हुए भी न हों। शान्ति रख। **मिले उसमें हर्ष-विषाद न करे। दूध, दही, घी, मिष्टान्न इनमें इच्छा न करे। यही जिनमार्ग में यति की रीति है।** आहाहा! ऐसी वीतराग मार्ग में, वीतराग मार्ग में (रीति है)। मार्ग वह कहीं पर्याय में रहता होगा या नहीं? मार्ग कहीं बाहर रहता होगा? समझ में आया? यह वीतराग मार्ग की परिणति में जिनमार्ग की यति की यह रीति है। आहाहा!

वे कहे, मुनियों को मानते नहीं। बापू! मुनियों का तो नाम जहाँ आवे, वहाँ अन्दर उल्लास (आता है)। मुनि कहना किसे भाई! क्या कहे? ये मुनि को मानते नहीं, लो! पण्डितजी! पण्डितजी ने सुना है या नहीं? भगवान! अरे! आहाहा! धन्य अवतार! मुनि चारित्रवन्त 'णमो लोए सव्व साहूणं।' जिन्हें गणधर चरण में नमे, गणधर बारह अंग की रचना अन्तर्मुहूर्त में करने की सामर्थ्यवाले सन्त, अन्तर्मुहूर्त में चार ज्ञान की पर्याय प्रगट करनेवाला सन्त, वह बारह अंग की रचना में 'णमो लोए सव्व साहूणं' (कहे)। आहाहा! यह प्रभुपद वह कितना! कैसा! समझ में आया? वह तो परमेश्वर में सम्मिलित हो गया, पाँच परमेष्ठी में सम्मिलित हो गया। कहते हैं, **जिनमार्ग में यति की रीति है।** जिनमार्ग ही मार्ग है। दूसरा कोई मार्ग कहीं है ही नहीं।

★ ★ ★

गाथा - ११२

आगे शुद्धात्मा की प्राप्ति के अभाव में जो विषयी जीव पाँच इन्द्रियों के विषयों में आसक्त हैं, उनका अकाज (विनाश) होता है,... 'सति पञ्चेन्द्रियविषयासक्त जीवानां विनाशं दर्शयति' पाठ विनाश है अन्दर, हों! अकाज ऐसा पाठ लिखा है। **ऐसा दिखलाते हैं—** अब पाँच इन्द्रिय के दृष्टान्त देते हैं। ११२ (गाथा)।

२४२) रुवि पयंगा सद्दि मय गय फासहिँ णासंति।
अलिउल गंधइँ मच्छ रसि किम अणुराउ करंति ॥११२॥

रूप में लीन हुए पतंग जीव दीपक में जलकर मर जाते हैं,... दृष्टान्त दिया आचार्य ने। **पतंग जीव दीपक में जलकर...** दीपक ऐसे जलता है न। सोना का ऐसा दिखता है ऐसा सोना-सोना। दीपक जलता हो तो सोना-सोना। ऐसे जाता है वहाँ एकदम... यह रूप की गृद्धि देह का दहन कर डालती है, देह का नाश हो जाता है तो भी वह विषय को छोड़ता नहीं। **शब्द विषय में लीन हिरण व्याघ के बाणों से मारे जाते हैं,...** शब्द में वीणा बजती हो। सारस-मृगों को बहुत मिठास है उसमें। ऐसे लीन हो जाये, वहाँ शिकारी आकर मार डालते हैं। अरे... भगवान! शब्द की गृद्धि में देह का भी अभाव! देह के अभाव की स्थिति का प्रसंग बनेगा, वह भी तुझे जवाबदारी की खबर नहीं? गृद्धि है।

भगवान आत्मा के आनन्द की रुचि बिना... उसकी बात है यहाँ, हों! विषयों में रुचि किसे है? सम्यग्दृष्टि को रुचि नहीं। आहाहा! वह छियानवें हजार (स्त्रियों को) भोगे, परन्तु उसे रुचि नहीं। उसमें स्वाद-मिठास नहीं मानता, दुःख मानता है। आसक्ति दूसरी बात है, रुचि नहीं। आनन्द की रुचि हुई है, जहाँ अतीन्द्रिय भगवान आत्मा की जहाँ ऐसी रुचि, प्रीति जमी है, वह छियानवे हजार स्त्रियों के वृन्द में पड़ा भोग में दिखाई दे, परन्तु वह आनन्द का प्रेम, उसे अन्तर से छूटता नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : रुचि तो दृष्टि के विषयरूप से कहा, आसक्ति अस्थिरता की

अपेक्षा से कहा। वह अस्थिरता आने पर भी उसमें मिठास नहीं। अज्ञानी को अस्थिरता आवे, उसमें मिठास अर्थात् रुचि साथ में है, ऐसा यहाँ कहना है। पाँच इन्द्रिय के विषयों की ओर लक्ष्य जाने पर अज्ञानी को उसमें मिठास आती है। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय प्रभु को वह भूल जाता है। समझ में आया? इसलिए यह दृष्टान्त देकर अज्ञानी की बात करते हैं। मुनि होकर भी तुझे आत्मा के आनन्द का भान नहीं और यह पाँच इन्द्रिय के विषय जरा रूप देखे, जरा यह देखे, जरा यह देखे। यह तुझे क्या हो गया है? ऐसा कहते हैं। उपदेश की पद्धति तो उत्कृष्ट होती है न।

बाणों से मारे जाते हैं। हाथी स्पर्श विषय के कारण गड्ढे में पड़कर बाँधे जाते हैं,... खड्डे में डाल देते हैं न हाथी को। गृद्धि होकर। आहाहा! इस शरीर का नाश होगा, परन्तु विषय की गृद्धि उसे देखने नहीं देती। विषय की गृद्धि। भगवान आत्मा के आनन्द की जहाँ रुचि हुई है, उसे विषय की रुचि जहर जैसी लगती है। समझ में आया? इसलिए कहा है न, ज्ञानी के भोग निर्जरा का हेतु। हेतु, वह भोग निर्जरा का हेतु नहीं, वह तो अशुभभाव है, परन्तु अन्दर की रुचि हटती नहीं। आनन्द... आनन्द... आनन्द... वह आनन्द का स्वाद कहीं तीन काल में नहीं राग में। ऐसी सम्यग्दृष्टि को अन्तर की दृष्टि की रुचि हुई है। उसे राग में रुचि होने नहीं देती। समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं कि अज्ञानी एक-एक विषय में गृद्धि के (कारण से) मर जाता है। स्पर्श के विषय में खड्डे में।

सुगन्ध की लोलुपता से भौंरे काँटों में या कमल में दबकर प्राण छोड़ देते... भँवरा-भँवरा। ऐसे शाम को जाये। फूल की सुगन्ध लगे, (इसलिए) घुस जाये अन्दर में। शाम को (फूल) संकुचित हो जाये ऐसे, राग है इसलिए। कुतरकर निकले ऐसी सामर्थ्य है, (परन्तु) निकलता नहीं। उसमें हाथी-बाथी आवे तो... विषय में एकाकार है। उसका ध्येय अकेला विषय में, ऐसा कहना है यहाँ। जिसका ध्येय आनन्द का प्रगट हुआ है, उसे विषय का ध्येय नहीं होता। फिर आसक्ति आ जाये वह अलग बात, परन्तु उसका ध्येय नहीं वह। समझ में आया? यह बड़ा पलटा दृष्टि और अस्थिरता का, यह लोगों को विवेक करना बहुत कठिन है। समझ में आया?

रस के लोभी मच्छ धीवर के जल में पड़कर मारे जाते हैं। आटे की गोलियाँ होती है न। लोट—आटा। लोहे के उसमें डाले। एक आटे के रस में एकाकार हो गया है। विवेक नहीं, परन्तु पीछे यह काँटा वह क्या? ऐसा फट... उसकी गृद्धि हो गयी है, भर जाये। वह खींच ले। **एक-एक विषय कषायकर आसक्त हुए जीव नाश को प्राप्त होते हैं,...** तो पंचेन्द्रिय का कहना ही क्या? पाँचों ही इन्द्रिय में गृद्धि जहाँ घड़ीक में यह और घड़ीक में यह और घड़की में यह। रूप देखे और रस देखे और यह देखे और पूड़ी देखे। रूपवाली स्त्री देखे, कुछ सुगन्ध देखे, अच्छे फूल झाड़। और कोई हारमोनियम की आवाज बारीक देखे ...वाले। घड़ीक-घड़ीक में एकाकार हो जाता है, कहते हैं। यह एक-एक इन्द्रियवाला मर जाता है तो पाँचों इन्द्रिय में तेरा ध्यान वहाँ ध्येय रहा है अकेला। भगवान आनन्द को तो पकड़ा नहीं। महा भगवान विराजता है। जिसमें अकेला शान्तरस डोलता है। शान्त अकषाय स्वभाव। उसकी रुचि हो तो तुझे यह गृद्धि किसकी हो? ऐसा कहते हैं मूल तो। समझ में आया? **ऐसा जानकर विवेकी जीव विषयों में क्या प्रीति करते हैं? कभी नहीं करते।** प्रीति-रुचि नहीं करते। मुनि आदि हों, उन्हें आसक्ति भी नहीं।

भावार्थ :- पंचेन्द्रिय के विषयों की इच्छा आदि जो सब खोटे ध्यान वे ही हुए विकल्प उनसे रहित विषय-कषाय रहित जो निर्दोष परमात्मा... देखो, दो-तीन बात अटपटी करेंगे। एक तो पाँच इन्द्रिय के विषय की इच्छा हो, वह खोटा ध्यान। **वे ही हुए विकल्प, उनसे रहित विषय-कषाय रहित जो निर्दोष परमात्मा...** भगवान आत्मा पर के विषय के प्रेम के रागरहित चीज़ है। वह पर के प्रेम-विषय के, राग और विषय से रहित चीज़ है। ऐसा जो भगवान अपना **निर्दोष परमात्मा उसका सम्यक् श्रद्धान...** ऐसा भगवान आत्मा, उसकी सच्ची श्रद्धा, सत्य श्रद्धा, स्वरूप है वैसी सामर्थ्य जितनी है, उतनीवाला श्रद्धा, वैसा ही ज्ञान सम्यग्ज्ञान, आत्मा का सम्यग्ज्ञान और आत्मा का आचरण, वह निर्विकल्प समाधि, वह रागरहित शान्ति। समाधि अर्थात् रागरहित शान्ति। भगवान आत्मा अपने निजानन्दस्वरूप की रुचि, उसका ज्ञान और रागरहित स्थिरता, वह शान्तिरूप समाधि।

उससे उत्पन्न वीतराग परम आह्लादरूप सुख-अमृत,... देखो, उससे उत्पन्न हुआ आत्मा में रागरहित परम आनन्दरूप सुख—अमृत, आह्लादरूप सुख-अमृत। **उसके रस के स्वादकर पूर्ण कलश की तरह भरे हुए...** भगवान आत्मा। आहाहा! देखो, उसके **रस के स्वादकर पूर्ण कलश की तरह भरे हुए...** पूर्ण कलश भरा हो न, कलश। उसी प्रकार यह कलश का आकार है न देह का, देखो न! यह देह का कलश का आकार है, भगवान भी अन्दर उसके आकार से अपने कारण से आत्मा विराजमान है। वह कलश में जैसे भरी हो मिठास, वैसे पूरे आत्मा का कलशरूप आत्मा में आनन्द भरा है, कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : गन्ने का रस भरा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : गन्ने का रस तो धूल है। यह तो अमृतरस भरा है। सुखामृत। समझ में आया? आता है न इसमें अपने, नहीं? ९७ में नहीं आता। ९७वें गाथा में आता है। लिया है न। देखो, ९७ में लिया है न? 'अनादिनिधन निरंतर स्वाद में आता हुआ समस्त अन्य रस से विलक्षण अत्यन्त मधुर जो चैतन्यरस, वही जिसका एक रस है, ऐसा आत्मा है।' (समयसार) ९७ गाथा है न कर्ताकर्म (अधिकार) की। गन्ने में... शेरडी कहते हैं न? गन्ना। उसमें रस भिन्न और छिलका-छिलका होता है न छिलका? दोनों भिन्न हैं। आत्मरस, आनन्दरस भिन्न है और पुण्य-पाप का विकल्प वह छिलका भिन्न है।

'अत्यन्त मधुर' शब्द इतना प्रयोग किया है। क्या करे? मधुर (अर्थात्) कहीं यह (बाहर का) मीठा है यह मीठा? शब्द प्रयोग करना कैसे? 'अत्यन्त मधुर और समस्त अन्य रस से विलक्षण निरन्तर स्वाद में आता हुआ चैतन्यरस, वही जिसका एक रस है, ऐसा आत्मा है।' उसे आत्मा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? और 'कषायें उससे भिन्न रसवाली...' कषायला बेस्वाद है। 'यह उनके साथ एकपने का विकल्प करो, वह अज्ञान से है।' कर्ताकर्म है न? भगवान आनन्दमूर्ति प्रभु से उत्पन्न हुआ आनन्द...

केवलज्ञानादि व्यक्तिरूप कार्यसमयसार। देखो, इस **तरह भरे हुए जो केवलज्ञानादि व्यक्तिरूप...** हों प्रगटरूप अब। **कार्यसमयसार...** केवलज्ञान। कार्यसमयसार

हुआ न वह ? केवलज्ञानादि अमृत की पर्याय पूर्ण प्रगट हुई ऐसी अन्दर। **उसका उत्पन्न करनेवाला जो शुद्धोपयोगरूप कारणसमयसार,...** लो! भगवान सर्वज्ञ परमात्मा को कार्यसमयसार कहते हैं। क्योंकि परम केवलज्ञानादि पूर्ण दशा के रस की पूर्ण प्राप्ति जिन्हें हो गयी, इसलिए उसे कार्यसमयसार अथवा कार्य जीव अथवा कार्यपरमात्मा (कहते हैं)। उसका कारण कौन? कि **शुद्धोपयोगरूप कारणसमयसार,...** देखा! **शुद्धोपयोगरूपी कारणसमयसार,...** समझ में आया? देखो, '**कार्यसमयसारस्योत्पादकः शुद्धोपयोगस्वभावो योऽसावेवंभूतः कारणसमयसारः**' बाद में कहेंगे, उसकी भावनारहित जीव विषय में गृद्धि होती है, ऐसा कहेंगे। समझ में आया?

भगवान आत्मा पूर्ण केवलज्ञानादि का कार्य प्रगट करे, वह किस कारण से प्रगट करे? कि शुद्धोपयोगरूपी कारण से—उपयोग से प्रगट करे। भगवान वह कारण उपयोग है, वह पर्याय है। कार्यपरमात्मा वह पर्याय है। कार्यसमयसार कहा, वह भी एक पर्याय है और कारण शुद्धोपयोग कहा, वह भी एक पर्याय है। द्रव्य-गुण त्रिकाल है। द्रव्य और उसके गुण, द्रव्य एक, गुण अनन्त, वे त्रिकाल हैं। आत्म भगवान वस्तु और गुण। गुण वह द्रव्य हो जाये, वह एक ही गुण, वह द्रव्य हो जाये। द्रव्य, अनन्त गुण, वह त्रिकाल है। और उसका कारणव्यापार शुद्ध श्रद्धा, शुद्ध ज्ञान, शुद्ध रमणता, वह शुद्ध उपयोगरूपी कारणपर्याय, वह कारणसमयसार अथवा मोक्षमार्ग निश्चय, वह कार्यसमयसार का कारण है। देखो! बीच में व्यवहार-फ्यवहार की बात की ही नहीं। गजब बात भाई! बड़ी-बड़ी बातें लगे लोगों को, हों! भाई! तू बड़ा है, बापू! तेरी महत्ता की बातें केवली पूरी कह सके नहीं। आहाहा! क्या कहे?

कहते हैं, **केवलज्ञानादि...** प्रगट की बात है, हों! **व्यक्तिरूप कार्यसमयसार, उसका उत्पन्न करनेवाला...** उसका उत्पन्न करनेवाला कौन? कि **जो शुद्धोपयोगरूप कारणसमयसार...** शुभ उपयोग उसका कारण नहीं होता। देह, संहनन, मनुष्यदेह कारण नहीं होते। वह पूर्ण कार्यपरमात्मदशा मोक्षदशा को कारणरूप भगवान आत्मा का शुद्ध उपयोगरूपी आचरण, शुद्ध उपयोगरूपी आचरण ही कारणरूप होता है। उस कारण से उत्पन्न हो, वह कार्य कहलाता है। कहो, समझ में आया इसमें? इसमें एकान्त

नहीं होता? अकेला निश्चय लिया और व्यवहार नहीं। भाई! सुन न! यह निश्चय एक ही मोक्षमार्ग है।

मुमुक्षु : सहचर।

पूज्य गुरुदेवश्री : सहचर साथ में होता है, वह तो ज्ञान करने के लिये। आहाहा! यहाँ तो पूर्ण की कहाँ बात है?

उसकी भावना से रहित... अब तो यहाँ यह कहना है। ऐसा जो भगवान शुद्ध प्रभु चिदानन्दमूर्ति आनन्दरस भगवान आत्मा, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और उपयोग की रमणता—ऐसी भावनारहित **संसारीजीव विषयों के अनुरागी...** उसे ही यहाँ विषय के अनुरागी गिना है। जिसे अतीन्द्रिय आनन्द के रस की एकाग्रता और भावना नहीं, वही विषय के रस में एकाग्र हो जाता है। ऐसे ऐसी ही बात यहाँ ली है। समझ में आया? **पाँच इन्द्रिय के लोलुपी भव भव में नाश पाते हैं।** लो! वह (ज्ञानी को) मोक्ष हो, तब यह पाँच इन्द्रिय के विषय में गृद्धि, भगवान आत्मा की भावना रहित, शुद्ध उपयोग की भावना रहित वह पर की भावनासहित, वह चार गति में नाश पाता है। उसे परिभ्रमण मिटता नहीं। उसे परिभ्रमण मिटे, उसका उपाय और दोनों बात की है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

ज्येष्ठ कृष्ण ६, रविवार, दिनांक - २०-०६-१९६५
गाथा - ११२-११३ प्रवचन - १५३

यह परमात्मप्रकाश, दूसरा भाग है, उसकी यह ११२वीं गाथा। यहाँ आया है, देखो, आत्मा परमात्मस्वरूप है अन्दर। उसके—वस्तु के स्वभाव में परमात्मस्वरूप न हो तो पर्याय काल में परमात्मा प्रगट कहाँ से होगा? समझ में आया? परमात्मस्वरूप ही वस्तु है। द्रव्यस्वभाव। आत्मा का परम आत्मा अर्थात् परम अनन्त चतुष्टय—अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, ऐसे अनन्त चतुष्टय सम्पन्न भगवान आत्मा अपने द्रव्यस्वभाव में अनादि-अनन्त है। ऐसी दशा को प्राप्त करने के लिये, कहते हैं, कारण कौन? कार्य तो जो स्वरूप परमात्मा अनन्त चतुष्टय है, उसे प्रगट करना जो कार्य अनन्त चतुष्टय केवलज्ञानादि प्रगट पर्याय में—अवस्था में कार्य होता है। उस कार्य को कार्यसमयसार कहा जाता है।

भगवान आत्मा में जो अनन्त चतुष्टय सम्पन्न पूर्ण स्वभाव, उसके अवलम्बन से जो शुद्धोपयोगरूपी कारणसमयसार, शुद्ध उपयोग (प्रगट होता है)। क्योंकि वस्तु शुद्ध है, उसका अन्तर स्वरूप का व्यापार निज परमात्मा की दृष्टि, निज परमात्मा का ज्ञान, निज परमात्मा का अन्तर्मुख आचरण, उसे यहाँ शुद्ध उपयोगरूप कारणसमयसार कहा जाता है। समझ में आया? उस कारणसमयसार से केवलज्ञानादि व्यक्तिरूप कार्यसमयसार प्रगट होता है। कहो, समझ में आया?

उसका उत्पन्न करनेवाला जो शुद्धोपयोगरूप कारणसमयसार,... है। दूसरा कोई क्रियाकाण्ड व्रत, व्यवहार, विकल्प या निमित्त, वह पूर्ण भगवान आत्मा की पूर्ण आनन्ददशा अर्थात् कार्य आत्मा, कार्य परमात्मा, कार्य समयसार सब एक ही अर्थ है। कार्यसमयसार, कार्य आत्मा, कार्य परमात्मा ऐसी पूर्ण दशा को प्राप्त करने के लिये अन्तर चतुष्टय भगवान आत्मा पूर्ण पड़ा है, उसकी अन्तर में शुद्ध उपयोग की दृष्टि,

स्थिरता और एकाग्रता द्वारा—इस कारण द्वारा ही कार्य प्रगट होता है। दूसरा बीच में व्यवहार आदि आवे, वह जाननेयोग्य है, आदरनेयोग्य नहीं, ऐसा कहते हैं।

उस **भावना से रहित...** जिसे अपना स्वरूप निज परमात्मा की भावनारहित अर्थात् कि उसके ध्येय की एकाग्रतारहित। समझ में आया? भगवान एक समय में ध्रुव अनन्त गुणसम्पन्न अनन्त चतुष्टय उसके ध्रुव में पड़े हैं। उसकी एकाग्रता अर्थात् उस सन्मुख के अभिप्राय के परिणाम रहित **संसारीजीव...** अनादि संसारी प्राणी **विषयों के अनुरागी...** देखो, क्या कहते हैं यह? पाँच विषय के अनुरागी हैं। सम्यग्दृष्टि पाँच विषय के अनुरागी नहीं। आत्मा का स्वभाव पूर्ण अनन्त चतुष्टय सम्पन्न जहाँ सम्यग्दर्शन में-दृष्टि में लिया, ज्ञान स्वसंवेदन हुआ, आचरण भी स्वरूप आचरण योग्यता प्रमाण हुआ, उस स्वभाव की भावना ज्ञानी को होती है। ज्ञानी को विषय का राग वह अनुराग नहीं, राग का राग नहीं, राग का प्रेम नहीं, राग में एकाग्रता नहीं। राग से ज्ञान की, अपने शुद्ध स्वरूप की एकाग्रता के कारण से राग से ज्ञानी विरक्त है। समझ में आया?

ऐसा जानकर.... संसारी जीव विषयों के अनुरागी... विषय अर्थात्? ऐसे विषय जो चैतन्य ध्रुव ध्येय विषय चाहिए, उसकी ओर का ध्येय करके एकाग्रता चाहिए, वह नहीं होती, इसलिए उसे पाँच इन्द्रिय के (विषय)—शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, फिर वह चाहे जो वाणी भगवान की हो या दूसरी वाणी हो, भगवान स्वयं हो या साधारण स्त्री हो, आत्मा के विषय के ध्येय को छोड़कर परवस्तु के विषय की ओर का झुकाव, उसका अनुरागी। **पाँच इन्द्रियों के लोलुपी...** समझ में आया? स्व-विषय निज प्रभु की दृष्टि और एकाग्रता का अभाव, इससे पाँच इन्द्रिय के विषय के विकल्प का लोलुपी **भव-भव में नाश पाते हैं।** वह चार गति में परिभ्रमण करता है। ओहोहो! **भव-भव में नाश पाते हैं।** ऐसे रास्ते में एक बड़ा ... था भाई वह। आवें वहाँ ट्रक... चूरा। बहुत मर गये। ओहोहो! चूहे, वे जीव... ऐसे चैतन्य के अन्तर की खबर नहीं। उसमें उसके ऊपर वह ट्रक जहाँ आया, वह शरीर के ऊपर आया तो मैं दब गया और अन्दर (मर गया)। ... चूरा कितना रास्ते में, ओहोहो! ट्रक... यह अनादि काल से ऐसा का ऐसा शरीर का चूरा होता आया है।

भगवान आत्मा... वह तो पुद्गल—पूरण-गलन उसका स्वभाव है। परन्तु चैतन्य जो अखण्ड अभेद चैतन्य प्रभु अनन्त शक्तिसम्पन्न आत्मा है, उसकी दृष्टि और उसके सन्मुख की एकाग्रता बिना पाँच इन्द्रिय के विषय के लोलुपीरूप से भोगता हुआ भव-भव में नाश पाता है। कोई शरण नहीं। नरक में हो, नर में हो। यह हमारे... कहा था। नर, नारकी, निगोद और नौ ग्रैवेयक, चार नकार, सब न-ना। नर, नारकी, नौ ग्रैवेयक और निगोद। ऐसे छोर देखो तो सातवें नरक, ऐसे देखो तो नौवाँ ग्रैवेयक। स्वरूप की एकाग्र दृष्टि बिना यह उसका क्षेत्र और स्थान। ऐसे सातवें नरक, ऐसे नौ ग्रैवेयक, ऐसे निगोद। समझ में आया? उसमें किसी समय मनुष्यरूप से भव भी पावे। परन्तु वह आत्मा वस्तु की महिमा... सब महिमा विकल्प की, निमित्त की, संयोग की छोड़कर, वर्तमान प्रगट अवस्था की भी महिमा, माहात्म्य छोड़कर भगवान अन्दर व्यक्त—विद्यमान स्वभाव से परिपूर्ण प्रभु की दृष्टि और एकाग्रता बिना उसे भवभ्रमण का नाश कभी होता नहीं।

जिसमें भव का भाव नहीं, ऐसा भगवान स्वभाव की दृष्टि बिना भव के भाव का छेद कोई नहीं कर सकता। इसलिए कहते हैं कि ऐसा भगवान आत्मा, ओहो! उसके निज प्रभु के ऊपर उसे प्रेम नहीं आया। वल्लभदासभाई! निज... कहेंगे, लोभ कहेंगे तुरन्त गाथा में, फिर स्नेह कहेंगे। परमात्मा निजस्वरूप का इसे कभी ऐसे प्रेम नहीं लगा। उस प्रेम की लगन बिना इसे पाँच इन्द्रिय के विषय, पुण्य-पाप के भाव और उसके निमित्त के ऊपर इसकी लोलुपता और एकाग्रता ही वर्तती होती है। समझ में आया? इसलिए वे **भव-भव में नाश पाते हैं। ऐसा जानकर इन विषयों में विवेकी कैसे राग को प्राप्त होवें?** कहते हैं कि जहाँ पर के लक्ष्य से राग-द्वेष होते हैं और स्व के आश्रय से वीतरागदृष्टि होती है, ऐसे राग और स्वभाव की भिन्नता भानवाला विवेकी, वह पर में लोलुपता को कैसे करे? समझ में आया?

ऐसा जानकर इन विषयों में विवेकी कैसे राग को प्राप्त होवें? यहाँ तो राग की एकता की बात है, हों! राग-विकल्प होने पर भी वह तो भगवान पूर्ण आनन्द का पिण्ड दृष्टि में होने से, राग से विवेक अर्थात् भिन्न हुआ है दृष्टि का भान, वह अब विषयों के

राग में कैसे राचे ? जिसका राचना प्रभु के ऊपर हुआ है। अपनी प्रभुत्व शक्ति परमेश्वर स्वयं है। उस परमेश्वर के प्रति प्रीति हुई है, वह ऐसे पामर—पुण्य-पाप के राग के प्रति राचे कैसे ? समझ में आया ?

सम्यग्दृष्टि को वे छियानवें हजार स्त्रियाँ होती है, राग हो, एकाग्रता नहीं। एकाग्रता स्वभाव-सन्मुख ढली हुई है। दोनों को भिन्न जानता है अन्दर में। राग और स्वभाव दो को एक नहीं होता, इसलिए राग से विरक्त है ज्ञानी। अज्ञानी स्वभाव से विरक्त है। भगवान चिद्घन प्रभु अनाकुल शान्तरस का सागर, उसके सन्मुख न देखकर अकेले विकल्प और राग के सामने देखने से वह जीव अविवेकत्व में राचता है। विवेकी **कैसे राग को प्राप्त होवे ? कभी विषयाभिलाषी नहीं होते।** अभिलाषी नहीं होते हैं। अभिलाष—भावना तो स्वभाव की ज्ञानी को है। आहाहा! समझ में आया ? **कभी विषयाभिलाषी नहीं होते।** जिसमें सुख नहीं देखता और जिसमें सुख देखता है, देखता है, उसमें से दृष्टि कैसे हटे ? धर्मी को आत्मा आनन्दमूर्ति दृष्टि में दिखता है। आहाहा! सुख की सत्तावाला तत्त्व है अकेला, ऐसी दृष्टि में, उसे विषयाभिलाष कैसे हो सकती है ? **कभी विषयाभिलाषी नहीं होते।** समझ में आया ? यह छियानवें हजार (स्त्रियों के) वृन्द में पड़ा, परन्तु विषय का अभिलाषी नहीं, भावना नहीं। वह अस्थिरता आकर खिर जाती है। ऐसा बारम्बार किसी समय शुद्ध उपयोग में भी रम जाता है, वरना स्वभाव-सन्मुख की धारा तो एकाग्र चलती जाती है, चलती जाती है। आहाहा!

कहते हैं कि **कभी विषयाभिलाषी नहीं होते। पतंगादिक एक-एक विषय में लीन हुए नष्ट हो जाते हैं, लेकिन जो पाँच इन्द्रियों के विषयों में मोहित हैं, वे वीतराग चिदानन्दस्वभाव परमात्मतत्त्व...** देखो! महान वीतराग आत्मस्वभाव, पुण्य-पाप के विकल्प की वृत्ति के आस्रवतत्त्व रहित तत्त्व। वीतराग अर्थात् आस्रवतत्त्वरहित। है क्या तब ? चिदानन्दस्वभाव अस्ति। अकेला जिसमें ज्ञान और आनन्दस्वभाव, ज्ञानानन्दस्वभाव, ज्ञानानन्दस्वभाव। चिदानन्दस्वभाव ऐसा परमात्मतत्त्व। देखो! वह परमस्वरूप तत्त्व स्वयं परमात्मतत्त्व। समझ में आया ? **उसको न सेवते हुए,...** विकल्परहित चिदानन्द-स्वभाव, परमात्मभाव अपना, उसको न सेवते हुए, उसकी सेवा करता नहीं। उसे **न**

जानते हुए... अन्तर भगवान आत्मा है, उसे **न जानते हुए और न भावते हुए...** उसमें एकाग्र होता नहीं। **अज्ञानी जीव मिथ्यामार्ग को वांछते,...** देखो, यह शुभाशुभ परिणाम की भावना, वह मिथ्यामार्ग है। वह मार्ग सत्यमार्ग नहीं। शुभाशुभ विकल्प का मार्ग, वह मिथ्यामार्ग है। उस मार्ग में कहीं आत्मा की प्राप्ति नहीं होती। उस मार्ग से तो परिभ्रमण की प्राप्ति होती है। ऐसे **मिथ्यामार्ग को वांछते,...** यहाँ स्वभाव की भावना है नहीं, इसलिए यहाँ भावना हुए बिना रहती नहीं। महान प्रभु ऐसा आत्मा, उसकी भावना—एकाग्रता नहीं, इसलिए उसे विषय वांछा के अर्थात् जो कुछ इच्छा उत्पन्न हुई, उसमें ही उसकी वांछना, भावना, एकाग्रता, रक्तता, लीनता वर्तती है।

कुमार्ग की रुचि रखते हुए... देखो, कुमार्ग, वह मिथ्यामार्ग। विकार का भाव वह कुमार्ग है, वह कोई मार्ग नहीं। आहाहा! समझ में आया? अन्तर भगवान आत्मा पवित्रता के स्वभाववाला अन्तर मार्ग, वह सुमार्ग है कि जिस मार्ग से परमात्मपद पर्याय में प्राप्त होता है। जिस मार्ग से परमात्मपद पर्याय में प्राप्त होता है। इस मार्ग से तो नरक और निगोद प्राप्त होते हैं। आहाहा! वल्लभदासभाई! **कुमार्ग की रुचि रखते हुए...** देखो, यह शुभ-अशुभ विकल्प पर विषय लक्ष्यवाले, उनके प्रेम में फँसे हुए कुमार्ग की रुचि में पड़े हैं। समझ में आया? **नरकादि गति में घानी में पिलना,...** नरकादि गति में जाकर... यह संयोग की बात समझाने के लिये कहते हैं। लोग संयोग से दुःख देखते हैं न। वरना दुःख कहीं संयोग से नहीं, दुःख तो विकार की एकता का है। परन्तु लोग संयोग से देखे न। ऐसे जहाँ सर्प आवे, वहाँ ऐसे पड़े, घाणी में सिर डाले तो हाय... हाय... ऐसा हो जाये। वह दुःख घाणी में सिर पड़े ऐसा नहीं। दुःख तो विकार की एकता का है। लोग ऐसा देखते हैं, इसलिए कहते हैं कि घाणी में पिलना। देख तो सही। यह नरक के अन्दर घाणी में उल्टे सिर डाले ऐसे। सिर नीचे घाणी में। नीचे हो न वह लकड़े का। वह बड़ा लोहे का बनाकर जमडा (असुरकुमार) नरक के अन्दर, जम-जम, वह लोहे की बड़ी घाणी बनाकर, लोहे की बड़ी ऊपर डाले, तिल डाले और फिर सिर डाले। नीचे लोहे की और नीचे लोहा उसमें बीच में पोला रखे, उसमें सिर डाले। सिर फँस जाये।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ संयोग से बताते हैं। बात की पहले मैंने तो। लोग संयोग को देखते हैं न? पाप के भाव हुए, वह दुःख है, उसे देखते नहीं, परन्तु पाप के भाव से पाप बँधा, पश्चात् प्रतिकूल संयोग (आवे उसमें) यह... उसे लोग देखते हैं। यह... यह... इसलिए उस दृष्टि से बात की है। लोग ऐसा देखते हैं, ऊपर ऐसे छुरी पड़े, उसे दुःख मानते हैं, लोग तो ऐसा मानते हैं न! भाई! पाप के भाव किये थे, उसका बन्धन अशुभ हुआ था, उसके फलरूप से यह संयोग आते हैं। इसलिए लोग यह ऐसे पड़े (तो) हाय... हाय... ऐसा हुआ।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो ... वहाँ कहाँ घाणी थी? वह तो वैक्रियिक-वैक्रियिक। नदियाँ बनावे ऐसे लोहे के रस की, लोहे के रस की, स्त्री की लोहे की धगधगती पुतलियाँ बनावे। ले यह आलिंगन कर। आहाहा! वह ... है स्वभाव को भूला हुआ, विकार की एकता का दुःख है। देह की एकता का, ममता का दुःख है। देह तो जड़ है। समझ में आया? यहाँ उसे समझाते हैं कि भाई! तू संयोगी दृष्टिवाला है, इसलिए संयोग देखकर तुझे दुःख लगता है। हम तुझे कहते हैं कि ... घाणी में पिलना होगा, हों! ऐसी बात करते हैं। कथन पद्धति लोग जिस शैली से समझते हैं, उस शैली से उनसे बात करते हैं। समझ में आया?

करोंत से विदरना,... करवत-करवत ऐसी। आहाहा! करवत से टुकड़े (करे)। **और शूली पर चढ़ना,...** शूली, हों। यह अब तो फाँसी होती है। पहले शूली थी। लोहे की ऐसे शूली-शूली। '...लाठी की शूलियाँ' ऐसे महिलायें गाती हैं। छोटी उम्र में गाती हैं। वह दादो नहीं, क्या? दे दो। हाँ वह गाते हैं। लड़कियाँ गाती हैं वे। यह लाठी में पहले शूली थी। भावनगर का राज पहले लाठी में था। पुराना राज लाठी। वल्लभदासभाई! वहाँ शूली थी। ऐसे शूल... शूली, वह लोहे की हो, उसमें उसे पिरोवे। पहले यह था। यह अब फाँसी हो गयी अभी। पहले लोहे की शूली में पिरोवे। ऐसे खड़ा पीठ में डाले लोहे की शूली। पीठ में डाले ऐसे... ऐसा का ऐसा मरे वहाँ तक चौबीस घण्टे,

अड़तालीस घण्टे रहे। परन्तु बहुत त्रास हुआ, इसलिए राज ने वह निकाल दिया, फाँसी देते हैं।

वहाँ थी न, देखो! हम गये थे न जेल में। वहाँ एक ऑफिसर आये थे। ऐसा कि सब कैदियों को महाराज के दर्शन करना है। एक खूनी था (उसे) फाँसी पर चढ़ाने का निश्चित हो गया था। अन्दर पड़ा हुआ। फिर ऑफिसर आये। अहमदाबाद से अनुमति मँगाई, बहुत कैदी बहुत थे। एक महाराज गाँव में आये हैं, उनके इन कैदियों को दर्शन कराने हैं जेल में कैदियों को। ... आज्ञा आयी। अन्तिम दिन उठने का था, दोपहर में एक बजे वे लोग आये अधिकारी। ... पाव घण्टा, आधा घण्टा है। फिर वहाँ गये थे। सब कैदियों को इकट्ठा किया हुआ। दो बड़े दरवाजे। एक दरवाजा खोले तो यह दरवाजा बन्द रखे। क्योंकि कोई भागे तो? दो दरवाजे बड़े होते हैं। और यह दरवाजा खोले तो वह बन्द रखे। बीच में मात्र अन्तर तीन-चार हाथ का... इस प्रकार से खोलकर सब जेलर ऑफिसर बन्दूक सहित साथ में थे। अन्दर गये। १६५ जितने कैदी थे। पाव घण्टे बात की। उसमें एक सूत्र-पटिया लिखा हुआ था—'अज्ञान जैसा दुःख नहीं।' यह कैद में (जेल में) लिखा हुआ था। देखो! यह क्या लिखा है? आवेश में आकर अज्ञानरूप से ऐसे पाप हों, उसे फिर ... आहाहा! अज्ञान जैसा कोई दुःख नहीं। आत्मा का भान नहीं करना और पर के भान में एकाकार होना, उसके जैसा कोई जगत में दुःख नहीं। ऐसा लिखा हुआ जेल में, हों! कौन जाने कहाँ से ... पाव घण्टा हुआ न, बाहर निकले। फाँसी चढ़ाकर...

गाँव में राजपूत का पुत्र २२ वर्ष का जवान। एक लड़की को काट डाला रास्ते में। उसे फाँसी की सजा निश्चित हो गयी। लोग साथ में आये कमरे में ... बैठा था बेचारा। हम गये तो खड़ा हो गया। राजपूत का पुत्र था, २२ वर्ष का जवान लट्ठ। पैर छुए। इतनी दीनता। कुछ शब्द निकले नहीं मेरे मुख में से उसकी दीनता देखकर। भाई! तेरा नाम क्या? बस! इतना मैंने पूछा। ... फाँसी की सजा निश्चित हो गयी। एक ही कमरा छोटा। कपड़ा जाडा। डोरी-बोरी न हो। ऐसे डोरी-बोरी डालकर गले में फाँसी खा जाये तो? इसलिए डोरी नहीं रखते। परन्तु दीनता ऐसी देखी। भाई! तेरा नाम क्या?

बस, इतना कहा। बड़े ऑफिसर साथ में थे, उन्होंने ऐसा कहा कि अरे! आयुष्य का पाक हो। उसे क्या करे? आश्वासन देना पड़े न! आयुष्य का पाक हो, फिर क्या हो? इतना बोले ऑफिसर उसको सुनाने के लिये। परन्तु वह तो त्रास देखो तो। २२ वर्ष का जवान लोहा जैसा। ... चढ़ावे फाँसी पर। कभी अपने गये नहीं। तो ऑफिसर कहे, महाराज! चलो न जरा देखने। यह किस कमरे में हम फाँसी देते हैं। फिर वह कमरा... नाम से है। उस कमरे में ले गये। प्रोफेसर साथ में थे। यहाँ हम कैदी को लाते हैं। पीछे हाथ बाँधकर और बाहर निकालते हैं। ऐसा का ऐसा कमरे में से बाहर नहीं निकालते। जो कमरा था उसके पीछे हाथ बाँधकर निकालते हैं। ऐसे ऊपर लाते हैं। फिर अन्दर... कमरे में व्यवस्थित उसमें खड़ा रखते हैं। फिर वापस पैर में डोरा बाँधते हैं। फिर ऊपर दो बताये वे लोहे के कड़े। ऐसा कि यह डोरा एक है। तीन दिन तक मक्खन में रखते हैं। जब उसे फाँसी देनी हो तब डोरा। रस्सी समझते हो? रस्सी। रस्सी को तीन दिन तक मक्खन में डुबोकर रखते हैं। इसलिए उसे निशानी न पड़े और शीघ्र (देह छूट जाये)। फिर यहाँ रस्सी यहाँ बाँधकर यहाँ तक बाँधते हैं। फिर मुख में वह बाँधे। फिर पीछे... बताया ऑफिसर ने। देखो, ऐसा करके पाटिया के ऊपर चढ़ाते हैं। इसलिए वह ... ऊँचा हो जाये। वह आधा घण्टा रखते हैं। पाँच मिनिट में समाप्त। आधा घण्टा रखते हैं। इस खिड़की से निकालते हैं। वह यह बोर्ड—पाटिया लगाया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ... परन्तु यह देखा हो तो ओहोहो! वह तो बोलता था बेचारा अन्त में। ... मैं लड़की के पिता को सबकी माफी माँगता हूँ। मुझे माफी दो। ऐसा बेचारा अन्त में (बोलता था)। यह तो निश्चित हो गया होता है। उसने बेचारे ने वहाँ से कहलवाया उसके पिता से। माफी देते हैं भाई! तुझे और लड़की को दोनों को माफी देते हैं, जाओ। क्या करे परन्तु? आहाहा! वह ऑफिसर ऐसा बोले बेचारे, हों! आवेश में ऐसे पाप हो जाते हैं, फिर क्या हो?

यहाँ कहते हैं कि भाई! ... कहते हैं। ... यहाँ बाँधा हो न। ... अखबार में आया है। ... आधे घण्टे। ऐसा अनन्त बार आत्मा के भान बिना इसे ऐसे संयोग मिले हैं। वह

कोई नयी बात नहीं है। यह दूसरे का सुनकर इसे ऐसा हो जाये, भाई! यह वस्तु भगवान चिदानन्द प्रभु यह उसे विकार से एकतावाला मानना, यही गले में फाँसी है। आहाहा! वह तो बाहर की बातें हैं। शुद्ध चिद्घन प्रभु आनन्द का सागर, उसे विकल्प और राग तथा शरीरवाला एकत्व करके मानना, वही महा मिथ्यात्व गले में फाँसी है और वही मिथ्यात्व निगोद का कारण है। तत्त्व विराधना हुई और जहाँ अक्षर का अनन्तवाँ भाग ज्ञान का रह जाये, वहाँ अवतरे। उसके दु:ख की क्या बात? लोग नरक के दु:ख को देखते हैं, परन्तु वह तो संयोग की बात है। यह नरक की अपेक्षा निगोद के दु:ख अनन्तगुणे हैं। क्योंकि जहाँ पर्याय की हीन दशा हो गयी। ज्ञान-दर्शन। आहाहा! एकदम हीन... हीन... हीन... हीन... अक्षर का अनन्तवाँ भाग क्षयोपशम रह गया। उदयभाव मिथ्यात्व का रहा। क्षयोपशम यह रहा। वस्तु पारिणामिकभाव, वह तो त्रिकाल पड़ी है वहाँ। समझ में आया? निगोद में तीन भाव होते हैं—पारिणामिक, क्षयोपशम और उदय। पारिणामिक, क्षयोपशम और उदय। इतने अक्षर के अनन्तवें भाग में क्षयोपशम रहता है न! न रहे तो जड़ हो जाये। पर्याय का विकास। मिथ्यात्व का उदय है सही तो वह है, बाकी सब उदय साधारण है। उस उदय की फाँसी भोगता है भाई! आहाहा!

भाई! इसने स्वतत्त्व के पर के साथ एकत्व के दु:ख और स्वतत्त्व में रहा हुआ यह क्या सुख—इसने कभी मनन किया नहीं। ऐसा का ऐसा वाँचकर, वाँच गया, पढ़ गया और रट गया परसन्मुख। भगवान! तेरी चीज़ तो देख। अरे! जिसमें अनन्त आनन्द डोलता है। समुद्र डोले जैसे पानी से भरा हुआ। उसी प्रकार भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का सागर पड़ा है। अरे! उसकी श्रद्धा की एकाग्रता बिना, कहते हैं कि ऐसे नरकादि। नरकादि कहा न? **घानी में पिलना, करोंत से विदरना, और शूली पर चढ़ना...** शूली पर चढ़ाते हैं। आहाहा! सरकार में तो ... देख नहीं सके, इसलिए निकाल दिया। फिर यह फाँसी ... पाँच मिनिट में। इससे अब तो जरा परदेश में दूसरा है। बिजली की कुर्सी पर बैठाते हैं। बैठावे तो ... होवे तो समाप्त हो जाये। पाँच मिनिट तक... लगे हों... आँख निकल गयी हो... यह बिजली के झटके पर बैठे। परदेश में ऐसा करते हैं। परन्तु वह उसकी स्थिति पूरी। परन्तु भले वह पाँच-दस सेकेण्ड। परन्तु वह पूरा। असाध्य हो जाये, वह पीड़ा कितनी? सहन नहीं हुआ तब तो असाध्य होता

है। ऐसा नहीं कि असाध्य हुआ। असाध्य समझते हो? ... करते-करते भान भूल जाये। इसका अर्थ कि दुःख की मात्रा बढ़ गयी है। पत्थर मारते थे, डण्डे मारते-मारते ऐसे साध्य रहे वहाँ तक। फिर असाध्य हो जाये असाध्य। इसका अर्थ है दुःख की मात्रा बढ़ गयी है। उसका दुःख घट गया इसलिए ... ऐसा नहीं। समझ में आया? दुःख की (मात्रा) बेहद हो गयी है न अन्दर, मूर्च्छित हो गया। निगोद का जीव भी दुःख की बेहदता हो गयी है। मूर्च्छित हुए पड़े हैं। वह यह भगवान आत्मा की श्रद्धा के-ज्ञान के भाव बिना। समझ में आया? आहाहा!

शूली पर चढ़ना इत्यादि अनेक दुःखों को देहादिक की प्रीति से भोगते हैं। यह धूल की प्रीति। भगवान की प्रीति नहीं होती। ऐई! जेचन्दभाई! क्या आया यह? **देहादिक की प्रीति से भोगते हैं।** ऐसा आया। ... है परन्तु बोले क्या उसमें? इस शरीर की प्रीति में मर गया, ऐसा कहते हैं। ... यह नहीं, तुम कहते हो उस प्रकार से नहीं। यह कहते हैं, ऐसा नहीं, बापू! ऐसा नहीं। देह का प्रेम है और भगवान का प्रेम नहीं, ऐसा यहाँ है। चिदानन्द भगवान आनन्द का कन्द, उसका प्रेम नहीं, इसलिए उसे शरीर का प्रेम वहाँ ही ढला करता है, वहाँ ही ढला करता है। यह ऐसे हो गया, यह... हुई। जयचन्दभाई! ऐसा है, बापू!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो यहाँ दुःख ... है। यह तो संयोग से कहा न पहले बात की न! पहले बात की कि ज्ञानी जगत की शैली से बात करते हैं। परन्तु वे लोग देखते हैं संयोग देखते हैं तब दुःख देखते हैं या नहीं? पाप का उदय आया, ऐसा कहे। ... वह पाप का उदय... संयोग आया तब पाप का उदय आया, ऐसा कहे। परन्तु तेरे पाप के परिणाम करता है, वह वहाँ दुःख है, उसे तो देखता नहीं। और पाप के परिणाम तीव्र वर्ता करते हैं, उन्हें तो देखता नहीं, और जहाँ पाप का अघाति का फल आया। अघाति का (फल) संयोग होता है। और घाति के निमित्त में जुड़ने से उसमें अपने स्वरूप का घात होता है। परन्तु अज्ञानी अघाति के फल को देखकर ऐसा मानता है कि यह आया। समझ में आया? वरना वास्तव में तो घातिकर्म के उदय में वह जुड़ता है, वह उसे दुःख

है। समझ में आया? अघाति का संयोग छोड़ना बदले नहीं घाति के ऊपर घात वह अघाति आवे नहीं। एक बार ... किया था लाठी में। लाठी। (संवत्) २००० के वर्ष। यह ...भाई विशाश्रीमाली। बहिन... है न विशाश्रीमाली मन्दिरमार्गी थे बेचारे बहुत आते थे। अभी आते हैं दर्शन करने। २००० में। फिर ... हो गया। यहाँ कहाँ आती है अपने को तो भाषा।

अघाति का संयोग छोड़ना फिरे नहीं। वह अघाति का उदय आया, वह फिरे नहीं। घाति के ऊपर घात फिर अघाति हो नहीं। घाति के उदय में चोट मारी और एकाग्र हुआ आत्मा में, फिर अघाति बँधते नहीं और संयोग भी मिलेंगे नहीं। समझ में आया? ... अघाति का संयोग है तो आयेगा। न आये तो क्या काम है तुझे? तुझे विकार की एकता तोड़ना, वह तेरा काम है। उस संयोग को हटाना, प्रतिकूल आवे तो दूर करना, वह तेरे अधिकार में है ही नहीं। समझ में आया? आहाहा! समझ में आया या नहीं? जयचन्दभाई! यह संयोग की प्रतिकूलता आवे तो दूर नहीं की जा सकती, परन्तु वह प्रतिकूल है, ऐसी मान्यता दूर की जा सकती है। प्रतिकूल है ही नहीं कोई। प्रतिकूल कहना किसे? ज्ञानस्वरूप चैतन्य में प्रतिकूल और अनुकूल ऐसे दो भाग पड़े कहाँ से? पूरे जगत के ज्ञेय का बड़ा पाट पड़ा है। ज्ञेय अनन्त हैं। उन ज्ञेयों के दो भाग नहीं कि यह प्रतिकूल और अनुकूल। है कहीं रजिस्ट्री। मारी है उसमें कहीं (छाप)? पूरे चौदह ब्रह्माण्ड के ज्ञेय पड़े हैं ज्ञान के सामने, वे सब ज्ञेयरूप से है। दो भाग हैं कब अन्दर में? ... अज्ञानी अज्ञानभाव से ज्ञाता की एकता तोड़कर ज्ञेय की एकता है, उसके भंग (भाग) कर देता है। समझ में आया?

भगवान ज्ञानस्वरूप प्रभु, एकाग्रता उसकी एकता उसकी दृष्टि से होनी चाहिए। उस एकाग्रता को तोड़कर और पूरे जगत के अनन्त ज्ञेय जो एकरूप ज्ञेय हैं, उनके दो भाग कर डालता है। इष्ट-अनिष्ट। वह मिथ्यात्व में पाड़ता है। समझ में आया? इस स्थिति से बात की है। निर्जरा अधिकार में बात नहीं थी? कुन्दकुन्दाचार्य जैसे ऐसा कहते हैं कि समकिती ज्ञानी ज्ञानानन्द को भोगता है। राग को भोगना, उसके गौणपने में उसका हम अभावरूप से कहते हैं। उसके बदले यह कहे ज्ञानी सचेत-अचेत को

भोगता है और निर्जरा होती है, भाई! यह क्या कहता है वह? पहली गाथा निर्जरा की। सचेत-अचेत को भोगता है। है या नहीं? क्या है? इसका अर्थ भी क्या? एक ओर ऐसा कहना और एक ओर ऐसा कहना। विरोध है सन्तों की वाणी में? निर्जरा देखो।

उवभोग-मिंदियेहिं दव्वाण-मचेदणाण-मिदराणं।
जं कुणदि सम्मदिट्ठी तं सव्वं णिज्जर-णिमित्तं॥१९३॥

चेतन अचेतन द्रव्य का, उपभोग इन्द्रियसमूह से।
जो जो करे सद्दृष्टि वह सब, निर्जराकारण बने॥१९३॥

सचेत-अचेत को भोगे, ऐसा कहाँ से आया यह? लोग इस दृष्टि से ऐसा देखते हैं तो देखने को सचेत-अचेत ... देखो! यह कितने संयोग इसे... इससे उन्होंने बात की है कि भाई! यह संयोग में तुझे दिखता है। परन्तु वह ज्ञानी संयोग स्वभाव में, संयोग के विभाव में नहीं तो संयोग के द्रव्य में कहाँ से हो वह? ज्ञानी संयोगीभाव जो पुण्य-पाप का है, उसमें उसका अस्तित्व नहीं, तो संयोगी चीज़ में उसका अस्तित्व जाकर भोगे, ऐसा है नहीं। परन्तु लोग ऐसा मानते हैं कि देखो यह बहुत भोगता है। स्वभाव की एकाग्रता के कारण संयोगीभाव में भी खड़ा नहीं, तो संयोगी चीज़ में खड़ा रहकर भोगे, यह ज्ञानी को होता नहीं। समझ में आया? ... ऐसे परिणाम ... क्षायिक समकित लेकर आये कितने ही। तीन ज्ञान लेकर आये। विवाह करते हैं। प्रतिदिन स्त्री से विवाह करते हैं। लोग क्या देखते हैं? रोज का... रोज का धन्धा। हाँ-हाँ, पहले शुरुआत में छियानवें हजार हों। हमेशा ... भरत के लिये आते हैं। भरत (छह खण्ड) साधने जाते हैं तो राजा की कन्यायें राजा २००-२००, ३००-३०० ... देता है। और प्रतिदिन विवाह करते हैं। क्या है यह वह? भाई! संयोग को प्रगट देखता है। ज्ञानी वहाँ स्वभाव की अन्तर महिमा में स्थित हैं और पूर्व के अघाति के कारण उसे यह संयोग आकर खड़े रहते हैं। उस ओर की जरा आसक्ति का अंश है, उसमें भी लीनता और प्रेम नहीं, तो उसे संयोग में प्रेम हो और वह भोगे, यह बात बनती नहीं। समझ में आया? यह तो ज्ञानी और अज्ञानी के गज अलग हैं, माप-माप। माप अलग हैं, भाई! उसके मापक अलग हैं।

देखो न यहाँ कहा। वैरागी को निर्जरा के लिये। अब इसमें से वह निकाले कितने

ही। कि देखो, समकिती का तो भोग भी निर्जरा तो फिर उसके शुभभाव में निर्जरा क्यों नहीं होती ? ऐ भगवान ! ऐसा रहने दे भाई ! ऐसा तर्क करे। पण्डितजी ! यह रतनचन्दजी लिखते हैं। ... भारी लिखे। भोग निर्जरा का हेतु, फिर शुभभाव में क्यों निर्जरा नहीं होगी ? अरे भगवान ! बहुत त्रास है, हों ! यह नहीं रास आता चैतन्य के तत्त्व को। यह नहीं झेले तत्त्व। अशुभ परिणाम निर्जरा। यहाँ तो दृष्टि की शुद्धता का जोर कहकर निर्जरा कही, वह अल्पबन्ध है, उसे गौण करके, दृष्टि का जोर शुद्ध के ऊपर वर्ते और एकाग्रता है, इसलिए उसे निर्जरा कही। अशुद्धभाव से निर्जरा (हो) तो भोग के परिणाम छोड़कर फिर चारित्र ले कौन ? स्वरूप की रमणता चारित्र के आनन्द की लहरें उड़ती हो। उस अशुभभाव में ही निर्जरा होती होगी ?

जहाँ भगवान ने समकिती का शुभभाव भी जहर कहा। मोक्ष अधिकार। विषकुम्भ-विषकुम्भ। व्यवहार प्रतिक्रमण, व्यवहार प्रायश्चित, आलोचना विषकुम्भ—जहर का घड़ा। उसके बदले अशुभ परिणाम उसे अमृत देते होंगे निर्जरा ? भाई ! ऐसा नहीं, भाई ! वह तो वस्तुस्वभाव की अन्तर अनुभव की दृष्टि में अकेला आनन्द का वेदन है और तैरता है दृष्टि में पूरा भगवान। उसे मुख्यता गिनकर उसे अशुभभाव जरा हुआ, उसे गौणता गिनकर उसको बन्ध नहीं, परन्तु निर्जरा है, ऐसा कहा जाता है। बाकी तो अशुभभाव का बन्ध ज्ञानी को भी पड़ता है। समझ में आया ? वह तो शुभभाव को भी, छठवें गुणस्थान में तीर्थंकर हो, उन्हें छठवें गुणस्थान के विकल्प में जब आवे, उतना बन्ध भी उन्हें पड़ता है। आहाहा ! वस्तु हो वैसी रहेगी न ? और ऐसे दृष्टान्त देकर, ऐई ! ऐसा कहते हैं सोनगढ़वाले कि अशुभभाव में संवर-निर्जरा। भाई ! सोनगढ़वाले नहीं, भगवान ऐसा कहते हैं। सोनगढ़ का नाम किसलिए देते हो ? भाई !

भगवान त्रिलोकनाथ परमेश्वर जिनचन्द्र प्रभु की वाणी में ऐसा आया है, भाई ! समकिती के शुभभाव को भी हमने तो ज़हर कहा है। वह अमृतस्वरूप भगवान, उससे उलटी वृत्ति खड़ी हुई, उसे अमृत कैसे कहा जाये ? व्यवहार से अमृत कहा है उसे। उसका अर्थ कि अमृतस्वरूप चिदानन्द को आराधता है, उसमें ऐसा शुभविकल्प व्यवहार से प्रतिकूल नहीं, व्यवहार वह निश्चय से प्रतिकूल है, व्यवहार से उसकी अनुकूलता

इतना राग हो वहाँ उसकी दशा निर्मल है तो भी हट नहीं जाती। इतना निमित्त देखकर ऐसे शुभराग को भी अमृतरूप से कथन किया है व्यवहारनय के शास्त्र में। निश्चयनय के शास्त्र में उसे जहर कहा है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, उस **देहादि की प्रीति से...** आदि में शुभराग, आस्रव का प्रेम, देह का प्रेम, यह वाणी अच्छी उसका प्रेम। लो! वाणी हो न व्यवस्थित ऐसे ... क्या कहते हैं? कण्ठवाली। घण्टी बजे ऐसी (सुरीली) आवाज ऐसे घन... घन... घन... करती आवाज निकले कण्ठ में से। यह क्या है? वह तो जड़ है। आता है न ... नहीं कहा था? किसी की बाई थी। ... की महिलायें ऐसी हैं। उनका कण्ठ ऐसा है कोकिल जैसा। वह तो क्या? परन्तु वह तो परमाणु की रचना की दशा है। उसमें आत्मा को क्या है? वह तो जड़ की रचना को... जैसे बाजा बजता है नीचे, ऐसे यह बाजा बजता है। वह जड़ का है। उसमें आत्मा को क्या? आत्मा से है सब? आत्मा के अस्तित्व में है यह बात? आत्मा के अस्तित्व में आवाज है? और आवाज के अस्तित्व में भगवान आत्मा आया है? पर्याय आती है? द्रव्य-गुण तो आते ही नहीं, और पर्याय आयी है? कहते हैं। भाई! उसका अस्तित्व ही भिन्न है। कण्ठ और जड़ के प्रेम की प्रीति को भोगते हैं। ऐसे प्रीतिवाले दु:ख को भोगता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? और कोई ऐसा कहे कि यह तो ... है। उसे कोई नर्क-फर्क कुछ नहीं। और ऐसा कहे कितने ही। अरे भाई! सब है। नीचे नरक है, ऊपर स्वर्ग है। कल्पना नहीं। मफतलाल लिखितंग नहीं। समझ में आया? सर्वज्ञ लिखितंग है। वस्तु की अस्ति के लिखितंग सर्वज्ञ परमात्मा। अभी तो ऐसा कहे ... कहा है, लोगों को जरा भय दिखाने के लिये। ऐसा नहीं है, भाई! वस्तु की स्थिति यह है।

ये अज्ञानी जीव वीतराग निर्विकल्प परमसमाधि से पराङ्मुख हैं,... देखो, ओहो! पुण्य-पाप ... राग से रहित प्रभु निर्विकल्प वीतरागस्वरूप आत्मा का, वह परम शान्ति वर्तमान प्रगट। उससे पराङ्मुख है। शान्ति से पराङ्मुख है, अशान्ति को भोगनेवाला है। भगवान वीतराग निर्विकल्प शान्ति ऐसा उसका शाश्वत स्वरूप और उसमें से प्रगटे परन्तु ऐसी ही शान्ति। जिसमें से ... **जिनके चित्त चंचल हैं,...** स्थिरता नहीं यहाँ, इससे

उसका चित्त चंचल है, अस्थिर है। **कभी निश्चल चित्तकर निजस्वरूप को नहीं ध्यावते हैं।** आहाहा! अरे! किसी दिन—कभी भी। ऐसा। अर्थात् चौबीस घण्टे नहीं, परन्तु कभी भी **निश्चल चित्तकर...** चित्त को स्थिर करके निजस्वरूप भगवान आत्मा का ध्यान करता नहीं, उसे ध्येय में लेकर एकाग्र होता नहीं। कभी होता नहीं। इतना यह टेव-टेव किया करता है। कहो, समझ में आया?

निजस्वरूप... भगवान आत्मा का रूप परम शान्त और आनन्द, उसका ध्यान, उसे ध्येय लेकर, उसे लक्ष्य में लेकर और कभी एकाग्रता करता नहीं। वह विषय के लोलुपी एकाग्र हुए चार गति के दुःख को सहन करते हैं। **और जो पुरुष स्नेह से रहित हैं,...** अब राग से रहित कहते हैं। **वीतरागनिर्विकल्प समाधि में लीन हैं,...** चौथे गुणस्थान से आंशिक वीतराग निर्विकल्प शान्ति होती है। पाँचवें में विशेष, छठवें में विशेष, सातवें में विशेष, बारहवें में पूर्ण। तेरहवें में पूर्ण, पूर्ण... वह बारहवें में है, परन्तु तेरहवें में अनन्त सुख है। **वीतरागनिर्विकल्प समाधि में लीन हैं, वे ही लीलामात्र में संसार को तैर जाते हैं।** आहाहा! लीलामात्र क्यों कहा? क्योंकि वहाँ दुःख सहन नहीं करना पड़ता, ऐसा कहते हैं। दुःख सहन नहीं करना पड़ता। लीलामात्र। अर्थात् हेलोल्ल मात्र आता है न प्रवचनसार दूसरे श्लोक में शब्द आता है। हेलोल्लमात्र। ऐसे आनन्द करते-करते मोक्ष को पाते हैं। लीलामात्र में दुःख सहन करना पड़ेगा, तृषा सहन करनी पड़ेगी। ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। दुःख-बुख है नहीं। समझ में आया? है या नहीं? परमात्मप्रकाश में है न, कहाँ है? प्रवचनसार। लीलामात्र, देखो... **महा मोहरूपी अन्धकार के समूह को जो लीलामात्र में नष्ट करता है...** अर्थात् आनन्द के आनन्द में झूलता है। आनन्द में झूलते हुए नष्ट करता है। '**हेल्लोल्लुप्तमहामोहतमस्तोमं जयत्यदः।**' श्लोक है दूसरा। आचार्य ने तो गजब काम किये हैं। एक-एक शब्दों में एक-एक क्या भरा है कुछ! उसमें है उसकी बात चलती है।

पंचास्तिकाय में यह कहा या नहीं कि नौ तत्त्व के मार्ग नौ मार्ग अलग हैं। पंचास्तिकाय गाथा में। ... है न पण्डितजी! ... पंचास्ति न? '**वर्त्म**' शब्द आता है न संस्कृत? बस वह। देखो, पाँचवाँ कलश है।

जीवाजीवद्विपर्यायरूपाणां चित्रवर्त्मनाम्।
ततो नवपदार्थानां व्यवस्था प्रतिपादिता॥५॥

दूसरे अधिकार में, अमृतचन्द्राचार्य महाराज पहले से कलश कहते हैं, तो **पश्चात् (दूसरे अधिकार में), जीव और अजीव इन दो के पर्यायरूप नौ पदार्थों की—कि जिनके मार्ग अर्थात् कार्य भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं...** यह अजीव का मार्ग अलग, भगवान जीव का अलग, पुण्य का अलग, पाप का अलग, आस्रव का अलग, बन्ध का अलग, संवर-निर्जरा सबके मार्ग ही भिन्न-भिन्न हैं। कार्य भिन्न-भिन्न हैं, ऐसा कहा लो न भाषा। मार्ग अर्थात् कार्य। समझ में आया? अजीव का कार्य भिन्न, आस्रव का भिन्न, बन्ध का भिन्न, संवर का भिन्न, निर्जरा का भिन्न, बन्ध का भिन्न और मोक्ष का भिन्न। नौ के नौ कार्य भिन्न हैं। वरना नौ साबित नहीं होते। साबित नहीं होते। एक-दूसरे का खिचड़ा कर डाले, वे वापस नौ नहीं होते। ओहोहो! यहाँ तो अभी उपोद्घात किया है। आगे आचार्य महाराज नौ तत्त्व के मार्ग भिन्न-भिन्न हैं, ऐसा बताते हैं। उसका पहले से कलश किया है। कहो, समझ में आया?

लीलामात्र में संसार को तैर जाते हैं। हेलोल्लमात्र। भगवान आत्मा अनन्त काल जिसे संसार वेदन में गया, उतना साधकभाव में उतना काल नहीं गया, ऐसा कहते हैं। एक असंख्य समय चाहिए। केवलज्ञान प्राप्ति, सम्यग्दर्शन के पश्चात् केवलज्ञान की प्राप्ति के बीच असंख्य समय। किसी को अन्तर्मुहूर्त के असंख्य समय, कोई को दो-पाँच भव में परन्तु समय तो असंख्य। उसमें कोई अनन्त समय हों, ऐसा कभी नहीं बनता। साधक के समय। वह गिर जाये, मिथ्यात्व में जाय, वह साधक रहा नहीं। समझ में आया? भगवान आत्मा असंख्य प्रदेशी अनन्तगुण का धाम। उसकी एकाग्रता में केवलज्ञान लेने के लिये बीच में असंख्य समय का काल है। किसी का अन्तर्मुहूर्त का असंख्य समय का, किसी को अमुक सागरोपम का, परन्तु सब समय असंख्य हैं। सम्यक्त्व के बाद अनन्त समय केवल (ज्ञान) के लिये चाहिए, ऐसा है नहीं। इतनी सामर्थ्य ... आत्मा। स्वभाव-सन्मुख झुका है इसलिए।

यह यहाँ कहते हैं **लीलामात्र में संसार को तैर जाते हैं।** लो! लहर करे तो आत्मा

मोक्ष पावे, ऐसा कहते हैं। रोना रोवे अरेरे! मुझे ऐसा है, ऐसा किया करे। बापू! परीषह तलवार की धार, हों! तलवार की धार। खांडा की समझे? तलवार। तलवार की धार, बापू! मुनिपना तो तलवार की धार। दु:ख भी इतने। तू मार्ग को समझा नहीं। तलवार की धार, रेत के ग्रास और लोहे के चने मोम के दाँत से चबाना। बापू! चारित्र अर्थात् लोहे के चने मोम के दाँत से (चबाना)। ऐसे दु:ख ही इतने, ऐसा कहते हैं। लोहे के चने, मोम के दाँत। मीण-मीण। मीण समझते हो? मोम। मोम के दाँत से लोहे का चना। यह आता है हमारे उत्तराध्ययन में श्वेताम्बर में आता है। श्वेताम्बर में... लोढिया का अधिकार है न। सब वाँचा हुआ है न! उसमें यह आता है। आता है या नहीं, ऐई! जयन्तीभाई! यह सब उसके सुननेवाले हैं। साधु रेत के ग्रास, बापू! और मेरुपर्वत तराजू से तौले, ऐसा कठोर है। ऐसा आता है। मेरुपर्वत तराजू से। त्राजवे समझे न? ऐसा चारित्र दुष्कर है, भाई! अरे! क्या कहता है, भाई! क्या कहता है? बापू! वह अतीन्द्रिय आनन्द का अन्दर सडका आने पर लीलामात्र में आनन्द-आनन्द करता हुआ केवलज्ञान पाता है। ... बहुत यह कठिन। अरे! महाराज को कुछ... उसे सुख मिले। रोटी तैयार मिले न। गर्म-गर्म रोटी मिले, स्त्री गद्दा बिछा दे, पंखा करे। खाने बैठा हो तो पंखा करे। मक्खी न पड़े। धूल में भी नहीं, मर जायेगा पराधीन में वहाँ। ... काम है, बापू! ठण्डा चाहिए और गर्म मिले, गर्म चाहिए और उसे ठण्डा मिले। कुछ बिल्कुल नहीं, सुन न! वह तो ज्ञाता-दृष्टा है। भगवान आत्मा के आनन्द में मौज करता हो वहाँ। आनन्द... आनन्द... आनन्द... उसके 'मांही पड़ा वह महासुख माने, देखनेवाले वे जलें।' दुनिया देखे कि अरे रे! अरे चल... चल... यहाँ कहते हैं कि **वीतरागनिर्विकल्प समाधि में लीन हैं,...** शान्त... शान्त... शान्त... **लीलामात्र में संसार को तैर जाते हैं।**

★ ★ ★

गाथा - ११३

आगे लोभकषाय का दोष कहते हैं — तीन कहे न? अर्थात् तीन का भाग किया राग का भाग लोभ। राग के दो भाग हैं न — माया और लोभ। द्वेष के दो भाग हैं — क्रोध और मान। द्वेष के दो भाग — क्रोध, मान। उस राग में से लोभ निकाला। **लोभकषाय का दोष कहते हैं —**

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परीषह बलजोरी से लेकर बैठे हो, वह बाद में। ११३ (गाथा)।

२४३) जोइय लोहु परिच्चयहि लोहु ण भल्लउ होइ।
लोहासत्तउ सयलु जगु दुक्खु सहंतउ जोइ॥११३॥

योगिन् लोभं परित्यज लोभो न भद्रः भवति।
लोभासक्तं सकलं जगद् दुःखं सहमानं पश्य॥११३॥

लोभी को दुःखी देख, ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा की शान्ति में स्थित, उसे सुखी देख। ऐसे देखने की दृष्टि बदल डाल।

हे योगी! तू लोभ को छोड़,... इच्छामात्र दुःखरूप है। 'क्या इच्छत खोवत सबै है इच्छा दुःख मूल,' इच्छा दुःख का मूल। **यह लोभ अच्छा नहीं है,...** भद्र नहीं। **क्योंकि लोभ में फँसे हुए...** लोभ में इच्छा में फँसे हुए—फाँसी में पड़े हुए **सम्पूर्ण जगत को...** सम्पूर्ण जगत को। राजा हो, महाराजा हो, सेठिया हो, अरबोंपति हो। अरे! त्यागी नाम धराकर भी पैसे के लोलुपी इच्छावाले हैं, वे सब दुःखी... दुःखी... दुःखी... देखा! ... किया। '**सकलं जगत्**' पूरा जगत। एक भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप की दृष्टि, ज्ञान और रमणता ऐसा निर्विकल्प निर्लेप स्वभाव उसे प्राप्त किये बिना पूरा जगत लोभ में खिंचकर, तृष्णा में खिंचकर डूब मरे हैं सब। तृष्णा में डूबे।

सम्पूर्ण जगत को दुःख सहते हुए देख। ऐसी भाषा क्या करते हैं? तू ऐसा न मान कि उसे कहे। आहाहा! कितने पैसे इसे! कितनी इज्जत इसे! कितना शरीर सुन्दर इसे! हुकम करे एक और हजार खड़े हों। भाई! जिसका लोभ पर में गया, उसे दुःखी

देख। ऐसे साधन द्वारा सुखी न देख। हुकम करे वहाँ हजार खड़े हों, खम्मा अन्नदाता। एक को बुलावे पानी। कोई है ? हाँ अन्नदाता! क्या चाहिए ? क्या मुख माँगता है ? पानी लाओ। दौड़ादौड़ करे। एक ... लावे और एक बर्फ डालकर लावे। वह कहे। आहाहा! सुखी है वह ? कहते हैं कि दुःख के ढ़ेर पड़े हैं, होली में सुलग रहा है। समझ में आया ? ऐसे साधनवाले को लोभ पड़ा, उसे तू दुःख में देख। जरा भी सुख है, ऐसा न देख। आहाहा! इच्छारहित भगवान आत्मा की दृष्टि में और उसके ज्ञान में सुख है। बाकी कहीं सुख है नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

ज्येष्ठ कृष्ण ७, सोमवार, दिनांक - २१-०६-१९६५
गाथा - ११३ से ११६ प्रवचन - १५४

परमात्मप्रकाश दूसरे भाग की ११३ गाथा। **भावार्थ :- लोभकषाय से रहित जो परमात्मस्वभाव...** ऐसे तो आत्मा शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप, उसकी दृष्टिरहित जीव के लोभ की बात की है। ज्ञानी को जो लोभ होता है, उस लोभ का लोभ नहीं। धर्मी को चारित्रदोष के कारण कोई अस्थिरता का लोभ आदि आवे, वह लोभ वास्तव में लोभ का लोभ नहीं। क्योंकि वहाँ भावना तो ज्ञानानन्दस्वरूप की है। भावना अर्थात्? शुद्धस्वरूप सन्मुख की सावधानी की दृष्टि जो हुई है, उस ओर ही एकाग्रता निरन्तर रहती है। इसलिए धर्मी को लोभ कहलाये, वह यहाँ लोभ गिनने में नहीं आया। क्योंकि लोभ की भावना नहीं है, लोभ हो तो ठीक, ऐसा नहीं है; लोभ का कर्तृत्व, वह कर सकता हूँ, वह मेरे स्वभाव में नहीं, परन्तु आता है (तो भी) उसे वास्तव में लोभ नहीं कहा जा सकता।

यहाँ तो **लोभकषाय से रहित जो परमात्मस्वभाव उससे विपरीत...** भगवान ज्ञानस्वरूप वीतरागी विज्ञान प्रभु, ऐसे स्वभाव से विपरीत इस भव का, परभव का लोभ। इस भव में जिन्दगी तक अनुकूल रहे, परभव में मुझे कुछ स्वर्गादि मिले, सिद्ध गति मिले—ऐसा जो लोभ, वह आत्मा की शान्ति लूटनेवाला है। **धन धान्यादिक का लोभ... ...** उसका लोभ। उसका अर्थ तू ज्ञानानन्दस्वभाव की भावना कर, ऐसा इसका अर्थ है। चिदानन्दस्वरूप परमात्मा, निजस्वरूप वीतरागी विज्ञानघन की अन्तर श्रद्धा, ज्ञान और उसकी भावना कर। **क्योंकि लोभी जीव भव-भव में दुःख भोगते हैं, ऐसा तू देख रहा है।** ऐसा कहा है न पाठ में? ... दुःख '**पश्य**' तो देख। ओ जिसका अर्थ '**पश्य**' किया है। '**जोइ**' शब्द पड़ा है न। '**दुक्खु सहंतउ जोइ**' इसका अर्थ '**दुःखं सहमानं पश्येति।**' अर्थात् ज्ञानानन्दस्वरूप भगवान आत्मा को भूलकर लोभी मनुष्य दुःखी हो रहे हैं, ऐसा तू देख। समझ में आया?

अपना शान्त अनाकुल आनन्दस्वभाव की रुचि की एकाग्रता या भावना बिना यह लोभी प्राणी मिथ्यादृष्टि दुःखी है, ऐसा तू देख। कहीं सुख है नहीं। धन इकट्ठा करना, धान इकट्ठा करना, फिर उसकी व्यवस्था, उसका ब्याज उपजाना। उसमें ही जिसका अकेला ध्येय है। हैरान-हैरान मनुष्य है। अरबोंपति हो तो भी, करोड़ोंपति हो तो भी हैरान पूरे दिन। खाने को फुरसत नहीं होती, पीने को फुरसत नहीं होती। यह किया और यह किया और यह किया। खबर है या नहीं? बाप जाये तो बात करने की निवृत्ति नहीं मिलती। पिता को अनुभव है या नहीं? बाप जाये तो बात करने को निवृत्ति नहीं मिलती। महिलायें कहती थी एक बार।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मुलाकात, परन्तु बाप न हो तो ... बाप हो तो खड़ा होकर आदर देना चाहिए। लौकिक की तो यह पद्धति है। बाप कहीं अन्यत्र से मिलता है? एक महिला कहती थी। माँ-बाप कहीं पैसे से मिलते हैं? माँ-बाप नहीं मिलते। माँ-बाप कहाँ से मिलें? यह सच्ची बात। माँ-बाप जन्म दे, परन्तु कहीं कर्म दे? ऐसा एक महिला कहती थी। विधवा थी, ... घर की थी और फिर एक साधारण घर में दी थी। ... नहीं वह डाह्याभाई की पुत्री? वह एक दिन कहती थी। अपने व्याख्यान चलता था न ८९ में। बाहर। ... तीन-तीन हजार लोग। ८९ के वर्ष। वह महिला ऐसा बोलती थी। मैं सभा भरती तब जाता। तो एक महिला बोलती थी। महिला उस गाँव में विवाही। विधवा हुई। भाई! माँ-बाप तो जन्म दे। क्या कर्म दे? कर्म प्रमाण अपने को संयोग मिलता है। और वापस कहे माँ-बाप कहीं पैसे से मिले? दूसरी चीज़ मिले। यह तो माँ-बाप तो एक ओर पड़े रहे लोभी में। इससे वही कहते हैं कि ऐसे दुःखी देख उन्हें। लोलुपता। ऐसी लालसा... लालसा... लालसा... भगवान आनन्दकन्द प्रभु पड़ा है। उसकी अन्तर की एकाग्रता करनेयोग्य है, उसकी रुचि करनेयोग्य है, उसमें स्थिर होनेयोग्य है, ऐसी भावना करनेयोग्य है। ऐसी यह बात छोड़कर उसकी यह बात है, हों! अज्ञानी मिथ्यादृष्टि (की)।

सम्यग्दृष्टि को लोभ होता है, वह लोभ है ही नहीं वास्तव में। वह सब लोभ का

लोभ नहीं, राग का राग नहीं। वह विषय की वासना होती है, उस वासना की वासना नहीं। आहाहा! उसे आत्मा के आनन्द का प्रेम है। ज्ञानमूर्ति भगवान शुद्ध वीतरागी कन्द, वीतरागी विज्ञान, उसे आनन्द का प्रेम है। उस प्रेम के समक्ष, लोभादि के समक्ष उसका प्रेम उसे है नहीं। **दुःख भोगते हैं, ऐसा तू देख रहा है।** ऐसा कहा है यहाँ तो देखो न! '**पश्य**' '**दुःखं सहमानं पश्येति।**' आहाहा! अर्थात् तू बराबर निर्णय कर, ऐसा। सब लोभी दुःखी हैं। बराबर होगा? जयचन्दभाई! अर्थात् कि यह पैसेवाले हों और बढ़ गये हों, वे सब दुःखी हैं, ऐसा जान, ऐसा कहते हैं। किसमें बढ़ा? धूल में?

भगवान आत्मा निर्लोभ आनन्द सन्तोषस्वरूप जिसका एक कण जहाँ ... पूरी दुनिया सड़े हुए तिनके जैसी लगे। इन्द्र के इन्द्रासन सड़े हुए कचरे का ढ़ेर-कचरे का ढ़ेर। उकरडा समझते हैं? ढ़ेर। कचरे का ढ़ेर, कूड़ा का ढ़ेर। वह कचरे का ढ़ेर उकरडा। आत्मा अनन्तगुण का पिण्ड प्रभु, उसकी अन्तर रुचि और दृष्टि होने पर सम्यग्दृष्टि को इन्द्र के इन्द्रासन। सड़े हुए तिनके दिखते हैं। तरणा समझते हैं? तिनका-तिनका। उकरडा अर्थात् कूड़ा का ढ़ेर। कूड़ा का ढ़ेर। कचरे का-कूड़ा का ढ़ेर होता है न? समझ में आया? इसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि भाई! वह आत्मा के स्वभाव की दृष्टि की भावना बिना अज्ञानी को भव-भव के लोभी जीव को दुःख में देख। उसे दुःख में देख। उसे पैसे मिले, ऐसा हुआ, स्त्री मिली, इन्द्रासन... इसलिए सुख, ऐसा न देख। उसे सुख में न देख, उसे दुःख में देख।

मुमुक्षु : वस्तु ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ सुख धूल में था? कौन कहता है कि सुख है? आकुलता में सुलग रहा है। जलता है अन्दर। ... एक सेठिया कहता था कि एक पूरे कमरे में बारह फीट का क्या कहलाता है वह? गद्दा। एक ऐसा लम्बा कमरा, बारह फीट का गद्दा। गादलुं समझे न गादलुं? गद्दी। पूरे कमरे में एक बारह फीट की गद्दी थी। पूरी रात नींद आवे नहीं। एक ही गद्दी, हों! गद्दी कहते हैं न? सलंग बारह फीट का बड़ा गद्दा। गादलुं नहीं कहते? बस वह। बारह फीट की लम्बी पूरे कमरे जितनी। ऐसे से ऐसे और ऐसे से ऐसे, ऐसे से ऐसे। सेठ ऐसे जाये और ... वहाँ से ऐसे जाये। रात्रि में तो चैन न मिले।

कल्पना... कल्पना... कल्पना... इतनी मस्तिष्क में। इस लड़के का ऐसा क्यों हुआ? वह फलाने का ऐसा क्यों हुआ, यह इज्जत में जरा धक्का लगा, यह हुआ, यह हुआ। यह एक जहाज डूब गया, एक लड़की विधवा और लड़का मर गया। होली सुलगा ही करती है। मन-मस्तिष्क स्थिर नहीं, कहते हैं। चौड़ी शय्या। चौड़ी शय्या १२-१२ फीट में। होली कहीं नहीं। पूरे कमरे जितनी। नींद न आवे। अकेला। लोट... लोट... लोट... आहाहा! हमको दुनिया कहती है कि सुखी है। यहाँ तो दुःख-दुःख लगता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... मैंने कहा, वह कहता था। वह इस दुःख के कारण से नहीं, हों! वह कल्पना की जाल के कारण। शरीर के कारण से नहीं। कल्पना की जाल। मस्तिष्क स्थिर हो ही नहीं। एक कल्पना वहाँ दूसरी कल्पना, दूसरी कल्पना वहाँ तीसरी कल्पना, तीसरी कल्पना... उसे नींद ही न आवे। ऐसे प्राणी को, हे आत्मा! तू तेरी शान्ति की एकाग्रता द्वारा ऐसे को दुःखी देख, ऐसा कहते हैं। तेरे स्वभाव की श्रद्धा और ज्ञान की भावना के समक्ष ऐसे लोभी प्राणी को तू दुःखी देख। इसका अर्थ कि तू सुखी है, ऐसा तुझे देख। तेरे स्वरूप में सुख है। शान्ति... शान्ति... शान्ति... 'उपजे मोह विकल्प से, समस्त यह संसार; अन्तर्मुख अवलोकते, विलय होत नहीं वार।' यह सब मोह की कल्पना के कारण भगवान शीतल शान्त प्रभु के नजदीक जाने से सब समाहित हो जाता है। कुछ रहता नहीं। ऐसे भगवान को तू देख। ...दुःखी को देख, वह सुन, कहते हैं। उसे दुःखी देख अर्थात् सुखी देख तेरे आत्मा को, ऐसा कहना है। समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - ११४

आगे लोभकषाय के दोष को दृष्टान्त से पुष्ट करते हैं —

२४४) तलि अहिरणि वरि घण-वडणु संडस्सय-लुंचोडु।
लोहहँ लग्गिवि हुयवहहँ पिक्खु पडंतउ तोडु॥११४॥

इसकी भाषा चलती में एक... गामठी भाषा है। ... तारणस्वामी ने। तारणस्वामी ने चलती भाषा में बनाया है। चलती भाषा ... चलती भाषा में लिया है।

'लोहं लगित्वा' जैसे लोहे का सम्बन्ध पाकर... लोहे का सम्बन्ध पाकर **अग्नि नीचे रखे हुए... 'अधिकरणं उपरि'** क्या कहलाता है, ऐसा कहते हैं। ऐरण-ऐरण। हमारी भाषा में ऐरण। नीचे होता है न लोहे का। **अहरन (निहाई) के ऊपर...** उसके नीचे और ऊपर अग्नि। उसे लोहे में अग्नि समाती है। लोहे में ... नीचे ऐरण ऊपर अग्नि **के ऊपर घन की चोट, संडासी से खेंचना,...** मारे घन। संडासी अर्थात् सांणसी से खींचे। ... और **चोट लगने से टूटना,...** बड़ी चोट लगे, टुकड़े हो जाये, टुकड़े-टुकड़े हो जाये। **इत्यादि दुःखों को सहती है, ऐसा देख।** अग्नि सहती है। चैतन्य अग्नि ... है न? भगवान चैतन्य ज्योति ज्ञान का स्वभाव भरपूर भगवान। यह ऐसा कहते हैं कि इस लोह में प्रविष्ट अग्नि को दुःखी देख।

भावार्थ :- लोहे की संगति से लोकप्रसिद्ध देवता अग्नि... लोग देव कहते हैं न उसे? ... जीमने बैठे तब थोड़ी अग्नि रखे। अन्यमति जीमने बैठे न, तब अग्नि रखे थोड़ी। उसे जीमावे फिर स्वयं जीमे। देवता को जीमावे। ... है न। कहते हैं कि **लोकप्रसिद्ध देवता अग्नि दुःख भोगती हैं,...** समझ में आया? देवता कहा है न वह? देवता ऐसा कहते हैं। **'प्रसिद्धा देवता पिट्टनक्रियां लभते'** 'देवता' संस्कृत में है वह। **देवता अग्नि दुःख भोगती हैं, यदि लोहे का सम्बन्ध न करे तो इतने दुःख क्यों भोगे, अर्थात् जैसे अग्नि लोहपिण्ड के सम्बन्ध से दुःख भोगती है, उसी तरह लोह अर्थात् लोभ के कारण से...** इच्छा... इच्छा... इच्छा... कहीं सन्तोष नहीं होता। ऐसे **लोभ के कारण से...** भगवान। देखो, **परमात्मतत्त्व की भावना से...** परमस्वरूप ज्ञान और शान्त

आनन्दमूर्ति प्रभु उसकी भावना अर्थात् श्रद्धा, ज्ञान और एकाग्रता से रहित मिथ्यादृष्टि, उसकी बात है यहाँ तो। मुनियों को है। और अस्थिरता जरा हो, वह सब जानते हैं। दर्शन भ्रष्ट, वह भ्रष्ट है। चारित्र... उसके ख्याल में है कि यह ... है। ... टालना पड़ेगा, उसका भान है। अज्ञानी को वह भान नहीं।

परमात्मतत्त्व की भावना से... भावना शब्द से एकाग्रता। भावना शब्द से कल्पना नहीं। शुद्ध चैतन्य प्रभु की अन्तरदृष्टि की एकाग्रता, ज्ञान की एकाग्रता, स्वरूपाचरण की एकाग्रता। उससे रहित मिथ्यादृष्टि, मिथ्यादृष्टि को इन तीन में से एक भी होता नहीं। नहीं सम्यक् श्रद्धा, नहीं सम्यक् ज्ञान, नहीं सम्यक् स्वरूप आचरण। वह **जीव घनघात के समान...** अग्नि के ऊपर जैसे घन पड़े, वैसे **नरकादि दुःखों को बहुत काल तक भोगता है।** ओहो! टाटा की जो अग्नि है न अभी, नहीं? भट्टी। उस भट्टी के अन्दर एक पाँच-पच्चीस करोड़ का तालुकादार राजकुमार हो और पच्चीस वर्ष का जवान सुन्दर शरीर, कोमल और निरोगता में रहा हुआ, रोग की आगाही भी जिसमें नहीं। ऐसा पालन किया हुआ सुन्दर शरीर और उसमें विवाह किया सवेरे और कंकण बाँधा हुआ हो। बाँधते हैं न? उस टाटा की अग्नि में ऐसे सीधे जीवित डाले। अग्नि है न वहाँ? भट्टी... भट्टी... जमशेदपुर देखने गये थे एक बार। नरभेरामभाई साथ में आये थे वहाँ बताने के लिये। बड़ी है न वहाँ जमशेदपुर में? वह राजकुमार का जीव तो जैसे लकड़ा अग्नि में डाले, उसकी जो पीड़ा, उससे अनन्तगुणी पीड़ा पहले नरक के नारकी जीव को दस हजार वर्ष की है। एकता वह कितनी! जैसे यहाँ सीधे जलाये, वैसे उस निरोगी मनुष्य को ऐसे लकड़ा डाले, वैसे डाले। उसकी पीड़ा की अपेक्षा दस हजार वर्ष की पहली नरक का जो नारकी। छोटी स्थिति का। ... अकेला भाव, स्वरूप का अभाव, अकेला विकारीभाव, स्वरूप का बिल्कुल अभाव। दुःखी... दुःखी... दुःखी... समझ में आया? इससे संयोग से बात की है जरा। अज्ञानी संयोग देखकर भड़कता है न ऐसे? दुःख वहाँ कहाँ? दुःख तो तेरी दशा में है। दुःख तो विकारीभाव में है। संयोग में दुःख है?

यह कहते हैं कि **घनघात के समान नरकादि दुःखों को बहुत काल तक...** थोड़े में थोड़ी दस हजार वर्ष की स्थिति पहले नरक की। पहले में पहली स्थिति एक सागर

पहले नरक में। एक सागर में दस क्रोड़ाक्रोड़ी पल्योपम। एक पल्योपम में असंख्यात अरब वर्ष जाते हैं। अरे! इसने दीर्घ का विचार भी किया है? कितना काल मैंने व्यतीत किया और मैं कितने काल का हूँ? कितना काल मैंने बाहर में व्यतीत किया? आता है न... ठग। और कितने काल का मैं अनादि-अनन्त प्राचीन हूँ? इसने कभी अन्तर में निर्णय किया नहीं। भगवान आनन्दकन्द सच्चिदानन्द प्रभु की भावनारहित मिथ्या-झूठी दृष्टिवन्त वह घनघात के समान। उपमा दी न? **नरकादि...** पशु आदि **दुःखों को बहुत काल तक भोगता है।** यह रास्ते में देखते हैं, देखो न! ट्रक के नीचे यह कितने मेंढ़क (का) चूरा, सर्प का चूरा। ऐसे आता हो तो हट न सके। रास्ते में, ओहोहो!

एक लड़के के ऊपर पूरा ट्रक चढ़ गया, लो! हमारे नानालालभाई का भानेज। नानालालभाई अपने यह राजकोटवाले, लो! इकलौता पुत्र बड़ी पुत्री को। तीन व्यक्ति बैठकर जाते थे। वह क्या कहलाता है? फट फट में। मोटरसाईकिल। फटफटिया। फटफटिया। वे तीनों बैठकर जाते थे। उसमें कोई पीछे से धक्का आया ट्रक। ट्रक कहते हैं न। धक्का लगा तो ... गया... ... ट्रक छाती के ऊपर। २० वर्ष का जवान मर गया। इकलौता पुत्र। यह नानालालभाई अपने राजकोट। यहाँ समाचार आये। यहाँ कहने आये। ... ऐसा ... कुचल गया। पूरा ट्रक ऐसे गया। ऐसे तो अनन्त बार हुए हैं। एक बार कब था? काल अनन्त, उल्टे भाव अनन्त, संसार अनादि का, क्षेत्र असंख्य, परन्तु एक-एक क्षेत्र में अनन्त बार ऐसे दुःख भोगे हैं। अब उसे अस्ति में आवे कहाँ? अस्ति... अस्ति... अस्ति... ऐसा उसे अस्ति में ख्याल आवे तो उसकी दृष्टि अन्दर में जाये। ओहोहो! कहाँ मैं भटका और कहाँ मेरी चीज़। कहते हैं कि ऐसे दुःख बहुत काल भोगनेवाले को देख।

चूहे को होता है न पिंजरे में। चूहे को पकड़ने का। एक जगह डलाकर। मैं राजकोट में दिशा जाने को निकला। एक लड़का ऐसे कुत्ते के मुख में वह चूहा डालता था। वहाँ उसमें से निकले अन्दर से। कुत्ता था कुत्ता। एक हमारे पालेज में दुकान। साथ में दुकान थी मुसलमान की। उसके व्यक्ति ने चूहे पकड़े हुए। अनाज की बड़ी दुकान। तो उसमें मैं निकला, वहाँ चूहे के ऊपर धगधगता पानी। अन्दर में, हों! यह तो संसार

की स्थिति ऐसी ही अनादि से पड़ी रही है। उस संयोग से तो आचार्य बात करते हैं। परन्तु अनाकुल भगवान आत्मा की दृष्टि बिना ऐसी आकुलता के संग, प्रसंग अनन्त बार तुझे बने हैं। समझ में आया? यहाँ जरा गर्मी पड़े, वहाँ चिल्लाहट मचाये। ऐसा है... ऐसा है...

एक व्यक्ति कहे... और ऐसा कहता है। एक कोई मेहमान आया था। पंखा नहीं, कहे। यह यहाँ पंखा नहीं होता, बापू! यहाँ पंखा नहीं होता। यहाँ तो धर्म सुननेवाले को... सुनना है या पंखा खाना और हवा खाकर सुनना है? वह कौन था कोई? ... ऐसा एक गृहस्थ व्यक्ति था। यहाँ जरा एक पंखा नहीं। अरे! भाई! ऐई! सत् शास्त्र का श्रवण करना, वहाँ पंखा डालना, हिलना वह तो अविनय है या क्या है? हवा व्यवस्थित आवे तो बराबर सुनने में मन रहे। धूल में भी ऐसा नहीं। यहाँ पंखा वह तो बड़ा... सुनना वह न्याय नहीं। पण्डाल में ... क्या करते हैं वहाँ? तुमने वहाँ किया था या नहीं? वास्तव में जहाँ शास्त्र का श्रवण है, वहाँ तो, ओहोहो! कितना विनय चाहिए! बहुमान (चाहिए)। अरे यह तो सुविधा, साता की सुविधा में बैठकर सुनना है? समझ में आया? अभी ... नहीं। क्या है यह? क्या कहते हैं प्रभु! गहन धारा उसमें...

★ ★ ★

गाथा - ११५

आगे स्नेह का त्याग दिखलाते हैं — ११५ (गाथा)।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... तोड़ते हैं। तोड़ते हैं। ... नहीं कहा। नीचे दबाव, ऊपर मार, नीचे से टुकड़े। कटका, क्या समझे? टुकड़ा। यह तो बताते हैं न! संयोग से बताना है न। बाकी दुःख तो आकुलता का है तुझे। आहाहा! **आगे स्नेह का त्याग दिखलाते हैं —** देखो, वहाँ लोभ कहा, अब यहाँ स्नेह कहा है। मूल तो लोभ और स्नेह एक ही है। राग के दो भाग हैं न!

२४५) जोइय णेहु परिच्चयहि णेहु ण भल्लउ होइ।
णेहासत्तउ सयलु जगु दुक्खु सहंतउ जोइ॥११५॥

'**जोइ**' का अर्थ '**पश्य**' किया है। देख। देख, ऐसा।

हे योगी! रागादि रहित वीतराग परमात्मपदार्थ के... देखो, पहली बात तो यह ही यहाँ की है। भगवान आत्मा देह के परिणामरहित आत्मा है। वस्तुस्वरूप भगवान आत्मा में राग के—स्नेह के परिणाम के विकल्परहित प्रभु आत्मा है। ऐसे **वीतराग परमात्मपदार्थ के ध्यान में...**उसकी एकाग्रता में **ठहरकर...** उसकी एकाग्रता में ठहरकर **ज्ञान का वैरी स्नेह को छोड़...** उपदेश की शैली तो ऐसे आवे न। क्योंकि वह उत्पन्न ही नहीं होता। भगवान ज्ञानस्वरूप महान माहात्म्यवाला पदार्थ, उसके अन्तर में एकाग्र होने पर उसका नाम ध्यान। अर्थात् एक ध्येय को लक्ष्य में लेकर ठहरने पर ज्ञान के वैरी राग का नाश हो जाता है। दूसरा कोई उपाय राग के नाश करने का नहीं है। ऐसा कहते हैं। उसे छोड़... छोड़... छोड़... इस प्रकार से छोड़ना।

भगवान प्रभु निर्लेप स्वभाव का पिण्ड आत्मा की एकाग्रता द्वारा वह उत्पन्न नहीं होता, उसे छोड़ा कहा जाता है। छोड़। वापस, हों! '**परित्यज**' अकेला, ऐसा नहीं। सर्वथा प्रकार से, समस्त प्रकार से छोड़। **क्योंकि स्नेह... 'भद्रः न भवति'** वह भला नहीं है। उसकी भाषा है। '**णेहु ण भल्लउ होइ**' है न? उसकी भाषा देखो, '**णेहु ण भल्लउ होइ**' वह ... '**णेहु ण भल्लउ होइ**' भाषा उसकी टीका में है। अशुभ है, शुभाशुभभाव दोनों अशुभ है। शुद्ध तो परमात्म अपना स्वभाव, उसकी परिणाम शुद्धता, वही शुभ है। बाकी कोई शुभ है नहीं। समझ में आया?

क्योंकि स्नेह अच्छा नहीं है, स्नेह में लगा हुआ (सकल जगत) समस्त संसारी जीव अनेक प्रकार शरीर और मन के दुःख सह रहे हैं,... लो! तब उस ज्ञान से, ऐसा कि देख। ऐसे देख-देख। उसे देखने खड़ा नहीं रहा कि यह दुःख है। देखूँ तो सही यह सब प्राणी दुःखी... दुःखी... दुःखी... लोभ के मारे रागी। और लोग नहीं कहते? स्नेह उतना दुःख, ऐसा कहते हैं न! जितना स्नेह, उतना दुःखदायी। जितना पर में प्रेम, उतना दुःख। आत्मा में एकाग्रता, उतना सुख। **संसारीजीव...** कैसे हैं? **स्नेह रहित शुद्धात्मतत्त्व**

की भावना से रहित हैं,... बात यह लेनी है। भगवान शुद्ध प्रभु। शुद्ध ज्ञायकभाव परमानन्द की मूर्ति ऐसा जो शुद्धात्मतत्त्व अर्थात् स्वभाव, उसकी भावना अर्थात् एकाग्रता, स्वस्वभाव की भावना—एकाग्रता होने पर केवलज्ञान प्राप्त हो, ऐसी भावना रहित। दुनिया ... संसारी जीव अपने शुद्धात्मस्वभाव की एकाग्रतारहित है।

इसलिए नाना प्रकार के दुःख भोगते हैं। इसलिए अनेक प्रकार के दुःख भोगते हैं। **दुःख का मूल एक देहादिक का स्नेह ही है।** लो! दुःख का मूल **देहादिक का स्नेह ही है।** लो! देवचन्दभाई! है? लिखा है? ... ऐसा कहते हैं। ऐसा कहते थे। सवेरे आये थे। ... कौन जिलावे? यहाँ तो कहते हैं **देहादि का स्नेह...** देह, स्त्री, पुत्र, इज्जत, कीर्ति, लक्ष्मी, यह सब दुःखदायक है। समझ में आया? **दुःख का मूल एक देहादिक का स्नेह ही है।** और सुख का मूल परमात्मा के प्रति दृष्टि। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

भावार्थ : - यहाँ भेदाभेदरत्नत्रय मोक्ष के मार्ग से... व्यवहाररत्नत्रय, वह मोक्ष का मार्ग। भगवान आत्मा अपने निजस्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो निर्विकल्प और वीतरागी परिणति, उसे निश्चय अभेद मोक्षमार्ग कहा जाता है। भगवान पूर्णानन्द प्रभु के सन्मुख की दृष्टि निश्चय, उसके सन्मुख का ज्ञान, उसके सन्मुख की स्थिरता को अभेदरत्नत्रय कहा जाता है। उसके साथ शुभराग विकल्परूप, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत के विकल्प के परिणाम, शास्त्र सन्मुख का ज्ञान, वह सब भेदरत्नत्रय, शुभराग को भेदरत्नत्रय कहा जाता है। क्योंकि अभेदरत्नत्रय निश्चय है, वहाँ भेदरत्नत्रय है, उस निमित्त को साथ में लेकर प्रमाण का ज्ञान कराकर भेदाभेदरत्नत्रय मोक्ष का मार्ग है, ऐसा कहा गया है। समझ में आया?

भेदाभेदरत्नत्रयरूप मोक्ष के मार्ग से विमुख... बस, इसकी ही बात है। सम्यग्दृष्टि को छह खण्ड का राज, परन्तु राग नहीं उसे। अन्दर राग हो, वह राग उसका नहीं। उसे तो शुद्ध चिदानन्दस्वभाव, वह उसका है। आहाहा! अपनी पूंजी में अनन्त गुण की राशि भगवान आत्मा, वही उसकी पूँजी है। राग भी नहीं, व्यवहार भी नहीं, निमित्त भी नहीं। कहो, समझ में आया? अज्ञानी को ऐसे भेद का, व्यवहार का ... निश्चय। ऐसा रत्नत्रय... देखो एक साथ है दोनों। ऐसा नहीं कि भेद पहले हो और अभेद हो बाद में।

मुमुक्षु : .... काल में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अब कोई काल में नहीं, परन्तु सब स्थापित करते हैं न। बड़े पण्डित सामने हो तब। लोग सामने। अरे! भगवान क्या करता है? यहाँ का विरोध... करने के लिये ... टोडरमलजी को मिथ्या ठहराना, फलाने को मिथ्या ठहराना। आर्षवाक्य लाओ, आर्षवाक्य—ऐसा बोलते हैं। मुनि का नहीं, पण्डितों का नहीं, आर्षवाक्य लाओ। तुम स्वयं पण्डित ऐसा अर्थ करो, वह तुम्हारा अर्थ करनेवाला लाओ यहाँ। तू ऐसा अर्थ करता है, वह हमारे कैसे मान्य रखना? समझ में आया?

भेदाभेदरत्नत्रय मोक्ष के मार्ग से विमुख होकर मिथ्यात्व रागादि में स्नेह नहीं करना,... देखो, यहाँ बात यह है। विपरीत मान्यता और अस्थिरता का भाव, कहते हैं कि अचारित्र है। उसमें **स्नेह नहीं करना,...** भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप प्रभु है, उसे पर्याय में प्रगट करने के लिये अन्दर की एकाग्रता करनेयोग्य है। पर्याय में प्रगट करने के लिये द्रव्य में दृष्टि रखकर एकाग्रता करनेयोग्य है। यह पर में लोभ छोड़नेयोग्य है। समझ में आया? **मिथ्यात्व रागादि में स्नेह नहीं करना,...** यह आता है न, भाई! भरत में नहीं आता? भरतेश में आता है। सुवर्ण। वहाँ भी आता है। भरतेशवैभव में। इसका वह था न मुनि-मुनि।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दूसरा। उस लड़के को—एक भरत के पुत्र को वह पुत्री देने आये थे। तो ... कन्या शादी कहे न? सम्बन्ध। उसमें चर्चा हुई, यह भरत के और उसके पुत्र को। भरत को और पुत्र को। भरत कहते हैं, अरे भैया! व्यवहाररत्नत्रय, भेदरत्नत्रय मुक्ति का मार्ग है। पुत्र को कहते हैं। बहुत चर्चा हुई है।

वह कहे, पिताजी! यह कहाँ से लाये? तुम अभी तक तो कहते थे कि अभेदरत्नत्रय मुक्ति का मार्ग है। भेदरत्नत्रय तो विकल्प है। अभेदरत्नत्रय मुक्ति का मार्ग अभी तक क्यों कहा। ... और उन दोनों को चर्चा हुई थी भरत को। तो भरत ने व्यवहार का पक्ष किया, ... निश्चय का तर्क करते थे। चर्चा निकली। चर्चा करते... करते... करते... भरतेश... भेदरत्नत्रय मुक्ति। पिताजी! भेदरत्नत्रय वह मुक्ति? दादा के पैर छूना, वन्दन

करना, वह मुक्ति नहीं?—भरत कहते हैं। भगवान थे न तब ऋषभदेव भगवान। कि भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा आत्मा पितामह है। उनकी भक्ति करना, वन्दना करना, वह व्यवहार से मुक्ति नहीं? भगवान को वन्दन करना मुक्ति नहीं? पुत्र को दबाते हैं? पिताजी! तुम तो ... पहले, अभी क्या हुआ? समझे न? फिर पिताजी कहे, तुझे क्या हुआ? यह तुझे कन्या देने आवे, इसलिए तेरे मामा का पक्ष करता है तू? उसको कहते हैं कि तेरे मामा का पक्ष करता है? निश्चयमोक्षमार्ग—निश्चयमोक्षमार्ग। व्यवहार नहीं? व्यवहारनय से भगवान पितामह महा विराजते हैं। तो वहाँ उनकी भक्ति-भक्ति मोक्ष का मार्ग नहीं? पिताजी! आज क्या हुआ? अभी तक तो नहीं कहते थे तुम। तुम तो निश्चयमोक्षमार्ग कहते थे। व्यवहार आता है पुण्य बन्ध का कारण है—ऐसा कहते थे न? यह तुम्हारे पिताजी। पिताजी! हम पक्ष नहीं करते हमारे मामाजी का। हम तो सच कहते हैं। ऐसा मार्ग है। यह चर्चा चली है। अब उसने गड़बड़ कर डाली। पुत्र और पिताजी के बीच चर्चा चली। ओहो! हम तो तुम्हारी परीक्षा करते थे। बड़ी अच्छी बात है, भैया! बड़ी अच्छी बात है। बात तुमने पकड़ी है, अच्छी पकड़ी है। हम तो तुम्हारी परीक्षा करते हैं। ऐसी तो चर्चा भरतेशवैभव में चली है। कैसा वर्णन! रत्नाकर वर्णी (कृत) भरतेशवैभव है न? समझ में आया? बड़ा अच्छा बेटा! हम तो तुम्हारी परीक्षा करते थे। ... परन्तु मोक्ष का कारण नहीं। स्वभाव के आश्रय से जितनी दृष्टि, स्थिरता आदि हुई, वह मोक्ष का कारण है। बराबर। लो, अब अभी इसका बड़ा विवाद उठा। कहे, ऐसा नहीं।

यहाँ कहते हैं, **भेदाभेदरत्नत्रयरूप मोक्ष के मार्ग से विमुख होकर मिथ्यात्व रागादि में स्नेह नहीं करना, यह सारांश है।** सारांश है। **क्योंकि ऐसा कहा भी है कि जब तक यह जीव जगत से स्नेह न करे,...** पाठ है न। '**तावदेव सुखी जीवो यावन्न स्निह्यते क्वचित्। स्नेहानुविद्धहृदयं दुःखमेव पदे पदे।।**' संस्कृत श्लोक है ११५वाँ। '**तावदेव सुखी जीवो यावन्न स्निह्यते क्वचित्। स्नेहानुविद्धहृदयं दुःखमेव पदे पदे।।**' अपने आयेगा। आधार नहीं लिया। ... नहीं। **जब तक यह जीव जगत से स्नेह न करे,...** अर्थात् भगवान आत्मा का प्रेम करे और जगत का स्नेह (न करे)। दोनों ओर। एक

वस्तु। एक ओर भगवान आत्मा। एक ओर राम तथा एक ओर गाँव। एक ओर अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु राम, इसके अतिरिक्त सारे पुण्य-पाप के विकल्प से लेकर सब गाँव—पूरी दुनिया। उसका प्रेम न करे, वह आत्मा का प्रेम करे। आत्मा का प्रेम न करे, वह रागादि निमित्त का प्रेम करे। समझ में आया? एक ओर राम—आत्मराम भगवान, एक ओर पुण्य-पाप के विकल्प से लेकर पूरा जगत। यह कहते हैं।

जब तक यह जीव जगत से स्नेह न करे,... जगत शब्द से शुभ-अशुभभाव, शरीर, कर्म, देव-गुरु-शास्त्र पूरा जगत। आहाहा! **जब तक यह जीव जगत से स्नेह न करे, तब तक सुखी है, और जो स्नेहसहित हैं,...** जगत के स्नेह की प्रीतिसहित है, उसे भगवान आत्मा की प्रीति है नहीं। **जिनका मन स्नेह से बँध रहा है,...** दुनिया के साथ राग, पुण्य, विकल्प, निमित्त, संयोग **बँध रहा है, उनको हर जगह दुःखी ही है।** उसे हर जगह दुःखी ही है। हर जगह अर्थात् विकार में एकत्व पड़ा है तो दुःखी है सर्वत्र। नरक में हो तो भी दुःखी और राजपद में हो तो भी दुःखी और यह समवसरण के मध्य में सुनने बैठा हो तो भी दुःखी। समझ में आया? यह... है। सर्वत्र दुःखी देख और जहाँ उसका प्रेम नहीं, उसे भगवान आनन्द का प्रेम है, उसे सुखी देख। पर में स्नेह नहीं, वहाँ सुखी, पर का स्नेह हुआ तो दुःखी। आहाहा! समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - ११६

दृष्टान्त देते हैं। **आगे स्नेह का दोष दृष्टान्त से...** तिल-तिल। तिल का दृष्टान्त देकर।

२४६) जल-सिंचणु पय-णिद्दलणु पुणु पुणु पीलण-दुक्खु।
णेहहँ लग्गिवि तिल-णियरु जंति सहंतउ पिक्खु॥११६॥

जलसिञ्चन पादनिर्दलनं पुनः पुनः पीडनदुःखम्।
स्नेहं लगित्वा तिलनिकरं यन्त्रेण सहमानं पश्य॥११६॥

सुखी देख भाई, कहते हैं। **जैसे तिलों का समूह...** तिल-तिल। हमारे (गुजराती

में) तल कहते हैं। तिलों का ढ़ेर—समूह। **स्नेह के सम्बन्ध से...** अन्दर में चिकनाई है। **जल से भींगना...** पहले तो तिल में पानी डाले। भींगोवे, फिर डाले न पानी में। गीला करे पहले गीला। भीना क्या कहते हैं? गीला। तिल को गीला तुम्हारी भाषा। हमारी भाषा में भीना। पानी डालकर। पानी डाले। एकेन्द्रिय जीव है। तिल सूखे में भी जीव गिना है। श्वेताम्बर में है। वह भिक्षा लेने जाये और एक तिल का दाना पड़ा हो तो भिक्षा न ले। तिल-तिल और गेहूँ। यह गेहूँ समझे न? ... उसमें एक जीव गिना है। भिक्षा के लिये जाये और एक गेहूँ—दाना पड़ा हो। ... होवे या राजा हो। साधु न ले। समझ में आया? यह मिर्ची का ... क्या कहलाता है? मिर्ची-मिर्ची। यह बीज हो न अन्दर इतने सूक्ष्म बीज। सूखे पड़े हों। वह पड़ा हो और उसके ऊपर पैर आ गया। हिंसा हो गयी। जीव गिनते हैं। परन्तु इसमें तो बहुत गिनते हैं। हमने तो बहुत वर्ष से किया है न! ऐसा आहार लिया निर्दोष, हों! ....

भावनगर में (संवत्) १९७७ में गये तब ऐसा हुआ। भावनगर में उसको भान नहीं होता और साधु को सबको दे ... बनाकर सब पानी। और हम गये, ३०-३०, ३५ घर घूमे तो भी आहार न मिले। निर्दोष न मिले। (संवत्) १९७७ के वर्ष की बात है। १९७७। ३०-३०, ३५ घर घूमना पड़े। क्योंकि हमारे लिये कुछ न कुछ ख्याल में आवे तो ... निर्दोष उसके लिये बनाया हुआ न हो... रस। रस निकाला हो रस आम का। वह क्या कहलाता है? आम। अधमण-अधमण, मण-मण रस हो। एक गुठली यदि अन्दर हो। गुठली समझे न? एक यहाँ गुठली पड़ी हो तो रस नहीं लिया जाये। खबर है या नहीं? बहुत डरते। यह सब सेठिया डरते। भिक्षा देने के लिये लोग डरेंगे। लाखोंपति डरे। ... नहीं ले। एक जरा सा ऐसा बीज का दाना दिखायी दे तो कहे नहीं। मेरे लिये हुई भिक्षा हमारे नहीं चाहिए।

कहते हैं कि यहाँ एक तिल में... चिकनाईयुक्त पड़ा है न वह तेल? **जल से भीगना, पैरों से खूंदना,...** पैर। **घानी में बार-बार पिलने का...** बारम्बार। वह घाणी में तो बारम्बार फिराये न ऊपर। उसमें बारम्बार **पिलने का दुःख सहता है, उसे देखो।** उसे देख, ऐसा कहते हैं। दुःख को देख, भाई! वह तो आनन्दस्वरूप भगवान की तुझे रुचि करने का प्रसंग है। यह दुःखी... दुःखी... समझ में आया?

भावार्थ :- जैसे स्नेह (तेल) के सम्बन्ध होने से तिल घानी में पेले जाते हैं,... उस चिकनाई के सम्बन्ध के कारण से पिलते हैं। तिल में तेल है न! घाणी में पीले चिकनाई ... ऐसा सिद्ध करना है न? **उसी तरह जो पंचेन्द्रिय के विषयों में आसक्त हैं...** भगवान आत्मा, अपने अतीन्द्रिय आनन्द में दृष्टि की एकाग्रता नहीं, जिसने सम्यग्दृष्टिपना प्रगट नहीं किया, वह पाँच इन्द्रिय के विषयों में आसक्त है। समझ में आया? जहाँ अन्तर दृष्टि नहीं, उसे स्वभाव के भान बिना भले मुनि हो, तो भी कहते हैं कि वह विषयों में ही आसक्त है। समझ में आया? २३६ में आता है न, भाई! प्रवचनसार। ... २३६ (गाथा) है। जिसे तेरे प्रति प्रेम है, और राग के प्रति प्रेम है, उसे जीव न मरे तो भी वह असंयमी है। २३६ है। खोटा मिले, खोटा ही बोले सब। (२३६)।

इस लोक में वास्तव में, स्यात्कार जिसका चिह्न है, ऐसे आगमपूर्वक तत्त्वार्थ-श्रद्धानलक्षणवाली दृष्टि से जो शून्य है, उन सबको प्रथम तो संयम ही सिद्ध नहीं होता... उन्हें संयम ही नहीं हो सकता। सम्यग्ज्ञानपूर्वक अन्तर दृष्टि नहीं, उन्हें संयम नहीं हो सकता। **क्योंकि (१) स्व-पर के विभाग के अभाव के कारण...** स्व-पर के विभाग के अभाव के कारण **काया और कषायों के साथ एकता का अध्यवसाय करनेवाले...** महासिद्धान्त है यह अमृतचन्द्राचार्य का। है न? '**स्वपरविभागाभावात् कायकषायैः सहैक्यमध्यवसतो**' जिसे एक विकल्प उठता है राग का, उसके साथ जिसे एकता है दृष्टि में और काया की क्रिया होने पर, वह मैं करता हूँ—ऐसी देह की अवस्था के साथ एकता है। ऐसे स्व-पर के विभाग के अभाववाले **काया और कषायों के साथ एकता का अध्यवसाय करनेवाले ऐसे वे जीव, (अपने को) विषयों की अभिलाषा का निरोध नहीं होने से...** उन्हें विषयों का निरोध नहीं हुआ। देखो, और **छह जीवनिकाय के घाति होकर सर्वतः प्रवृत्ति करते होने से,...** राग का विकल्प है शुभ का, परन्तु उसके साथ एकत्वबुद्धि है, वह कषाय के साथ एकत्वबुद्धि है। अकषाय भगवान से छूट गया है दृष्टि में। और काया की क्रिया ऐसी हो व्यवस्थित-व्यवस्थित ऐसा जाने और शरीर का ब्रह्मचर्य रहे और विषय... अर्थात् मैंने यह शरीर को रोका है। ऐसी बुद्धि सब मिथ्यादृष्टि है। ऐसे बुद्धिवाले को सर्वतः छह जीवनि (काय के) घाति

होकर प्रवर्तते हैं। **इसलिए उनके सर्वतः निवृत्ति का अभाव है...** देखो, स्पष्टीकरण किया हमारे पण्डितजी ने।

जिन जीवों को स्व-पर का भेदज्ञान नहीं, उनके भले ही कदाचित् पाँच इन्द्रियों के विषयों का संयोग न दिखता हो,... संयोग दिखाई न देता हो, परन्तु शुभ विकल्प की... एकताबुद्धि महा अभिप्राय में मिथ्यात्व है। उसे बन्धन अज्ञान, दर्शनमोह का होने का और उसके विषयों के संयोग सदा मिलनेवाले हैं। कहते हैं कि **पाँच इन्द्रियों के विषयों का संयोग न दिखता हो, छह जीवनिकाय की द्रव्यहिंसा न दिखाई देती हो...** पाठ है या नहीं उसमें? छह जीवनिकाय के घाति होकर प्रवर्तते हैं। आहाहा! कषाय और काया। अकषाय चैतन्यघन, चैतन्य शरीर की एकाग्रता बिना जिसे राग और काया के साथ एकताबुद्धि है, वह बाहर में छह काय की हिंसा करता न हो, तथापि छह काय की हिंसा में ही वह प्रवर्तता है। आहाहा!

इस प्रकार संयोग से निवृत्ति दिखाई देती हो, तथापि काया और कषाय के साथ एकत्व माननेवाले उन जीवों को वास्तव में पंचेन्द्रिय विषयों की अभिलाषा का निरोध नहीं है,... जिसे राग का एक कण है, उसका प्रेम है, उसकी अभिलाषा वर्तती है, उसे स्वभाव वीतरागी अभिलाषी की भावना है नहीं, इसलिए पाँच इन्द्रियों के विषयों की अभिलाषा उसे वर्तती है, ऐसा कहते हैं। ऐई! बसन्तीलालजी! **हिंसा का किंचित्मात्र अभाव नहीं है और इसी प्रकार परभाव से किंचित्मात्र निवृत्ति नहीं है।** पाठ है, हों! प्रवचनसार २३६। २३६ गाथा ...। की गाथा २३५। स्पष्ट वितर्कणा से द्रव्य-गुण-पर्याय सिद्ध होते हैं ... उसकी बात करके फिर २३६। ऐसा जिसे भान नहीं और राग तथा काया में... फिर दो बातें ली—कषाय और शरीर। क्योंकि बाहर में... यहाँ कषाय की एकता है, इसलिए बाहर में एकता और देह की क्रिया मैं करता हूँ, वह अवस्था मैंने रोकी है, विषय होने से मैंने रोका है, विषय लेने में भी देह की क्रिया को मैं करता हूँ, उसे मैंने अटकाया, वह भी मिथ्यादृष्टि है। वह काया की पर्याय का जो अटकना हुआ, वह उसके—जड़ के कारण से है, परन्तु उसमें जिसकी एकत्वबुद्धि है, वह छह काय का घातक है। उसे किंचित्मात्र भी निवृत्ति नहीं हुई। बहुत कठिन बात है। आहाहा!

'सर्वस्यापि स्यात्कारकेतनागमपूर्विकया तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणया दृष्टया शून्यस्य स्वपरविभागाभावात् कायकषायैः सहैक्यमध्यवसतोऽनिरुद्धविषयाभिलाषतया षड्जीवनिकायघातिनो भूत्वा सर्वतोऽपि कृतप्रवृत्तेः सर्वतो निवृत्त्यभावात्तथा परमात्म-ज्ञानाभावाद्' देखो, यह अमृतचन्द्राचार्य... कहते हैं। भगवान अकषाय और चैतन्य जिसका शरीर। चैतन्य जिसका शरीर, पाठ में ऐसा कहते हैं। अकषाय और चैतन्य... **'विग्रहं'** उसकी एकाग्रता नहीं, उसे भावना में जो विकल्प उठते हैं, उसकी ही उसे भावना है। इसलिए पंचेन्द्रिय के विषय की अभिलाषा से वह निवृत्त नहीं हुआ। और उस काया को अपनी मानता है। क्योंकि यह शरीर, वह चैतन्य विग्रह माना नहीं। इसलिए इसे अपना मानता है। अन्दर देह की अवस्था क्षण-क्षण में होती है... ऐसा करना... वह तो प्रमाद न होने देना, इतनी बात है। परन्तु पर की क्रिया ऐसे होकर और यह मैं कर सकता हूँ। वह देह की अवस्था का अपने को ही कर्ता मानता है। वह देह को ही आत्मा मानता है। इनकार करते हैं, यहाँ तो कहते हैं, छह काय का घातक ही है। एकेन्द्रिय को नहीं मारता हो तो भी कषाय की अभिलाषावन्त प्राणी अकषायस्वभाव के दृष्टि के विरोध में वह पंचेन्द्रिय के विषय का अभिलाषी और छह काय का घातक, दोनों है। २३६। यह वापस चरणानुयोग का अधिकार है यह। चरणानुयोग का तीसरा अधिकार है प्रवचनसार, उसमें यह गाथा है।

भाई! अभिप्राय में जिसे, राग करनेयोग्य है, ठीक है, उसे कषाय के अभिप्राय में तीव्र अभिप्राय वर्तता है। समझ में आया? और योगफल देखने पर उसे कषाय का ही अभिप्राय वर्तता है। इसलिए यहाँ कहते हैं, हों! समझ में आया? **(चिकनाई तेल) के सम्बन्ध से तिल घानी में पेले जाते हैं, उसी तरह जो पंचेन्द्रिय के विषयों में आसक्त हैं** — इसके ऊपर से बात आयी। यहाँ पंचेन्द्रिय के विषय का अभिलाषी कहा है न वहाँ। क्योंकि पंचेन्द्रिय के विषय में आसक्त है। सम्यग्दृष्टि पंचेन्द्रिय के विषय में आसक्त है ही नहीं। कषाय और कायारहित मेरी चीज़ की दृष्टि, अनुभव में धर्मी कषाय और पंचेन्द्रिय के अभिलाषावाला है नहीं। अज्ञानी पंचेन्द्रिय के भोग को न भोगता हो और काया द्वारा छह काय की हिंसा होती हुई दिखाई न दे, परन्तु जिसे अपने चैतन्य स्वभाव से विरुद्ध राग का प्रेम, एकाग्रता है, अभिलाषा है, भावना है। उसे छह काय का

घातक देख और पाँच इन्द्रिय के विषय का अभिलाषी देख। समझ में आया?

अन्तर का अभिप्राय किस ओर ढला है, उसके ऊपर पूरी सृष्टि की उत्पत्ति है। दृष्टि वैसी सृष्टि। इसका अर्थ क्या? कि विकार के विकल्प की दृष्टि की एकता, वैसी सृष्टि मिथ्यात्व जिसे क्षण-क्षण में उत्पन्न होती है। और उस मिथ्यात्व का पाप कसाईखाने से अनन्तगुना गिना है। टोडरमलजी कहते हैं न! टोडरमलजी ने कहा है। सात व्यसन के पाप से मिथ्यात्व का पाप अनन्तगुना है। समझ में आया या नहीं? है या नहीं? यह छठवाँ-छठवाँ। छठवाँ अध्याय। अन्तिम भाग। बहुत बार यहाँ तो बात आ गयी है न। देखो! 'जैन धर्म में तो ऐसी आम्नाय है, (कि) पहले बड़ा पाप छुड़ाकर फिर छोटा पाप छुड़ाया जाता है। इसलिए मिथ्यात्व का (पाप) सात व्यसनादि से भी महान पाप जानकर। पहले छुड़ाया है।' समझ में आया? 'सात व्यसनादि से भी महान पाप जानकर पहले... इसलिए पाप के फल से भयभीत है।' (वे मिथ्यात्व को अवश्य छोड़ें)। आहाहा! ... इसमें कुछ सन्देह नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

ज्येष्ठ कृष्ण ८, बुधवार, दिनांक - २३-०६-१९६५
गाथा - ११७ से ११९ प्रवचन - १५५

गाथा - ११७

११६ गाथा हुई। परमात्मप्रकाश। **इस विषय में कहा भी है—** दूसरा श्लोक, उसके लिये विशेष स्पष्ट करते हैं।

२४७) ते चिय धण्णा ते चिय सप्पुरिसा ते जियंतु जिय-लोए।
वोद्दह-दहम्मि पडिया तरंति जे चेव लीलाए॥११७॥

क्या कहते हैं? देखो, **वे ही धन्य हैं,...** इस जगत में उन पुरुषों को धन्य कहते हैं कि जो **वे ही सज्जन हैं,...** सत्पुरुष है न? 'ज' का 'त' होता है। वे सत् जन हैं। वे ही इस जगत में सत्पुरुष हैं कि **वे ही इस जीवलोक में जीवते हैं,...** वे जगत में जीवित हैं, वे जीव हैं। कौन? कि **जो जवान अवस्थारूपी बड़े भारी तालाब में... 'यौवनद्रहे'** जवान शरीर की अवस्था हो, ऐसा बड़ा भारी द्रह—**तालाब में पड़े हुए विषय-रस में नहीं डूबते,...** पतित। और '**लीलया**' अर्थात् **लीला (खेल) मात्र से ही...** खेलमात्र से ही **तैर जाते हैं। वे ही प्रशंसायोग्य है।** अब यह लीलामात्र से लिया है न, इसलिए अकेला विषय, ऐसा नहीं। जवानी का विषय न सेवन करे, ऐसा नहीं, यह तो वस्तु के भानसहित की बात लेने के लिये लीलामात्र कहा है। वरना तो अकेला शरीर से यौवन अवस्था में ब्रह्मचर्य पालन करे, वह तो विकल्प है। वह कहीं संसार समुद्र को तिरने का उपाय नहीं है। इसलिए लीला शब्द डालकर अन्तर स्वरूप की दृष्टि की बात करते हैं, देखो!

भावार्थ :- यहाँ विषय-वांछारूप जो स्नेह-जल... जहाज-जहाज, बड़ा जहाज। **विषय-वांछारूप जो स्नेह-जल उसके प्रवेश से रहित...** जहाज, बड़ा जहाज-जहाज। वहाण कहते हैं न? यह तो जहाज। **जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी...** एक तो वह

जहाज कैसा है ? कि विषय की वांछारूपी स्नेह जल से रहित है। उसमें प्रवेश नहीं। नीचे छिद्र पड़े न ! पानी अन्दर प्रविष्ट हो। पानी प्रविष्ट नहीं होता, छिद्र ही नहीं। विषय की वाँछारूपी छिद्र। (गुजराती में) काणा कहते हैं न ? छिद्र-छिद्र। वह छेद नहीं जो जहाज को ....

दूसरा, **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी अमूल्य रत्नों से भरा...** यह अमूल्य शब्द पड़ा रहा है, यह कहा था। देखो, यह अकेला जवान अवस्था में विषय न ले तो तिर जाये, ऐसा नहीं है। परन्तु उस जवान अवस्था में विषय से तिर जाये। कौन ? उन विषय में का अकेला ब्रह्मचर्य पाले और अकेली यह बात नहीं लेना, इसलिए यह बात जरा स्पष्ट किया 'लीला' शब्द रखकर। भगवान आत्मा अपने शुद्ध आनन्दस्वरूप की प्रतीति, आनन्दस्वरूप का स्वसंवेदनज्ञान और आनन्दस्वरूप में चारित्र अर्थात् लीनता। उस रूपी अमूल्य रत्नों से भरा। कहो, समझ में आया ?

जवान अवस्था जहाँ हष्टपुष्ट अवस्था हो देह की। २०, २५, ३०, ३५, ४० आदि अवस्था शरीर की जवान। कहते हैं कि उस जवानरूपी तालाब का पानी, उसे पार कौन पाता है ? और उसमें से कौन तिर जाता है ? कि जिसे विषय की वाँछना के जल का प्रवेश ही जिसमें नहीं। एक। यह तो नास्ति से बात की। यहाँ सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के अमूल्य रत्नों से जो जहाज भरा हुआ है। भगवान आत्मा शुद्ध अनाकुल आनन्द की मूर्ति, उसकी अन्तर में विकल्प से रहित निर्विकल्प दृष्टि, ज्ञान और रमणतारूप अमूल्य रत्नों से भरा। वह क्या ?

निज शुद्धात्मभावनारूपी... बर्तन भरा हुआ है उससे। वासण-वासण। अकेले रत्न नहीं पड़े, कहते हैं। वासण में रतन रखे हैं, और ऐसे वासण से पूरा जहाज भरा हुआ है। वासण कहते हैं न ? बर्तन। भांड अर्थात् बर्तन। ऐसा कि अकेला जहाज नहीं, अकेले रतन अलग नहीं पड़े। उसमें भांड-बर्तन रखे, बर्तन में भरे हुए हीरे। ऐसे पूरे हों जहाज में। डिब्बे भर-भरके रतन रखे हैं, ऐसा कहते हैं। यहाँ तो कहते हैं, **शुद्धात्मभावनारूपी...** देखो, वापस किसकी ? कि **निज शुद्धात्मा...** ऐसा। भगवान तीर्थंकर आदि परमात्मा, उनकी नहीं, वह तो विकल्प है। निज अर्थात् अपना शुद्धात्मरूप

तत्त्व की भावना—उसकी एकाग्रतारूप, परन्तु यह तो यह कहा, हों! **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी अमूल्य रत्नों से भरा निज शुद्धात्मभावनारूपी भांड...** उसमें यह रतन पड़े हैं, ऐसा कहते हैं। उस निज शुद्धात्मा की एकाग्रता में वे रत्न पड़े हैं।

मुमुक्षु : शुद्धात्मा की भावना लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह भावना कहो या एकाग्रता। समझ में आया? भगवान निज शुद्धस्वरूप, उसकी एकाग्रतारूपी भावना में वे दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी रत्न पड़े हैं। आहाहा!

उससे यौवन अवस्थारूपी महान तालाब को तैर जाते हैं,... अकेली यौवन अवस्था तिरे, ऐसा नहीं। ऐसे भानसहित। देखो, वरना तो ऐसे शरीर से ब्रह्मचर्य पाले, वह तो अनन्त बार किया है ऐसा। समझ में आया? वह लाईन निकाल थी अभी भाई कल राजमलजी की। यह है न अपने बुधजन। सब शाम को चर्चा होने पर वह लाईन है अन्दर। 'सब व्यवहार क्रिया का ज्ञान, भयो अनन्ती बार प्रधान, निपट कठिन अपनी पहचान।' वह ज्ञान कहा है, हों! क्रिया का ऐसा। ज्ञान भी अनन्त बार किया, भाव तो हुआ, परन्तु उसका ज्ञान ऐसी-ऐसी क्रिया सब ज्ञान किया। 'भयो अनन्ती बार प्रधान, निपट कठिन अपनी पहचान, ताको पावत होत कल्याण।' निज शुद्धात्मा का ज्ञान। दूसरा ज्ञान तो कहते हैं कि इतना-इतना करणानुयोग का, चरणानुयोग का सब इतना ज्ञान किया है कि बहुत अनन्त बार किया। परन्तु निपट एक यह वस्तु भगवान आत्मा शुद्ध परमब्रह्म आनन्द निज शुद्धात्मा की भावना, एकाग्रतारूप बर्तन, उसमें भरे हैं सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी अमूल्य रत्न। समझ में आया? ऐसा जो जहाज।

उससे यौवन... जवान शरीर की **अवस्थारूपी महान तालाब को तैर जाते हैं,...** ऐसे यौवनदशा के द्रह को ऐसे भाव से तिर जाते हैं, **वे ही सत्पुरुष हैं,...** उन्हें सत्पुरुष कहा जाता है। सत्पना मिलना चाहिए न! सत्पना बिना अकेली पुण्यादि की क्रिया, वह कोई सत् नहीं। अकेले यौवन की क्रिया में शील पाले, वह विकल्प है, वह कहीं सत् नहीं। समझ में आया? चिदानन्द प्रभु निज शुद्धात्मा शुद्धस्वरूप। पर्याय निकाल डाली। त्रिकाली शुद्धस्वरूप, उसकी एकाग्रतारूपी भांड-बर्तन, उसमें भरे हैं सम्यग्दर्शन-

ज्ञान-चारित्ररूपी रत्न। ऐसे जहाज से यौवन अवस्थारूपी महान द्रह को तिर जाते हैं। समझ में आया?

वे ही सत्पुरुष हैं, वे ही धन्य हैं, यह सारांश जानना, बहुत विस्तार से क्या लाभ है। आहाहा! क्या कहें विशेष? अलम। आता है न अन्त में कलश में आता है न पण्डितजी! वह पीछे अमृतचन्द्राचार्य। अलम अति जल्पेन। आचार्य (कहते हैं), बहुत हुई, बहुत हुई, अब बस कर, बस कर, लो। समझ में आया? देखो! यह थोड़े श्लोक में तो कितना कहा! ऐसा सहन करना पड़े और मुझे ऐसा करना पड़े, बापू! तलवार की धार है। शरीर को ब्रह्मचर्य पालना युवा अवस्था में, कठिन काम। तलवार की धार है। ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। उस ब्रह्मचर्य को ब्रह्मचर्य ही कहते नहीं। ब्रह्म अर्थात् आनन्दस्वरूप में चर अर्थात् रमना। उसकी प्रतीति, ज्ञान और रमणता ऐसी अपनी एकाग्रता के बर्तन में वे रत्न भरे हैं, उन द्वारा जहाज द्वारा, ऐसे जहाज द्वारा यौवन अवस्था के तालाब को तिर जाते हैं, उस पुरुष को—सत्पुरुष को धन्य कहा जाता है। उसकी महिमा करते हैं, ऐसा कहते हैं। अकेले शुभभाव को... समझ में आया? देखो भाई! पूरी जिन्दगी इसने बालब्रह्मचर्य पालन किया। यह नहीं। यह तो शुभविकल्प है। समझ में आया?

मुमुक्षु : यौवन अवस्था में....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह यौवन अवस्था की विशेषता है। वृद्धावस्था ... यह तो ऐसा कि यौवन अवस्था, पुष्ट अवस्था। जिसमें अनेक प्रकार के शरीर ऐसे तैयार हो गये हों विषय के लिये। ऐसे काल में भी चिदानन्द की भावना और एकाग्रता में जिसने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रत्न भरे हैं। उस द्वारा तिर जाये, उसे धन्य है। वृद्धावस्था में तिरे, उसमें क्या दिक्कत? यह तो ऐसी अवस्था की बात है।

मुमुक्षु : यहाँ विशेष ....

पूज्य गुरुदेवश्री : विशेष-विशेष स्पष्ट बतलाना है। बाकी वृद्धावस्था हो तो तिरे तो भी धन्य है, उसमें क्या? उसमें कहाँ बात? बालक आठ-आठ वर्ष की उम्र के। आहाहा! राजकुमार अभी तो ऐसे जन्म को आठ वर्ष हुए हों। एक छोटी मोरपिच्छी

और छोटा कमण्डल। और चले जाते हों मणिरत्न जैसे ऐसे। जंगल में से आहार लेने आते होंगे। सिंह के पुत्र। जिन्हें डर नहीं। ऐसे जंगल में अकेले पड़े हों, हों! दो-चार दिन में, आठ दिन में भिक्षा के लिये (आवे)। बाल-बाल मुनि शरीर से, हों! अन्दर पण्डित मुनि हैं। आहाहा! देखो, ऐसे बड़े-बड़े लोग बैठे हों सब हाथी और गाँव में घोड़ा, लश्कर और, उसमें मुनि चले आते हों सामने। चरणानुयोग में आता है न, भाई! अन्त में प्रवचनसार में (गाथा २३१)। बाल, ग्लान... शब्द आता है। शास्त्र में तो सब भरा है। शास्त्र में तो सब भण्डार भरे हैं। एक भी बात में कमी नहीं। ऐसे बाल की, भाई! सेवा करना, ऐसा करना... ऐसा करना... परन्तु वह कहाँ इच्छता है? यह तो फिर सामनेवाले का भाव ऐसा (आवे)।

मुमुक्षु : .... अभ्यास करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभ्यास किया आत्मा का। आत्मा का अभ्यास किया अन्दर से। वह नहीं आता? रवि। कैसा? रविकीर्ति, सौ कुमार 'सौ'। भरत के राजकुमार। भरतेश (वैभव) में आता है। सौ कुमार ऐसे गेडी-गेंद खेलते हैं। कोई पन्द्रह वर्ष के, सोलह वर्ष के, सत्रह वर्ष के, अठारह वर्ष के। सबमें निपुण, हों! सबमें निपुण अठारह वर्ष में। महा मस्तिष्क के प्रस्फुटित अन्दर से। गेडी गेंद ऐसे खेलते हैं। मणिरत्न की गेडी। उसकी माता ने व्यक्ति भेजा है कि ध्यान रखना वहाँ राजकुमारों का। उसमें एक व्यक्ति घोड़े से निकलता है (और कहता है) कि भगवान के निकट सेनापति जयकुमार ने दीक्षा ली है। भरत का सेनापति जयकुमार। वह क्या कहलाता है? सुलोचना का... सुलोचना और दोनों है न। जयकुमार सेनापति ने दीक्षा ली। व्यक्ति चला आता है। राजा के कुँवर खेलते थे, इसलिए उसने जरा ऐसा उनसे बात की। बात की और प्याला फट गया (वैराग्य वृद्धिगत हो गया) सौ ही लड़कों का। ओहो! हमारे पिता भरत, उनका सेनापति जयकुमार। जिसे मेघ-मेघ नहीं कुछ उपमा दी? पण्डितजी! मेघेश्वर। मेघेश्वर उपमा दी है। उस देव को जीता। 'दीक्षा' एक शब्द जहाँ कान में पड़ा न, सब ... वहाँ बहुत अधिक निपुण हैं। ज्योतिष में निपुण हैं, ज्ञान में निपुण हैं। सबमें निपुण ऐसे लड़के। ऐई! कहाँ पढ़ने गये थे? अन्दर में पावर जहाँ फटे। केवलज्ञान भरा है अन्दर

में, अब यह क्या? चल निकले साथ में, हों! व्यक्ति साथ में था उसे कहना नहीं। वरना तो फिर साथ में व्यक्ति आवे नहीं और घर में कहने जाये। भाई चलो आगे... भाई चलो आगे... भाई चलो आगे... अपने को आगे जाना है। ऐसा करते... करते... करते... करते... जहाँ भगवान का समवसरण आया, अन्दर प्रविष्ट हुए, बैठे न! छोड़ देते हैं। हम दीक्षित हैं। लोग साथ में। अरर्र! अभी तक हमको कहा नहीं। तुम्हारी माँ ने हमको सम्हाल करने के लिये भेजा है। हम क्या जवाब देंगे वहाँ? भाई! हमारी संसार की स्थिति पूरी हुई। हम दीक्षित भगवान के पास (होते हैं)। नग्न होकर सौ व्यक्ति साधु होते हैं। उनकी माँ को कहने जाता है वह रोते-रोते। मणिरत्न की तलवार हाथ में और वह गेडी हाथ में लेकर। यह लड़के के उपकरण। क्या हुआ? दीक्षित हो गये। आहाहा! कहाँ पढ़ने गये थे? अन्दर में। और बुद्धि है न, बहुत बुद्धि तीक्ष्ण बुद्धि।

ऐसी यौवन अवस्था लो, ठीक! और यह याद आया इसमें, देखो! यह सोलह वर्ष के, अठारह-अठारह वर्ष के, हों, रविकीर्ति आदि कुमार चल निकले। जैसे मणिरत्न के पुतले चलते हों, वैसे ऐसे चलते जाते हैं। भगवान के निकट दीक्षा हुई और सभा में बैठ जाते हैं, मुनियों के साथ बैठ जाते हैं। यहाँ कहते हैं कि ओहो! धन्य-धन्य जीवन जिनका। जिन्हें अन्तर के आत्मरत्न से बर्तन के बर्तन भरे हैं। ऐसी आत्मा की एकाग्रता का जहाज चला है, जहाज। संसार के किनारे ले जायेगा और पार पा जायेगा। ऐसे पुरुष को, सत्पुरुष को सज्जन, सज्जन कहो या सत्जन कहो, वह **धन्य है, यह सारांश जानना,...** लो! ११७ (गाथा हुई)।

★ ★ ★

गाथा - ११८

११८। **आगे मोक्ष का कारण वैराग्य को दृढ़ करते हैं —** देखो, अब वैराग्य... वैराग्य... वैराग्य...

२४८) मोक्खु जि साहिउ जिणवरहिँ छंडिवि बहु-विहु रज्जु।
भिक्ख-भरोडा जीव तुहुँ करहि ण अप्पउ कज्जु॥११८॥

देखो, भिक्षा के जीव। यह तो साधारण मनुष्य ऐसा कहते हैं। तू भिखारी जैसा है, ऐसा कहना है यहाँ। और वे तीर्थंकर तीन लोक के नाथ जिन्हें वैभव और ऋद्धि अनन्त क्रम से चढ़ते... चढ़ते... चढ़ते... जिनकी पवित्रता और जिनका पुण्य भी इतना अधिक बढ़ गया है। एक तीर्थंकरों ने ऐसी विभूति छोड़ी, अब तू यह भिक्षा से भोजन करनेवाला आत्मा का कार्य नहीं कर इतना? ऐसा कहते हैं। आहाहा!

देखो, **जिनेश्वरदेव ने अनेक प्रकार का राज्य का वैभव छोड़कर...** तीर्थंकर जिनके जन्म में इन्द्र। ओहोहो! जिनके जन्मकाल में इन्द्र आवे, जिनकी दीक्षा में इन्द्र आवे उन्हें यह वैभव छोड़कर... आहाहा! ऋषभदेव भगवान राज में थे। इन्द्र मित्ररूप से सिंहासन में साथ बैठे ऊपर से आकर। सिंहासन में स्वयं भगवान बैठे तीन ज्ञान के धनी और उस सिंहासन में साथ में साथ में बैठावे। बैठो-बैठो। जिनके इन्द्र तो सेवक। कहते हैं कि अवसर आया। ऐसा वैभव जिन्हें इन्द्र जैसे सेवक, ऐसे राज को छोड़ दिया। ऐसे राज का वैभव, ऐसा कहते हैं। वह वैभव कहलाये न सब? अर्थ में लेंगे सात प्रकार की सेना। ऐसी वैभवदशा जिनके तलिया इन्द्र चाटते, जिनके वस्त्र और गहने आते उनके वहाँ से, वे देव (स्वर्ग) में से आते थे। उनके वैभव का क्या कहें! भाई! इस पुण्य की भी लोगों को प्रतीति नहीं। जिसका साधन करते-करते पुण्य इतना (बढ़ गया)... उन्नति क्रम में चढ़ा हुआ आत्मा है न! उस भव में केवलज्ञान पानेवाले। उसमें तीर्थंकर प्रकृति बँधी हुई है। उनके पुण्य के ढ़ेर कि जिनके भोजन, यह वस्त्र और गहने ऊपर से आवे। देव में से आवे। अरे! ऐसे वैभव को छोड़कर अलख जगाया आत्मा में। आहाहा! तुझे क्या है? कहते हैं। भिखारी है तू? आहाहा! यह तो उलहाना है न।

भाई! तुझे क्या वैभव है? तेरे घर में... उनके तो भरत जैसे चक्रवर्ती, (जिसकी) छियानवें हजार स्त्रियाँ। यह तेरे घर में? उन्हें छियानवें करोड़ सैनिक, छियानवें करोड़ गाँव, बहत्तर हजार नगर, अड़तालीस हजार पाटण, उन्हें ऐसे (जैसे) कफ छोड़े वैसे छोड़ दिया। अन्दर से आने पर कोई वापस ले? अरे प्रभु! तेरे पास क्या है? ऐसा कहते हैं, देखा! हे भाई! **हे जीव! भिक्षा से भोजन करनेवाला...** तू तो भिखारी जैसा है, ऐसा कहते हैं, हों! वह भिक्षा की मुनिपने की यहाँ बात नहीं अभी। माँगकर खाता है, साधारण। कितनी दासता हो लो न बहुत। यह फलाना भाई दो न! ग्राहक आवे तो देखो न यह बनिया-बनिया नहीं करते? महिला हो साधारण लेनेवाली। ऐ माँ! क्या लेना है? लो! मलूकचन्दभाई! करते हैं या नहीं बनिये? और वह बाई हो कौन? ग्वालिन हो और हरिजन हो। परन्तु आठ आना का माल लेने आयी हो और दो आना पैदा (होनेवाले हों), ऐ माँ! क्या लेना है? भिखारी है या नहीं तू? महिमा करे। हा..हा.. यह तो अपने पहिचान नहीं, अपने फलाने भाई की बुआ... ऐसा है और वैसा है। यह कहते हैं कि ऐसा तेरा भिखारी जैसा धन्धा। ऐसा कहते हैं मूल तो। और तुझे इतना छोड़ना सुहाता नहीं? ऐसा है या नहीं? हिम्मतभाई! यह हमारे दुकान में कुँवरजीभाई सब बातें करे। पैदा करे उसे बुलावे। ऐ माँ! आओ। अब माँ को क्या है? आना हो तो आयेगी। और फलाना भाई... वे तो मर गये, परन्तु यह दूसरे करते हैं न?

कहते हैं कि **भिक्षा से भोजन...** भिक्षा से भोजन का अर्थ? तेरी वृत्ति में भिखारीपन पड़ा है। ऐसे माँग। यह मुझे दो, यह माल लेने आओ न भाई। ऐसा करो न, ऐसा करो न। तुमको अच्छा माल मिलेगा, हों! हमको भी लाभ होगा और तुमको अच्छा लाभ हमारी दुकान में से मिलेगा। ऐसी तेरी वृत्तियाँ भिखारी जैसी। भिक्षा से भोजन, उसमें से मिलता आहारादि... खानेवाला **तू अपने आत्मा का कल्याण भी नहीं करता।** तीन लोक के नाथ तीर्थंकर, ओहोहो! शान्तिनाथ। छियानवें हजार स्त्रियाँ। जब बारह भावना वैराग्य भाते हैं। ऐसी बैठी होती है अन्दर। अरे स्त्रियों! याद रखो, मैं तुम्हारे कारण से नहीं रहा हूँ। मुझमें आसक्ति का भाग है, इसलिए रहा हूँ। यह मेरी आसक्ति छूटती नहीं, मेरा पुरुषार्थ मन्द है। तुम याद रखना। तुम्हारे लालच के कारण से रहा हूँ, यह बात निकाल देना, ऐसा कहे, छियानवें हजार स्त्रियों के वृन्द में बैठे हुए।

तीन ज्ञान के धनी शान्तिनाथ सिंहासन पर बैठे बात करते हैं। हे रानियों! विचार करना, मैं तुम्हारे कारण से रहा नहीं यहाँ। मेरी आसक्ति टूटती नहीं, मेरे पुरुषार्थ में पामरता है। इस कारण से जरा तुम्हारे ऊपर लक्ष्य जाता है। तुम्हारे लालच के कारण और तुम्हारी चाकरी की सेवा के कारण मैं तुम्हारे पास रहा हूँ, यह बात निकाल देना। आहाहा! और जब वह वृत्ति छूट जाती है, दीक्षित होते हैं। छियानवें-छियानवें हजार (रानियाँ) चोटियाँ खींचती हैं ऐसे अन्दर से। अरे स्वामी नाथ! तुम्हारे बिना क्षण नहीं जाये हमारा। बस होओ। हमारी आसक्ति मर गयी है। हम तुम्हारे कारण से नहीं (रहे) थे, यह तुमको पहले से कहा था। हमारी आसक्ति का व्यय हो गया, हम स्वभाव के सागर में डूबना चाहते हैं। जाओ... जाओ... जाओ... रोवे, ऐसे चोटियाँ खींचे। बस करो। (भरतेश) वैभव में बहुत आता है। भरतेशवैभव। वह तो बनता है। वैराग्य... वैराग्य... वैराग्य...

यहाँ कहते हैं कि अरे आत्मा! तू भिक्षा के भोजन का करनेवाला। यह भिखारी ठहराया सब तुमको। यह रामजीभाई जैसे भी दो सौ रुपये लेते परन्तु वह अशील आवे न कि भाई! चलो-चलो, ऐसा तो करते होंगे या नहीं? परन्तु उसे कहना पड़े या नहीं? हाँ, भाई, इसका भाई यह। यह तो भिखारीपना है या नहीं? तुझे कहते हैं कि भिखारीपने में जन्मा और तू त्याग नहीं करता और तुझे आत्मा का कल्याण करना नहीं आता? उलहाना देते हैं यहाँ।

मुमुक्षु : ऐसा वाचालपना करे तो ग्राहक बहुत आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी आवे नहीं। वह तो पुण्य हो तो आवे। वह तो सब हमको खबर नहीं?

यहाँ तो आचार्य जरा ऐसा उछाला मारते हैं। ऐ... ! ऐसे इतना वैभव तो देख! इन्द्र जिनके तलिया चाटे नीचे बैठकर। प्रभु! प्रभु! कुत्ती का बच्चा—पिल्ला जैसे कुत्ती के निकट ऐसे... ऐसे... ऐसे... करे, वैसे इन्द्र भगवान के चरण के निकट ऐसे-ऐसे करते हों। ऐसे तलिया चाटते हों। प्रभु! प्रभु! प्रभु! ... ऐसे वैभव के धनी एक क्षण में छोड़कर आत्मा में अन्दर उतर जाते हैं। तू एक आशावान का जीवन व्यतीत करनेवाला।

आशावान की बात तो यह कहते हैं यहाँ। भिक्षा भोजन अर्थात् यह। ओशियाळुं समझते हो? आशियाळुं अर्थात् पर की आशा रखकर ऐसा जीवन व्यतीत करनेवाला। तुझे एक आत्मा का कल्याण करना, इतना नहीं आता? आहाहा! कहो, राजमलजी! '**आत्मीयं कार्यम्**' है न ऐसा? **भिक्षा से भोजन करनेवाला तू... 'आत्मीयं कार्यम्' अपने आत्मा का कल्याण भी नहीं करता।**

भावार्थ :- समस्त कर्ममल-कलंक से रहित जो आत्मा उसके स्वाभाविक ज्ञानादि गुणों का स्थान... मोक्ष की व्याख्या करते हैं। मोक्ष की व्याख्या। मोक्ष अर्थात् क्या? मोक्ष अर्थात् क्या? कि **समस्त कर्ममल-कलंक से रहित जो आत्मा उसके स्वाभाविक ज्ञानादि (ज्ञान-दर्शन आनन्दादि) गुणों का स्थान तथा संसार-अवस्था से अन्य अवस्था का होना,...** ओहोहो! उत्पाद-व्यय सिद्ध किया। जिसमें अनन्त ज्ञानादि आनन्द आदि पर्याय प्रगट हुई है और जिसे संसार अवस्था से अन्य अवस्था उत्पन्न हुई है। संसार अवस्था थी सही। असिद्धभाव, उदयभाव, उस अवस्था से अन्य अवस्था। आत्मा में स्वाभाविक ज्ञान, दर्शन, आनन्द की अवस्था पूर्ण हुई है, उसे मोक्ष कहा जाता है। यह मोक्ष की व्याख्या। कोई कहे कि वैकुंठ में लटकना है और फलाने जाना है। वह मोक्ष नहीं। सिद्धशिला के ऊपर मोक्ष। वहाँ मोक्ष नहीं। सिद्धशिला के ऊपर मोक्ष नहीं।

यहाँ तेरे आत्मा में मोक्ष यहाँ होता है। वह तो फिर एक समय में ऊर्ध्वगति से चले जाते हैं। मोक्ष यहाँ होता है आत्मा में। किस प्रकार? अनन्त ज्ञान-दर्शन आनन्द आदि पर्याय का अवस्था में प्रगट होना और संसार अवस्था से अन्य विलक्षण अवस्था अर्थात् संसार अवस्था का व्यय होकर, अभाव होकर, भिन्न अवस्था अन्य जाति की स्वाभाविक ज्ञान, दर्शन, आनन्द की दशा उत्पन्न हो, ऐसा जो स्थान पर्याय। **वह मोक्ष कहा जाता है,...** आहाहा! व्याख्या तो देखो!

मोक्ष कहा निज शुद्धता वह पावे सो पंथ,
समझाया संक्षेप में सकल मार्ग निर्ग्रन्थ।

यह श्रीमद् का वाक्य है—कड़ी है। 'मोक्ष कहा निज शुद्धता...' निज शुद्धता।

अशुद्धता का व्यय और मोक्ष अपनी पूर्ण शुद्धता। 'वह पावे सो पंथ।' उस मोक्ष की पूर्ण शुद्ध दशा को प्राप्त करे ऐसी जो शुद्धदशा (उसका) अन्तर कारण निर्मल निश्चय श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र, वह पंथ। 'समझाया संक्षेप में सकल मार्ग निर्ग्रन्थ।' वीतरागी सन्तों ने, निर्ग्रन्थों ने इस प्रकार से मोक्ष का मार्ग और मोक्ष भगवान केवलज्ञानी ने कहा हुआ है। कहो, समझ में आया? वापस कर्ममल से रहित अर्थात् पहले कर्मकलंक था, संसार अवस्था थी। उसका व्यय होकर उत्पन्न हुआ है। व्यक्तिगत बात करनी है न। अनादि से मोक्ष है, वह अलग बात सिद्ध को हुई। ऐसा नहीं। यह तो मोक्ष—सिद्ध है न अनादि का? अनादि के सिद्ध है न। कहीं पहला कोई सिद्ध तो नहीं। उसकी बात नहीं। यहाँ तो जो आत्मा सिद्धपना व्यक्तिगत प्राप्त करे, उससे बात लेनी है यहाँ। ऐसे तो सिद्ध अनादि के हैं, मोक्ष भी अनादि का है। कहीं संसार आठ वर्ष बड़ा और मोक्ष छोटा, ऐसा है? और एक पण्डित ऐसा कहता था। मोक्ष की अपेक्षा संसार की अवस्था आठ वर्ष अधिक है। क्योंकि संसार पहला और बाद में मोक्ष होता है। इसलिए मोक्ष नहीं था अनादि में कहीं? किसने भाई ने कहीं लिखा था न? वह माणेक न? माणेकचन्दजी ने लिखा था। धर्मसिद्धान्त... लिखा है। एक पुस्तक बनायी है न! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उसमें है। संसार आठ वर्ष बड़ा। अनादि में पहला आठ वर्ष संसार और बाद में मोक्ष। अरे! पूरी दुनिया, पूरा गाडा है, गाडा पूरे में पहला, पीछे और पहला मुख के सामने, वह है ही कहाँ? वह गाडुं। गाडुं समझते हो? गाड़ी-गाड़ी पूरी। उसका पीछे का भाग और सामने आगे का भाग, बीच का भाग और पहला, बाद में कहना किसे? पूरा है ऐसा का ऐसा। इसी प्रकार अनादि ऐसा का ऐसा मोक्ष भी है, संसार है, मिथ्यात्व है, समकित है, केवली है, निगोद है, अभव्य ऐसे के ऐसे हैं अनादि से। समझ में आया? यह संसार... एक व्यक्ति को लें तो संसार अनादि था, उसका अन्त आ जाता है। वह सादि-मुक्तदशा होती है, अन्त नहीं होता, ऐसी दशा होती है। वह बात यहाँ लेनी है।

समस्त कर्ममल-कलंक से रहित... अवस्था थी। **आत्मा उसके स्वाभाविक**

ज्ञानादि... आत्मा के स्वाभाविक ज्ञानादि। उसका स्वाभाविक दर्शन, स्वाभाविक आनन्द, **गुणों का स्थान...** वह पर्याय, हों! स्थान वह। **संसार-अवस्था से अन्य अवस्था का होना, वह मोक्ष कहा जाता है, उसी मोक्ष को वीतरागदेव ने...** आहाहा! इतना जोर कितना लिया है! आचार्य योगीन्द्रदेव को ऐसे... अरे वीतरागदेव! जिनके पास तीन लोक के बड़े अधिपति जिन्हें वन्दन करते, जिनके जन्म में बड़े इन्द्रों ने आकर जन्माभिषेक किया, ऐसे वीतरागी, ऐसे वैभववाले **राजविभूति छोड़कर सिद्ध किया। उसी मोक्ष को...** उस मोक्ष को सिद्ध किया। **वीतरागदेव ने राजविभूति छोड़कर...** स्वविभूति को प्राप्त किया।

राज्य के सात अंग हैं,... है न, अन्दर थोड़ा है। सप्तांग, बस यह सप्तांग। नाम नहीं दिये। थोड़े बहुत दिये। **राजा, मंत्री, सेना वगैरह।** उसकी ऋद्धि होती है। तीर्थंकर भगवान को तो सब होता है। इन्द्र आदि जिनकी सेवा में हैं, वहाँ सब होता है। **ये जहाँ पूर्ण हों, वह उत्कृष्ट राज्य कहलाता है, वह राज्य तीर्थंकरदेव का है,...** तीर्थंकर का क्या कहना? भले मांडलिकरूप से अवतरित हुए हों, परन्तु उन्हें इन्द्र जहाँ सेवन करते हैं, उनके वैभव और उनकी ऋद्धि की क्या बात करना! **उसको छोड़ने में वे तीर्थंकर देरी नहीं करते।** जहाँ अन्तर की धारा वैराग्य की छूटी, एक क्षण में, जाओ। अरे! संसार की यह दशा! नीलांजना को देखते हैं ऋषभदेव भगवान। अरे! इसकी स्थिति नाचते हुए पूरी हो गयी! वहाँ दूसरी देवी उसके स्थान में आयी है। यह संसार! एकदम जातिस्मरण होता है। तीन ज्ञान तो थे। जातिस्मरण होकर एकदम वैराग्य प्रस्फुटित होता है। छोड़... छोड़... छोड़... वे भगवान **छोड़ने में तीर्थंकर देरी नहीं करते।** लो! **लेकिन तू निर्धन होकर...** देखो, भाषा ली। '**भिक्ख-भरोडा**' यह। निर्धन है भिखारी है तू तो। **आत्मकल्याण नहीं करता।**

मुमुक्षु : निर्धन आत्मकल्याण करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्धन का अर्थ ऐसा कि तुझे संयोग में कुछ माल नहीं, तथापि तू संयोग के ऊपर से लक्ष्य छोड़ता नहीं। जिन्हें संयोग के ढ़ेर थे बाहर, एक को हुकम करे, वहाँ अन्नदाता! इन्द्र कहे, प्रभु! क्या आज्ञा है? समझ में आया? ऐसे भगवान भी राज को छोड़ देते हैं।

देरी नहीं करते। लेकिन तू निर्धन होकर... भाई! तुझे क्या साधन है ऐसे? कि जो साधन छोड़ना तुझे दुष्कर लगता है? यह तो एकदम आत्मा में वीतरागभाव से उतरने की बात है न! अन्तिम आगे की गाथाओं में, अन्तिम गाथायें हैं न अधिकार। २१४ है। तो इतनी अब थोड़ी रही। ९० लगभग रही। कहते हैं, अरे! **लेकिन तू निर्धन होकर आत्म-कल्याण नहीं करता। तू माया-जाल को छोड़कर...** मायाजाल का अर्थ बाह्याभ्यन्तर परिग्रह। है न अन्दर टीका में? **तू माया-जाल को छोड़कर महान पुरुषों की तरह आत्मकार्य कर।** भाई! तू आत्मा का कार्य कर, बापू। यह मरने के समय कोई तुझे सगा नहीं होगा। श्वास सगा नहीं होगा, हों! श्वास कैसे लेना, यह तेरे अधिकार की बात नहीं रहेगी। यह डुंटी से—नाभि से डोरा छूटेगा। ख्याल भी होगा कि यह नाभि से श्वास ने मार्ग ले लिया। मार्ग छोड़ा। नहीं तुझसे श्वास नीचे बैठे। क्योंकि तेरा अधिकार पर में है नहीं। आहाहा! यहाँ से ऐसे चलता है, वह जहाँ अन्तिम स्थिति होगी, वह श्वास नाभि को छोड़ देगा। वह डोरा पहले थोड़ा जरा धीरे-धीरे जायेगा। ऐसा करते... करते... करते... यहाँ नीचे से आगे खिसकता जायेगा। ख्याल हो, हों! साध्य जरा। परन्तु वह श्वास को नीचे नहीं उतार सकेगा। क्योंकि उसका काल जिस प्रकार से है, उस प्रकार से परमाणुओं का परिणमन वहाँ क्षेत्रान्तर जिस प्रकार से होनेवाला है, वह होनेवाला है। तेरे अधिकार की बात नहीं।

मुमुक्षु : पुरुषार्थ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर में क्या पुरुषार्थ हो? धूल करना है इसे? ऐई! राजमलजी! पर में क्या पुरुषार्थ है। देखो न, दृष्टान्त तो देते हैं, फिर क्या है? श्वास भी तेरा नहीं। ख्याल आता है। कहा न अपने यहाँ थे न हमारे शिवलालभाई थे। शिवा पटेल थे यहाँ। वल्लभभाई नहीं? उनके परिवारी थे। वे परिवारी थे। यहाँ रहे थे न। होळा खाया होगा यह सींग-सींग समझे? मूँगफली का होळा कच्चा सेंककर खाया और ऊपर खाया केला और उसमें वापस यहाँ की रसोई भोजनशाला की दाल, भात, सब्जी खायी ऊपर। वे खाकर आये। मैं भी ऐसे जाता था, आहार करके घूमता था। पटेल! कैसे बैठे? नीचे बैठे थे। एकदम नीचे, हों! क्यों बैठे? अन्तक्रिया। क्या कहते हो? अन्तक्रिया। अब

मेरी अन्तिम क्रिया है। क्या है परन्तु यह? मार्ग छूट गया, श्वास छूट गया है, चाहे जैसे हो। क्या खाया था? कि खाया था ऐसा। होळा कच्चा खाया मूँगफली का। जाम हो गया। बस! नहीं होता दस्त, नहीं होता ऊपर। नीचे बैठे थे यों ही। वस्त्र के ऊपर यों ही बैठे थे। शाम को मैं निकला। क्यों पटेल? कैसा है? कि अन्तक्रिया, अन्तिम क्रिया। क्या है परन्तु? अन्तिम क्रिया। यहाँ से श्वास हट गया लगता है। क्यों हुआ कुछ खबर नहीं पड़ती। ३६ घण्टे रहे। यह धर्मचन्दभाई थे। धर्मचन्द डॉक्टर थे साथ में। श्वास... बैठे-बैठे करते थे। फिर इंजेक्शन दिया। परन्तु स्थिति पूरी होने की इंजेक्शन दिया वहाँ बैठ गया। समाप्त हो गया, देह छूट गयी। बैठे थे, बात करते थे। मैंने कहा यह डोरा निकाल डालो। ऐसे डोरा बाँधा हुआ, मैंने कहा निकाल डालो। अब श्वास शुरु हो गया है। अन्तिम स्थिति है, अब उसमें कुछ है नहीं। वह भी कहे अन्तिम स्थिति है। वह कुछ नहीं हो रोग-बोग। वह श्वास यहाँ से छूटा, यहाँ से मार्ग कर दिया। एकदम ऊँचा आने लगा, नीचे जाये नहीं। ३६ घण्टे रहे।

साध्य, ख्याल सब यह है। क्या करे परन्तु तू? परमाणु का क्षेत्रान्तर जिस श्वास के परमाणु के स्कन्ध हैं, उस स्कन्ध की पर्याय जितना जहाँ रीति से क्षेत्र स्पर्शना प्रमाण होनेवाला है, उसी रीति से होता है। उसमें रोकने का तेरा सामर्थ्य है नहीं। आहाहा! इसे दूसरे के काम कर देने हैं, शरीर से काम लेना है और श्वास से काम, वाणी से लेना है। भगवान! वह तो परवस्तु, भाई! तुझे विकल्प आवे, बाकी यह काम हो, वह तेरे नहीं। तुझे ऐसा पहले से निर्णय करना पड़ेगा। वरना मरते हुए चैन नहीं आयेगी। आहाहा!

तू माया-जाल को छोड़कर महान पुरुषों की तरह आत्मकार्य कर। उन महान पुरुषों ने भेदाभेदरत्नत्रय की भावना के बल से... देखो! महापुरुषों ने भेदाभेदरत्नत्रय। देखो, एकसाथ बात ली है। अभेद भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप की अभेद दृष्टि, अभेद ज्ञान और एकाकार शान्ति, यह निश्चयरत्नत्रय कहो या अभेदरत्नत्रय कहो। उसके साथ विकल्प जो है अभी देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि, पंच महाव्रत का विकल्प आदि, शास्त्र का परलक्ष्यी ज्ञान आदि, यह भेदरत्नत्रय। वह अभेद। उसकी **भावना के बल से...** प्रमाणज्ञान साथ में कराते हैं इसलिए। बाकी वास्तव में भेदरत्नत्रय निमित्त है और अभेदरत्नत्रय शुद्ध उपादान की पर्याय है।

उसके **बल से निजस्वरूप को जानकर विनाशीक राज्य छोड़ा,...** महापुरुषों ने अपने निजस्वरूप को जानकर, उसके बल द्वारा। देखो, **निजस्वरूप को जानकर...** ऐसा। **विनाशीक राज्य छोड़ा...** नाशवान राज्य छोड़ दिया। **अविनाशी राज्य के लिये उद्यमी हुए।** अविनाशी साम्राज्य अपने अनन्त गुण की निर्मल दशा, उसे प्राप्त करने को उद्यमी हुए। **यहाँ पर ऐसा व्याख्यान समझकर बाह्याभ्यन्तर परिग्रह का त्याग करना,...** वह मायाजाल का कहा था न। **तथा वीतरागनिर्विकल्पसमाधि में ठहरकर दुर्धर तप करना...** तप अर्थात् मुनिपना, तप अर्थात् मुनिपना। तपकल्याणक आता है न? मुनिकल्याणक कहो, तपकल्याणक कहो, दीक्षाकल्याणक कहो। अन्दर में वीतराग निर्विकल्प अभेद शान्ति में **ठहरकर दुर्धर तप करना...** मुनिपने की उत्कृष्ट दशा प्रगट करना। बात तो उत्कृष्ट बात करे न! कोई भी बात हो तो उत्कृष्ट ही बात हो, फिर न कर सके तो उसे नीचे... बाकी बात तो पहले यही होती है। समझ में आया?

पुरुषार्थसिद्धि उपाय में कहा है न, पहले मुनि का उपदेश देना। उत्कृष्ट बात। उसे एकदम पावर फट जाये और वैराग्य हो जायेगा तो मुनिपना ले लेगा। यह तो उसकी योग्यता है, परन्तु यह तो मुनिपने की बात करना। फिर न पाले, न हो सके तो कहे, अरे! हमारी मन्दता है। मैं मुनिपना (नहीं ले सकता)। नहीं, तो सम्यग्दर्शनपूर्वक श्रावकपना पालन कर आत्मज्ञान करके। समझ में आया? उत्कृष्ट बात होती है न बात तो। पंचम काल के मुनि हैं वे तो। पुरुषार्थसिद्धि उपाय करनेवाले। बात तो ऐसी की है। पंचम काल, अभी नौ सौ वर्ष पहले हुए। मुनिपना, दिगम्बर मुनि, भावलिंगी हों, उनकी बात है। ऐसा पहले उपदेश कर। वह चढ़ जायेगा, वैराग्य होगा। पहला उपदेश करना। उसका क्रम होगा तो क्रमभंग उपदेश होगा, ऐसा। दर्शन तो पहले ही है। दर्शन बिना तो यह होता नहीं। मुनिपना कहाँ से हो? दर्शन-ज्ञान तो पहले ही बतावे उसे। परन्तु उस त्याग में श्रावक और मुनिव्रत (पालन) के त्याग में पहले मुनिपना कहना, ऐसा। इसमें पहले मुनि, ऐसा नहीं। दर्शन-ज्ञान तो पहले ही है। समझ में आया? यह तो पहला उसे बतावे। परन्तु देशविरति और सर्वविरति के भाग में सर्वविरति का उपदेश पहले है, ऐसा कहना है। समझ में आया? यह तो अन्दर की बात है, हों! बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रह का त्याग करना, ऐसा कहते हैं। अकेला बाह्य छोड़कर नग्न हो जाये। अभ्यन्तर बिना बाहर

छोड़ा हो, वह व्यवहार से भी लागू नहीं पड़ता। असद्भूत व्यवहार लागू नहीं पड़ता कि यह इसने छोड़ा। अभ्यन्तर छूटा, तब बाह्य छोड़ा, उसे असद्भूतव्यवहारनय से त्याग किया, ऐसा कहा जाता है। त्याग-ग्रहण है ही कहाँ, परन्तु असद्भूतनय से बोला जाता है। वह तो छोड़ने का कहा। भाई! पूर्वापर पहले विचार...

यहाँ कहते हैं, देखो! **बाह्याभ्यन्तर परिग्रह का त्याग करना,...** अब एक ओर यह कथन है और एक ओर वहाँ समयसार की ३४ गाथा में कहा कि आत्मा राग का त्याग भी कहनेमात्र है। राग का त्याग का कर्ता भी आत्मा में कहनेमात्र है। राग के त्याग का कर्ता भी आत्मा में कहनेमात्र है। परमार्थ से राग के त्याग का कर्ता आत्मा नहीं। समझ में आया? यहाँ कहते हैं कि बाह्याभ्यन्तर छोड़। परन्तु उपदेश के वाक्य में तो जो आवे वह आवे न! सिद्धान्त जो है, वह है। यहाँ छोड़ने का कहा और फिर वहाँ कहा कि राग के त्याग का... है न कर्तापने का? कहाँ गयी पुस्तक? यहाँ नीचे है। यह ३४। ३५ में दृष्टान्त है।

क्या कहते हैं? **ऐसा आत्मा में निश्चय करके...** दूसरा तो कोई त्यागनेवाला नहीं... **जो पहले जाने, वह बाद में त्यागे, दूसरा तो त्यागनेवाला नहीं, ऐसा आत्मा में निश्चय करके प्रत्याख्यान काल में...** प्रत्याख्यान करनेयोग्य अर्थात् अभाव होने योग्य राग का। **परभाव की उपाधि मात्र से प्रवर्तमान त्याग के कर्तापने का नाम होने पर भी परमार्थ से देखा जाये, (तो) परभाव के त्यागकर्तापने का नाम अपने को नहीं।** आहाहा! त्याग क्या करे? ऐसे उसका पर्याय के ऊपर लक्ष्य करके यह छोड़ूँ, ऐसा है? ऐसा जहाँ अन्दर स्थिर होता है, तब विकल्प उठता नहीं, उसे व्यवहार से त्याग कहा जाता है। परमार्थ से पर का त्याग, ऐसा स्वरूप में है ही कब? राग का त्याग करूँ, उसका कर्ता नहीं। आहाहा! समझ में आया? देखो न! **परमार्थ से देखा जाये तो परभाव के त्याग-कर्तापने का नाम अपने को नहीं। स्वयं तो उस नाम से रहित है। क्योंकि ज्ञानस्वभाव से छूटा नहीं। इसलिए प्रत्याख्यान ज्ञान ही है।** ज्ञानानन्दस्वरूप में अन्दर स्थिर हुआ, बस यह स्थिर हुआ, वह प्रत्याख्यान है। दूसरा त्याग क्या हो? ओहोहो! राग के त्याग का कर्तापन भी जिसे नाममात्र है। संज्ञामात्र, कथनमात्र। समझ में आया?

ऐसा भगवान ज्ञानस्वरूपी चिद्घन, वह परमार्थ राग के त्याग के कर्तापन से रहित है। समझ में आया? यह सिद्धान्त लक्ष्य में रखकर यह सब बात है। वापस और वहाँ ऐसा कहा और यहाँ कहते हैं कि बाह्य छोड़ दे। यहाँ भी अभ्यन्तर परिग्रह छोड़कर त्याग करना। लो, अभ्यन्तर राग है। बाह्य में स्त्री, कुटुम्ब आदि है। यह नय से कथन है। अपने स्वभाव की दृष्टि का निर्विकल्प अनुभव सम्यक् हुआ, पश्चात् स्वरूप में स्थिर होता है जहाँ एकाकार होकर, तब विकल्प छूट जाते हैं अथवा उत्पन्न होते नहीं। उसके—विकल्प के जो निमित्त थे, उनका लक्ष्य रहता नहीं, इसलिए उसे और इसे छोड़ा, ऐसा कहा जाता है। आहाहा!

इस प्रकार से वस्तु का स्वभाव है, वह उसकी दृष्टि में न आवे और यह त्यागूँ... यह त्यागूँ... तो उसने धर्म त्याग किया है। समझ में आया? भाषा क्या आवे? बहुत जगह देखो पाठ में है, देखो! '**बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहं त्यक्त्वा**' वहाँ छूट जाते हैं, लक्ष्य छूट जाता है। लक्ष्य छूटा, वह पर को छोड़ा कहना। वह (राग) उत्पन्न नहीं होना, यह उसे छोड़ा कहा। समझ में आया? **वीतरागनिर्विकल्प समाधि में ठहरकर...** यह वह उसे स्वयं मुनि कहते हैं और उसे होता नहीं अभी? या फिर होता होगा आठवें-दसवें में?

मुमुक्षु : पंचम काल में तो सातवें में....

पूज्य गुरुदेवश्री : पंचम काल की... यह सातवें की बात है। कहो, समझ में आया?

भगवान आत्मा अपने स्वभाव के माहात्म्य में चढ़ा और उसमें जहाँ स्थिर हुआ, कहते हैं कि वीतराग—रागरहित की अभेद शान्ति हुई। उस द्वारा मुनिपने को दुर्धर कहा है। ऐसी महा दशा अनन्त काल में मिलती है, उसे कर। यह पूरा सारांश है। सार-अंश अर्थात् करने का यह है। उसकी दृष्टि में, प्रतीति में ले तो कि मार्ग ऐसा है, दूसरा मार्ग है नहीं। चारित्र की पद्धति यह है, दर्शन की पद्धति यह है, ज्ञान की पद्धति यह है। त्याग के प्रकार के कथनों की पद्धति यह है, स्वरूप यह है। ऐसे इसके श्रद्धा-ज्ञान में बराबर निर्णय करे तो उसे आत्मा की दृष्टि सुलटी हो। कहो, समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - ११९

अब ११९। **आगे हे जीव! तू भी श्री जिनराज की तरह आठ कर्मों का नाश कर मोक्ष को जा,...** भाईसाहेब! मोक्ष अभी नहीं और मोक्ष में जा, ऐसा कैसे कहते हो? ऐसा कहे तो? भाई! मोक्ष ही है, सुन न अब। परन्तु यह पंचम काल के मुनि तो बात करते हैं। उस समय केवल (ज्ञान) प्राप्त करे, इसके लिये कहते हैं यह? **आगे हे जीव! तू भी श्री जिनराज की तरह आठ कर्मों का नाश कर मोक्ष को जा, ऐसा समझाते हैं— 'जिनभट्टारकबद्धष्टकर्मनिर्मूलनं कृत्वा'**

२४९) पावहि दुक्खु महंतु तुहँ जिय संसारि भमंतु।
अट्ठ वि कम्मइँ णिद्दलिवि वच्चहि मुक्खु महंतु॥११९॥

हे जीव! तू संसार-वन में भटकता हुआ महान दुःख पावेगा,... चौरासी की अटवी में भगवान! तुझे महादुःख होगा। भाई! **'संसारे भ्रमन् महद् दुःखं प्राप्नोषि' इसलिए... 'अष्टापि कर्माणि' ज्ञानावरणादि आठों ही कर्मों को नाश कर,...** पहले तो मेरे स्वरूप में ही नहीं, इसका नाम नाश किया कहलाता है। आठों ही कर्म और रागादि मेरे स्वरूप में नहीं, ऐसा स्वरूप में निश्चय हुआ, इसलिए उसका स्वरूप में सम्बन्ध ही व्यवहार और कर्म का रहा नहीं। इसलिए नाश हुआ दृष्टि में तो पहले धड़ाके तो। मुझमें आठ कर्म और विकार ही नहीं। मुझमें है तो पूर्ण आनन्द और ज्ञानादि भरे हुए हैं। ऐसा पहले अनुभव दृष्टि का (हो), पश्चात् स्वरूप में स्थिरता करके आठ कर्म को टालने का प्रयत्न चलता है न! मुनि है तो प्रयत्न चलता है। इसलिए इस प्रयत्न का उपदेश दूसरे को भी देते हैं।

ज्ञानावरणादि आठों ही कर्मों को नाश कर, सबमें श्रेष्ठ मोक्ष को जा। लो! इसमें से निकालते हैं न भाई वे नहीं एक पण्डित? हीरालाल। देखो, अभी मोक्ष है। कोई इनकार करे, ऐसा नहीं। यह आचार्य ने ऐसा कहा है। अब इसमें से यह निकालते हैं वे। लेख आया था। सब कहते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य आठ कर्म के नाश का कहते हैं। इसलिए अभी मोक्ष नहीं, ऐसा कौन कहता है? कहो, यह निकाला उसमें से। यह तो

उत्कृष्ट बात करके तेरा मुक्तस्वरूप है, उसमें दृष्टि हुई, उसमें लीनता कर। तो मुक्त होगा, उसे मुक्त जा, ऐसा कहा जाता है। भाई! परन्तु अब शब्द-शब्द में विवाद उठावे। नहीं, देखो, इसमें कहा है। कुन्दकुन्दाचार्य ने ऐसा कहा है कि मोक्ष नहीं होता अभी? यह तो इन्होंने नहीं कहा? सब कहा है। अद्वितिय रयणा। रत्नत्रय शुद्ध करके अभी लोकान्तिक देव में इन्द्रपना प्राप्त करेंगे। उन्होंने नहीं कहा? उन्होंने नहीं कहा कि मोक्ष जायेंगे। यह भी कहा है। बात करते हैं, तब तो उत्कृष्ट बात करे न! इस काल में भी तिरयण शुद्धा— सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से शुद्ध हुए, वर्तमान में भी लोकान्तिक अथवा ... पायेंगे। ऐसा कहा नहीं दो हजार वर्ष पहले?

मुमुक्षु : .... रत्नत्रय होगा कहाँ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं थे? तीन रत्न की वहाँ बात करते हैं, उसे रत्नत्रय शुद्धा। इस काल में। छठवें की बात चलती है यहाँ तो। यह बड़ा पण्डित है तो उसका मानते नहीं तो क्या करे? परन्तु क्या कहते हैं? हम भी क्या कहते हैं? परन्तु यह एक बड़े हैं बड़ी उम्र के हैं और सबके पास रहे हुए। वर्णीजी के पास कितने रहे। ऐसा कि धवल हमने पढ़ा है और इतना उनका अभ्यास नहीं, इसलिए इस दृष्टि से उनको खबर नहीं पड़ती, ऐसा। ठीक। यह ऐसा कहते हैं। कहते हैं तो ऐसा दूसरे के लिये। टोडरमलजी को कहाँ... दर्शनमात्र है, ऐसा लिखा है या नहीं उसमें? मोक्षमार्गप्रकाशक में लिखा है कि भाई हमारे तो दर्शनमात्र है। वे पुस्तकें मूड़बिद्री की। और हम तो उनको पढ़े हुए हैं, ऐसा कहते हैं वे। उसमें है न अपने? मोक्षमार्गप्रकाशक में। देखो, वे स्वयं लिखते हैं कि हमारे दर्शनमात्र है और उनका अभ्यास हो गया है हमारे तो। ... दर्शनमात्र है न। वे शब्द हैं उनके। यहाँ लिखा है देखो इसमें। 'मूडबिद्री नगर में श्री धवल, महाधवल, जयधवल ग्रंथ तो अभी हैं, परन्तु वे दर्शनमात्र ही हैं।' तब बाहर नहीं आये थे न। परन्तु उससे भी क्या अब? क्या हुआ? और उसमें कुछ दूसरी बात है? वर्तमान यह शास्त्र वर्तते हैं, उसमें और इसमें कहीं दूसरी बात नहीं। ऐसा कि देखो उन्हें दर्शनमात्र हैं। हमारे तो अभ्यास है और शास्त्र का ज्ञान हमको है, उनको नहीं। ऐसा कहा है। समाचारपत्र में आया है। अरे! उसके साथ क्या सम्बन्ध?

मुमुक्षु : परम्परा मिली है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वे ऐसा कहते हैं। परम्परा हमको मिली है और उनको परम्परा मिली नहीं थी। अब परम्परा 'आत्मा' एक ही शब्द मिला था। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं पाँचवीं गाथा में। समयसार। हमारे गुरु ने हमारे ऊपर अनुग्रह करके शुद्धात्मा का उपदेश दिया। पण्डितजी! एक शब्द पड़ा है बस।

मुमुक्षु : श्रुतकेवली ....

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रुतकेवली... और यह शब्द। हमारे गुरु ने इतना दिया। पाँचवीं गाथा नहीं? हमारे गुरु ने हमारे ऊपर कृपा की न! यह शब्द कहा, लो! अब उसके पास दूसरा कुछ कहा नहीं। हमको फलाना या ढींकणा। देखो, 'उनके प्रसाद से प्राप्त शुद्धात्मतत्त्व का अनुग्रहपूर्वक उपदेश, उससे जिसका जन्म हुआ है।' हमारे सम्यग्दर्शन-ज्ञान वैभव का, वे भगवान हमारे सन्त, गुरु ने शुद्धात्मतत्त्व का उपदेश दिया। एक ही शब्द पड़ा है।

मुमुक्षु : तब तो धवल नहीं थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : तब नहीं थे। लो! उससे क्या? देखो, कहते हैं न कि **अन्तर्निमग्न, परमगुरु—सर्वज्ञदेव और अपरगुरु—गणधरादि से लेकर हमारे गुरु पर्यन्त, उनके प्रसादरूप से दिया गया...** क्या सबसे (दिया गया)? कि **शुद्धात्मतत्त्व का अनुग्रहपूर्वक उपदेश...** लो! पूरे सार में सार सर्वज्ञ परम्परा से हमको हमारे गुरु ने इतना कहा, भाई! शुद्धात्मतत्त्व है। बस, इसमें सब आ गया। पर्याय में अशुद्धता है, निमित्त में कर्म है, पूर्ण हुआ नहीं, वस्तु पूर्ण है। यह सब द्रव्य पूर्ण है, गुण पूर्ण है। इतने एक शब्द में सब आ गया है। **शुद्धात्मतत्त्व का अनुग्रहपूर्वक उपदेश,...** ऐसा नहीं कहा कि हमको विनय थे इसलिए कहा, हमको कृपा करके ऐसा दिया है गुरु ने, हों! यह उससे हमारा जन्म है। लो! उससे हमारा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का जन्म है। अब इस शब्द में से जन्म कहा। वहाँ कहाँ थे धवल। और दूसरे भी इनकार करते हैं वह तो। इससे उसमें सब आ गया। बारह अंग और चौदह पूर्व सब आ गया। यह एक उपदेश गुरु ने कहा। हम अन्दर में उतरे एकदम। उसमें से हमारे आत्मा की दशा की उत्पत्ति है। ऐसी तो बात करते हैं। पाँच बोल लिये न? पाँच बोल ले लिये हैं।

मुमुक्षु : गुरु की कृपा प्राप्त....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कृपा, इसका अर्थ कि अनुग्रह उन्होंने किया। कृपा तो अपनी हुई, परन्तु ऐसा कहीं बोले? हम विनयवन्त थे, इसलिए हमको दिया—ऐसा बोले? गुरु ने हम पर कृपा की है, हों! ऐसा करके अपना विनय और योग्यता बताते हैं। यह तो शैली। यह तो सिद्धान्त है न अकेला। समझ में आया?

कहते हैं, जिनराज की भाँति आठ कर्म का नाश कर इस मोक्ष को... जा-जा भाई! मोक्ष कर... मोक्ष कर। ऐसा ही कहे न। यह तो थोड़ा बाकी रह जाये और धर्मशाला की भाँति जैसे रुकना पड़े, पच्चीस कोस चलना हो और अठारह कोस चला गया हो और सात कोस के लिये एक धर्मशाला में रहे, सवेरे उठकर सात कोस काट देंगे (पहुँच जायेंगे)। ऐसे जरा करते-करते बाकी रह गया, वह स्वर्ग में धर्मशाला है, वहाँ से निकलने पर पूरा कर देंगे। उस भव में पूरा। मोक्ष ही है अब सुन न! यहाँ तो मोक्ष जाने की ही बात की गयी है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

नोट - गाथा ११९ से १२२ पर प्रवचन ५६ उपलब्ध नहीं।

ज्येष्ठ कृष्ण १२, शनिवार, दिनांक - २६-०६-१९६५
गाथा - १२३ - १२४ प्रवचन - १५६

परमात्मप्रकाश, अध्याय दूसरा, १२३ गाथा। भावार्थ से फिर से। कल उतरा (रिकार्डिंग) नहीं न? कल तो यह बिजली नहीं थी। उसे आना हो, वह आवे; होना हो, वह होवे, पर की पर्याय कौन करे?

भावार्थ - ये घर वगैरह... बाह्य की वस्तु है पुत्र, कलत्र, घर आदि पैसा, लक्ष्मी, यह **शुद्ध चेतनस्वभाव अमूर्तिक निज आत्मा से भिन्न...** भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वभाव, ऐसा अमूर्तिक निज आत्मा, स्वभाववाला आत्मा, ऐसा। स्वभाव स्वरूप आत्मा। शुद्ध चैतन्यस्वभाव अमूर्तिक निज आत्मा। आत्मा की व्याख्या की। शुद्ध चैतन्यस्वरूप, निज, उससे भिन्न **जो शुभाशुभ कर्म...** उससे भिन्न अन्दर शुभ और अशुभ कर्म, **उसके उदय से उत्पन्न हुए हैं,...** घर इत्यादि कर्म के उदय से सब चीज़ें प्राप्त होती हैं। **इसलिए कर्माधीन हैं,...** कर्माधीन है। समझ में आया? ... वे कृत्रिम हैं, ये सब, यह कर्मायतन - कर्म के आधीन है। कहा न?

तत्त्वज्ञान तरंगिणी में लिखा है न? भाई! तेरे अलावा बाह्य चीजें अनन्त बार मिली, इस अपेक्षा से उन्हें सुलभ कहते हैं। अनन्त बार मिली, परन्तु एक अपेक्षा से उन्हें दुर्लभ कहते हैं, क्योंकि कर्म के आधीन है; वे कहीं तेरे प्रयत्न के आधीन नहीं है। समझ में आया? शरीरादि बाह्य पदार्थ लक्ष्मी, कीर्ति, पुत्र-पुत्री इत्यादि बाह्य (पदार्थ) वे **शुद्ध चेतनस्वभाव (भगवान) अमूर्तिक निज आत्मा से भिन्न...** शुद्धात्मा से भिन्न, कर्म के आधीन हैं। ऐसा कहकर यह कहा है कि वे पराधीन है। तेरे प्रयत्न से यह वर्तमान में प्राप्त होते हैं - ऐसा नहीं है। समझ में आया?

इसलिए दो बोल लिये हैं न इसमें? बाह्य चीजें हैं, वे अनन्त बार मिली, इसलिए सुलभ; परन्तु कर्म के आधीन है और तेरे प्रयत्न के आधीन नहीं; इसलिए दुर्लभ है।

सुलभ और दुर्लभ आत्मा में। आत्मा का धर्मपना, वह दुर्लभ है, क्योंकि अनन्त काल से प्राप्त नहीं हुआ, इसलिए; परन्तु आत्मा का धर्म सुलभ है क्योंकि जिसमें पर की सहायता की आवश्यकता नहीं है, इसलिए। तत्त्वज्ञान तरंगिणी है न? क्या नाम? शुभचन्द्र (ज्ञानभूषण) भट्टारक। उसमें दो बातें ऐसी पारस्परिक ली हैं। एक अपेक्षा से परचीज सुलभ है, क्योंकि अनन्त बार मिली। एक अपेक्षा से पर दुर्लभ है, तेरे आधीन नहीं है; वह कर्माधीन है। कर्म का उदय हो, तद्नुसार वह सामग्री प्राप्त होती है, दो बातें। अब आत्मा में दो बातें कि आत्मा का धर्म, वह अनन्त काल में समझा-पाया नहीं; इसलिए दुर्लभ है और दूसरे प्रकार से कहें तो भगवान आत्मा की प्राप्ति में कोई विकल्प और कर्मादि किसी चीज़ की आवश्यकता नहीं पड़ती, इसलिए वह सुलभ है। समझ में आया?

मुमुक्षु : दो में से एक....

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों समझना, दो में से एक क्या? स्वभाव से प्राप्त करना, यह सत् वस्तु है, सरल है। इसमें किसी निमित्त, मन-वाणी-देह की बिल्कुल आवश्यकता नहीं। स्वयंसिद्ध कर्ता होकर अपना काम अन्तर का कर सकता है, उसमें किसी की मदद की आवश्यकता नहीं है, इसलिए इसे सुलभ कहा है। अनन्त काल की अपेक्षा से बारह भावना में दुर्लभबोधि भावना कही। अपेक्षा से यह समझना चाहिए या नहीं? अनन्त काल से एक क्षण भी इस वस्तु को समझा नहीं, इस अपेक्षा से इसे दुर्लभ कहा है। दोनों बातें जैसी हैं, वैसी इसे लक्ष्य में लेना चाहिए न?

भगवान सहज स्वरूप है, सत् है, सरल है। सर्वत्र जहाँ देखे वहाँ तू स्वयं ही है। ऐसे स्वभाव की अन्तर में प्राप्ति करना, वह तो सहज स्वभाव का साधन वह तेरा है और कार्य भी तेरा है, इस अपेक्षा से इसे सुलभ कहा है। अनन्त काल में इसने वस्तु की... की नहीं, इस अपेक्षा से इसे दुर्लभ है। यहाँ तो कहते हैं कि परचीज़ कर्म के आधीन है, तेरे आधीन नहीं। बराबर होगा?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल... क्या आधार होवे? दृष्टान्त दिया है न उसमें?

मोक्षमार्ग-प्रकाशक में पागल का। एक पागल नदी के किनारे बैठा था। नदी के किनारे जाकर बैठा था। पागल, मस्तिष्क फेर होगा। बैठा था। वहाँ आया राजा, कहीं जाता होगा, पाँच-पच्चीस कोस दूर। दस बज गये और नदी में पानी.. पानी.. राजा आया, रानी आयी, हाथी आये, घोड़े आये। ओहोहो! खूब आये मेरे, हों! वह पागल बैठे-बैठे (विचारता है)। जहाँ सब खा-पीकर सो गये और चार बजे, उठो-चलो। फिर एक-एक चलने लगे तो वह पागल कहता है-कैसे जाते हो? वे कहते हैं - परन्तु हम कहाँ तेरे लिये आये थे! हम तो हमारे कारण से आये थे। यहाँ पानी देखकर आहार-पानी किया, यह भोजन किया और अब समय है तो चले जायेंगे। यहाँ आये मेरे लिये, मैं बैठा, इसलिए तुम आये (-ऐसा पागल बोला)।

मुमुक्षु : परन्तु वह बैठा था, तब आये न?

पूज्य गुरुदेवश्री : सहज ही वह बैठा और सहज आने का हुआ, इसमें उसके कारण क्या आया है? वहाँ पूरी स्थिति हुई। सो गये, उठे, नहाये-धोये, चलने लगे। चलने क्यों लगते हो? पागल लगता है यह। इसी प्रकार यह जहाँ आकर नहीं जन्मा, पूर्व के कर्म के कारण सामग्री आकर खड़ी रही। वे कर्म जहाँ हटने लगे, तो वे चीज़ें भी जाने लगी। क्यों जाते हो? भाई! तेरे लिये कब हम आये थे? बराबर है? धर्मचन्दजी! पागल। यह क्या कहते हैं आचार्य? आचार्य कहते हैं, पागल है। तू आकर बैठा, वहाँ वे दूसरे उनके कारण से (आये)। यह क्या कहते हैं? देखो न! घर-मकान हुआ, पैसे हुए, गहने हुए, कपड़े हुए, यह सब शरीर-बरीर मोटा हुआ-स्थूल हुआ, जवानी हुई-यह सब कर्म के आधीन हुआ है। फिर जहाँ शिथिल पड़ने लगा, वहाँ कहता है-शिथिल क्यों पड़ता है? मेरा है न! परन्तु तेरा कब था? वह तो कर्म के कारण (हुआ था)। कर्म, वह निमित्त है, हों! उपादान तो उसका है उस प्रकार का आने का।

मुमुक्षु : जावे तब दुःखी होता है, परन्तु आवे तब तो प्रसन्नता होती है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : आवे तब खुशी होती है न! लड़का आवे, तो खुश होता है, बनाओ आज लापसी। न हो तो गोद लेता है, देखो न! मुफ्त का... एक करोड़ रुपये डाल दे न धर्म में। लड़के को देकर तो पाप बाँधेगा। बड़े लड़के को लड़का नहीं और

छोटे का एक, लो! गोद लिया। कौन जाने, उपाधि का पार नहीं होता। और वह बराबर बड़ा होता है। बापू! पच्चीस लाख, पचास लाख बाँटने न दूँ अब मैं। मुझे किसलिए गोद लिया? यह तुम्हारा लड़का बराबर है, मुझे इच्छा प्रमाण तुम्हारे प्रयोग करो, दूसरा नहीं प्रयोग करे। हाथ करके (अपने आप) उपाधि ओढ़ता है, कौन जाने। यह बैठा है, यह, मोटर लाया लगता है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल तेरे कारण नहीं। वह परद्रव्य है, अन्दर रजकण पड़े थे, यह उनके कारण निमित्त हुआ। उपादान इसके आने की योग्यता, इसका सम्बन्ध होकर कर्म के कारण आये, ऐसा कहा जाता है। वास्तव में तो कर्म तो निमित्त है। एक द्रव्य, दूसरे द्रव्य को लावे, ऐसा भी नहीं है। यहाँ तो तेरे कारण से नहीं है, इसलिए चीजों की सामग्री में निमित्त कर्म है, उस कर्म के कारण चीज़ें आयी हैं - ऐसा कहा जाता है। बराबर होगा... भाई! यह देखो! शरीर स्थूल, पैसा-बैसा सब... कर्म के कारण आते हैं - ऐसा कहते हैं। तेरे कारण से बिल्कुल नहीं।

उदय से उत्पन्न हुए हैं, इसलिए कर्माधीन हैं, और विनश्वर होने से... यह पर्याय तो नाशवान है। **शुद्धात्मद्रव्य से विपरीत है।** भगवान शुद्धस्वरूप टंकोत्कीर्ण ध्रुव नित्यानन्द प्रभु, जो कायम रहनेवाली दृष्टि से देखें तो सब स्कन्धों की पर्यायें, स्कन्धों की अवस्था पलटती है। नाम, रूप का नाश होकर दूसरा रूप हो जाता है। **शुद्धात्मद्रव्य से विपरीत है। शुद्धात्मद्रव्य किसी का बनाया हुआ नहीं है,...** भगवान वस्तु (को) कौन बनावे? है सत्, सत् को कौन बनावे? न हो तो बने, तो न हो तो बने तो पर्याय बने, कहीं द्रव्य बने? वस्तु बने? **शुद्धात्मद्रव्य किसी का बनाया हुआ नहीं है,...** यह तो अनादि-अनन्त भगवान शुद्धस्वरूप चिदानन्द अनन्त-अनन्त शान्तरस और आनन्द का कन्द यह अनादि-अनन्त है।

इसलिए अकृत्रिम है,... किसी ने किया हुआ नहीं है। दो की पारस्परिक बात करते हैं; और **अनादिसिद्ध है,...** भगवान तो अनादि सिद्ध है, अनादि साबित है। **टंकोत्कीर्ण ज्ञायक स्वभाव है।** ऐसा का ऐसा अड़बड़नाथ। है न यहाँ शत्रुंजय में नहीं?

अड़बड़नाथ पूरे कमरे प्रमाण उत्कीर्ण किया है न एक बड़ा ? क्या कहते हैं ? अड़बड़नाथ। पूरा कमरा है न, बड़ा कमरा ? उसके प्रमाण में एक पूरी मूर्ति, उसमें से उत्कीर्ण की है। बाहर से लाकर रखे कितनी ? हजारों लोग ऐसे के ऐसे खोलकर... बड़ी ऐसी मूर्ति है न ? शत्रुंजय पर है। है न, हमने तो पहले बहुत वर्षों से देखा है। एक बड़ा कमरा है, उसमें पूरी पत्थर की अन्दर... उसे अड़बड़नाथ कहते हैं। मन्दिर है, वह पत्थर अन्दर ही उत्कीर्ण कर ऐसा का ऐसा पड़ा है। इसी प्रकार यह चैतन्य प्रभु ऐसा का ऐसा, किसी से पूरित नहीं, ऐसी की ऐसी चीज़ अनादि-अनन्त शुद्ध अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु अनादि-अनन्त है। अनादिसिद्ध अनादि-आदिरहित सिद्ध है। **टंकोत्कीर्ण ज्ञायकस्वभाव है।** लो!

जो टाँकी से गढ़ा हुआ न हो, बिना ही गढ़ी पुरुषाकार अमूर्तिकमूर्ति है। अमूर्तिक मूर्ति है, लो! भगवान! बिना गढ़ी पुरुषाकार, पुरुष के आकार अमूर्तिक मूर्ति है। अर्थात् अमूर्तिक जिसका स्वरूप है, ऐसा। अमूर्तिक भी वस्तु है या नहीं ? अरूप और अमूर्त। वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श रहित शरीरप्रमाण भगवान आत्मा भिन्न अरूपी, अमूर्तिक मूर्तस्वरूप अर्थात् कि स्वरूप है, ऐसा। उसका स्वरूप है, कोई अस्वरूप है- ऐसा नहीं। **अमूर्तिक मूर्ति है,...** अमूर्तिकस्वरूप है। आहाहा! ऐसा भगवान पूरा है। अन्तर में उसका विश्वास इसे नहीं आता। ऐसा मैं एक महान पदार्थ, जिसमें अनन्त सिद्ध भगवान विराजते हैं, जिसके ध्रुव में अनन्त सिद्धपर्यायें प्रगट हुईं, वे अन्दर में बैठी हैं। समझ में आया ?

ऐसे आत्मस्वरूप से ये देहादिक भिन्न हैं,... इस आत्मस्वरूप से देह-वाणी-मन सब, अरे! रागादि भी भिन्न है। **ऐसा सर्वज्ञकथित परमागम में...** सर्वज्ञ ने कहे हुए परम आगम में **परमज्ञान के धारी...** महा सम्यग्ज्ञान के धारक **योगीश्वरों ने देखा है।** भाषा ऐसी की, देखो! अन्दर परम ज्ञानियों ने देखा है कि यह आत्मा है। ज्ञान की दशा की कला द्वारा यह आत्मा अमूर्तिकस्वरूप शुद्धतत्त्व, अनादि-अनन्त, इस ज्ञान के अन्तर नेत्र से देखा है, वैसा प्रत्यक्ष अनादि-अनन्त है। भगवान ने तो कहा, परन्तु परमागम... बाद में ऐसा कहा न ? परन्तु **परमागम में परमज्ञान के धारी योगीश्वरों ने देखा है।** ऐसा

कहकर (कहते हैं), ऐसे सन्त परमागम में कही हुई बात सत्य सन्त समझे और अन्दर में आत्मा को देखा। इसके अतिरिक्त दूसरे ने कहा हुआ आत्मा, वह आत्मा सच्चा नहीं हो सकता। यहाँ दो बातें कहते हैं। सर्वज्ञ ने कहे हुए परमागम में जो वस्तु कही, ऐसे परमज्ञान के धारी सन्तों ने अन्तर में देहादि से भिन्न भगवान को धारा है। समझ में आया?

यहाँ पर पुत्र, मित्र, स्त्री, शरीर आदि सबको अनित्य जानकर... अध्रुव, अध्रुव, अध्रुव **नित्यानन्दस्वरूप निज शुद्धात्म स्वभाव में...** शाश्वत नित्य रहनेवाला, आनन्दस्वरूप ऐसा निज शुद्धात्मस्वभाव में **ठहरकर...** उसमें स्थिर होकर **गृहादिक परद्रव्य में ममता नहीं करना।** यह ममता नहीं करे, ऐसा नहीं बने - ऐसा कहते हैं। स्वभाव, शुद्ध द्रव्यस्वभाव दृष्टि में लेकर, उसमें स्थिर होकर गृहादिक की ममता छूट जाती है। इसके अतिरिक्त पर की ममता छूटती नहीं। समझ में आया? संयोग आये, चले जाते हैं, व्यर्थ का उनके लिये रुके, कमाने के लिये, उसके लिये... यह कहते हैं न? चिन्ता.. चिन्ता.. चिन्ता.. बराबर होगा यह?

यह किसी बात चलती है? शुद्ध द्रव्य चिदानन्द का अन्तर विश्वास कर और विश्वास (करने के) बाद उसमें स्थिर हो। जैसे यह... ऐसे मानता है, ऐसे यह एक बड़ा भगवान है अन्दर। यह है.. यह है... यह है.. यह है.. यह है.. यह एक है। पूर्णानन्द से भरपूर भगवान निज शुद्धात्मा अन्तर्दृष्टि से उसे निहार और उसमें स्थिर हो। तथा परवस्तु यह है.. यह है.. इसलिए मेरी है, यह ममता छोड़। समझ में आया या नहीं? लड़के का लड़का अच्छा आवे तो ऐसे अन्दर गलगलिया हो जाए। अच्छा कहना किसे? अच्छा-बुरा लड़का होगा? ज्ञेय अच्छा-बुरा होगा? जगत के ज्ञेय हैं। ज्ञेय में ऐसी छाप लगी है कि यह अच्छा - यह खराब? रूपवान हो, उसने भी पिता को जहर दे दिया, मार डाले। खबर नहीं? किसे कहना अच्छा-बुरा? यह तो स्वार्थ का पुतला। जब तक उसकी ममता पोसाती हो, तब तक बापू.. बापू.. बापू करे। बाकी अवसर आवे तो मार दे।

राजा को देखो न! राजा को मार डालते हैं न? उसके पिता को। मार डालते हैं, जहर दे देते हें। राज किया, यह साठ-साठ वर्ष की उम्र हो गयी। बूढ़ा तो मरता नहीं,

अस्सी वर्ष हुए तो भी। अब हमें राज कब करना? बूढ़े को अस्सी वर्ष हुए और उसको साठ हुए। अब उसे साठ-साठ वर्ष से गद्दी है और हमारे साठ हुए और अब गद्दी हमें कब देगा? चढ़ा दे, डॉक्टर को कहकर इंजेक्शन दे दे ठीक से। यह सब भी बना हुआ है न। यह बनता है और बना हुआ है न! एक उसकी माँ ने... बेचारा नहीं हुआ तो ऐसे विवाह कर आया मींढोल हो तो, हों! मींढोल हो तो विवाह कर लड़का। ऐसे कुछ ध्यान बाहर हुआ, तो विवाह करके आया, उस दिन मार दिया जहर से। परणीने समझे? शादी, लगन। ऐसी कुछ भाषा बोला, उसकी माँ को ठीक नहीं था, (कहा कि) स्वतन्त्र हूँ।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहाँ प्रश्न है? यह तो उसका भाव ऐसा था, इतनी बात है। समझ में आया? यह तो होनेवाली पर्याय होती है, यह कहाँ प्रश्न है? यह तो निमित्त है, परन्तु उसका भाव था न, मार डालने का? यहाँ लड़का था, उसे मार डाला। यहाँ अभी यह बात चलती है। लड़का यह और मार डाले जहर देकर।

एक लड़का था, इकलौता लड़का। दस लाख की पूँजी उसकी माँ को, हों! परन्तु लड़के को ठीक नहीं लगा। वह थी, माँ में गड़बड़ थी। सब नाम, स्थान की हमें खबर होती है न सब बातें। एक पाई लड़के को नहीं दी, दस लाख उड़ा दिये। सगा इकलौता लड़का, एक पाई नहीं दूँगी। मेरे विचार से बाहर क्यों (किया)? भाषा कैसी बोली? सगा लड़का, सगी माँ, दो जनें। कोई नहीं था। दस लाख की पूँजी, एक भी पाई नहीं दी। किसका लड़का? यह तो सब प्रेम हो न, तब तक ऐसा लगे, हों! जयचन्दभाई! मेरा लड़का... आहाहा!

मुमुक्षु : अच्छा भी होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु अब अच्छा किसे कहना?

यहाँ तो कहते हैं, यह छोड़। यह मेरे... छोड़। यहाँ भगवान विराजता है, उसके साथ प्रेम कर या उसके साथ प्रेम कर? किसके साथ (प्रेम करता है)? क्या हुआ तुझे? ऐसा कहते हैं, देखो न! यहाँ तो (कहते हैं) स्वद्रव्य के स्वभाव की रुचि, दृष्टि

करके। भगवान आत्मा पूर्णानन्द से भरपूर, मुझमें क्या कमी खजाने में है कि पर की गुलामी हो? मैं पूर्णानन्द से भरपूर पूर्ण शान्ति से भरपूर; शान्ति अर्थात् चारित्र, आनन्द अर्थात् सुख। पूर्ण श्रद्धा, पूर्ण वीर्य, पूर्ण स्वच्छता, पूर्ण अनन्त-अनन्त कर्ता-कर्म आदि शक्तियों का भण्डार - उसमें क्या कमी है कि मुझे पर में देखकर आशा करनी पड़े? छोड़, कहते हैं। भगवान के सन्मुख देख! समझ में आया? तेरा परमात्मस्वरूप पूर्णानन्द का तू विश्वास ला, विश्वास ला। वह कब आवे? ये सब अस्थिर है, इनका विश्वास छोड़ दे। यह विश्वास ला।

पूर्ण प्रभु परमात्मस्वरूप से (विराज रहा है)। परमात्मप्रकाश है न? पूर्ण परमात्मा तू स्वयं पूर्ण है; तुझमें कमी क्या है? यहाँ देखता है क्या? जो देखे अन्दर मिले, ऐसा है। समझ में आया? उसकी श्रद्धा कर। यहाँ तो ममता छोड़ने की बात है न? श्रद्धा छोड़-उनका विश्वास दोड़ दे कि उनसे मुझे लाभ होगा; और ऐसी ममता छोड़कर स्वरूप में स्थिरता कर, ऐसे गुलांट मारकर। यहाँ कहते हैं, वह ममता छूट जाती है।

परद्रव्य में ममता नहीं करना। ऐसे साधारण बात नहीं है, बाहर की ममता छोड़ी न... ऐसा नहीं। वस्तु एक समय में पूर्ण परमात्मा जहाँ दृष्टि में देखा, ज्ञान में देखा, अनुभव में वेदन किया, उसके कारण से परवस्तु मेरी नहीं और यह चीज़ मेरी त्रिकाल है। ऐसा करके, उसमें स्थिर होकर, पर की ममता टलती है, ऐसा कहते हैं। मात्र ऐसे छोड़कर स्त्री-पुत्र छोड़ दिये, इसलिए ममता छोड़ी है, यह बात इसमें है ही नहीं। सब भरा पड़ा है अन्दर। एक राग के कण को भी सच्चा, अच्छा ठीक मानता है, उसके अभिप्राय में पूरा संसार करने जैसा है-ऐसा बैठा है। यहाँ तो कहते हैं कि नित्यानन्दस्वरूप प्रभु भगवान निज शुद्धात्मा की अन्तर्दृष्टि (करके), उसे स्वज्ञेय बनाकर, स्थिर हो। ममता छूट जाएगी।

★ ★ ★

गाथा - १२४

आगे घर-परिवारादिक की चिन्ता से मोक्ष नहीं मिलती, ऐसा निश्चय करते हैं-

२३६) मुक्खु ण पावहि जीव तुहुँ घरु परियणु चिंतंतु।
तो वरि चिंतहि तउ जि तउ पावहि मोक्खु महंत्तु ॥१२४॥

हे जीव! तू घर, परिवार वगैरह की चिन्ता करता हुआ मोक्ष कभी नहीं पा सकता... आहाहा! आया नहीं अष्टपाहुड़ में? ध्रुव मोक्ष तीर्थंकर का है। निश्चय मोक्ष भगवान को है, खबर नहीं? जब से भगवान का जन्म हुआ, तब से खबर है, तब से क्या? पूर्व से खबर है कि मैं तीर्थंकर होनेवाला हूँ, अन्तिम मेरा भव, उस समय मोक्ष है। वह जीव भी स्वरूप में स्थिर होकर, चारित्र में लीन होकर ममता छोड़ देता है। उसे भी चारित्र अन्दर स्थिर होना, अंगीकार करता है। आहाहा! है न? यह गाथा है न? ध्रुव सिद्धि है, ऐसा पाठ है। तीर्थंकर को निश्चित मोक्ष है, तथापि वे स्वरूप में, अरे! हमारी मुक्ति है इस भव में, परन्तु हमें स्थिरता बिना हमारी मुक्ति नहीं मिलेगी। अकेले सम्यग्दर्शन और ज्ञान से तथा तीन ज्ञान लेकर आये हैं, इससे हमें मुक्ति नहीं मिलेगी। आहाहा! समझ में आया? क्षायिक समकित और तीन ज्ञान। ध्रुव सिद्धि, निश्चित मुक्ति है। इन्द्र कहता है, प्रभु! तुम्हारी मुक्ति है न! हम भी एकावतारी (हैं), हों! प्रभु! हम यह एक भव करके मुक्ति में जानेवाले हैं। इन्द्र भी कहते हैं, है न? पहले देवलोक का इन्द्र और इन्द्राणी। हमारे मनुष्य का एक ही देह है। प्रभु! आपको तो इस देह से ही पूर्णता!

जब भरत रोता है, जब भगवान का मोक्ष होता है, तब भरत आता है, ऐसे देखता है। ऐसे आँख में से आँसू की धारा निकलती है। राग है न? इन्द्र कहता है, भरत! तुम तो चरमशरीरी हो न! तुम्हें तो इस भव में केवल (ज्ञान) है, तुम्हें दूसरा देह नहीं है। हमें तो अभी एक मनुष्य का देह है। इन्द्र! ख्याल है, खबर है। हमें खबर है, इन्द्र! यह अन्तिम अवतार, देह है। भगवान के विरह में मुझे अन्दर राग आ जाता है। मेरी

अस्थिरता आती है। मुझे ख्याल में लेना चाहिए या नहीं? मुझे ख्याल है कि मैं इस भव से केवल(ज्ञान) प्राप्त करके (मोक्ष जानेवाला हूँ) मुझे दूसरा देह नहीं है। भगवान ने कहा है, मुझे ख्याल है, इन्द्र जानते हैं। अभी मुझे यह राग आता है, भगवान का विरह पड़ा। अरे! भरतक्षेत्र का सूर्य आज अस्त हो गया। ऐसा प्रशस्त राग धर्मी को आता है (तो) रोता है, हों! क्षायिक सम्यग्दृष्टि है न? तीन ज्ञान है न? यह राग है, वह चारित्र दोष है। अरे! प्रभु! भरतक्षेत्र का सूर्य उदित हुआ था, आज अस्त हो गया। हम कहाँ पूछेंगे? कहाँ जायेंगे? रोता है, लो! ख्याल है कि हमारी अस्थिरता है, उसका राग है, हमारे स्वभाव में वह राग नहीं है। पृथक्रूप से ऐसा ज्ञान है, तथापि यह स्थिति खड़ी होती है। हमारा मोक्ष इस भव में है। अवतार नहीं है, अन्तिम रजकणों का यह सम्बन्ध है, छूट जायेगा, तो भी भक्ति का प्रेम आता है और उस दुःख को स्वीकार करता है। देखो! हम स्वरूप में स्थिर होंगे, तब हमें केवलज्ञान होगा, उसके बिना (नहीं होगा) समझ में आया? आहाहा!

उसमें आता है न? भाई! यह बाहुबली का आता है न उसमें? भरत चक्रवर्ती। बाहुबली में आता है। भरत चक्रवर्ती पूजा करने आते हैं। ऐसे नजर करते हैं, अहो! मुझे लगता है कि इस भरत को कुछ दुःख हुआ होगा, उसके कारण... ऐसा देखते हैं। उन्हें तो कुछ नहीं, पूजा करते हैं। एकदम श्रेणी चढ़े और श्वेताम्बर में दूसरी रीति से जरा आता है। ध्यान में खड़े होते हैं, तब ब्राह्मी और सुन्दरी, दो लड़कियाँ हैं न? वे उनके पास जाती हैं और जहाँ बारह-बारह महीने हुए हैं और ऐसे होता नहीं? इनमें दूसरी बात है। अपने में यह बात है। वहाँ उन्होंने गीत बनाया है, 'वीरा मोरा गज थकी उतरो' गज अर्थात् हाथी। जरा कषाय का हाथी है न, मान?

'वीरा मोरा गज थकी उतरो
गज चढ़े केवल न होय रे,
ऐ... गज चढ़े केवल न होय रे।

अरे! भाई! इस विकल्प के हाथी पर चढ़े, बापू! एक मान जरा तुम्हें खटकता है, यह केवलज्ञान अटका है, प्रभु! समझ में आया? ऐसे श्वेताम्बर में यह आता है। 'गज

चढ़े केवल न होय रे, वीरा मोरा मान- गज थकी उतरो' मानरूपी हाथी से नीचे उतर जाओ। आहाहा! ब्राह्मी और सुन्दरी ऐसे देखती है। अरे! यह क्या? कौन जाने कि भरत को... गुलाँट खा जाते हैं अन्दर। क्षपकश्रेणी (माँडते हैं)। श्रेणी का अर्थ धारावाही शुद्ध परिणति, धारावाही शुद्ध परिणति। समझ में आया?

(यहाँ) कहते हैं, अरे! छोड़, छोड़ इन घर इत्यादि की चिन्ता। **मोक्ष कभी नहीं पा सकता...** जब तक चिन्ता का विकल्प रहता है, तीर्थंकर भगवान जैसों को भी मोक्ष नहीं होता। धूल भी नहीं मिलती, क्या मिले? चिन्ता से मिले? चिन्ता विकल्प है, उस विकल्प से चीज़ नहीं मिलती, उस विकल्प से यहाँ लाभ नहीं होता। सुनो, क्या कहा? इस चिन्ता का विकल्प है, इस विकल्प से चीज़ों की प्राप्ति नहीं होती और इस विकल्प से यहाँ स्वभाव की शान्ति नहीं मिलती, बीच में दखल-विघ्न करनेवाला है। यह यहाँ बात करते हैं। चिन्ता से कुछ चीज़ नहीं मिलती, चिन्ता से शान्ति यहाँ नहीं मिलती। व्यर्थ का विघ्न उपस्थित करता है। आहाहा! समझ में आया?

चिन्ता करता हुआ... देखो न! शब्द है न? **'चिन्तयन्' मोक्ष कभी नहीं पा सकता।** इस चिन्ता से तो वर्तमान शान्ति रुकती है और यह जगत की चिन्ता करने जाये तो कुछ जगत अनुकूलतारूप रहेगा; तेरा विकल्प किया; इसलिए जगत अनुकूलरूप रहेगा, यह तेरी बात एकदम झूठ है। विकल्प उठाया, इसलिए वह अनुकूल रहेगा और विकल्प उठाया, इसलिए यहाँ अन्दर में शान्ति मिलेगी, ऐसा तीन काल में नहीं है। समझ में आया?

भगवान शुद्धस्वरूप परमात्मा अपना निजस्वरूप... यहाँ परमात्मप्रकाश है न? बापू! इस दुनिया की चिन्ता से तुझे ऐसा हो कि यह रोगी होगा, निर्धन होगा तो उसकी व्यवस्था तेरे इस विकल्प के कारण हो जायेगी? तब कहो न, कहे न, बोले न! इसे अन्दर विपरीतता घुस गयी है। जयचन्दभाई! यह क्या कहते हैं यह? - कि विकल्प करने से चिन्ता करने से जरा पर में व्यवस्था में अन्तर पड़े, तेरी मान्यता में मूढ़ता है। जयचन्दभाई! यहाँ भगवान ऐसा कहते हैं। त्रिलोकनाथ परमात्मा की वाणी में आया, उस प्रकार से सन्तों ने झेला और जाना, उस प्रकार से विकल्प हुआ और वाणी निकल

गयी। अरे! जीवों! किसके लिये कल्पना? भगवान! तेरी कल्पना से वह व्यवस्थित पदार्थ व्यवस्थित रहेगा, ऐसा तू विचारता है? समझ में आया? यह कल्पना करे, इसलिए 'प्रकाश' को वहाँ ठीक होता है और अमुक होता है, हराम बात है - ऐसा कहते हैं। यह कल्पना होती है, परन्तु होता नहीं, ऐसा कहते हैं। परन्तु प्रत्यक्ष है या नहीं? तब लड़की का... ?

जगत में ऐसे दो पदार्थ—एक ओर भगवान पूरा पूर्णानन्द और एक ओर ये सब चीज़ें—स्त्री, पुत्र, परिवार, शरीर... धूल सब। अब यह बीच में खड़ी की कल्पना—अशुभ कल्पना, उस कल्पना के कारण से शरीर की अवस्था निरोग रहे, यह बिल्कुल हराम बात है। उसके कारण लड़का उसे बुलावे कि हाँ बेटा! यह कल्पना आयी, इसलिए वाणी आयी, इसलिए व्यवस्थित रहे और तेरा माने, हराम बात है। समझ में आया?

मुमुक्षु : कल्पना और कल्पना में...

पूज्य गुरुदेवश्री : किसकी बात चलती है यह? उसके लिये तो यह (कहते हैं) आचार्य महाराज मुनि निर्ग्रन्थ हैं, दिगम्बर (हैं) जंगल में बसनेवाले। उन्होंने यह कहा है तो क्या व्यर्थ में कहा है यह? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, इन बाहर की चीज़ों का यह कैसे होगा? इस कल्पना से बाहर की चीज़ों में कहीं अन्तर पड़ेगा, तुझे ऐसा लगता है? और इस कल्पना से तुझे कुछ आत्मा में अनुकूलता होगी, ऐसा लगता है? क्या है यह? मुफ्त की निरर्थक अनर्थकारी चिन्ता (करता है)। उस चिन्ता से अर्थ—बाहर में कुछ सिद्ध नहीं होता, उस चिन्ता से अन्तर की शान्ति का प्रयोजन सिद्ध नहीं होता, ऐसा कहना चाहते हैं। यह कहीं साधारण ऐसी बात नहीं है। भगवान आत्मा है न पूरा, वह चिन्तारहित है न! उसमें स्थिर हो न! यह तूने क्या लगा रखी है? ...चिन्ता से कुछ न कुछ तो व्यवस्था होती होगी या नहीं? जब यहाँ से तुम्हारे जाना पड़ता है, लो! उन दो को अलग होना हो,... करना पड़ता है या नहीं? अमृतलाल! भाव किये। वह कहे, भाई! मुझे अलग होना है, वह कहे मुझे ऐसा करना है, फिर हालोहाल चिन्ता करे व्यर्थ की। होना होगा वह वहाँ होगा और यहाँ

दु:ख, नुकसान होता है। वहाँ भी वापस वह माने ऐसा नहीं, हों! ऐसा ही है। यह चौथे नम्बर का इसका लड़का आया। वह तो सबकी (बात है)। यह तो दृष्टान्त देते हैं, मलूपचन्दभाई की अकेली बात कहाँ है?

मुमुक्षु : मानता तो है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं मानता, वह तो उसका मानता है, उसे रुचे वह उसका मानता है, तेरा नहीं। व्यर्थ का उलझ गया, ऐसा कहते हैं। उसे जो हाँ करता है और रुचता है, देखो! बात यह (कि) उसे ठीक पड़ता है, इसलिए मानता है। तूने कहा, इसलिए ठीक पड़ता है और मानता है, इस बात में एक भी प्रतिशत सच्चा नहीं है। आहाहा!

भाई! तुझे ऐसा होता हो कि मैंने ऐसा एक विकल्प किया और मैंने ऐसा किया तो कुछ काम ठीक पड़ा, काम में ठीक व्यवस्था हुई, हों! नहीं तो ये कोई मानते नहीं, हों! रहने देना, इस निरर्थक कल्पना में भ्रमणा डालना नहीं। यह तो होनेवाला हो, वहाँ होता है, उसके कारण से। पिताजी, पिताजी! यह उसकी अनुकूलता के कारण ऐसा बोलता है, तुम्हारी अनुकूलता के लिये नहीं। वह बोलता है अन्दर में कुछ नहीं, बापूजी! देखो! हम कहते हैं, ऐसा करना पड़ेगा, हों! क्यों अमृतलाल! खबर है या नहीं इसे? अभी दो व्यक्तियों का करने गया था। देखो! यह चौथा है। दो रहते हैं अहमदाबाद और दो रहते हैं बाहर, एक रहता है मुम्बई और एक रहता है बाहर भटकने। आहाहा! यह तो दृष्टान्त है, हों!

कहते हैं, भाई! तूने निर्णय-निश्चित किया है कभी? एक ओर भगवान पूरा आत्मा और एक ओर पूरी सब चीज़ें। अब ये दूसरी सब चीज़ें—घर, इज्जत, कीर्ति, ये पैसा, लड़के, बहुएँ तेरी कल्पना से उनमें कुछ होता होगा? जरा भी होता होगा कि मैंने ध्यान रखा न, इसलिए काम लाईन पर आ गया। सरेड़े समझ में आया? ठीक रास्ते, ठीक रास्ते। हमारे भाषा काठियावाड़ी है। हराम बात हो तो तेरी कल्पना में मिथ्या भ्रमणा है। बराबर होगा यह? आहाहा! अरे! तुझे यह चिन्ता पर की लगी, भूत! इस भूत से पर में कुछ नहीं होगा, हों! और तुझे उसमें शान्ति नहीं मिलेगी, हों!

ज्ञानी को अस्थिरता होती है। यह तो अज्ञानी की बात करते हैं, हों! ज्ञानी को जो अस्थिरता होती है, उसका भान है। मैं स्थिर नहीं हो सकता, इसलिए जरा सा (विकल्प) आ जाता है। वह उसके कारण नहीं। नहीं; कुटुम्ब के कारण विकल्प नहीं आता। समझ में आया? कुटुम्ब कर्ता हो जाता है और विकल्प कर्म हो जाता है, ऐसा नहीं हो सकता। अज्ञानी को ऐसा हो जाता है कि मैं यह कल्पना करूँ न, यह कल्पना करता तथा वहाँ कहीं कार्य ठीक हो, वह इसका कार्य। हराम बात होवे तो। यह तो दिगम्बर सन्त हैं। छोटी बात परन्तु बहुत इसके मूलरूप में रखते हैं। भले छोटी वैराग्य की बात हो परन्तु इसका मूलरूप और हद-मर्यादा क्या - ऐसा समझाना चाहते हैं। समझ में आया?

वरम् उत्तम... देखो **प्रज्ञा इसलिए वरं तपः एव तपः '...'** देखो! **तप का ही बारम्बार चिन्तवन कर...** मुनिपना ऐसा, तप अर्थात् मुनिपना, हों! ऐसा संयम, एकाग्र स्वरूप में एकाग्र, संयम की बात है। तप अर्थात् मुनिपना। मुनिपना अर्थात् संयमभाव। स्वभाव.. स्वभाव.. स्वभाव की ओर संयम-सम्यकप्रकार से.. **क्योंकि तप से ही श्रेष्ठ मोक्षसुख को पा सकेगा।** यह संयमदशा। ममतारहित, चिन्तारहित, वह संयमदशा। ऐसे स्वभाव की दृष्टिपूर्वक स्वरूप में स्थिरता द्वारा ही तेरी मुक्ति होगी, इसके सिवाय मुक्ति नहीं है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान होने पर भी स्वरूप में स्थिरता बिना मुक्ति होती है, ऐसा नहीं है। क्या करना? तीर्थंकर निश्चित होकर जन्मे, तो भी उन्हें अन्तर में स्वरूप में स्थिर होंगे, तब मुझे चार ज्ञान होंगे। स्वरूप में स्थिर होंगे, तब शुक्लध्यान होगा। इसके बिना बाहर के विकल्पों में अटकाव में हैरान हूँ... हैरान हूँ... पुरुषार्थ निर्बल है। ऐसा जानते हैं।

भावार्थ- तू गृहादि परवस्तुओं का चिन्तवन करता हुआ कर्मकलंकरहित... देखो! कहते हैं कि भाई! जो परचीजें तुझसे दूसरी हैं, गृहादिक में पुत्र आ गये, हों! उसमें 'प्रकाश' आ गया। गृहादि (अर्थात्) पुत्र, पैसा, इज्जत, पुत्र का पुत्र। मोहनभाई! सब आता होगा या नहीं इसमें? पैसेवाले लोग। **गृहादि परवस्तुओं को...** पैसेवाला कहना किसे? कहते हैं। गृहादि, आदि शब्द है न? घर, पैसा, पुत्र, पुत्र का पुत्र, लड़कियाँ, अब इकलौती लड़की हो न, समझे न? उसे बहुत सम्हालना चाहिए। किसी

को पढ़ावे, गुणावे, ठीक से लो! तो ठिकाने पड़े, नहीं तो ठिकाने पड़े नहीं और अभी के विवाह करना। ये लड़के अभिमानी। कोई पढ़ी हो एल.एल.बी. बी.ए. हुई हो तो कोई रखे, नहीं तो रखे? इसलिए अपने (उसे) पढ़ाओ तो रखे। यह तेरी कल्पना झूठी है, ऐसा कहते हैं। एकदम झूठी है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : ये लड़कियाँ भी अभी ऐसी ही हैं। आदमी को सब सहन होता है। समझ में आया? यहाँ तो दृष्टान्त इसने कहा, भाई! उसको ऐसा करूँगा और ऐसा होगा और ऐसा करूँगा तो ऐसा होगा। थोड़ी पढ़ावे, ठीक से करेंगे तो कोई लेगा, यह तेरी कल्पना शत-प्रतिशत खोटी है। सत्य बात है? चलता है? यह इसलिए तो कहते हैं। इसे घर का अनुभव है न! लड़कियाँ बड़ी हुई हों, कहाँ डालना? कैसे करना? यह विचारने पर पार नहीं पड़ता। यही कहते हैं कि तू चिन्ता करेगा, इसलिए वहाँ व्यवस्था हो जायेगी? क्या है? निर्णय कर। वस्तु का स्वभाव क्या है? समझ में आया? राजमलजी! क्या है? हम ध्यान रखते हैं। लड़की बड़ी हुई हो तो उसकी माँ ऐसी एकान्त में कहे, घर में यह अग्नि के... रखे हैं। झट करो। वह और कहती हो और इसे ठीक सा मिलता न हो तो वह... दाह। एकान्त में कहे, ये सांढढा जैसी हुई है, भान नहीं तुम्हें। बाहर तुम्हें कौन कहे? तुम्हें चैन से नींद कैसे आती है? वह कहे, बहुत सब करता हूँ परन्तु कुछ मिलता नहीं। धक्के खाते हैं, चक्कर लगाते हैं, एकान्त में कुछ कहें कि भाई कुछ... अब व्यर्थ की हैरान गति (भोगता है)। वह तो होना होगा, तब होगा— ऐसा कहते हैं। सम्यग्दृष्टि को यह कल्पना उसके कारण नहीं आती, कमजोरी के कारण आती है, वह स्वयं के कारण से नहीं, पर के कारण से नहीं। छोड़, छूट जाता है। समझ में आया?

यहाँ तो उसमें ऐसा लग गया, चिपट गया। भाई! वह चिन्ता, चिन्तवन करते कर्मकलंकरहित भगवान, **केवल ज्ञानादि अनन्त गुणसहित...** लो! है? १२४, समझ में आया? १२४ है न? हाँ, है अन्दर देखो! '**केवलज्ञानाद्यनन्तगुणसहितं**' संस्कृत है। कैसा है भगवान आत्मा? **केवल ज्ञानादि अनन्त गुणसहित मोक्ष को नहीं पावेगा...** लो,

इस चिन्ता में पड़ा तो केवलज्ञानादि जो मोक्षस्वरूप, **अनन्त गुणसहित मोक्ष को नहीं पावेगा, और मोक्ष का मार्ग जो निश्चय-व्यवहाररत्नत्रय उसको भी नहीं पावेगा।** दोनों बात। ऐसी कल्पना से पूर्ण केवलज्ञान आदि दशा, पूर्ण शुद्धि तो नहीं मिलेगी परन्तु इस चिन्ता में एकाकार होगा तो निश्चय-व्यवहाररत्नत्रय भी नहीं मिलेगा। देखो, समझ में आया?

मोक्ष का मार्ग जो निश्चय-व्यवहाररत्नत्रय... निश्चय वह सत्य मोक्षमार्ग है; व्यवहार, वह निमित्त मोक्षमार्ग है। निमित्तरूप से ऐसे ही विकल्प उसे होते हैं। सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत का विकल्प, उसे भगवान का कहा हुआ बारह अंग का ज्ञान, ऐसी भूमिका के योग्य विकल्प होते हैं। इसलिए उसे व्यवहाररत्नत्रय कहा है। **निश्चय-व्यवहाररत्नत्रय उसको भी नहीं पावेगा।** यहाँ तो कहते हैं, सम्यग्दर्शन नहीं पायेगा। ऐसी चिन्ता में ऐसे का ऐसा पड़ेगा तो। चिन्ता में एकाकार होकर उसे कहीं सुधार दूँ और इसे ऐसा कर दूँ, वह तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? ऐसा कहते हैं कि तेरी कल्पना के कारण बाहर में कुछ फेरफार हो, वह तेरी मान्यता मिथ्यात्व है। उससे तू सम्यग्दर्शन नहीं पायेगा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कहो, बराबर होगा यह? भगवानभाई! ये पुराने व्यक्ति हैं, भाई! सब कल्पना का जाल, उस कल्पना के जाल में ऐसा जोर दे कि इससे ऐसा होगा, समकित नहीं पायेगा - ऐसा कहते हैं। सम्यग्दर्शन मोक्षमार्ग को नहीं प्राप्त कर सकेगा। आहाहा! समझ में आया?

जहाँ बैठा हो, वहाँ कुछ सुधारना तो चाहिए न? नीचे बैठे तो ऊपर बावा-बावा निकाले। बावा होते हैं न? बावा को क्या कहते हैं? यह मकान में होते हैं न जाला, जाला। नीचे जाला, ऊपर जाला, कहीं बैठना हो तो ऊपर-नीचे सरीखा तो पढ़ना या नहीं? ऐसे जिस घर में रहना हो, उसका कुछ ठीक करना पड़ेगा या नहीं? कहते हैं कि सम्यग्दर्शन नहीं पायेगा। मात्र कल्पना में ऐसा मान बैठे कि इसने मेरी ऐसी कल्पना से यहाँ होगा। मर जायेगा मिथ्यात्व में। कहो, समझ में आया या नहीं? देखा?

निश्चय-व्यवहाररत्नत्रय... नहीं पायेगा। इसका अर्थ यह कि तू ऐसी कल्पना में जोर दे कि यह चिन्ता आयी और मैंने बराबर ध्यान रखा, मैंने बराबर विचार किया है,

हों! कि इस लड़की को यहाँ डालना, इस लड़के को ऐसे पढ़ाना, इसे ऐसा करना और यह इतना करना और यह पैसा यहाँ डालना तथा इस पैसे का ब्याज यहाँ कमाना। बहुत पैसा हो तो इतना पैसा यहाँ माल में डालना और इतना पैसा ब्याज में कमाना... ऐसी कल्पना में तेरी मान्यता भ्रमणा है। धर्मचन्दजी! क्या करना?

मुमुक्षु : तो रुपये का ब्याज नहीं कमाना।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन कमाता था? तेरा विकल्प आया, इसलिए वहाँ ब्याज उपजेगा टके का या बारह आने का, यह बात सत्य है? ऐई!

मोक्ष का मार्ग जो निश्चय-व्यवहाररत्नत्रय, उसको भी नहीं पावेगा। व्यवहार भी नहीं पावेगा। देव-गुरु-शास्त्र जो बात करते हैं कि तेरी कल्पना से कुछ नहीं होता, उसकी श्रद्धा भी तुझे नहीं होगी। समझ में आया? भगवान त्रिलोकनाथ भगवान की वाणी आगम, भगवान और गुरु ऐसा कहते हैं कि तेरी कल्पना से पर में कुछ नहीं होता। कल्पना से होता है, ऐसा मानेगा तो तुझे व्यवहारश्रद्धा भी सच्ची नहीं होगी। ऐ.. राजमलजी!

मुमुक्षु : कल्पना तो आवे न कहीं...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कल्पना आवे, उसमें जोर कितना है उल्टा! ऐसा कहते हैं। यह किसकी बात है? ऐसा कर न तो भाई! ऐसा कहे, ऐसा का ऐसा घर में कहीं बैठा रहा जाता है? यह जीवता जीव है, यह चिन्ता किये बिना रहे? इसलिए चिन्ता करे तो कुछ काम चले, ऐसे का ऐसा चलता होगा? लो! कुछ बोलना नहीं, किसी से कुछ कहना नहीं, उलहाना देना नहीं और सुधर जाते होंगे? ऐसा मूढ़ मानता है।

मुमुक्षु : ठीक भी रखना पड़े न?

पूज्य गुरुदेवश्री : ....ठीक भी किसका रखना था? लोग ऐसा कहें, वे अपने घर में थोड़ी सी सत्ता रखना, नहीं तो गिने नहीं। स्त्री, पुत्र कोई नहीं गिनेगा। कुछ कड़काई रखना, कड़काई के कारण से मानेंगे। मूढ़ है। तुझे व्यवहार श्रद्धा की खबर नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया या नहीं? यह तो आचार्यों के कथन का अन्दर मर्म है। भाई! तुझे कल्पना में इतना अधिक जोर आ जाता है? निश्चय-व्यवहारमोक्षमार्ग नहीं

पायेगा। मोक्ष तो कहाँ से है? ढीला पड़ जा, ढीला पड़ा जा, जोर न दे, इससे यहाँ होगा और वापस ऐसा कहे, कुछ भाई! ठीक हो, खाने-पीने का ठीक हो, साधन कुछ ठीक हो, लड़का कुछ कमाता हो तो निश्चिन्त होकर धर्म हो। कहते हैं, मूढ़ है। यह क्या माना तूने? लड़का कुछ कमाता हो, कुछ लड़कियाँ ठिकाने पड़ी हों, मकान, दुकान चलते हों और ये दुकान पर बैठता हो और जो कमाता हो, तद्नुसार चलता हो तो अपने को निश्चिन्तता से धर्म हो। किसने कहा तुझे ऐसा? ऐई! दुनिया सब पागल है। जयचन्दभाई!

भगवान आचार्य कहते हैं, ओहोहो! '**न प्राप्तोपि न केवलं मोक्षं निश्चयव्यवहार-रत्नत्रयात्मकं मोक्षमार्गं च जीव**' यह इसमें से दूसरा निकाला, पाठ में तो इतना है। '**मुक्खु ण पावहि जीव तुहुँ घरु परियणु चिंतंतु।**' फिर उसमें से टीकाकार ने मार्ग निकाला। '**तो वरि चिंतहि तउ जि तउ पावहि मोक्खु महंत्तु।**' आहाहा! समझ में आया? लो! पाठ में तो इतना है परन्तु उसमें से निकाला यह। शब्द तो थोड़े हों, मूल शब्द तो बहुत थोड़े होते हैं, उसमें भाव क्या है, वह टीका करके स्पष्ट करते हैं। लोग ऐसा नहीं कहते? क्या मेरी टीका करते हो? ऐसे, मेरी बात लम्बी क्या करते हो? ऐसे। वह पाठ में है, उसकी टीका है, यह सब स्पष्टीकरण है। समझ में आया?

यह साधु नाम धरावे, श्रावक नाम धरावे, फिर शिष्यों की चिन्ता करे, पुस्तक की चिन्ता करे, पाठशाला की (चिन्ता करे), मुफ्त में जायेगी तेरी चिन्ता, व्यर्थ में क्यों लगा है? कहते हैं। कुछ चिन्ता करने से पाठशाला ठीक चले, पुस्तक अच्छी रहे, ऐसा होगा? सच्ची श्रद्धा नहीं पायेगा। यह कहाँ उल्टे रवेड़े (रास्ते) चढ़ गया। रवेड़े समझे? उल्टे रेवेड़े अर्थात् उल्टे रास्ते, उल्टे पन्थ में, उल्टे प्रकार से। कहो, समझ में आया? भाई! ध्यान रखना पड़े। ऐसे कहीं... बिगड़ जायेंगे और सब खा जायेंगे ऐसे के ऐसे। ...बात है। तेरी कल्पना से ध्यान रखकर सब होते होंगे ठीक से? तेरी श्रद्धा मिथ्यात्व होती है, तेरे व्यवहारश्रद्धा का ठिकाना नहीं रहता। निश्चय और व्यवहार एक भी समकित को पायेगा नहीं।

इन गृहादि के चिन्तवन से भव वन में भ्रमण करेगा। लो! मोक्षमार्ग तो नहीं

मिलेगा और बन्धमार्ग-मिथ्यात्व में गया है। यह चिन्ता करूँगा तो ऐसा होगा और अमुक करूँगा तो ऐसा होगा। ऐसा रहे या नहीं? धीरुभाई! इन्हें लड़का नहीं तो भी बहुत चिन्ता है। लड़कियों को और सबको बहुत आमदनी हो... किसको कैसा लड़का और किसको कैसी लड़कियाँ? व्यर्थ का लेकर बैठा है। है कोई लड़की, लड़का नाम है इसमें? रजिस्टर्ड है? आत्मा को लड़का होता है? आत्मा को लड़की होगी? आत्मा लड़का-लड़की का बाप होगा? तूने यह क्या लगा रखी है?

मुमुक्षु : आत्मा को न हो, मनुष्य को तो होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा मनुष्य कब था? आत्मा तो आत्मा है। मनुष्य शरीर तो यह शरीर जड़ है, मिट्टी है। उसे होगा? जड़ को होगा?

मुमुक्षु : क्या करना अब?

पूज्य गुरुदेवश्री : ....इसलिए कहते हैं न (कि) मोह अर्थात् उनकी एकत्वबुद्धि छोड़, ऐसा। उनकी मिथ्या मान्यता छोड़ दे कि ऐसा करूँ तो ऐसा होगा और ऐसा करूँ (तो ऐसा होगा) तेरी मान्यता में बड़े शल्य हैं, मिथ्यादर्शन शल्य पड़े हैं। ऐसा यहाँ कहते हैं। मान्यता तो छोड़। होना होगा, वह होगा उसके कारण से। मुझसे होगा?

तीन लोक के नाथ सर्वज्ञदेव परमात्मा ने ज्ञान में जाना कि जो जगत की चीज़ (है उसकी) उसके कारण से व्यवस्था होती है। व्यवस्था अर्थात् अवस्था की, पदार्थ की अवस्था विशेष होना, वह व्यवस्था। सामान्यरूप से रहकर पदार्थ की विशेष अवस्था होना, वह उसकी व्यवस्था। वह व्यवस्था तेरे कारण होती है, यह मान्यता महा भ्रमणा है। धर्मचन्दजी! अब क्या करना? हमारा कुछ चलता नहीं और अच्छा बड़ा परिवार हो, लड़की हो, लड़का हो, बड़ा हो तो कुछ चिन्ता पड़े, लो! आहाहा! ऐ.. हल्का तो हो जा, कहते हैं यहाँ। छोड़ उनकी चिन्ता, होना होगा वह होगा। भवितव्य की बात आती है न?

इसलिए उनका चिन्तवन तो मत कर लेकिन बारह प्रकार के तप का चिन्तवन कर,... ऐसा। संयम का... संयम मुनिपना, अहो! अलौकिक भगवान आत्मा में स्थिरता की भावना कर। उसमें स्थिर हो, वह तेरे पुरुषार्थ से प्राप्त होता है। वह प्राप्त न हो, ऐसा

है नहीं। **इसी से मोक्ष पायेगा। वह मोक्ष तीर्थंकर परम देवाधिदेव महापुरुषों से आश्रित है...** देखो! यह तो ऐसा मोक्ष तो... है न? **तीर्थंकर परम देवाधिदेव महापुरुषों से आश्रित है...** मोक्ष तो महा चीज़ है, तीर्थंकर जिसका आश्रय करते हैं। ओहोहो! चौदह ब्रह्माण्ड, चौदह लोक को एक समय में जाने, अवधिज्ञानी ऐसे इन्द्र भी जिन्हें पूजें— ऐसे भगवान भी संयम का आश्रय करते हैं। समझ में आया?

मोक्ष, मोक्ष। **तीर्थंकर परम देवाधिदेव...** तीन लोक के नाथ देवाधिदेव, जिनके चरण सौ इन्द्र आकर पूजते हैं, ऐसे भगवान भी मोक्ष का आश्रय करते हैं। **इसलिए सबसे उत्कृष्ट है।** इसलिए मोक्ष सबसे उत्कृष्ट है। **मोक्ष के समान अन्य पदार्थ नहीं है।** कोई पदार्थ नहीं है। मोक्ष के अतिरिक्त कोई उत्कृष्ट पदार्थ जगत में नहीं है। जिसने मोक्ष का परम आदर किया, उसकी दृष्टि द्रव्य पर जाकर स्वभाव में एकाग्र होने की भावना होती है। विकल्प आवे परन्तु उसकी भावना नहीं होती और विकल्प से यहाँ लाभ होगा और यहाँ होगा लाभ, यह दृष्टि नहीं हो सकती। अद्धर से आकर उड़ जाता है और अज्ञानी को वहीं का वहीं चिपट जाता है। उसमें और उसी में चिपट जाता है। ऐसा होगा और ऐसा होगा और इससे कोई अनुकूल होगा तो मुझे भी ठीक पड़ेगा। दोनों ओर गड़बड़ उठाते हैं। यह दृष्टि छोड़ और आत्मा के ज्ञानस्वरूप का चिन्तवन कर। यह बात विशेष आयेगी....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

ज्येष्ठ कृष्ण १३, रविवार, दिनांक - २७-०६-१९६५
गाथा - १२४ से १२६, प्रवचन - १५७

परमात्मप्रकाश, दूसरे अध्याय की १२४ गाथा का अन्तिम। क्या कहते हैं? मोक्ष की बात चलती है। मोक्ष अर्थात् आत्मा की पूर्ण आनन्द और ज्ञान की दशा। **तीर्थंकर परमदेवाधिदेव महापुरुषों से आश्रित है,...** महा त्रिलोक के नाथ परमात्मा ने भी मोक्ष की भावना (भायी है), जहाँ तक मोक्ष न हो, वहाँ तक उसकी भावना उन्हें होती है। महापुरुषों को भी मोक्ष का आश्रय है, ऐसा कहते हैं। **इसलिए सबसे उत्कृष्ट है।** मोक्ष ही इस जगत में प्रगट करने की अपेक्षा से उत्कृष्ट है। प्रगट करने की अपेक्षा से उत्कृष्ट है। **महापुरुषों से आश्रित है, इसलिए सबसे उत्कृष्ट है।** क्योंकि तीर्थंकरों को भी परमात्म पूर्ण दशा ही जिनका ध्येय है प्रगट करने का, इसलिए वह मोक्ष परम उत्कृष्ट—सबसे उत्कृष्ट है। ऐसे तो प्रगट करने की अपेक्षा से बात है। द्रव्यस्वभाव की अपेक्षा से तो द्रव्यस्वभाव ही आदरणीय है। सर्वोत्कृष्ट वह तो द्रव्यस्वभाव एकरूप भगवान आत्मा कारणपरमात्मा, वही सर्वोत्कृष्ट वस्तु है। परन्तु यहाँ तो मोक्ष की बात चलती है न! मोक्ष पदार्थ—निर्मल पूर्ण दशा (उसका) महापुरुषों ने आश्रय किया है। और इसलिए सर्व से उत्कृष्ट कहा जाता है।

मोक्ष के समान अन्य पदार्थ नहीं। प्रगट करने की पूर्ण दशा मोक्ष, इसके अतिरिक्त अन्य कोई पदार्थ उत्कृष्ट नहीं है। **यहाँ परद्रव्य की इच्छा को रोककर...** अपना द्रव्यस्वभाव परिपूर्ण अपना निजस्वभाव, उसका आश्रय लेकर, परद्रव्य की इच्छा को रोककर। नास्ति से बात की है पहले। परद्रव्य के ओर की इच्छा रोककर। उसका अर्थ यह कि स्वद्रव्य की ओर के ध्येय में अटककर (रुककर)। भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण ज्ञान, दर्शन और आनन्द ऐसा उसका एकरूप स्वभाव है, उसमें ध्येय उसे करके **परद्रव्य की इच्छा को रोककर वीतराग परम आनन्दरूप जो परमात्मस्वरूप...** देखो, यह तत्त्व। वीतराग परमानन्दस्वरूप अथवा परम आनन्दरूप परमात्मस्वरूप **उसके ध्यान में ठहरकर...**

वह वस्तु का स्वरूप, परिपूर्ण स्वभाव, उसमें ध्यान में ठहरकर **घर परिवारादिक का ममत्व छोड़,...** वह छूटेगा इस प्रकार से, दूसरे प्रकार से छूटेगा नहीं। भगवान परम वीतरागस्वरूप, परमानन्दस्वरूप, निजस्वरूप, अखण्डस्वरूप के ध्येय अर्थात् उसके ध्यान से, उसका ध्येय किया अर्थात् उसमें ध्यान किया, उस द्वारा घर परिवारादि की ममता छोड़।

एक केवल निजस्वरूप की भावना करना, यह तात्पर्य है। भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण अन्तर्मुख स्वभाव एकरूप वही आश्रय करनेयोग्य है, उसकी भावना करनेयोग्य है, अर्थात् कि उसमें एकाग्रता होनेयोग्य है। कहो, समझ में आया इसमें? **आत्म-भावना के सिवाय अन्य कुछ भी करने योग्य नहीं है।** भगवान आत्मा जिसमें पूर्ण खान पड़ी है अनन्त ज्ञान, आनन्द की, उसकी भावना के अतिरिक्त अर्थात् उसमें एकाग्रता के अतिरिक्त **अन्य कुछ भी करनेयोग्य नहीं है।** ओहोहो! बहुत संक्षिप्त बात!

★ ★ ★

गाथा - १२५

आगे जीवहिंसा का दोष दिखलाते हैं — १२५ (गाथा)।

२५५) मारिवि जीवहँ लक्खडा जं जिय पाउ करीसि।
पुत्त-कलत्तहँ कारणइँ तं तुहुँ एक्कु सहीसि॥१२५॥

लाखों जीवों को मारकर... लो, एक ओर कहे कि किसी जीव को मार नहीं सकता और यहाँ कहे, लाखों जीवों को मारे। दूसरों को मारे (या) जिला सके नहीं तीन काल में। यहाँ कहते हैं कि जीव को मारकर। इसका अर्थ उसके भाव थे न जीव को मरने के? मरे, न मरे, वह कहीं इसके भाव के आधीन नहीं। मार डालने के भाव के आधीन वह सामनेवाली चीज़ नहीं। परन्तु भाव में उसे मार डालूँ, ऐसा जो उग्र भाव, उसे निमित्त गिनकर उसने मार डाला — ऐसा कहा जाता है। ओहोहो! कहाँ की कहाँ बात! एक ओर भगवान आत्मा पर जीव के मृत्यु और जीवन में कारण नहीं। दूसरे प्रकार से तो भगवान आत्मा स्वभावदृष्टि से स्वभाव और स्वभाव की दृष्टिवान को राग का भी कारण वह नहीं। समझ में आया?

पर को मारने के कारणरूप से तो आत्मा में भाव है ही नहीं। अज्ञानभाव में भी पर को मार सके, ऐसा कारणपना उसमें पर्याय में भी नहीं। समझ में आया? क्या कहा? परजीव को मारे, ऐसी पर्याय वहाँ हो — मरे, उसका कारणपना पर्याय में, पर्यायधर्म में भी नहीं। पर्याय में राग-द्वेष को करे, उसका अज्ञान कारण होता है। और जब पर मरे, तब इसे निमित्त कहा जाता है। यह वस्तु की मर्यादा। पर को मारने का कारण तो राग भी नहीं। क्योंकि वह तो उसके पर्याय के काल में उसकी पर्याय पूरी हो, तब राग—मारनेवाले के परिणाम को निमित्त कहा जाता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब बातें समझने योग्य है। यही बात कही जाती है, देखो न यहाँ। मारकर अभी तो चूरा कहेंगे दूसरी गाथा में तो। '**मारिवि चूरिवि जीवडा**' क्या कथन किस नय का है, उसे समझना चाहिए न!

यहाँ तो यह मारने के पाप के परिणाम करता है, उन पाप के परिणाम से तुझे तो दु:ख होता है, भाई! वे पाप के भाव छोड़। यह यहाँ उपदेश की पद्धति में आया है। बाकी धर्मी जीव अर्थात् कि वस्तु का स्वभाव और उसकी दृष्टिवन्त दोनों, पर के मरण के कारणरूप से भी नहीं और उसके मरण में राग का निमित्त हो, उस राग के कारणरूप भी नहीं। समझ में आया? वह तो निर्मल पर्याय उसके कारणरूप से तो द्रव्य है कि जहाँ अन्तर ध्येय दृष्टि पड़ी है। उसे स्वभाव ऐसा है वह। धर्मी की दृष्टि द्रव्य अर्थात् एकरूप स्वभाव के ऊपर होने से वस्तु का स्वभाव राग का कारण नहीं, तो धर्मी की दृष्टि भी राग के कारणरूप नहीं हो सकती। ओहो! समझ में आया? अब इतनी बात उसमें यह बात इकट्ठी समझना चाहिए न, किस नय की अपेक्षा से है। भाई! यह भी सच्चा और वह भी सच्चा। दोनों सच्चे किस प्रकार से होंगे? दूसरे जीव को जिलाने का माने, वह मिथ्यादृष्टि 'आत्महनो भवंति' ऐसा कहते हैं भगवान कुन्दकुन्दाचार्य। दूसरे जीव को मार सकता हूँ, जिला सकता हूँ, यह मान्यता आत्मा का घात करनेवाली मिथ्यात्व की मान्यता है। समझ में आया?

और दूसरे प्रकार से वस्तु का स्वभाव अकार्यकारण से भरपूर स्वभाव पूर्ण है।

ऐसा भगवान आत्मा राग का कारण हो, ऐसा उसमें स्वभाव ही नहीं और राग से आत्मा में मोक्ष के मार्ग की पर्याय हो और राग कारण हो, ऐसा आत्मा में स्वभाव नहीं। सम्यग्दृष्टि जीव राग के कारणरूप से नहीं और राग को कारण बनाकर निर्मल पर्याय हो, ऐसे कार्यरूप भी वह नहीं। ओहोहो! कहो, शशीभाई! अब यहाँ यह बात। भाई! किस नय का कथन है, क्या अपेक्षा है, उसे न जाने (और) यह भी सच्चा, मार सकता है, यह भी सच्चा और नहीं मार सकता, यह भी सच्चा। तो उसमें निर्धार क्या आया? यह अनेकान्त का ऐसा रूप होगा?

मुमुक्षु : भगवान ने दो नय मानने का कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दो नय कहा न। ऐसा एक नय है कि जिसमें राग होता है और राग का लक्ष्य पर में जाता है, ऐसा एक व्यवहारनय है। उसे जाननेयोग्य है। अज्ञानी को तो उसके ऊपर ही दृष्टि है विकार के ऊपर। उसकी यहाँ तो अभी बात चलती है। विकार के ऊपर ही दृष्टि है, इसलिए पर को मारता है, ऐसा उपचार से कथन किया जाता है। समझ में आया?

लाखों जीवों को मारकर हे जीव, जो तू पाप करता है,... लो! **पुत्र, स्त्री वगैरह के कारण...** निमित्त, यह निमित्त। पुत्र, स्त्री इत्यादि के कारण से। देखो, उन्हें निमित्त कारण (कहा)। क्योंकि उसका—अज्ञानी का लक्ष्य पर में है, विकार करने में है और विकार करने में फिर निमित्त कारण सामनेवाले को बनाता है कि भाई यह पुत्र, स्त्री, परिवार के लिये करते हैं, क्या करें?

मुमुक्षु : आश्रय में पड़े हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आश्रय में ऐसा कि क्या करें, भाई! संसार में पड़े, यह सब करना पड़ता है। ऐसा अज्ञानी मानता है। उसकी दृष्टि से यहाँ कथन किया है।

उसे **कारण उसके फल को तू अकेला सहेगा।** करेगा तू उसके कारण से और फल तुझे अकेले को सहन करना पड़ेगा। कहो, बराबर है?

भावार्थ :- हे जीव, तू पुत्रादि कुटुम्ब के लिये... देखो, ऐसा है न। पाठ है सही न, इसलिए निमित्त से वहाँ बात की है। और संस्कृत में भी ऐसा पड़ा है अन्दर में,

देखो! '**पुत्रकलत्रममत्वनिमित्तोत्पन्न**' ऐसी संस्कृत उस ओर है। '**पुत्रकलत्रममत्व-निमित्तोत्पन्नदृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षा**' इसलिए यहाँ मिथ्यादृष्टि की ही बात है। जिसकी दृष्टि विपरीत है और राग का मेरा कार्य है और राग करता हूँ अर्थात् दूसरे को मैं मार सकता हूँ, ऐसा वह मानता है। परन्तु भाई! तेरे ऐसे परिणाम पुत्र, कलत्र आदि के कारण **हिंसा,...** के भाव, झूठ के भाव, चोरी के, विषय के, परिग्रहादि में मान, कपट, लोभ आदि पर के निमित्त से **अनेक प्रकार के पाप करता है, तथा अन्तरंग में रागादि विकल्प रहित ज्ञानादि शुद्ध चैतन्य प्राणों को घात करता है,...** लो! बाहर में घात करता है, यह निमित्त से कहा और अन्तरंग में जो चैतन्य शुद्ध प्राण, है न? शुद्ध चैतन्य ज्ञान, दर्शन, आनन्द की पर्याय निर्मल प्रगट होना चाहिए, ऐसे जो प्राण उन्हें राग-द्वेष की एकताबुद्धि से उसके चैतन्य के प्राण का घात करता है। समझ में आया?

भगवान ज्ञानमूर्ति प्रभु, अनाकुल आनन्द से पूर्ण भरपूर ऐसा स्वभाव। अरे! अकार्यकारण के गुण से पूर्ण भरपूर कि जो आत्मा का स्वभाव राग को कारण नहीं होता, ऐसा स्वभाव (होने पर भी) उस राग का कारण होना, ऐसा मानकर चैतन्य के भावप्राण की हिंसा करता है। समझ में आया? बहुत परन्तु मार्ग इसका अन्तर में निराला मार्ग। भगवान पूरा चैतन्यपिण्ड प्रभु पर को कारण न हो और पर से कार्य न हो, ऐसा तो उसका वास्तविक सत्यस्वरूप है। वल्लभदासभाई! कहो, स्त्री, पुत्र को कारण हो और स्त्री, पुत्र रहे, ऐसा नहीं आत्मा में। तथा राग को कारण हो, ऐसा आत्मा के स्वरूप में कोई गुण नहीं। तथा राग से आत्मा में शान्ति हो, राग कारण और शान्ति धर्म-कार्य, ऐसा आत्मा का कोई गुण नहीं। उसमें अकार्यकारण नाम का गुण भगवान आत्मा में पूर्ण ठसाठस सामर्थ्य से भरपूर है। ऐसा स्वभाव दृष्टि में न लेकर पर के निमित्त से विकार करके चैतन्य के भावप्राण जो पर को कारण न हो और पर से जो प्रगट न हो, ऐसे चैतन्य के भावप्राण को राग-द्वेष की पर्याय द्वारा उनका घात करता है। यहाँ एकत्वबुद्धि की मिथ्यात्व की बात है। समझ में आया? कहो, समझ में आया?

चैतन्य भावप्राण ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अथवा वह अकार्यकारण नाम का भी एक आत्मा का त्रिकाल स्वभाव पड़ा है, उसे वह घातता है। वह राग और द्वेष करते हुए

दूसरे को मारूँ और लड़का / पुत्र, लक्ष्मी के लिये यह करता हूँ, ऐसी मान्यता मिथ्यात्व की है, उस मिथ्यात्व के सम्बन्ध में आया हुआ राग-द्वेष वह चैतन्य के भावप्राण— ज्ञानानन्दस्वरूप और अकार्यकारण नाम का जो शुद्ध गुण, उसे वह घातता है।

मुमुक्षु : घातता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रगट होता है नहीं शुद्ध, इसलिए अशुद्ध प्रगट करे, इसका नाम घातता है। क्या ?

फिर से। जो आत्मा अकार्यकारण गुण से भरपूर, शुद्ध आनन्दकन्द से भरपूर, उसकी अवस्था स्वभाव के लक्ष्य को कारण बनाकर कार्य में निर्मलदशा होना, वह उसका अहिंसा, वास्तविक स्वभाव है। ऐसे स्वभाव को प्रगट न करके राग-द्वेष से दूसरे को मारता हूँ, ऐसी जो राग-द्वेष के साथ मिथ्यात्व की एकता, उसके कारण सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र शुद्ध भावप्राण प्रगट होना चाहिए, उसका वह नाश करता है। अर्थात् उत्पन्न नहीं होने देता और मिथ्यात्व को उत्पन्न करता है। यह और भावप्राण कैसे घात करे ?

भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य अनाकुल आनन्द का कन्द प्रभु है। वह तो तीन काल, तीन लोक में किसी विकल्प को कारण हो या विकल्प को कारण बनावे, यह उसके वस्तु के स्वरूप में ही नहीं। तथापि पर के कारण से मैं मारता हूँ और वह भाव है तो पर को मार सकता हूँ, ऐसा जो मिथ्यात्व, राग-द्वेष का भाव वह चैतन्य के शुद्ध प्राण की अवस्था नहीं होती, जो उसका जीवन है, उस जीवन को उत्पन्न करता नहीं, इसलिए (उस) जीवन को मारता है। कहो।

मुमुक्षु : जीवन को मारता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, जीव को मारता है। प्राण है न यहाँ प्राण चैतन्य ? कहो, समझ में आया इसमें ?

भगवान आत्मा का जीवन वह तो शुद्ध अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसको कारण बनाकर अर्थात् कि उसका बारम्बार अन्दर में लक्ष्य करके जो कार्यरूप परिणमन निर्मल शान्ति और मोक्ष के मार्गरूप या मोक्षरूप हो, वह उसका वास्तविक जीवन है। वह जीव

का जीवन है, वह जीव का जीवत्व है। उस जीव के जीवन को उत्पन्न न करके राग और द्वेष के परिणाम की एकताबुद्धि, वह राग और द्वेष का यह स्वभाव कारण है, ऐसा मानकर, स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति को उत्पन्न न करके, उस प्राण का घात करके मिथ्यात्व और राग-द्वेष को उत्पन्न करता है, ऐसा कहते हैं। बहुत लम्बा, भाई! कहो, जयन्तीभाई! आहाहा! देखो न, अभी तो आगे दृष्टान्त देंगे।

चैतन्य प्राणों का घात करता है,... प्राणों का घात अर्थात् त्रिकाली का घात होता है? त्रिकाली वस्तु का घात होता है? वर्तमान प्रगट पर्याय करता नहीं, ऐसा उसका जीवन है, उसके बदले मिथ्यात्व और राग-द्वेष उत्पन्न करके उस प्राण की पर्याय प्रगट होना, उसका घात करता है। उस पर्याय का घात करता है। वस्तु तो वस्तु है। पर्याय प्रगट थी और घात करता है, ऐसा नहीं। यह चैतन्य ज्ञायकस्वभाव शुद्ध आनन्दकन्द जिसके लक्ष्य से अर्थात् जिसे कारण बनाकर कार्य में वीतरागता आवे, वही उसकी स्वरूप की जाति और स्वरूप है। ऐसा दृष्टि में न रखकर पुण्य और पाप के स्वभाव के साथ एकत्व मानकर और दूसरे को मारता हूँ, ऐसा मानकर अपनी शान्ति के प्राण को उत्पन्न (अर्थात्) जीवन नहीं करता, इसलिए उसे मार डाला, ऐसा कहा जाता है। कठिन बात, भाई!

अपने प्राण रागादिक मैल से मैले करता है,... देखो! दूसरा क्या करे यह? अपनी चैतन्य शुद्ध निर्मल पर्याय होनी चाहिए, उसे मलिनरूप से करके मैला करता है। यह कर सकता है अज्ञानभाव से। पर को मार सकता है, यह तो व्यवहार का कथन उसे बोध के उपदेश में (कहते हैं कि) भाई! ऐसे पाप करके तुझे अकेले को भोगना पड़ेगा, हों! यह तो सब जिसके लिये कर, वह तेरे साथ नहीं आयेंगे।

मुमुक्षु : इस प्रकार से वापस समझे सही।

पूज्य गुरुदेवश्री : समझना हो तो समझे। उसमें समझे सही, इसका क्या अर्थ? इसे समझना हो तो समझे।

मुमुक्षु : वह तो अपने ऊपर वजन आवे तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : वजन क्या, यह शैली है। पाप का भाव करे तो उसका फल

तुझे भोगना पड़ेगा, ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा! कठिन बात, भाई!

वीतराग मार्ग, सुन्दर मार्ग जिसे मोक्ष आश्रय करता है। देखा! मोक्ष जिसका आश्रय करे तीर्थंकर आदि। निन्दा करे। आता है न नियमसार-नियमसार। ऐसे सुन्दर मार्ग की कोई ईर्ष्या से निन्दा करे, इससे तू सत्य मार्ग की भक्ति छोड़ना नहीं, हों! अरे! ऐसा तत्त्व! ऐसा तत्त्व मैंने जाना-माना? और वह सत्य ही यह है और लोग इतने अधिक क्यों विरोध और निन्दा करते हैं? बापू! वे करे, परन्तु तू सत्य के मार्ग की जो तुझे रुचि, भक्ति हुई है, उसे छोड़ना नहीं। उसके तो माननेवाले बहुत हों अथवा ऐसी बात की कद्र करनेवाले बहुत हों, ऐसा नहीं होता। आहाहा! मुझे... ओहोहो! मुनियों को अणादेय, दुर्भाग्य, अयशकीर्ति के उदय के (कारण) घाणी में पीले। ओहोहो! ऐसा कहा जाता है। मुनि को पीलते हैं वहाँ? किसे पीले? भाषा क्या कहना? इस शरीर में घाणी का निमित्त होता है, शरीर से भिन्न चैतन्य भाव भासित हुआ है, इससे उसे कुछ भी पीड़ा का, दु:ख का अंश भी उत्पन्न नहीं होता। उस काल में भी द्रव्य के ध्येय से जो दृष्टि पड़ी है, भगवान को कारण बनाकर, निजस्वरूप को कारण बनाकर उस समय में भी निर्मल कार्य हुआ करता है। घाणी के पीलने के काल में भी कार्य कारण से हो रहा है। समझ में आया?

'हरि का रे मारग है शूरों का, यह कायर का नहीं काम जो ने, प्रभु का रे मारग है शूरों का। प्रथम पहले रे मस्तक रखकर वळतुं लेना नाम जो ने।' छोड़-छोड़ दुनिया की बात। भगवान का शरण लेना हो तो भगवान तीन लोक का नाथ परमात्मा स्वयं है, उसकी शरण लेने के लिये दुनिया की लज्जा छोड़ दे। दुनिया क्या कहेगी? कैसे गिनेगी? यह बात उसमें असर करती नहीं। समझ में आया? इसलिए यहाँ आचार्य महाराज कहते हैं कि भाई! यह प्राण चैतन्य के, अरे भगवान! पूरी जीवित ज्योति पड़ी है न आत्मा। जीवित ज्योति। उसकी पर्याय में ऐसी चैतन्य के सत् के अंश से सत् का शरण निकलकर शान्ति और श्रद्धा, ज्ञान की रमणता, वह उसका जीवन। समझ में आया? ऐसे प्रगट न करके, भगवान! यह मिथ्यात्व और राग-द्वेष की एकत्वबुद्धि से

तेरे प्राण अभी घात होते हैं। और उसमें घातिकर्म तो बँधते हैं, परन्तु अघाति बँधते हैं उसके फल प्रतिकूल तुझे भविष्य में कठोर पड़ेंगे। ऐसे दो ओर से बात करनी है न। देखो, कहेंगे।

बाह्य में अनेक जीवों की हिंसा करके... करके अर्थात् वह निमित्त होता है न। **अशुभ कर्मों को उपार्जन करता है,...** लो! भावप्राण घात होते हैं, घातिकर्म बँधते हैं। भावप्राण घात होने के साथ दूसरे को निमित्त होने का भी वह विकल्प है घात का, उससे अशुभ कर्म बँधते हैं, घाति अशुभ और अघाति भी अशुभ। **उपार्जन करता है, उनका फल तू नरकादि गति में अकेला सहेगा।** उनका फल तो नरक गति में अकेला तुझे सहन करना पड़ेगा। आहाहा! संयोग से बात करते हैं, हों! नरक गति में भोगने का भाव तो है वहाँ। वहाँ उस भाव को भोगता है, यहाँ भाव करता है। परन्तु जैसे पर के निमित्त से किये, वैसे पर के संयोग में जायेगा तब तुझे ... चिल्लाहट मचा जायेगा अन्दर दुःख-दुःख। तू भगवान आत्मा का शरण छोड़कर और यह सब भाव तुझे अकेले सहन करने पड़ेंगे, भाई! तुझे कठोर पड़ेंगे। पहले आ नहीं गया? थोड़ा प्रतिकूल, प्रभु! सहन करना तुझे मुश्किल लगता है तो महान दुःख के कारणरूप भाव को तू किसलिए सेवन करता है?

मुमुक्षु : दूसरा कोई भागीदार नहीं होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : अब यह कहो तुम। अब इसमें कितने दिन से सुनते हो। करो निर्णय। जेचन्दभाई! करो बापू निर्णय। स्त्री और प्रकाश वहाँ मदद करने आयेंगे या नहीं? यह पाप इतने-इतने अभी करते हैं वे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : करे क्या? धूल करे? वह भाव उसके पास रहा। क्या करे वह? यह कहते हैं, स्त्री बहु... वरना मैं मर जाता। और कल ऐसा करके जीवित रखा तुमने। जेचन्दभाई! कौन जीवित रखे, बापू! आहाहा! अरे! देह का जीवन, वह कहीं जीवन है? देह का जीवन, वह जीवन है? अरे! विकार का जीवन, वह जीवन है? देह का तो कहीं रह गया। विकार के जीव को जीवन, वह कहीं जीवन है?

भगवान आत्मा आनन्दकन्द का कारण बनाकर... देखो, द्रव्य को, कल आया था न? असाधारण अनादि-अनन्त ज्ञान को कारण बनाकर अर्थात् उसका अर्थ कि द्रव्य के ऊपर लक्ष्य जाने से वह कारण हुआ, कार्य दशा में आवे। भाग-बाग कौन देता है बीच में? वे व्यक्ति कहते उस वींछिया में। वह बड़ा तालाब है न, भाई! मूलचन्दभाई थे। लुहार थे न मूलचन्दभाई। पानाभाई के काका। बात चलती थी। (संवत्) १९७८ के वर्ष की बात है। फिर उस तालाब में पानी आवे न तो ताँबे के चद्दर आड़े डाले। इसलिए मछलियाँ बाहर न निकल जाये। वरना बाहर निकल जाये तो मर जाये। बड़े-बड़े ताँबे के चद्दर आड़े छिद्रवाले (रखे)। अर्थात् मछली निकले ऐसा छिद्र नहीं। उन महाजन लोगों ने डाला हुआ। फिर मूलचन्दभाई ने कहा कि महाराज! यह हमने चद्दर डाले, वे जीव वहाँ रहे, उसका पाप हमको लगेगा या उसमें हमको कुछ धर्म होगा? ऐसा प्रश्न। मूलचन्दभाई थे मूलचन्दभाई। धरमशी का पिता। मैंने कहा, देखो भाई! तुम्हारा भाव क्या है? कि जीव बाहर न निकले और मर न जाये। तुम्हारा भाव इतना शुभ इतनी बात। इसलिए वहाँ कोई जीव मरे या पड़े, तुम्हारा हेतु है? परन्तु छोटे छिद्र हों तो जीव बाहर न निकले और बहुत निकल जाये तो फिर बाहर यहाँ नहीं आ सके, मर जायेंगे। तुम्हारा हेतु क्या है इसके ऊपर, परिणाम के ऊपर फल है। बाकी बाहर हो, उसके ऊपर कुछ है नहीं। बुजुर्ग-वृद्ध थे। गृहस्थ व्यक्ति और सब... ऐसा (संवत्) १९७८ में प्रश्न हुआ। लोगों को बाहर...

और उस समय में आलोखाचर है न, उसका बड़ा दरबार था। फिर वह तालाब सूख गया और मछलियाँ लाखों। तालाब में पानी रहा नहीं और मछलियाँ लाखों मछलियाँ, मगरमच्छ, इतनी-इतनी मछलियाँ। दरबार कहे कि महाजन लोगों को ले जाना हो तो ले जाओ। वरना मैं खाद में डाल दूँगा। खातर समझते हो भाई! पण्डितजी! खाद-खाद। खेत में खाद करूँगा। और मछलियाँ लाखों। वींछिया के महाजन जोरदार वहाँ। दरबार भी नहीं कर सके इनके उस बिना। इनके विरुद्ध नहीं कर सके। भाई महाजन को बुलाओ। वींछिया का महाजन जोरदार है। वह कहे कि तुम्हारे ले जाना हो तो ले जाओ, वरना मैं खेत में डाल दूँगा। भाई! लोगों ने गाड़ा के गाड़ा भरकर उन बड़े पानी के कलश, बड़े कलश बड़े जोरदार, भर-भरकर कोई कुँआ होगा कुँआ मीठा

पानी। वहाँ से (लाकर) डाला। जैसे अन्दर डाला, इकट्ठे वहीं के वहीं मर गये। वह पानी प्रतिकूल पड़ा। और महाजन लोगों को त्रास... त्रास... त्रास... अरर्र! भाई! कुछ तुमको मारने के भाव थे? मारने के भाव नहीं थे। इस प्रकार से। क्योंकि पानी प्रतिकूल पड़ा। लाखों और गाड़ा के गाड़ा बड़े-बड़े पानी भर डाले, कुँआ में से भरकर लावे। डाले इकट्ठे उल्टे हो जाये। जैसे डाले वहाँ उल्टे हो जाये। मर गये। परन्तु वह तो परिणमन में उसका क्या है? उन्हें अनुकम्पा का भाव था कि यह न मरे, इतनी बात है। इस भाव के ऊपर फल है या वे मर गये, उन्हें मारने का भाव था उनको?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो भाई संसारी की... यही कहते हैं कि तेरे भाव में क्या है? भाव के ऊपर फल है या कोई बाहर की क्रिया के ऊपर है? वह तो क्रिया होनेवाली, तत्प्रमाण होने की है। उनका आयुष्य नहीं था। बहुत बचाने का भाव किया। उनका आयुष्य ही नहीं था, उस स्थिति में वहाँ पूरा होने का था। कौन करे उसे? त्रास हो गया लोगों को, हों! कितनों को तो खाना भावे नहीं। अरर्र! हमारे हाथ से यह हुआ। भाई! किसी के हाथ से नहीं हुआ, बापू! तुम्हारा भाव तो जीव को बचाने का था। शुभभाव है, अनुकम्पा है।

यहाँ तो कहते हैं कि अरे! **कुटुम्ब के लोक कोई भी तेरे दुःख के बटानेवाले नहीं हैं,...** है?

मुमुक्षु : मदद तो करते हैं न।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी मदद करते नहीं। कौन कहता है मदद करे?

तू ही सहेगा। भाई! तेरे चैतन्य के प्राण की हिंसा मिथ्यात्व,... यहाँ तो मिथ्यात्व की ही बात है। राग में एकत्वबुद्धि की और पर को मार सकता हूँ, बापू! ऐसे तेरे भाव का फल तुझे बहुत कठोर पड़ेगा। वे दूसरे आयेंगे नहीं। सब खड़े रहेंगे बातें करते-करते।

मुमुक्षु : भाग पड़ता खाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाग पड़ता खाते हैं वे तो वहाँ। यहाँ भाग पड़ता होगा? भाग पड़ता भी नहीं खाये। ऐसे चार-पाँच डिग्री का बुखार आया और दूधपाक और लड्डू बनाये हों, पन्द्रह जनें-मनुष्य। भाईसाहब! यह नहीं खाना। चल-चल भाई खा न! भाग पड़ता खा न! पाँच डिग्री का बुखार हो उस समय। चल भाई। बापू, खाओ-खाओ तुम खाओ। यह सब बातें समझने जैसी। जेचन्दभाई!

मुमुक्षु : रख रखे।

पूज्य गुरुदेवश्री : रखे क्या? लड्डू रखकर करे क्या? लड्डू तीसरे दिन, चौथे दिन मिट जाये तो उसे मूँग का पानी पहले दे। लड्डू किसका देते थे उसे? समझ में आया? यह सब बातें समझने जैसी है। कहते हैं कि पुत्र मैं स्त्री, पुत्र के लिये मर गया ऐसा का ऐसा। पाप तूने किया और भोगना तुझे पड़ेगा। ऐसे पाप की बात है, हों! वह क्रिया तो हो अलग।

श्रीजिनशासन में हिंसा दो तरह की है। देखो! **एक आत्मघात, दूसरी परघात। उनमें से जो मिथ्यात्व, रागादिक के निमित्त से...** देखो, उल्टी मान्यता (अर्थात्) वस्तु का वास्तविक स्वरूप, उसका भान नहीं होता। अवास्तविक रीति से श्रद्धा को उल्टी उठाना और उसके साथ उस प्रकार के राग-द्वेष करके **देखे, सुने, भोगे...** जो कुछ देखा हुआ है, सुना हुआ है और अनादि से भोगा है राग-द्वेष का, ऐसे **भोगों की वांछा...** आत्मा के आनन्द की वांछा तो नहीं। भगवान आत्मा अनाकुल आनन्दकन्द की दृष्टि हो तो पर के लिये करूँ, ऐसा भाव उसे हो नहीं सकता। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को घर में राग आवे, वह पर के लिये करता नहीं। अन्दर धड़क खा जाये, पुरुषार्थ काम करता नहीं अन्दर जाने में। अस्थिरता के कारण से वह आता है। पर के कारण से आता है, ऐसा नहीं। तथा वह आता है, वह मेरे स्वभाव के साथ एकत्व है, ऐसा भी नहीं। इसलिए पृथक् रखकर जो राग होता है, वह बहुत ही निर्बल और पतला होता है। और एक (एकत्व) करके जो राग और द्वेष करता है, उसे बहुत तीखा अनन्तानुबन्धी और मिथ्यात्व का राग-द्वेष होता है। समझ में आया?

देखो, **तीक्ष्ण शस्त्र...** देखो, आहाहा! भगवान आत्मा चैतन्य के आनन्द के

प्राणवाला स्वरूप जिसका, उसमें वास्तविक तत्त्व की दृष्टि बिना, पर को मारूँ, पर को उड़ाऊँ, पर को जिलाऊँ, पर को रखूँ, मेरी इज्जत रहे। समझे न? नाम तो रहेगा, पाप भले किया, परन्तु नाम तो रहेगा। ऐसे नाम की भावना, इज्जत का भाव, कीर्ति का भाव, उसके लिये पाप के परिणाम करता है। कहते हैं कि वह तीक्ष्ण शस्त्र से तेरे आत्मा की शान्ति के प्राण लुटते हैं। कहो, बराबर है? **तीक्ष्ण शस्त्र उससे अपने ज्ञानादि प्राणों को हनना,...** देखो, **वह निश्चय हिंसा है,...** देखो, भाई! दो की चर्चा चली थी न, नहीं? कैलाशचन्दजी को और उनको। वह कहे, नहीं बाहर की हिंसा वह हिंसा। यह कहे कि भाई! हिंसा तो यह निश्चय की हिंसा हिंसा है, भले वह व्यवहार कहलाये। ऐई! कितना ही लेखन था।

मुमुक्षु : उन्हें बहुत विरोध।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत विरोध। अरे भगवान! ऐसा भी हो कोई। शब्द तू ऐसा बोला और तू शब्द ऐसा बोला। भाई! निश्चयहिंसा, वही हिंसा है। व्यवहारहिंसा तो उपचार से यह हुआ, इसलिए निमित्त से कही जाती है। पर को कौन मारे? कौन जिलावे? पर से मरे कौन और जीवे कौन? आहाहा! वीतरागी जीवन। 'तेरा जीवन प्रभु तेरा जीवन।' आया था या नहीं? नेमिनाथ भगवान। 'जीना जाना प्रभु तूने जीवन।' आहाहा! जिसने राग को पृथक् रखकर, संयोग तो कहीं पृथक् रहे हैं और स्वभाव को अपने साथ अपृथक् करके, एक करके और जो कल्याण के कार्य हो रहे हैं, वह जीवन है। समझ में आया? ऐसे जीवन को तू घात कर डालता है। वह निश्चयहिंसा है। भावप्राण (घात होते हैं)।

अपने आता नहीं, उस स्तुति में नहीं आता? 'संसारी जीवणा भावमरणो टालवा करूणा करी, सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर तें संजीवनी।' यह स्तुति आती है न सवेरे समयसार की। 'संसारी जीवणा भावमरणो टालवा करूणा करी, सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर तें संजीवनी।' यह संजीवनी। चिदानन्दस्वरूप शुद्ध आनन्द की दृष्टि कर और उसमें एकाग्र हो, वह तेरा जीवन है, वह संजीवनी-औषधि है। समझ में आया? भगवान ने, कुन्दकुन्दाचार्य सन्तों ने यह स्वरूप कहा, नाथ! तूने सरिता बहायी।

संजीवनी नदी बहायी पूरी। जगत को जीवित किया। मर गये थे वे। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, ऐसी जो हिंसा **रागादिक की उत्पत्ति वह निश्चय हिंसा है।** लो! यह पुरुषार्थसिद्धि उपाय में आता है। यहाँ नीचे कहेंगे दोनों। जयधवल का दृष्टान्त देंगे नीचे। लो, यह जयधवल में (बाह्य) हिंसा, वह निश्चय की हिंसा कही है। व्यवहार के ग्रंथ वस्तुस्थिति है। यह आचार्य, सन्त, मुनि हैं। ये भावलिंगी सन्त हैं।

मुमुक्षु : व्यवहार कहा, इसलिए उसमें से निश्चय अर्थ निकालने का है?

पूज्य गुरुदेवश्री : हो, निकालना चाहिए कि भाई, यह व्यवहार का कथन है। मुनि हैं वीरसेनस्वामी। क्षयोपशम का समुद्र प्रस्फुटित हो गया। समझ में आया? जिनसेन आचार्य भले उस समय उन्हें कथा बनाने का विकल्प आया। आदिपुराण। वीतरागी मुनि हैं अन्दर। समझ में आया? किसी को कथा ... हो, उसमें निमित्त का विकल्प हुआ, किसी को द्रव्यानुयोग का विकल्प (हुआ)। उसमें वस्तु चारों ही अनुयोग में सार तो वीतरागता है। समझ में आया? बनाया उस कथा को। आदिपुराण में ऐसी। यह सुलोचना, जयकुमार। लोगों को शंका पड़े कि मुनि ऐसी वार्ता लिखे! मुनि होकर ऐसी वार्ता? यह स्त्री और पुरुष का वर्णन! उनके भोग की बातों का वर्णन, उनके अवयवों का वर्णन। अवयवों का क्या है? केवली तीन काल-तीन लोक जानते हैं। वह क्या राग का कारण होता है? लोगों को शंका पड़ी। यह मुनि यह क्या (लिखते हैं)?

एक बार खड़े-खड़े मुनि सभा में उपदेश करने लगे। ऐसा उपदेश वह ऐसा उपदेश यह विषय और भोग के जीव कैसे होते हैं? ऐसा वर्णन करते हुए सुननेवाले को वीर्य छूट गया। यह (मुनि) अडिगरूप से खड़े हैं अन्दर से। अरे! शब्दों को ज्ञेय बनाकर... शब्द तो ज्ञेय हैं। शब्द सुनकर तुझे राग होता है? और शब्द ऐसे निकले, इसलिए वहाँ राग का कारण था, इसलिए निकले, ऐसा है? वर्णन स्त्री आदि का आवे तो ज्ञेय का, पदार्थ का वर्णन ऐसा... ऐसा... ऐसा होता है। इसलिए उन ज्ञेय पदार्थों का ऐसा वर्णन, इसलिए उन्हें राग ही था। किसने कहा यह? समझ में आया? ऐसी कथा वर्णन की भोग की (कि) सुननेवाले का वीर्य छूट गया। स्वयं खड़े रहे। ... इसका नाम

दिया न कुछ, क्या कहा ? भगवत जिनसेन, भगवत जिनसेन। कथा, वह मुनि तो अनेक बातें करे। यह तो ऐसा विकल्प आया तो यह बात आती है। क्या है परन्तु ? वे तो विकल्प के भी कर्ता नहीं। उन्हें कथा का योग हो वहाँ, किसी को द्रव्यानुयोग का हो, किसी को चरणानुयोग का हो। ऐसे बहुत प्रकार हैं। तो क्या है ? वह परमाणु की पर्याय उस (प्रकार से परिणमती है)।

मुमुक्षु : .... आवे किसी को।

पूज्य गुरुदेवश्री : .... परन्तु आ जाये किसी को। आया न पूज्यपादस्वामी को। वे पूछने जाये तो कहते होंगे ? चल-चल। आ गया जंगल में ... ध्यान पड़ने पर नजर पड़ गयी कहीं। ओहो! यह तो इस पत्ते का यह होता है और इसका यह रस। लिख डाला। यहाँ क्या है पूछने आवे तो ? हम वैद्य हैं ? और वह भी कोई ऐसे अन्यमति के वैद्यों को अभिमान होता हो कि हमको आता है। जैनों के साधु-बाबा को क्या भान ? यह हम ऐसा जानते हैं, यह जड़ी-बूटी फलानी, फलाना। ऐसा विकल्प आ गया तो कह दिया। यहाँ हमारे लेना-देना क्या है ? पुस्तक बनी है, हों! तो क्या है ? वह वस्तु है उसमें कुछ... वह तो कारण ऐसा अभिमानियों को अभिमान होता हो तो ऐसे प्रसंग में ऐसा बन जाता है। तो क्या है ? वे वीतरागी मुनि हैं। कठिन बातें, भाई! समझ में आया ? शब्दों में विकथा है ? देखो न! शब्दों में विकथा है ? विकथा अर्थात् ? स्त्री की कथा करना नहीं। अर्थात् क्या ? उसकी व्याख्या क्या ? स्त्री के अवयवों की बात भाषा से नहीं करना, ऐसा इसका अर्थ है ? और भाषा में आवे, इसलिए यहाँ राग हो जाता है ? स्त्री की कथा का अर्थ कि ऐसी वार्ता के समय राग की आसक्ति हो जाये, वह कथा, उसे विकथा कहते हैं। वाणी की विकथा है, वह तो जड़ है, मिट्टी है। राग कथा है। वाणी को क्या है ?

यह तो बहुत चर्चा चली थी ८७ में, भाई! आम्बाजी थे न। वे बहुत विकथायें बनावे। तब कहे, शास्त्र में ऐसा चला है न, तुम क्यों कहते हो ? भाई! वह तो शास्त्र में चला है, वह तो वीतरागभाव में वह बात निकली है और तुम दुनिया को प्रसन्न करने के लिये कथा बनाते हो, वह राग के लिये बनाते हो। वाणी में विकथा का स्वरूप नहीं, राग

में विकथा है, विपरीत भाव को विकथा कहते हैं। वाणी निकले तो वाणी तो सब स्पष्टीकरण करे। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, वास्तविक चीज़ को समझे बिना उसमें कहीं उल्टी खतौनी कर डालता है, श्रद्धा-ज्ञान में उसे हिंसा कहा जाता है। और **रागादिक की उत्पत्ति, वह निश्चय हिंसा है।** और वह निश्चय समझे न? **क्योंकि इन विभावों से निज भाव घाते जाते हैं।** कौन सा भाव? त्रिकाली? त्रिकाली का धात होता होगा कभी? गुण तो त्रिकाल ऐसे के ऐसे पड़े हैं, उनका घात नहीं होता। ऐसे पर्याय प्रगट होनी चाहिए शुद्ध में से, उसे प्रगट करता नहीं, उसे घात करता है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? **ऐसा जानकर रागादि परिणामरूप निश्चय हिंसा त्यागना।** लो! देखो, राग का स्वरूप ही तेरा नहीं। उसके अस्तित्व में तू आ गया? एक क्षणिक विकल्प उठा, इतने अस्तित्व में तेरा अस्तित्व—मौजूदगी? छोड़, राग तेरा नहीं। स्वभाव की दृष्टि से राग की पृथक्ता करके उसकी हिंसा छोड़ दे। समझ में आया?

वही निश्चय हिंसा आत्मघात है। और प्रमाद के योग से अविवेकी होकर... प्रमाद योग है न? यह कहा प्रमाद योग यह प्राण व्यपरोपा **एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जीवों का घात करना वह परघात है।** भाव प्रमाद करके घात का भाव और वे मरे, उसे निमित्त से कहा जाता है। **जब इसने परजीव का घात विचारा,...** देखो, **तब इसके परिणाम लिन हुए,...** परिणाम मलिन हुए यह बात है। **भावों की मलिनता ही निश्चय हिंसा है,...** यह जैनशासन का मूल निश्चय सत्य क्या है, उसे समझे नहीं और उपचार के व्यवहार के कथनों को भी ऐसे ही समान मान ले, उसमें बड़ी गड़बड़ उठी। **इसलिए परघातरूप हिंसा आत्मघात का कारण है।** इस कारण से। मारने का विचार किया न, वह भाव, वह आत्मघात का कारण है।

जो हिंसक जीव है, वह परजीवों का घातकर अपना घात करता है। यह स्वदया परदया का स्वरूप जानकर... लो! अपनी स्वदया। विकार की उत्पत्ति न होकर स्वभाव की उत्पत्ति होना, इसका नाम निश्चय अहिंसा, दया। परदया। पर को नहीं मारने का विकल्प शुभभाव, ... भाव, वह परदया व्यवहार है। **स्वरूप जानकर हिंसा सर्वथा**

त्यागना। हिंसा के समान अन्य पाप नहीं है। निश्चय हिंसा का स्वरूप सिद्धान्त में दूसरी जगह ऐसा कहा है— लो, यह धवल। धवल न? देखो, धवल की गाथा है न। धवल क्या, जयधवला। '**रागादिणमणुप्पा अहंसकतं त्ति देसियं समए। तेसिं चे उप्पत्ती हिंसेति जिणेहिं णिद्दिट्ठा॥**'

रागादिक की उत्पत्ति, वही हिंसा है,... और **रागादिक का अभाव वह...** शास्त्र में अहिंसा कही है। लो, यह जयधवल। समझ में आया? जयधवल में यह गाथा है। पाठ है न, देखो न। '**रागादिणमणुप्पा**' यह अहिंसा। भगवान ने शास्त्र में ऐसा कहा है। समय में। समझ में आया? **रागादिक की उत्पत्ति वही हिंसा है, ऐसा कथन जिनशासन में जिनेश्वरदेव ने दिखलाया है।** देखो, पुराने में श्लोक है न यह? कितने पृष्ठ पर कहा यह? यह सब नहीं थे? श्लोक साथ में निकाला वह। श्लोक थे न सब। यह पारिणामिकभाव की बात नहीं आयी थी? पारणामिकभाव। यह वह आया लो, आया। यह गाथायें आयीं, देखो। यह रहा। ४२ श्लोक। १०२ पृष्ठ पर है। ४२। '**रागादिणमणुप्पा अहंसकतं त्ति देसियं समए। तेसिं चे उप्पत्ती हिंसेति जिणेहिं णिद्दिट्ठा॥**' ४२ वाँ श्लोक है यह। क्रम में आये हैं न सब। देखो, नीचे लिखा। **रागादि का नहीं उत्पन्न होना ही अहिंसकता है। ऐसा जिन आगम में उपदेश किया है।** समय यह ही है न? **उन्हीं रागादिक की उत्पत्ति हिंसा है, ऐसा जिनदेव ने निर्देश किया है।** भगवान त्रिलोकनाथ की वाणी में, स्वभाव से विपरीत राग की एकता और राग होना, उसे हिंसा कही है और राग के अभावस्वरूप, स्वभाव की उत्पत्ति होना, उसे भगवान के शास्त्र में और भगवान ने, भगवान के शास्त्र में और भगवान ने उसे अहिंसा कहा है। व्यवहार की बात आवे। व्यवहार व्यवहाररूप से जानना चाहिए, वह बराबर, परन्तु वस्तु तो सत्य है, तो यह एक है। दोनों सत्य हैं?

अर्थात् जो रागादिक का अभाव, वह स्वदया और जो प्रमादरहित विवेकरूप करुणाभाव, वह परदया है। करुणाभाव। **प्रमादरहित विवेकरूप करुणाभाव, वह परदया है। यह स्वदया-परदया धर्म का मूल कारण है।** निश्चय बात। निश्चय तो स्वदया है, परन्तु उसके साथ ऐसा शुभविकल्प है, उसे व्यवहार से भी धर्म का मूल कहा जाता

है। **जो पापी हिंसक होगा उसके परिणाम निर्मल नहीं हो सकते, ऐसा निश्चय है, परजीव घात तो उसकी आयु के अनुसार है,...** लो, ठीक! परजीव का घात तो उसकी आयु पूरी हो तो होता है। न हो तो लाख मारे तो भी नहीं होता, लो! और मारना चाहे तो भी मरता नहीं और यह जिलाना चाहे तो भी जीता नहीं। यह दृष्टान्त दिया नहीं? बनिया जिलाना चाहें बेचारे। मर गये। चह चिड़िया का बच्चा हो, चिड़िया हो न। वे लड़के हों बनिया के, अरे इसे मार डालेगा। एक टोकरा ढाँका हो टोकरा। वह बिल्ली आकर उघाड़कर खा जाये। वह कुछ ऊपर रखा हो, परन्तु उसका आयुष्य ही इतना हो वहाँ। लड़कों को ऐसा भाव हो कि अपने यहाँ ढाँक दें। हम ऊपर पहुँच नहीं सकेंगे, इसके मंजिल पर पहुँच नहीं सकेंगे। इसलिए यहाँ टोकरा ढाँक दो। अब टोकरा ढाँका तो मजा पड़ा उस बिल्ली को अब। ऐसे टोकरा ऊँचा करके खा जाये। मींदडी-मींदड़ी समझते हैं न? बिल्ली-बिल्ली। तो उसमें लड़कों को पाप है? उनके भाव तो उसे मारने के नहीं थे। भाव के ऊपर बात है या पर उस क्रिया के ऊपर बात है? समझ में आया?

यह **परजीव घात तो उसकी आयु के अनुसार है,...** तेरे परिणाम के अनुसार नहीं। **परन्तु इसने जब परघात विचारा, तब आत्मघाति हो चुका।** दृष्टान्त देते हैं न कहीं? अग्नि का। हाथ में अग्नि उठायी उसका हाथ जला। फिर डाले, न डाले दूसरे के ऊपर फिर। कहीं दृष्टान्त है इसमें। आता है। १२५ गाथा हुई, लो। ओहोहो!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह तो आवे न। यह है ऐसा दृष्टान्त।

★ ★ ★

गाथा - १२६

१२६। देखो वापस भाषा।

२५६) मारिवि चूरिवि जीवडा जं तुहुँ दुक्खु करीसि।
तं तह पासि अणंत-गुणु अवसइँ जीव लहीसि॥१२६॥

आगे उसी हिंसा के दोष को फिर निंदते हैं, और दयाधर्म को दृढ़ करते हैं—

हे जीव! जो तू परजीवों को मारकर, चूरकर... देखो, चूरा-भुक्का, एकेन्द्रिय, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, काई-वनस्पति, यह दाने के व्यापार में अनेक धनेडा। धनेडा समझते हो? धनुर। इतने-इतने। चूरा-चूरा। धन्धा करने का। हम क्या करें, भाई? कमाना पड़ता है। स्त्री-पुत्र का निभाव करना है। ऐसे जीव लाखों, ओहोहो!

एक बार माल लेने गये थे, भाई! वह द्राक्ष-द्राक्ष। भरूच। भरूच साथ में है न आठ कोस, आठ। माल हर समय ले आते थे। एक पारसी की दुकान थी परिचित की तो वहाँ लाते। तो उसने कह दिया कि भाई यह एक द्राक्ष की पेटी भेज दो। उसने ऐसी भेजी। द्राक्ष नहीं आती वह? काली आती है। वह भेजी परन्तु ऐसे जहाँ पाटिया उघाड़ा यहाँ पालेज दुकान में आकर। वहाँ तो ईयळ... ईयळ... ईयळ... आहाहा! अरे! भरोसा रखकर देखी नहीं, वरना तो हम लें नहीं। यह तो कोई पेटी देते हो? क्या भेजते हो? क्या कहलाता है उस द्राक्ष का नाम। द्राक्ष नहीं कहलाता। किसमिस। वह पूरी पेटी। वह ऐसे पाटिया जरा उघाड़ा ऐसे डालकर। ईयळ... ईयळ... ईयळ... अरर! यह बनिये का धन्धा! यह होता है? कहा, यह धन्धा नहीं होता, भाई! अकेली ईयळ। बहुत पाप। यह धन्धा भाव ऐसा हो? बापू! जाओ पैसे जाये तो जाने दो। यह पेटी यहाँ नहीं। उसमें से ईयळ कितनी एक ऐसी। एक-एक द्राक्ष में जीव। ईयळ सूक्ष्म उसके वर्ण की, हों! उस वर्णी! उसके वर्ण जैसी। पूरी पेटी। वे लोग तो शराब बनावे उसकी। पारसी थे न। बनाते होंगे। यह तो एकदम कहा हुआ और एकदम भेज दी। यहाँ देखें वहाँ...

कहते हैं, उन परजीवों को मारकर। यह **चूरकर...** चूरा... चूरा... भुक्का उड़ जाये अन्दर से। आहाहा! देखो न, यह रास्ते में यह ट्रक चलते हैं न। ओहोहो! चूहे।

समझे न? शेळा। शेळा समझते हैं? कांटेदार जंगल चूहा। चूरा। सर्प लम्बे-लम्बे, खेकड़ा, मेंढ़क, चपेट में आ जाये पूरे-पूरे। यह तो उनकी स्थिति। परन्तु बापू! मार डालने के इसके भाव। ऐसे ऐसी शीघ्रता से चले न। सामने कौन पाड़ी है या पाडा है या जानवर है। एकदम। गाय आयी थी न अभी, नहीं? भीखा की एक गाय आयी थी। जीवित है या मर गयी? मर गयी, लो! पैर में ऐसी टकरा गयी। अब मरे नहीं और कुछ शरीर में दूसरा नहीं था। तो ऐसी की ऐसी पड़ी। ऐसी ठोकर लग गयी। तो दूसरा कुछ नहीं। पैर ही वैसे हो गये। अब ऐसे शरीर अच्छा, खाय, पीये निरोग की भाँति। अब मरना है। चलना नहीं तो कहाँ तक रहेगी? मर गयी अभी। आहाहा!

कहते हैं कि दूसरे को चूरकर **दुःखी करता है, उसका फल उसकी अपेक्षा अनन्तगुणा निश्चय से पावेगा।** क्लेष्टा है न, ऐसा कहना है ऐसा। क्लिष्ट... क्लिष्ट... क्लिष्ट... उसका माप बिना की हिंसा, उसका नाम वह अनन्तगुणा फल तुझे मिलेगा। कहा न, नारकी कहा नहीं? ब्रह्मदत्त सात सौ वर्ष रहा। सातवें नरक में ३३ सागर। एक मिनिट के असंख्यात अरब वर्ष। एक मिनिट का चक्रवर्तीपना और असंख्य अरब वर्ष का सातवें नरक का दुःख। उसने दीर्घ विचार करके क्या है, यह वह? इसलिए कहते हैं, हे जीवों! ऐसे पाप को करना नहीं। यह बात विशेष करेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

ज्येष्ठ कृष्ण १४, सोमवार, दिनांक - २८-०६-१९६५
गाथा - १२६ - १२७, प्रवचन - १५८

१२६ गाथा का **भावार्थ।** यहाँ हिंसा की बात चलती है कि **निर्दयी होकर अन्य जीवों का प्राण हरना,...** निर्दय होकर दूसरे के प्राण हरना। हरना, यह तो व्यवहार का कथन है, परन्तु जो निर्दयभाव होना, वही उसे वास्तव में हिंसा है। **परजीवों का शस्त्रादिक से घात करना,...** पर जीव का शस्त्र द्वारा घात। शस्त्र द्वारा की क्रिया हो, घात हो, वह यहाँ प्रधानता बात नहीं, परन्तु शस्त्र द्वारा दूसरे का घात करने का जो भाव है अथवा परजीव को जो दुःख होता है, उसे देखने का ज्ञान रखना नहीं इसे। क्या कहा? परजीव को दुःख होता है, उसे देखने को—यह नहीं देखना कि यह नहीं—यह नहीं। इसलिए मुझे वह देखने का ज्ञान प्रगट दिखता है, ऐसा मुझे देखना ही नहीं। अर्थात् मेरा ज्ञान ढँक जाओ। दूसरे को दुःख हो, वह मुझे नहीं देखना। अर्थात् मुझे... समझ में आया या नहीं? विशेष कहते हैं। **परजीवों का शस्त्रादिक से...** ऐसे काटते हैं, क्रिया होती है। उसे जो दुःख होता है, उसे देखना नहीं चाहता। अर्थात् यह नहीं, ऐसा नहीं। ज्ञान का नकार करता है कि ऐसा नहीं। इसलिए ज्ञान को स्वयं आवृत्त कर डालता है, यह इसे पाप है। समझ में आया?

फिर से। ऐसे दुःख होता है न दूसरे को। वह दुःख है, उसे ज्ञेयरूप से देखे तो उस दुःख के परिणाम देने के उसे हो नहीं, परन्तु ऐसे दुःख होता है, आकुलता, उसे यह मुझे देखना नहीं। अर्थात् कि मुझे वह ज्ञान ऐसा रखना नहीं, अर्थात् ज्ञान ऐसा नहीं देखना अर्थात् ज्ञान ढँक जाओ, वह दुःख देखने का ज्ञान ढँक जाओ। समझ में आया? जरा कुछ बात? सूक्ष्म बात है यह।

वह मारना है,... देखो, **घात करना, वह मारना है, और हाथ-पैर आदि से, तथा लाठी आदि से परजीवों का काटना,...** यह क्रिया की क्रिया में होती है, उसे वह देखना

नहीं। अर्थात् कि ज्ञान ऐसा उसे रखना नहीं। अर्थात् ज्ञान को ढाँक जाओ, ढँक जाओ, ज्ञान आवृत हो जाओ। यह दुःख दिखता है... बकरे को काटते हैं ऐसे... ऐसे... ऐसे... काँपे-काँपे। मुझे वह देखना नहीं। अर्थात् कि उस जाति का ज्ञान ढँक जाओ। इसका नाम अन्दर ज्ञान का आवरण करता है अथवा ज्ञान की राग में एकत्व से हिंसा करता है, वह उसकी हिंसा है। समझ में आया?

मुमुक्षु : गहरे पानी में ले गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : गहरे पानी में नहीं, यह तो साधारण बात थी। बगसरा गये थे बगसरा। यह बगसरा है न। वहाँ वह था न बड़ा काठी। ...वाला, वाजसुरवाला, वे सब व्याख्यान में आते थे। उनका बड़ा पुत्र था। ४० हजार की आमदनी थी। यह अमरुभाई। अमरु खाचर, सब आते थे। नाम बड़ा तो सब दरबार आवे। फिर कहा था कि देखो भाई! यह पर की हिंसा अर्थात् क्या? (संवत्) १९८४ की बात है। ८४ के वर्ष। यह पर को जो दुःख होता है, उसकी हिंसा अर्थात् इसको उसका क्या पाप लगा? कि वह क्रिया जो होती है दुःख की उसमें, वह यह ज्ञान कहता है कि मुझे उसे देखना नहीं। इसलिए ज्ञान का आवरण कर डालता है। ज्ञान का जो जानना है, उसका नकार कर डालता है। अर्थात् जानना ऐसा न रहो, जानना ऐसा न रहो। अर्थात् ज्ञान की दशा बुठ्ठी हो जाओ। बुठ्ठी समझ में आता है? यह काठियावाड़ी भाषा। ...बुठ्ठी। बुठ्ठी ऐसे अर्थात् ऐसा जानने का ज्ञान न रहो। ढँक जाओ। इसका नाम ज्ञान की हिंसा है। पर की हिंसा यहाँ लगती नहीं। पर तो परपर्याय है। उसके होते दुःख और उसका होता ऐसा घात आदि, वह देखने ज्ञान इनकार करता है कि ... ज्ञान देखे तो वह क्रिया कर सकता नहीं। ... जाये नहीं राग।

यहाँ ज्ञानस्वरूप आत्मा... देखो यहाँ कहेंगे। यहाँ कहेंगे, देखो, **परजीवों का काटना, एकदेश मारना वह चूरना है, यह हिंसा ही माह पाप का मूल है।** किसलिए? कहते हैं, देखो, कि **निश्चयनय से अभ्यन्तर में...** देखो, **मिथ्यात्व, रागादिरूप तीक्ष्ण शस्त्रों से शुद्धात्मानुभूतिरूप अपने निश्चय प्राणों को हत रहा है,...** देखो, यह सिद्धान्त है इसमें। वास्तव में अभ्यन्तर में उसे दुःख होता है, उसे देखना नहीं, अर्थात् मिथ्याभाव

खड़ा करता है। वह ज्ञेयरूप से देखे कि इसे यह होता है। तब तो यहाँ उसे मारने का भाव ही खड़ा न हो। परन्तु मारने का अर्थात् मिथ्यात्वभाव में उस ज्ञान में देखना है, यह दु:ख होता है, वह देखना ही नहीं इसे। मिथ्या अभिप्राय में ज्ञान को बुठ्ठु अर्थात् हल्का कर डालता, हीन कर डालता है। वह हीन कर डाला मिथ्यात्व के भाव में, वही उसकी हिंसा है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उसकी बात है या नहीं? उसकी बात है। यहाँ कहा न, देखो न!

तीक्ष्ण शस्त्रों से... क्या तीक्ष्ण शस्त्र? कि वह जो दशा होती है, वह देखनी नहीं। अर्थात् ज्ञान में उस प्रकार से मुझे जानना नहीं, अर्थात् ज्ञान का मुझे नकार है। देखने का ज्ञान मुझे रखना नहीं। अर्थात् कि देखने का ज्ञान नहीं रखना अर्थात् मिथ्या अभिप्राय से देखने का ज्ञान ढँक जाता है उसे। यह तो अन्दर... **निश्चयनय से अभ्यन्तर में मिथ्यात्व रागादिरूप तीक्ष्ण शस्त्रों से...** बाहर के शस्त्र की बात नहीं। बाहर के शस्त्र से वह क्रिया होती है और ऐसे धुजे, बकरा कटता है। आहाहा! यह ऐसे देखना नहीं मुझे। अर्थात्? कि वह विद्यमान दु:ख की दशा मुझे देखनी नहीं। अर्थात् ज्ञान में ज्ञातापना न रखकर, नहीं देखना अर्थात् कि उसका नकार कर डालता है। इसलिए ज्ञान में ज्ञातापने का नकार करके आत्मा को मिथ्या अभिप्राय द्वारा ज्ञान को घात डालता है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तुमको अभी कठिन पड़ेगा। यह तो सिद्धान्त जरा अन्दर का है, न्याय का। समझ में आया?

यहाँ कहा न, **अभ्यन्तर में मिथ्यात्व...** अर्थात् ज्ञान को ज्ञानरूप से ऐसे देखे, तब तो मारने का भाव हो नहीं, परन्तु उसे दु:ख होने पर भी वह दु:ख मुझे देखना नहीं, अर्थात् ज्ञातापने रहना नहीं अर्थात् ज्ञाता का उलटापना करना नहीं अर्थात् मिथ्या अभिप्राय से ज्ञान को ढँक देना है। समझ में आया? जरा सा मस्तिष्क को फैलाना पड़े ऐसा है इसमें। जेचन्दभाई!

मुमुक्षु : यहाँ फैलाने के लिये तो हम आये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आये हैं। बात सच्ची, बात सच्ची।

कहते हैं, यह ज्ञानस्वरूप है न आत्मा? तो ज्ञानस्वरूप तो क्या हो? जो होता है उसे जाने। अब यह जानना तो जैसा हो, वैसा जाने न? यहाँ है तो दूसरे को दुःख होता है, वह मुझे देखना नहीं। दुःख दूसरे को होता है। ऐसे बकरा कटता है, उसे हमारे ऐसे देखना नहीं। अर्थात् दूसरे प्रकार से उसे देखने का भाव मुझे ढँक देना है। अर्थात् देखना मुझे है नहीं। देखना नहीं का अर्थ कि ज्ञान का उघाड़ ढँक जाओ, आवृत्त हो जाओ, बुठ्ठो हो जाओ। ऐसा अभिप्राय जो अन्दर पड़ा है, वही उसे हिंसा है। समझ में आया? यहाँ कहा, देखो, **रागादिरूप तीक्ष्ण शस्त्रों से शुद्धात्मानुभूतिरूप...** देखो, कहीं शुद्धात्मानुभूति प्रगट है? तो पाठ तो ऐसा लिया। **शुद्धात्मानुभूतिरूप अपने निश्चय प्राणों को हत रहा है,...** उत्पन्न होता नहीं। ऐसा ज्ञाता-दृष्टारूप से स्व को जानना और पर को जानना स्व-परप्रकाशक ज्ञातापन की पर्याय रहनी चाहिए, उसमें शुद्धात्मानुभूति का नाम पर्याय कहा जाता है। वह शुद्धात्मानुभूति की पर्याय प्रगट न करके, दूसरे को दुःख हो, वह मुझे देखना नहीं। अर्थात् मेरा ज्ञान मेरे मिथ्या अभिप्राय से घात हो जाओ, यह इसका नाम निश्चय हिंसा कहा जाता है। आहाहा! कहो, समझ में आया या नहीं इसमें? प्रवीणभाई!

बात इसकी अपनी अन्दर में उल्टी क्रीड़ा है, उसका इसे पाप है। बाहर का कहाँ? वह तो बाहर चीज़ रही, व्यवहार हुआ वह तो। कहते हैं न, निश्चय से अभ्यन्तर में मिथ्या अभिप्राय अर्थात् जानना, पर को दुःख हो, वह मुझे देखना नहीं। पर हैरान हो, वह दुःख मुझे देखना नहीं। अर्थात् मेरे ज्ञान का विकास इतना रखना नहीं। अर्थात् कि उस विकास में मिथ्या अभिप्राय द्वारा उस विकासरूप से मुझे रहना नहीं। ऐसे मिथ्या अभिप्राय से ज्ञान की हिंसा (होती है) और ज्ञान के भाव की पर्याय अनुभूति की प्रगट होनी चाहिए, उसे घातता है और मिथ्या अभिप्राय का ज्ञान वहाँ प्रगट खड़ा होता है। समझ में आया? समझ में आता है? मोतीरामजी! यह थोड़ा बनिये को तो विचार करना चाहिए। व्यापारी-बनिये को यह न समझ में आये, ऐसा होगा?

देखो, क्या कहते हैं ? **निश्चय से...** अर्थात् स्व की अपेक्षा से देखें तो अभ्यन्तर में मिथ्यात्व अर्थात् सामनेवाले को दुःख होता है, वह देखना नहीं, ऐसा अभिप्राय वह मिथ्यात्व है। और रागादि और प्रेम में एकाकार हो गया है, दुःख देने में। तीक्ष्ण शस्त्र, ऐसा जो मिथ्यात्व और राग का तीक्ष्ण शस्त्र, वह **शुद्धात्मानुभूतिरूप अपने निश्चय प्राणों को हत रहा है,...** अपने शुद्धात्मानुभूति के प्राण प्रगट होना चाहिए, उन्हें प्रगट नहीं करता और घात डालता है। गजब बात, भाई! समझ में आया? देखो! **निश्चय प्राणों को हत रहा है,...** तो निश्चय प्राण-ध्रुवप्राण हैं, वे घात होते हैं ? त्रिकाल का घात होता है ? तब पर्याय तो प्रगट है नहीं। तब फिर ऐसा कहा **शुद्धात्मानुभूतिरूप अपने निश्चय प्राणों को हत रहा है,...** पाठ देखो तो ऐसा है कि निश्चय प्राण अर्थात् मानो हो यहाँ प्राण पर्याय में और उन्हें घात करता है। शब्द तो ऐसा है।

मुमुक्षु : इसका अर्थ समझना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु अर्थ समझना चाहिए न कि भगवान आत्मा ज्ञाता शुद्धात्मानुभूति अर्थात् कि पर को दुःख हो, उसे भी जाने, अपने को जाने, ऐसी दशा यदि हो तो स्वसन्मुख होकर शुद्ध अनुभव की परिणति उसे प्रगट हो। परन्तु वह शुद्ध अनुभव की परिणति नहीं करता। क्योंकि दूसरे को दुःख हो, वह मुझे देखना नहीं। ज्ञातारूप से, शुद्धात्मानुभूतिरूप से स्व को, पर को जानने की क्रियारूप से मुझे रहना नहीं। उसके ज्ञान के प्राण को मिथ्या अभिप्राय द्वारा दुःख देखना नहीं अर्थात् ज्ञान को बुठ्ठु (हीन) कर डालता है। यह मिथ्यात्व और राग-द्वेष के शस्त्र द्वारा शुद्धात्मानुभूति को घात डालता है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ना, यह कुछ नहीं उसे। हिंसा-बिंसा नहीं उसे। उसे हिंसा है ही नहीं। रागादि हो, उसे जानता है और पर की क्रिया हो, उसे ज्ञेयरूप से जानता है। हिंसा-बिंसा नहीं। जरा थोड़ा राग है, उसे यहाँ हिंसा गिनने में आयी नहीं। कहो, समझ में आया ? राग में एकत्व नहीं और पर की क्रिया को देखने में उसका ज्ञातापना नाश होता नहीं। धर्मी जीव को राग में एकत्व नहीं और पर को देखने में एकत्व होता नहीं।

बराबर देखता है, जैसा है वैसा। ज्ञान को ज्ञातारूप से। स्व को जानते हुए पर को जानने का काम सदा निरन्तर हुआ करता है, इसका नाम स्व-परप्रकाशक ज्ञान की पर्याय। समझ में आया? परप्रकाशक हुआ न इसमें, भाई! स्व को नहीं जाना, ज्ञाता हूँ, पर को नहीं जाना, सामने दुःख है उसे जानना चाहिए, ऐसा नहीं। इसलिए स्व-परप्रकाशक ज्ञान का उसने आच्छादन कर डाला अन्दर, आवरण कर डाला। समझ में आया? मूल निश्चय की बात आवे वहाँ लोगों को ऐसा हो जाये अन्दर। यह समझ में आता है कि वह मर गया, पाप लगा, वह बचा उसे पुण्य लगा। अब यह तो सब बात ही खोटी है। वह बचा, इसलिए पुण्य हुआ और मर गया, इसलिए पाप, बात ही खोटी है। वह तो उसके अपने भाव के ऊपर पुण्य-पाप है। कि यहाँ मरना... यहाँ कहेंगे। **परजीव का घात हो या न हो...** जीव की आयु बाकी रह गयी हो, तो नहीं मार सकता। नहीं मरता। अब आयेगा। इसमें भी आयेगा। पर के साथ एक निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है व्यवहार। यह बात सिद्ध करेंगे आगे। प्राण अपने हैं या नहीं? अभेद हैं या भेद? सिद्ध करेंगे आगे की गाथा में। व्यवहार से अभेद कहलाये न? निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध है न?

यहाँ तो कहते हैं कि तेरा ज्ञान ज्ञेय निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध है। क्या? वह ज्ञेय, यह ज्ञान—ऐसा सम्बन्ध है। अब तदुपरान्त तू सम्बन्ध ऐसा करता है कि यह दुःख होता है, कषाय ऐसी चिल्लाहट मचाये, मेरे ज्ञान को इस प्रकार से देखना ही नहीं, अर्थात् मुझे ज्ञातारूप से रहना नहीं। अर्थात् मेरे ज्ञान की पर्याय ढँक जाओ, मैं अन्धा हो जाऊँ, मैं अन्धा हो जाऊँ, मेरे ज्ञान में अन्धापन आ जाये। दूसरे के दुःख को देखने के लिये मुझे अन्धापन आ जाये। बस! वह अन्धापन आना, उसका नाम मिथ्या अभिप्राय और उसका नाम शुद्धात्मानुभूति को घात करने का शस्त्र है। समझ में आया?

क्लेशरूप करता है,... देखो! किसे क्लेशरूप करता है? अपने को। अपनी पर्याय में ज्ञान की दशा में धीरज से स्व को जानना और पर को जैसा हो, वैसा जानना, ऐसी दशा प्रगट न करके, स्व को जानना नहीं और पर को दुःख होता है, उसे जानना नहीं। अर्थात् अपनी दशा में अन्धापन खड़ा करता है। वह अन्धापन खड़ा करे, वह मिथ्यात्व का क्लेशभाव है। उसका नाम हिंसा है। कठिन भाई! मूल सत्य निश्चय जो है,

वह सत्य है और व्यवहार, वह सब उपचार की ज्ञान करनेवाली (बात है)। अब यह बात मूल निश्चय न समझ में आये तो उसे वास्तविक व्यवहार का भी ज्ञान सच्चा हो नहीं सकता। भाषा कैसी है? टीका में भी ऐसा आया न, भाई! (समयसार गाथा) ६९-७० में भी। कर्ता-कर्म (अधिकार में भी)। वहाँ यह आया था। समझ में आया? भाषा तो ऐसी ही आवे न। क्या आवे? ऐसा ही हो न परन्तु।

मुमुक्षु : अपने ज्ञानभवनमात्र....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वभाव को छोड़ देता है। ज्ञानभवन देखो।

ज्ञानभवनमात्र जो सहज उदासीन अवस्था, उसका त्याग करके... अर्थात् क्या? देखो, क्या कहते हैं? **अब यहाँ, जो यह आत्मा अपने अज्ञानभाव के कारण, ज्ञानभवनमात्र...** जानना... जानना... जानना... जानना... स्व-परप्रकाशक जानना, ऐसी सहज उदासीन **अवस्था का त्याग करके...** अब अवस्था प्रगट है, उसका त्याग करता है? संस्कृत पाठ तो ऐसा है। परन्तु पाठ का अर्थ समझना चाहिए न। **अज्ञानभवन-व्यापाररूप अर्थात् क्रोधादिव्यापाररूप प्रवर्तता हुआ प्रतिभासित होता है...** ऐसे ज्ञानभवनरूप अपनी पर को जानने की जो दशा, उदासीन दशा, उसे नहीं प्रगट करता हुआ अर्थात् कि उसका त्याग करता हुआ अर्थात् कि अवस्था प्रगट नहीं करता अर्थात् कि उसकी अवस्था का त्याग करता हुआ, ऐसा। वह प्रगट नहीं करता, इसका नाम अवस्था का त्याग करता है। समझ में आया? भारी सूक्ष्म भाई इसमें! कितनी बात आचार्य महाराज ने रखी है, देखो!

क्रोधादि क्रिया परभावभूत होने से निषेध की गयी है तो भी वह स्वभावभूत होने का उसे अध्यास होने से, क्रोधरूप परिणमता है, रागरूप परिणमता है, मोहरूप परिणमता है। अब यहाँ, जो यह आत्मा अपने अज्ञानभाव के कारण... अपने अज्ञानभाव के कारण। कर्म-फर्म के कारण नहीं। **ज्ञानभवनमात्र...** ऐसे ज्ञान का होना, जानना, देखना होना, स्व-पर को जानने-देखने का होना, ऐसा जो ज्ञानभवनमात्र प्रवर्तन से। समझ में आया? अवस्था। ज्ञानभवनमात्र जो सहज उदासीन अवस्था, उसका त्याग करके। अर्थात् क्या? अब इसका अर्थ क्या? यह तो संस्कृत ऐसी है। भगवान आत्मा

ऐसे स्व-पर को जानने की पर्यायरूप ज्ञानभवन, उसे नहीं करता और क्रोध, मान, माया, मिथ्यात्व अभिप्राय में एकाकार होकर उसके रूप से होता हूँ, ऐसा करता हुआ वह शुद्धात्मानुभूति की अवस्था का त्याग कर देता है। समझ में आया?

भाषा, भाई! शास्त्र की भाषा में भी अन्दर गूढ़ता है। ऐसे का ऐसा यह लिखा कहते हैं। यह लिखा। भाई! किस अपेक्षा से लिखा है, उसका अर्थ समझे बिना? इस शास्त्र में लिखा है, देखो। लो, एक व्यक्ति कहता है। देखो, यह व्यवहार से मार डाले, ऐसा लिखा है। मार डाले, ऐसा लिखा है या नहीं? मारकर—चूरकर, देखो, इसमें नहीं आया? लो यह लिखा है, लो! पण्डितजी! बड़े पण्डित को यहाँ रखा अब। '**मारिवि चूरिवि**' लिखा अर्थात् मारे, परन्तु भाई! समझ तो सही।

मुमुक्षु : एक जगह से खबर न पड़े तो, दूसरे जगह... तो अनेकान्त हो न।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनेकान्त वह कुछ... स्वपने मार सकता नहीं, परन्तु मार सकता है, ऐसा कहने में आता है, उसका नाम अनेकान्त है। परन्तु तू यहाँ देख। यहाँ भाषा यही है और वहाँ एक ही बात है कर्ताकर्म की। यहाँ भी त्याग करके (कहा है), लो!

ज्ञानभवनमात्र जो सहज उदासीन अवस्था, उसका त्याग करके अज्ञानभवन-व्यापाररूप अर्थात् क्रोधादिव्यापाररूप प्रवर्तता हुआ प्रतिभासित होता है, वह कर्ता है।... ऐसे इसका मैं करता हूँ, इसका मैं करता हूँ, ऐसा अज्ञानभवन का वह कर्ता होता है। ऐसे ज्ञानभवन अवस्था को उदासीन को छोड़ देता है। छोड़ देता है का अर्थ (यह कि) प्रगट नहीं करता। क्या हो परन्तु? जिस नय का जिस अपेक्षा से कथन है, उसे कहे देखो आचार्य यह झूठ बोले। सहज अवस्था का त्याग करके।

मुमुक्षु : फिर कहे कि आचार्य को मानते नहीं। सब आचार्यों का मानते नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे भगवान! आचार्य तो महा सन्त, महामुनि हैं। किसी को कोई विकल्प आया, द्रव्यानुयोग की पद्धति, किसी को कुछ आयी। महामुनि हैं। द्रव्यानुयोग कहे, चरणानुयोग कहे, परन्तु मुनि हैं। उनकी कथन की पद्धति का आशय क्या है, वह आशय न समझे, तब तो उनके हृदय को समझ नहीं सकते। प्रवचनसार में

कहा है न अन्तिम? शास्त्र के हार्द को जिस जगह जो कहा, उसे न समझे तो उसको अर्थ को नहीं समझ सकता। प्रवचनसार में है न पीछे? हार्द-हार्द प्रयोग किया है। उसका हृदय, शास्त्र का हृदय। समझ में आया? जिस जगह जो कहना है। है न यह? चरणानुयोग में है नहीं कहीं? कितने में? पहले अधिकार में। ठीक! ८६। हाँ, यह बराबर ८६। देखो! **जिसने प्रथम भूमिका में गमन किया है, ऐसे जीव को, जो सर्वज्ञोपज्ञ होने से...** भगवान त्रिलोकनाथ ने कही वाणी, **सर्व प्रकार से अबाधित है, ऐसे शब्द प्रमाण को प्राप्त करके क्रीड़ा करते हुए, उसके संस्कार से विशिष्ट संवेदनशक्तिरूप सम्पदा प्रगट करने से, सहृदय जनों के हृदय को आनन्द का उद्भेद देनेवाले प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा...** पहला प्रत्यक्ष लिया है। सहृदय सहृदय। सहृदय का अर्थ **भावुक, सामने के भावों को या वृत्ति को समझ सकनेवाला; शास्त्र में जिस समय जिस भाव का प्रसंग हो, उस भाव को हृदय में ग्रहण करनेवाला; बुध; पण्डित।** इतने अर्थ हैं। शब्दाकोश में इतने हैं। इसका नाम बुध और इसका नाम पण्डित-सहृदय। वह ज्ञानी के कलेजे के हृदय को जाननेवाला। किस समय में कहाँ कैसे कहना है, उसके भाव के उस प्रसंग को, उस प्रसंग में क्या कहना है, उसे जाननेवाला उसे सहृदय कहा जाता है। संस्कृत है। समझ में आया? सहृदय है संस्कृत। यह बात तो अन्तर की अध्यात्मविद्या की बात है। यह कहीं अकेले शब्द, संस्कृत और व्याकरण के अकेले शब्दों से पार पड़े, ऐसा नहीं।

कहते हैं... यहाँ तो स्पष्ट बात की है। निश्चय से तो इसने अपने शुद्धात्मानुभूतिरूप प्राण को घात डाला है। तब कोई कहे कि घात कब कहलाये? होवे उसे घात करे न? होवे, उसे घात करे न? तो यहाँ तो नहीं। परन्तु वह होवे इसका अर्थ? शुद्ध चिदानन्द का स्वभाव होता है त्रिकाल, उसके अवलम्बन से जो स्व-परप्रकाशक अनुभूति प्रगट होनी चाहिए, ऐसा न करके प्राण का घात करके, मिथ्यात्व को सेवन कर, वह अनुभूति प्रगट नहीं करता, उसे 'घात करता है' ऐसा कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? वह एक कर्मानन्द नहीं कहता था, भाई! कर्मानन्द? वह कर्म से सिद्ध हो, वरना आचार्य खोटे पड़ेंगे। और ऐसा लिखता था। वे भाई थे न, पण्डितजी! कर्मानन्दी।

मुमुक्षु : .... नयी खोज।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, नयी खोज। सब उल्टा निकाला। और वहाँ तक लिख डाला था कि यदि इस प्रमाण पर्याय पर से न मानो तो आचार्य खोटे पड़ेंगे। परन्तु तुझे ही श्रद्धा का भान नहीं। आचार्य तो सच्चे ही हैं। आचार्य ने जिस अपेक्षा से कहा। पर से पर्याय हो... पर से पर्याय हो... ऐसे उन ईश्वर का माननेवाला था सही पहले? आ गया, परन्तु यह बात उसे ... नहीं थी बिल्कुल बैठी हुई। वह तो दूसरे प्रकार से ठग था। अन्त में छोड़ दिया। जैन परमेश्वर के हृदय को वह कहीं समझने नहीं आया था। महत्ता लेने आया था। उसने जाना कि महत्ता नहीं मिली तो छोड़ दिया। उसने कहा, एक पर्याय दूसरी पर्याय से न हो, ऐसा हो तो आचार्यों के कथन पूर्वापर विरोध आयेगा। ऐसा उसने लिखा था। अरे भाई! यह तो व्यवहार के कथन हो, उसे उस कार्य के काल में कौन था, उसका ज्ञान कराया है। पर के कारण से पर की यह, उसके कारण से यह, इस सत् के कारण से यह सत्, इस सत् के कारण से यह सत् एक अंश, ऐसा हो नहीं सकता। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि भगवान आत्मा शुद्धात्मानुभूति अर्थात् स्व को, पर को जानने की पर्याय का प्रगट करने का उसका स्वभाव तो वह है। गुण तो वह है, परन्तु इस प्रकार से प्रगट न करके ज्ञान का अन्धापन प्रगट करता है। उसे दुःख होता है, क्लेश होता है, मार डाले, पील डाले चिल्लाहट... चिल्लाहट... चमड़ी उतार डाले। वह ज्ञान का अन्धापना—मुझे यह देखना नहीं अर्थात् वह ज्ञान का अन्धापन हो जाओ। उस ज्ञान का अन्धापन अर्थात् मिथ्याभाव से ज्ञान वहाँ घात हो जाता है। उसे यहाँ निश्चय हिंसा कहा जाता है। समझ में आया? वे बेचारे वे दरबार थे न। दरबार कहे, यह क्या कहते हो तुम? महाराज! अमरुभाई बहुत पुण्यवाला था। उपज तो ४० हजार की, परन्तु पुण्यशाली बहुत। दिखाव बहुत।

मुमुक्षु : यह वह दृष्टान्त दिया था ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वहाँ कहा था। यह दृष्टान्त। एक दरबार थे। यह बगसरा है न काठी। फिर व्याख्यान में आवे न। नाम तो प्रसिद्ध, इसलिए बहुत आवे, परन्तु बात जरा सूक्ष्म पड़े। फिर भिक्षा के लिये हमको वहाँ आमन्त्रण किया था। महाराज! मेरे

यहाँ भिक्षा के लिये (आओ)। भिक्षा के लिये गये परन्तु वहाँ उसकी रसोई हो, वहाँ तो माँस का खुराक हो, इसलिए वह रसोई नहीं, एक ब्राह्मण की रसोई अलग थी। उसकी अलग। वहाँ रसोई में,... परन्तु मैंने व्याख्यान में एक दृष्टान्त दिया। वह दृष्टान्त उसकी माँ को कहा घर जाकर। सोना की पायल पहने वे कड़े और सब। गृहस्थ थे न। सामने पुलिस बड़ी बन्दूकवाले। उन्हें खबर कि महाराज अभी आनेवाले हैं। फिर अन्दर उसकी माँ को कहे, माँ! इन महाराज ने एक दृष्टान्त दिया न, वह बहुत सुननेयोग्य है। वहाँ दृष्टान्त दिया था कि देख भाई! एक था करोड़पति मनुष्य। उसके घर में एक पुत्र हुआ। मुश्किल-मुश्किल से हुआ ६० वर्ष में। ऐसे कोमल घेवर जैसा, कोमल घेवर जैसा। वह करोड़पति व्यक्ति नास्तिक। परलोक-बरलोक को माने नहीं, पाप को माने नहीं। उसमें वह लड़का जन्मा तो सब राजा को खबर पड़ी, रैयत को खबर पड़ी। पहरामणी करने आवे न। राजा को खबर पड़ी। अभिनन्दन देने आया। उसमें राजा ने लड़के को ऐसा देखा। ऐसे मुलायम घेवर जैसा। कुणुं घेवर समझते हैं न? बहुत नरम-नरम, मुलायम-मुलायम। मुलायम भाषा। ऐसा ताजा जन्मा हुआ मुलायम। इसलिए राजा को विचार हुआ कि मुझे तो इसके टुकड़े करके खाना है आज। दृष्टान्त मैंने दिया। सुनो, कहा। वह व्यक्ति नास्तिक है न? कुछ मानता नहीं न? सुनो।

उस राजा ने ऐसा कहा। राजा बड़ा अधिपति और यह तो उसकी प्रजा है न। भले पुत्र हुआ, पाँच करोड़ का आसामी परन्तु उसकी प्रजा। वह (राजा) कहता है कि मुझे तो इस लड़के को आज टुकड़े करके खाना है। तोळा समझे? टुकड़े। यह लोगों की भाषा है। टुकड़े तेल में तलकर खाये, उसका नाम तोळा कहलाता है। इसके टुकड़े खाना है। वह कहता है, अरर्र! अरे महाराज! ऐसा नहीं होता। ऐसा नहीं होता, महापाप लगता है। पाप लगे? यह मैं देखो, एकदम तुम्हारे पुत्र का नाम सुनकर आया। भूखा हूँ, मैंने चाय भी पी नहीं और दूध भी पिया नहीं। मुझे भूख लगी है। और वह भूख लगी है, इसे काटकर खाऊँ तो भूख मिट जायेगी। तू कहता है कि पाप। मैं कहता हूँ कि पाप में दुःख मिटे? यह काटकर खाऊँगा तो अभी दुःख मिट जायेगा। अरेरे! ऐसे नहीं मिटता। परन्तु मिटता है और नहीं मिटे क्या? प्रत्यक्ष है न। ऐसे भूख लगी है मुझे पेट में। और यह छोटा नरम घेवर जैसा लड़का है। टुकड़े करके घी में तलकर यहाँ खाना

है। भुजिया करके ऊँचा तले। भूख का दुःख इसको मार डालने के बाद पेट में पड़ने से मिटेगा। तू पाप-पाप करता है, परन्तु यहाँ दुःख मिटता है। वह कहे, परन्तु मैं ऐसा मानता नहीं। तू कहता था न कुछ मानता नहीं? नास्तिक था न? यह पाप लगेगा, वह कहाँ से आया तुझे, कहा यह? कहे, नहीं, नहीं, साहेब! यह तो पाप लगता है। पाप किसका लगे? तू मानता नहीं था न! और मैं तो दूसरे प्रकार से कहता हूँ। वह तो मुझे पाप लगे। तब तो यहाँ दुःख कैसे मिटे? भूख लगी है, उसमें पेट में पड़ने पर दुःख मिटे कैसे, लाओ न्याय? बापू! ऐसा नहीं देखा जाता।

यह क्षुधा टली है, वह तो वर्तमान पूर्व के कोई साता के उदय के कारण टली है। इससे वह दुःख मिटा, यह माँस के परिणाम मारने के किये और माँस आया, इसलिए दुःख मिटा — ऐसा नहीं। उसका विचार धीरे से करना पड़ेगा। यह माँस आया और दुःख मिटा, वह तो साता का उदय था, इसलिए मिटा है। और मारने का जो पाप है, वह तो कुकर्म किया उसके परिणाम का फल आयेगा और नरक-निगोद में जाना पड़ेगा। दरबार कहे कि आहाहा! न्याय करो, कहा, यह विचार करो। वह नास्तिक था कि पाप न माने। यह राजा कहे परन्तु खाना है। भाईसाहेब! पाप। तू कहता था न पाप नहीं? मैं पाप को मानता नहीं तो पाप कहाँ से आ गया? और मैं तो ऐसा कहता हूँ कि तू पाप कहता है, परन्तु मुझे तो यहाँ धर्म होता है, सुख होता है। माँस खाने से सुख होता है। ऐसा नहीं होता... ऐसा नहीं होता... क्यों नहीं होता? परन्तु प्रत्यक्ष होता है न! भाई! ऐसे ज्ञात नहीं होता। यह त्रिराशि ऐसी नहीं रखी जाती। उसका योगफल न्याय का रखा जाता है। यह अभी जो क्षुधा मिटती है, वह माँस का निमित्त पड़ा, वह तो पूर्व की साता के उदय के कारण से हुआ है। वरना तो यहाँ अजीर्ण हो जाता। परन्तु जो अभी मारने का पापभाव किया, उससे यह दुःख मिटा है, ऐसा नहीं।

इसलिए उसकी माँ को कहे, माँ! यह महाराज ने एक ऐसा दृष्टान्त दिया था। कहे, सुनाओ न हमारी माँ को। बैठे थे बेचारे। वह तो वृद्ध थीं। कहा, ऐसा है, माँ! यह वस्तु है, भाई! तत्त्व की वस्तु कोई ऐसी है कि ऐसे दूसरे को दुःख न माने, पाप न माने... वह तो ऐसा ही कहे कि देखो, मुझे पाप। मैंने तो फिर दूसरे दो-चार दृष्टान्त दिये

थे। दूसरा वनस्पति का। भूख लगी हो और वनस्पति काटकर खाये। तो वह कहे कि देखो, मुझे दु:ख मिट गया, वनस्पति काटकर खायी इसलिए। वह कहे माँस काटकर खाया इसलिए दु:ख मिट गया। दूसरा कहे ईयळ यह जीवांत, यह चिड़ा होता है न चिड़ा। चिड़ा की बारीक-बारीक जीभ निकाले। बारीक जीभ समझे? यह। यह राजकुमार हो न। राजकुमार की भाषा स्पष्ट न हो तो उस चिड़िया की बारीक-बारीक जीभ। हजारों चिड़ियों को मारकर उस जीभ के टुकड़े करे, फिर उन्हें उकालकर पिलावे लड़के को तो जीभ अच्छी हो। आवाज हो। है न यह सब सुना हुआ है न। कहा, ...! इस जीव के ऐसे पाप करके यह अच्छी जीभ हुई? विचार तो करो कुछ। ऐसे कुकर्म करके इस जीभ का अच्छा हुआ? यह तो बुरे कुकर्म के परिणाम आत्मा के हिंसा के किये हैं उसने। और यहाँ मिटा है, वह तो बापू! पूर्व की साता का उदय था, वह वहाँ मिटने की क्रिया हुई है। उसने मार डालने के परिणाम और यह क्रिया हुई, इसलिए मिटा है, ऐसा नहीं है, भाई! ऐसे सीधे अर्थ नहीं होते। जैसे उसका अर्थ हो, वैसा अर्थ होता है।

वह तो बेचारा ढीला पड़ गया। माँस-बाँस खाते हों न वे लोग। ऐसा नहीं होता। सत्य वस्तु हो, उसे सत्य समझो, कहा। यह अन्दर में हिंसा होती है, तो भी सुख... यह मेरा दु:ख मिट जाता है। एक कहे कि शकरकन्द खाकर मेरा दु:ख मिटाऊँ, एक कहे कि एकेन्द्रिय वनस्पति खाकर दु:ख मिटाऊँ, एक कहे कि पंचेन्द्रिय खाकर मेरा दु:ख मिटाऊँ, एक कहे कि झूठ बोलकर पैसे प्राप्त करके मेरा दु:ख मिटाऊँ। और मिटता है प्रत्यक्ष। तो इसका अर्थ क्या? समझ में आया? बराबर है? इसका अर्थ क्या? झूठ बोले और पाँच लाख, दस लाख पैदा करता है। क्या है यह? झूठ बोलने का भाव तो उसके पास रहा। उसके फल में पैसे मिलते हैं? बापू! इसका न्याय है। पूर्व के साता का उदय हो पुण्य तो उसके कारण से प्राप्त दिखते हैं और परिणाम जो पाप के किये हैं, उनका तो नया कठोर बन्धन (पड़ता है)। ऐसा नहीं लिया जाता कि मैं झूठ बोला, इसलिए पैसे मिले; माँस खाया, इसलिए मुझे दु:ख मिटा। समझ में आया? यह कन्दमूल खाये, इसलिए दु:ख मिटा। तुम कहो कि कन्दमूल में जीव है... कन्दमूल में जीव है। अरे भाईसाहेब! अनन्त जीव हो आलू में। खाओगे तो पाप लगेगा। पाप किसका लगे? यह

क्षुधा लगी, देखो! आलू। आलू कहते हैं न बटाटा को? घी में तलकर (खाये)। बारीक-बारीक बनाते हैं न चिप्स-चिप्स। आलू की चिप्स बनाते हैं न। (वह खायी), दुःख मिट गया न? अरे,... सुन रे सुन! मर जायेगा। वह तो भूख जो मिटी है, वह तो पूर्व के साता का निमित्त (था), इसलिए मिटी है। यह कन्दमूल के अनन्त जीव मारकर आये, इसलिए यहाँ मिटी है, ऐसा नहीं। पहले इसका अर्थ समझना पड़ेगा या नहीं? लिखा हो शास्त्र में बहुत प्रकार। समझ में आया? दरबार कहे, बात सच्ची लगती है कुछ इसमें, हों!

यहाँ तो आचार्य ऐसा कहते हैं। ऐई! लॉजिक है या नहीं यह? या एल.एल.बी. है तुम्हारे वहाँ? भगवान के घर में लॉजिक पूरा भरा है तत्त्व। सर्वज्ञ उपज्ञ, नहीं आया? उसमें नहीं आया? उसमें आया न। उसी गाथा में आया। त्रिलोकनाथ भगवान सर्वज्ञ ने देखा, वैसा उन्होंने कहा, उसमें सब बात भरी हुई है। परमात्मा के शासन में किसी बात की कमी नहीं। यह भगवान कहते हैं कि भाई! दूसरे के प्राण घात करना-न घात करना, वह कहीं तेरे अधिकार की बात नहीं है, परन्तु उसके घात हो और दुःख हो, उस समय तेरा ज्ञान जानना नहीं चाहता, वह ज्ञान का अन्धापन करना चाहता है। ज्ञान में अन्धेरा लाना चाहता है? बस! ज्ञान का आवृत्त हो जाना, वही मिथ्यात्वभाव से आत्मा की हिंसा है। अरे! कहो, समझ में आया इसमें? कहो, समझ में आता है या नहीं? ऐई! हिम्मतभाई!

क्लेशरूप करता है, उसका फल अनन्त दुःख अवश्य सहेगा। क्यों? कि अकेला दुःख देखना नहीं चाहता, ऐसे तीन काल के दुःखी प्राणियों को तेरा ज्ञान जाननेयोग्य है। उस जाननेयोग्य इस प्रकार सर्वज्ञस्वभावी अथवा जाननेयोग्य तेरा मानता नहीं और ऐसे अनन्त दुःख का नकार करता है तो तेरे ज्ञान में महाहिंसा हुई है, उसके फल में अनन्त दुःख तुझे भोगना पड़ेगा। यह कहीं मुफ्त का नहीं है। समझ में आया? **इसलिए हे मूढ़ जीव! परजीवों को मत मार,...** इसका अर्थ कि वह भाव तू कर नहीं। ऐसा इसका अर्थ है। मार कौन सकता था? नीचे कहेंगे। यह तो उसका आयुष्य हो तो न मरे और तू मारना न चाहे तो भी मर जायेगा आयुष्य नहीं होगा तो।

नहीं कहा था एक लड़के का? यह दो भाई थे। छोटा लड़का बहुत बीमार रह गया। दो सगे भाई। घर में कोई नहीं। दो लड़के, समझे न? दो लड़के। फिर छोटा बहुत बीमार रहा। तो उसे—बड़े को बहुत सेवा करनी पड़े। फिर हमको बात तो करे न सब एकान्त में। वे तो मर गये। ... एकान्त में बात करे कि महाराज! मैंने ऐसे पाप किये हैं। क्या है? मेरा छोटा भाई बहुत बीमार था, बहुत खिंचा तो मैं दो रुपये का जहर ले आया और भाई को दिया। मरा नहीं। मरा नहीं, कहे। पण्डितजी! पश्चात्? कि मैंने पाँच-दस दिन जाने दिये। पाँच-दस दिन जाने दिये, पाँच-दस दिन जाने दिये। पश्चात् पाँच रुपये का जहर ले आया। डाला। मर गया। सेवा करने में दो व्यक्ति घर में, कोई होता नहीं और बड़ा उकता गया। इसलिए छोटा... समझ में आया? ...भाई! सब बातें हमारे तो सब बहुत आयी हुई हो न चारों ओर की। गुप्त कोई आवे, कोई गुप्त बात आवे, कोई कुछ कहे। और बात बेचारा करता था, हों! कि मैंने ऐसा किया है। तथापि उसे अन्दर खेद नहीं था। मात्र यह बात कहता था इतना। अन्दर खेद कुछ नहीं था। ओरतो समझे न? क्या कहे? खेद, पश्चाताप अन्दर नहीं था। मात्र ऐसा कहे, ऐसा किया। मेरे भाई को मैंने दो रुपये का जहर दिया तो नहीं मरा, फिर पाँच-सात दिन में पाँच रुपये का ले आया। पिलाया, फिर मर गया। लो, आयुष्य था तो दो रुपये के जहर से नहीं मरा। आयुष्य पूरा हुआ, उस समय मर गया। कौन मारे और कौन मरे? कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा!

और मत चूर... परजीवों को मत मार, और मत चूर,... तेरे आत्मा की पर्याय को मत मार, मत चूर। इसका अर्थ पर को न मार और पर को न चूर। समझ में आया? **तथा अपने भाव हिंसारूप मत कर,...** देखो, इसका अर्थ ही यह है। हिंसारूप न कर। भगवान आत्मा के ज्ञान को घात डाले, ऐसा न कर, भाई! तेरा स्वभाव शुद्ध है, उसे जाननेवाला देख। जान... जान... जान... उसकी हिंसा न कर। **उज्ज्वल भाव रख,...** निर्मल भाव कर। ज्ञाता-दृष्टा रह। तुझे ऐसे परिणाम नहीं होंगे, मारने के नहीं होंगे। ज्ञानी को अस्थिर होता है, वह कोई पर के लिये नहीं होते, स्वभाव में नहीं, अधबीच से होते हैं अन्दर से पर्याय के, वह उसका दोष अल्प है। समझ में आया?

जो तू जीवों को दुःख देगा, तो निश्चय से अनन्तगुणा दुःख पावेगा। यहाँ

सारांश यह है — जो यह जीव मिथ्यात्व, रागादिरूप परिणत हुआ... अभिप्राय से जहाँ गुलाँट खायी कि दूसरे को दुःख दे सकता हूँ, मार सकता हूँ, ऐसे ज्ञान के स्वभाव को ऐसा माना, दूसरे को सहायता कर सकता हूँ और दूसरे से सहायता ले सकता हूँ, ऐसा अपना ज्ञानस्वभाव माना, वही ज्ञानस्वभाव में मिथ्यात्व और राग-द्वेष का परिणमन हुआ। समझ में आया? **पहले तो अपने भावप्राणों का नाश करता है,...** पहले तो अपना भावप्राण नाश करता है। **परजीव का घात हो या न हो,...** आयुष्य हो तो हो और आयुष्य पूरा हो जाये तो उसके कारण से हुआ है, कहीं तेरे कारण से नहीं हुआ। **परजीव का घात तो उसकी आयु पूर्ण हो गयी हो, तब होता है,...** देखो, सिद्धान्त तो जो हो, वह होगा न! यह कहे, नहीं, उसका आयुष्य हो तो अपने मार सकते हैं, आयुष्य न हो तो उसे बचा सकते हैं। अरे! तेरा काम है?

मुमुक्षु : अकाल मृत्यु ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अकाल-बकाल सब समझने जैसी बातें हैं। अकाल मृत्यु, वह तो जिस समय में देह छूटने का है, उसी समय छूटने का है। आगे-पीछे कोई नहीं कर सकता। वह भी कर सके, सामर्थ्य नहीं किसी की। समझ में आया?

आयु पूर्ण हो गयी हो, तब होता है, अन्यथा नहीं... लो! यदि आयुष्य पूरा न हो तो मार नहीं सकता। **परन्तु इसने जब पर का घात विचारा,...** लो, बस! घात का विचार संकल्प-विकल्प, वह भी कर सकूँ, ऐसी बुद्धि से और मुझे असुविधा के ऐसे देनेवाले हैं, उन सबको उड़ा दूँ। ऐसे असुविधा के देनेवाले हैं। देखो, नरक की सिद्धि करते हैं न। कोई नरकगति है या नहीं? कि मुझे असुविधा देनेवाला एक नहीं, परन्तु यदि अनन्त हों और मेरे आयुष्य की स्थिति सौ वर्ष की या हजार वर्ष की हो तो मुझे असुविधा देनेवाले की संख्या को मैं रहने न दूँ। इसका अर्थ कि उसके पाप के भाव की क्रूरता इतनी आयी कि अनन्त असुविधा देनेवाले मुझे कोई हो तो उन सबको उड़ाऊँ, इतनी जो कलुषितता अनन्त में, परिणाम में अनन्तता, उसके फलरूप से राज की व्यवस्था में कोई व्यवस्था है ही नहीं। एक प्राणी को मारे तो एक बार फाँसी दे। इतने अधिक प्राणियों को मारने का जो क्रूरता भाव, उसका फल राज में है ही नहीं। उसका फल प्रकृति में जहाँ

अनन्त प्रतिकूलता है, वहाँ अवतरित होगा। उसे नरक-योनि का स्थान कहा जाता है। समझ में आया? सब ही है, सब ही है। ऐसे तू इनकार करे, इससे कहीं चला जायेगा? तू नकार में चला जायेगा। समझ में आया? यह सब कल्पना है नरक। अरे! सुन न सुन! ऐसे क्लेश परिणाम में अनन्त क्रूरता तूने की, अनन्त पंचेन्द्रियों को भी मार डालने के भाव को घोंटा और एक नहीं परन्तु अनन्त हो न, लाख वर्ष मेरा आयुष्य हो, उन सबको उड़ा दूँ। ऐसे तेरे परिणाम की अनन्त क्लेशता का फल राजव्यवस्था में अनन्तगुणा कहाँ है? एक बार मारे। तो वह अनन्त पाप की क्लेशता का परिणाम का स्थान जहाँ अकेला दुःख का स्थान हो, वहाँ वह अवतरे, उस स्थान को नरकयोनि कहा जाता है। समझ में आया?

ऐसे तत्त्व के विरोध में ऐसा है। बहुत तत्त्व का विरोध बहुत करे तो उसके ज्ञान की बहुत हीन अवस्था हो जाये। बहुत हीन अवस्था हो। उसमें अवतरित हो, उसका नाम निगोदस्थान है। यह सब लॉजिक-युक्ति से सिद्ध हो सकता है। ऐसा नहीं कि भगवान कहते हैं, इसलिए (ऐसी बात है)। भगवान कहते हैं, वह न्याय से कहते हैं। ऐसा इसे बैठना चाहिए न? तत्त्व का बहुत विरोध करे, ज्ञानस्वरूप का इतना विराधक हो... इतना विराधक हो... सत्य का एक अंश भी स्वीकार नहीं करे, तो उस ज्ञान की इतनी असातना स्वयं ने अपनी की है कि जिस ज्ञान की हीन दशा (हो) कि दूसरे (जीव) उसे जीव मान सके, ऐसी सामर्थ्य न रहे और (मैं) जीव हूँ, ऐसी उसकी मान्यता भी न रह सके। ऐसी हीन दशा के अवतार को निगोददशा कहा जाता है। ऐई! धर्मचन्दजी! यह तो भगवान ने कुछ किया नहीं। यह तो जैसा था, वैसा कहा है और जाना है। ऐसे होता है... ऐसे होता है... ऐसे होता है... ऐसा करो तो ऐसा होता है... विपरीतता अनन्त करो तो उल्टे स्थान में जाता है। उसके लिये स्थान है। बहुत दुःख के स्थान सीधे पंचेन्द्रियरूप से नरक का है। तत्त्व की विराधना का स्थान निगोद है।

इसने जब पर का घात विचारा, तब यह आत्मघाती हो चुका। दृष्टान्त दिया, देखो, **जैसे गरम लोहे का गोला पकड़ने से अपने हाथ तो निःसन्देह जल जाते हैं।** है?

गोला। **इससे यह निश्चय हुआ, कि जो परजीवों पर खोटे भाव करता है, वह आत्मघाती है।** अपना घात करता है, अपने स्वरूप का। ज्ञान की दशा में अन्धापन लाता है अर्थात् ज्ञान के हीन कर डालता है, अर्थात् ज्ञान की दशा का घात करता है। **ऐसा दूसरी जगह भी कहा है कि जो आत्मा कषायवाला है,...** सर्वार्थसिद्धि। सर्वार्थसिद्धि का श्लोक है उक्तं में। '**स्वयमेवात्मनात्मानं हिनस्त्यात्मा कषायवान्। पूर्वं प्राण्यन्तराणां तु पश्चत्स्याद्वा न वा वधः॥**' हो या न हो? देखो न! सर्वार्थसिद्धि में पूज्यपादस्वामी ने लिखा है। **जो आत्मा कषायवाला है, निर्दयी है, वह पहले तो आप ही अपने से अपना घात करता है,...** समझ में आया? **इसलिए आत्मघाती है, पीछे परजीव का घात होवे, या न होवे।**

मुमुक्षु : यह कैसे होता होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या?

मुमुक्षु : अपना घात करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्या कहा जाता है यह? यह जो कुछ हो, उसे देखता रहता नहीं और उसमें ऐसा होगा या नहीं? उसमें ऐसा होगा या नहीं? ऐसा उल्टा काटे है। यह उल्टा काटे वह ज्ञान में अन्धापन लाता है, ऐसा कहते हैं। वेतरे समझे? यह कपड़ा होता है न कपड़ा। जैसा करना हो तत्प्रमाण काटे नहीं और आड़ा-टेढ़ा काटे। कोट बनाना हो और साड़ी बना दे। समझ में आया या नहीं? उल्टा काटे। हमारी काठियावाड़ी भाषा है। वेतरा काटते हैं न?

मुमुक्षु : प्रतिकूलता का घात....

पूज्य गुरुदेवश्री : घात यह करता है। अपने ज्ञान को ज्ञातारूप से न रखकर दूसरे में गड़बड़ और दूसरे से मुझे होगा और मुझसे पर में होगा, पर के काम कर दूँ, पर को दुःख दे दूँ, पर को सुख दे दूँ, ऐसी जो विपरीत मान्यता, वह जीव का घात है। कहो, समझ में आया या नहीं? जेचन्दभाई! यह समझ में आये तो फिर यह सब न रहे, खदबदाहट उड़ जाये। फिर एकदम यहाँ मर जाना, अन्यत्र जाना, यह न रहे उसे ऐसा भाव। ऐसी बात सच्ची परन्तु वह खड़ी होने के लिये क्या करना देवी? यह बात ही ऐसी

कैसी ? यहाँ से अब चला जाना है। परन्तु कहाँ जाना है ? कभी अपनी सत्ता कहीं खो बैठेगा कुछ ? वह तो अनादि-अनन्त सत्तावाला तत्त्व पड़ा है। अनादि-अनन्त है कहाँ जायेगा वह ? जाता है कहाँ ? क्या कहा ?

मुमुक्षु : नसीब होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : नसीब। परन्तु तुझे नसीब है, वह यहाँ है, वह क्या खोटा है ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह ... नहीं करना ऐसा। इसके लिये तो यह कहा जाता है। यह बात विचार में कैसे आवे ऐसा ?

जीव को आयु बाकी रही हो, तो यह नहीं मार सकता, परन्तु इसने मारने के भाव किये, इस कारण निःसन्देह हिंसक हो चुका,... यहाँ तो कर्तापन का भाव करके, मारने का भाव, दुःख देने का (भाव) करता है, ऐसी एकत्वबुद्धि राग के साथ है, उसे यहाँ हिंसा कहा गया है। **और जब हिंसा के भाव हुए, तब यह कषायवान हुआ।** यह सर्वार्थसिद्धि की व्याख्या करते हैं, हों! **कषायवान होना ही आत्मघात है।** भगवान स्वभाव अकषाय है। किसका ? आत्मा का स्वभाव अकषाय है, उसे कषायवाला, रागवाला, द्वेषवाला मानकर एकत्व हुआ, वही महा हिंसा, हिंसक है। दूसरे के प्राण मरे, न मरे, उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं। कहो, समझ में आया ?

★ ★ ★

गाथा - १२७

आगे जीवहिंसा का फल नरकगति है, और रक्षा करने से स्वर्ग होता है, ऐसा निश्चय करते हैं — पाठ में तो ऐसा इकट्ठा-इकट्ठा लिया है न नीचे। पाठ में अलग-अलग निकाला है टीका में। '**परजीवानां च कुर्वतां सग्गु स्वस्याभयप्रदानेन मोक्षो**' ऐसा है। है न ? पर जीव के अभयदान से स्वर्ग और अपने अभयदान से मोक्ष, ऐसा संस्कृत पाठ है। इन्होंने इकट्ठा कर डाला है अर्थ में। **उसके करनेवालों को स्वर्ग-मोक्ष होता है,...** इसलिए वे गड़बड़ करते हैं। ऐसा नहीं। एक से दो माने, ऐसा नहीं। टीका

में ऐसा स्पष्ट है। जो प्राणी परजीव के रक्षा के शुभभाव करे, उसे स्वर्ग मिले और जो जीव अपने चैतन्य भावप्राण की रक्षा का भाव करे, सम्यग्दर्शन आदि (करे), उसे मुक्ति मिले। दोनों अलग, दोनों के फल अलग, दोनों के कारण अलग। यह पाठ टीका में ऐसा है। अर्थ बराबर नहीं किया।

२५७) जीव वहंतहँ णरय-गइ अभय-पदाणेँ सग्गु।
बे पह जवला दरिसिया जहिँ रुच्चइ तइँ लग्गु॥१२७॥

जहाँ ठीक पड़े, ऐसा कर, बापू! हम तो तुझे मार्ग कहते हैं। आहाहा! आचार्य करुणा से कहते हैं, हों! करुणा से। भाई! मार्ग तो यह है, भाई! तुझे कहाँ जाना है? अब कर। तुझे जाना हो, ऐसा कर। पाप कर, ऐसा कहना चाहते हैं? परन्तु तुझे क्या रुचता है, बापू? तुझे खोटा क्यों रुचता है? ऐसा कहते हैं। तुझे रुचे ऐसा कर अर्थात् नरक के भाव कर, ऐसा कहना चाहते हैं कहीं? पाठ तो ऐसी भाषा बोलता है। मुनि ऐसा बोले? परन्तु इसका अर्थ कि भाई! ऐसे पाप के परिणाम से नरकादि जायेगा और आत्मा के भाव अथवा शुद्धभाव से मोक्ष है और शुभभाव होगा तो उसमें स्वर्ग मिलेगा। इसलिए यह वस्तु है, वह करनेयोग्य है, ऐसा।

जीवों को मारनेवालों की नरकगति होती है, अभयदान देने से... देखो! 'स्वर्ग' भाषा है न? पर को अभयदान में स्वर्ग। फिर नीचे निकालेंगे अन्दर से। पाठ में तो इतना है। पश्चात् मोक्ष निकालेंगे अन्दर टीका में। **'द्वौ पन्थानौ' ये दोनों मार्ग अपने पास दिखलाये हैं,...** देखो, तेरे भाव तेरे पास हैं, भाव दोनों तेरे पास है, ले! ऐसा। अपने पास है। उलटाभाव या सुलटाभाव तेरे पास है। पर में नहीं और पर के कारण से नहीं। **जिसमें तेरी रुचि हो, उसी में तू लग जा।** लो! आज्ञा तो ऐसी की। ऐई! धर्मचन्दजी! पाप में लग जा, ऐसा कहते हैं? भाई! तू सुनने आया है न! सुनने आया है, इसका अर्थ क्या? कि कुछ सच्ची जिज्ञासा लेकर आया है। तो तुझे तो सच्चा समझना है। वह कहीं पाप के परिणाम तू कर, ऐसा हमारे कहना नहीं है। किसलिए दूसरा छोड़कर आया सुनने? इतनी जिज्ञासा तुझे है तो अब यह सच्ची समझण कर और या मोक्ष के भाव प्रगट कर। राग बाकी रहेगा तो स्वर्ग का भाव आयेगा और स्वर्ग होगा, उसे तू जान।

भावार्थ :- निश्चयकर मिथ्यात्व, विषय-कषाय परिणामरूप निजघात... लो, देखा! इसका नाम निजघात। निश्चय से अर्थात् सत्य से, यथार्थ से। मिथ्या अर्थात् विपरीत अभिप्राय और पर के विषय में लक्ष्य और उसके भाव कषाय। ऐसे **परिणामरूप...** देखो, यह परिणाम है। इस परिणाम से निजघात। निजघात अर्थात्? त्रिकाल स्वभाव का घात कहीं होता नहीं। वर्तमान पर्याय में निर्मलता का घात होता है। निर्मलता प्रगट होनी चाहिए, उसे करता नहीं और मिथ्यात्व और कषाय के परिणाम से निज परिणाम व्यक्त होना चाहिए, उसका घात होता है। समझ में आया? **निश्चयकर मिथ्यात्व विषय कषाय परिणामरूप निजघात...** लो! इसमें भी यह आया। मिथ्यात्व विषय के परिणामरूप निजघात। क्या इसका अर्थ? निज शुद्ध परिणति उत्पन्न न हो और यह मिथ्यात्व के परिणाम उत्पन्न हो, तेरे निश्चयभाव प्राण की परिणति की उत्पत्ति का तू घात करता है।

व्यवहारनयकर ... परवस्तु है न, इसलिए (व्यवहारनयकर कहा)। **परजीवों के इन्द्रिय, बल, आयु, श्वासोच्छ्वासरूप प्राणों का विनाश, उसरूप परप्राणघात, सो प्राणघातियों के नरकगति होती है।** महा माँस और मदिरा पीवे, ऐसे भाव करे। उस भाव की बात है न? वह ऐसा करे। लो! वह तो कहे, जड़ की क्रिया से पाप नहीं लगता, माँस खाये तो दिक्कत नहीं। अरे... भगवान! तू क्या कहता है यह? यह माँस खाने की क्रिया कर नहीं सकता, परन्तु भाव किसका है? माँस खाने का भाव इसका है या नहीं? भाव का इसे पाप है। लो, यह तो कहे, जड़ का पाप नहीं, भले माँस खाये, तो उसका पाप उसे नहीं, ऐसा सोनगढ़वाले कहते हैं। अरे भगवान! बहुत साहस करता है तू। अति साहस! यह माँस की क्रिया होती है, वह तो परमाणु की है, परन्तु भाव किसका है? वह भाव करता है, वह पाप है। माँस आवे परन्तु नहीं लो न। क्रिया तो न भी हो। भाव किसका है? समझ में आया?

मच्छ होता है न, वह तन्दुलमच्छ। बहुत छोटा-छोटा।... हजार योजन का मच्छ ऐसा बड़ा। ऐई! पानी में मच्छ आते और जाते हों ऐसे। मुख फाड़ा हो। वह ऊपर से देखे बारीक। आहाहा! इतने अधिक मच्छ अन्दर आते हैं न, यह मूर्ख खाता नहीं। चले जाते हैं। वह अन्दर बैठे-बैठे परिणाम करता है। सातवें नरक का आयुष्य (बँधता) है। आहाहा! बड़ा मच्छ हो ऐसे हजार योजन का लम्बा। चार हजार कोस का। मुख ऐसे

चौड़ा करे तो कितना पानी और कितनी मछलियाँ आवे। वापस सब चले जायें। आये और जाये। वह (तन्दुल मच्छ) बैठा-बैठा देखे कि ऐसा यदि मैं होऊँ न, एक को भी न जाने दूँ। क्रिया तो कहाँ होती है वहाँ? तब एक व्यक्ति और कहे कि नहीं, यह क्रिया की इसलिए पाप हुआ। क्या किया? मुख ऐसे किया था। चर्चा चले न सब। वह गटुलालजी थे न। यहाँ आये थे, वह (संवत्) १९९२ के वर्ष में। फिर चर्चा यह चली। मेरे साथ बात नहीं की, दूसरे के साथ बात करते थे। परन्तु यह मैंने कहा, देखो भाई! भाव प्रमाण पाप होता है। (वह) कहे, नहीं, क्रिया प्रमाण पाप होता है। दूसरे के साथ बात करते होते हैं। कौनसी क्रिया? कहा, मच्छ ने क्या क्रिया की? कि उसने ऐसे मुख किया था। ऐसा किया था। उस क्रिया का पाप उसे लगा। अरे भगवान! भाई! जगत के प्राणी को बचाव करने के लिये भी दृष्टान्त मिले रहते हैं।

जीवों को मारनेवालों को नरकगति होती है। **उसरूप परप्राणघात, सो प्राणघातियों के नरकगति होती है। हिंसक जीव नरक ही के पात्र हैं।** माँस, मदिरा, शिकार, परस्त्री के लम्पटी, ऐसे पाप महा गृद्धि, वे चैतन्य के प्राण का अन्धापन करते हैं। अन्धा होना चाहते हैं। वे अन्धे नरक में जाते हैं, कहते हैं। फिर वह दु:ख भोगेंगे। हाय... हाय... दस हजार थोड़े में थोड़ी स्थिति, हों! (पहले नरक में) अधिकतम एक सागर और (सातवें में) ३३ सागर। **निश्चयनयकर वीतरागनिर्विकल्प स्वसंवेदन परिणामरूप जो निजभावों का अभयदान...** लो! देखो, व्याख्या। यह निश्चय अभयदान। लो, भाई यह बाकी रहेगा वापस। उसका सूक्ष्म अर्थ है न।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

नोट -प्रवचन नं० १५९ उपलब्ध नहीं होने से नहीं लिया गया है।

ज्येष्ठ शुक्ल २, गुरुवार, दिनांक - ०१-०७-१९६५
गाथा - १२८ से १३०, प्रवचन - १६०

१२८ वीं गाथा, परमात्मप्रकाश। देखो, बीच में है। **मोक्षमार्ग के घातक घर, परिवार आदि को छोड़कर, मोक्षमार्ग का उद्यमी होके,...** देखो! 'उद्यमी होके' है, हों! **ज्ञान-दर्शनस्वभाव को रखनेवाला शुद्धात्मा की प्राप्ति...** यहाँ तो मुक्त की अवस्था में है, मुक्त अवस्था में। यह मुक्त अवस्था की बात है। शिवपंथ किया है न, मुक्त अवस्था। स्वभाव त्रिकाली की बात नहीं। ज्ञान, दर्शन जो स्वभाव मुक्त अवस्था में है सिद्ध भगवान को, परमात्मा सिद्ध भगवान को पर्याय में ज्ञान-दर्शनस्वभाव रखनेवाला शुद्धात्मा अर्थात् मुक्तदशा आत्मा की, उसकी प्राप्ति का उपाय। पाठ में शिवपंथ है न? शिवपंथ। '**सिव-पहि णिम्मलि**' शिव अर्थात् मोक्ष, उसका पंथ। आत्मा दर्शन और ज्ञान, जिसका स्वभाव जिसकी पर्याय में—अवस्था में परिपूर्ण जो रखता है, ऐसा जो परमात्मा अथवा मोक्षदशा, उसकी प्राप्ति का उपाय कर। क्या उपाय?

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्ररूप मोक्ष का मार्ग है, उसमें प्रीति कर। वह शिव अर्थात् मोक्ष और यह मोक्ष का मार्ग। संसार और संसार का मार्ग तो अनादि से कर रहा है। अब एकबार तो ऐसा मनुष्यपना मिला, उसमें आत्मा पूर्ण स्वरूप, जिसमें ज्ञान और दर्शन को रखनेवाली दशा, जिस दशा में विकार, अपूर्णता कुछ होती नहीं, ऐसी जो शिव अर्थात् मोक्षरूपी दशा, उसकी प्राप्ति का उपाय सम्यग्दर्शन। आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप की अन्तर्मुख की अन्तर दृष्टि, वेदन-स्वसंवेदनज्ञान और स्वरूप में स्थिरता, वह मोक्ष का उपाय है। कहो, समझ में आया? यह देह-बेह कुछ उपाय है नहीं। यह तो नाशवान है, मिट्टी धूल है। यहाँ तो पुण्य-पाप के विकल्प, वे भी तुझे शरण नहीं। मोक्ष का मार्ग वह नहीं।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्म्यक्चारित्ररूप भगवान आत्मा जब मुक्तदशा में... ज्ञान और दर्शन के स्वभाव को धारक मुक्त अवस्था, तो आत्मा भी त्रिकाल ज्ञान

और दर्शनस्वभाव को धरनेवाला आत्मा त्रिकाल। उसके अन्तर में शुभ और अशुभ के राग से नाशवान भाव से हटकर त्रिकाल ध्रुवस्वभाव जिसमें दर्शन और ज्ञानस्वभाव भरा है, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और लीनता, वही पूर्ण मुक्ति का उपाय है। कहो, समझ में आया? गृहस्थ को हो या मुनि को, मार्ग तो यह है। 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पंथ।' भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में वर्तमान दर्शन और ज्ञान से परिपूर्ण भरपूर पदार्थ है, उसकी एकाग्रता श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति द्वारा जिसमें अकेला ज्ञान, दर्शनस्वभाव ही रह जाये, विकार न रहे, ऐसी दशा को मोक्षदशा कहते हैं। उसके उपाय को सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र कहते हैं। समझ में आया?

उसमें प्रीति कर। यह प्रीति अनन्त काल से शुभ-अशुभराग में, देह में नाशवान में प्रीति अनन्त बार की। अविनाशी ज्ञान और दर्शन धारक ध्रुवतत्त्व में अनन्त काल में एक सेकेण्ड भी तूने प्रीति नहीं की। इसलिए उसमें प्रीति कर, मोक्षमार्ग में प्रीति कर।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अर्थात् इसका अर्थ कि विकार की आसक्ति छोड़। पुण्य और पाप के भाव होते हैं, उनका राग छोड़, प्रीति छोड़, रुचि छोड़।

जो मोक्षमार्ग रागादिक से रहित होने से महा निर्मल है। पाठ ही है न। '**सिव-पहि णिम्मलि**'। '**णिम्मलि**' की व्याख्या की। भगवान आत्मा की मुक्तदशा, उसका पंथ तो अत्यन्त निर्मल है। वह शुद्धस्वरूप दर्शन, ज्ञान से भरपूर आत्मा आनन्द आदि गुणों से भरपूर तत्त्व है। उसकी अन्तर्मुख होकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र (प्रगट करना) वही शान्ति और पूर्ण आनन्द की प्राप्ति का उपाय है। निर्मल यह उपाय, बाकी सब उपाय है नहीं। कहो, समझ में आया इसमें? बीच में राग आवे दया, दान, व्रतादि का विकल्प, यह कहीं मोक्ष का उपाय नहीं, यह तो बन्ध का कारण है। कहो, समझ में आया? **मोक्षमार्ग रागादिक से रहित होने से महा निर्मल है।** देखो, है न? '**रागादिरहितत्वेन निर्मलः**'।

बात यह है कि यह वस्तुस्वभाव पूरा शुद्ध निर्मल ध्रुव अनन्त-अनन्त शान्त और आनन्दरस का पिण्ड प्रभु आत्मा, उसका अन्तर में इसे विश्वास नहीं आता। इसलिए

फिर यह कुछ देह की क्रिया और कुछ दया-दान के भाव और उस द्वारा धीरे-धीरे आत्मा कल्याण करेगा, ऐसा अज्ञानी अनादि से मान रहा है। वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव कहते हैं, भाई! मुश्किल से मनुष्यपना मिला। अभी कहेंगे, सब नाशवान है।

मुमुक्षु : सब?

पूज्य गुरुदेवश्री : सब नाशवान, भाई! अकृत्रिम पदार्थ तो तू है ध्रुव। संयोग आयी हुई चीज़ें, संयोग की अपेक्षा से सभी कृत्रिम हैं। वस्तुरूप से वस्तु की यहाँ बात नहीं।

भगवान आत्मा ज्ञान, दर्शन और आनन्द से भरपूर ध्रुव अविनाशी पदार्थ, उसे पुण्य-पाप के भाव से लेकर सब कृत्रिम है। समझ में आया? ध्रुव चिद्घन वस्तु की दृष्टि के समक्ष यह शुभ-अशुभभाव, शरीर, वाणी, मन, यह सब संयोगी अवस्थावाली वस्तु नाशवान है। परमाणु की यहाँ अभी बात नहीं। संयोग में अवस्था से घटित होती दशा, वह सब कृत्रिम और नाशवान है। समझ में आया? ऐसा मोक्ष का मार्ग भगवान परमात्मा त्रिलोकनाथ ने फरमाया। भाई! तेरे शिव अर्थात् मोक्ष का मार्ग तो तेरे पास अन्दर में है। सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र, वह अन्तर स्वभाव के आश्रय से प्रगट होता है। वह कहीं पर के अवलम्बन से प्रगट नहीं होते। उसमें प्रीति कर और निर्मल मार्ग में जा। यह तो परमात्मप्रकाश शास्त्र है न। पहली शिव की बात की कि शिव अर्थात् प्रगट परमात्मा। कैसे? कि अत्यन्त दर्शन और ज्ञान अकेली दशा रह गयी। विकार नहीं, ऐसा। तो ऐसी निर्मलदशा का कारण भी यह आत्मा ज्ञान-दर्शन से भरपूर भगवान, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को कारणरूप आत्मा है और वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के कारण का कार्य मोक्ष है।

मुमुक्षु : निर्मल।

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्मल-मल नहीं। बीच में रागादि आवे, होते हैं, पूर्ण न हो वहाँ। वह मोक्ष का मार्ग नहीं।

★ ★ ★

गाथा - १२९

आगे फिर भी अनित्यानुप्रेक्षा का व्याख्यान करते हैं — थोड़ा इसमें अनित्य का आया है न। इसलिए थोड़ा विशेष कहते हैं। १२९ (गाथा)।

२५९) जोइय सयलु वि कारिमउ णिक्कारिमउ ण कोइ।
जीविं जंतिं कुडि ण गय इहु पडिछंदा जोइ॥१२९॥

हे योगी! यहाँ तो योगी को सम्बोधन करके (कहते हैं)। हे धर्मी! हे योगी अर्थात् आत्मा के शुद्धस्वरूप में जुड़ान करनेवाले। अनादि का विकार में जुड़ान करनेवाला, उसे अयोगी कहते हैं। अयोगी होंगे चौदहवेंवाले? भोगी, भोग का योगी अर्थात् भोग में जुड़नेवाला। राग और द्वेष, पुण्य और पाप के भाव में जिसकी एकाग्रता, वह स्वरूप के योग से रहित हुआ अयोगी है। समझ में आया? योग का अर्थ ही यह है। नियमसार में वहाँ कहा है पाठ। स्वरूप अन्दर पूर्णानन्द प्रभु, उसमें दृष्टि लगाकर, उसमें एकाकार हो, ऐसी जो वीतरागी पर्याय का योग, उसे साधनेवाले को योगी कहा जाता है। यह अन्यमति के बाबा की बात नहीं है। उसे तो कुछ भान भी नहीं कि क्या वस्तु आत्मा है। भले वह बाबा कहलाये, योगी कहलाये, जटा रखे और ऐसे ध्यान करे। वे सब बिना एक के शून्य हैं।

लोगों को बाहर की चीज़ में इतनी अधिक महिमा आ जाये न। कोई साधु हो जाये और कोई साध्वी होय और हाथ में ऐसे कंकू पड़ता हो और ऐसा पड़ता है न। लोग पागल होकर चल निकले। अब कंकू पड़े या हीरा पड़े, उसमें आत्मा को क्या? होवे कोई भूतड़ा-बूतड़ा, वह ऐसे-ऐसे करे तो कंकू पड़े। परन्तु उसमें आत्मा को क्या? परन्तु चल निकलते हैं अज्ञानी। अभी कहते थे न? चिमनभाई कहाँ गये? अपने भाई चिमनभाई, नहीं? कहीं तुम्हारे वहाँ वह एक बाई थी। चिमनभाई ने कहा? किसने कहा? दूसरे ने कहा। नहीं, वह नहीं। यह तो एक बाई। पड़े उसमें क्या है परन्तु? यह तो एक बाई का किसने कहा नहीं? विष्टा चूंथे अब तो। शाम को किसी ने कहा था। एक बाई को लोग माने-माने कि इतने हजारों लोग, लाखों लोग आते थे। पागल हो गयी

तो फिर विष्टा चूंथती है। कल किसने कहा? शाम को कहा किसी ने। मैनेजर ने कहा। हाँ। चन्दुभाई ने नहीं? यह सच्ची बात। लाखों मनुष्य पागल, वह कहीं मूर्खता की हद होगी? और पागल के गाँव कहीं अलग बसते होंगे? आहाहा! परन्तु एक जरा बाई निकली, ऐसा हुआ और हाथ में से यह होता है। धूल में भी क्या अब? बड़ा देव हुआ तब (इच्छे कि) यह मकान हजारों हो जाओ तो तुरन्त हजार हो, हीरा के गढ़ हो जाये तो हो। परन्तु उसमें क्या हुआ? ऐसा अभव्य जीव भी अनन्त बार ऐसे भाववाला वचनलब्धिवाला हुआ। परन्तु वह वस्तु क्या?

भगवान आत्मा एक समय में भरपूर चैतन्य हीरा चमत्कारी रत्न, उसकी एकाग्रता होने पर अन्दर में शान्ति, श्रद्धा, ज्ञान झरे, वह चमत्कार है। दूसरा चमत्कार धूल का चमत्कार अब देव अनन्त बार हुआ, नौवें ग्रैवेयक का देव अनन्त बार हुआ, (उसमें) हुआ क्या? उस देव की इतनी ऋद्धि होती है कि ऐसे हजारों गाँव बना दे सोना के। ऐसी ऋद्धि उसे होती है। हजारों गाँव बना दे ऐसे श्रीकृष्ण के रूप बनावे लाखों, सोना के गढ़ बना दे, द्वारिका बना दे। लो! उससे भी क्या? वह तो देव की ऋद्धि विक्रिया हो, उसमें आत्मा को क्या? आहाहा! यह चन्दुभाई ने शाम को कहा था। एक बाई को लाखों लोग... सूरत में कहा। सूरत में कहाँ कहा? अन्यत्र। उसमें वह कहे, पागल हो गयी। पागल हो गयी तो विष्टा चूंथती है अभी। अरे... परन्तु उसमें कंकू आया तो क्या? यह वह कहीं चीज़ है?

चमत्कार तो चैतन्य भगवान, आहाहा! अन्दर एकाग्र होने पर शान्ति का सागर बहे, और उसकी श्रद्धा करने से मुक्ति के पंथ में बहे, वह चमत्कार है। (दूसरा) चमत्कार कौन सा था धूल का? भगवान अमृतचन्द्राचार्य तो बारम्बार कहते हैं चैतन्यचमत्कार... चैतन्यचमत्कार... पण्डितजी! वह चैतन्यचमत्कार आता है, कलश में आता है समयसार में। यह हेतु बताते हैं चैतन्यचमत्कार। आहाहा! बाहर की ऋद्धि का नहीं, यह पुण्य-पाप के विकल्प का नहीं। प्रभु चैतन्यमूर्ति पूर्णानन्द ज्ञायकभाव... (तू है न), भाई! उसके चमत्कार की तुझे महिमा आती नहीं और दूसरी महिमा में मर गया अनन्त काल से।

इसलिए कहते हैं कि **हे योगी...** उसमें जोड़ा-जोड़ा। प्रभु! तेरा चैतन्यमूर्ति परमात्मा पड़ा है, उसमें त्राटक लगा। त्राटक समझ में आता है? ऐसे त्राटक नहीं करते? एक के ऊपर ऐसे नजर करे, उसे त्राटक कहा जाता है। इसी प्रकार अन्दर भगवान आत्मा शुद्ध परमात्मा निजानन्द से भरपूर भगवान में त्राटक लगा, उसमें एकाकार की दृष्टि लगा कि वहाँ से हटे नहीं। ऐसी दृष्टि को चमत्कार सम्यग्दर्शन कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? सकल **सभी विनश्वर है,...** प्रभु! तेरे साथ सब दिखता है न। यह पुण्य-पाप के भाव भी नाशवान हैं। उत्पन्न ध्वंसि, उत्पन्न ध्वंसि। आहाहा! यह दया, दान, व्रत के भाव भी विकारी उत्पन्न और ध्वंसि। उत्पन्न होते हैं और नाश होते हैं, उत्पन्न होते हैं और नाश होते हैं। शरीरादि वाणी यह सब धूल। यह पर्याय उत्पन्न हो और पर्याय नाश हो। परमाणु का अभी यहाँ कुछ काम नहीं।

अरे! **विनश्वर हैं, अकृत्रिम कोई भी वस्तु नहीं है,...** तेरे ध्रुव चैतन्य के अतिरिक्त अविनश्वर कोई चीज़ है नहीं। सब विनश्वर... विनश्वर... विनश्वर... टिकती चीज़ में दृष्टि दे तो दृष्टि स्थिर हो। अ-टकती चीज़ में दृष्टि दे तो दृष्टि स्थिर कहाँ से हो? क्या कहा? टिकता तत्त्व त्रिकाल ध्रुव वस्तु में दृष्टि दे तो वह स्थिर वस्तु है तो दृष्टि भी स्थिर होगी। राग और पुण्य और संयोग नाशवान में दृष्टि दे तो दृष्टि भी अस्थिर और वस्तु भी अस्थिर। समझ में आया? यह यहाँ कहना चाहते हैं। भाई! वस्तु स्वभाव है न, भाई तेरा। ध्रुव बिम्ब पड़ा है ऐसा बड़ा। वह स्थिर वस्तु है। उसमें दृष्टि देने से दृष्टि वहाँ एकाकार को पायेगी। यहाँ राग, पुण्य और पर में दृष्टि दे तो दृष्टि अस्थिर और वस्तु अस्थिर। कहीं स्थिरता होगी नहीं। समझ में आया? यह तो मुद्दे की रकम की बात है।

मुमुक्षु : परमात्मा के पास तो मुद्दे की ही बात हो न।

पूज्य गुरुदेवश्री : परमात्मा पुकारते हैं, भाई! तेरी दृष्टि यह कर। यह किये बिना सब थोथा है।

कोई भी वस्तु नहीं है,... क्या? अकृत्रिम। अभी उस द्रव्य की अपेक्षा से बात नहीं लेनी। द्रव्य तो सब अकृत्रिम अनादि-अनन्त है। वह यहाँ बात नहीं। अपना अकृत्रिमपना त्रिकाली ध्रुव, उस दृष्टि के समक्ष सभी संयोगी चीज़ों की पर्यायें पलटती

हैं और पुण्य-पाप भी कृत्रिम और क्षणिक है, इसलिए विनश्वर है, अविनश्वर के ऊपर दृष्टि दे। विनश्वर के ऊपर से दृष्टि उठा—उठा। ओहो! परमात्मप्रकाश है। **जीव के जाने पर उसके साथ... 'देहो न गतः' 'कुडि' 'कुडि'** शब्द लिया है न। **'कुडि'** अर्थात् शरीर-देह। यह जीव यहाँ से निकलेगा तो देह साथ में नहीं आयेगी। यह तथ्य। लो! पड़ा रहेगा यहाँ। क्या तेरे लिये शाश्वत् है? समझ में आया? यह प्रवचनसार में आता है पीछे, नहीं? ध्रुव। पीछे आता है। ... तुझे सब अध्रुव है। ध्रुव तो तेरा आत्मा है। पीछे आता है। सब आचार्यों ने इस समयसार के ही बीज फिराये हैं। समयसार में तो एक-एक कलश और एक-एक गाथा और टीका में बहुत भाव भरे हैं!

कहते हैं, **जीव के जाने पर उसके साथ...** यह शरीर भी यहीं का यहीं रहेगा। भाई! यह शरीर पड़ा रहेगा यहाँ राख, धूल। **शरीर भी नहीं जाता, इस दृष्टान्त को...** यह **'पडिछंदा'** का अर्थ किया। **'पडिछंदा'** अर्थात् दृष्टान्त। **इस दृष्टान्त को प्रत्यक्ष देखो।** प्रत्यक्ष देख। **'इमं दृष्टान्तं पश्येति'** यह शरीर भी जीव जाये तो साथ में नहीं आता। तेरे लिये कौन सी दूसरी चीज़ अविनाशी है? यह सब नाशवान है। यह शरीर की सम्हाल की, खाया, पिया, नहलाया, इसे साफ किया। एक क्षण में जीव छूटा फू... ऐसे हो जायेगा। अरे! इतनी सम्हाल की तो भी साथ में नहीं आया? सवेरे खड़े होकर साबुन से नहलावे, उसे खिलावे, मौसम्बी के पानी और उस दाडम का क्या कहलाता है? अनार? बड़े दिल्ली के अनार। उसका पानी। एक बार भी बापू तेरे साथ नहीं आयेगा, हों! अर्थात् कि अभी भी तेरे साथ तेरा नहीं, ऐसा। उसकी रुचि छोड़कर भगवान की रुचि कर न! महिमावाला भगवान तू आत्मा, हों! वापस भगवान अर्थात् दूसरे भगवान नहीं।

भावार्थ :- हे योगी! टंकोत्कीर्ण (अघटित घाट-बिना टांकी का गढा) अमूर्तिक पुरुषाकार आत्मा... भगवान आत्मा अरूपी और पुरुषाकार, पुरुषाकार। शरीरप्रमाण उसका आकार है न। **आत्मा केवल ज्ञायकस्वभाव...** अकेला जाननेवाला... जाननेवाला स्वभाव। अकृत्रिम टंकोत्कीर्ण ज्ञायक एक स्वभाव **अमूर्तिक पुरुषाकार आत्मा केवल ज्ञायकस्वभाव...** ज्ञायक। उसके साथ एक कहाँ डालना? एक स्वभाव। ज्ञायक एक

स्वभाव। ज्ञायक एक स्वभाव है न अन्दर? ज्ञायक एक स्वभाव कहा न। मूल तो यहाँ वस्तु एक बतलानी है ऐसी अखण्ड एक। यहाँ अनेक और यह एक। एक ऊपर तो मूल वस्तु है। क्या अन्दर में है?

क्या कहते हैं? तुझे कहाँ नजर करने की है? तुझे आत्मा को साधना हो तो कहाँ नजर करना? अथवा हित करना हो तो हित का रास्ता और उस रास्ते का ध्येय क्या? अमूर्तिक भगवान आत्मा रूप, गन्ध, रस, स्पर्श रहित है। पुरुषाकार—यह शरीरप्रमाण आकार उसका है आकृति। **आत्मा...** ऐसा करके क्या करना कहा? कि लोग कहते हैं, पूरे लोक प्रमाण अद्वैत है, व्यापक है, व्यापक है। ऐसा है नहीं। यह सब कृत्रिम बातें अज्ञानियों ने की है। यहाँ शरीरप्रमाण अपना स्वरूप भिन्न अन्दर है, बाहर व्यापक-फ्यापक नहीं। **आत्मा केवल ज्ञायक एक स्वभाव...** अकेला केवल... केवल... केवल... यहाँ केवल लिया। उस केवल का अर्थ एक कर डाला लगता है। टंकोत्कीर्ण ज्ञायक एक। ऐसा लगता है, हों! देखा! केवल शब्द कर डाला है न, भाई! इसलिए केवल का अर्थ एक कर डाला। और नित्यानन्द एक स्वरूप, वह और दूसरा आयेगा। वहाँ एक नहीं।

अमूर्तिक पुरुषाकार आत्मा केवल ज्ञायक... अथवा ज्ञायक एक स्वभाव, ज्ञायक एक स्वभाव अथवा **केवल ज्ञायकस्वभाव...** अकेला परिपूर्ण, अकेला ध्रुव, ज्ञायकस्वभाव अकेला। **अकृत्रिम...** अकृत्रिम चीज़। **वीतराग परमानन्दस्वरूप...** वीतराग नित्यानन्द। ऐसा है न? '**वीतराग नित्यानंद एक स्वरूपात्**' है न? वीतराग परमानन्दस्वरूप। नित्यानन्द का अर्थ किया। नित्य अर्थात् परम किया। परमानन्द एकस्वरूप, ऐसा लेना चाहिए। कहो, समझ में आया? अकृत्रिम वीतराग परमानन्द एक स्वरूप ऐसा भगवान आत्मा, **उससे जुदे...** मन, वचन और काया अभी भिन्न। तीनों काल भिन्न। भिन्न तत्त्व वे भिन्न ही होते हैं न! वह तत्त्व कहा अन्दर घुस गया है? बाहर... बाहर... बाहर... बाहर... बाहर... समझ में आया?

जुदे जो मन,... मन यहाँ है, वह भगवान आत्मा से भिन्न है। यह वाणी भिन्न है और यह काया भी भिन्न अभी। **वचन, काय के व्यापार उनको आदि ले...** देखो, उसका

व्यापार वापस उसकी पर्याय होती है। **आदि ले सभी कार्य-पदार्थ विनश्वर हैं।** नाशवान... नाशवान... घड़ीक में ऐसे होते हो गया, लो!

मुमुक्षु : मन, वचन, काया का व्यापार तो जीव करे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल करे? यह जीव क्या करे? वह तो यह कहते हैं कि इसकी पर्याय वह नाशवान है, वह उससे होती है। तुझसे कहाँ था? मन है, यहाँ अनन्त परमाणु का बना हुआ। वह उसकी—जड़ की पर्याय है। यह वाणी परमाणु से—शब्द से बनती है, वह जड़ की है। आत्मा से वह वाणी निकले? आत्मा में वाणी भरी है अन्दर? असंख्य प्रदेश में अनन्त गुण भरे हैं, उसमें कोई रजकण भरे हैं वाणी के कि उसमें से बाहर निकले? उसमें तो भरी है शान्ति और आनन्द। एकाग्रता हो तो शान्ति और आनन्द बाहर आवे। उसमें भरा हो, वह आवे या न भरा हो, वह आवे? निवृत्त होता नहीं, नहीं? काम बहुत अधिक। अनेकान्त का करना, वापस पढ़कर उसे रचना, काम कितने! अपना प्रचार करना है या दुनिया का? प्रचार का विकल्प हुआ, इसलिए प्रचार कहीं बाहर में होगा? ऐसा तो विकल्प में जोर यदि आ जाये तो बाहर में होगा... यह तो मार्ग, बापू!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या बढ़ गया? किसमें? वह तो बढ़ने का था, वह बढ़ा। किसके कारण से? रामजीभाई ने पुस्तक लिखी इसलिए? सब पुस्तक ... में हो, वह पहले पढ़े, बाद में छपाये, और छपाकर आकर वापस पढ़े।... दो-दो बार किया, खबर है या नहीं? लो, इन्हें खबर है, हाँ करते हैं। परन्तु अपने जितनी पुस्तकें लगभग पहले पढ़कर फिर जाये और फिर वापस आकर पढ़े कि इसमें क्या अन्तर है। आहाहा! अरे, भगवान! कहते हैं, यह तो बापू! बाहर की चीज है। यह बाहर का बनना, वह कहीं आत्मा के विकल्प के आधीन नहीं और विकल्प है, वह नाशवान है। आहाहा! यह तो भाई! वीतराग मार्ग, बापू! वीतराग मार्ग परमात्मा का। सर्वज्ञ हो गये, वीतराग हो गये किसलिए? क्योंकि वे राग में नहीं रुके? दूसरे के धर्म प्रचार के लिये राग में क्यों नहीं रुके?

मुमुक्षु : उपाय शोध निकाला न, परन्तु निर्विकल्प होकर प्रचार हो, ऐसा शोध निकाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अपने आप होना वह होता है। वाणी निकलती है और बाहर में होने का हो वह होता है। उसके अन्दर में कुछ है नहीं। मैं पूर्ण होऊँ। स्वरूप जैसा भासित हुआ, वैसा पर्याय में पूर्ण होऊँ। यह विकल्प। इसमें तीर्थंकरगोत्र आदि के परमाणु बँध गये। उनका जब केवल (ज्ञान) हुआ तो वहाँ वाणी निकली, ध्वनि उठी। पूर्ण परमात्मपद की प्राप्ति का उपाय उसमें-वाणी में निकला। उसे पूर्ण होऊँ ऐसा विकल्प था, परमाणु ऐसे बँधे, ध्वनि ऐसी खिर गयी।

मुमुक्षु : वाणी तो ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहनेमात्र है, वाणी कैसी आत्मा की? वाणी तो वाणी की है। संयोग से कह जाती है। उस वाणी के काल में निमित्त कौन था, इतनी संयोग से बात कही जाती है। उस वाणी के कर्ता भी भगवान नहीं।

यह बड़ी चर्चा चली थी न (संवत्) २००६ के वर्ष में। नहीं, भगवान पहले समय में वाणी ग्रहे, दूसरे समय में छोड़े। ठीक भाई! पण्डितजी! ऐसी चर्चा हुई थी। हम पालीताणा गये थे। भाई! वाणी-बाणी आत्मा ग्रहे और छोड़े नहीं। तब वहाँ से आवाज आयी बाहर में सामने पड़े थे न। नहीं, भगवान केवली भी पहले समय में वचनवर्गणा को ग्रहते हैं, दूसरे समय में छोड़ते हैं। भगवान! कठोर बातें, बापू!

मुमुक्षु : यह तो ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वाणी ग्रहे कौन? वे तो ज्ञाता हैं, केवली हैं। उन्हें खबर है कि इस समय में परमाणु आकर इस समय में पर्याय होगी। भगवान ग्रहे किसे? और छोड़े किसे? बापू! २००६ के वर्ष में चला था। यात्रा को गये थे न? ... सामने। अरे भगवान! यहाँ हमारे मोर्चा-बोर्चा नहीं और हम किसी के साथ वाद-विवाद में आये नहीं। हम तो आये थे यात्रा (के लिये)। चलो वापस। हमारे कुछ नाक जाती नहीं कि यहाँ नहीं पहुँचे या नहीं रहे। भागे, बापू! क्या करे? भाई! आहाहा!

केवली तीन लोक के नाथ परमात्मा जिन्हें एक समय में तीन काल-तीन लोक

एक समय का ज्ञान में जानने का परिणमन हो गया। अब उन्हें यह परमाणु ग्रहण करना और छोड़ना, प्रभु! कहाँ है? आत्मा में पर का ग्रहण करना-छोड़ना तीन काल में नहीं। आहाहा! परन्तु संयोग देखकर वाणी खड़ी हो और निकले तो मानो भगवान ने ग्रही और छोड़ी। भ्रम है, भाई! नाशवान पदार्थ पर्याय, वह परमाणु के कारण से उत्पन्न होनेवाली हो तो होती है। ६६ दिन तक नहीं निकली। (महावीर) भगवान को केवलज्ञान हुआ और ६६ दिन तक (दिव्यध्वनि) नहीं निकली

मुमुक्षु : गणधर नहीं थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : गणधर, यह तो निमित्त की बातें हैं। यह तो उन परमाणुओं की पर्याय परिणमने का उन्हें स्वकाल उस जाति का नहीं था, इसलिए वह वाणी नहीं निकली। भाई! बातें तो ऐसी है। गणधर आये, इसलिए वाणी निकली। तो वाणी उनके कारण से निकली?

मुमुक्षु : योगानुयोग हुआ होगा न।

पूज्य गुरुदेवश्री : उस योगानुयोग का अर्थ क्या? वही ऐसा है कि निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध उसे कहा जाता है, परन्तु निकली है स्वयं के कारण से। वाणी को खबर है? भगवान को तो खबर है कि गणधर इस समय आयेंगे, यहाँ वाणी निकलेगी। वाणी निकलेगी, ऐसी खबर है। वाणी निकालेंगे, ऐसा है? आहाहा! गणधर आये इसलिए वाणी निकली, ऐसा भगवान जानते हैं? भगवान तो एक समय में तीन काल के ज्ञेयों को जानते हैं।

मुमुक्षु : शास्त्र में ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ, शास्त्र में व्यवहार से बोला जाता है। गणधर आये और वाणी निकली ऐसा। इसलिए कहीं वाणी उनके कारण से निकली, वाणी को—जड़ को खबर है? और भगवान को खबर है, इसलिए भगवान ने कहीं वाणी में प्रेरणा की, इसलिए निकली? बापू! मार्ग वह कोई अलौकिक है, भाई! वीतराग मार्ग और अन्य मार्ग में बहुत अन्तर है, भाई! यह तो वीतराग प्रभु है। अत्यन्त उदास... उदास... ज्ञायक द्रव्य तीन काल से उदास है। यह तो केवल (ज्ञान) दशा हो गयी। उन्हें कोई प्रश्न पूछे

तो सुने और फिर उत्तर दे, ऐसा है ? ध्वनि में आना हो वह आता है। वाणी के काल में पूछे गणधर, इन्द्र। साधारण तो पूछ नहीं सकता पुण्य बिना। ऐसा पुण्य न हो तो पूछे नहीं कि जिससे सामने जवाब आवे, ऐसा वापस परमाणु... उसका पुण्य हो तो ऐसा वहाँ निमित्तरूप से हो न। यह तो उसे ही आवाज आती है। गणधर पूछे, इन्द्र पूछे, वासुदेव, बलदेव। आहाहा!

कहते हैं कि भगवान! तेरे स्वभाव में तो दूसरा कुछ नहीं न, भाई! वे सब परमाणु उनके कारण से उठकर आवाज निकले, वह सब नाशवान प्रभु! उनके ऊपर प्रेम किसलिए करता है ? हम ऐसा बोले, हमने इसको ऐसा कहा। भाई! तू वाणी में आया है ? वाणी के अस्तित्व में आत्मा का अस्तित्व आया है ? आये बिना मैंने यह वाणी की और ऐसे इसको समझाया, ऐसा भगवान आत्मा में से कहाँ से आया ? समझ में आया ? **मन, वचन, काय के व्यापार उनको आदि ले सभी कार्य-पदार्थ विनश्वर हैं।**

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : रहे तो तीनों काल परमाणु रहते हैं और पर्याय रहा करती है उनकी। उससे क्या ? यहाँ संयोग में आयी हुई पर्याय क्षण-क्षण में बदलती है, नाशवान है। अविनाशी तो प्रभु तू है। अविनाशी में नजर करने से अविनाशी पद की प्राप्ति होगी। कहीं नाशवान में नजर करने से अविनाशी पद की प्राप्ति होगी ?

कहते हैं, **इस संसार में देहादि समस्त सामग्री अविनाशी नहीं है,...** तेरे लिये सब नाशवान... नाशवान... अभी तो आगे ऐसा कहेंगे (गाथा) ३० में तो। मुनि को लक्ष्य करके कहेंगे। यह अभी साधारण को लक्ष्य करके कहा। संसार में देह, वाणी, मन, सब भाई! सामग्री साथ में दिखती है, वह तो नाशवान है, अविनाशी नहीं। **जैसा शुद्ध-बुद्ध परमात्मा अकृत्रिम है,...** देखो, **वैसा देहादि में कोई भी नहीं है,...** अकृत्रिम तू, यह सब कृत्रिम है। तेरी जाति के ये हैं नहीं। **वैसा देहादि में कोई भी नहीं है,...** आत्मा अनादि-अनन्त टिकता तत्त्व। देहादि तो संयोगी पर्याय आये और जाये... आये और जाये, वह उसके कारण से। सब नाशवान है। **सब क्षणभंगुर हैं। शुद्धात्मतत्त्व की भावना से रहित...** लो! भगवान शुद्धस्वरूप की भावना अर्थात् एकाग्रता। शुद्ध प्रभु आत्मा की

अन्तर एकाग्रता दर्शन-ज्ञान-चारित्र की, उससे रहित। **मिथ्यात्व, विषय-कषाय हैं...** उससे उल्टे तो मिथ्यात्व और विषय-कषाय है। **उनसे आसक्त होके जीव ने जो कर्म उपार्जन किये हैं,...** कर्म में निमित्त हुआ। उपार्जन किया न? **उन कर्मों से जब यह जीव परभव में गमन करता है, तब शरीर भी साथ नहीं जाता।** सोने की अंगूठी जैसा हो रूपवान। लाल लाल होंठ हो, काले बाल हों। भगवान चला गया।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, शान्तिलाल। कैसा शरीर था! गायक-गायक। वे अजमेर के गायक थे न भाई? पण्डितजी! वे अजमेर के नहीं शान्तिलाल? भजन मण्डली। यह तो शांतिलाल वोहरा बहुत गाये। सुभागमल डॉक्टर... हीराचंद वोहरा का भाई था। शान्तिलाल भी गायक, वह गायक। अपने यहाँ बहुत बार आते थे, नहीं? बहुत गायक। उड़ गये क्षण में, लो! छोटी उम्र ३६ (वर्ष)। क्या हुआ, सोते थे। जगाये तो मर गये। अजमेर। वोहरा-वोहरा कैसे वे? महुरीलाल वोहरा के पुत्र शान्तिलाल बहुत जोरदार गायक। अजमेर की मण्डली। सोभागमल डॉक्टर उनके ऊपरी। वे सब आते हैं न अपने हर समय आते हैं। अभी आये थे न राजकोट। यहाँ बोलते। बहुत बार आये थे। एक बार महीना रह गये थे। ... फिर सर्वत्र पाँच सौ रुपये... गये थे। गायन लोगों को यहाँ ठीक पड़े। समाप्त हो गया एक क्षण में। ऐसे देखो तो शरीर दूध-बुध पीवे। कण्ठ बहुत अच्छा न, इसलिए ऐसे दूध पीवे, घी-बी, इलायची-बिलायची अच्छे प्रकार से। आहाहा! ये सोभागभाई कहते थे। सोभाग डॉक्टर है न उसके ऊपरी हैं मण्डली के। वे कहते थे कि ऐसे जैसे जायें... वहाँ वापस देखें, वहाँ गुजर गये। एकदम जवान व्यक्ति, हों! ३६-३७ वर्ष।

मुमुक्षु : बीमार थे?

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ नहीं। कौन जाने क्या हुआ? देह की स्थिति क्या हो जाये क्षण में। नाशवान। कण्ठ देखो तो ऐसे ललकारे। वह अजमेर की मण्डली को कहे भाई! हमारा नेता गया। ऐसा उनका कण्ठ। बहुत कण्ठ। मण्डली उनके कारण से ... कहते थे न!

मुमुक्षु : वे ऐसा कहे .... हो गया न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो बाहर तो बोला जाये तो ऐसा ही बोला जाये न। मूलचन्दजी नृत्य करे और यह गाये। दोनों मण्डली में जोरदार। मूलचन्दजी चाँदी का व्यापार है न चाँदी का व्यापारी। ये (नृत्य करे) घूंघरु बाँधकर। गृहस्थ व्यक्ति परन्तु भक्ति करे। और यह गाये। दोनों मण्डली में शोभा। यह कहाँ तक टिके? नाशवान... नाशवान... पंचकल्याणक के समय अपने सर्वत्र हरसमय वे ही आते थे।

कहते हैं कि कर्म के कारण **शरीर भी साथ नहीं जाता।** उठा यहाँ से। **इसलिए इस लोक में इन देहादिक सबको विनश्वर जानकर...** अभी नाशवान जानकर। **देहादि की ममता छोड़ना चाहिए...** उसकी एकत्वबुद्धि छोड़नी चाहिए। भगवान आत्मा के साथ एकत्वबुद्धि कर, यहाँ एकत्वबुद्धि छोड़। अस्ति-नास्ति की बात है। आहाहा! भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप परमात्मा अपना निज स्वरूप, उसमें एकाग्रता कर, शरीरादि राग में एकाग्रता छोड़। **और सकल विभाव रहित...** भगवान आत्मा सब विभावरहित **निज शुद्धात्म पदार्थ की भावना करनी चाहिए।** भावना कहो या एकाग्रता कहो। समझ में आया? आहाहा! दिशा बदल, दिशा बदल। राग, पुण्य और शरीर में एकाग्रता, वह अनादि की नाशवान में एकाग्रता (है तो)। संयोगी नाशवान पदार्थ खड़े होते हैं। अविनाशी भगवान आत्मा में एकाग्रता, अविनाशी पर्याय की प्राप्ति होती है। अर्थात् मोक्ष।

अब यह सामान्य अनित्य की भावना कही और जरा मुनिराज को भी सम्बोधते हैं।

★ ★ ★

गाथा - १३०

आगे मुनिराजों को देवल आदि सभी सामग्री अनित्य दिखलाते हुए अध्रुवानुप्रेक्षा को कहते हैं — अध्रुव कहो या अनित्य कहो। उसमें ध्रुव था १२९ में।

२६०) देउलु देउ वि सत्थु गुरु तित्थु वि वेउ वि कव्वु।
वच्छु जु दीसइ कुसुमियउ इंधणु होसइ सव्वु॥१३०॥

देवकुलं देवोडपि शास्त्रं गुरुः तीर्थमपि वेदोडपि काव्यम्।
वृक्षः यद् दृश्यते कुसुमितं इन्धनं भविष्यति सर्वम्॥१३०॥

आहाहा! काल की अग्नि के ईंधन होंगे, भगवान! आहाहा! ईंधन कहते हैं न हिन्दी में? ईंधन। आहाहा! देखो, आचार्य कितना वैराग्य करते हैं। यह अरिहन्तदेव की प्रतिमा का स्थान जिनालय नाशवान। आहाहा! अरे! यह वह कहाँ शाश्वत था? काल की अग्नि के ईंधन होंगे, भगवान! बड़े-बड़े मन्दिर थे, उड़ गये। अरिहन्तदेव की प्रतिमा का स्थान वह जिनालय। जिन-आलय। वह भी '**इंधणु होसइ सव्वु**' और यह वृक्ष के फूल। ... कहते हैं। ऐसे वृक्ष फले-फूले, वे काल के ईंधन से राख हो जायेंगे। लाखों वृक्ष ऐसे फले हों फूल से। जहाँ काल हुआ, राख उड़े वहाँ। काल की अग्नि के पास वे सब ईंधन जलकर राख होंगे। भाई! यह सब नाशवान है। समझ में आया? यह जिनेन्द्रदेव प्रतिमा। वह घर था, देवालय। जिनेन्द्रदेव नाशवान हैं। देव अर्थात् प्रतिमा। किसका अरमान करना? आहाहा!

मुमुक्षु : इसीलिए तो चोरी हो जाते हैं न।

पूज्य गुरुदेवश्री : चोरी हो जाते हैं, ले जाते हैं, तोड़ डालते हैं, रस निकाल डाले, गला डाले। चाँदी की वह हो तो तुरन्त गला डला। यहाँ निकाला इकट्ठा... राजकोट से छह सौ तौले की गयी चाँदी की। यहाँ ... आधे मिनिट में। पुजारी बैठा था। एक आया कोई वेश धारकर। साधारण बाबा। ऐसे दर्शन किये। दर्शन करके छह सौ तौले की चाँदी की प्रतिमा। एकदम चला तो वहम पड़ा उसको। पुजारी कहे यह कैसे चलता है? जहाँ ऐसे देखे वहाँ नहीं, ऐसे देखे वहाँ वह नहीं मिलता। समाप्त। उसने सब व्यक्ति रखे हों।

जो हाथ में लेकर गया हो वह नहीं रखे फिर। दूसरे को दे दे और दूसरे को लेकर कहीं पिघला डाले। यह सब मशीन तैयार हो। उसे यह मैं दे दूँगा। वह वहाँ जाकर पिघला डाले। ओगाळे समझे? अग्नि से। धमण। आकार न रहे। रस कर डाले। यह तो भाई ऐसा है। नाशवान में क्या कहाँ से निकाला तूने? आहाहा!

देव-देव। जिनेन्द्रदेव, हों! अर्थात् यह प्रतिमा। **जैनशास्त्र...** नाशवान है। शास्त्र, वे शब्द हैं और शब्द की यह वाणी उत्पन्न हुई है। पुस्तकें वे नाशवान हैं। **दीक्षा देनेवाले गुरु, संसार-सागर से तैरने के कारण परमतपस्वियों के स्थान सम्मेदशिखर...** गिरनार आदि भी नाशवान है। देखो न, यह सम्मेदशिखर का अभी। बाहर की चीज़ तो जिसका पुण्य हो, उसे रास आवे। अन्तर में चीज़ में पवित्रता हो वह रास आवे। दोनों चीजें निराली है। अन्तर में जितनी पवित्रता करे, उसकी शान्ति की प्राप्ति हो। बाहर में संयोग में जिसका पुण्य हो, वह अधिक में सामने आ जाये। सामने पुण्य के कारण बाहर आ जाये। उससे क्या हो गया?

मुमुक्षु : .... सुखी हो...

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन?

मुमुक्षु : पुण्यवाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी सुखी नहीं पुण्यवाला। सम्मेदशिखर, गिरनार जहाँ महातीर्थंकर मोक्ष पधारे, जहाँ इन्द्रों की उपस्थिति। गिरनार पर्वत में भगवान नेमिनाथ जब विराजते थे, ओहो! देव आते थे। वासुदेव और बलदेव। चरणरज ऐसे। वह यह गिरनार है। पर्वत वही है। पर्वत कहीं दूसरा नहीं। देखो तो फेरफार... फेरफार... नाशवान में क्या हो? देखो न, बाबा बहुत हो गये हैं वहाँ और पाँचवें टोंक में। गिरनार में पाँचवें टोंक में बाबा... जैन तीर्थंकर का स्थान था। वह पुण्य के फेरफार से सब फेरफार... फेरफार। पाँचवें टोंक। वे कहे हमारे दत्तात्रेय की है। बहुत वर्ष पहले कुछ हो गया होगा। इन लोगों ने निश्चित नहीं किया। उसमें होने के काल में बाहर में होता है, उस नाशवान में तू किसे पकड़कर रखेगा? यह द्वादशांग सिद्धान्त। यह बारह अंग शास्त्रों की भाषा आदि नाशवान है। आहाहा!

यह **गद्य-पद्यरूप रचना...** काव्य-काव्य। बोले काव्य ऐसा, ऐसे मानो कि आहाहा! वे काव्य नाशवान, कण्ठ नाशवान, शरीर नाशवान, वह आत्मा निकल जाये। वह वस्तु **'कुसुमितं' जो वस्तु अच्छी या बुरी दिखने में आती हैं,...** पहले अर्थ ऐसा किया। बाद में करेंगे अन्दर। **जो वस्तु... 'कुसुमितं'** देखे ऐसे मानो। ओहो! फलीफूली मानो ऐसे। ... परिवार, मनुष्य ऐसे ओहोहो! मकान, स्त्री, पुत्र, परिवार। एक को बुलावे वहाँ पचास हाजिर। बन्दूक लेकर ऊपर से उतरता था वह। विमान। वह कौन था? बड़ा कौन? हिटलर, हिटलर। लाखों लोग नीचे खड़े हों पुलिस ऐसे। ऊपर से उतरे। क्या है परन्तु?

मुमुक्षु : सलामी दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वे सलामी दे। ऊपर से विमान उतरे तो। ... ऐसा करके बोले ओहो! वह जाने कि आहाहा! क्या है परन्तु अब? यह सब कोयले का चूरा सुलगता है। ईंधन है, सुन न अब। यहाँ अपने दरबार आते थे। भावनगर दरबार आये थे तब पुलिस आयी थी। यहाँ अपने भावनगर दरबार गुजर गये, तब आये थे। पुलिस आवे गाँव में से। दरबार निकले। ... सलामी दे। सबको ऐसा हो कि आहाहा! ऐसी सलामी अपने को हो न! क्या है परन्तु? यह मुर्दे को सलामी है। मर गया है अन्दर में।

मुमुक्षु : राजा है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : मर गया। राजा तो शोभते, इसका नाम राजा कहा जाता है। 'राज्यति शोभति इति राजा।' आत्मा नहीं। दृष्टान्त नहीं? १७-१८वीं गाथा में समयसार? एक जीवराजा। आता है न! राज्यते इति शोभते। अपने स्वरूप से शोभे राजा। उसे राजा कहा जाता है। यह तो सब मुर्दे ... फू होकर नाश हो गये। देखो चले गये देखो न परन्तु। रहे? चले एक क्षण में। जाओ। बँगले की जगह बँगला और रानी की जगह रानी। परन्तु वहाँ ऐसी पर्याय जड़ की होनेवाली हो, उसे रोके कौन? नाशवान के साथ सम्बन्ध किया। मुर्दे के साथ सम्बन्ध किया और अब उसके साथ विवाह करके लड़के होंगे। ऐसी यह जगत की सगाई है। आहाहा!

कहते हैं कि चीज़ सब **'कुसुमितं' जो वस्तु अच्छी या बुरी दिखने में आती हैं,**

वे सब कालरूपी अग्नि का ईंधन हो जावेगी। मुनिराज को कहते हैं, हों! ऐसे अन्दर। ऐसे तीर्थ और ऐसे बड़े सम्मेदशिखर और गिरनार को गले लगना नहीं, वे सब नाशवान हैं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या रह जाये? पैसे बिना का ही है। पैसे थे कब इसके पास? इसके पास तो अनन्त ज्ञान, दर्शन और आनन्द है। है, उसे तो समझता नहीं और नहीं, उसे मान बैठा। मूढ़ है, पागल है पागल, कहते हैं। कल नहीं आया था? जहाँ तेरे पेट में असंख्य प्रदेश में अनन्त-अनन्त शान्तिरस की सामग्री लक्ष्मी पड़ी है, उसे देखता नहीं। जहाँ तेरी लक्ष्मी नहीं, पुण्य-पाप तेरे नहीं, वहाँ देखकर... हर्ष... हर्ष... हर्ष... हर्ष... हर्ष... सन्निपात है। यह राजा है न। जामनगर के राजा। वह रानी है न, होशियार है। गुलाबरानी। एक बार दर्शन (उनकी ओर से समाचार आये कि) हमें दर्शन करना है। वहाँ मैं दिशा को जाता था। वहाँ महाराज हमारे बँगले के पास आते हैं। मुझे दर्शन करना है। मैं आ सकूँ, ऐसा नहीं। मुझे बड़ा वह हो गया है। जामनगर दरबार दिग्विजय। फिर गये थे। फिर आये थे, सामने आये। ऐसे बिछाया था सब। रानी तो सामने आयी। उसको जरा आँख में ठीक नहीं था, इसलिए दर्शन करने बुलाया। महाराज! वरना मैं वहाँ आता। फिर अन्दर बैठे। व्याख्यान दिया, भाषण दिया। मैंने कहा, यह साम्राज्य नहीं। धूल का साम्राज्य यह नहीं। रानी कहे, हाँ, यह नहीं। करोड़ का तालुका और धूल यह नहीं। अन्तर गुण अनन्त आनन्द का साम्राज्य आत्मा विराजता है।

मुमुक्षु : एक हजार रुपये दिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक हजार रखे। दे अब। पाव घण्टे उनके घर में जायें तो रखे ही न, उसमें क्या? एक हजार रखे। पाव घण्टे गये। एक हजार को एक ज्ञान खाते में दो। रखे न अब उसमें क्या? वहाँ कितने ही करोड़ का तालुकादार। परन्तु वह रानी बोली, हों! सच्ची बात महाराज! यह साम्राज्य नहीं। बाहर से बोले इतना। यहाँ बैठे हो तो कहीं ऐसा बोले...?

मुमुक्षु : इतने क्षण के लिये ऐसा भाव आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव आवे आवे। मैंने कहा, नहीं। दोनों बैठे सामने और मैं बैठा ऊपर ऐसे जरा। दोनों बैठे कुर्सी पर राजा-रानी। बड़ा राजा, एक करोड़ का तालुकादार। मैंने कहा, यह नहीं रे नहीं। यह सब नाशवान... नाशवान... नाशवान... फू होकर उड़ जानेवाले हैं। भगवान आत्मा अन्दर है। अविनाशी का राज अन्दर है। साम्राज्य अर्थात् ? अनन्त गुण का साम्राज्य जिसके घर में है। यह तो कितने तुम्हारे गाँव होंगे ? पाँच सौ, सात सौ, हजार। धूल में कुछ नहीं। यहाँ तो अनन्त... अनन्त... अनन्त... एक-एक आत्मा के अनन्त गुण अनन्त सामर्थ्यवाले। ऐसे अनन्त गुण का साम्राज्य आत्मा है। भाई ! उसकी दृष्टि करो, उसका विश्वास करो, उसकी रुचि करो तो राज मिले, वरना मिलेगा नहीं। यह सब फू होकर उड़ जायेंगे, कहीं चले जायेंगे। उनका अपने नाम डाला है नहीं उसमें ? मोक्षाास्त्र में। एक हजार रुपये दिये तो अपने नाम डाला। ठीक है।

यहाँ कहते हैं, **कालरूपी अग्नि का ईंधन हो जावेगी।** वह ईंधन सूखे सुलगेंगे। सूखे ईंधन लकड़े सुलगे, वैसे सुलग जायेंगे। पोला थोर सूखा। थोर थोर आता है न वह ? और सूखा थोर। उसमें अग्नि लगे। वैसे यह सब शरीर, वाणी, मन, बापू ! यह सुलग जायेंगे। कालरूपी अग्नि लगी। ईंधन-ईंधन राख। अरे ! अविनाशी भगवान को तू देख तो सही। वह रुचि तो ला। यह नाशवान की रुचि तो छोड़। आहाहा ! अनित्य की अपेक्षा लेकर ऐसा (कहते हैं)। समझ में आया ? और अमृतचन्द्राचार्य ने तत्त्वार्थसार में तो ऐसा लिया है। जहाँ अनित्य भावना ली न, वहाँ। कि भाई ! यह शरीर तो जहाँ माता से जन्मा, वह तो तुरन्त गोद में अनित्य ने उसे लिया। उसके हाथ में तो बाद में आयेगा। नजर बाद में पड़ेगी, परन्तु ऐसा जहाँ बाहर पड़ा, वहाँ अनित्य ने गोद में ले लिया। कब गिर जायेगा, किस क्षण उड़ जायेगा शरीर। ... बापू ! अनित्य ने शरीर को गोद में ले लिया है। उसकी माँ बाद में गोद में लेगी। ऐसा दृष्टान्त दिया है। तत्त्वार्थसार, अमृतचन्द्राचार्य। अनित्यभावना की भावना में उन्होंने यह दृष्टान्त मूल पाठ में दिया है। बापू ! नित्य तो तू तेरी चीज़ अन्दर अनादि-अनन्त शाश्वत है, उसकी रुचि कर और यह सब नाशवान है। भाषा देखो।

सब कालरूपी अग्नि का ईंधन हो जावेगी। आहाहा ! किसका मान और किसका

अपमान? कौन तुझे मान दे और कौन तुझे अपमान दे? सब थोथे-थोथा बात है। तू तुझे मान दे और तू तुझे अपमान कर। विकार को अपना मानने से अपमान तू तुझे कर। स्वभाव को अपना मानने से तुझे मान तू दे। दूसरा कोई दे सके, ऐसा नहीं। यहाँ तो जरा गाली दे वहाँ अहं... अहं... हम ऐसे बड़े और गाली दे। अब बड़ा क्या? यह सब्जी लेने गया था, वहाँ तेरी छोटी लड़की साथ में हो। सेर करेले लिये हों। वहाँ उसमें वह मूला पड़ा हो मूला। मूला समझे? मूली-मूली। ऐई! बापू! मुझे यह मूली दिलाओ न। इसलिए वह छोटी मूली ले। उस मूली में यह बैठा था। अनन्त बार वहाँ बैठा था मुफ्त में बिक्री में गया। पैसे लिये बिना, हों!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, मुफ्त का आया। थोड़ी दे। आहाहा! भाईसाहेब उसमें बैठा हुआ। पाई बिना मूला गया, हों, मूली में। आहाहा! चार पैसे तो चार आना तो उसका—करेले का दिया हो। फिर इसका क्या? बापू मुझे यह दिलाओ न जरा। अब वहाँ तेरा अपमान कहाँ रहा और तेरा मान कहाँ रहा? मुफ्त का मर गया। यहाँ जहाँ... ऐई! मुझे ऐसा किया। कौन तुझे करे बापू! मुफ्त का किसलिए ऐसा होता है? यह सब नाशवान है। इसके ऊपर की रुचि छोड़ दे। अविनाशी भगवान की रुचि कर, यह बात बाद में लेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आषाढ़ शुक्ल ४, शुक्रवार, दिनांक - ०२-०७-१९६५
गाथा - १३० - १३१, प्रवचन - १६१

१३०। परमात्मप्रकाश, अध्याय दूसरा। क्या कहते हैं ? देखो। यह आत्मा चैतन्य शुद्ध ध्रुव, इसके अतिरिक्त दूसरी चीज़ें संयोग में पर्याय से दिखती हैं, वे सब नाशवान हैं। ऐसा बतलाना है। अपने लिये तो आत्मा ही एक ध्रुव है। यह शैली तो अपने भाई आती है न, १९२-१९३। प्रवचनसार। (गाथा) १९२-१९३। ध्रुव तो एक आत्मा है। यह प्रवचनसार में आता है। वह सब शैली है यहाँ। यह आता है न। वह शैली है यह सब। मूल तो सब शैली १९२-१९३ है न।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, सामग्री साथ में हो... १९३।

देहा वा दविणा वा सुहदुक्खा वाध सत्तुमित्तजणा।
जीवस्स ण संति धुवा धुवोवओगप्पगो अप्पा॥१९३॥

बस, यह बात यहाँ ली है। **जो परद्रव्य से अभिन्न होने के कारण और परद्रव्य के द्वारा उपरक्त होनेवाले स्वधर्म से भिन्न होने के कारण आत्मा को अशुद्धपने का कारण है, ऐसा (आत्मा के अतिरिक्त) दूसरा कोई भी ध्रुव नहीं है, क्योंकि वह असत् और हेतुवाला होने से आदि-अन्तवाला और परतःसिद्ध है; ध्रुव तो उपयोगात्मक शुद्ध आत्मा ही है। ऐसा होने से मैं अध्रुव ऐसे शरीरादि को—**सुख-दुःख आदि संयोग को **वे उपलब्ध होने पर भी...** संयोग में प्राप्त होने पर भी **उपलब्ध नहीं करता, और ध्रुव ऐसे शुद्धात्मा को उपलब्ध करता हूँ।** यह वस्तु है। उसकी शैली से यहाँ योगीन्द्रदेव आचार्य ने (कहा है)। यह समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय, अष्टपाहुड़ उसमें बहुत बीज भरे हैं। ध्रुव तो एक भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप। देखो, अब इसमें कहते हैं, यह अध्रुव बतलाने के लिये दृष्टान्त देते हैं।

भावार्थ :- निर्दोषी परमात्मा श्रीअरिहन्तदेव... सर्वज्ञ परमात्मा जो निर्दोष वीतराग परमात्मा **उनकी प्रतिमा के पधराने के लिये...** वह ऐसे पधराना और पाठ में रक्षण आता है न? रक्षणार्थे। '**प्रतिमायं रक्षणार्थं देवकुलं**' ऐसा शब्द है। भगवान की प्रतिमा को पधराने के लिये अर्थात् रक्षा के लिये। उसका स्थान चाहिए न, स्थान! **जो गृहस्थों ने देवालय बनाया है, वह विनाशीक है,...** वह कहाँ ध्रुव चीज़ है? क्षणिक में बनती है, क्षणिक में विलय हो जाती है। वह सब अनित्य है, अध्रुव है। ध्रुव तो तेरे लिये एक शुद्ध चैतन्य आत्मा सनातन सत्य ऐसा आत्मा ही ध्रुव है और वही अवलम्बन, आश्रय और दृष्टि करनेयोग्य है। कहो, एक बात की।

अब देव की बात करते हैं। **अनंत ज्ञानादिगुणस्मरणरूप...** ऐसा चाहिए। शब्द थोड़ा पड़ा रहा है। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य आदि गुण के स्मरणरूप **श्री जिनेन्द्रदेव की प्रतिमा...** यह हेतु कहा है, देखा! भगवान की प्रतिमा किसलिए है? देवालय जिन के रक्षणार्थ अथवा पधराने के लिये। वह देव किसलिए है जिनेन्द्र प्रतिमा? अनन्त ज्ञानादि गुण के स्मरणरूप श्री जिनेन्द्रदेव की प्रतिमा। बात तो ऐसे अक्रियबिम्ब भगवान को देखकर उसे ऐसा आवे कि ओहो! अनन्त ज्ञान, दर्शन और आनन्द स्थिर बिम्ब मानो हो गये हों, भगवान। ऐसा उन्हें देखकर अनन्त आनन्द आदि का स्मरण हो, इसके लिये प्रतिमा मैं पधराता हूँ। कहो, समझ में आया? भगवान को देखने का हेतु यह है। अक्रियबिम्ब ऐसे हो गये हों... देखते-जानते हों। ऐसे अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य आदिरूप स्मरणार्थ श्री जिनेन्द्रदेव की प्रतिमा। एक बोल। **धर्म की प्रभावना के अर्थ...** यह दूसरा बोल उसी और उसी में।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह स्मरणरूप। स्मरणार्थ के लिये, ऐसा। जिन भगवान स्मरण के लिये। ऐसा है न, देखो। '**अनंत ज्ञानादि गुणस्मरणार्थं**' इसका फिर इन्होंने शब्द कर डाला। वह तो इन्होंने अर्थ व्यवस्थित नहीं किया न। इन्होंने यथार्थ अर्थ नहीं किया। वरना तो अनन्तगुणस्मरमर्णार्थं। यह है। परन्तु यह शब्दार्थ बराबर नहीं किये। भगवान के अनन्त गुण के स्मरण के लिये यह प्रतिमा है, ऐसा। मूल पाठ तो यह है।

उसमें रक्षार्थ का पाठ है और पधराने का कहा है। रक्षार्थ। प्रतिमा हो तो, मन्दिर हो तो रक्षा हो न। ऐसा हेतु है। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन के स्मरणार्थ। बात तो यह है। स्मरण के लिये। ऐसे भगवान विराजमान हैं, ऐसा ही मैं यह अनन्त ज्ञान से स्थित हूँ, ऐसे स्मरण के लिये प्रतिमा है। समझ में आया? विशेष धर्म की प्रभावना के लिये। एक दूसरा बोल भी डाला है। '**स्मरणार्थं**' और '**धर्म प्रभावनार्थं**'। बाहर में शुभभाव की पर्याय आवे, इसलिए धर्म प्रभावना बाहर में लोगों में भगवान ऐसे थे, प्रतिमा ऐसी थीं। **धर्म की प्रभावना के अर्थ भव्यजीवों ने देवालय में स्थापना की है, उसे देव कहते हैं, वह भी विनश्वर है।** आहाहा!

देखो न, जबलपुर में। ऐसे प्रतिमायें उसने आकर हुल्लड़ करके उथला दी, काट दी, सिर तोड़ दिया। नाशवान। हम देखने गये थे न। यह हुआ फिर थोड़े दिन में जबलपुर गये थे। भाई आये थे न रामजीभाई। प्रतिमा नीचे डाल दी हुई, सिर काटा हुआ। हुल्लड़ करके। यह तो भाई! अनित्य है, क्या हो? उस वस्तु की पद्धति यह है। तो इतना खेद नहीं करना। जरा विकल्प आवे शुभ कि ऐसा हुआ, अरे! ऐसी एकत्वबुद्धि से खेद नहीं करना। वह तो सब नाशवान में क्या तुझे ... ध्रुव ... है? पूरा मकान सुलगा डाला। वह रह गया। क्या हो? बाहर का तो ऐसा संयोग बनने का हो वह बने। ऐसे देव भी...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो और दूसरे प्रकार से ले जाये कोई। वह तो और मन्दिर में। यह तो जबलपुर गाँव में तूफान करके... गये थे न। ऐसे उठाकर नीचे डाल दी। ... कर डाला, ऐसे उल्टी पड़ी थी। ऐसा का ऐसा रखा है सब। हम गये थे तो ऐसा का ऐसा पड़ा था। कोई देखने आवे तो।

मुमुक्षु : खास बताने के लिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : बताने के लिये, भाई! इस प्रमाण किया। होता है, भाई! अरेरे! एकत्वपना तो यहाँ आत्मा में करनेयोग्य है। वहाँ तो सब नाशवान है। भले शुभभाव का निमित्त, परन्तु वह कहीं स्थिर नहीं। **यह तो जिनमन्दिर और जिनप्रतिमा का निरूपण**

किया, इसके सिवाय अन्य देवों के मन्दिर और अन्य देव की प्रतिमायें सब ही विनश्वर हैं,... ऐसा लेना साथ में, ऐसा कहते हैं। टीका में है। **इसके सिवाय अन्य देवों के मन्दिर और अन्य देव की प्रतिमायें...** सब नाशवान है।

अब शास्त्र। **वीतराग-निर्विकल्प जो आत्मतत्त्व...** देखो, शास्त्र भी किसे कहते हैं? ... कि वीतराग अभेद **जो आत्मतत्त्व उसको आदि ले जीव अजीवादि...** आदि ले जीव अर्थात् जीव की ऐसी व्याख्या करे शास्त्र। जैनशास्त्र जीव की ऐसी व्याख्या करे। **वीतराग-निर्विकल्प जो आत्मतत्त्व...** रागरहित अभेद आत्मस्वभावभाव का वह जीवस्वरूप वहाँ से लेकर अजीव आदि का वर्णन चले। देखो, पहले वस्तु का स्वरूप ही इस प्रकार से आत्मा। रागरहित आत्मा ही उसे कहते हैं। यह तो पुण्य-पाप के विकल्प आस्रव हैं। शरीर, कर्म वे अजीव हैं। यह आत्मा वीतराग अर्थात् रागरहित एक अभेद अखण्डानन्द ऐसे स्वरूप को आदि जीव को। ऐसे स्वस्वरूप जीव अर्थात् आत्मतत्त्व। **उसको आदि ले जीव अजीवादि सकल पदार्थ, उनका निरूपण करनेवाला जो जैनशास्त्र, वह भी यद्यपि अनादि प्रवृत्ति की अपेक्षा नित्य है,...** अनादि की अपेक्षा से चला आता है।

वक्ता-श्रोता पुस्तकादिक की अपेक्षा विनश्वर ही है,... वक्ता — कहनेवाला नाशवान, श्रोता नाशवान, पुस्तक नाशवान। आहाहा! काल के ईंधन। समझ में आया? **अनादि प्रवृत्ति की अपेक्षा नित्य है, वक्ता-श्रोता पुस्तकादिक की अपेक्षा विनश्वर ही है, और जैन सिवाय जो सांख्य पातंजल आदि परशास्त्र हैं, वे भी विनाशीक हैं।**

अब गुरु की बात करते हैं। गुरु कैसे? उनकी व्याख्या करके फिर नाशवान बतायेंगे। **जिनदीक्षा के देनेवाले...** देखा! जिनदीक्षा, वीतरागी दीक्षा देनेवाले। भाषा समझ में आयी? है या नहीं? '**जिनदीक्षादायकः**' पाठ है ऐसा। वीतराग दीक्षा देनेवाला। दीक्षा अर्थात् वीतरागभाव की दीक्षा देनेवाला।

जिनदीक्षा के देनेवाले, लोकालोक के प्रकाशक केवलज्ञानादि गुणोंकर पूर्ण परमात्मा के रोकनेवाला जो मिथ्यात्व... यह दूसरी बात करते हैं अब। जिनदीक्षा देनेवाले गुरु कैसे हैं? कि लोकालोक का प्रकाश जो आत्मा का केवलज्ञान, केवलदर्शन

आत्मा। उन **केवलज्ञानादि गुणोंकर पूर्ण...** ऐसा परमात्मा, अपना स्वभाव, उसे रोकनेवाले मिथ्यात्व **रागादि परिणत महा अज्ञानरूप अन्धकार, उसके दूर करने के लिये सूर्य के समान...** ऐसा कहना है। गुरु। समझ में आया? एक तो गुरु कैसे? कि जिनदीक्षा के देनेवाले। एक बात। और कैसे? कि यह आत्मा जो **केवलज्ञानादि गुणोंकर पूर्ण...** परमात्मा अपना स्वरूप है। उसे निमित्तरूप से रोकनेवाले अथवा शुद्ध उपादानरूप से रोकनेवाले मिथ्यात्व, रागादि परिणत। है न? परिणत है। **मिथ्यात्व रागादि परिणत महा अज्ञानरूप अन्धकार उसके दूर करने के लिये सूर्य के समान जिनके वचनरूपी किरणों से मोहान्धकार दूर...** जिनके वचनरूपी किरणों से **मोहान्धकार दूर हो गया है, ऐसे महामुनि गुरु हैं,...** भाषा देखो। एक तो जिनदीक्षा के देनेवाले, वीतरागी भाव के देनेवाले, ऐसा कहा है। लोकालोक का... ऐसा भगवान आत्मा। आत्मा की बात है अन्दर, हों! केवलज्ञानादि गुणरूप, उसे पर्याय में, उसे प्रगट में रोकनेवाले मिथ्यात्व और रागादि परिणत ऐसा अज्ञान महाअन्धकार, उसे दूर करने के लिये सूर्य समान। यह गुरु की वाणी तो मिथ्यात्व और अज्ञान के अन्धकार को नाश करनेवाली वाणी है। कहो, उसे राग और अज्ञान को रखनेवाली वाणी नहीं होती, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मिथ्यात्व रागादि परिणत महा अज्ञानरूप अन्धकार उसके दूर करने के लिये सूर्य के समान जिनके वचनरूपी किरणों से... अर्थात् वाणी ऐसी निकले कि **मोहान्धकार दूर हो गया है,...** समझ में आया? **ऐसे महामुनि गुरु हैं,...** जिनके वचन से अज्ञान का नाश हो, मिथ्यात्व का नाश हो और राग का नाश हो। ऐसे चैतन्यरूपी सूर्य जिनकी किरणें निकले वाणीरूपी, वे दूसरे के मिथ्यात्व का और राग-द्वेष का नाश करने में निमित्त है अर्थात् वे नाश करनेवाले हैं, ऐसा कहा जाता है। कहो, समझ में आया? वे भी विनश्वर हैं। आहाहा! देखो न, धरसेनाचार्य, पुष्पदन्त मुनि, भूतबलि महाराज को बताया। आज्ञा दे दी। जाओ। क्योंकि वृद्धावस्था है। और पीछे कुछ होगा, उसका खेद होगा। आज्ञा दे दी। समझ में आया?

देखो, क्या कहा? '**महाऽज्ञानान्धकारदर्पः**' '**तद्व्यापियद्वचनदिनकरकिरण-विदारितः सन् क्षणमात्रेण च विलयं गतः**' ऐसे गुरु भी नाशवान हैं, कहते हैं। जिनसे

वाणी निकले, वीतरागी सन्त... राग-द्वेष और अज्ञान का नाश करनेवाली वाणी है। ऐसे गुरु भी जगत में ... तेरे लिये तो नाशवान है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? **और उसके आचरण से विपरीत...** ऐसे गुरु के आचरण से विपरीत **जो अज्ञान तापस मिथ्यागुरु...** जो अज्ञान और राग-द्वेष के घोंटनेवाले। अज्ञान और राग-द्वेष के निमित्त होनेवाले, अज्ञान और राग-द्वेष कहनेवाले, वे भी क्षणभंगुर हैं। वे कहाँ लम्बा काल रहते हैं, ऐसा कहते हैं। वे भी नाशवान हैं। कहो, समझ में आया?

अब तीर्थ। **संसार-समुद्र के तरने का कारण जो निज शुद्धात्मतत्त्व उसकी भावनारूप जो निश्चयतीर्थ...** देखो, इकट्ठा मोक्षमार्ग और तीर्थ का स्वरूप साथ में बताया है। यह बड़ा उदयरूपी संसार समुद्र, उसे तिरने का कारण। **संसार-समुद्र के तरने का कारण जो निज शुद्धात्मतत्त्व...** लो! अपना शुद्ध आत्मस्वभाव त्रिकाल ऐसा जो तत्त्व। **उसकी भावनारूप...** निज शुद्धात्मा अनन्त गुण का पिण्ड पवित्रधाम भगवान अभेद की एकाग्रतारूप वह निश्चय तीर्थ। उसकी एकाग्रता, वह तिरने का उपाय और वह तीर्थ है। बाह्य के तीर्थ तो व्यवहारतीर्थ हैं।

मुमुक्षु : समझ में नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : समझ में नहीं आया? बहुत अच्छी बात।

कहते हैं कि इस संसाररूपी समुद्र को तिरने का निश्चय—यथार्थ उपाय कौन? अपना शुद्धात्मतत्त्व निर्मलानन्द प्रभु आत्मा की भावना। शुद्धस्वभावरूप आत्मा की एकाग्रता। शुद्धस्वभावरूप आत्मा की एकाग्रता। वह आत्मा को संसार से तिरने का उपाय है। इसलिए उसे तीर्थ कहा जाता है। कहो, समझ में आया? वापस वह निज शुद्धात्मतत्त्व, ऐसा। पर शुद्धात्मतत्त्व नहीं। परमात्मा वीतराग वे तो पर हैं। भले वह शुद्ध है, परन्तु वे अपने लिये तो पर हैं। यहाँ तो परमात्मप्रकाश है न! अपना परमात्मा परमस्वरूप से शुद्ध चिद्घन की एकाग्रता, वह संसार समुद्र को तिरने का उपाय है, इसलिए उसे निश्चय तीर्थ कहा जाता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तब किसे कहना? तरण का उपाय वह प्रगट करता है उसमें

से, इसलिए उसे तीर्थ कहना। क्या है ? जेचन्दभाई!

भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध पड़ा है पूरा पदार्थ परमात्मा वस्तु से। पुण्य-पाप के विकल्प और कर्म, शरीर से रहित भिन्न ज्ञानानन्द अनन्त गुण का पिण्ड ऐसा स्वभाव आत्मा जिसे कहते हैं, उसमें एकाग्रतारूप भावना, वही आत्मा को, उदय संसाररूपी उदय, उसका अभाव करने के लिये तरण का उपाय वह है। इसलिए उसे तीर्थ कहा जाता है। आहाहा! बाह्य तीर्थ निमित्त है। वहीं का वहीं भटका करे, वहीं का वहीं नजर किया करे। सम्मेदशिखर तिरा देगा, गिरनार तिरा देगा, शत्रुंजय तिरा देगा। 'एकबार वंदे जो कोई...' जाओ फिर एक बार... दो-पाँच... वन्दे तो मोक्ष हो जायेगा। सम्मेदशिखर। तीर्थ तो तेरा तुझमें है। तिरने का उपाय भगवान शुद्ध प्रभु, उसमें से निर्मल एकाग्रता की किरणें प्रगट होने पर, उसमें स्नान होने पर, वह आत्मा तरण का उपाय प्रगट कर सकता है। कहो, समझ में आया ?

उसमें लीन परमतपोधन का निवासस्थान,... लो! ऐसे जो मुनि, उनका अब निवासस्थान व्यवहार कहते हैं। ऐसा निश्चयतीर्थ, उसमें लीन। ऐसे परमतपोधन मुनि, महातपोधन सन्त। जिन्हें तपरूपी लक्ष्मी है, अर्थात् आनन्दरूपी लक्ष्मी है, इच्छा के अभाव-स्वभावरूपी जिन्हें लक्ष्मी है। लो! परम इच्छा निरोध आनन्दसम्पन्न ऐसे तपोधन, उन्हें इन्द्रियदमन अथवा अतीन्द्रिय आनन्द की प्रगट दशा वर्तती है। ऐसी सम्पदा के—धन के धनी, उनका निवासस्थान। वे—मुनि जिस स्थान में रहते हों। **सम्मेदशिखर, गिरनार आदि...** लो! वह व्यवहार तीर्थ है। शुभभाव ऐसा होता है, बहुमान होता है। अब यहाँ तो कहते हैं **आदि तीर्थ वे भी विनश्वर हैं,...** कहो, समझ में आया ? सम्मेदशिखर जहाँ भगवान तीर्थंकर विराजते थे। मूल तो वे तीर्थंकर वहाँ ध्यान में थे और केवल (ज्ञान) पाकर उस समय में मोक्ष जब पधारे, उसके ऊपर (समश्रेणी में) वे विराजमान हैं, आगे-पीछे नहीं। गिरनार में नेमिनाथ भगवान मोक्ष पधारे जिस स्थान से पधारे, उस स्थान में ऊपर विराजते हैं। सादि-अनन्त वहाँ विराजते हैं, सादि-अनन्त। वहाँ सम्मेदशिखर में जहाँ-जहाँ भगवान मोक्ष पधारे, वहाँ-वहाँ स्मरणरूप में अन्दर में कि यह भगवान।

यह (संवत्) २०१३ में कहा था, मुम्बई एक बार। पहली-वहली सम्मेदशिखर की यात्रा को जाना था न! एक व्यक्ति स्थानकवासी थे। बरवावाळा नहीं थे? जगजीवनभाई थे। स्थानकवासी के थे। सन्तबाळ के भगत थे। फिर कहा, देखो! यह लोग मानते नहीं, बापू! तुमको (खबर नहीं)। यह भगवान के तीर्थ का हेतु यह है। क्या? कि वहाँ से मोक्ष पधारे हैं, उनकी समश्रेणी में विराजते हैं। वहाँ आगे उनके ख्याल में आवे कि ओहो! परमात्मा पूर्ण असंख्य प्रदेश निर्मलानन्द यहाँ ऊपर विराजते हैं। ऐसे स्मरण के लिये यह वस्तु (यात्रा) है। तुम्हारे जगजीवन। बरवावाळा जीगजीवन। वह मूर्ति-बूर्ति को माने नहीं। ऐसे पहले सन्तबाळ का भगत था, बाद में विरोध हो गया था। मैंने कहा कि देख भाई! यह हेतु है। सच्ची बात लगती है महाराज। ऐसा बेचारा कहे। स्थानकवासी थे। परन्तु बापू! तुम ऐसा एकान्त खींच जाओ कि वहाँ क्या? वहाँ तो पत्थर है। बापू! सुन तो सही, कहा। शान्ति से। वहाँ भगवान मोक्ष पधारे हैं, जिस स्थान में वहाँ आगे ऐसे विराजते हैं। सादि-अनन्त विराजते हैं। असंख्य प्रदेशी अनन्तगुण का धाम, उसी क्षेत्र में है। एक प्रदेश आगे-पीछे नहीं। समश्रेणी में है न पण्डितजी! समश्रेणी में है।

यह ऊर्ध्वगति यहाँ है गिरनार। समश्रेणी में विराजते हैं ऐसे। उन्हें याद के लिये कि ओहो! यह स्थान तो उसका व्यवहार कहलाता है। उनके स्मरण के लिये यह है। तब कहे, यह तो गजब बात! हमारे सम्मेदशिखर जाना था न पहली-पहली यात्रा में। मोटर में पूरी जिन्दगी में नहीं बैठे, वहाँ बैठना था पहला। कभी कहीं नहीं बैठे थे। यह तो यात्रा में जाना था इसलिए। बात तो सच्ची, वे तो और बेचारे बहुत दूसरा बोले थे। ... इस प्रकार से हो तो वहाँ कुछ हो जाने का तुमको। ऐसा बेचारा कहता था, हों!

बापू! ऐसे एकदम व्यवहार निषेध हो, ऐसा भी नहीं, तथा विकल्प जो आया है, वह धर्म का कारण और मोक्ष है, ऐसा भी नहीं। उस स्थान में ऐसा भाव (आवे कि) परमात्मा, ओहो! इस स्थान में विराजते थे। केवलज्ञान तो यहाँ पाये थे। मुक्ति तो यहाँ ही हुई थी। कहाँ? इस स्थान में। इस देर में (समय में) मुक्ति हुई थी। उस स्थान में वहाँ विराजमान वे अनन्त तीर्थंकर जहाँ-जहाँ (मोक्ष पधारे), उस स्थान के लिये बात है। उसे एकान्तरूप से ऐसे खींचे, देखो! उसमें कुछ नहीं। भाई! कुछ नहीं, यह बात तो

यहाँ है। परन्तु जब भक्ति का भाव आवे तो ऐसा शुभभाव हुए बिना नहीं रहता। उसकी अनुपस्थिति में ऐसा भाव आता है। ओहो! कहाँ प्रभु विराजते थे? कहाँ से मोक्ष पधारे? कहाँ विराजते हैं अभी? वे जब से गये, वहाँ सादि-अनन्त काल ऐसे के ऐसे रहेंगे उस क्षेत्र में। इसके लिये स्मरण की यादगिरी के लिये विशेष ख्याल में लाने के लिये बात है।

मुमुक्षु : ऐसे स्थान....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी बात किसने कही? स्मरण करके अन्दर में उतरे तो सरल पड़े। परन्तु ऐसा भाव आये बिना रहता नहीं। समझे न?

हमारे गाँव में एक ब्राह्मण थे, भाई नहीं थे? ब्राह्मण थे साधारण पहले। पश्चात् मकान बेच डाला। पुराना मकान था घर का। यह तो पाँच सौ-सात सौ का मकान होगा। वह मकान बेच डाला। फिर हुए पैसेवाले, वे मकानवाले ब्राह्मण। वृद्धा ने उसके पुत्र को कहा, बेटा! यह चाहे जिस प्रकार भी अपना जो पुराना मकान है न, वह अपने को लेना है, हों! वहाँ हम रहे हैं। तेरे पिता वहाँ रहे, हम वहाँ रहे, तेरा जन्म वहाँ है। माँ! परन्तु कितने रुपये ले। अरे! रुपये की गिनती होगी? उसकी माँ कहती है, हों! सात सौ-आठ सौ रुपये का मकान था। उसकी माँ ने कहा, इसलिए मकान के मालिक के पास आया। अंक रख, यह मकान मुझे चाहिए है। मेरी माँ की आज्ञा से। अंक रख (मूल्य बता)। वह कितना अंक रखे? सात सौ-आठ सौ मकान के दस हजार रखे तो दस हजार (दिये)। दस हजार दिये तो वह पछताया कि बीस हजार रखे होते तो। उसे उसकी माँ ने कहा कि अपने मकान पुराना बाप-दादा का है। उसके बाप-दादा यहाँ रहते थे। उनके मकान में से अपने पैसेवाले हुए अब। इसलिए कह इतने पैसे देकर भी ले ले। वह कितनेक लिखे? उपजे वहाँ हजार-पन्द्रह सौ मुश्किल से उपजे। कोई बेचे तो भी मुश्किल से उपजे। दस हजार का एक। दस हजार का एक लिख दे। ले लिया मकान।

इसी प्रकार जहाँ भगवान विराजते थे। ऐसी बात यहाँ है। किस स्थान में? कि इस स्थान में। आहाहा! हमारे पिता और परदादा वे तीर्थंकर थे। हम उनके कुल के

मार्गानुसारी हैं। हम उनके कुल के पथिक हैं कि हमारे प्रभु, हमारे धर्मपिता कहाँ से मोक्ष पधारे, उसके स्मरण के लिये स्थान है। क्यों? चिमनभाई! दस हजार तो दस हजार लो! वह वापस मेरी ऐसी भूल हुई। बीस हजार कहे होते तो देता।

मुमुक्षु : उसे तो लेना था।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे तो लेना था। अंक तू रख। हमारे कुछ नहीं। तुझे रखना हो, उतना अंक रख। यह लेकर रहेंगे। मेरी माँ की आज्ञा है। हमारा पुराना मकान है। इसी प्रकार जहाँ तीन लोक के नाथ, आहाहा! ऐसे विराजते होंगे। अयोगदशा वहाँ हुई थी और वहीं के वहीं मुक्त हुए थे। उस मुक्त का स्मरण के लिये यह स्थान है। यह भक्तों को भक्ति और तीर्थ का भाव आये बिना रहता नहीं। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसी प्रकार यह लेकर ही रहेंगे। परमात्मा वहाँ होकर गये, इसलिए मुझे परमात्मपद लेना ही है। ऐसा है अन्दर। उन्होंने अन्दर में एकाग्र होकर लिया है। समझ में आया?

सम्मेदशिखर, गिरनार आदि तीर्थ वे भी विनश्वर हैं,... देखो न, अभी सम्मेदशिखर की कैसी स्थिति है? अनादि... अनादि सत्य दिगम्बर धर्म था। (सम्मेद) शिखर, वहाँ दिगम्बर ही मुनि थे। दूसरा कोई था, वह तो छह सौ वर्ष में। परन्तु अब कौन कहे? कौन माने? अनादि वस्तु तो दिगम्बर मुनि वहाँ मोक्ष पधारे, तीर्थंकर। दिगम्बर ही था अकेला तत्त्व। यह तो वह (भगवान के मोक्षगमन के) ६०० वर्ष के बाद बारह वर्ष दुष्काल पड़ा, उसमें यह सब निकला, वह आता है। भावफेर में क्या हो? और वह कौन माने कि यह था? तुम पक्ष करते हो। आहाहा! ऐसा गिरनार। लो! बाबा मालिक हो गये हैं। लेख में आया होगा, वे रामजीभाई कहते थे डेढ़ सौ वर्ष पहले। दत्तात्रेय। परन्तु अरे!

मुमुक्षु : जैनों....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा कहे। इसलिए तब उन लोगों ने दरकार की नहीं। गिरनार (से) भगवान मोक्ष पधारे, शाश्वत वस्तु। वे वहाँ श्वेताम्बर थे कब तब? और

यह (बाबा) तो थे कब? महान और उनके पास वासुदेव, बलदेव ऐसे जाते, चरण वन्दन करते, चरण चूमते। ओहो! नाथ! हमारे कुल में तीर्थंकर जन्मे। हमारा कुल तिरा। ऐसा करके स्वयं वासुदेव-बलदेव चरण वन्दन करते। ओहोहो! मेरी गति तो दूसरी है, हों! ऐसा कहते। मेरी गति तो दूसरी, परन्तु प्रभु! तुम्हारे कुल में जन्मा, वह तिरेगा ही, हों! ऐसा आता है भाई उसमें। श्वेताम्बर में। 'नहीं जाऊँ नहीं जाऊँ प्रभुजी, नहीं जाऊँ नरक देरे।' हे नाथ! प्रभु तुम कहते हो कि वासुदेव नरक में जाये, प्रभु! मैं नरक में नहीं जाऊँ, हों! मैं जैसा वैसा परन्तु तुम्हारा भाई कहलाता हूँ, हों! जैसा तैसा परन्तु मैं तुम्हारा बन्धु कहलाता हूँ। हे बंधव! आप मोक्ष पधारो। नाथ! नरक में... प्रभु नहीं हो, हों! ऐसा कहकर। भक्ति के स्तवन किये हैं। 'नहीं जाऊँ नहीं जाऊँ हो प्रभुजी नहीं जाऊँ नरकदेरे।' देरे समझे? नरकघर। 'जेवो तेवो पण तारो बंधव, जगतमां हुं कहेवाणो, प्रभुजी नहीं जाऊँ नरकदेरे।' स्तवन आता है। सज्झायमाला सब पढ़ी हुई न पहली, सब बहुत पढ़ी हुई दुकान के ऊपर बैठे हुए। आहाहा! प्रभु! परन्तु मैं तुम्हारा भाई, हों! तुम प्रभु हो गये। अरर! प्रभु! यह स्थिति मेरी! प्रभु फिर कहते हैं वाणी द्वारा, उसमें आता है—श्वेताम्बर में। भाई! तू तीर्थंकर होनेवाला है, हों! तू आगामी चौबीसी में तीर्थंकर होगा। ऐसा कहा। ऐसा सिंहनाद किया, ऐसा पाठ है श्वेताम्बर में। ओहो! त्रिलोक के नाथ ने मुझे कहा है कि तू आगामी चौबीसी में मेरे जैसा तीर्थंकर होगा। पश्चात् सिंहनाद करते हैं। वासुदेव है न। आवाज पुकार करते हैं। ओहो! तिर जायेंगे अब। एकाध भव है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा आता है। सब आता है। वहाँ बहुत कथन आता है न। उसके व्याख्यान चलते हों, है न उसमें सब बात घूंटती हो। सिंहनाद करते हैं। सिंहनाद समझ में आया? प्रसन्नता का गरजनाद। भगवान के मुख से वाणी निकलती है—दिव्यध्वनि द्वारा कि खेद न करो श्रीकृष्ण! खेद न करो। वाणी द्वारा। यह तो वाणी द्वारा वे लोग कहना चाहते हैं। ... तुम तीर्थंकर होनेवाले हो। आगामी चौबीसी में तीर्थंकर होकर मोक्ष पधारनेवाले हो। आहाहा! कहो, समझ में आया?

ऐसे तीर्थों के स्मरण के लिये है, परन्तु वे नाशवान हैं। **और जिनतीर्थ के सिवाय जो पर यतियों का निवास, वे परतीर्थ, वे भी विनाशीक हैं।** वे भी नाशवान। बड़े-बड़े तीर्थ नाशवान हैं। जगन्नाथ देखो न, अभी कितने बड़े-बड़े हैं। कहीं फेरफार... फेरफार... फेरफार... अभी नहीं था किसी का बड़ा, भाई! नहीं? समुद्र का पानी आया और उनका बड़ा तीर्थ रामेश्वर। सब समाप्त। बड़ा धाम। पानी आया, वे सब समाप्त हो गये। अभी हुआ है। दो वर्ष पहले की बात है। बड़ा तीर्थ दक्षिण में। दक्षिण में न? सुना हुआ तो है यह। सब समाप्त हो गया। क्या हो भाई! नाशवान है। रखने से रहते होंगे वे? पुण्य का योग हो तो रहे, बाकी समाप्त हो जाये।

अब वेद-वेद। **निर्दोष परमात्मा जो सर्वज्ञ वीतरागदेव...** आहाहा! देखो, यह वाणी कहनेवाला कौन? कहनेवाला कौन? ऐसा कहते हैं पहले। जिसके मुख में से वाणी निकली, वे परमात्मा कैसे थे? निर्दोष... निर्दोष... जिन्हें दोष का कण रहा नहीं। ऐसा जिन्हें निर्दोष वीतरागी अनन्त चतुष्टय प्रगट हुए थे। ऐसे परमात्मा सर्वज्ञ वीतरागदेव। यहाँ अरिहन्त लेना है, हों! वाणी लेनी है न! सिद्ध भगवान को तो वाणी नहीं। ऐसे परमात्मा समवसरण में विराजते हों। सर्वज्ञ वीतरागदशा अन्दर पूर्ण प्राप्त हुई है। ऐसे परमात्मा के **उनकर उपदेश किया गया...** छद्मस्थ नहीं, छद्मस्थ नहीं, अज्ञानी नहीं। ऐसे परमात्मा के मुख से निकला हुआ। मुख से शब्द आते हैं न! पंचास्तिकाय में ऐसा आता है। मुख। है तो पूरे उससे (सर्वांग से) परन्तु वह शब्द ऐसा (आता है)।

उपदेश किया गया जो द्वादशांग सिद्धान्त... आहाहा! भगवान की वाणी, सर्वज्ञ वीतराग की वाणी वह बाहर की। वह वेद वास्तविक, वह वेद वास्तविक। **यह यद्यपि सदा सनातन है,...** अनादि जगत में है। **तो भी क्षेत्र की अपेक्षा विनश्वर है, किसी समय है, किसी क्षेत्र में पाया जाता है,...** यहाँ भरत-ऐरावत में देखो न, किसी समय हो और किसी समय न हो। महाविदेह में सदा ही (होती है)। **किसी समय नहीं पाया जाता,...** देखो, लिखा। **भरतक्षेत्र, ऐरावतक्षेत्र कभी प्रगट हो जाता है, कभी विलय हो जाता है,...** ओहोहो! अकेले कल्पवृक्ष रहे, या छठवाँ काल हो तो धूल रहे। वाणी न रहे। किसी समय वाणी प्रगटे तो धोध प्रगटे। इस अपेक्षा से विनश्वर कहा जाता है। समझ में आया? क्षेत्र की अपेक्षा से विनश्वर। **कभी विलय हो जाता है,...**

महाविदेहक्षेत्र में यद्यपि प्रवाहकर सदा शाश्वता है,... प्रवाह तो सदा ही है न अनादि-अनन्त। अनन्त सन्त, श्रुतकेवली विराजते हैं, तीर्थंकर सनातन अनादि विराजते हैं। कभी तीर्थंकर बिना का महाविदेहक्षेत्र खाली न हो। आठ भाग में एक तीर्थंकर तो हो, हो और हो ही। एक महाविदेहक्षेत्र के ३२ भाग। ३२ भाग में आठ-आठ में एक-एक (ऐसे चार) तो भगवान सदा ही विराजमान ही होते हैं। एक महाविदेहक्षेत्र में चार तीर्थंकर, पाँच महाविदेह में बीस तीर्थंकर। एक महाविदेह यहाँ, दो धातकी खण्ड, दो अर्धपुष्कर। ऐसे **यद्यपि प्रवाहकर सदा शाश्वता है,...** तीर्थंकर भगवान वर्तमान विराजते हैं और सदा ही (होते हैं)। **तो भी वक्ता-श्रोता व्याख्यान की अपेक्षा...** यह वाणी की बात है न। वक्ता वे भगवान स्वयं भी नाश हो जाते हैं अथवा गणधर वक्ता श्रुतकेवली। ओहोहो! श्रोता। वे श्रोता कहीं रहते नहीं, वे वक्ता रहते नहीं। पूरा दल बदल जाता है चक्र। ५०-५० वर्ष में, सौ-सौ वर्ष का पूरा चक्र बदल जाता है। यह वक्ता और श्रोता जो एकधारा थे, वह दूसरा हो दूसरा। पूरा पलटा मारता है... पलटा मारता है... पलटा मारता है। श्रोता दूसरे, वक्ता दूसरे वर्षों वर्ष में। उम्र जितनी हो उसके प्रमाण में पूरा चक्कर बदल जाता है। कहनेवाले दूसरे, सुननेवाले दूसरे, इस अपेक्षा से तो सब फेरफारवाला, नाशवाला है। **वे ही वक्ता-श्रोता हमेशा नहीं पाये जाते, इसलिए विनश्वर हैं,...**

और पर मतियोंकर कहा गया... अब इनके भी शब्द नाशवान हैं। यह **हिंसारूप वेद वह भी विनश्वर है।** वाणी तो नाशवान है न। ... यज्ञ में ऐसा करे तो हो, ऐसा हो। वह सब वाणी नाशवान है। कहो, समझ में आया? अब काव्य। '**कव्वु**' '**कव्वु**' है न? '**वेउ वि कव्वु**' काव्य। अब काव्य में भी कैसे काव्य? **शुद्ध जीवादि पदार्थों का वर्णन करनेवाली...** काव्य। यह कंकु काव्य आता है न? कंकु काव्य। यहाँ तो कहे ... मूल तो काव्य उसे कहते हैं कि जिसमें शुद्ध जीवादि पदार्थ का वर्णन। शुद्ध जीव को मुख्य करके सब वर्णन। देखो, **शुद्ध जीवादि पदार्थों का वर्णन करनेवाली संस्कृत प्राकृत छटारूप...** और ऐसा लिखा है। समझ में आया? '**कव्वु**' '**कव्वु शुद्धजीवपदार्थादीनां गधपधाकारेण वर्णकं काव्यं**' ऐसा है पाठ में। कहो, समझ में आया?

संस्कृत प्राकृत छटारूप गद्य... समझे न? पद्य अन्दर। छटारूप। छटारूप गद्य। छटावाला पाठ, ऐसा ठीक। पाठ भी छटावाला पाठ। छटावाला अर्थात्? आकर्षक। आकर्षण हो ऐसा, ऐसे। मधुर। ठीक! छटारूप। यह शैली अलग मीठी मधुर। आहाहा! **छटारूप गद्य व छन्दबन्धरूप पद्य...** यह उस गद्य की व्याख्या की। गद्य हो परन्तु छटारूप। उसके मधुर काव्य। वे शब्द भले ऐसे प्रवाह हो, पद्य न हो तो भी उसमें... यह देखो न, अनुभवप्रकाश में कितने शब्द ऐसे हैं न! अनुभवप्रकाश में। वह तो मानो ऐसे वाँचो तो ऐसे वाँचो। काव्यरूप से वाँचो तो काव्य निकलता है। यह भाई का—दीपचन्दजी का। अनुभवप्रकाश में ऐसे शब्द हैं। सच्ची बात है। **उस स्वरूप और जिसमें विचित्र कथायें हैं,...** कथा भी बहुत प्रकार की तीर्थंकरों की, गणधरों की आदि बहुत प्रकार की। **ऐसे सुन्दर काव्य कहे गये हैं, वे भी विनश्वर हैं।** काव्य के रचनेवाले भी लोप हो गये और काव्य भी लोप हो गये। भगवान एक रह गया। शुद्ध चिदानन्दमूर्ति प्रभु एक ही रहा। ऐसा कहते हैं। उसके पीछे सब विनश्वर है।

इत्यादि जो-जो वस्तु सुन्दर और खोटे कवियोंकर... अब खोटे कवि। वे सच्चे कवि। **खोटे कवियोंकर प्रकाशित खोटे काव्य भी विनश्वर हैं।** सच्चे काव्य विनश्वर और खोटे काव्य भी विनश्वर। **इत्यादि जो-जो वस्तु सुन्दर और असुन्दर दिखती हैं, वे सब कालरूपी अग्नि का ईंधन हो जावेंगी।** आहाहा! **तात्पर्य यह है कि सब भस्म हो जावेंगी,...** परमाणु का पिण्ड स्कन्धरूप परिणमा है। पृथक् पड़ जायेंगे वाणी और यह सब। यह कहाँ मूल स्वरूप है? पृथक् पड़ जायेंगे। हो रहा जाओ। इसका नाम भस्म। भस्म का अर्थ कहीं परमाणु नाश हो जाते हैं? वह पर्याय का परिणमन जो था, वह परिणमन समाप्त हो गया। दूसरे रूप से हुआ। भस्म हो गया, इसका अर्थ ऐसा। कर्म भस्म किये। अर्थात् क्या? कर्मरूप पर्याय थी, वह अकर्मरूप हो गयी, इसका नाम भस्म। वस्तु कहीं नाश हो जाती है? पर्यायरहित रहती है? पर्याय तो होती है। और दूसरी पर्याय है तो इस रूप से नाश हो गया। उत्पाद था, वह नाश हो गया। सब नाशवान दिखता है वह।

देखो, भावना आया न! **तात्पर्य यह है कि सब भस्म हो जावेंगी, और परमात्मा**

की भावना से रहित जो जीव... भगवान आत्मा अपने शुद्धस्वरूप की एकाग्रता से रहित, अपने शुद्धस्वभाव की एकाग्रता से रहित उपार्जित कर्म, ऐसा कहना है। भगवान शुद्धस्वरूप निर्मलानन्द की अन्तर की एकाग्रता से तो कर्म उपार्जित करते नहीं। उसकी एकाग्रता से रहित जो जीव **उसने उपार्जन किया...** लो। **जो वनस्पतिनामकर्म उसके उदय से वृक्ष हुआ...** यह ... कहते हैं न वे? **सो वृक्षों के समूह जो फूले-फाले दिखते हैं,...** हजारों, लाखों फल-फूल दिखते हैं ऐसे, ओहोहो! पंचरंगा फूल। एक-एक फूल परन्तु ऊपर लाल, नीचे सफेद, एक-एक फूल में ऐसे रंग होते हैं। ... ऊपर लाल, नीचे सफेद, नीचे सफेद, ऊपर लाल, ऊपर सफेद, नीचे लाल एक-एक पंखुड़ी में, हों! नामकर्म के निमित्त की रचना से सब रजकण दिखते हैं। जैसा उसके योग्य हो, वे आये हों। **जो फूले-फाले दिखते हैं, वे सब ईंधन हो जावेंगे।**

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, एकेन्द्रिय नामकर्म इस प्रकार से है न। उसे भी बहुत प्रकार से है न एकेन्द्रिय नामकर्म। रंग, गन्ध, रस, स्पर्श, आकार, सब प्रकृति इकट्ठी होकर ऐसे फूल देखे हैं न। ऐसे ऊपर देखो तो एक ही पंखुड़ी और ऊपर रंग लाल और नीचे देखो तो हरा। बीच में कुछ अन्तर नहीं। ऊपर के शरीर के जीव दूसरे हैं। नीचे के शरीर के जीव भिन्न है। ऊपर के जीव के शरीर का वह रंग है, नीचे जीव के शरीर का दूसरा रंग है।

मुमुक्षु : .... ४५ प्रकार के फल दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, एक वृक्ष? हो, उसमें नवीन नहीं। यह सब नाशवान-नाशवान।

संसार का सब ठाठ क्षणभंगुर है,... क्षणभंगुर—क्षण में नाश हो ऐसे। तू किसकी चिन्ता करेगा, कहते हैं। यह तो सब जाननेयोग्य है। आदरनेयोग्य तो अन्दर भगवान ध्रुव परमात्मा निजानन्द मेरुपर्वत की भाँति ध्रुव भगवान (आत्मा) स्थित है। वह हिलता-चलता नहीं, नाश होता नहीं, उसकी शरण ले कि जिसमें दृष्टि टिककर शान्ति मिले। बाकी कहीं शरण है नहीं। **ऐसा जानकर पंचेन्द्रियों के विषयों में मोह नहीं करना,...**

ऐसा। ऐसे बाहर में (मोह) नहीं करना, ऐसा। बाहर के पंचेन्द्रिय के शुभ-अशुभ लक्ष्य और विषय के ऊपर मोह नहीं करना। **विषय का राग सर्वथा त्यागना योग्य है।**

अब थोड़ा कहते हैं कि यह सब कहा नाशवान-नाशवान है। **प्रथम अवस्था में यद्यपि धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति का निमित्त जिनमन्दिर,...** होते हैं। समझ में आया? **'प्राथमिकानां यानि धर्मतीर्थवर्तनादिनिमित्तानि देवकुलप्रतिमादीनि'** निमित्त होते हैं। **प्रथम अवस्था में यद्यपि धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति का निमित्त जिनमन्दिर, जिनप्रतिमा...** यह होते हैं, ऐसा कहते हैं। वापस वह नाशवान-नाशवान करके कहे, वह सब हमारे हो नहीं, हमारे विकल्प नहीं होता, हमारे भक्ति (होती नहीं, ऐसा नहीं)। **जिनधर्म तथा जैनधर्मी इनमें प्रेम करना योग्य है,...** पहली अवस्था में ऐसा भाव आता है। साधर्मी के प्रति प्रेम, मुनियों के प्रति प्रेम, 'सच्चा सम्बन्ध साधर्मी का रे लाल'। यह सब करते हुए इसे कि ओहो! जिसके स्वधर्म प्रगट हुआ है, ऐसे साधर्मी के प्रति प्रेम आता है, भगवान के प्रति प्रेम आता है, प्रतिमा के प्रति प्रेम आता है, मन्दिर के प्रति भी (प्रेम आता है)। नौ देव गिने हैं या नहीं? नौ देव हैं। भगवान का मन्दिर देव, भगवान की प्रतिमा देव। कहो, पाँच पद। समझ में आया? वाणी, जैनधर्म, ये सब देव हैं। व्यवहार से निमित्त है न। **इनमें प्रेम करना योग्य है, तो भी शुद्धात्मा की भावना के समय यह धर्मानुराग भी नीचे दर्जे का गिना जाता है,...** समझ में आया? ... ऐसा है अन्दर। **'धर्मतीर्थवर्तनादि-निमित्तानि देवकुलप्रतिमादीनि तत्रापि शुद्धात्मभावना काले मोहो न कर्तव्येति'** न कर्तव्य भिन्न है न।

मुमुक्षु : न भिन्न किया है। **'शुद्धात्मभावना काले मोहो न कर्तव्येति'** ऐसा चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : 'शुद्धात्मभावना काले मोहो न कर्तव्येति' हाँ, हाँ, सच्ची बात है। वह यह साथ में इकट्ठा किया है न। **शुद्धात्मा की भावना के समय यह धर्मानुराग भी नीचे दर्जे का गिना जाता है,...** अर्थात् करना (नहीं)। स्वरूप में उपयोग में स्थिर हुआ उसे फिर कहाँ राग है? ऐसा कहते हैं। यह अन्तर है शब्द में। **वहाँ पर केवल वीतरागभाव ही है।** लो! ध्यान में तो अकेला वीतरागभाव ही होता है। प्रथम जब तक स्थिर न हो सके तब तक चौथे, पाँचवें, छठवें गुणस्थान में होता है, शुभराग आता है,

भक्ति का आता है। यह संस्कृत में है न? **'शुद्धात्मभावना काले मोहो न कर्तव्येति संबंधः'** ऐसा लेना संस्कृत में।

मुमुक्षु : न इकट्ठा जुड़ गया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इकट्ठा जुड़ गया है। हाँ, यह सच्ची बात। इन्होंने अर्थ ऐसा किया **धर्मानुराग भी नीचे दर्जे का गिना जाता है,...** ऐसा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ठीक, न कर्तव्य, इसके साथ होना चाहिए। ठीक है।

१३०। पहली अवस्था में राग होता है, ऐसा कहते हैं। निर्विकल्प उपयोग में स्थिर न हो, वहाँ तक तो सातवें गुणस्थानवाले को... सातवाँ न हो तो छठवेंवाले को विकल्प हो ऐसा। पाँचवें में भी हो और चौथे में भी हो। स्वरूप में स्थिर हो तो विकल्प नहीं होता। ऐसी बात है। निश्चय-व्यवहार है या नहीं? होता है। परन्तु उसका शरण परमार्थ से नहीं। परमार्थ से शरण तो स्वभाव का है।

★ ★ ★

गाथा - १३१

आगे शुद्धात्मस्वरूप से अन्य जो सामग्री है, वह सभी विनश्वर हैं,... अब कहते हैं, देखो!

२६१) एक्कु जि मेल्लिवि बंभु परु भुवणु वि एहु असेसु।
पुहविहिँ णिम्मउ भंगुरउ एहउ बुज्झि विसेसु॥१३१॥

एक परमब्रह्म। **एक शुद्ध जीवद्रव्यरूप परमब्रह्म को...** भगवान अपना, हों! **एक शुद्ध...** यह तो भावना का ग्रन्थ है न। **एक शुद्ध जीवद्रव्यरूप परमब्रह्म...** भगवान अपना परमब्रह्म। परम आनन्दरूपी, **छोड़कर...** उसे छोड़कर। यह **'पृथिव्यां'** अर्थात् **इस लोक में... 'इदं अशेषम् भुवनमपि निर्मापितं' इस समस्त लोक के पदार्थों की रचना है, वह सब विनाशीक है, इस विशेष बात को तू जान। 'एतत् विशेषम् बुध्यस्व'**

तू जान। तेरे स्वरूप के अतिरिक्त, परमब्रह्म भगवान के अतिरिक्त सब नाशवान है। ...में सब लेंगे। सब जीव....

भावार्थ :- शुद्ध संग्रहनयकर समस्त जीव-राशि एक है। जैसे नाना प्रकार के वृक्षोंकर भरा हुआ वन एक कहा जाता है,... पहले आ गया है अपने। बहुत वृक्षों का वन एक कहा जाता है, तथापि वृक्ष भिन्न-भिन्न हैं। **उसी तरह नाना प्रकार के जीव-जाति करके एक कहे जाता है,...** एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, पंचेन्द्रिय भले हो, परन्तु जाति अन्दर आत्मा... आत्मा... आत्मा... आत्मा... आत्मा... आत्मा... परमब्रह्मस्वरूपरूप से संग्रहनय से एक कहा जाता है। **वे सब जीव अविनाशी हैं,...** देखो! वह ध्रुव चैतन्यमूर्ति एकेन्द्रिय में हो या दो इन्द्रिय में हो या चाहे जहाँ हो। वस्तु प्रभु परमात्मा का जो दल शुद्ध सत्त्व अविनश्वर है। पूरा तत्त्व ध्रुव सत्त्व अनादि-अनन्त है। **सब जीव अविनाशी हैं,...** एकेन्द्रिय हो या अभव्य हो। उसके आत्मा को आत्मा कहे न, वह आत्मा जीव वस्तु, वह तो शुद्ध ध्रुव अविनाशी है।

और सब देहादि की रचना विनाशीक दिखती है। देहादि की रचना तो विनाशीक दिखती है। **शुभ-अशुभ कर्मकर जो देहादिक इस जगत में रची गयी हैं...** लो! पुण्य-पाप के परमाणु से यह देह, वाणी आदि जगत में रची जाती है। **वह सब विनाशीक हैं,...** वाणी ऐसी ... चलती हो, वह वाणी एक अक्षर न निकाल सके। शरीर ऐसे चलता हो धम... धम... धम... एक हाथ ऊँचा कर सके नहीं। ऐसे मक्खी... वह कौन कहा? गामो। बड़ा ... बकरा काटे प्रतिदिन। पूरे देश का बड़ा बलवन्त (पहलवान था)। पूरे देश सब। बड़े में बड़ा। ... फोटो आया था। उसके पीछे ... मुड़कर बैठा था। वह ऐसा कि गामो अब मक्खी यहाँ बैठे तो ... कर सकता नहीं। ऐसा बड़ा फोटा आया था। एक बकरा कच्चा खाये छोटा प्रतिदिन, हों! ऐसा उसे पच जाये न। बल... बल... बल... ऐसे सब मोटर खड़ी रखे। चलती मोटर को खड़ी रखे ऐसे। वह अब लिखा था उसमें। यह गाड़ी का वह था पीछे। गरीब मनुष्य था न। ढाई सौ वेतन था ... पाकिस्तान में गया तो बन्द हो गया। आहाहा! ऐसे बैठा था। ऐसे मक्खी बैठी हो तो ऐसे हाथ न कर सके।

मुमुक्षु : दवा करनेवाला नहीं मिला ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दवा करने का मिला नहीं हो, ऐसा कहते हैं। दवा करके मर जाये तो क्या हो? वह तो परमाणु जो परिणमने के हों, वे परिणमते हैं। सब करोड़ोंपति मरते नहीं? ऐं...ऐं... ऐसा हो जाता है। आहाहा! दवा क्या करे? औषध भी क्या करे? उस काल में यह... फू... देहादि रचना नाशवान। **इस जगत में रची गयी हैं, वह सब विनाशीक हैं, हे प्रभाकरभट्ट! ऐसा विशेष तू जान,...** देखो, यह सब रचना है, भाई! वह तो ज्ञाता का ज्ञेय है। उसमें मेरा करने जैसा कुछ नहीं। तेरे करने जैसा तो पूरा भगवान आत्मा पड़ा है। नजर से निधान देख और उस निधान में नजर करके स्थिर हो। इसके अतिरिक्त बाकी सब तुझे नाशवान है।

देहादि को अनित्य जान... वाणी अनित्य, देह अनित्य, संयोग अनित्य, सामग्री अनित्य। **जीवों को नित्य जान।** भगवानस्वरूप जीव, वह नित्य पड़ा है। तेरी दृष्टि से नित्य देख तो उस दृष्टि से सब नित्य को ही देख। जीव है नित्य... नित्य... नित्य... उसे ही आत्मा कहते हैं। समझ में आया? **निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभाव परब्रह्म...** भगवान आत्मा, प्रत्येक आत्मा **निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभाव...** निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभाव ऐसा **(शुद्ध जीवतत्त्व)...** परब्रह्म भगवान **उससे भिन्न जो पाँच इन्द्रियों का विषयवन...** विषयवन। आहाहा! यह बड़ा वन दिखता है ऐसे पड़ा-बिछा हुआ। सब राख-राख हुआ। कालाग्नि के ईंधन से बापू! कोई तेरे साथ आयेगा नहीं। तुझे कोई मददगार नहीं। **यह क्षणभंगुर जानो।** कहो, करोड़ के बड़े मन्दिर बनाये, यह बनाये, स्वयं चला जाता है, लो। यह बैठा हो और वह चला जाये एकदम कोई बिजली पड़े न! अरे! अभी तो चार महीने हुए बनाये। वहाँ एक बिजली पड़ी, वहाँ दो टुकड़े हो गये। हाय.. हाय...! परन्तु वहाँ क्या हो? नाशवान में कब ध्रुव था? ऐसे नाशवान जानकर भगवान परमब्रह्म आनन्द ध्रुव की दृष्टि और ज्ञान और एकाग्रता करनेयोग्य है। ऐसा उसका सार है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आषाढ़ शुक्ल ५, शनिवार, दिनांक - ०३-०७-१९६५
गाथा - १३२ - १३३, प्रवचन - १६२

गाथा - १३२

१३२ गाथा, परमात्मप्रकाश। **आगे पूर्वोक्त विषय-सामग्री को...** अर्थात् कि आत्मा विषय—स्वयं सम्यग्दर्शन का विषय ध्रुव भूतार्थ विषय, उसे छोड़कर बाहर के सब जो विषय, सामग्रियाँ **अनित्य जानकर...** परमात्मप्रकाश अधिकार है न! अपना निजस्वरूप ध्रुव जो शाश्वत् दृष्टि में लेकर स्थिर करनेयोग्य है, इसके अतिरिक्त के जो बाहर के विषय, चाहे जो बाह्य चीज़ हो, उसे **अनित्य जानकर धन, यौवन और विषयों में तृष्णा नहीं करनी चाहिए, ऐसा कहते हैं —**

२६२) जे दिट्ठा सुरुग्गमणि ते अत्थवणि ण दिट्ठ।
तैं कारणिं वढ धम्मु करि धणि जोव्वणि कउ तिट्ठ॥१३२॥

योगीन्द्रदेव अपने शिष्य को सम्बोधकर कहते हैं और सबको इस प्रकार का सामान्यरूप से उपदेश कहते हैं। **हे शिष्य! जो कुछ पदार्थ सूर्य के उदय होने पर देखे थे, वे सूर्य के अस्त होने के समय नहीं देखे जाते,...** पुत्र-पुत्रियाँ, मकान, शरीर जो सवेरे देखे, वहाँ शाम को वे न हों। अनित्य है, अध्रुव है। शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, सामने की सभी चीज़ें और धन, यौवन वे सब सवेरे देखे, वहाँ शाम को समाप्त हो जाये। लक्ष्मी के ढ़ेर देखे हों करोड़पति सवेरे, शाम को भिखारी (हो जाये)।

बिहार में नहीं हुआ था वह भूकम्प? एक करोड़पति व्यक्ति घूमने निकला सवेरे घोड़ागाड़ी लेकर। बाहर जहाँ जाये वहाँ लगभग आठ हजार रुपये का थोड़ा साधन था। जहाँ वापस आया वहाँ मकान, परिवार सब समा गया। भूकम्प हुआ था न बिहार में। वापस आवे वहाँ कुछ नहीं मिलता। निकला तब करोड़ों रुपये, स्त्री, पुत्र। अभी मैं घूमकर आता हूँ। घूमकर आवे वहाँ बड़ी दरार पड़ गयी, उसमें सब (समा गया)। क्षण

में यह तो। नाशवान में क्या हो? वह कहीं आत्मा के ध्रुव में कुछ दरार पड़े, ऐसा है?

एक समय का भूतार्थ आत्मा नित्य ध्रुव में कोई दरार पड़कर समा जाये, ऐसा नहीं आत्मा कहीं। बाहर की चीज़ें सवेरे देखी, शाम को अस्त हो। परन्तु कितने ही तो सवेरे उठें, वे शाम को सोते नहीं। यह भी बराबर है न? यह शाम को सोवे, वे सवेरे उठे नहीं। आहाहा! बड़ा वह कौन-सा? जॉर्ज। तीन करोड़ के बँगले में सोता था, लन्दन में विलायत (में)। रात्रि में सोता था वह सवेरे, क्या हुआ रात्रि में? कुछ नहीं मिलता। ऐसे देखने जाये तो मर गया। यह क्या? कहो, उसके कितने डॉक्टर होंगे? तीन करोड़ का तो बँगला। बड़ा जॉर्ज। सवेरे उठाने जाये तो कुछ नहीं मिलता। यह क्या? भाई! क्षण में नाशवान चीज़ में क्या खोजने जाना है तुझे? अविनाशी भगवान को देख न अन्दर। त्रिकाल चिदानन्द ध्रुव धातु चैतन्य धातु वह पड़ी है। चैतन्य को धारकर रखा हुआ आत्मा, ऐसा भगवान उसे देख, नजर कर। यह बाहर में क्या है? वह तो नाशवान है, क्षण में पलट जाये, लो! निरोगी शरीर ऐसे क्षण में फोड़े... हो गया।

एक खोजा था। यहाँ जरा फोड़ा हुआ फोड़ा सिर पर फोड़ा। लाओ न जरा कि नख से ऐसा करूँ। ऐसे नख करके ऐसा जहाँ किया तो पूरे शरीर में एकदम खून। गढडा के पास। खोजा था, अच्छी स्थिति शरीर से। यहाँ जरा फोड़ा हुआ तो लाओ न नख द्वारा ऐसा करूँ। वह ऐसा किया तो साथ में खून-खून पूरे शरीर में। समाप्त हो गया। कब बदले शरीर? वह परमाणु की पर्याय का काल कब बदले, यह कहीं तेरे आधीन है? नाशवान-नाशवान। मकान हो। नीचे धक्का लगे तो लाख-लाख के मकान में दरार पड़ जायेगी ऐसे। क्या कहलाता है वह नीचे? धरतीकम्प—भूकम्प। भूकम्प आया, वह देखो न तुम्हारे वहाँ राणपुर तक धक्का लगा था। पाळियाद में भूकम्प (संवत्) १९९४ में हुआ था। बहुत नीचे से एक मील नीचे... कोयला। बहुत उठा था चारों ओर। बोटाद और राणपुर तक। पाँच-पाँच, आठ कोस तक। धक्का लगा ऐसा। ... दरारें पड़ गयीं। पाळियाद में कितने ही मकान को दरार पड़ गयी। एक क्षण में क्या होगा? नाशवान पदार्थ है। यहाँ तो अविनाशी भगवान चिदानन्द ध्रुव धातु की दृष्टि कर, वह ध्रुव है और उसकी शरण में तुझे शान्ति मिले, ऐसा है। बाकी यहाँ कुछ है नहीं। कहो, मोतीरामजी! क्या देखा अब यहाँ? पूछा था कि यह क्या है?

सूर्य के अस्त होने के समय नहीं देखे जाते,... स्त्री, कुटुम्ब, परिवार यह सब समाप्त-समाप्त। एकदम घाणी फटे फट... फट... एक, दो, पाँच, दस मर जाये घर में। यह क्या हुआ? किसकी लगायी है परन्तु? **इस कारण तू धर्म का पालन कर...** भगवान योगीन्द्रदेव कहते हैं, हे आत्मा! यह तेरा आत्मस्वभाव शान्त आनन्दसागर भरा है, उसकी अन्तर दृष्टि और स्थिरता कर, वह धर्म। उसका पालन कर। **धन और यौवन अवस्था में क्या तृष्णा कर रहा है।** यौवन अवस्था में उद्वेग काम-भोग का, लक्ष्मी में मद लक्ष्मी का। क्या यह तृष्णा तुझे हो रही है?

भावार्थ :- धन्य, धान्य, मनुष्य, पशु,... लो! भैंस, हाथी, घोड़ा **आदिक पदार्थ जो सबेरे के समय देखे थे, वे शाम के समय में नहीं दिखते,...** राजा, महाराजा, देखो न, परन्तु यह भावसिंहजी कैसे? कृष्णकुमार क्षण में तो देखता है नाटक। साथ में वह गायन गाता है। 'पाप तारा प्रकाश जडेजा धर्म तारो संभाल, तारी बेडलीने बूडवा नहि दऊं, एक जाडेजा' ऐसे तोरल कहते हैं। वह राजा था एक राजा। बड़ा पापी था। तो पीछे बहुत पाप किये थे। उसकी रानी थी कोई ... रानी धर्मी अन्य दृष्टि की अपेक्षा से। फिर उसकी बेडली समुद्र में डूब गयी। डूबने की तैयारी हुई। बेडली क्या? नाव-नाव। अर्थात् राजा ने बहुत पाप किया था। मुकुटबंध सब यह मोडबंध क्या कहलाता है? वर। बारात-बारात को लूटा था और हिरण मारे थे, बहुत पाप किया। और रानी ईश्वर की भगत थी। इसलिए हे रानी! अब यह डूबकर मर जाऊँगा मैं। नरक में जाऊँगा। मैंने बहुत पाप किये हैं। यह सुनते थे दरबार। 'पाप तारा प्रकाश जाडेजा धर्म तारो संभाल रे, तारी बेलडीने बूडवा नहि दउं, जाडेजा रे तोरल कहे छे।' रानी तोरल बहुत भक्त थी। वह राजा कहता है, परन्तु अरे रानी! 'मैंने मुकुटबंध ऐसे मारे, लाखों हिरण के बच्चों को, मैंने मार डाला।' अरे रानी! मेरा उद्धार किस प्रकार होगा? बोल-बोल राजा! पति था उसका। बोल तेरे पाप प्रकाश, निकाल अन्दर से। हृदय खाली कर... हृदय खाली कर। तेरी बेलडी को डूबने नहीं दूंगी। ऐसा सब सुनते थे दरबार। हों! वह जरा गायक भी वापस होशियार व्यक्ति हो न वे लोग तो। हमने भी बहुत सुना है न। क्योंकि छोटी उम्र में से तो भजन का रस था न। परन्तु वह तो लीन हो जाये, ऐसा गाये।

आत्मा कहता है, जाग रे जाग। तेरे पाप ऐसे हैं, ऐसा ज्ञान में प्रकाश तो सही ऐसा। देख तो सही अन्दर ज्ञान में। यह पाप... यह पाप... यह पाप... यह पाप... इस पाप का भाव स्वरूप में नहीं। ऐसा देख अन्दर में यद्यपि यह पाप... यह पाप... तो तेरे ज्ञानस्वरूप में स्थिर होने से तेरा आत्मा डूबेगा नहीं चौरासी में, जा। बेलडी की बात तो यह। हम तो अन्दर में उतारते थे। (संवत्) १९९९ में नहीं था? जीवणलालजी को व्याधि हुई थी न, भाई! पेशाब की। शाहपुर में उपाश्रय में थे। ९९ में। तब यह गायन साथ में बोलते थे। वे बोलते थे जरा शाहपुर में। परन्तु वह तो बहुत... राजा सुनते थे बेचारे, हों! ऐसा जरा स्थिर हो गये, ऐसा कहते थे लोग। उन्हें ... तो बहुत हो न राजा हैं वे। ऐई! पाप देख... पाप देख... वह रानी कहती है। स्वयं खड़े हुए। असुख.. असुख... (लगता है) रानी! बुलाओ। लो! आये, टेलीफोन करने गये, वहाँ समाप्त हो गये। क्या करे धूल में? होशियारी सोते नहीं। दरबार जैसे श्रीकृष्णकुमार अर्थात् प्रजा का प्रिय व्यक्ति। पूरी प्रजा उसे इच्छे। ऐसे लौकिक में बहुत ऐसा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ,... (संवत्) १९८० के वर्ष में हम बोटाद थे, तब राजगद्दी पर नहीं बैठे। ऐसे कृष्णकुमार ऐसे रेल के ऊपर निकले थे। हम वहाँ थे। सब सेठिया देखे थे उनके सामने। इसलिए ऐसा बोले, अरे सेठियाओ! मेरे पिता के ऊपर आपने बहुत महेर—नजर करके निभाया है। मेरे ऊपर मेहरबानी करके मुझे निभाना। ऐसा बेचारा, हों! मेरे ऊपर यह प्रजायें हैं, महेर करना, हों! सब हिम्मतलाल सेठ और सब थे। हम गाँव में थे। सब गये सामने। परन्तु बहुत मिठास से बोलते, हों! प्रजा के लिये तो। देखो न आपकी तो कद्र भी मेरी जरा मैं राजा का कुँवर छोटा हूँ, हों! इसलिए मुझे मेरे पिताजी को जैसे निभाया है, वैसे मुझे निभा लेना। आहाहा!

स्थिति पूरी हो, (वहाँ) सोते थे, वे उठे नहीं; यह उठे, वे सोते नहीं। बराबर है? आहाहा! लक्ष्मी के ढ़ेर सवेरे देखे, शाम को नाश। यौवन अवस्था फूटड़ी अवस्था ऐसे। बाल काले बड़े चोटी घास बळे जैसे घास। घास जैसे जले, बाल जले ऐसे घास जलता हो। घास जलता हो। हड्डियाँ लकड़ी जले वैसे सुलगे ऐसे। ... था न अभी? सवेरे

दूधपाक खाता था न। आहाहा! अनित्य... अनित्य... अनित्य... वस्तु उसे देखकर हे आत्मा! आचार्य महाराज कहते हैं, प्रभु! तू ध्रुव को सम्हाल न भगवान! तेरी ध्रुव चैतन्य धातु अन्दर में पड़ी है। उसने त्रिकाल चैतन्य को धार रखा है। स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... यह चैतन्य धातु है। उन सबने अचेतन धातु धारी है। उसमें तू क्या देखने जाता है? ओहोहो!

शाम के समय में नहीं दिखते, नष्ट हो जाते हैं, ऐसा जगत का ठाठ विनाशीक जानकर इन पदार्थों की तृष्णा छोड़... त्याग। ऐसा है न? '**कउ तिट्ठ**' क्या तृष्णा? उसकी क्या तृष्णा? भगवान की भावना कर न! यह क्या तृष्णा? यहाँ भगवान पड़ा है पूरा। जितनी तेरी नजर उसमें पड़े और एकाग्र हो, उतना निधान खिले, ऐसा है। उसमें कभी कम हो, ऐसा नहीं। आहाहा! **श्रावक का तथा यति का धर्म स्वीकार कर...** है न? श्रावक और यति का धर्म स्वीकार कर। देखो, '**सागारानगारधर्मं कुरु।' धन, यौवन में क्या तृष्णा कर रहा है। यह तो जल के बुलबुले के समान क्षणभंगुर हैं।** बुलबुला हुआ पानी में फू... पानी में हुआ फू... यह सब रजकण के बुलबुला खड़े हुए हैं पृथ्वी के। फू। भगवान चैतन्य धातु अनादि-अनन्त पड़ी है। देखो, यह कहते हैं।

यहाँ कोई प्रश्न करे कि गृहस्थी धन की तृष्णा न करे तो क्या करे? उसका उत्तर — निश्चय-व्यवहाररत्नत्रय के आराधक... देखो, पाठ में तो भेदाभेदरत्नत्रय आराधक। उसका अर्थ स्वयं अभेद अर्थात् निश्चय और भेद अर्थात् व्यवहार, ऐसा अर्थ किया। यह बराबर है। **निश्चय-व्यवहाररत्नत्रय के आराधक जो यति...** अब दो सिद्धान्त इसमें। कि मुनि है, वह वर्तमान में निश्चय और व्यवहार के आराधक हैं, भाई! कितने ही कहते हैं न कि पहले व्यवहार और फिर (निश्चय)। ऐसा नहीं, भाई! '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' भूतार्थ भगवान आत्मा की अन्तर्मुख दृष्टि और रमणता का अंश हुआ निश्चयरत्नत्रय का अंश ही है अन्दर। ऐसे अभेदपूर्वक अथवा निश्चयपूर्वक विकल्प आदि का व्यवहार आवे, उसे भेदरत्नत्रय कहकर दोनों का आराधक कहा है।

११वीं गाथा में यही कहा है, परन्तु अब ११वीं गाथा और कोई कहे, केवली के लिये है। भगवान! यह तो पहली शुरुअती की ही बात करते हैं। भूतार्थ... भूतार्थ...

छतो-छतो / विद्यमान-विद्यमान महान पदार्थ, ऐसा आश्रय कर। व्यवहार अभूतार्थ है। एक समय की पर्याय, राग, निमित्त वह सब आश्रय करनयोग्य है नहीं। शरण योग, आश्रय करनेयोग्य तो भगवान ध्रुव है। ऐसा ११वीं में कहा है, वह तो पूरे जैनशासन का प्राण है। आहाहा! वह अन्तर वसतु, उसका आश्रय कर। ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... एक समय की पर्याय का भी आश्रय छोड़ दे। क्योंकि पर्याय में से पर्याय नहीं निकलती। ऐसा भगवान ध्रुव का आराधकपना, वह निश्चय है। स्वआश्रय हुआ इसलिए। उसमें जरा राग देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, श्रद्धा आदि का भाव, वह व्यवहाररत्नत्रय है, यह एक समय में दोनों होते हैं। अब यह। यह ऐसा चलता है अभी। अरे भगवान! परन्तु तुझे छोड़कर व्यवहार कहाँ से आया?

इसलिए कहा कि **निश्चय-व्यवहाररत्नत्रय के आराधक...** कौन? मुनि। छठवे गुणस्थान की यह बात है अभी। आहार लेने मुनि आये हैं, उनकी बात है। उन्हें आहार देता है, उसकी बात चलती है। आहार देते हैं, वे लेते हैं। ऐसी भूमिका काल में निश्चयरत्नत्रय और व्यवहार के आराधक सन्तों को कहा है। समझ में आया? किसी को ऐसा प्रश्न हो कि तब भेदाभेद में पहला शब्द भेद और दूसरा शब्द अभेद क्यों पड़ा है? यह तो टीका की अपेक्षा के सम्बन्ध के लिये है। स्वयं देखो न टीकाकार ने तो निश्चय-व्यवहार लिया। पाठ में भेदाभेदरत्नत्रय शब्द पड़ा है और टीकाकार ने नीचे निश्चय-व्यवहार लिया। और वरना इस ओर में भी है, देखो न, २३२ में। '**गृहस्थेनाभेदरत्नत्रय-स्वरूपमुपादेयं कृत्वा**' पहले अभेदरत्नत्रय लिया है। अन्तिम संस्कृत टीका की। १३३। १३३ की टीका की अन्तिम लाईन है। '**गृहस्थेनाभेदरत्नत्रयस्वरूपमुपादेयं कृत्वा**' है? है न? यह सब लिखा है। एक पृष्ठ बनाया है न एक? यह पृष्ठ है न और ऐसा है। सब बोल लिखे थे। समय मिला न वहाँ भोपाल। ओहोहो!

यहाँ तो कहते हैं, शुद्ध उपयोग-शुद्ध उपयोग। कल नहीं कहा था? प्रवचनसार। शुद्ध उपयोग प्राप्त वीतराग आराधक। स्वयं ... नष्ट दृष्टि की है। आगमकुशल और स्वभाव के भान द्वारा मिथ्यात्व की दृष्टि नष्ट की है। फिर अब उत्पन्न हो, ऐसा नहीं है और शुद्ध उपयोगरूप वीतरागभावना के आराधक हैं। आहाहा! मुनि स्वयं कहते हैं।

यहाँ भी आचार्य कहते हैं **निश्चय-व्यवहाररत्नत्रय के आराधक...** कोई ऐसा कहे कि निश्चय ऊपर और नीचे व्यवहार दो का लक्ष्य है, इसलिए आराधक। तो ऐसा नय का अधिकार ऐसा हो नहीं सकता। निश्चय है, वह स्वरूप की शुद्धता के आश्रय से अन्दर में एकाकार होकर स्व-श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति आंशिक प्रगट हुई, वह निश्चय। फिर साथ में व्यवहार अर्थात् चार प्रकार के, अध्यात्मदृष्टि से, हों! सद्भूत उपचार-अनुपचार, असद्भूत उपचार-अनुपचार। वह यहाँ निश्चय हो, उसे यह व्यवहार होता है, उसका ज्ञान कराने के लिये चार व्यवहार लिये हैं।

व्यवहार सब अभूतार्थ। '**एवाभूतार्थत्वादभूतमर्थं प्रद्योतयति**' ११ में (कहा)। पण्डितजी! है न? देखो, ११वीं गाथा। क्या है यह? सब ही। व्यवहार है न? सब व्यवहार अभूतार्थ... एक शुद्धनय में पड़ा रहा है, हों! यह अपने सुधारा बाद में। यह शब्द उसमें नहीं। '**व्यवहारनयो हि सर्व एवाभूतार्थत्वादभूतमर्थं प्रद्योतयति**' यह बाद में वह टुकड़ा रह गया है वह शुद्ध का। अपने ऊपर से डाला है। यह बाद में आया, '**शुद्धनय एक एव भूतार्थत्वात् भूतमर्थ प्रद्योतयति**' वह इस संस्कृत में नहीं। इसमें भूल हो गयी। है न! मूल में डाला है। समझ में आया? यह क्या है? कि भगवान आत्मा एक समय में शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... ध्रुव ज्ञायक अकेला भाव। बस! वही भूतार्थ है, और वही शुद्धनय है। वह निश्चयनय है, उसे शुद्धनय कहो, उसे भूतार्थ कहो। नय और नय के विषय का इसमें—अध्यात्म में भेद नहीं। यह तो '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।**' यह भूतार्थ वस्तु, वही शुद्धनय है। उसका आश्रय होकर और जो भले पर्याय प्रगटी, परन्तु पर्याय का आश्रय लेना नहीं, इसलिए उसे अभूतार्थ कहा है। और उस अभूतार्थ को जानने के लिये १२ (गाथा में) लिया। वस्तु की दृष्टि (में) शुद्ध का आश्रय हुआ, शुद्ध दृष्टि प्रगट हुई, तथापि अभी पर्याय में शुद्धता के अंश बढ़ते हैं, अशुद्धता के घटते हैं, ऐसे और सामने निमित्त भी अनेक प्रकार के घटित होते हैं, उन सबका ज्ञान (होता है)। बाह्य इसमें निमित्त की बात नहीं ली। यहाँ तो अन्तर की बात ली है। एक अन्दर की पर्याय की ही बात ली है। सद्भूत स्व-परप्रकाशक उपचार, सद्भूत अनुपचार गुण-गुणी का भेद और असद्भूत अनुपचार अबुद्धिपूर्वक राग, ख्याल में आवे ऐसा राग, वह असद्भूत उपचार। इन चारों का ज्ञान करनेयोग्य है, यह बराबर है, ऐसा जाननेयोग्य है।

यह बारह में कहा। इसलिए निश्चय है, वहाँ व्यवहार है, ऐसा वहाँ सिद्ध किया है। समझ में आया? क्या हो अब?

यहाँ तो यह कहते हैं। इसीलिए तो यहाँ कहते हैं कि **निश्चय-व्यवहाररत्नत्रय के आराधक...** आराधक का अर्थ सेवन करनेवाला।

मुमुक्षु : .... जागृत है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जागृत है, चैतन्य की दृष्टि है, आंशिक स्थिरता भी है। चौथे में भी है। यह तो मुनि की बात है अकेली। छठवें में भी है। भले विकल्प है, आहार लेने आये हैं। उपयोग में तब शुभ उपयोग है, विकल्प है इसलिए, परन्तु **निश्चय-व्यवहाररत्नत्रय के आराधक जो यति, उनकी सब तरह गृहस्थ को सेवा करनी चाहिए...** है? और **चार प्रकार का दान देना,...** देखो, '**आहारादिचतुर्विधं दानं दातव्यम**'। आहार किसे देना? निर्विकल्प ध्यान में स्थित हो उन्हें? समझ में आया? उसको आहार देना है? उनको आहार का विकल्प ही नहीं है।

यहाँ तो कहते हैं, देखो, '**आहारादिचतुर्विधं दानं दातव्यम**'। किसे? कि '**भेदाभेदरत्नत्रयाराधकानां**' हो गया? अब एक न्याय से, मध्यस्थ से तो देखना पड़ेगा या नहीं इसे? कि यह आराधक है, मुनि छठवें-सातवें में उन्हें निश्चय और व्यवहार के आराधक हैं वे। सेवन करनेवाले हैं। जितना स्वभाव के आश्रय से दृष्टि, ज्ञान प्रगट हुआ, और स्थिरता प्रगट हुई, उतना निश्चय अभेद है। जितना विकल्प उठा है देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति आदि का, वह भी व्यवहार है। तो उसे यहाँ व्यवहार के व्यवहार से सेवक, निश्चय के निश्चय आराधक, ऐसे मुनि को '**चतुर्विधं दानं दातव्यम**' लो! द्रव्यसंग्रह में भी बहुत पाठ है, हों! कहो, समझ में आया?

सब तरह गृहस्थ को सेवा करनी चाहिए, चार प्रकार का दान देना, धर्म की इच्छा रखनी,... स्वभाव की भावना बारम्बार करना। ऐसा गृहस्थाश्रम में रहे हुए जीवों को भी (करना)। देखो, प्रश्न उसने किया कि **गृहस्थी धन की तृष्णा न करे तो क्या करे?** समझ में आया? उसका उत्तर दिया। '**गृहस्थेन धने तृष्णा न कर्तव्या तर्हि किं कर्तव्यम्।**' आहाहा! उन्हें चार प्रकार के आहार देना, मुनियों की भक्ति करना। ऐसा

विकल्प उठता है। वह भी वास्तव में तो वह निश्चय और व्यवहार का आराधक है। परन्तु उसे इतना कहेंगे आगे में कि वह निश्चय '**अभेदरत्नत्रयस्वरूपमुपादेयं कृत्वा**' भेद का काम लेना। भेदरत्नत्रय श्रावकधर्म पालना। मुनि को ऐसा कहेंगे '**निश्चयरत्नत्रये स्थित्वा व्यावहारिकरत्नत्रयबलेन विशिष्टतपश्चरणं कर्तव्यं**' यह बाद में १३३ में कहेंगे। दोनों भेद करेंगे। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : मुनि हो ....मुनि न हो तब?

पूज्य गुरुदेवश्री : तब वह भाव करे न। उसकी कहाँ... ? वस्तु की स्थिति का... मुनि का क्या काम है? भावना तो करे। भाव न आवे? मुनि न हो तो क्या? बाहर असंख्य श्रावक नहीं? कहाँ? ढाई द्वीप के बाहर। असंख्य श्रावक पाँचवें गुणस्थानवाले। कहाँ मुनि हैं? कभी जिन्दगी में मुनि न आवे लो उन्हें। आठ वर्ष में किसी को जातिस्मरण हो, समकित हो तिर्यंच को। करोड़ पूर्व का आयुष्य। कभी मुनि नहीं, वहाँ क्षुल्लक भी नहीं। अरिहन्त भी नहीं और कोई नहीं। भले नहीं, आत्मा है न। वह सब आत्मा में आ जाता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब होता है अन्दर उसे। परिणाम आवे न। परिणाम होते हैं। कहो, समझ में आया? आहाहा!

देखो, भाई! परन्तु जहाँ निश्चय नहीं, वहाँ व्यवहार कहना किसे? व्यवहार तो जाननेयोग्य चीज़ है। वह निश्चय का ज्ञान हुआ, तब ज्ञान प्रगट हुआ, तब व्यवहार जाननेयोग्य है, व्यवहार से आदरणीय, ऐसा भी कहा जाता है। व्यवहार से व्यवहार आदरणीय है, निश्चय से निश्चय आदरणीय है। ऐसी भाषा नहीं कहलाती? तीन लोक के नाथ भी परद्रव्य हैं। लो! उनकी पूजा, साक्षात् भगवान की वाणी सुनना, समवसरण में आदर, वह सब व्यवहार नहीं? वह तो है। वह व्यवहार है, इसलिए व्यवहार से आदरणीय, ऐसा कहा जाता है, परन्तु परद्रव्य का आश्रय, वह कहीं वास्तव में आदरणीय है? आहाहा! भारी गड़बड़। वीतराग मार्ग अनादि शान्त मार्ग। शान्त मार्ग ऐसा। वीतरागी मार्ग। ओहोहो!

कहते हैं, **निश्चय-व्यवहाररत्नत्रय के आराधक...** मुनि उस समय थे या नहीं? और स्वयं ने कहा नहीं? स्वयं थे या नहीं? स्वयं थे। कल कहा न। तुम थे नहीं? वह ९२वीं गाथा नहीं, प्रवचनसार की? ९२ नहीं, पहली-पहली। वह अन्तिम है न, देखो! ओहोहो! यह आत्मा स्वयं धर्म होता है। **आत्मा स्वयं धर्म होता है... 'यदयं स्वयमात्मा धर्मो भवति'** यह संस्कृत। **यह वास्तव में मनोरथ है। उसे विघ्न करनेवाली तो एक बहिर्मोहदृष्टि ही है।** बहिर्मोहदृष्टि ऐसी। **और वह (बहिर्मोहदृष्टि) तो आगमकौशल्य और आत्मज्ञान द्वारा नष्ट हो गयी होने से अब मुझे फिर से उत्पन्न होनेवाली नहीं है।** आहाहा! छद्मस्थ को भान हो गया। उत्पन्न होनेवाली नहीं। अभी कहते हो, भविष्य में उत्पन्न होनेवाली नहीं। इतना? अरे! सुन न, भाई! पंचम काल के मुनि हैं न! यह तो अमृतचन्द्राचार्य नौ सौ वर्ष पहले (हुए)। भगवान आत्मा है न, भाई! सुन न! यह तो बड़ा केवल (ज्ञान) का कन्द है। कहते हैं कि ऐसे बहिर्मुख में एकत्वबुद्धि थी, वह हमारे अन्तर्मुख की दृष्टि द्वारा नष्ट हो गयी। अब फिर से उत्पन्न होनेवाली नहीं है।

इसलिए चारित्ररूप से प्रगट हुआ (-वीतरागचारित्ररूप पर्याय से परिणमित) मेरा यह आत्मा... देखे, ऐसा शब्द है, हों! देखो, **'नात्र मम पुनर्भावमापत्स्यते। ततो वीतरागचारित्रसूत्रितावतारो ममायमात्मा स्वयं धर्मो भूत्वा'** आहाहा! **वीतरागचारित्ररूप से प्रगटता प्राप्त (-वीतरागचारित्ररूप पर्याय से परिणमित) मेरा यह आत्मा स्वयं धर्म होकर...** स्वयं धर्म होकर। वर्तमान की बात चलती है या होगा बाद में? **समस्त विघ्न का नाश हुआ होने से सदा ही निष्कम्प ही रहता है।**

मुमुक्षु : सदा ही निष्कम्प रहता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : सदा ही निष्कम्प रहता है। **निष्कम्प 'ही' रहता है।** देखो, **'निरस्तसमस्तप्रत्यूतया नित्यमेव निष्कम्प एवावतिष्ठते।'** संस्कृत है। आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य ने तो ऐसा... भविष्य की बात करते हैं? भविष्य की वर्तमान का भान करके करते हैं, भान करके करते हैं। छठवें गुणस्थान की बात है। यह तो विकल्प है लिखते समय। लिखने के समय अप्रमत्तदशा है? विकल्प है। भले अप्रमत्त हो जाये जरा। परन्तु ऐसे विकल्प है उस समय। तथापि कहते हैं कि हम तो **वीतराग-चारित्ररूप**

से प्रगटता प्राप्त मेरा यह आत्मा स्वयं धर्म होकर, समस्त विघ्न का नाश हुआ होने से... लो! **जयवन्त वार्तो स्याद्वादमुद्रित जैनेन्द्र शब्दब्रह्म; जयवन्त वर्तो उस शब्दब्रह्ममूलक आत्मतत्त्व-उपलब्धि—कि जिसके प्रसाद के कारण, अनादि संसार से बँधी हुई मोहग्रंथि तुरन्त ही छूट गयी; और जयवन्त वर्तो परम वीतरागचारित्रस्वरूप शुद्धोपयोग...** आहाहा! परन्तु विकल्प है न, प्रभु! हो, भले हो, हम तो अन्दर में वीतरागचारित्र उपयोगरूप ही परिणमना चाहते हैं। **जयवन्त वर्तो परम वीतरागचारित्ररूप शुद्धोपयोग कि जिसके प्रसाद से यह आत्मा स्वयमेव धर्म हुआ।** लो! ऐसी तो बात है। यह छठवें गुणस्थान में बात करते हैं। समझ में आया? यह तो अमृतचन्द्राचार्य अभी नौ सौ वर्ष पहले हुए हैं। पंचम काल के कितने वर्ष गये?

भगवान! ऐसा नहीं होता। अभेदपना न हो तो भेद को व्यवहार कहे भी कौन? भाई! यह वस्तु के स्वभाव के त्रिकाल भगवान आत्मा चैतन्य धातु का भण्डार, उसका आश्रय और स्पर्श बिना, अभेद अर्थात् निश्चय बिना अकेले विकल्प को व्यवहार कौन कहे? इसलिए आचार्य महाराज ने यहाँ कहा, उसका स्पष्टीकरण ब्रह्मदेव स्वयं करते हैं। समझ में आया? '**धम्मु करि**' ऐसा है न संस्कृत? उसमें से निकाला है। पाठ में इतना ही है। '**तें कारणिं वढ धमु करि**' '**जे दिट्ठा**' '**सूरुग्गमणि सूर्योदये ते अत्थवणि ण दिट्ठ तें कारणिं वढ धम्मु करि**' यह धर्म करने की व्याख्या में स्वयं ने रखा है ब्रह्मदेव ने। समझ में आया? **निश्चय-व्यवहाररत्नत्रय...** तीनों रत्न। यह निश्चय भी रत्न और व्यवहार भी रत्न। ले! मुक्ति का मूल देकर मुक्ति लेनी है। मूल-मूल कहलाता है न? कीमत देकर—मूल (मूल्य) देकर मुक्ति (लेनी है), मुफ्त में नहीं लेनी। आहाहा! मोल-मूल्य देकर, कीमत देकर मुक्ति लेनी है। कैसी कीमत? निश्चय-व्यवहाररत्नत्रय के सेवक। ऐसा कैसे नहीं कहा कि बाहर के...? यह निश्चय-व्यवहार के सेवक हैं। व्यवहार में भगवान.... आ गये।

ऐसे **जो यति उनकी सब तरह गृहस्थ को सेवा करनी चाहिए, चार प्रकार का दान देना,...** और कहे पर की सेवा नहीं की जा सकती, परद्रव्य की नहीं कर सकता। ऐसा कहाँ से निकाला? भाई! सुन। और एक ओर **चार प्रकार का दान देना,...** यह

परमाणु दिये जाये नहीं, लिये जाये नहीं। भाई! सुन न भाई! ऐसा विकल्प उठा है न, इसलिए देते हैं, ऐसा आरोप से कथन किया जाता है। विवाद वह विवाद जगत को। ... देना तो ... एक रजकण भी ऐसे कर सके आत्मा, वह तो उसमें है ही नहीं। वह तो वस्तु की स्वतन्त्र क्रिया है। परन्तु उस क्रिया को यहाँ लक्ष्य में नहीं लेना। यहाँ तो वह विकल्प हुआ है न, इससे आहार आदि चार (दान) देते हैं, ऐसे भाव का आरोप करके कथन करते हैं। कहो, समझ में आया? **धर्म की इच्छा रखनी,...** वह '**धर्मं कुरु**' है न? **धन की इच्छा नहीं करनी।** गृहस्थों को भी यह धन की इच्छा नहीं करना।

मुमुक्षु : नहीं करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, धूल की इच्छा नहीं करना। भगवान चैतन्य धाम की ही भावना करना, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : इसने तो छोड़ दिया है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसने छोड़ा कहाँ? अन्दर अभी है। नहीं छोड़ा। इनका लड़का कहता था मेरे बापू का भाग है दुकान में। हाँ, हाँ। मुझे कहा था, हों! जयन्तीभाई ने कहा था तुम्हारे तीसरे नम्बर के। मेरे बापूजी का हमारी दुकान में भाग है। अपने आप कहा था, हों! हमने कुछ पूछा नहीं था।

जो किसी दिन प्रत्याख्यान की चौकड़ी के उदय से श्रावक के व्रत में भी है,... देखो, ऐसा कहते हैं। कदाचित् श्रावक को स्वरूप की स्थिरतारूप चारित्रदशा प्रगट न हो, ऐसा। यह चौकड़ी से बात की है, परन्तु अपने स्वरूप में स्थिरता उग्ररूप से हो सके, ऐसी सामर्थ्य न हो। **श्रावक के व्रत में भी है, तो देव पूजा,...** भगवान सर्वज्ञ की पूजा का भाव, निश्चय आराधक जीव को ऐसा व्यवहारभाव आता है। समझ में आया? यह स्वयं अर्थ किया है। वे चार प्रकार के दान। **गुरु की सेवा, स्वाध्याय,...** करना। ऐसे बहियाँ प्रतिदिन फिराता है वह नहीं, यह फिराना। शास्त्र में क्या कहते हैं, उसका स्वाध्याय करे तो उसका ज्ञान निर्मल हो। स्वाध्याय हमेशा चाहिए। उसकी भी खटक-खटक (हो)। जैसे भोजन प्रतिदिन का होता है, वैसे उसका घण्टे, दो घण्टे, चार घण्टे स्वाध्याय के लिये चाहिए। भगवान की वाणी में भगवान किस अपेक्षा से क्या वहाँ

प्रसंग में कहना चाहते हैं, उसका इसे स्वाध्याय श्रावकों को भी चाहिए। ऐसा नहीं कि मुनियों को (हो), इन्हें नहीं। स्वाध्याय करना चाहिए। देखो!

दान,... मुनियों को दान, दूसरे साधर्मी को दान। अरे! कोई भूखे आदि, उन्हें भी अभयदान (देने) का भाव आता है न! शुभभाव होता है। समझ में आया? **शील,...** ब्रह्मचर्य आदि। और **उपवास...** तप, वह संयम आदि। कहो, समझ में आया? ... कुछ भी राग को घटाने का, कुछ भी प्रतिदिन कुछ होना चाहिए। षट्कर्म कहे हैं या नहीं? ऐसा शुभविकल्प उसे होता है, शुभभाव आता है, 'उसे करता है'—ऐसा व्यवहारनय से कहा जाता है। करे, सेवन करे, ऐसा करना, यह तो व्यवहार में ऐसा ही बोला जाये न!

अणुव्रतरूप धर्म करे,... लो! **और जो बड़ी शक्ति होवे, तो सब परिग्रह का त्यागकर...** यह पाठ में है। '**सर्वसंगपरित्यागं कृत्वा निर्विकल्पपरमसमाधौ स्थातव्यम्।**' यह संस्कृत पाठ है। ओहो! **बड़ी शक्ति होवे, तो सब परिग्रह का त्यागकर यति के व्रत धारण करके निर्विकल्प समाधि में रहे।** देखो, निर्विकल्प भगवान आत्मा। उसको जरा विकल्प होता है विशेष श्रावक को दानादि का। और इनको ऐसा कि यह तो निर्विकल्प ... वापस निर्विकल्प में स्थिर रहे। समझ में आया? '**निर्विकल्पपरमसमाधौ स्थातव्यम्।**' ओहो! अपने आत्मा को निर्विकल्प शान्ति में स्थापित करना। **यति को सर्वथा धन का त्याग और गृहस्थ को धन का प्रमाण करना योग्य है।** प्रमाण करना चाहिए। **विवेकी गृहस्थ धन की तृष्णा न करें।** यह थोड़ा हो, उसमें निभावे। रोडवे अर्थात् क्या? निभावे। बहुत बड़ी-बड़ी फलांग न मारे। फलांग-फलांग अर्थात् इतना लूँ... इतना लूँ... इतना पैसा... क्या करना है? मर जाना है यहाँ सब छोड़कर। ऐई! कैसे होगा? बराबर है? देखो, यह पैसेवाले की बात आयी है, हों! ... बहुत तृष्णा नहीं करना। जो हो उसमें से सन्तोष करके उसमें से निवृत्ति लेना। साथ में ले गया कहीं तेरा पिता और सब ले गये साथ में? सब रह गया यहीं का यहीं?

मुमुक्षु : घर में और घर में है न....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु साथ में उसे क्या आया?

मुमुक्षु : उसके लिये बराबर है। धन के लिये ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके लिये भी नहीं। उसके लिये भी नाशवान है।

विवेकी गृहस्थ धन की तृष्णा न करें। देखो, यह कहते हैं। **धन यौवन असार है,...** उसमें सार धूल में क्या है? भाई! **यौवन अवस्था में विषय तृष्णा न करें,...** युवा अवस्था। ओहोहो! भोग के काल में योग स्मरण करे, श्रीमद् कहते हैं, यह भाग्यवान की निशानी है। भोग के काल में योग याद आवे। आहाहा! दृष्टिपूर्वक, हों! अकेले भोग की... भोग के काल अर्थात् यौवन, उसमें योग का काल अन्दर प्रगट करे। श्रीमद् ने टुकड़ा लिखा है। महा भाग्यवान की निशानी है। अल्प काल में मुक्त होने की दशा (प्रगट होने की है)। उसे यौवनकाल में काम का उद्वेग जहाँ हो वहाँ योग का उद्वेग प्रगट करे। अन्दर में से स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... योगी। कहो, समझ में आया?

विषय का राग छोड़कर विषयों से पराङ्मुख जो वीतराग निजानन्द एक अखण्ड... देखो, योगफल लाये। **वीतराग निजानन्द एक अखण्ड...** देखो, एक शब्द पड़ा है, हों! '**वीतरागचिदानन्दैकस्वभावे**' वीतराग आत्मा का स्वभाव। शुभाशुभ विकल्प से रहित निर्विकल्प निजानन्द। निज—अपना आनन्द ऐसा एकरूप अखण्ड, स्वभावरूप वह शुद्ध आत्मा। उसकी व्याख्या की। **वीतराग निजानन्द एक...** संस्कृत में '**चिदानन्दैक-स्वभावे**'' ऐसा शब्द पड़ा है। वीतराग चिदानन्द एक अखण्ड स्वभाव। देखो, एक अखण्ड स्वरूप स्वभाव अपना ऐसा शुद्ध आत्मा, ऐसा। **स्वभावरूप शुद्धात्मा...** ऐसा। अभेद कहा। **उसमें लीन होकर हमेशा भावना करनी चाहिए।** मुनि हो तो हमेशा निर्विकल्प में रहना चाहिए। श्रावकों को भी तृष्णा घटाकर भी इसमें ध्यान में समय लेना, (समय) निकालना चाहिए। कहो, समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - १३३

आगे जो धर्म से रहित हैं, और तपश्चरण भी नहीं करते हैं,... तपश्चरण अर्थात् मुनिपना **उनका मनुष्य-जन्म वृथा है, ऐसा कहते हैं —**

२६३) धम्मु ण संचिउ तउ ण किउ रुक्खेँ चम्ममएण।

देखो! एक दृष्टान्त दिया। यह चमड़े का वृक्ष यह मनुष्य देह। चमड़े का वृक्ष है यह।

खज्जिवि जर-उद्देहियए णरइ पडिव्वउ तेण॥१३३॥

जिसने मनुष्य शरीररूपी चर्ममयी वृक्ष को पाकर... आहाहा! जिसने मनुष्य शरीररूपी चर्म-चमड़े का वृक्ष पाकर। यह चमड़े का वृक्ष है। उसको नीचे से पानी दे, इसको यहाँ से दे। वृक्ष है। उस वनस्पति आदि को नीचे मूल (होता है)। वृक्ष है यह। चर्ममय वृक्ष पाकर **धर्म नहीं किया,...** ओहो! आत्मा की शान्ति, आत्मा का भान सम्यग्दर्शन आदि **नहीं किया, और तप भी नहीं किया,...** दो बातें लीं। सम्यग्दर्शन आदि धर्म नहीं किया और मुनिपना भी कार्य नहीं किया **उसका शरीर... 'जरोद्रेहिकया खादयित्वा' बुढ़ापारूपी दीमक के कीड़ेकर खाया जायेगा,...** आहाहा! वह बुढ़ापारूपी दीमक—जीवांत। दीमक, दीमक तो साधारण है। यह तो कठोर जीवांत होती है। यह **बुढ़ापारूपी दीमक के...** अर्थात् जीवांत। जीव-जीव होते हैं न। कीड़े-कीड़े। **खाया जायेगा,...** आहाहा! जीर्ण हो जायेगा, ऐसा हो जायेगा। अरे! कुछ नहीं किया, हों! एक व्यक्ति कहे, अरे! मुझे अवसर पर किसी ने सलाह नहीं दी, हों! लो, यह और ऐसा बोला वह। कोई सलाहकार नहीं मिले। एकदम हो गया था। परन्तु सलाह देनेवाले थे, तब तो सुना नहीं था। पश्चात् शरीर जीर्ण हो गया, मरने की तैयारी। अरे! मुझे कोई सलाहकार नहीं मिले। कि अब करो, हों! यह सब चला गया। **उसको मरणकर...**

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु गृहस्थ परिवार किसका कहे कि तू निवृत्त हो? परिवार कहे, कर न पाप, मरेगा, तू नरक में जा। हमारे क्या है? परिवारी क्या कहें? कर न।

रगड़ बापू! हमको मौके से काम आयेगा, फिर कहीं कमाया जायेगा? अवस्था है, अभी जवान अवस्था है, निरोग अवस्था है, तब तक कमा सकेंगे। बाद में कमा सकेंगे? धूल में भी कमाता नहीं, सुन न अब। यह तो आना होगा वह आयेगा। विकल्प से क्या (आता है)? वह विकल्प पर अवस्था के लिये निरर्थक है और वह विकल्प तेरे स्वभाव के लिये निरर्थक। आहाहा! क्या कहा? उस विकल्प की चिन्ता का विकल्प उससे पर की व्यवस्था रहेगी, वह निरर्थक और उस विकल्प की ताकत नहीं कि पर की अवस्था को व्यवस्थारूप से रखे और वह विकल्प तेरी अवस्था के लिये निरर्थक। आहाहा!

एक बार कहा था। यह मर जाये तब क्या कहलाता है? उठमणुं आता है न? फिर आवे न दो-चार दिन में? मर जाने के बाद मांगलिक सुनने। जामनगर में आये हुए वे वल्लभ सेठ थे न ... बड़े गृहस्थ। पैसेवाले थे। पहले-पहले गये। उसने कभी सुना नहीं हो। उसमें एक वाक्य आया था कि देखो, ८० वर्ष की उम्र देह की, उसके लिये २० वर्ष की उम्र से व्यवस्था (करता है)। ८० वर्ष तक रहे, कोई प्रतिकूलता न हो, मकान की, इज्जत की, कीर्ति की, पुत्र की, पुत्री की, ऐसी २० वर्ष से वह ६० वर्ष तक की चिन्ता। ८० वर्ष की उम्र। और ८० वर्ष के बाद का पहला समय वह भव तो जीव का है। वह भव इसका और वह भव यहाँ से निकला, धूप और छाया को कुछ दूरी नहीं। इसी प्रकार इस भव और उस भव के बीच एक समय का अन्तर नहीं। यहाँ पूरा हुआ, वह भव और यह भव पहले समय में मिलेगा तो जिन्दगी रहेगी पूरी। वह जिन्दगी पूरी का भव जीव को रहेगा, उस भव के लिये कुछ नहीं और इस भव के ८० वर्ष की दरकार। यह वह क्या... हो गया है? वह वल्लभजी कहे, आहाहा! बेचारे वैसे थे।

बापू! ८० वर्ष यहाँ जीना है, वहाँ २० वर्ष से ६० वर्ष तक ऐसे लम्बाय। वहाँ तक कुछ बाधा न आवे। ब्याज उपजाऊँगा, मकान बनाऊँगा, यह करूँगा, पुत्र का विवाह करूँगा... यह करूँगा... यह करूँगा... मरने के बाद पुत्र भी अपने को अनुकूल रहेंगे। ठेठ मरकर ठीक से यह शरीर। भाई! इस भव के बाद वह भव आयेगा, वह इस जीव का होगा या कोई दूसरे जीव का होगा? और इस भव के अन्त और उस भव का

छोर शुरुआत तो एक ही है और जो पहले समय में भव मिलेगा, वह पूरी जिन्दगी रहनेवाला है। तो उस जिन्दगी का कौन सा भव और कहाँ हूँ, मैं कहाँ जाऊँगा—इसकी कुछ (खबर) है? मगनभाई! मरते तक हैं, ऐसा इसका अर्थ....

मुमुक्षु : आप कहते हो तो कोई झाड़ने को....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह किसकी बात चलती है? परन्तु निमित्त है या नहीं तू? कहाँ तू यह देह के नाश के साथ नाश हो जानेवाला है? वह तो देह छूटी, साथ में दूसरे भव में। वह भव कैसा मिलेगा? क्या होगा? इसकी सम्हाल के लिये मेरे क्या वर्तमान परिणाम हैं कि उनका कुछ ठीक हो? उसके परिणाम की तुझे खबर नहीं। अभी परिणाम की, भव के परिणाम की। भवरहित भगवान आत्मा के परिणाम की तो सावधानी अपूर्व प्रयास माँगती है वहाँ। समझ में आया? बात सच्ची।

बीस वर्ष से जहाँ जवान हों ऐ... मरे उसके छोर पहले इस ओर तक सब व्यवस्थित रहे ऐसी चिन्ता। वह होने पर भी कहा, वह चिन्ता तो बाहर की व्यवस्था के लिये निरर्थक और वह चिन्ता स्वभाव की शान्ति के लिये निरर्थक। लटकती बीच में मुफ्त की। बराबर है? आहाहा! और यह भव सामने मिलने का पूरी जिन्दगी रहने का, हों! जो पहले समय में मिलेगा, वह पूरी जिन्दगी रहेगा। यह तो एक समय के अन्दर... इस भव का शरीर और इसके कुछ रखोपा और यह बाहर के साधन, इसके तेरे परिणाम की जहाँ दरकार नहीं। उसे नित्यानन्द प्रभु त्रिकाल है, उसे कैसे सावधानरूप से दृष्टि में लेकर एकाग्र होना, यह तो महान पुरुषार्थ है। जिसके भव की व्यवस्थितता की दरकार नहीं, उसे आत्मा की व्यवस्थितता की दरकार किस प्रकार होगी? आहाहा! यह मेरी स्त्री और यह मेरे पुत्र और यह मेरा शरीर और यह मेरा मकान। कहाँ तक? यहाँ से छूटे, इकट्ठा कुछ नहीं रहे यह। दूसरे सब द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव का संयोग दूसरा हो जायेगा। सब, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव सब। तू तो वह का वह है। नित्य तो वहाँ भी है।

जिसे लम्बाकर दूसरे भव (के लिये) भाव कैसे हों कि जो उस भव में कुछ ठीक पड़े, ऐसी भी दरकार नहीं, उसे भवरहित आत्मा, भवरहित आत्मा, भव के

भावरहित आत्मा (उसकी सम्हाल किस प्रकार होगी) ? बाहर की सम्हाल करनी है जिसे कि यह मेरा क्या होगा ? ऐसी दृष्टि अन्दर में किये बिना जन्म-मरण का अन्त आवे, ऐसा नहीं। कहो, समझ में आया ? यह बुढ़ापारूपी कीड़ा खा जायेगा। आहाहा! 'बालपन खेल में खोया, जवानी स्त्री में मोह्या, बुढ़ापा देखके रोया।' यह फकीर गाते हैं। जब वह होवे न सवेरे में। रोजा होवे न रोजा। सवेरे गाये। हमारे गाँव में पालेज में मुसलमान बहुत। छोटी उम्र में सब सुनते हैं। 'बालपन खेल में खोया...' परन्तु उन्हें कुछ नहीं होता। वह तो चला आवे। 'जवानी स्त्री में मोह्या।' शरीर में वह स्त्री के सन्मुख देखा ही करे। आहाहा! मानो क्या होगा मक्खन उसमें। 'और बुढ़ापा देखके रोया।' हाय...हाय... कुछ किया नहीं तीनों समय में।

यह यहाँ आचार्य कहते हैं, देखो! यह वापस खा जायेगा तो ठीक। **फिर उसको मरणकर नरक में पड़ना पड़ेगा।** आहाहा! यह पर की चिन्तायें कर-करके उसमें व्यवस्था-अवस्था नहीं होगी तेरी चिन्ता से। और तेरी व्यवस्था शान्ति की, वह भी चिन्ता की कल्पना से नहीं होगी। चिन्ता से बाँधे कर्म, व्यवस्था बाहर में नहीं होगी, मरकर नरक में जायेगा, ऐसा कहते हैं, लो! आहाहा!

भावार्थ :- गृहस्थ अवस्था में जिसने सम्यक्त्वपूर्वक... देखो, सम्यक्त्वपूर्वक। गृहस्थाश्रम में भी आत्मा के ज्ञान, भानपूर्वक। समझ में आया ? इस टीका में ही है यह, हों! '**सम्यक्त्वपूर्वको गृहिधर्मो न कृतः**' दूसरी लाईन है। '**गृहस्थावस्थायां दानशीलपूजोपवासादिरुपसम्यक्त्वपूर्वको गृहिधर्मो न कृतः**' १३३ में संस्कृत की दूसरी लाईन है। गृहस्थदशा में जिसे समकितपूर्वक। १३३ में संस्कृत है। है न ? **दान,...** समकितपूर्वक दान, शुभभाव ऐसा भक्ति आदि **शील...** ब्रह्मचर्य आदि... संयम आदि का भाव थोड़ा पुण्य का। **पूजा, उपवासादिरूप गृहस्थ का धर्म नहीं किया,...** एक बात। **दर्शनप्रतिमा, व्रतप्रतिमा आदि ग्यारह प्रतिमा के भेदरूप श्रावक का धर्म नहीं धारण किया,...** यह चमड़ी के वृक्ष तो जल जायेंगे, कहते हैं, कीड़े खा जायेंगे। खा गया हुआ ही है न। कहाँ वहाँ इसके पास है ? भिन्न का भिन्न है। उसका यह क्या होगा ? उसका क्या होगा ? इसकी चिन्ता में हो गया, गया। कहते हैं कि वह तो कीड़े खा जायेंगे और तेरी चिन्ता

के फल में जायेगा नरक में, ऐसा कहते हें। ऐसा कहते हैं मूल तो। तेरी चिन्ता से कुछ नहीं होगा वहाँ। वहाँ तो बुढ़ापा जल जायेगा और तेरी चिन्ता की तीव्रता के परिणामरूप से नरक में जाना पड़ेगा। कहो, समझ में आया?

मुनि होकर सब पदार्थों की इच्छा का निरोध कर... अब मुनि की बात ली। दो बात है सही न पाठ में? अर्थ में कहा है। अर्थ में कहा है न अर्थ में। श्रावक का पाठ... धर्म नहीं किया, ऐसा कहा न? '**धम्मु ण संचिउ**' इसलिए फिर अर्थ निकाला दो— श्रावकधर्म और मुनिधर्म, ऐसा। **मुनि होकर सब पदार्थों की इच्छा का निरोध कर...** कुछ नहीं होता। ओहोहो! मुनिपना अर्थात् परमेश्वरपद। मुनिपना अर्थात् अमृत के सागर के उछाला मारती दशा। उसमें जहाँ इच्छामात्र नहीं। इच्छा का निरोध और अतीन्द्रिय आनन्द का उभरो—उफान। अन्तर के अतीन्द्रिय आनन्द के महान धाम भगवान में तीन कषाय (चौकड़ी) का नाश होकर स्थिर हुआ है, ऐसी जो मुनि को दशा। **सब पदार्थों की इच्छा...** एक पदार्थ की भावना है, स्वपदार्थ की भावना है। **सब पदार्थों की इच्छा का निरोध कर अनशन वगैर बारह प्रकार का तप नहीं किया,...** व्यवहारतप लिया है। **तपश्चरण के बल से शुद्धात्मा के ध्यान में ठहरकर...** यह तपस्या का हेतु तो शुद्धात्मा में स्थिर होना है। निवृत्ति मिले, आहार-पानी लेने की वृत्ति न हो तो,... न हो तो आत्मा के ध्यान में स्थिर होने का समय मिले।

शुद्धात्मा के ध्यान में ठहरकर निरन्तर भावना नहीं की, मनुष्य के शरीररूप चर्ममयी वृक्ष को पाकर यति का व श्रावक का धर्म नहीं किया, उनका शरीर वृद्धावस्थारूपी दीमक के कीड़े खावेंगे,... अर्थात् वृद्धावस्था ... ऐसा। **फिर वह नरक में जावेगा। इसलिए गृहस्थ को तो यह योग्य है,...** देखो, अब आया। **निश्चयरत्नत्रय की श्रद्धाकर निजस्वरूप उपादेय जान,...** पाठ इतना देखो, '**गृहस्थेनाभेदरत्नत्रय-स्वरूपमुपादेयं कृत्वा भेदरत्नत्रयात्मकः श्रावकधर्मः कर्तव्यः**' निश्चयरत्नत्रय की श्रद्धा— सम्यग्दर्शन, ज्ञान और स्वरूप की स्थिरता आयी, ऐसी श्रद्धा उसे बराबर होनी चाहिए। तीनों रत्न की श्रद्धा पक्की। **निश्चयरत्नत्रय की श्रद्धाकर निजस्वरूप उपादेय जान,...** देखो, गृहस्थ की बात चलती है, हों! **निजस्वरूप उपादेय जान,...** भगवान आत्मा शुद्ध

पूर्ण प्रभु एक अंगीकार करनेयोग्य है। अर्थात् कि दृष्टि और स्थिरता में वह आदरनेयोग्य है। ऐसा **उपादेय जान...**

अब उसे गृहस्थाश्रम है, इसलिए व्यवहार है। **व्यवहाररत्नत्रयरूप श्रावक का धर्म पालना।** निश्चय के भानसहित ऐसे व्यवहार के श्रावक के व्रत पालना। बिल्कुल निश्चय न हो और अकेले व्रत? बारह व्रत? है न? '**गृहस्थेनाभेदरत्नत्रयस्वरूपमुपादेयं कृत्वा**' ऐसा है। '**गृहस्थेनाभेदरत्नत्रयस्वरूपमुपादेयं कृत्वा**' ऐसी है टीका। भगवान आत्मा भूतार्थ शुद्धस्वरूप त्रिकाल आनन्दमूर्ति, उसे आदरनेयोग्य है, दृष्टि, ज्ञान और लीनता (में) उसे उपादेय जान। **व्यवहाररत्नत्रय के...** उसे प्रधानता देनी है न? निवृत्ति बहुत नहीं, इसलिए यह लिया है।

यति को यह योग्य है कि निश्चयरत्नत्रय में ठहरकर... इतना अन्तर। श्रावक को निश्चयरत्नत्रय में... समझ में आया? श्रद्धा करके, उपादेय मानकर। उपादेय तो वही है उसे दृष्टि में, ज्ञान में। परन्तु व्यवहार से उसे अशुभ टालने के लिये, अशुभ धन्धा-पानी होता है, इसलिए शुभभाव बहुत होता है, शुभ उपयोग। वह करना, ऐसा कहा जाता है न व्यवहारनय से? मुनि को **निश्चयरत्नत्रय में ठहरकर...** कहाँ? नीचे। **व्यवहाररत्नत्रय के बल से...** अर्थात् मुनिपना, ऐसा। पंच महाव्रतादि। मुनिपना अर्थात् पंच महाव्रतादि अट्ठाईस मूलगुण आदि। ऐसे **बल से महातप करना।** लो! **अगर यति का व श्रावक का धर्म नहीं बना, अणुव्रत नहीं पाले, तो महादुर्लभ मनुष्य-देह का पाना निष्फल है, उससे कुछ फायदा नहीं।** विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आषाढ़ शुक्ल ६, रविवार, दिनांक - ०४-०७-१९६५
गाथा - १३४ - १३५, प्रवचन - १६३

गाथा - १३४

परमात्मप्रकाश, दूसरा अध्याय। **आगे श्रीगुरु शिष्य को यह शिक्षा देते हैं कि तू...** इन्होंने मुनिराज किया है, परन्तु जिनेश्वरपद चाहिए। मूल पाठ में ऐसा है। **तू जिनेश्वरों के चरणारविन्द की परमभक्ति कर।** ऐसा लेना। मुनिराज के बदले यह शब्द चाहिए। मूल पाठ यह है। हे शिष्य! ऐसे गुरु शिक्षा देते हैं। तू जिनेन्द्रदेव के चरणारविन्दों की परमभक्ति कर। त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर ने परम सत्य मार्ग कहा तो उसकी तू भक्ति कर। इतना उसका शीर्षक बाँधा।

२६४) अरि जिय जिण-पइ भत्ति करि सुहि सज्जणु अवहेरि।
तिं बप्पेण वि कज्जु णवि जो पाडइ संसारि॥१३४॥

अर्थ, नीचे शब्दार्थ। **हे भव्य जीव! तू जिनपद में भक्तिकर,...** इसका विशेष अर्थ करेंगे बाद में, हों! त्रिलोकनाथ परमात्मा वीतराग पद स्वरूप हैं। उनके ऊपर तू प्रीति कर। **और जिनेश्वर के कहे हुए जिनधर्म में प्रीति कर,...** वह जरा वचन निमित्त है न, उसमें डाल दिया लगता है। कहे हुए। जिनेश्वर का कहा हुआ धर्म, उसके ऊपर गुणानुराग अर्थात् प्रीति कर। यह अपेक्षा आ गयी। **संसार सुख के निमित्तकारण...** अरे! संसार के अनुकूलरूप निमित्त के कारण। **जो अपने कुटुम्ब के जन, उनको त्याग,...** प्रिय में प्रिय परिवार हो, परन्तु छोड़। वह दुर्गति के निमित्त हैं।

मुमुक्षु : सुख के कहे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सुख संसारसुख कहा।!

मुमुक्षु : सुख के निमित्त हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुख अर्थात्? यह संसार का सुख। अर्थ क्या किया है?

संसार सुख के... अर्थात् दुःख के। संसार का सुख अर्थात् दुःख। **'संसारसुखसहकारि-कारणभूतं'** ऐसा है पाठ में। यह सब प्रिय में प्रिय हो संसारी जीव, वे संसार के सुख के कारण, उन्हें छोड़। अरे! कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र जिनके ऊपर तुझे प्रीति हो परन्तु उस वस्तु को छोड़, ऐसा कहते हैं। और जिनेश्वर सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर ने कहा हुआ मार्ग और उनके कहे हुए धर्म की प्रीति कर। कहो, समझ में आया?

जो अपने कुटुम्ब के जन... प्रिय में प्रिय स्त्री हो, भाई हो, पिता हो। आगे कहेंगे पिता का नाम समुच्चय कहकर। वह प्रिय में प्रिय स्त्री हो, पुत्र हो तो भी धर्म के विरोधी हैं, वे सब। संसार के सुख के अर्थात् कि दुःख के निमित्त हैं। त्रिलोकनाथ परमात्मा परमेश्वर का मार्ग उनके वचन सुख के कारण—आत्मा के सुख के कारण हैं, उनमें प्रेम कर। विशेष कहते हैं। **'तेन पित्रापि नैव कार्यं' उसे महास्नेहरूपी पिता से भी कुछ काम नहीं है,...** कहते हैं कि तेरे लिये पाप किये, सब कमाया, इकट्ठा किया हो पाँच, पचास लाख, करोड़, दो करोड़। ऐई! पिता के साथ काम नहीं, ऐसा कहते हैं। **उसे महास्नेहरूपी पिता से भी कुछ काम नहीं है,...** यह तो वह लड़का कमाया, परन्तु यह कमाया हो तो भी नहीं, ऐसा कहते हैं। **महास्नेहरूपी पिता से...** पिता का प्रेम इतना कि उनके लिये मरकर पाप किये हों, ऐसा सब किया हो। हे भाई! तेरा प्रिय में प्रिय बाप भी दुर्गति का निमित्त, उसे छोड़ दे।

मुमुक्षु : घर में क्लेश होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो हित के लिये बात है। क्यों? अरुणभाई!

'तेन पित्रापि नैव कार्यं' यह पिता का भी तुझे क्या काम है? कि जो तेरे ऊपर बहुत स्नेह हो, बहुत प्रेमवाला। ... साधारण बात नहीं ली। **महास्नेहरूपी पिता से भी कुछ काम नहीं है, जो संसार-समुद्र में इस जीव को पटक देवे।** चार गति में भटकावे। त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव परमात्मा की वाणी में ऐसा आया कि हे आत्मा! वीतराग ने कहा हुआ धर्म, उनके कहे हुए वचन, उनमें तू गुणानुराग—प्रेम कर। जगत के सुख के कारण, प्रिय में प्रिय सज्जन और उससे प्रिय में प्रिय तेरा पिता हो, छोड़ दे, बापू! तुझे कहाँ जाना है? यह सब कोई साथ में आवे, ऐसे नहीं। भगवान का धर्म ही एक तुझे

साथ में आयेगा। कहो, समझ में आया? ऐसे अधिक पिता का किसलिए कहा? कि कमाता है न पिता इसके लिये, लड़के के लिये। मर जाये पूरा वर्ष। वर्ष क्या जिन्दगी। नवरंगभाई! यह सब कमा-कमाकर गये न तुम्हारे लिये, दामोदरभाई! छोड़कर चले गये।

मुमुक्षु : वह तो ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहते हैं। यह तो दृष्टान्त देते हैं, यहाँ आये हैं वे। सब दुनिया में कमा-कमाकर, पाप करके, लड़के के लिये। कहते हैं प्रिय में प्रिय तेरा पिता हो, बापू! वह तुझे सुगति नहीं देगा। वे सब दुर्गति के निमित्त हैं। तीन लोक के नाथ धर्मपिता सर्वज्ञदेव धर्मपिता परमात्मा और उनकी वाणी, उनके ऊपर प्रीति कर, भाई! यह प्रीति छोड़ दे। तुझे आत्मा का हित करना हो, जगत में से उद्धार करके ऊँचा आकर तुझे संसार को नीचा कर डालना हो, नकार, तो यह कर। अब देखो, (क्या कहते हैं?)

भावार्थ :- हे आत्माराम! ... है न? संस्कृत में है यह, हों! **'हे आत्मन्' हे आत्माराम! अनादिकाल से दुर्लभ...** अनादिकाल एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, त्री इन्द्रिय, चौइन्द्रिय में भटका मर-मरकर पंचेन्द्रिय आदि में। **वीतराग सर्वज्ञ का कहा हुआ...** वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव का कहा हुआ **राग-द्वेष-मोहरहित...** देखो, **'रागद्वेषमोहरहिते जीवपरिणामलक्षणे शुद्धोपयोगरुपे'** यह पूरा शब्द पड़ा रहा है इसमें। उभार देना। ओहोहो! देखो, शुद्ध उपयोग का क्या स्वरूप? **'जीवपरिणामलक्षणे शुद्धोपयोगरुपे'** भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञानानन्द की मूर्ति पवित्र, उसके पवित्र परिणाम जीव के शुद्ध। पुण्य-पाप और मिथ्या भ्रान्ति रहित के, शुद्ध आत्मा के आनन्द की रुचि, ज्ञान और रमणता के। ऐसे जो शुद्ध जीव के परिणामलक्षणरूप शुद्ध उपयोग। समझ में आया? उसे जीव के परिणाम कहा है। क्योंकि जीव शुद्धस्वरूप है, पवित्र है, आनन्दकन्द निर्मलानन्द है। उसके अन्तर्मुख होकर जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ऐसे शुद्ध परिणाम (होते हैं), उसे जीव के परिणाम कहा है। शशीभाई! आहाहा! स्वजन तो कहीं रह गये, माँ-बाप कहीं रह गये, देव, गुरु और शास्त्र भी कहीं रह गये। शुभ परिणाम आस्रवरूप जो लक्षण, वह बाद में कहेंगे व्यवहारधर्म में, परन्तु तेरे परिणाम तो उसे कहते हैं (कि)

भगवान चिदानन्द शुद्धस्वरूप, वीतरागस्वरूप अपना त्रिकाली है, उसे अन्तर अवलम्बकर जो जीव के शुद्ध—पुण्य-पाप के भावरहित **'जीवपरिणामलक्षणे शुद्धोपयोगरुपे' 'शुद्धोपयोगरुपे निश्चयधर्मे'।** समझ में आया?

भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण शुद्ध चैतन्यदल है। पुण्य-पाप के भाव, वे कहीं जीव का जीवस्वरूप नहीं। पुण्य-पाप के भाव, वे जीवस्वरूप नहीं, तो पुण्य-पाप के फल, वे कहीं जीवस्वरूप नहीं। जीव का स्वरूप तो पुण्य-पाप के विकल्प और रागरहित भगवान शुद्ध चैतन्य ज्ञानघन आत्मा, वह शुद्ध चिदानन्दस्वरूप आत्मा का है, वास्तविक। वह वास्तविक शुद्ध चैतन्य के परिणाम, उसे कहते हैं कि जिस परिणाम में पुण्य और पाप के रागरहित शुद्ध उपयोग लक्षण, जीव के परिणामलक्षण शुद्ध उपयोग प्रगट हो, उसमें प्रीति कर। ओहोहो! पहली यह बात। व्यवहारधर्म की बाद में करेंगे। पहले निश्चय हो तो व्यवहार हो, इसके लिए सिद्ध करते हैं। भारी सूक्ष्म बातें, भाई! कहो, लालचन्दभाई! यह क्या ऐसा सूक्ष्म? परम सत्य? नये व्यक्ति को तो (ऐसा लगे) यह क्या कहते हैं यह?

भाई! तू आत्मा है, प्रभु! क्या कहते हैं, देखो तो सही! तेरे सज्जन तो उसे कहते हैं, सत् जन कि जो शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा का अन्दर पूरा पड़ा है, उसके अवलम्बन से जो आत्मा के शुद्ध परिणाम हों, वे तेरे सत्जन, तेरे सज्जन हैं। यह सज्जन के साथ डालते हैं न ऐसा दोनों में? बाहर के सज्जन तो दु:ख के निमित्त हैं।

मुमुक्षु : परजन हो गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : परजन हो गये। डालेंगे कुएँ में। नवनीतभाई! कराओ, विवाह कराओ इसका, करो स्त्री। गिर कुएँ में तू नरक में (जा), हमारे क्या है? आहाहा! उसे ऐसा कहते हैं, बापू! तू वीतराग का धर्म शरण कर, भाई! पहले करनेयोग्य तो यह है। अनन्त काल में ऐसे अवतार मिले। मुश्किल-मुश्किल से अवतार अनन्त काल में ऐसा भव (मिला), उसमें करनेयोग्य कर्तव्य तो वीतरागी शुद्ध परिणाम, यह लक्षणवाला शुद्ध उपयोग, वही करनेयोग्य है। आहाहा! देखो! दया, दान, व्रतादि के परिणाम, वे जीव परिणाम नहीं कहे, क्योंकि वे आस्रव हैं। समझ में आया? समझ में आया या

नहीं इसमें? चिमनभाई! मुश्किल से यह समझ में आये, वहाँ इस पैसे के कारण बाहर की चीज़ में फँस जाये, उसमें यह और कहाँ से आया? ऐसा कहते हैं अब तो पैसा हो गया है।

भगवान! सन्त, आचार्य, वीतरागी सन्त ऐसा कहते हैं कि हे आत्मा! यह वीतराग परमात्मा के परिणाम जो वीतरागस्वरूप तेरा स्वभाव, उसके शुद्ध उपयोग परिणाम हुए, वे जीव के परिणाम प्रभु! वे तेरे परिणाम हैं। यहाँ सज्जन के साथ गुलांट खाता है या नहीं? '**सुहि सज्जणु अवहेरि**'। तब यह सज्जन अर्थात् तेरे निजपरिणाम कि जिसमें तेरा हित हो और तेरी मुक्ति हो। ऐसा आत्मा भगवान शुद्धस्वरूप पवित्र की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति अर्थात् कि '**जीवपरिणामलक्षणे शुद्धोपयोगरुपे**' आहाहा! यह शुद्ध उपयोग। दया, दान, व्रत के परिणाम, वह शुभ उपयोग है; हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग के परिणाम अशुभ उपयोग है। दोनों उपयोग अशुद्ध उपयोग है, इसलिए उन्हें जीव परिणाम में नहीं डाला।

जीव, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध, ऐसा लेना है न? तो जीव और यह आस्रवतत्त्व तो भिन्न तत्त्व है। सात तत्त्व में भिन्न है। जीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। तब अब संवर-निर्जरा के परिणाम हैं, वे शुद्ध वीतरागी परिणाम, वे वीतरागी विज्ञानघन के साथ निकले हुए और यहाँ शुद्ध उपयोगरूपी संवर-निर्जरा के परिणाम, उन्हें जीव परिणाम कहकर शुद्ध उपयोग कहा गया है। आहाहा!

कहते हैं, **हे आत्माराम,...** आहाहा! **(दुर्लभ जो) वीतराग सर्वज्ञ का कहा हुआ...** देखो, ऐसे वीतरागी सर्वज्ञ का कहा हुआ, ऐसा कहकर क्या कहा? पाठ है न, '**अनादिकाले दुर्लभे वीतरागसर्वज्ञप्रणीते**' वीतराग सर्वज्ञ ने कहा। तीन लोक के नाथ परमेश्वर, सौ इन्द्र के पूजनिक भगवान ने समवसरण में ऐसा कहा कि '**रागद्वेषमोहरहिते जीवपरिणामलक्षणे शुद्धोपयोगरुपे**' ओहो! भगवान की वाणी में ऐसा आया है। ऐसा आया न, भाई! '**वीतरागसर्वज्ञप्रणीते' कहा हुआ...** इन्होंने कहा है कि **राग-द्वेष-मोहरहित...** जीव परिणाम। मिथ्यात्वरहित और पुण्य-पाप के परिणामरहित भगवान आत्मा पवित्र शुद्ध है, जिसमें अकेली शुद्धता की ही खान-निधि, शुद्धता की ही खान

पड़ी है। यह पुण्य-पाप के विकल्प, वे जीव नहीं और जीव के परिणाम वास्तव में नहीं। समझ में आया?

कहते हैं कि भाई! '**जीवपरिणामलक्षणे शुद्धोपयोगरुपे निश्चयधर्मे।**' पश्चात्? अन्त में शब्द लेना '**रतिं कुरु**' पीछे शब्द पड़ा है इसका। उसमें उपयोगरूप निश्चय धर्म, उसमें रति कर, प्रेम कर। है न, **उसमें प्रीति कर।** तीसरी लाईन, अर्थ में तीसरी लाईन। प्रीति कर। पहली तो यह बात। पहले यहाँ से बात उठायी। भगवान आत्मा वस्तु पूरी पदार्थ अरूपी ज्ञानघन दल। मिट्टी के रजकण से भिन्न, कर्म के परमाणु से भिन्न और पुण्य और पाप के आस्रवतत्त्व से भिन्न तत्त्व यह आत्मा। ऐसे आत्मा के परिणाम अर्थात् कि वह आत्मस्वरूप शुद्ध चैतन्यप्रभु, उसके अन्तर्मुख का उपयोग जिसे जीव परिणाम लक्षणवाला शुद्ध उपयोग कहा, उसमें प्रीति कर। कहो, समझ में आया? जीव के परिणाम में प्रीति तो जीव की प्रीति। समझ में आया इसमें? अरे! गजब बात!

भगवान आत्मा अन्दर ज्ञानानन्द चैतन्यसूर्य देह के दल मिट्टी, हड्डियों से भिन्न। आठ कर्म के रजकण मिट्टी के, उनसे भिन्न प्रभु और दया, दान, व्रत के परिणाम, वे शुभ और हिंसा, झूठ आदि अशुभ, ये दोनों परिणाम आस्रवतत्त्व से जीवतत्त्व भिन्न। ऐसे जीवतत्त्व के भाव के परिणाम—उसके सन्मुख होकर जो परिणाम हुए, आस्रव से विमुख होकर जो हुए, उसे जीव परिणाम लक्षण से शुद्ध उपयोग कहा जाता है। ओहोहो! कहो, शशीभाई! समझ में आया? कहो, नगीनभाई! यह वीतराग मार्ग है, भाई! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ। वीतरागस्वभाव का प्राप्तपना, वह तो वीतराग परिणाम की ही बात करे मुख्य तो। जिसमें वीतरागी शुद्ध उपयोग कहो या वीतरागी परिणाम कहो। क्योंकि राग-द्वेष-मोहरहित कहे। समझ में आया? मोह-क्षोभरहित परिणाम वे जीव के परिणाम हैं। आहाहा! समझ में आया इसमें?

निश्चयधर्म अर्थात् सच्चा धर्म। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ की वाणी में आया ऐस शुद्ध उपयोग जीव के परिणाम लक्षणवाला, उसमें प्रीति कर, प्रीति कर, दृष्टि कर, रुचि कर। ओहोहो! अब व्यवहार धर्म। अब यह निश्चय के धर्म के साथ जहाँ तक पूर्ण वीतरागदशा जीव को न हो तो बीच में व्यवहारधर्म आये बिना नहीं रहता। अब

व्यवहारधर्म में भी प्रीति कर, ऐसा कहना है आगे। '**व्यवहारधर्मे च पुनः षडावश्यकादिलक्षणे**' यह मुनि की बात ली है। यह षट् आवश्यक आदि लक्षण, ऐसा कहा। उसमें '**जीवपरिणामलक्षणे शुद्धोपयोगरुपे**' उसमें '**षडावश्यकादिलक्षणे**' शुभ उपयोगस्वरूपे, ऐसा शब्द लिया। षट् आवश्यकादि लक्षण। मुनि को...

मुमुक्षु : जीव परिणाम लक्षण नहीं कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं कहा। पूरी शैली कैसी की, देखो न!

आत्मा का स्वभाव भगवान सिद्ध जैसा स्वभाव। जैसे परमात्मा सिद्ध, परमात्मा अरिहन्त भगवान हुए, वह सब वैसा, पर्याय में हुए वैसा ही आत्मा का स्वभाव है। उसी स्वभाव में राग-द्वेष-मोहरहित परिणाम जो आत्मा हो, वह जीवलक्षणवाले परिणाम और उसे शुद्ध उपयोग और वह निश्चयधर्म। व्यवहारधर्म, उसके साथ व्यवहारधर्म मुनि को सामायिक, चौविसंथो, वन्दन, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान—ऐसा शुभ उपयोग मुनि को आता है। वह शुभ उपयोग है, शुभ। वह षट् आवश्यकादि लक्षण '**शुभोपयोगस्वरूपे**' ऐसा कहा है। उसमें '**शुद्धोपयोगरूपे**' कहा। भाई! इसमें स्वरूपे एक ही शब्द है। रूपे कहो या स्वरूपे कहो। षट् आवश्यक के परिणाम शुभ के मुनि को होते हैं, वह पुण्य शुभ उपयोग है, पुण्यास्रव है। धर्म, वह शुद्ध उपयोग है। व्यवहार धर्म, पुण्य आस्रव को व्यवहारधर्म कहते हैं। निश्चय से वह आस्रव है। समझ में आया?

कहते हैं कि '**षडावश्यकादिलक्षणे**' ऐसा आया न इसमें? शुद्ध उपयोग। **निश्चयधर्म और शुभोपयोगरूप व्यवहारधर्म, उनमें भी छह आवश्यकरूप...** ऐसा स्पष्टीकरण किया। **छह आवश्यकरूप यति का धर्म,...** यह व्यवहार। **तथा दान, पूजादि श्रावक का धर्म,...** गृहस्थाश्रम में दान, पूजा, भक्ति—ऐसा शुभभाव गृहस्थाश्रम में (आता है)। देखो, दोनों को। शुद्ध उपयोग में प्रीति तो दोनों के लिये कही, भाई! इसमें अन्तर पड़ा। निश्चय जो शुद्ध उपयोगरूपी धर्म तो दोनों के लिये एक है। मुनि हो या गृहस्थ हो। भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द और शान्तरस का पूरा स्व तत्त्व, उसकी रुचि, ज्ञान और रमणता, रुचि, ज्ञान और रमणता। ऐसी निर्विकल्प पर्यायरूपी परिणति जीव परिणामलक्षण शुद्ध उपयोग, वह वास्तविक धर्म। और यह मुनि का छह आवश्यकरूप

व्यवहारधर्म, शुभ उपयोगरूप व्यवहारधर्म। पहला शब्द कहा है इसमें। **शुभोपयोगरूप व्यवहारधर्म...** उसमें ऐसा कहा है कि **'षडावश्यकादिलक्षणे' 'शुभोपयोगस्वरुपे'** संस्कृत ऐसी है। **तथा दान, पूजादि श्रावक का धर्म, यह शुभाचाररूप...** देखो, यह शुभ आचाररूप **दो प्रकार धर्म...** दो अर्थात्? मुनि और श्रावक का। **शुभाचाररूप...** यह शुभ आचार, शुभ उपयोगरूप है। यह शुभ परिणाम है, पुण्य के परिणाम हैं। धर्म के परिणाम नहीं। ओहोहो!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न, व्यवहारधर्म। व्यवहार से कहा न। व्यवहार धर्म कहो या निश्चय से धर्म नहीं कहो, यह तो एक की एक बात है। निश्चयधर्म शुद्धोपयोग परिणाम, वह निश्चयधर्म है। वीतराग सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमेश्वर के मार्ग में। अन्यत्र तो है ही कहाँ। वीतराग के अतिरिक्त कहीं धर्म अन्यत्र कहीं तीन काल-तीन लोक में है नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह प्रेम करे न। व्यवहार से प्रेम नहीं? निश्चय का प्रेम निश्चय में और व्यवहार का प्रेम व्यवहार में। प्रेम है न इतना व्यवहार का। कहो, समझ में आया? आहाहा! गजब गाथा आयी और लो! यह भाई नहीं आये आज नहीं? वल्लभदास। ... गये हैं।

दान, पूजादि... उसे षट्कर्म होते हैं न। भगवान की पूजा, दान, दया, संयम, इच्छानिरोध कि यह छोडूँ, ऐसा भाव उसे छह प्रकार का होता है। वह श्रावक का व्यवहारधर्म है। अर्थात् शुभ उपयोगरूप, शुभ आचरणरूप धर्म है अर्थात् कि पुण्यरूप धर्म है। **यह शुभाचाररूप दो प्रकार धर्म उसमें प्रीति कर।** शुभाचाररूप दो प्रकार धर्म अर्थात् निश्चय और व्यवहार में प्रीति कर। समझ में आया? और मुनि यह छह आवश्यक आदि और इन्हें (श्रावक को) यह दान, पूजादि। दोनों में प्रीति कर — शुद्ध में और शुभ में तथा श्रावक और मुनि व्यवहार में।

इस धर्म से विमुख... देखो, क्या लेते हैं? ऐसे धर्म से विमुख कोई भी प्राणी हो

अनुकूल तुझे। **जो अपने कुल का मनुष्य, उसे छोड़,...** सगा पिता हो तो भी छोड़ और सगी स्त्री हो तो भी छोड़ दे। ऐई! मगनभाई! विवाद कराते होंगे भगवान? भाई! वह तुझे शरणभूत नहीं, हों! वे धर्मात्मा जीव हों, उनका धर्म जो है, उसकी प्रीति कर तो तुझे धर्म की बात सुनायेंगे। वे तो उल्टा मारेंगे सब घर के स्त्री, पुत्र और परिवार। बापू! थोड़ा हमारा करते जाओ, हों! तुम्हारे मर जाना है न अभी। मर जाओ तो चाहे जो हो तुम्हारा, परन्तु अब (हमारा करते जाओ)।

मुमुक्षु : .... इकट्ठे होकर।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसके साथ इकट्ठा है? कोई इकट्ठा नहीं, भिन्न-भिन्न हैं। मुफ्त का मानकर बैठा है। कुछ लेना और देना। किंचित्मात्र भी कहीं एकपना है नहीं। शेढे-सीमाडे समझ में आया? खेत में खेत हो न सबका। यह खेत भिन्न और उसका खेत भिन्न। सबकी हद भिन्न, उसमें इकट्ठे कब थे? यह तो कहते हैं, देखो न!

अरे! **इस धर्म से विमुख...** सच्चे निश्चयधर्म की दृष्टिरहित और निश्चयसहित व्यवहारधर्म के भाव रहित। ऐसे धर्म से विमुख **अपने कुल का मनुष्य...** अपने कुल का मनुष्य **उसे छोड़,...** पद्मनन्दि में आता है न, भाई! ऐसा कि सम्यग्दर्शन के विरुद्ध देश-कुल हो, उसे छोड़ दे। पद्मनन्दि में आता है। बापू! तेरा रक्षण करना है, भाई! आत्मा का रक्षण करना है। वे सब शत्रु उल्टा मारेंगे। वहाँ तो यहाँ तक कहा नहीं?

मुमुक्षु : परद्रव्य से....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह निमित्तरूप से की बात है न। वैर यहाँ भाव खड़ा होकर निमित्त हुआ। वह कौन-सा दुश्मन है? निश्चय की तो उसमें कहाँ छाप लगायी है? उसकी मान्यता में है न कि यह मेरे प्रिय। प्रिय कब थे? ओहोहो! कुन्दकुन्दाचार्य तो मूलाचार में यहाँ तक कहा, अरे! जो साधु का गण, जिसमें विरुद्ध श्रद्धा आदि पोषित, ऐसा हो, हे साधु! अकेला रहना, हों! और न सुहाये तो वहाँ तो जाना नहीं। स्त्री से विवाह करना। तो तुझे चारित्र का—राग का दोष होगा। परन्तु (मिथ्या) श्रद्धा महान पाप, जो धर्म का मूल, वह श्रद्धा खोटी करायेगा तो दुर्गति में जायेगा। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि भाई! **अपने कुल का...** देखा न? **'सुहि सज्जणु' 'सुहि सज्जणु' 'सुखं स्वजनं'** ऐसा। सुख स्वजन अर्थात्? प्रिय स्वजन, ऐसा। दुश्मन नहीं। प्रेम करे स्त्री, पुत्र। आहाहा! बापू! तुम्हारे बिना मैं नहीं निभूँगा, हों! मर जाऊँगा, हों! तुम पाँच वर्ष दूर रहते हो, वहाँ हमको ठीक पड़ता नहीं। बहुत अच्छी बात है। मार डालता है मीठा-मीठा मोम का पिलाया हुआ कोरडा मार मारकर। मेरा चाहे जैसा हो, परन्तु तुम्हारा तो अभी करूँगा, हों! वापस यह बोले। अरे! अनन्त कल में मुश्किल से मनुष्यपना मिला, उसमें वीतराग सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ की वाणी का निमित्त मिला। उसमें कहते हैं कि ऐसे में वीतरागी शुद्ध परिणाम के प्रेम में, उससे विरुद्ध कोई कहनेवाला हो, वह प्रिय में प्रिय सज्जन हो तो छोड़ देना, अकेला रहना, अविवाहित रहना, सन्तानहीन रहना। इसका यह अर्थ हुआ या नहीं?

इस धर्म से विमुख जो अपने कुल का मनुष्य, उसे छोड़, और इस धर्म के सन्मुख... देखो, अब वापस सुलटा लिया। जो कोई धर्म में प्राप्त हुए सम्यक् श्रद्धा, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्शान्ति वीतराग परिणाम और शुभभाव साथ में। **इस धर्म के सन्मुख जो पर कुटुम्ब का भी मनुष्य हो, उससे प्रीति कर।** वीतरागमार्ग के समक्ष क्या आशा रखोगे? पद्मनन्दि आचार्य ने कहा एक बार। अन्तिम अधिकार ब्रह्मचर्य का बहुत वर्णन किया। ब्रह्मचर्य का अधिकार बहुत वर्णन किया। (पश्चात कहते हैं), अरे युवानो! मेरा ब्रह्मचर्य का अधिकार तुमको ठीक न लगे तो मैं एक मुनि हूँ, हों! ऐसा करके क्षमा करना। मेरे से दूसरी क्या आशा रखोगे? आहाहा! हम तो मुनि हैं, भाई! हमारे से क्या आशा रखोगे? हमारे पास तो वीतरागी परिणाम और धर्म की आशा होती है। हे युवको! ऐसा कहा है, हों! पद्मनन्दि का अन्तिम २६वाँ अधिकार ब्रह्मचर्य की गाथा, ब्रह्मचर्य का भारी वर्णन। वर्णन करके (कहते हैं), युवकों! तुमको मेरी बात पसन्द न आती हो तो मैं तो मुनि हूँ, मुझसे क्या आशा रखोगे? क्षमा करना तुमको ठीक न लगे तो। आहाहा! है न? लाओ न, भाई! यहाँ पाठ हो तो (ठीक पड़े)। वहाँ रामजीभाई कोर्ट में बतलाते थे न। कानून सब। कानून अपने भगवान के कानून बताते हैं, लों! यह कानून रहा देखो यह। आहाहा!

पद्मनन्दि आचार्य जंगल में वनवासी सन्त, वनवासी सन्त दिगम्बर। जिन्हें

लंगोटी नहीं होती, दुनिया की दरकार नहीं होती। आहार-पानी की इच्छा दो-चार दिन, आठ दिन में हो तो भिक्षा के लिये चले जायें। लिख डाले हैं २६। अधिकार २६ हैं परन्तु नाम दिया २५। पद्मनन्दि पंचविंशति। अधिकार २६ है। आहाहा! देखो, अन्तिम लाईन है, हों!

युवतिसंगतिवर्जनमष्टकं प्रति मुमुक्षुजनं भणितं मया।
सुरतरागसमुद्रगता जनाः कुरुत मा क्रुधमत्र मुनौ मयि॥९॥

जो मनुष्य, मुमुक्षु अर्थात् मोक्ष-प्राप्ति के अभिलाषी हैं, उन मनुष्यों के लिये मैंने युवती स्त्रियों के संग को निषेध करनेवाले... यहाँ सज्जन का निषेध करना है न? यहाँ चलता है उसमें। **स्त्रियों के संग को निषेध करनेवाले इस अष्टक का अर्थात् ब्रह्मचर्याष्टक का वर्णन किया है; किन्तु जो मनुष्य, राग-समुद्र में डूबे हुए हैं, वे इस अष्टक को अच्छा नहीं समझते; अतः वे मुझे मुनि समझकर क्षमा करें।** आहाहा! यह वीतराग (कहे)। '**कुरुत मा क्रुधमत्र मुनौ मयि**' मैं मुनि हूँ। इसलिए क्षमा करना। तुमको पसन्द आवे, ऐसी ही बात मेरे पास से आवे, वैद्य ऐसे बँधे हुए नहीं कि इसे मीठी औषधि देना। उसका रोग कैसे मिटे, ऐसे बँधे हुए हैं, परन्तु मीठी औषधि देना, ऐसा कहीं वैद्य बँधा हुआ नहीं है। कड़वी दे। कफ के लिये कड़वी दे, तब कफ छूटे। अरे! ऐसी हो वैद्यराज? यह लो, दूसरी मीठी दो। मर जायेगा मीठी में। इसी प्रकार अनुकूल लगे ऐसा कहे, वह वैद्य सच्चा नहीं है। यह कहते हैं कि हम तो सत्य मार्ग जैसा था, ब्रह्मानन्द भगवान ब्रह्म में चरे, रमे —ऐसा जो ब्रह्मचर्य, उसकी बात हमने की। हे युवको! तुमको भोग के रंग के रस में यह बात उकताहट जैसी लगे तो क्षमा करना। मैं मुनि हूँ। आहाहा! शशीभाई!

यहाँ आचार्य कहते हैं, हमारे पास तुम क्या आशा रखोगे? हम सन्त मुनि वीतरागी सन्त है। वीतरागी परिणाम में प्रीति कर, ऐसा तुझे कहते हैं और उसमें न रह सके, तब शुभभाव में प्रीति कर, यह तुझे कहते हैं। इससे विरुद्ध कहनेवाले प्रिय में प्रिय सज्जन हों तो (भी) छोड़ देना। तुझे ठीक न लगे तो तू जान। हम तो यह मार्ग कहते हैं। आहाहा! कहो, बालचन्दभाई! मौके से यह अधिकार कैसा आया यह! आहाहा!

अरे! धर्म के सन्मुख, अरे! भिखारी हो एक समकिती ज्ञानी। पाँच-पच्चीस रुपये आजीविका के महीने में मिलते भी न हों, काला-कुबड़ा शरीर हो, भान है आत्मा का।

ऐसे **सन्मुख जो पर कुटुम्ब का भी मनुष्य हो... पर कुटुम्ब का भी मनुष्य हो उससे प्रीति कर।** साधर्मी जानकर प्रीति करना। समझ में आया? वे विधर्मी हैं। एक घर में एक बर्तन में बैठनेवाले, एक घर में एक बर्तन में खानेवाले। भाणे समझे न? एक बासन में। एक बासन। भाणुं अर्थात् बासन (बर्तन)। एक घर में और एक बासन में खानेवाले वे विरोधी हैं। आहाहा! कठिन बात, भाई! वीतराग भगवान ऐसी बातें करते होंगे?

तात्पर्य यह है कि यह जीव जैसे विषय-सुख से प्रीति करता है,... यह विषय-सुख के निमित्त और विषय-सुख में प्रीति करते हैं। **वैसे जो जिनधर्म से करे...** 'जैसी प्रीति हराम से तैसे हरि से होय' तुलसीदास में कहते हैं। 'चला जाये वैकुंठ में, पल्ला न पकड़े कोई। जैसी प्रीति हराम से' विषय में प्रीति। वैसे हरि अर्थात् आत्मा। पाप का ओघं हरति वह हरि। दूसरा हरि नहीं, हों! यह आत्मा हरि। भगवान आत्मा अन्दर वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा है। उसमें अकेला वीतराग का ही रसकन्द पड़ा है आत्मा में तो। उसके परिणाम वीतरागी हो, वे जीव के परिणाम कहलाते हैं। उसमें प्रीति कर न, बापू! आहाहा! समझ में आया? **वैसे जो जिनधर्म से (प्रीति) करे...** जैनधर्म का अर्थ ही वीतरागता। बीच में स्थिर न रह सके, इसलिए शुभभाव-राग आवे, परन्तु वह कहीं वास्तविक जैनधर्म है? वास्तविक जैनधर्म है? व्यवहार धर्म है वह तो।

'पस्सदि जिणसासणं' भगवान आत्मा को रागरहित, बन्धरहित अकेला वीतरागी स्वभाव से देखे ऐसे भावश्रुतज्ञान का परिणाम, वह जैनशासन है। बीच में रागादि आवे, वह जैनशासन है नहीं। वह तो व्यवहार का उपचार से कथन है। भगवान आत्मा अपने अन्तर भावश्रुतज्ञान द्वारा, वह भावश्रुतज्ञान कहो या वीतरागी परिणाम कहो, उसके द्वारा आत्मा को अबद्धस्पृष्ट, नियत, अविशेष **'पस्सदि जिणसासणं सव्वं।'** उसने सारे जैनशासन को देखा। तीन काल, तीन लोक को वीतराग परमात्मा ने (ऐसा फरमाया कि) जैन शासन कहीं बाहर में नहीं रहता, आत्मा की पर्याय में रहता है। द्रव्य-गुण में रहता नहीं।

द्रव्य-गुण तो त्रिकाल है। जैनशासन और संसार, दोनों आत्मा की पर्याय में रहते हैं। आहाहा! पर्याय अर्थात् अवस्था। अजैनशासन वह संसार, वह आत्मा की पर्याय में रहता है और जैनशासन, वह आत्मा की पर्याय में भावश्रुतज्ञान राग की परिणतिरहित में रहता है। समझ में आया? '**पस्सदि जिणसासणं सव्वं**' इसमें सारी वीतराग शासन का सार देखा, जाना, वह '**पस्सदि**' पूरा जिनशासन देखा। ओहोहो!

तो संसार में नहीं भटके। ऐसा आत्मधर्म, उसमें प्रीति करनेवाला, रुचि करनेवाला, अवलम्बन करनेवाला, आश्रय लेनेवाला, शरण करनेवाला '**संसार में नहीं भटके।**' उसमें तो कचूमर निकल जाये एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय। आहाहा! कहाँ आँख मींचकर देखे, कहीं संसार कहाँ लाखों कहाँ... कहाँ... कहाँ... कोई स्त्री नहीं, पुत्र नहीं, परिवार नहीं। कहाँ एकेन्द्रिय कितना काल? कहाँ निगोद कितना काल? कितनी हीनता दशा की और कितना काल हीन दशा में रहना? आहाहा! लम्बा पंथ उसे संक्षिप्त करने का मार्ग तो प्रभु! तेरे स्वरूप में है। समझ में आया? वीतराग भगवान ने ये कहा है। देखो, इसमें यह भी आया कि अकेला शुभ उपयोग वीतरागधर्म नहीं है। इसमें नहीं आया? क्या आया यह? निश्चय और व्यवहार दोनों आये। निश्चय बिना का अकेला व्यवहार, वह सच्चा धर्म नहीं। वह व्यवहार भी नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

यह तो योगीन्द्रदेव जंगलवासी सन्त। नागा, बादशाह से आघा। कुछ दरकार नहीं होती। वस्तु यह है, बापू! भाई! यह एक बार रुचि तो कर, प्रभु! यह रुचि की दिशा तो बदला। दिशा तो बदला, दशा बदल जायेगी तेरी। यह राग और परिणाम की रुचि छोड़। भगवान पूरा पड़ा है न, प्रभु! जिसमें से बड़े वीतरागी परिणाम निकाला ही कर। वह उदार है भगवान आत्मा। वीतरागी यथाख्यातचारित्र के परिणाम वीतरागी निकाला ही करे समय-समय नये। कम हो, ऐसा नहीं अन्दर। उसका अपना स्वभाव क्या और उसकी शक्ति का सत्त्व क्या? उसे अन्तर में माहात्म्य आता नहीं। माहात्म्य दूसरे लूट जाते हैं। संयोग लूट जाते हैं माहात्म्य, क्या राग लूट जाता है माहात्म्य। भटकने के कारण माहात्म्य लूट जाते हैं। आहाहा! कहते हैं... देखो न, गाथा में कितना डाला है! टीका तो और कैसी गिनना!

ऐसा दूसरी जगह भी कहा है कि जैसे विषयों के कारणों में यह जीव बारम्बार प्रेम करता है,... कारणों में। **वैसे जो जिनधर्म में करे,...** जिनधर्म, वह कोई सम्प्रदाय नहीं। वस्तु आत्मा वीतरागीस्वरूप ही वीतराग अर्थात् कि वस्तु हो, वह कहीं रागवाली और विकारवाली वस्तु होगी? वह वस्तु स्वयं आत्मा भगवान अनन्त गुण का धनी वीतरागस्वरूप अर्थात् अकषायस्वरूप है। यह उसके श्रद्धा, ज्ञान और रमणता के शुद्ध परिणाम, वह वीतराग धर्म। वह कोई सम्प्रदाय की चीज़ नहीं। वस्तु की चीज़ है, वह वस्तु की चीज़ है। समझ में आया? **वैसे जो जिनधर्म में करे, तो संसार में भ्रमण न करे।** समझ में आया? बहुत ऐसी बात, गाथा १३४ में तो बहुत। एक-एक गाथा में आचार्यों की शैली... एक-एक शब्दों में बहुत-बहुत भर देते हैं। एक-एक गाथा में भी बहुत बात भर देते हैं।

★ ★ ★

गाथा - १३५

आगे जिसने चित्त की शुद्धता करके तपश्चरण नहीं किया,... चित्त की शुद्धता अर्थात् कि वीतरागी निर्मल परिणाम। कहेंगे टीका में इसमें। अरे! जिसने भगवान परमात्मा स्वयं निज स्वरूप से उसकी श्रद्धा, ज्ञान और रमणता जो वीतरागी परिणाम, उसके द्वारा चित्त की शुद्धि नहीं की, **उसने अपना...** और उस पूर्वक जिसने मुनिपना नहीं लिया। वैसे तो मुनिपना अनन्त बार लिया, ऐसा नहीं। बाह्य लिंग, वेश, क्रियाकाण्ड। चित्त की शुद्धि—ज्ञान की शुद्धि। भगवान आत्मा अन्तर द्रव्य में झुकने से, अन्तर पदार्थ में अन्तर्मुख होते जो परिणाम शुद्ध हों, उसे चित्त की शुद्धि कहा जाता है। जितने बहिर्मुखी परिणाम उठते हैं, वे चित्त की अशुद्धि का कारण कहे जाते हैं। समझ में आया? पहले इसकी समझण में तो यह बात ले। इसकी श्रद्धा में यह बात बैठावे। गोठवे अर्थात् बैठावे, फिर इसका प्रयोग करे कि इस वस्तु में अन्दर जाने से लाभ है, बाकी लाभ कुछ है नहीं। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो अभी बाहर के विवाद। यह दया पालन की और यह व्रत पालन किये,

तपस्यायें कीं, अपवास किये और... उसमें धर्म (माना)। मर गया अनन्त बार। अब सुन न! वह तो राग कहीं पुण्य हो थोड़ा तो उसके साथ मिथ्याशल्य तो विपरीतता तो बड़ी पड़ी है। स्वभाव शुद्ध चैतन्य वीतरागीदशावाला वीतरागीदशा प्रगट करे, ऐसा पदार्थ, वह तो दृष्टि में लिया नहीं। उसके बिना यह अकेली राग की दृष्टि करके राग किया, वह तो अधर्म है। समझ में आया?

मुमुक्षु : खोटा हो परन्तु अधिक मनुष्य....

पूज्य गुरुदेवश्री : अधिक मनुष्य हो तो ठीक, नाम खोटा तो बहुत दे। अधिक चींटियाँ हों तो कहीं मनुष्य होवे? यह चींटियाँ नहीं चींटियाँ? चींटियारा होता है न? चींटियारा क्या कहते हैं? नगरा नहीं होता चींटियों का? शाम को आटा डालते हैं न कितने ही चींटियों को। वहाँ हजारों नगरा (झुण्ड) चींटियों को हों। नगरा कहलाये यह नगर कहलाये। इससे कहीं मनुष्य हो गये? इसी प्रकार अधिक मनुष्य नम्बर दे और सच्चा कहे, तो कहीं सच्चा हो जाता है? सच्चे को संख्या की आवश्यकता नहीं होती, सच्चे को सत्य भाव की आवश्यकता है। समझ में आया? और किसके पास तुझे रिजल्ट लेना है? क्या कलेजा उसका काम करे, ऐसे अज्ञानी के पास से तो तुझे अभिनन्दन लेना है? आहाहा!

जिसने आत्मा के शुद्ध वीतरागी परिणाम प्रगट करके जिसने मुनिपना पालन नहीं किया, वह चमड़े के वृक्षरूपी यह देह, यह आया, उसे बुढ़ापा खा जायेगा। कहो, समझ में आया? जिसने भगवान आत्मा के, अरे! महा पेढी के शुद्ध परिणाम प्रगट नहीं किये, महावीतरागी पेढ़ी आत्मा है, उस वीतरागस्वभाव में बैठकर जिसने चित्त की शुद्धि नहीं की और उस शुद्धिपूर्वक जिसने साधुपना, मुनिपना पालन नहीं किया, उत्कृष्ट बात करेंगे न अब। **उसने अपना आत्मा ठग लिया,...** वह आत्मा ठगाया। ठगाया। **यह अभिप्राय मन में रखकर व्याख्यान करते हैं —** १३५ (गाथा)।

२६५) जेण ण चिण्णउ तव-यरणु णिम्मलु चित्तु करेवि।
अप्पा वंचिउ तेण पर माणुस-जम्मु लहेवि॥१३५॥

आहाहा! अरे, भगवान! व्यापार तो यह करने का था, हों! और कहाँ तू दूसरे

व्यापार में चढ़ गया, ऐसा कहते हैं। व्यापार तो भगवान शुद्ध आनन्दकन्द प्रभु के अन्तर के व्यापार के परिणाम तो व्यापार यह करने का है तुझे। यह धूल और धाणी, वा पाणी। मूसाभाई के वा-पाणी नहीं आता? ऐसा यह मुफ्त का है।

एक वोरा था वोरा। वोरा समझते हो? लोटिया वोरा। एक जाति को जिमाया जाति को। दो-पाँच हजार खर्च करके जाति को (जिमाया)। वे दो-पाँच हजार रुपये निकाले कहाँ से? जाति के बर्तन ले आया बर्तन। जाति के बर्तन लाकर। ऐई! ऐसे जीमे। जीमो भाई जीमो भाई। जाति का माल जाति खाये, मूसाभाई के वा-पाणी। मेरे तो वा-पाणी हैं। यह सब माल तुम्हारा खाये। आठ दिन में आये पैसे लेने। तुमको कहा नहीं था? और अपना नाम वापस मूसाभाई। मूसा अर्थात् झूठा। उसका नाम था, लो न! मूसाभाई के वा-पाणी। मेरा तो वा और पानी है, देखो। इसी प्रकार इस दुनिया के व्यापार जगत के झूठे के झूठे। आहाहा! कहो, धर्मचन्दजी! लड़कियों का क्या करना? स्त्री का क्या करना?

मुमुक्षु : जाति तो .... करके।

पूज्य गुरुदेवश्री : जाति ... किया या गालियाँ पड़ी? उसने तो ठगा। इस ठगने के ऊपर तो दृष्टान्त दिया। ठगा, वह तो जाति को जिमाकर ठग हुआ। यहाँ कहते हैं कि ऐ! तूने क्या किया यह? स्त्री, पुत्र को सम्हाला, व्यापार किये, पाँच-पचास करोड़, दो करोड़ इकट्ठे किये और पुत्र अच्छे। क्या किया तूने? यह आत्मा को ठगा। आहाहा! समझ में आया?

जिस जीव को बाह्याभ्यान्तररूप तप... देखा! दोनों है न? अभ्यन्तर आत्मा के भान सहित बाह्य मुनिपना। **नहीं किया, महा निर्मल चित्त करके...** हों, वापस यह। उसकी व्याख्या करेंगे। **उसने मनुष्यजन्म को पाकर केवल अपना आत्मा ठग लिया।** आत्मा को ठगा, वंचक किया। अभी यह कर लूँ, थोड़ा यह कर लूँ, थोड़ा यह किया। मर गया ऐसा करते-करते।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे को कौन ठगता है? दूसरा कोई किसी को ठग नहीं

सकता। तीन काल में ठगाता नहीं। वह तो उसके पुण्य का उदय न हो तो पैसा-बैसे जाये कदाचित् इसके। वह कहीं पर से ठगाता नहीं। ठगता है स्वयं अपने को। ऐसा है या नहीं? आता नहीं उसमें? योगसार में। ऐई! क्या आता है? 'कौन किसकी पूजा करे? वंदे-पूजे कौन?' बहुत अच्छी दो गाथायें हैं। मित्र-अमित्र कौन? किसके हैं कहीं मुफ्त का मानता है। योगसार में कहा है। योगीन्द्रदेव योगसार में। कौन किसकी पूजा करे? कौन किसका शत्रु? कौन किसका मित्र? मुफ्त की बातें हैं। आहाहा!

ऐसे **मनुष्यजन्म को पाकर केवल अपना आत्मा ठग लिया।** दूसरे के सहारे मैं कुछ काम करता हूँ, दूसरे के शरण—आश्रय से दूसरे के बहुत काम करता हूँ। उसमें आत्मा के वीतरागी परिणाम किये नहीं और मुनिपना पालन किया नहीं। ठगा, कहते हैं। आहाहा! कहीं चला जायेगा कहीं।

भावार्थ :- महान दुर्लभ इस मनुष्य-देह को पाकर... देखो, महान दुर्लभ मनुष्य देह को पाकर। कहाँ से कहाँ मनुष्यदेह! ये कीड़े, कौवे, कुत्ते, अनार्य देश में से मिल-मिलकर मुश्किल से मनुष्यदेह प्राप्त हुआ। **जिसने विषय-कषाय सेवन किये,...** मात्र पर की ओर के झुकाववाले प्रेम, राग-द्वेष और विषय को सेवन किया। **और क्रोधादि रहित वीतराग चिदानन्द...** देखो, चित्त की व्याख्या अब। क्रोध, मान, मायारहित **वीतराग चिदानन्द सुखरूपी अमृतकर प्राप्त अपना निर्मल चित्त करके...** देखो, यह निर्मल चित्त की व्याख्या। चित्त शुद्धि आता है न वेदान्त में ऐसा कि चित्तशुद्धि करो। वह यह चित्तशुद्धि। विकार, क्रोध, मान, मायारहित वीतराग चिदानन्द। रागरहित ज्ञान का आनन्द वह सुखरूपी अमृत कर। जिसमें सुखरूपी अमृत पड़ा है। ऐसे प्राप्त **अपना निर्मल चित्त...** वह निर्मल चित्त उसे कहते हैं। ओहोहो! वीतरागभावरूपी अमृत की पर्याय से भरपूर घड़ा, उसे यहाँ चित्तशुद्धि कहा गया है। ऐसा **करके अनशनादि तप न किया, वह आत्मघाती है, अपने आत्मा का ठगनेवाला है।** देखो! वह आत्मा को ठगता है। आत्मा का उद्धार करने का पंथ उसे सूझता नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आषाढ़ शुक्ल ९, बुधवार, दिनांक - ०७-०७-१९६५
गाथा - १३७, १३७*५, प्रवचन - १६४

गाथा - १३७

परमात्मप्रकाश, गाथा १३७। **आगे ध्यान की कठिनता दिखलाते हैं—** कठिनता दिखलाते हैं। अर्थात? आत्मा में स्वभाव का भान होकर और रुचि होकर उसमें एकाग्रता होना, वह महान कठिन और महान पुरुषार्थ है। जो करनेयोग्य वह है। अनादि से अपना शुद्ध आनन्दस्वरूप, उसे भूलकर परपदार्थ और परपदार्थ के संग से उत्पन्न हुए भाव शुभ-अशुभ की एकाग्रता का ध्यान तो आर्त और रौद्रध्यान अनन्त काल से किया। यह आत्मा का स्वभाव पूर्ण शुद्ध आनन्द और अनन्त गुण क्या है, ऐसी रुचि हुए बिना, रुचि अनुयायी वीर्य, रुचि हो तो उसे अनुसरकर वीर्य काम करे। अपने स्वभाव की रुचि और रुचि सहित एकाग्रता, वह अनन्त काल से कठिन है, ऐसा यहाँ बताते हैं।

२६७) जोइय विसमी जोय-गइ मणु संठवण ण जाइ।
इंदिय-विसय जि सुक्खडा तित्थु जि वलि वलि जाइ ॥१३७॥

हे योगी!... यहाँ तो है आत्मा के शुद्धस्वभाव में जुड़ान करनेवाले आत्मा, उसे सम्बोधकर बात की है। वस्तु आत्मा महान, अरूपी परन्तु महान पदार्थ शरीर द्वारा ज्ञात नहीं होता, शरीर जानता नहीं उसे। ऐसा जाननेवाला ज्ञायक अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, कहते हैं कि उसमें जिसका जुड़ान है। युग—जुड़ान। अनादि से पर का जुड़ान विकल्प में एकाग्रता, वह उसे दृष्टि में से छूट गया। और वस्तु की स्थिति में दृष्टि को स्थापित किया है, उसे सम्बोधकर बात करते हैं कि **हे योगी,... 'योगगतिः विषमा'** अहो! स्वरूप में एकाग्रता का ध्यान विषम है। विषम है, अशक्य नहीं। प्रभु आत्मा के स्वरूप का माहात्म्य आना और जगत के पदार्थों का माहात्म्य उड़ जाना और उसमें स्थिर हो जाना स्वरूप में, (वह) महादुर्लभ है। कभी अज्ञानी ने अभ्यास किया नहीं, इसलिए कहते हैं कि हे भाई! उस ध्यान की गति, गति अर्थात् अन्तर में एकाग्रता महादुर्लभ है।

क्योंकि चित्तरूपी बन्दर चपल होने से... यह चित्तरूपी बन्दर, यह बाहर के विषय की अनुकूलता में इसकी गति चली जाती है। बैठा हो ध्यान करने तो भी शरीर में प्रतिकूलता जरा अवरोधक, पैर अवरोधक, आसन अवरोधक ऐसी चीज़ में वहाँ उसका लक्ष्य जाता है, वह भी विषय है। स्पर्श का विषय है। कहते हैं, उस आत्मा में नजर लगाकर बैठना, वह महाकठिन है। क्योंकि उसका लक्ष्य ऐसे विषय के ऊपर जाता है। विषय शब्द से? भोग की वृत्ति, वह तो एक ओर रही, परन्तु यह स्पर्श को अनुकूल पड़े, ऐसी उसकी गति लक्ष्य में चली जाती है। समझ में आया? वह **चित्तरूपी बन्दर चपल होने से निज शुद्धात्मा में स्थिरता को प्राप्त नहीं होता।** भगवान निज... देखो, भाषा क्या है? निज शुद्धात्मा। अपना पवित्र भगवान पूरा तत्त्व चैतन्य में मन स्थिरता को प्राप्त नहीं होता।

क्योंकि इन्द्रिय के विषयों में ही सुख मान रहा है,... पहली तो मान्यता ही खोटी है। कुछ ऐसे जाऊँ पाँच इन्द्रिय के झुकाव में तो ठीक-ठीक, ऐसी जहाँ बुद्धि है। पाँच इन्द्रिय के झुकाव में। वलण समझ में आया? उस ओर का झुकाव। फिर शुभ हो या अशुभ हो। अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान की रुचि ही पहले नहीं, कहते हैं। उसे यह पाँच इन्द्रिय के शुभ-अशुभ शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श में उसे ऐसे ठीक, ऐसे ठीक — ऐसा (लगा करता है)। सुख अर्थात्? उसमें ऐसे ठीक, ऐसी बुद्धि अनादि से चल गयी है। ठीक कहो या उसमें सुख कहो। यह भाषा तो... समझ में आया? ऐसा हो तो ठीक... ऐसा हो तो ठीक... ऐसा हो तो ठीक। यह पर में ऐसा हो तो ठीक, इसका अर्थ (कि) पाँच इन्द्रिय के विषयों में ही सुख मानता है। समझ में आया? सीधे शरीर के भोग भले न लेता हो। उसके साथ सम्बन्ध यहाँ नहीं। ऐसे अतीन्द्रिय का पहलू जो अन्दर में है वस्तु, उस ओर उसकी रुचि और ऐसे रुचि ढल गयी है यह शब्द, रूप आदि में। कुछ ठीक सुनना अथवा ठीक विकल्प उठे कि स्पर्श ओर में कुछ अनुकूलता न दिखाई दे तो ऐसा हो तो ठीक, ऐसी अनुकूलता के विषय में सुख माना है, इससे भगवान आत्मा के आनन्द में उसे रुचि होकर ध्यान गति होती नहीं। कहो, समझ में आया इसमें?

इसलिए उन्हीं विषयों में फिर फिर... देखो, यह भाषा है न हिन्दी में। फिर-फिर—बारम्बार हिन्दी में भाषा आती है। यह तो वह दोपहर में मोक्षमार्गप्रकाशक में। और बारम्बार। भगवान आत्मा। पूरा मूल तत्त्व ही यह है। यह तो है या नहीं, इसकी खबर कहाँ इसे है? खबर तो आत्मा को है। शरीर है या विषय है, इसकी उन्हें कहाँ खबर है? इसकी खबर तो आत्मा की सत्ता में आत्मा को है। उसकी सत्ता के स्वभाव के सामर्थ्य की रुचि नहीं और इस ओर में जो ज्ञात होता है, वह ज्ञात होता है। जाने नहीं, जनावे नहीं। जाने नहीं, जनावे नहीं निज को। इसमें उसकी अनादि की रुचि के कारण बारम्बार लक्ष्य वहाँ फिर जाता है। कहो, समझ में आया?

अब जरा कहते हैं, कैसा है आत्मा? ऐसा इसे रुचा नहीं, सुहाया नहीं, सुहाया नहीं। वीतराग इच्छारहित जो स्वभाव **परम आनन्द...** महा आह्लादरूपी आनन्द **समरसी...** जिसमें अकेला विषमता का अभाव अर्थात् समता का सागर (भरा है)। **समरसी भावरूप अतीन्द्रिय सुख से रहित...** ऐसा जो भगवान, ऐसा अतीन्द्रिय भावरूप सुख, ऐसा उसका स्वरूप। उससे रहित **जो यह संसारी जीव है,...** संसार की व्याख्या की यह। भगवान रागरहित परम आनन्दमूर्ति प्रभु अकेला आकुलतारहित समरसस्वरूप, परम निजानन्दस्वरूप के भान बिना का, उसकी रुचि बिना का, उसके ध्येय और लक्ष्य बिना का, उसे संसारी जीव कहा जाता है। लो, यह संसारी जीव की ऐसी व्याख्या की। स्त्री, पुत्रवाले हैं, फलानावाले हैं, फलानावाले हैं, इसलिए संसार जीव (-ऐसा नहीं कहा)। समझ में आया? भगवान आत्मा जिसमें संसार का अभाव है। **वीतराग परम आनन्द समरसी भावरूपी...** उसका जिसे दृष्टि में रहितपना है, जिसे भाव में उस भाव का रहितपना है, वह संसारी है। ओहोहो!

यह तो परमात्मप्रकाश है न। बहुत संक्षिप्त भाषा में महान तत्त्व को समझाते हैं कि भाई! प्रभु स्वयं तो आत्मा वीतरागी समरस... समरस... दुनिया झुक जाये, शरीर जला रखे, तो जिसे विकल्प न उठे, ऐसी तो वह चीज़ है। समरस से ओतप्रोत है। पूरा पदार्थ समरस वीतराग निर्विकल्प आनन्द से तन्मय पदार्थ भगवान है। ऐसे पदार्थ के भावरहित वह संसारी जीव। समझ में आया? पश्चात् त्यागी मुनि बैठा हो, त्यागी होकर, यह संसारी है, ऐसा कहते हैं यहाँ तो।

भगवान आत्मा संसार के विकल्प के भावरहित तत्त्व अर्थात् कि परमानन्द समरसी भाववाला पदार्थ, उसकी सन्मुखता की रुचि का अभाव, उसका नाम संसारी। फिर भले दिगम्बर साधु हो, पंच महाव्रत पालने के परिणाम हो, अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प जिसकी गति शुभ परिणाम में बहुत हो परन्तु यह वस्तु भगवान आत्मा की दृष्टि में रहित है, वह संसारी है। समझ में आया? परमात्मस्वरूप की रुचिरहित भाव, वह संसार। 'संसरणं इति संसारः' आता है न प्रवचनसार में। संसरणं इति। चिदानन्द वीतरागी आह्लादरूप परमात्मा निजस्वरूप, उसमें से संसरणं — हट जाना और राग में एकाकार हो जाना, उसका नाम संसार। आहाहा! यह स्त्री-पुत्र छोड़े और यह छोड़ा तो कहे संसार छोड़ा। इसने इतना छोड़ा। यहाँ कहेंगे। मुँडाने का कहेंगे न कहीं। बाद में दृष्टान्त देंगे ३९ में।

वह नहीं कहते गंजा—बालरहित सिर। बालरहित सिर होता है न? बाल ही उगे नहीं पहले से। कहते हैं, मुँडाकर बैठा वह तो गंजा जैसा भानरहित है। बाल उगते नहीं (ऐसे) होते हैं न? अपने नहीं यह मनसुखभाई का पुत्र। पहले से ही २८ वर्ष की उम्र का, मनसुख डॉक्टर अपने यहाँ हैं। यहाँ तो वह आया था, इसलिए देखा। अपने तो कोई देखा नहीं। मनसुखभाई डॉक्टर नहीं? आँख के डॉक्टर अपने यहाँ आये थे। ... प्रेमी हैं। अभी वहाँ से पत्र आया है। उनका एक पुत्र ऐसा है। करोड़पति व्यक्ति है करोड़पति। उनका एक पुत्र पहले जन्मे से बाल उगे ही नहीं। सिर ही ऐसा। फिर एक व्यक्ति कहे कि यह साधु हो तो लोंच करना मिटे। लोंच करे, न करे, उसके साथ सम्बन्ध क्या है? नेमिचन्दभाई! यह यहाँ कहेंगे अभी १३९ में कहेंगे। वहाँ '**खलवाटं**' है न? '**खलवाटं**' यह खलवात अर्थात् गंजा। यह गंजा उसे कहा जाता है बाहर लोगों में। जिसे पहले से जरा भी बाल ही नहीं।

यह यहाँ मैंने देखा था। एक बार यहाँ भावनगर बारात आयी थी न तो आये थे। वे यहाँ आये थे। उनके पिता आवे सही न। फिर वहाँ गया था। बस, उसके जैसा ही सिर है। कभी बाल ही उगे नहीं जरा भी। जरा भी, हों! एकदम लपाट। यह कहेंगे अभी ३९ में। ... मन मुँडे बिना तेरी दृष्टि के बदले बिना, यह बाहर के लगे, वह तो गंजा जैसा है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन सा काम ? दलाल है, दलाल है। पचास प्रतिशत तो इतने हुए न, ऐसा कहते हैं। एक भी प्रतिशत हुआ नहीं, ऐसा कहते हैं। लो!

सुख से रहित जो यह संसारी जीव है,... यह तो एकदम परमात्मस्वरूप अपना, उसकी जहाँ रुचि की गति नहीं, उसकी रुचि की गति राग के ऊपर जाती है। बस, इसका नाम संसार है, ऐसा यहाँ कहते हैं। फिर नौवें ग्रैवेयक गया हो, ऐसा साधु हो या एकेन्द्रिय में पड़ा निगोद हो, दोनों संसारी की जाति में कोई अन्तर नहीं। **उसका मन अनादि काल की अविद्या की वासना में बस रहा है,... 'अनादिवासनावासित'** इतना। **'पञ्चेन्द्रियविषयसुखस्वादासक्तानां'** यहाँ तो अतीन्द्रिय आनन्द प्रभु, उसकी जिसे रुचि का पोषाण नहीं पोषाण, उसे इन्द्रिय के विषयों के विकल्पों का पोषाण है तो उसके फल के विषय भोग का भी उसे पोषाण है। समझ में आया ?

उसका मन अनादि काल की... देखो, एकेन्द्रिय से लेकर। **अविद्या की वासना में बस रहा है,...** अविद्या ऊपर से डाला है। **'अनादिवासनावासित'** शब्द पड़ा है न। अर्थात् वासना है वह अज्ञानी। अपने निजस्वरूप का उसे माहात्म्य अनादि निगोद जीव को नहीं, ऐसा अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक गया जैन दिगम्बर साधु मिथ्यादृष्टि, उसे भी नहीं। वह तो **अविद्या की वासना में बस रहा है,...** अज्ञान की गन्ध में पड़े हैं, ऐसा कहते हैं। वासना-वासना है न। वह मिथ्याज्ञान की गन्ध में पड़े हैं। स्वभाव क्या है, उसकी गन्ध है नहीं। आहाहा!

इसलिए पंचेन्द्रियों के विषय-सुखों में... ये पंचेन्द्रिय विषयसुख का अर्थ इतना नहीं लेना कि यह स्त्री का, यह पैसे का, इज्जत का। यह तो स्थूल। परन्तु कोई भी बाहर के शब्द अनुकूल आदि या विषय तो फिर यह भगवान को देखना, वह भी विषय है। आहाहा! विषय है। क्या है ? स्वविषय की रुचि छूटकर जितना परपदार्थ के झुकाव में जाये, वह सब विकल्प पर विषय की ओर ही जाता है। सूक्ष्म बात है। इसकी टीका भी हो गयी है। यह तो भगवान को विषय ठहराते हैं। अरे! सुन न अब। वे सब ज्ञेय हैं। वे आत्मा में अन्तर की ओर न मुड़कर गुलाँट ऐसे खायी है, वह बाहर में चाहे जो चीज

हो, उसके ऊपर लक्ष्य जाता है, पाँच इन्द्रिय के शुभाशुभ विषय के ऊपर ही उसका झुकाव है। आत्मा पर झुकाव नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न। वह तो ... जायेगा। परन्तु यहाँ तो कहते हैं, हमारे ऊपर की भक्ति भी राग है। कहा नहीं? पंचास्तिकाय में। हमारी भक्ति करने से भी मुक्ति न मान। पंचास्तिकाय। भक्ति और इतना बाहर के पंचेन्द्रिय रुचि का विकल्प (उसमें) रुका हुआ तत्त्व आत्मा को नुकसान करता है। भाई! बात ऐसी है कि एक तो भगवान ऐसे राम प्रभु और एक ओर गाँव। इस ओर पूरा विकल्प से लेकर सब। ऐसे विषय बनावे उसे उसकी रुचि, यह न बनावे और ऐसे बनावे, उसे उसकी रुचि।

पंचेन्द्रियों के विषय-सुखों में आसक्त है, इन जगत के जीवों का मन बारम्बार विषय-सुखों में जाता है,... बारम्बार आत्मा के आनन्द से हटा हुआ है, इसलिए उसे विषय के पर के लक्ष्य में ही उसका झुकाव बारम्बार हुआ करता है। **और निजस्वरूप में नहीं लगता है,...** देखा! आत्मा में लगता नहीं, सुहाता नहीं, रुचता नहीं। आनन्दघनजी ने कहा न उस संवरदेव की सेवा। 'भय चंचलता जे परिणामनी...' प्रभु! हमको कल्पना की चंचलता होती है, इसका अर्थ ऐसा है कि हमको अन्तर स्वभाव का भय लगता है। वहाँ जाऊँगा तो क्या होगा? 'भय चंचलता जे परिणामनी द्वेष अरोचक भाव।' प्रभु! पूर्णानन्द रुचता नहीं और राग रुचता है। उसका अर्थ तो प्रभु! आप ऐसा कहना चाहते हो कि वह तो उसे आत्मा के प्रति द्वेष है। समझ में आया?

द्वेष अरोचक भाव। भगवान आत्मा शुद्ध अनाकुल वीतराग समरसी तत्त्व, वह जिसे रुचता नहीं और राग का विकल्प मन्द शुभ भी रुचता है, प्रभु! यह आत्मा के प्रति उसे क्रोध वर्तता है अर्थात् कि द्वेष वर्तता है, अर्थात् कि अरुचि वर्तती है अर्थात् कि वह आत्मा का दुश्मन है। आहाहा! 'खेद प्रवृत्ति करता थाकीअे...' प्रभु! अन्दर में एकाग्र जाने से मानो ऐसे खेद लग जाता है खेद। दूसरे काम में पाँच-दस घण्टे रुकना हो तो खेद नहीं, परन्तु यहाँ अन्दर में जरा विचारधारा में खेद-खेद, मानो ऐसे पसीना उतर जाये। बाहर निकलें अब झट। उलझन हो। 'खेद प्रवृत्ति करता थाकीअे..' परन्तु प्रभु!

इस सबका हेतु ? 'बोध दोष अभाव' यह आत्मा के वास्तविक तत्त्व का बोध, उसके अभाव में यह वस्तु होती है। 'दोष अबोध लखाव' ऐसा है। 'दोष अबोध लखाव।' भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूरा परमानन्द परमात्मरूप, उसके सम्यक् बोध का अभाव, वह सब दोषों का मूल वह का वह है। बोध का अभाव वह सब दोष का मूल है। समझ में आया ?

निजस्वरूप में नहीं लगता है, इसलिए ध्यान की गति विषम है। विषम अर्थात् कठिन है, अशक्य नहीं, परन्तु उस ओर का उसे रुचि का झुकाव नहीं ऐसे-ऐसे। '**आत्म ज्ञानात्परं कार्यं बुद्धो धारयेच्चिरम्**' यह समाधिशतक में आता है। समाधिशतक, पूज्यपादस्वामी। हे भगवान! '**आत्म ज्ञानात्परं कार्यं बुद्धो धारयेच्चिरम्**' अन्दर में अस्थिरता विकल्प लम्बे काल टिकने न दे। वहाँ जा... वहाँ जा... वहाँ जा। ऐसा श्लोक (५०) है उसमें। ... मन, वचन, '**कायाभ्यामतत्परः**' ऐसा है। कुछ लक्ष्य—विकल्प जाये, परन्तु तत्परता नहीं होनी चाहिए एकाकार। समाधिशतक बहुत सरस बात, बहुत सरस बात। परमात्मप्रकाश, समाधिशतक, समयसार, प्रवचनसार दिगम्बर सन्तों के ओहोहो! ग्रन्थों, शास्त्रों ने तो परमात्मा को खड़ा किया है! सब कहाँ से पद्य करे ? कल ऐसा विकल्प आया था। यह सब कहाँ से पद्य (हो) ? अभी अष्टपाहुड़ के होते नहीं इसमें। यह इष्टोपदेश, द्रव्यसंग्रह, भाई! है न मूल गाथायें, इनके ऐसा कि गुजराती पद्य हो गये होते तो स्वाध्याय बहुत होती। द्रव्यसंग्रह, इष्टोपदेश, यह पूज्यपादस्वामी का। ओहोहो! एक-एक ग्रन्थ देखो तो एक-एक गाथा में ऐसे भाव! यह हरिगीत अपने बनाये हैं। वे हरिगीत सब करे अकेले अब ... इन्हें समय मिलता नहीं। यह शास्त्र पूरे वाँचने को स्वाध्याय हो। नौ स्वाध्याय तो हो गये। भगवान घुलता है, अन्दर घुलता है। यह घोलन उसे रुचता नहीं, कहते हैं। ऐसे बाहर का घोलन (रुचता है)।

मुमुक्षु : बाह्य में....

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर में तरह-तरह के सुख हैं, ऐसा। तरह-तरह का अर्थात् विविध प्रकार का। आहाहा! एक ओर स्त्री बोले अनुकूल, एक ओर सोने का हो मक्खन जैसा वह समझे न मलमल का वस्त्र, एक ओर पंखा चलता हो, एक ओर हवा

हो, एक ओर मैसूर, श्रीखंड और पूड़ी होती हो। तरह-तरह के सुख हैं बाहर, ऐसा। एक को लाख-लाख की मोटरें। धूल में भी नहीं। होली सुलगती है वहाँ।

मुमुक्षु : किसमें?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग में। किसमें क्या? राग में है वहाँ। राग के अस्तित्व में पड़ा है। वहाँ बैठा है, कहाँ अन्दर में? कभी गया है अन्दर? बैठा है राग में। मोटर में बैठता है यह? तीन काल में नहीं। परपदार्थ में कौन बैठे? परपदार्थ के क्षेत्र में अपना क्षेत्र जाता है?

मुमुक्षु : व्यवहार से जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या जाये व्यवहार से? धूल जाये? बोला जाता है निमित्त से कथन। निमित्त का कथन करके बोला जाता है। किसी क्षेत्र में किसी का क्षेत्र जाये? स्वक्षेत्र में परक्षेत्र की नास्ति। स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव। स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल पहली सप्तभंगी का पहला बोल। सप्तभंगी का पहला बोल महासिद्धान्त। स्व चतुष्टय में अस्ति और पर चतुष्टय की नास्ति। पहला सिद्धान्त पूरा। फिर और राग से भिन्न बाद में। यहाँ से भिन्न है, तो उसका लक्ष्य ही पर के ऊपर जाये। समझ में आया?

पर के सम्बन्ध का प्रेम। सम्बन्ध का बन्ध, उसका प्रेम। उसे आत्मा के निजानन्द की गति ध्यान की विषम है। आहाहा! यह कहीं लड्डू खा जाना है? कि भाई झट-झट खा लो, चलो। झट-झट वस्त्र पहन लो, झट नहा लो। वह तो पर की क्रिया है। ऐसे आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में परमात्मा के दरवाजे जाना। 'आनन्दघन प्रभु के घर द्वारे रटण करूं गुण धामा। आनन्दघन प्रभु के घर द्वारे' परमात्मा के घर की पर्याय के पास 'रटण करूं गुण धामा।' यह सब गुणों का रटण करूँ उनकी पर्याय में। रटण करते हुए यहाँ घर में—दरबार में प्रविष्ट हो जाऊँ। आनन्दघनजी ... उसकी बात कोई ठीक की है। कहो, समझ में आया?

यहाँ आचार्य महाराज कहते हैं कि भाई! जहाँ तेरा ध्यान जमा, वह तुझे सुलभ हो पड़ा है। यहाँ नहीं इसलिए तुझे दुर्लभ कहते हैं। अनन्त बार किया, इसलिए वास्तव

में तो वह सुलभ है। झट होता है और यह दुर्लभ हो पड़ा है। वास्तव में पर का ज्ञान निमित्त के अवलम्बन में जाये, इसलिए वह दुर्लभ है। अकेला सीधा काम न हो। उसका लक्ष्य जाये निमित्त में और स्व के ध्यान में किसी का अवलम्बन ही नहीं। पहला तो यह है कि जिसमें पर की मदद ही नहीं। विकार में तो निमित्त के ऊपर लक्ष्य जाता है। यहाँ से हटा तो वहाँ ही जाता है। फिर कोई चीज़ चाहे वह लक्ष्य में न आवे। समझ में आया? इसलिए कहते हैं कि है तो सुलभ, परन्तु गति अनादि की पर में है, इसलिए दुर्लभ कही जाती है। यह १३७ हुई।

★ ★ ★

गाथा - १३७*५

दूसरी है इसकी प्रक्षेप। **आगे स्थल-संख्या के बाह्य जो प्रक्षेपक दोहे हैं, उनको कहते हैं —**

२६८) सो जोइउ जो जोगवइ दंसणु णाणु चरित्तु।
होयवि पंचहँ बाहिरउ झायंतउ परमत्थु॥१३७*५॥

वही ध्यानी है,... अर्थात् योगी। सम्यग्दृष्टि से लेकर योगी कहा जाता है। **वही ध्यानी है, जो पंचेन्द्रियों से बाहर (अलग) होकर...** देखो! अणीन्द्रिय भगवान आत्मा यह पाँच इन्द्रिय के बाह्य की ओर से अलग होकर परमार्थ अर्थात् **निज परमात्मा...** इसकी व्याख्या जरा रह गयी है टीका में। इसकी व्याख्या नीचे रह गयी है। टीका में की है। परमार्थ अर्थात् क्या? '**परमार्थशब्दवाच्यं विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावं परमात्मानमिति तात्पर्यम्।**' विशुद्ध ज्ञान-दर्शन स्वभाव जो त्रिकाल। टीका में है भाई! पाठ। यह द्रव्य परमात्मा की बात की। त्रिकाल जो त्रिकाल पदार्थ परमात्मा। यहाँ तो परमात्मा द्रव्य वह परमात्मा और पर्याय वह परमात्मा। दो की ही बातें की है। आहाहा!

कहते हैं, हे भाई! तू पाँच इन्द्रियों के विषयों से बाहर हो जा और निज परमात्मा जो कि विशुद्ध ज्ञान-दर्शन स्वभाव ही उसमें भरा है। देखो, दो की व्याख्या की। है तो अनन्त गुण, परन्तु विशुद्ध ज्ञान-दर्शन स्वभाव, परिपूर्ण विशुद्ध ज्ञान-दर्शन स्वभाव जो

कायम त्रिकाली ऐसा परमात्मा — उसे कहते हैं आत्मा। समझ में आया? यह पर्याय की बात नहीं। प्रगट पर्याय की बात नहीं। यह भाई जयसेनाचार्य में बहुत आता है समयसार में। यह सब शैली उनकी ली है। लगभग उस शैली से सब ही यह शब्द आते हैं जयसेनाचार्य की टीका में समयसार (में)। आत्मा कैसा? कि विशुद्ध ज्ञान-दर्शन स्वभाव। त्रिकाल-त्रिकाल। विशुद्ध अर्थात् निर्मल। अकेला ज्ञान और दर्शन का पिण्ड, दर्शन-ज्ञान का अकेला पिण्ड प्रभु, उसे आत्मा और परमात्मा कहा जाता है। वह अप्पा वह परम अप्पा। कहो, समझ में आया? यह '**भूदत्थमस्सिदो**' कहा यह। भूतार्थ कहो, त्रिकाल परमार्थ कहो, वह तो एक की एक (बात है)। समझ में आया? क्या कहा? यह बात भी बैठे कहाँ? परन्तु वाद-विवाद करके कितनी तकरार करे? यह है, यह विकल्प है, यह शुभभाव है, यह धर्म। अरे भगवान! सुन न भाई! प्रभु! तुझे तेरी प्रभुता को लांछन लगता है। आहाहा! उसे शुभयोगवाला कहना और उसे मोक्षमार्ग कहना। भगवान! गजब होता है, हों! अति साहस होता है, प्रभु! आहाहा! यह तो अकेला विशुद्ध ज्ञान, दर्शन का स्वभाव का पिण्ड प्रभु है। इसमें तो अकेला अतीन्द्रिय आनन्दरस ही पड़ा है।

'कहे विचिक्षण पुरुष सदा मैं एक हूँ' आता है न? यह कलश है। अमृतचन्द्राचार्य (कृत उसका पद्य है बनारसीदासकृत)। मोहकर्म मम नाहि। 'कहे विचिक्षण पुरुष सदा मैं एक हूँ, अपने रससुं भर्यो अनादि टेक हूँ।' मैं स्वयं परमात्मा अनादि स्वशक्ति के रस से भरपूर। 'मोहकर्म मम नाहि, नाहि भ्रम कूप है, शुद्ध चेतना सिंधु हमारो रूप है।' आहाहा! यह राग में भ्रम कूप बड़ा। यह मेरे मानने में बड़ी भ्रमणा के कूप में पड़ा। आहाहा! 'मोहकर्म मम नाही, नाहीं भ्रमकूप है, शुद्ध चेतना सिंधु हमारो रूप है।' शुद्ध चेतना का सागर विशुद्ध दर्शन-ज्ञान स्वभाव। देखो, उसे परमार्थ कहा है। अथवा परम अर्थ। परमार्थ अर्थात् परम अर्थ। परम अर्थात् उत्कृष्ट पदार्थ। उत्कृष्ट पदार्थ अर्थात् निज परमात्मा। कहो, समझ में आया? अरे! इसके आत्मा के गीत उसने प्रेम से सुनी नहीं। है न गाथा अपने? '**तत्प्रति प्रीतिचित्तेन**' '**तत्प्रति प्रीतिचित्तेन येन वार्तापि हि श्रुता।**' यह पद्मनन्दि पंचविंशति की गाथा है। है न अपने रखी है। पद्मनन्दि की गाथा है। अपने

रखी है उसमें। '**तत्प्रति प्रीतिचित्तेन**' एक श्लोक है वहाँ। देखो, '**तत्प्रति प्रीतिचित्तेन**' एकत्व अधिकार पृष्ठ २३०, पद्मनन्दि पंचविंशति।

तत्प्रति प्रीतिचित्तेन येन वार्तापि हि श्रुता।
निश्चितं स भवेद्भव्यो, भाविनिर्वाणभाजनम्॥२३॥

अहो! भगवान तेरे गुणग्राम, तेरी दशा के अध्यात्म स्वभाव, वह प्रीति से तूने सुने हों तो '**निश्चितं स भवेद्भव्यो**' अल्प काल में वह भव्य जीव मुक्ति को ही पात्र है। देखो, '**भाविनिर्वाणभाजनम्**' भाजन का अर्थ मोक्ष होगा, ऐसा। '**प्रीतिचित्तेन**' भगवान के रुचि के प्रेम से उसके अनन्त गुणों की वार्ता, वार्ता, हों! '**येन वार्तापि हि श्रुता**' विकार और पुण्य-पाप और संयोग की वार्ता प्रेम से अनन्त बार सुनी है। समझ में आया?

सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा।
एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलहो विहत्तस्स॥४॥

यह बात दूसरी शैली से यहाँ पद्मनन्दि आचार्य ने (की है)। भगवान! तुझमें अनन्त शान्ति आदि के गुण, उनका अध्यात्मतत्त्व, उसे तूने प्रेम से सुना नहीं। और '**प्रीतिचित्तेन**' यथार्थ से सुना हो, उसे अल्प काल में रुचि करके मुक्ति हुए बिना रहे नहीं। आहाहा! देखो! **जिस जीव ने प्रसन्नचित्त से इस चैतन्यस्वरूप आत्मा की बात भी सुनी है, वह भव्य पुरुष भविष्य में होनेवाली मुक्ति का अवश्य भाजन होता है।** पद्मनन्दि पंचविंशति, एकत्व अधिकार है। एकत्व अधिकार है न! निश्चय अधिकार, एक एकत्व अधिकार है। एकत्व अधिकार की यह गाथा है। समझ में आया? २३० तो पृष्ठ था।

कहते हैं, वह परम अर्थ यहाँ तो निकालना है न जरा। परमपदार्थ भगवान आत्मा... यह विविध-विविध लगता है न यह? विविध सुख लगता है। अंगूर आवे ऐसे सेर, पाँच सेर, दस सेर। आहाहा! बीज बिना के अंगूर। कैसे? ... और यह दिल्ली के क्या कहलाते हैं? अनार। दाडम-दाडम। मस्कटी? मस्कटी क्या कहते हैं? बेदाणा का दाडम। आहाहा! विविध प्रकार की सुख की सामग्री है वह तो। और आम बड़े इतने-इतने ... भरे हुए हो आम। ऐसे दबावे वहाँ रस... रस... रस... रस... यह विविध प्रकार की सामग्री। धर्मचन्दजी! यह दुःख के लक्ष्य की सामग्री है। आहाहा! वाह रे प्रभु!

तेरे आनन्द की बात सुनते हुए, कहते हैं कि उसे आनन्द आवे ऐसा तो तू है। तेरी वार्ता अन्तर में सुनते हुए आनन्द आवे ऐसा तू और दुनिया की वार्ता में चिपटा है यह। आहाहा!

निज परमात्मा का ध्यान करता हुआ... व्याख्या की। विशुद्ध ज्ञान-दर्शन स्वभाव आत्मा का, उसका ध्यान करना अर्थात् उसमें एकाग्र करना। '**दर्शनं ज्ञानं चारित्रम्**' लो! वह **दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूपी रत्नत्रय को पालता है,...** यह व्यवहार की बात नहीं, प्रभु! यह तो निश्चय की बात है। व्यवहार तो कहने में आया है, एक विकल्प ऐसा है निमित्त इसलिए। वस्तु-वस्तु व्यवहार-फ्यवहार मोक्षमार्ग है ही नहीं। मोक्षमार्ग तो एक ही है। भगवान आत्मा मुक्तस्वरूप है, उसकी अन्तर में दृष्टि, ज्ञान और निर्विकल्प प्रतीति परिणति, वह एक ही मोक्ष—छुटकारे का मार्ग; दूसरा कोई है नहीं। '**दर्शनं ज्ञानं चारित्रम्**' देखो, एक ओर ऐसे आत्मा कहा, विशुद्ध ज्ञान-दर्शन स्वभाव भगवान का दर्शन—उसकी प्रतीति अर्थात् रुचि, उसका स्वसंवेदन ज्ञान और उसकी रमणता। यह दर्शन-ज्ञान-चारित्र रत्नत्रय अर्थात् निश्चयरत्नत्रय। कहो, समझ में आया? देखो, टीका में है भाई! यह तो अर्थ में आयेगा, अर्थ में आयेगा। '**निजशुद्धात्मद्रव्यसम्यक्श्रद्धान-ज्ञानानुचरणरुपं निश्चयरत्नत्रयम्।**'

अरे! इसे स्व का आश्रय महा कल्याणकारी है, यह बात बैठती नहीं। ऐसे... ऐसे... ऐसे... किसी प्रकार से कुछ पर आश्रय, पर आश्रय (से कल्याण होगा)। भाई! पर आश्रय में तो विकल्प ही उठता है। उसमें आत्मा की दशा श्रद्धा, ज्ञान बिल्कुल उत्पन्न नहीं होते। भगवान आत्मा महा आनन्द का सागर, विशुद्ध ज्ञान-दर्शन अविनाभावी स्वभाव के साथ आनन्द रखनेवाला, उसकी श्रद्धा, उसका ज्ञान, उसमें लीनतारूप रत्नत्रय को **पालता है...** यहाँ तो पालने के ऊपर जरा भाषा आयी न, इसलिए वे व्यवहार को पाले, ऐसा आवे शास्त्र में, हों! भेदाभेदरत्नत्रय को आराधे, भेदाभेदरत्नत्रय को सेवे, ऐसा आता है। व्यवहार का प्रमाणज्ञान कराने को आता है, भाई! परन्तु वह तो प्रमाण का ज्ञान कराना है। वास्तव में तो यह पालता है। राग को पाले? सहलावे? कथन ऐसे आवे, भाई! द्रव्यसंग्रह में, अपने उसमें बहुत आते हैं। द्रव्यसंग्रह में बहुत आते हैं।

भेदाभेदरत्नत्रय का आराधक। लो! भेदाभेदरत्नत्रय के आराधक। आहाहा! यह सब इसे ख्याल बाहर कर डाले प्रभु! यह मार्ग पलट जाता है, हों! ऐसा वीतराग मार्ग है, उसकी यदि शृंखला टूटेगी तो मार्ग नहीं रहेगा। वीतराग मार्ग है, भाई! यह आगम के कथन इस प्रकार से न माने उसे यह वीतराग मार्ग का जो प्रवाह है, वह नहीं रहेगा। क्या हो परन्तु? वह भगवान है, भाई! यह मुझे ... करता नहीं, ऐसा करता है, इसलिए उसका माहात्म्य छूटता नहीं। क्या हो?

कहते हैं, देखो, भगवान आत्मा अपना स्वभाव भगवान निज, हों! भगवान-भगवान के ठिकाने। भगवान कहाँ यहाँ सहायता करने आते हैं? ऐई! अपना भगवान एक समय में पूर्ण पड़ा है। कहते हैं कि '**दर्शनं ज्ञानं चारित्रम्**' लो यह **पालता है, रक्षा करता है।** अपने स्वरूप की दृष्टि, ज्ञान, चारित्र को पालता है, वह निर्मल परिणति अरागी दशा है। अरागी-वीतरागी दशा को पालना, वह वीतराग मार्ग है? या वीतराग मार्ग राग को पालना, वह वीतराग मार्ग है?

भावार्थ :- जिसके परिणाम निज शुद्धात्मद्रव्य का सम्यक् श्रद्धान ज्ञान आचरणरूप निश्चयरत्नत्रय में ही लीन है,... देखो, जिसके परिणाम अर्थात् कि यह दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वही परिणाम है। निज शुद्धात्मा भगवान पूर्ण शुद्धस्वरूप द्रव्य, पदार्थ, सम्यक् श्रद्धान, ज्ञान, आचरणरूप। अन्तर वस्तु भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द के ज्ञान का भण्डार प्रभु, उसमें जिसकी दृष्टि, ज्ञान और लीनतारूप **निश्चयरत्नत्रय में ही लीन है, जो पंचम गतिरूपी मोक्ष के सुख को विनाश करनेवाली भावना से रहित ऐसी पंचेन्द्रियों से जुदा हो गया है,...** ऐसा कहना है। पंचम गति और पाँच परमेष्ठी और पाँच इन्द्रिय। तीनों लिये।

जो कोई यह आत्मा... देखो न, दोपहर में तो सम्यग्दर्शन का माहात्म्य आता है। त्रिकाल बन्ध नहीं... त्रिकाल बन्ध नहीं। आहाहा! यह एकान्त नहीं, हों! सर्वथा त्रिकाल बन्ध नहीं, ऐसा अन्दर आ जाता है। इसलिए कितने ही ऐसा कहते हैं, सर्वथा त्रिकाल बन्ध नहीं। तो यह दूसरा है न बन्ध? भाई! किस अपेक्षा से बात है वहाँ? वस्तु के स्वभाव और वस्तु की दृष्टि का अनुभव, उसका अकेला जोर है बस। रागादि

पृथक्रूप से है, वे बन्धपद्धति में जाते हैं। यह मोक्ष के मार्ग की पद्धति में है ही नहीं। इस अपेक्षा से बात की है। नहीं तो खबर नहीं कि राग है? दसवें (गुणस्थान) तक है। अल्प ज्ञानदशा बारहवें तक अभी है, पूर्ण केवल (ज्ञान) है नहीं। समझ में आया? द्रव्यबन्ध अभी पड़ा है बारहवें गुणस्थान में। वह नया द्रव्यबन्ध होता नहीं बारहवें में, परन्तु द्रव्यबन्ध तो पड़ा है न। नया भले न हो, तथापि पुराना द्रव्यबन्ध है तो भावबन्ध भी उतना है। देखो, यह शैली देखो। ओहोहो!

मुमुक्षु : ज्ञप्ति परिवर्तन ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ज्ञप्ति परिवर्तन। इतना अभी बारहवें में है। उसे एक ओर यहाँ कहा, चौथे में त्रिकाल बन्ध नहीं। ... पाटणीजी! भगवान! यह तेरी महिमा की बातें हैं, बापू! यह महिमा जिसे अन्तर में बैठी, बन्ध कैसा? वह तो मुक्त ही है, मुक्त ही है। गिरने की बात और कैसी? गिरेगा तो...? अब सुन न!

मुमुक्षु : परद्रव्य ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह लिखे, लिखे। सब है। कोई भी वाक्य वीतराग का वीतरागपना बतलाने, प्राप्त कराने के लिये है या कुछ राग में और अल्प में रुकने के लिये है? समझे? दूर होने के लिये है। समझ में आया? ओहोहो!

जो कोई आत्मा अपने स्वरूप में निज परिणाम को निज में रोकता है, उसका नाम दर्शन-ज्ञान-चारित्र रत्नत्रय। देखो, यह तीनों परिणाम है, हों! यह गुण नहीं। **जो पंचम गतिरूपी मोक्ष के सुख को विनाश करनेवाली...** पंचम गति जो मोक्ष, उसके आनन्द को नाश करनेवाली **और पाँच परमेष्ठी की भावना से रहित...** पाँच इन्द्रियों में तो यही हो न। क्या कहते हैं? **पाँच परमेष्ठी की भावना से रहित ऐसी पंचेन्द्रियों से जुदा हो गया है, वही योगी है,...** पंच परमेष्ठी की भावना का अर्थ ही स्वरूप की प्राप्ति अन्दर साधु आदि एकाग्र होना। वह **पंचेन्द्रियों से जुदा हो गया है, वही...** धर्मी है। वही योगी कहो या धर्मी कहो। गजब बात, भाई! वह वार्ता कथा हो न बड़ी तो ऐसी लगे लोगों को। यह महा भगवान की कथा है यह तो।

मुमुक्षु : भारी अर्थात् वजनदार या कीमती?

पूज्य गुरुदेवश्री : कीमती, वजनदार, उठा न सके विकल्प से—ऐसी बात है, बापू! आहाहा! निर्विकल्प श्रद्धा, ज्ञान द्वारा ही उसे झेला जा सकता है, ऐसी भगवान की बात है। आहाहा! भगवान महा परमात्मा जिसमें उसकी एक पर्याय में, उस श्रुतज्ञान की एक पर्याय में छह द्रव्य अनन्त सिद्ध भी जिसकी पर्याय में ज्ञान में समा गये। श्रुतज्ञान की पर्याय में छह द्रव्य का ज्ञान करने की सामर्थ्य है या नहीं उसकी? तो उसमें छह द्रव्य में अनन्त सिद्ध आये या नहीं? जिसकी एक पर्याय में अनन्त सिद्धों को ज्ञान में समाया। तो इतना वह नहीं। इतना नहीं। वह तो एक गुण का अनन्तवाँ भाग, एक गुण का अनन्तवाँ भाग। ऐसे अनन्त गुण। आहाहा! समझ में आया?

वह परमस्वरूप भगवान आत्मा, उसकी इसके ख्याल में कीमत आती नहीं। इसलिए ऐसा का ऐसा सब लुट जाता है ऐसा का ऐसा। या तो सब होकर एक आत्मा, या तो भगवान देखे तो होगा, या तो कृपा हो जाये तो होगा, या तो कोई शुभ करते-करते होगा। यह भगवान परमात्मा निज स्वरूप की लूट है। वहाँ लुटता है और मानता है कि हमको लाभ होता है। आहाहा! बड़े व्यक्ति को हीन कहे तो अच्छा नहीं लगता। लगता है? पचास लाख का, करोड़ का, दो-पाँच करोड़ का आसामी हो, उसे (कहे कि) भिखारी है भिखारी। अच्छा लगे? और वह कहता है, वह बराबर कहता है? तो यह तीन लोक का नाथ चैतन्य अनन्त सिद्धों को पर्याय में समाहित करनेवाला, एक गुण के अनन्तवें भाग—एक अंश में उस अल्पज्ञान में समाहित करनेवाला। केवलज्ञान में तो समाहित हो, उसकी क्या बात है। ऐसा भगवान आत्मा उसे जैसा है, वैसा ख्याल में न ले और दूसरे प्रकार से ले तो वह महत्ता को गाली देता है। समझ में आया? वह बड़े को हीन बतलाना, वह विपरीत दृष्टि है। भगवान कहते हैं... देखो न, यहाँ तो परमार्थ शब्द रखकर यह माहात्म्य बतलाया है। परमार्थ, परम अर्थ... परम अर्थ... परम अर्थ। परम अर्थ तो सभी हैं। यह नहीं। यहाँ तो विशुद्ध ज्ञान-दर्शन स्वभाववाला परम अर्थ, ऐसा। समझ में आया?

अब **योग शब्द का अर्थ ऐसा है,...** योग की व्याख्या करते हैं। यह लोग योगी कहते हैं, वह नहीं। **कि अपना मन चेतन में लगाना, वह योग जिसके हो, वही योगी**

है,... ऐसा नहीं। वस्तु जो ऐसी है महान पदार्थ अनन्त पर्याय का पिण्ड और ऐसा अनन्त गुण का एक (पिण्ड), जिसकी एक पर्याय में अनन्त सिद्ध समाहित हो गये, ऐसी एक पर्याय—एक गुण का अनन्तवाँ भाग, ऐसा एक गुण, ऐसे अनन्त गुण का एकरूप, ऐसा विशुद्ध दर्शन-ज्ञानस्वभाव आत्मा में एकाकार हो, उसे योग और योगी कहा जाता है। यों ही योगी ऐसे बैठे और ऐसे-ऐसे करे उसे हीं योग है नहीं। प्राणायाम करे, ऐसा करे, आता है न? इंगला और पिंगला और नाडी। आता है न? कुम्भक और रेचक और फेचक। वह हमारे था एक उमराला का। यहाँ दर्शन करने आया था पहले। फिर बैठता शाम को राजकोट में, भाई! वह उपाश्रय है न, नया बनाया वह। वह कमरा है वहाँ। क्या करते हो त्रिभुवनभाई! मैं प्राणायाम करता हूँ। किसके प्राणायाम? प्राण ऐसा चैतन्य अनन्त गुण का पिण्ड, उसके ऊपर तो दृष्टि नहीं, किसका प्राणायाम?

मुमुक्षु : श्वास रोके, वह प्राणायाम।

पूज्य गुरुदेवश्री : श्वास रोके तो मैं रोक सकता हूँ, यह दृष्टि मिथ्यात्व है। श्वास, वह रजकण की क्रिया है, परमाणु की—अजीव की (क्रिया है)। ऐसे करूँ कुम्भक, रेचक, पूरक। आता है न? रेचक-छोड़ना, पूरक-भरना। अरे! कौन भरे? यह दृष्टि ही भ्रम अज्ञानी की है। ऐसे अन्दर खम्भा दिखाई दे कोई और किसी को ऐसा दिखाई दे जरा निरोगता शरीर की हो जाये। वह सब मूढ़ जीव हैं, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। अपना ऐसा आत्मा में—मन में चैतन्य को लगाना। ऐसा आत्मा जो है, उसमें लगाना, वह योग और वह योग हो, उसे योगी कहा जाता है। नियमसार में है न भाई!

मुमुक्षु : संस्कृत में ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो नियमसार में योग लिया है। नियमसार में योग लिया है। सब नियमसार में पर्याय सब ली है।

मुमुक्षु : पूरा योग का अधिकार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अधिकार है। ... धातु लिखी हुई है। ... देखो! योग शब्द से वीतराग निर्विकल्प समाधि उच्यते। यह आत्मा ऐसा एक-एक अखण्डानन्द प्रभु, उसका ज्ञान और रुचि किये बिना उसमें एकाग्र तीन काल में नहीं हो सकता और वह

एकाग्र हो, वह योग और उस योग का करनेवाला, वह योगी। बाकी सब थोथा। उसे कहना ध्यानी, उसे कहना तपोधन। उसने धन प्राप्त किया। समझ में आया? है न, तीन शब्द है न? योगी, ध्यानी और तपोधन। लक्ष्मी चिदानन्द सम्पदा में दृष्टि से स्थिर हुआ, वही उसे सम्पदा हाथ आयी, वही सम्पदावाला तपोधन है। राग में अटककर पड़ा है, वह सम्पदा लूटकर बैठा है और कहता है कि हम ध्यानी और योगी हैं। नहीं।

वह निःसन्देह जानना। लो! समझ में आया? ऐसा भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध स्वरूप। इस शुद्ध शब्द में तो बहुत महिमा है अन्दर। एक-एक पर्याय की शुद्धता की इतनी सामर्थ्य, ऐसे अनन्त सिद्ध, उसमें जिसका चित्त एकाग्र है, वह योग और वह योगी, वह ध्यानी, वह तपोधन। यह उसे तपोधन चैतन्य की लक्ष्मी प्राप्त हुई, इसलिए वह लक्ष्मीवाला है। बाकी सब भिखारी हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आषाढ़ शुक्ल १०, गुरुवार, दिनांक - ०८-०७-१९६५
गाथा - १३८ - १३९, प्रवचन - १६५

गाथा - १३८

(परमात्मप्रकाश), दूसरे भाग की गाथा १३८। **आगे पंचेन्द्रियों के सुख को विनाशीक बतलाते हैं—** आत्मा का सुख वह नित्य ... है। आत्मा का आनन्द वह नित्य है। तब विषयसुख क्षणिक और दुःख है। दो बातें ऐसी बताते हैं। है न अन्दर में? वीतराग परमानन्द। '**नित्याद्वीतरागपरमानन्दैकस्वभावात्**' संस्कृत है न। उसके सामने डालना है यह। भगवान आत्मा वीतराग परमानन्द की मूर्ति है वह। उसे ज्ञेय बनाकर दूसरे विकल्प छूट जाना और उस ज्ञेय में एकाकार होना, उसे आनन्दरस कहते हैं। वह आनन्द त्रिकाल है और उसकी एकाग्रता से उत्पन्न हो आनन्द, वह भी कायम रहता है। तब उस विषय के सुख में कल्पना में एकाकार होने से उसका जो रस दिखता है, वह है तो जहर, (परन्तु) जिस-तिस विषय में लक्ष्य जाने से उसे वहाँ दूसरी चिन्तायें छूट जाने से उसमें उसे सुख लगता है। वह कैसा सुख है? कि **विषयों के सुख दो दिन के हैं,...** अनुमान किया है, हों! यहाँ दो दिन में ऐसा कुछ नहीं। थोड़ा काल ऐसा। (सुख) एक समयमात्र और उसके दुःख की परिपाटी बहुत लम्बा काल, ऐसा यहाँ बताना है।

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द... 'वस्तु विचारत ध्यावते मन पावे विश्राम, रस स्वादत सुख उपजे अनुभव ताको नाम।' भगवान आत्मा तो यहाँ कहा अन्दर में, नित्य वीतराग परमानन्द एक स्वभाव। उसके सामने ऐसे बात गुलाँट खाती है। नित्य परमानन्द स्वरूप ऐसी चीज़ में एकाकार होने से, ध्यान में वह रस आने से एक ही प्रकार का रस (आवे) कि जिसमें दूसरे ज्ञेय की विकल्पदशा उत्पन्न नहीं हो। ऐसे आत्मरस में एकाकार होना, वह तो आत्मा का आनन्द और नित्य टिकनेयोग्य नित्य वस्तु है, इसलिए वह दशा भी कायम रहनेवाली है। तब विषय के सुख दो दिन के हैं।

फिर बाद में... 'दुःखानां परिपाटी' देखो, यहाँ आत्मा का आनन्द नित्य वस्तु है, उससे उसकी वस्तु का आनन्द प्रगट होने पर कायम, उसकी अवस्था प्रगट कायम रहती है। समझ में आया? यह बात है, हों! अकेले विषयों को छोड़ना, ऐसा यहाँ नहीं। यह स्व-विषय को बनाकर पर के विषय को छोड़ना, तो छोड़ा कहलाये, वरना छोड़ा नहीं कहलाये। **विषयों के सुख...** अल्प काल में। वह भी सुख नहीं। यह कहते हैं, देखो। **ये विषय दुःख की परिपाटी हैं,...** वहाँ तो जहर की, आकुलता की शृंखला है। उसके फल में, विषय के पर के रस में उपार्जित कर्म, उसके फल में संयोग की परिपाटी बहुत काल रहती है।

कहा था एक बार, नहीं? सात सौ वर्ष विषय लिया, लो! चक्रवर्ती। फल कितना? सात सौ वर्ष क्या? अभी बालक अवस्था में तो कुछ लिया न हो, परन्तु उसके सात सौ वर्ष गिनो तो भी उसका समय मात्र असंख्य होता है। और अभी सातवें नरक में पड़ा है। तैंतीस सागर की स्थिति। एक सागरोपम में दस क्रोड़ाक्रोड़ी पल्योपम जाते हैं। एक पल्योपम के असंख्य भाग में असंख्य अरब वर्ष जाते हैं। काल की कहाँ कमी है? सात सौ वर्ष का.... चक्रवर्ती छियानवें हजार स्त्रियों में हो.. हा... हो.. हा... कहते हैं कि दो दिन। दो दिन अर्थात् थोड़ा हुआ न? सागर में क्या गिनती सात सौ वर्ष की? और दुःख की परिपाटी रवरव नरक, तैंतीस सागर। आहाहा! तैंतीस सागर है तो असंख्य वर्ष, परन्तु उसके असंख्यवें (भाग में) असंख्यगुने वर्ष है। इतने-इतने। ओहोहो! एक पल्य में इतने असंख्य अरब वर्ष जाये कि जिसके असंख्यवें भाग में असंख्य अरब वर्ष जाये। ऐसे-ऐसे दस क्रोड़ाक्रोड़ी का एक सागरोपम। अब उसे सात सौ वर्ष के समय में दुःख की परिपाटी कितनी? एक-एक समय असंख्य ... आये। समझ में आया?

दो दिन के हैं, फिर बाद में ये विषय दुःख की परिपाटी हैं, ऐसा जानकर,... ऐसा कहते हैं यहाँ। **हे भोले जीव!** ऐसा लिखा हे न? **'भ्रांत जीव'** भ्रान्त अर्थात् फिर लिखा भोला जीव। भ्रान्त जीव अर्थात् कि तुझे सुख में, इस विषयसुख में मान्यता हुई (वह) भ्रान्त तेरी भ्रमणा है, तू मूर्ख है, ऐसा कहते हैं। भ्रान्ति में गया है, ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा में आनन्द है, उसकी तुझे रुचि नहीं, दृष्टि नहीं, झुकाव नहीं, सावधानी

नहीं और यह सुख में भ्रान्ति, भ्रान्ति हो गयी तुझे। भोला है? मूर्ख है? जहाँ सुख नहीं, वहाँ सुख (मानता है), ऐसा कहते हैं, देखो, **हे भोले जीव! 'भ्रांत जीव'** इसका अर्थ किया **हे भोले जीव!** अर्थात् कि मूर्ख जीव! ऐसा। एक अल्प काल के विषय की कल्पना के सुख के काल (के सामने) जिसकी परिपाटी असंख्य अरब वर्ष, एक समय के ऊपर इतने वर्ष जायें। भाई! यह तुझे कैसे ठीक पड़ता है? ऐसा कहते हैं। तूने कभी दीर्घ विचार किया नहीं। आहाहा!

तू अपने कन्धे पर... देखो, **आप ही कुल्हाड़ी मत चलावे।** भगवान आत्मा की पर्याय में तू कुल्हाड़ी मारता है, घात करता है। आत्मा आनन्दस्वरूप, अतीन्द्रिय आनन्द से आनन्दरूप ही उसका है। आनन्द से भरपूर, वह तो गुण-गुणी के भेद से व्याख्या है। उसका स्वरूप ही अतीन्द्रिय नित्यानन्द है। है न? **'नित्याद्वीतरागपरमानन्दैकस्वभावात्'।** वापस एक, हों स्वभाव। यह बराबर अर्थ नहीं किया। वापस एक स्वरूप है, ऐसे एक स्वरूप। उसके रस के आनन्द को छोड़कर उस विषय के रस में एकाकार होना।

रस की व्याख्या की है न भाई ने। समयसार में नहीं? एक गुणी के ज्ञान को एक ज्ञेय में रोकना, दूसरी कल्पना न होना, उसे रस कहते हैं। नव रस की व्याख्या की। वे नव रस कहे न। ३८वीं गाथा। ३८वीं गाथा। समयसार नाटक में वर्णन किया है न! इसलिए स्वयं टीकाकार ने जरा वर्णन किया है न कि भाई! यह क्या है? ३८ गाथा हुई उस जीव की। नीचे वर्णन किया है न पण्डित जयचन्द्रजी ने। **यहाँ टीकाकार का ऐसा आशय है कि इस ग्रन्थ को अलंकार से नाटकरूप से वर्णन किया है। नाटक में पहले रंगभूमि रची जाती है। वहाँ देखनेवाले नायक तथा सभा होती है...** यह बहुत लम्बी बात है। यहाँ अपने अभी इतनी बात है कि उसमें—नाटक में उसका अधिकार है। शान्तरस उसमें लौकिक में नहीं, यहाँ शान्तरस का अधिकार है। शान्तरस किसे कहना?

और सामान्यरूप से रस का यह स्वरूप है कि ज्ञान में जो ज्ञेय आया, उसमें ज्ञान तदाकार हुआ, उसमें पुरुष का भाव लीन हो जाये और अन्य ज्ञेय की इच्छा न रहे, वह रस है। यह रस की व्याख्या है। विषयरस में एकाकार हो गया, दूसरी कल्पना में, वह रस हो गया। आत्मा के रस में एक ज्ञेय को पकड़कर उसमें जो रस आवे और

दूसरी कल्पना न रहे, उसे यहाँ आत्मरस कहा जाता है। है न, ऊपर क्या कहा? 'वस्तु विचारत ध्यावते मन पावे विश्राम।' कडी है ऊपर। वहाँ नहीं यहाँ। 'वस्तु विचारत ध्यावते मन पावे विश्राम, रस स्वादत सुख उपजे' यह यहाँ रस। 'अनुभव ताको नाम।' यह बनारसीदास ने (रचा है)। भगवान आत्मा अपना आनन्दरस जिसे स्वज्ञेय ज्ञान में बनाकर दूसरे विकल्प का अथवा दूसरे ज्ञेय का वहाँ ज्ञान में अवकाश न रहे, ऐसे भाव को रस कहा जाता है।

मुमुक्षु : वस्तु वह है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु वह है। वस्तु वह है, ऐसी यहाँ तो बात चलती है या नहीं? ज्ञान में जो ज्ञेय लक्ष्य में आया, उसमें एकाकार हुआ (और) दूसरा ज्ञेय उसके लक्ष्य में न रहे, उसका नाम यहाँ रस कहा जाता है। विषय में यह है। एकाकार हो जाता है राग में-राग में—जहर में। यह तो अमृत है भगवान। राग तो जहर है। उस जहर में एकाकार बनकर चिदानन्द के रस को लूटकर, (इसलिए) कहते हैं कि हे भाई! यह तेरे आत्मा के ऊपर कुल्हाड़ा मत मार। यह आत्मा के आनन्द का घात मत कर, ऐसा कहते हैं मूल तो। समझ में आया? ३८ गाथा वर्णन की न, इसलिए उसमें से। ... आता है न कलश। उसमें वह कलश। कहो, समझ में आया?

कहते हैं कि भाई! आत्मा के आनन्द के रस को छोड़कर यह विषय के रस में एकाकार (हुआ)। ज्ञानी को विषय में रस नहीं। वह तो जरा कमजोरी का, अस्थिरता का विकल्प है। रस नहीं, एकाकार नहीं। समझ में आया? आनन्द के आनन्दरस के समक्ष यह विकल्प आता है, वह दुःख लगता है इस प्रकार। जैसे मछली पानी में से अग्नि में आवे, उसे तो दुःख होता है, परन्तु रेत में आवे, उसे दुःख होता है। बालू-बालू, रेत, रेत-रेत। रेत में आवे तो दुःख होता है। वह पानी से बाहर निकला न ऐसे? पानी से बाहर निकला न ऐसे? उसी प्रकार अतीन्द्रिय आनन्द की दृष्टिवन्त को अशुभभाव तो अग्नि जैसा लगता है और शुभभाव अन्तर में से निकलकर मछली रेत में आवे, ऐसा लगता है। पद्मनन्दि में दृष्टान्त दिया है। इसमें भी है। दे न शास्त्रकार तो सब दे। समझ में आया?

यह विषय की ऐसी बात की। अकेला विषय यह स्त्री, पुत्र छोड़ दिये, भोग छोड़ दिया, वह नहीं। वह भोग ही कब (था) ? अन्दर में राग में एकाकार होकर जो माना था कि कि यह सुख है, उसे छोड़, भाई! उसका तेरे आत्मा के आनन्द के रस के ऊपर कुल्हाड़ा पड़ता है, कुल्हाड़ी पड़ती है। कुल्हाड़ी कहते हैं न ? कुल्हाड़ी। यहाँ तो दो (रस)। आनन्दरस में जहर रस नहीं और जहर के रस में आनन्दरस नहीं। दो बात। ज्ञानी को वह रस नहीं आता। स्व के रस के आनन्द के समक्ष वह दुःख लगता है। शुभभाव भी रेत में, मछली रेत में आयी, वैसी आकुलता, आकुलता, आकुलता लगती है। अशुभ की आकुलता तो अग्नि में आने जैसी है। दोनों अकुलता है। रस नहीं, परन्तु निर्बलता के कारण मचक खा जाता है अन्दर। मचक समझ में आता है ? कमजोरी से जरा घात हो जाता है। रस नहीं, रस नहीं।

यहाँ तो कहते हैं **हे... 'भ्रांत जीव'** देखो, भाषा ऐसी प्रयोग की है। भ्रमित जीव। हे भूलवाले जीव भोला! यहाँ भगवान आत्मा में रस है न, प्रभु! उस रस में कहाँ एकाकार हो गया, भाई! उस रस से **'मा वाहय' मत चलावे।** भाई! कुल्हाड़ा मत चला। भगवान आनन्द के रस में उस जहर के रस की एकाकारता (होने पर उसमें) उस स्वभाव की एकाकारता टूट जाती है। ऐसी बात है, हों! साधारण ऐसी बात नहीं कि यह विषय छोड़े, स्त्री छोड़ी। समझ में आया ?

भावार्थ :- ये विषय क्षणभंगुर हैं,... ऐसा लेना है, देखो, ऐसे क्षणभंगुर है और ऐसे नित्य है। **बारम्बार दुर्गति के दुःख के देनेवाले हैं,...** इसका अर्थ किया वे **'दुःखानां परिपाटी' बारम्बार दुर्गति के दुःख के...** वह तो दुर्गति की परिपाटी तो वहाँ है, जहर है। नरक, पशु, सिंह और बाघ के अवतार। आहाहा! वापस वह मरकर बाघ और भालू हो। क्रोध में विषय के ... आकार में। और मरकर नरक में जाये। वह बारम्बार लगातार **दुर्गति के दुःख के देनेवाले हैं, इसलिए विषयों का सेवन अपने कन्धे पर कुल्हाड़ी का मारना है,...** लो! हाथ में कुल्हाड़ी लेकर यहाँ मारे। **अर्थात् नरक में अपने को डुबोना है,...** नरक के महान, अनन्त महान दुःख में डुबाना है। **ऐसा व्याख्यान जानकर...** ऐसा स्वरूप का ज्ञान यथार्थ जानकर **विषय-सुखों को छोड़,...** यह विषय में सुख नहीं।

ऐसी बुद्धि छोड़ दे विषय के सुख की। समझ में आया?

वीतराग परमात्म-सुख में ठहरकर.... देखो, भगवान आत्मा महान चैतन्यस्वरूप जो रागरहित चैतन्यधातु ऐसा त्रिकाल भगवान वीतराग परमात्मसुख में **ठहरकर...** उसमें ठहरकर छूटे, उसे छोड़ा कहलाता है, ऐसा कहते हैं। ऐसे सब विषय छोड़े, नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया, (तब) सब छोड़ा। यह नहीं। वीतराग परमात्म सुख नित्यानन्द की दृष्टि में उस रस के कारण **ठहरकर...** उसमें ठहरने से। **निरन्तर शुद्धोपयोग की भावना करनी चाहिए।** देखो, कितना उसमें से इतना। पाठ तो इतना है कि '**निरन्तरं भावना कर्तव्येति**' इसका अर्थ यह कि अपने शुद्ध उपयोग की भावना बारम्बार अन्दर होनी चाहिए। स्वभाव-सन्मुख की शुद्ध उपयोग की भावना। देखो, साधारण बात से वहाँ ले गये। विषय के सुख के त्याग में से आत्मा के शुद्ध उपयोग में ले गये। बात यह। कहाँ है भाई! परम प्रभु चैतन्य महाप्रभु में महारस पड़ा है, उसमें उपयोग लगा, उसमें उपयोग लगा। वह उपयोग लगा, इसका नाम शुद्ध उपयोग है। यह विषय के अकेले त्याग की बात नहीं की। ऐसे शुद्ध उपयोग की भावना करके उस विषय का भाव छूट जाये, उसे छोड़ा कहा जाता है। कहो, समझ में आया? आहाहा!

यह भगवान महान प्रभु की महानता इसकी दृष्टि में ही आती नहीं। इसे जरा कुछ प्रशंसा, कुछ इज्जत, कोई महिमा (करे), वहाँ इसे विकल्प में घनघनाहट हो जाती है। विकल्प में, हों! ऐसे रस... रस... रस... रस... रस... अन्दर (आवे)। कहते हैं कि भाई! यह विषय का सुख है, वह तो दुःख है और उसमें परम्परा से दुःख है। वर्तमान दुःख है और परम्परा दुःख है। भगवान आत्मा महान प्रभु जिसमें शुद्ध आनन्द पड़ा है, उस आनन्द की दृष्टि करके उसमें शुद्ध उपयोग की भावना कर। यहाँ बात ले गये हैं। तो विषय छूट गये, ऐसा कहा जाता है। छोड़े कौन? विकल्प छोड़ना है कहाँ? **शुद्धोपयोग की भावना करनी चाहिए।** यह १३८ (गाथा हुई)।

यहाँ तो परमात्म व्याख्यान है न, परमात्म। परमात्म स्वयं परमात्मप्रकाश है। परमात्मा स्वयं है। उसके प्रकाश की दृष्टि में जा और यह सब पामरता विषय के भोग आदि की पामरता छोड़ दे। समझ में आया? नहीं चला था उस मोक्षमार्गप्रकाशक में कि

विषय के त्याग में अभिलाष। आया था न? अभिलाष मूल है, हिंसा में प्रमाद मूल है। यह बात बहुत सरस ली थी। कल आया था। हिंसा आदि में प्रमाद मूल है। वह क्रिया तो बाद में, परन्तु प्रमाद। और विषय में अभिलाषा। स्वभाव को ऐसे छोड़कर उसकी अभिलाषा रहती है, वह मूल है। भाषा तो भले बाहर का छूटे, वह ऐसा नहीं। आत्मा के आनन्द का भाव न आवे, तब तक विषय की अभिलाषा गहराई से हटती नहीं। मिठास... मिठास... मिठास... अच्छा देखकर, शब्द अच्छे सुनकर, सुन्दर चमड़ी देखकर, माँस की रचना व्यवस्थित देखकर। गोठवणी। गोठवणी (संरचना) है न यह सब व्यवस्थित ऐसे... ऐसे... ऐसे... ऐसे मन ललचा जाए, वहाँ उसे चिदानन्द भगवान की प्रतीति, रुचि रहती नहीं। वहाँ ललचाता है कि यह ठीक है। दृष्टि बदल गयी है पूरी, ऐसा कहते हैं मूल तो। समझ में आया? भगवान परमात्मा स्वयं है, उसके प्रेम में आ और यह पामर विषय दु:खरूप, इनके प्रेम को छोड़। मूल तो यह चीज़ है।

★ ★ ★

गाथा - १३९

आगे आत्म-भावना के लिये जो विद्यमान विषयों को छोड़ता है, उसकी प्रशंसा करते हैं — प्राप्त भोगों की ऐसी अभिलाषा होती है, उसे छोड़े। प्राप्त भोग की फिर विशेष बात वर्णन करते हैं। नहीं मिला और भिखारी है, उसे अभिलाषा रहा करती है। कुछ नहीं और अभिलाषा रहा करती है कि यह मिले तो ठीक... ऐसा मिले तो ठीक... यह मिले तो ठीक। और यह तो प्राप्त साधनों की ओर की वृत्ति को छेद डाले, उसकी प्रशंसा करते हैं।

२७०) संता विसय जु परिहरइ बलि किज्जउँ हउँ तासु।
सो दइवेण जि मुंडियउ सीसु खडिल्लउ जासु॥१३९॥

आचार्यदेव धर्मानुराग में आकर प्रेम से पुकार करते हैं। अरे! **जो कोई ज्ञानी...** आत्मा के आनन्द के प्रेम में पड़े। **विद्यमान विषयों को छोड़ देता है,...** छियानवें हजार स्त्रियों को ऐसे इन्द्रियाँ शरीर सुन्दर मक्खन के पिण्ड जैसा और बाहर में भी मक्खन के

पिण्ड जैसा शरीर दिखायी दे। कुछ नहीं, प्रभु! उसमें कुछ नहीं। ऐसे छोड़ देता है। **उसकी मैं पूजा करता हूँ,...** बलि जाता हूँ, लो। मैं वारी जाऊँ उसके ऊपर। '**बलिं**' है न? पूजा। '**बलिं**' पूजा। **पूजा करता हूँ,...** लो, यह '**बलिं**' आया नहीं?

बड़ा विवाद है न स्थानकवासी-मन्दिरमार्गी में? बड़ा विवाद। परन्तु यह बलि कहे तो कहे, नहीं। बलि का एक अर्थ पूजा आता है। शास्त्र में एक मूर्ति, मन्दिर बहुत आते हैं, वहाँ पूजा, माया.... ऐसा आता है। ३२ सूत्र में, परन्तु अब वे लोग अर्थ ही दूसरे करते हैं। ...स्नान करके ... जो भगवान प्रतिमा है घर में, उसकी पूजा करे, ऐसा पाठ श्वेताम्बर के शास्त्र में आता है। परन्तु वे लोग निकले, तब से उसका उल्टा अर्थ करते हैं, स्थानकवासी। यह '**बलिं**' का अर्थ ही है देखो यहाँ। '**बलिं**' का अर्थ ही पूजा है। तो वहाँ उसे कहते हैं, यह स्नान करके शरीर को मर्दन करना यह बल करना, ऐसा अर्थ करते हैं। सम्प्रदाय की दृष्टि हुई, बाद में बदलना... सिर कट जाये अन्दर से। जिसमें निभा हो ... जिस कुल में जन्मा और जिसका संग हुआ,... वह मेरे, उसमें अज्ञानी लिप्त हो जाता है, परन्तु उससे छूटना, उसे चोट पड़ती है। अरर्र! नहीं होगा। हमारे बाप-दादा का धर्म, वह हमारा यह, छोड़ें तो जाना कहाँ? हमारी इज्जत क्या, ऐसा कहते हैं। ऐसी गाथा है उसमें—सूयगडांग में। ... पारस्परिक एक-दूसरे की महिमा करे। तुमने बहुत परम्परा सम्हाली, हों! अपने परिवार का, माँ-बाप का धर्म सम्हाला, वह कहे तुमने भी सम्हाला, तुमने भी सम्हाला, ऐसी महिमा करे। ऐसा कि यह परम्परा जो परिवार की हो, वह धर्म खोटा हो तो भी उसे ऐसा उल्टा अर्थ करके अपने ऐसा कि अपने माँ-बाप का धर्म रखा। वह कहे, तुमने भी रखा। परस्पर एक-दूसरे की महिमा करे। अपने अपना रखा, हों! अपने माँ-बाप का। परन्तु यह खोटा है, उसे तू छोड़। कहे, नहीं, यह अपने माँ-बाप का छोड़ना नहीं। मलूकचन्दभाई! ... ऐसा।

मुमुक्षु : मलूकचन्दभाई के तो बाप ने भी छोड़ा।

पूज्य गुरुदेवश्री : इनके बापू ने छोड़ा। सच्ची बात। यह तो बाप-दादा का धर्म नहीं छोड़ा जाता।

मुमुक्षु : परन्तु बाप-दादा .... कहा न....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त पहले, तो पहले देख न। अनन्त तेरे बाप-दादा में कितने ही मोक्ष गये हैं केवल (ज्ञान) प्राप्त करके। उन बाप-दादा का क्या धर्म था, इसने देखा कभी? अनन्त माँ-बाप हो गये पूर्व में मनुष्य भव में। मनुष्य भव अनन्त मिले। माँ-बाप मिले। ऐसे बाप-दादा केवल (ज्ञान) पाकर मोक्ष गये हैं शाश्वत धर्म पाकर। यह तेरे बाप-दादा का... नवरंगभाई! ऐसे बहुतों को है, हों! नहीं अपने बाप-दादा का धर्म नहीं छोड़ा जाता। परन्तु यह स्पष्ट भगवान की पूजा शास्त्र में चलती है। बलि-पूजा भगवान की मूर्ति की। अपने मूर्ति मानी नहीं जाये। हम अभी तक उत्थापित करते आये, अब कैसे माना जाये?

मुमुक्षु : बाप-दादा कहीं मूर्ख थोड़े ही थे?

पूज्य गुरुदेवश्री : मूर्ख नहीं थे। अब चाहे जैसे थे। परन्तु पहले पगड़ी बाँधते थे, अब टोपी पहनते हैं, अब छोड़ न। बाप-दादा का कितना खींचेगा तू? कहाँ तक खींचेगा? हमारे तो यह बहुत चलता था न अन्दर में कि भाई यह शास्त्र में तो ऐसा कहा है, कहा। भाई! समझ में आया? भगवान की पूजा चली है शास्त्र में। मैंने तो कहा था ७३ में। (संवत्) १९७३ के वर्ष में। शास्त्रों में यह जीवादि का सूत्र है। उसमें मूर्तियाँ हैं न शाश्वत, उसका उनमें पाठ है और उसकी उपमा दी है ... प्रमाण। जिन की ऊँचाई प्रमाण में वह प्रतिमा है। देव में मन्दिर। ७३ में मुझे शंका हुई, कहा भाई! भगवान की मूर्ति को तुम यक्ष कहते हो। वे लोग यक्ष कहते हैं। यक्ष की मूर्ति कहते हैं। यह तो जिनो... प्रमाण उपमा दी है आचार्य ने। यह शास्त्रकार पहले तो भगवान मानते थे न शास्त्र के कर्ता। भगवान तो कहते हैं कि वे प्रतिमायें जिन की ऊँचाई प्रमाण में... ऊँचाई। जितने ऊँचे हैं, उस प्रमाण में यह प्रतिमा है। यह यक्ष की मूर्ति हो तो जिन की ऊँचाई प्रमाण में ऐसी उपमा शास्त्रकार नहीं दे सकते। यह ७३ में कहा था, पहले ७३ में। तब गुप्तरूप से कहा था। गुप्त हों गुप्त। कि है तो तीर्थंकर की मूर्ति। ओय मार्या! ... बाहर में तुम कुछ कहो और अन्दर कुछ कहो। यह क्या है? कहा। मूर्ति का कहा था। एकान्त में मैंने पूछा था। दामनगर में पूछा था। एकान्त में कहा, यह मूर्ति अपने मानते नहीं, परन्तु यह मूर्तियाँ शाश्वत और जिन की उपमा दी है। इसलिए यह मूर्ति तीर्थंकर

की लगती है, यक्ष की नहीं। यह सब यक्ष की स्थापित करते हैं। पुस्तक में लिखा है यक्ष की। है तो तीर्थंकर की। ओय मार्या! ... तीर्थंकर की प्रतिमा को तुम यक्ष की प्रतिमा स्थापित करो। नहीं, कहा यह बात ही खोटी है। उन लोगों का सब विश्वास उड़ गया मुझे तब। बात ऐसी है। ऐसा कहा एकान्त में। वैसा कहीं स्वीकार करे? एकान्त में मैंने पूछा। मैंने कहा, यह पाठ है देखो यह शास्त्र। जीवागम सूत्र है। ऐसी पुस्तक है। ऐसी पुस्तक है न ऐसा सब कंकू लगाया है उस पृष्ठ के ऊपर। पृष्ठ होता है न यहाँ ऊपर वह सर्वत्र कंकू लगाया है। वह पृष्ठ मैंने पढ़ा, उसमें यह निकला। कहा, अपने यह प्रतिमा मानते नहीं, भगवान की प्रतिमायें यक्ष में कहाँ? यक्ष की कहते हो। जीवागम छपाया है परषोत्तम की ओर से। परषोत्तमजी यह गोंडलवाले। उसमें यह यक्ष की लिखी है। वह भाई मूंछोंवाले नेमिचन्द कोठारी। उनका फोटो रखा है और उसमें यक्ष की मूर्ति में लिखा है कि यह यक्ष की मूर्ति। कहा, यह शाश्वत प्रतिमा को तुम यक्ष की मूर्ति लिखते हो। यहाँ तो जिन की ऊँचाई प्रमाण में कही है। अपने को यह बात बैठती नहीं, यक्ष की। है भगवान की। शशीभाई! फिर कहाँ जाना? यह लोगों को कुछ भी एक बोल आता है वहाँ सम्प्रदाय का, वहाँ सिर घूम जाता है। क्यों भगवानभाई! यह तो (संवत्) १९७३ की बात है, हों! कितने वर्ष हुए? ४८ वर्ष हुए। यह मार्ग अपने को बैठता नहीं।

यहाँ कहते हैं कि '**बलिं**' अर्थात् पूजा। ऐसा शब्द है वहाँ, हों! ३२ सूत्र में। '**बलिं**' अर्थात् पूजा। श्रावक हमेशा... ऐसा पाठ है सैकड़ों। ... इसलिए स्नान किया और '**बलिं**' अर्थात् पूजा। फिर इसका अर्थ ऐसा किया कि घर में यक्ष की मूर्ति थी, उसकी पूजा की। ... श्रावक समकिती यक्ष की पूजा नहीं करता। ऐसी विपरीतता कहाँ घुसाई? यक्ष-यक्ष। वह बलि कहलाती है। बलि-पूजा। कहते हैं कि वह '**बलिं**' **पूजा करता हूँ,...** यहाँ तो कहते हैं कि मैं '**बलिं**' **पूजा करता हूँ...** आचार्य को अनुराग आया है। ओहोहो! जो कोई विद्यमान विषयों की सामग्री मिली है, तथापि आत्मा के आनन्द के प्रेम में रुचि की भावना के लिये उसे छोड़ता है। बलि जाता हूँ, पूजा करता हूँ। आचार्य स्वयं भी प्रमोद और प्रशंसा में प्रशंसा करते हैं, लो।

क्योंकि जिसका सिर गंजा है,... अर्थात् कि जिसके सिर में ही बाल नहीं। अब वह मुंडकर क्या करेगा? यह दृष्टान्त दिया है। कल कहा था न! सिर में बाल ही न हों जरा भी। **वह तो दैवकर ही मूडा हुआ है,...** सहज ही मुंडा हुआ है। कुछ नहीं मिलता, सिर एकदम सपाट। **वह मुंडित नहीं कहा जा सकता।** यह उपमा दी है। उपमा तो ऐसी है कि भिखारी है और कुछ नहीं मिला और तो भी अभिलाषा छोड़ता नहीं। वह त्यागी हो। किसका त्यागी? कहते हैं।

भावार्थ :- देखने में मनोज्ञ... देखो! **ऐसा इन्द्रादिक का विष-फल उसके समान ये मौजूद विषय हैं,... 'किंपाकफलोपमान'** कहा है न देखो न टीका में। **'किंपाकफलोपमान' 'किंपाकफल'** होता है एक। देखो टीका में यह आता है, श्वेताम्बर में भी आता है। यह किंपाक आता है। **इन्द्रादिक का विष-फल... 'किंपाक'** जहर। कड़वा... क़ड़वा... क़ड़वा... ऐसा मार डाले। खाते हुए मीठा लगे, फिर परिणमे तब जहर हो जाये। ऐसे फल आते हैं। ऐसे सुन्दर, दिखे अच्छे, सुगन्ध अच्छी, खाने में मीठा पहले मीठा लगे। परिणमे जहर। किंपाक फल एक पूरा अध्ययन आता है उसमें। ज्ञातासूत्र। ३२ सूत्र श्वेताम्बर में। किंपाक।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ यह। ... खोटा पाक। बराबर है। जिसका खाने के बाद पाक खोटा आवे, उसका किंपाक फल, ऐसा। यह बराबर है। किंपाक नाम है न? किंपाक है न? पाक क्या? खोटा-उल्टा। रंग अच्छा, गन्ध अच्छी हों! इसी प्रकार यह देखो न विषय मेरे बाहर में ऐसे चमड़ी मक्खन जैसी लगे। यह सब अच्छा लगे। अरे भाई! यह तो जहर, उसका राग है, वह जहर है। उस राग में एकाकार हो गया, वह तूने सुख माना है। था कब धूल में? विषयो किं करोति? आता है न प्रवचनसार में। प्रवचनसार में आता है पहले। विषयो किं करोति? देव के विषय क्या करे? वे स्वयं कल्पना करते हैं। ऐसा आता है। आता है न? ऐसा गाथा में है। क्या करता है? उसके कारण से सुख है? ऐसा कहते हैं। विषयो क्या करंति? वह तो परपदार्थ हैं, जड़ हैं। क्या करे? समझ में आया? तेरी कल्पना, भगवान आत्मा के आनन्द को भूलकर उस

कल्पना में तूने माना, उस कल्पना में तूने सुख कल्पित किया। समझ में आया? है न कितना है यह? ज्ञान अधिकार। उस स्वर्ग की बात आती है जहाँ, वहाँ आता है। आहाहा!.....

पप्पा इट्ठे विसए फासेहिं समस्सिदे सहावेण।
परिणममाणो अप्पा सयमेव सुहं ण हवदि देहो॥६५॥

वह सुखी नहीं होता। वह तो कल्पना करता है। देखो। '**सयमादा**'...

एगंतेण हि देहो सुहं ण देहिस्स कुणदि सग्गे वा।
विसयवसेण दु सोक्खं दुक्खं वा हवदि सयमादा॥६६॥

देखो, यह कहा। यह आया। यह आया, देखो! ... आया।

तिमिरहरा जइ दिट्ठी जणस्स दीवेण णत्थि कायव्वं।
तह सोक्खं सयमादा विसया किं तत्थ कुव्वंति॥६७॥

उस धूल में कहाँ (सुख) है? तेरी कल्पना अन्दर चिपटी है। जड़ को क्या है? देखो, '**विसया किं तत्थ कुव्वंति**' है या नहीं? यह ६७वीं गाथा है। पाठ में है इसका उपोद्घात बाँधा है। **अब, आत्मा स्वयमेव सुखपरिणाम की शक्तिवाला होने से विषयों का अकिंचित्करपना प्रकाशित करते हैं :—** विषय अकिंचित्कर हैं सुख के लिये — राग के लिये। वे तो निमित्तमात्र जड़ परपदार्थ हैं।

मुमुक्षु : परन्तु निमित्त करता तो है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या करे? धूल करे? इसके लिये तो यहाँ कहा है, देखो! देखो, (उपोद्घात)। '**अथात्मनः स्वयमेव सुखपरिणामशक्तियोगित्वाद्विषयाणाम-किंचित्करत्वं द्योतयति—**' यह तो व्यवहार की बोलने की सब बातें आती हैं। उसे क्या करे विषय? कुछ ललचावे या नहीं? कहते हैं, नहीं। देव को क्या करे वहाँ इन्द्राणी-इन्द्राणी? वह तो उसकी कल्पना से सुखरूप परिणमता है। ऐसा कहा न? सुखरूप की कल्पनारूप से परिणमता है, इसलिए उसे सुख भासित होता है। पर क्या करता था धूल उसे? समझ में आया? कहो, यह पाँच-पचास लाख पूँजी और रुपये और दो, पाँच, दस करोड़....

मुमुक्षु : पचास ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पचास लाख कम हो गये अब इनके पुत्र के हिसाब से। दो-दो करोड़, तीन-तीन करोड़ रुपये सब लम्बी-लम्बी बात हो गयी। उसमें वह क्या करे? कहते हैं। पैसा क्या करंति?

मुमुक्षु : .... डिग्री दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : दे धूल में डिग्री।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु किसकी घोषणा? पैसे किसकी प्रसिद्धि (करे)? दुःख की प्रसिद्धि है। अकिंचित्करं नहीं आया? भगवान! वे परपदार्थ तुझे अकिंचित्कर हैं। तू ही स्वयं कल्पना के सुखरूप से परिणमता है। सुख परिणमन, ऐसा कहा न? ओहोहो! बात तो यथार्थ। ज्ञान अधिकार है न, ज्ञान। ज्ञान ऐसा कहे, यह विषय बिल्कुल तुझे सुख नहीं करते। तेरी कल्पना में तूने खड़ा किया हुआ है, वस्तु में नहीं, पर में नहीं। क्या कहा? यह सुख की कल्पना वस्तु में नहीं, पर में नहीं। खड़ी की हुई कल्पना की दशा वह है। पर के कारण से नहीं, तथा स्वभाव के कारण से नहीं। स्वभाव तो आनन्द है। एक समय की पर्याय विषय में सुख, प्रेम, गृद्धि परिणमन तूने खड़ा किया है। देखो, ऐसी भाषा आयी न! ... परिणमा है तू। नहीं विषय परिणमे हैं। आकाश के फूल तोड़कर मजा मानता है। बहुत फूल आये, हों! बहुत फूल इकट्ठे हुए। कब आकाश को फूल होते हैं? आहाहा!

यहाँ तो दृष्टि को बदलना चाहते हैं, हों! अकेले ऐसे विषय-विषय, ऐसा नहीं। उन विषय के सुख में दृष्टि पड़ी है और वह भ्रमणा है, ऐसा कहते हैं। वह भ्रमणा और सुख की कल्पना का परिणमन तूने स्वतन्त्ररूप से किया हुआ है, नहीं कि वे विषय तुझे परिणमाते हैं, वे ललचाते हैं। वे ज्ञेय तुझे ज्ञेय में (खींचते नहीं)। यहाँ ज्ञान का अधिकार है न? इस ज्ञान में वे ज्ञेय आये, इसलिए तुझे यहाँ कल्पना हुई, ऐसा नहीं। ज्ञान अधिकार है न यह? ९२ गाथा। ज्ञान अधिकार है। भगवान ज्ञानस्वरूप ज्ञेय को जाने, इससे कहीं सुखरूप परिणमता है और अच्छे हैं, इष्ट हैं—ऐसा तूने माना, वह तो

तेरी सुख की परिणमन की कल्पना हुई है। वहाँ कहाँ अच्छा-बुरा था? वे तो ज्ञेय हैं। इस प्रकार ज्ञेय को ज्ञेयरूप से न रखे, कल्पना की दु:खदशा को न जाने, वहाँ तक नित्यानन्द आनन्द की दृष्टि, रुचि नहीं कर सकता। कहो, समझ में आया?

जो देखने में मनोज्ञ... मन को अनुकूल। **ऐसा इन्द्रादिक का विष-फल...** यह इन्द्रादिक कहते हैं उसे। इन्द्राणी कहते हैं न इन्द्राणी। यहाँ इन्द्राइनिक कहते हैं। इन्द्राणी कहते हैं। **विष-फल उसके समान ये मौजूद विषय हैं,...** जहर जैसे विषय हैं, कहते हैं। भाव, हों भाव। उसमें निमित्त है, इसलिए उसे कहा। **ये वीतराग शुद्धात्मतत्त्व की प्राप्तिरूप निश्चयधर्मस्वरूप रत्न के चोर हैं,...** आहाहा! भगवान आत्मा... लो है अन्दर, हों! '**निरुपरागशुद्धात्मतत्त्वोपलम्भरुपनिश्चयधर्मचौरान्**' भगवान आत्मा का वीतराग— रागरहित ऐसा शुद्धात्म प्रभु, उसके तत्त्व की प्राप्ति, प्राप्ति पर्याय में, ऐसे तत्त्व की प्राप्ति पर्याय में ऐसा निश्चयधर्मस्वरूप रत्न, उसके चोर विषय हैं। वे रतन लुटते हैं।

वीतराग शुद्धात्मतत्त्व की.... रागरहित शुद्ध प्रभु आत्मभाव की प्राप्तिरूप। उसकी प्राप्ति पर्याय में होना श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति ऐसा निश्चयधर्म। देखो, पर्याय में, हों! **वीतराग शुद्धात्म...** वह द्रव्य, उसकी **प्राप्तिरूप निश्चयधर्म...** शुद्ध पर्याय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निश्चय धर्म। उसे वह विषय का रस, वह निश्चय धर्म का चोर है, निश्चय धर्म के लुटेरे हैं। आहाहा! उस ज्ञानी को भोग की निर्जरा होती है न तब, ऐसा कहे, आहाहा! परन्तु ... ज्ञानी को सातवें नगर के दु:ख में उन्हें ज्ञेयरूप से जानता है। दोनों में ऐसा नहीं कि अनुकूलता में ऐसा और प्रतिकूलता दोनों को ज्ञेयरूप से जानता है। अनुकूल हो छियानवे हजार स्त्रियाँ या राज, सब ज्ञान की एकता में पृथक् रूप से उसे जानता है। इसी प्रकार सातवें नरक का समकिती नारकी। वह अनुकूल हो न, तब तो उसे कि आहाहा! अनुकूल में आहाहा! परन्तु प्रतिकूल के स्थान में अपरिठाणे रवरव नरक में सम्यग्दृष्टि अपने आनन्द के ऊपर की दृष्टि के कारण, वह दु:ख का विकल्प जो असहनपने का हो और जो संयोग हों, उन्हें ज्ञेयरूप से पृथक् रखकर एकत्व में उन्हें— पर को भिन्न रखता है। स्व के एकत्व में उनकी एकत्वता होने नहीं देता। दु:ख की दशा के विकल्प को और संयोग को वर्तमान (एकत्व होने नहीं देता)। शुद्ध चैतन्यस्वरूप

की दृष्टि के कारण पर्याय में जो निर्मलता की पर्याय प्राप्त हुई, उसमें वह दुःख का विकल्प और वह संयोग दोनों को एकत्व नहीं होने देता। वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान की महिमा है। समझ में आया? ऐसे छियानवें हजार स्त्रियाँ हों तो उन्हें भोगे तो कुछ नहीं। परन्तु इसका अर्थ कि सातवें नरक के नारकी को दुःख भी कुछ नहीं, ऐसा कहते हैं। उसे संयोग मिले हैं, उसे स्वभाव की दृष्टि के समक्ष सब संयोग पर भासित होते हैं। उसमें एकत्वरूप से भासित नहीं होते। समझ में आया?

देखो, भगवान आत्मा शुद्ध वीतरागस्वरूप की प्राप्तिरूप निश्चय धर्म। प्राप्ति अर्थात् उसके आश्रय से, ध्येय से, लक्ष्य से निर्मल पर्याय की प्राप्ति, ऐसा जो निश्चय धर्मरूप रत्न, उसे विषय का राग, वह उसे लूटता है। यहाँ ऐसा नहीं कहना कि निश्चय धर्म है और लूटता है। ऐसा कहना नहीं। निश्चय रत्नत्रयधर्म उसे प्रगट होने नहीं देता, ऐसा कहना है। समझ में आया? वीतराग सम्यक् चैतन्यमूर्ति प्रभु, परमानन्द की मूर्ति ऐसा शुद्धात्मा, उसकी प्राप्ति अर्थात् कि उसके ध्येय से उसकी निर्मल पर्याय की प्राप्ति चाहिए। उसके बदले विषय के लक्ष्य के ध्येय से विषय के रस की प्राप्ति (होने से) वह निश्चयधर्म की पर्याय को उत्पन्न नहीं होने देता। वह निश्चयधर्म का चोर कहा जाता है। समझ में आया?

उनको जो ज्ञानी छोड़ते हैं,... देखो, उसे जो कोई ज्ञानी, भगवान आत्मा का ज्ञान करके, आत्मा के रस के रसीले होकर, आत्मा के आनन्द के रसीले होकर छूट जाते हैं, उसे छोड़ा कहा जाता है। आहाहा! यह **उनकी बलिहारी श्री योगीन्द्रदेव करते हैं,...** समझ में आया? उनकी बलिहारी जाऊँ, कहते हैं। बलि बलि जाऊँ। आता है न उसमें कहीं आता है। पूजा में। बलि बलि जाऊँ। हाँ, यह पूजा में आता है। सच्ची बात। कहते हैं, अहो! जो धर्मात्मा आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द के प्रेम में स्थित हैं, वे शान्ति की प्राप्ति करते हैं और उस शान्ति की प्राप्ति के प्रेम से उन्हें विषय छूट जाता है। विषय का विकल्प छूट जाता है। ऐसे को ऐसा कहते हैं **अपना गुणानुराग प्रगट करते हैं,...** योगीन्द्रदेव कहते हैं, बलि जाता हूँ, बलि जाऊँ, लो! ओहोहो! यह सगे-सम्बन्धी मिले तब नहीं कुछ लेते ऐसे? वारणा (बलायें) लेते हैं या नहीं? क्या ले? तुम्हारे होगा या

नहीं ? विवाह के समय में। हमारे तो यों भी ले, हों! सगे-सम्बन्धी मिले, बड़ी बहिन मिले, बड़े मिले तो ऐसे हाथ करके पोर चटके फोड़े। ऐसा करते हैं या नहीं ?

मुमुक्षु : पोर चटके बजे तो प्रेम सच्चा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो सब समझने का। पोर चटके—बजे तब प्रेम सच्चा। इसका अर्थ कि भाई! हम प्रसन्न हैं। आहाहा! तुम हमको मिले, खुशी-आनन्द हुआ। ऐसा कहने का आशय तो ऐसा है। बलि जाते हैं, बापू! आहाहा! बहुत प्रसन्नता।

यहाँ आचार्य कहते हैं, अहो! जो आत्मा के आनन्द के रस के रसीले होकर, सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा के आनन्द के रसिक होकर विषय का रस छोड़ा है, मैं बलि जाता हूँ। वारणा लेता हूँ तेरा। यह हमारे वारणा कहते हैं। वारणा। हमारे ऐसे सब गाँव में तो यह कहते। वारणा ले, ऐसा कहे। तो हम समझ जायें कि ठीक यह। बड़ी बहिन या मिले न जब। बड़ी माँ मिले या ऐसा हो ... यह पहले करे।

जो वर्तमान विषयों के प्राप्त होने पर भी उनको छोड़ते हैं,... वर्तमान विषय के रस को, भगवान आत्मा के रस के समक्ष उस रस को छोड़कर विषयों का लक्ष्य छोड़ देते हैं। **वे महापुरुषोंकर प्रशंसा योग्य हैं,...** भगवान त्रिलोकनाथ की वाणी में और सन्तों की वाणी में भी उनकी प्रशंसा आती है। समझ में आया ? गणधर भी (कहे) णमो लोए सव्व साहूणं। सन्तों को नमते हैं। धन्य सन्त! तेरे शान्तरस के घूँट तू पीता है अन्दर में। हम भी सन्त गणधर तुझे चरण में नमते हैं। देखो, यह प्रशंसा है या नहीं ? आहाहा! जो कोई पंचम काल में भी यदि सच्चा भावलिंगी सन्त हो, आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद की चारित्रदशा जिसने विशेष चखी है और उसमें जो रमता है, गणधर पंचम काल के साधु को अथवा चौथे काल के मुनियों, गणधर अथवा महाविदेहक्षेत्र गणधर उसे नमन करते हैं। यहाँ आचार्य कहते हैं, इस प्रकार से मुझे भी नमन आ जाता है। कैसी बात करते हैं! समझ में आया ? वाह! तुझे करने का था, वह तूने किया, हों! वह कार्य तो तूने किया, हों और तुझे वही करने का था। आत्मा के आनन्द में दृष्टि करके अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में पड़ना, विषय के स्वाद इस प्रकार से छूट जाना, उसकी बलिहारी है। समझ में आया ? ऐसा तो कहते हैं कि मिला नहीं था। समझे न ?

जिनके सम्पदा मौजूद है, वे सब त्यागकर वीतराग के मारग को आराधें, वे तो सत्पुरुषों से सदा ही प्रशंसा के योग्य है,... हाँ, **त्यागकर वीतराग के मारग को आराधें,...** वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा को आराधे अर्थात् सेवन करे। अन्तर आत्मा को सेवन करे, आनन्द को सेवन करे, वे **सत्पुरुषों से सदा ही प्रशंसा के योग्य है, और जिसके कुछ भी तो सामग्री नहीं है,...** एक तो मिला नहीं। **परन्तु तृष्णा से दुःखी हो रहा है,...** फिर हुआ कि चलो त्यागें। समझ में आया? **जिसके कुछ भी तो सामग्री नहीं है, परन्तु तृष्णा से दुःखी हो रहा है,...** अभिलाषा तो यह हो... यह हो... गहरे-गहरे कितनी। **जिसके विषय तो विद्यमान नहीं हैं, तो भी उनका अभिलाषी है,...** देखो, अभिलाष है। **वह महानिंद्य है।** अन्दर में आनन्द की दृष्टि की रुचि नहीं, इसलिए अभिलाषा छूटी नहीं। वह फिर बाहर के नाम से, त्याग के नाम से वह सब इकट्ठा करना चाहता है। पैसा इकट्ठा करना, ऐसे इकट्ठा करना, इज्जत करना, लोगों को मानकर पुजाने का इकट्ठा करना कि इतने-इतने हमारे शिष्य हैं। ऐसा करके यह भी उसने विषय का पोषण किया। अन्दर में तो शान्ति नहीं मिलती। बाहर में इस जाति के साधनों में मुझे इतने-इतने साधन हैं, हमको इतने-इतने माननेवाले हैं। लो! त्याग के बहाने दूसरों पर छाप पाड़ी कि हम त्यागी हैं। हमको इतना दो, इतना देना पड़ेगा, तुम्हें हमारी सम्हाल रखनी चाहिए, ध्यान रखना चाहिए। वे ब्रह्मचारी कितने ही (कहते हैं), हम रेल में जायें तो किराया दो, यात्रा करनी है। ओहोहो! वह तो मानो हकदार हों वे!

कहते हैं कि मूल तो तड़पन राग की है। यह राग और द्वेष के अन्दर में एकाकार हुआ है। उसे वस्तु क्या है और क्या करना है, उसकी खबर नहीं। कहते हैं, उसकी क्या बात करना? वह तो महानिंद्य है। **चतुर्थ काल में तो इस क्षेत्र में देवों का आगमन था,...** अब जरा कहते हैं। चौथे काल में तो देव ऊपर से उतरते थे। देव उतरे। लोगों को देखकर ऐसा लगता था कि ओहो! ऐसा धर्म! यह सर्वज्ञ परमात्मा विराजमान हैं, उन्हें (वन्दन करने) देव आवें। विमान उतरे ऊपर से ऐसे। ओहो! उस समय तो ऐसा कहे धर्म के समझनेवाले थे। **उनको देखकर धर्म की रुचि होती थी,...** ऐसे विमान उतरे ऊपर से। हजारों अप्सरायें और लाखों-करोड़ों देव, उनके विमान। कहाँ जाते हैं? मुनि

के दर्शन करने। समवसरण में जाते हैं। ओहोहो! लोगों को ऐसा हो कि ओहो! ऐसी विद्यमान ऋद्धिवाले जिन्हें कुछ ऋद्धि नहीं, उनका आदर करने जाये, इसलिए निश्चित आत्मा की कोई शक्ति कोई बाहर की सामग्री से दूसरी है। ऐसी सामग्रीवाले—विद्यमान सामग्रीवाले जिनके पास सामग्री नहीं, (उनको वन्दन करते हैं) मुनि हों, वे ध्यान में बैठे हो, ऐसे। ऐसे ध्यान करते-करते एकदम मन:पर्यय (ज्ञान) हो गया, केवलज्ञान हो गया। देवों का आसन कम्पित हो गया। आस-पास के कोई व्यन्तरों के व्यन्तर आवे और महोत्सव करे, लो! ओहो! ऐसे देव! ऐसे मुनि! ऐसे बैठे थे। लकड़हारा था, उसने कल दीक्षा ली थी। केवलज्ञान प्राप्त हुए। उसका यहाँ महोत्सव करने आये हैं। ओहो! ऐसा देखकर कितने ही पात्र जीव धर्मरुचि करते थे, ऐसा कहते हैं। अभी है नहीं। तथापि धर्म की रुचि और दृष्टि करे, उसकी बलिहारी है, ऐसा कहते हैं।

नाना प्रकार की ऋद्धियों के धारी महामुनियों का अतिशय देखकर... लो! महामुनि। अतिशय ऐसा महा अतिशय हो। बाघ बैठे हों, उसके साथ बैठे हों तो बाघ छू सके नहीं ऐसे। ऐसे ध्यान में मस्त हों। बाघ के झुण्ड पड़े हों सैकड़ों-हजारों चारों ओर ऐसे। बाघ और सिंह। मुनि ध्यान में हो। उन्हें खबर भी न हो। दूसरे को खबर पड़े कि ओहोहा! कुछ चमत्कार लगता है! बाघ ऐसे देखे। वे बैठे हैं। ऐसे चमत्कारी मुनियों को देखकर लोगों को श्रद्धा प्रगट होने की योग्यता थी। कहो, समझ में आया? **तथा अन्य जीवों को अवधि, मन:पर्यय, केवलज्ञान की उत्पत्ति देखकर सम्यक्त्व की सिद्धि होती थी,...** सम्यक्त्व प्राप्त कर जाये। अरे! कल का लकड़हारा था न। उसे क्या? कहते हैं कि वह तो साधु होकर केवलज्ञान प्राप्त हुए। केवलज्ञान प्राप्त हुए। हें! आत्मा में उतर पड़े अन्दर भगवान चिदानन्द अखण्डानन्द में। केवल ज्योति प्रगट हुई। शरीर परम औदारिक हो गया देखो, शरीर हो गया। ओहोहो! फिर लोगों को रुचि के निमित्त ऊँचे थे। देखो!

जिनके चरणारविन्दों को बड़े-बड़े मुकुटधारी राजा नमस्कार करते थे, ऐसे बड़े-बड़े राजाओं कर... यह तो अभी राजा की बात चलती है। बड़े चक्रवर्ती हों, राजा हो, उनकी सेवा दूसरे राजा करते हों। ऐसे **भरत, सगर, राम, पाण्डवादि...** बड़े भरत

राजा जिन्हें बत्तीस हजार तो राजा सेवा करते हों। सोलह हजार देव। **सगर, राम...** महा पुरुषोत्तम पुरुष, लो! वे जहाँ भगवान को, मुनियों को वन्दन करने जाये, लोगों को ऐसा हो कि ओहोहो! कोई धर्म की कीमत लगती है, अलौकिक बात लगती है!

पाण्डवादि... पाण्डवादि महायोद्धा **अनेक चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण...** है न? **तथा मण्डलीक राजाओं को जिनधर्म में लीन देखकर भव्य जीवों को जिनधर्म की रुचि उपजती थी,...** लो! यहाँ तो जरा विशेष बताते हैं कि ऐसे साधन थे, तब तो धर्म की प्राप्ति के विश्वासी बहुत थे और प्राप्त करते थे। **तब परमात्मभावना के लिये विद्यमान विषयों का त्याग करते थे।** ऐसी रुचि आत्मा की करके, अपनी भावना एकाग्र के लिये संसार छोड़ देते थे। **और जब तक गृहस्थपने में रहते थे, तब तक दान-पूजादि शुभ क्रियायें करते थे,...** सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित, हों! **चार प्रकार के संघ की सेवा करते थे। इसलिए पहले समय में तो ज्ञानोत्पत्ति के अनेक कारण थे, ज्ञान उत्पन्न होने का अचम्भा नहीं था।** परन्तु वर्तमान में क्या है? यह बात थोड़ी करेंगे, बस।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आषाढ़ शुक्ल १२, शनिवार, दिनांक - १०-०७-१९६५
गाथा - १४१ - १४२, प्रवचन - १६६

यह परमात्मप्रकाश, १४१ गाथा। थोड़ा-सा बाकी है पीछे, देखो, यहाँ तो क्या कहते हैं? भाई! तू बहिर् परिणाम करके अनन्त काल से तो भटकता है। यह आत्मा शुद्धस्वरूप के परिणाम किये बिना पुण्य-पाप के और मिथ्यात्वभाव जो बाह्य लक्ष्य से होता है, ऐसे परिणाम करके तो अनन्त काल से तू भटकता है। **अब भी भ्रमण से नहीं थका, सो बहिर्मुख परिणाम करके कब तक भटकेगा?** भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञान और आनन्दस्वरूप, उसके परिणाम किये बिना यह बाहर के परिणाम करके कितना काल तुझे चौरासी में भटकना, दु:खी होना है?

अब तो... अब तो। गयी वह गयी, कहते हैं। **केवलज्ञान दर्शनरूप अपने शुद्धात्मा का अनुभव कर,...** हित करना हो, सुखी होना हो, श्रेय करना हो, स्वतन्त्र होना हो तो केवलज्ञान और केवलदर्शन (अर्थात्) अकेला ज्ञान और अकेला दर्शन ऐसा आत्मस्वभाव, उसका अनुभव कर, उसकी दृष्टि करके उसमें स्थिर हो। वही परिभ्रमण को मिटाने का एक उपाय है, दूसरा कोई उपाय है नहीं। कहो, समझ में आया? **निज भावों का सम्बन्ध कर।** तेरा स्वभाव ज्ञान और आनन्द, वह तेरा स्वभाव है। उस स्वभाव के साथ संगम—सम्बन्ध कर और राग तथा विकल्पों का सम्बन्ध तोड़ तो तुझे शान्ति मिलेगी, स्वतन्त्रता मिलेगी और सुख के रास्ते जाने से पूर्ण सुख प्राप्त होगा। कहो, समझ में आया इसमें?

घोर उपसर्ग और बाईस परीषहों की उत्पत्ति में भी... कर्म के निमित्त से प्रतिकूलता बहुत आवे बाहर की और परीषह भी आवे तो भी **सुमेरु के समान निश्चल जो आत्म-ध्यान उसको धारण कर,...** भगवान आत्मा को दृष्टि में लेकर, उसके वस्तु के स्वरूप को त्रिकाल को ज्ञान में ज्ञेय बनाकर स्थिर हो। वही उपाय आत्मा को सुखी होने का और मुक्ति का मार्ग है। **उसको धारण कर, उसके प्रभाव से...** प्रभाव लिखा है उसमें—

नये में? प्रसाद। कहीं प्रभाव कहते थे न और? प्रकाशित होगा। उसमें प्रमाद है। परन्तु प्रमाद नहीं, प्रसाद अपने किया था। प्रसाद (का), उसमें प्रभाव किया। जिसके प्रभाव से अथवा जिसके प्रसाद से अर्थात् कि शुद्धस्वरूप का दल चैतन्य की अन्तर में एकाग्र दृष्टि और स्थिरता करने से उसके प्रसाद से अथवा उसके प्रभाव से **निःसंशय मोक्ष पावेगा।** निःसन्देह तुझे मुक्त की दशा प्राप्त होगी। इसमें दूसरा कोई संशय को स्थान नहीं।

जो मोक्ष-पदार्थ... कैसा है? **अनन्त ज्ञान,...** स्वरूप है। जिसकी पर्याय में मोक्ष में अनन्त ज्ञान—केवलज्ञान है। **अनन्त दर्शन,...** केवलदर्शन है। **अनन्त सुख...** है। मोक्षपदार्थ अर्थात् मोक्षपर्याय। **अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन,...** अनन्त आनन्द और **अनन्त वीर्यादि अनन्त गुणों का ठिकाना है,...** मोक्ष की पर्याय अनन्त गुण की निर्मल पर्याय का वह स्थान है। ऐसे तो अनन्त गुण तो त्रिकाली द्रव्य में रहे हैं, परन्तु वे त्रिकाली द्रव्य में रहे होने पर भी उसका आश्रय करे नहीं, तब तक उसकी पर्याय में प्रगट अवस्था नहीं होती। समझ में आया? भगवान आत्मा अनन्त गुणों का स्थान है, परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि निर्वाण भी अनन्त गुण का स्थान है। जैसे अनन्त गुण स्वभाव में, स्वरूप में, उसके सत्त्व में, उसके ध्रुव में पड़े हैं; वैसी ही उनकी एकाग्रता पूर्ण होने पर, मोक्ष की पर्याय प्रगट होने पर अनन्त गुणों का स्थान, वह मोक्ष है। कहो, समझ में आया?

सो विषय के त्याग से अवश्य मोक्ष पावेगा। पर का लक्ष्य छोड़कर। विषय अर्थात् पर का लक्ष्य छोड़कर, पर का ध्येय विषय अर्थात् लक्ष्य छोड़कर, स्व चैतन्य के लक्ष्य को, ध्येय को पकड़कर एकाग्र होने से तुझे मुक्ति अवश्य होगी। कहो, समझ में आया इसमें? **विषय के त्याग से...** विषय शब्द से ऐसे जो ध्येय माना है, भगवान परमानन्द ज्ञायकस्वरूप पूर्ण शुद्ध को विषय में अर्थात् ध्येय में ले लिये बिना अकेला बाह्य का जो विषय ध्येय, शुभ-अशुभ परिणाम में परलक्ष्यी ध्येय होता है उसमें, उससे तो परिभ्रमण है, दुःख है और चार गति की प्राप्ति है। उसका परलक्ष्य छोड़, वह विषय छोड़ा कहलाता है। स्व भगवान आत्मा के विषय को बना, लक्ष्य को बना, उसे ध्येय को बनाकर, उसमें स्थिर हो, अवश्य तुझे मुक्ति मिलेगी। कहो, समझ में आया? बहुत

संक्षिप्त शब्दों में (मोक्ष को और उसके उपाय को वर्णन किया है)। परमात्मप्रकाश है न यह तो। लाख बात की बात चिदानन्दस्वरूप शुद्ध प्रभु का संगम कर, सम्बन्ध कर। यह सम्बन्ध छोड़। एक ही बात।

★ ★ ★

गाथा - १४२

अब १४२ में विशेष स्पष्ट करते हैं, देखो, **आगे निजस्वरूप का संसर्ग...** निजस्वरूप। स्व-रूप अपना अनन्त ज्ञान आदि शुद्ध। वह शुद्धात्मा, वह निजस्वरूप, उसका **संसर्ग तू मत छोड़,...** उसका परिचय तू न छोड़, उसका सम्बन्ध तू न छोड़, उसका संसर्ग तू न छोड़। आहाहा! समझ में आया? **निजस्वरूप ही उपादेय है, ऐसा ही बार-बार उपदेश करते हैं — 'पुनरपि संबोधयति'** है न? इसमें तो भाषा यह मुनि को लक्ष्यकर कहते हैं। हे गुरुवर! ऐसा शब्द कहते हैं।

२७३) इहु सिव-संगमु परिहरिवि गुरुवड कहिँ वि म जाहि।
जे सिव-संगमि लीण णवि दुक्खु सहंता वाहि॥१४२॥

देखो, '**गुरुवर**' गुरुवर कहा, देखा! आचार्य भी मुनि को (कहते हैं), हे गुरुवर! अर्थात् मुनि। **तपोधन...** तप जिसकी लक्ष्मी है तुझे। इच्छा के रोंधन से भगवान आत्मा में जो खजाना पड़ा है, उसे तूने खोला है। खोलकर तेरी पर्याय में अनन्त-अनन्त लक्ष्मी प्राप्त उतनी की है। **हे तपोधन... 'शिवसंगमं'** मुनि को लक्ष्यकर भी कहते हैं, हों! गृहस्थाश्रम को तो हो ही। शिव अर्थात् आत्मा, संगम अर्थात् उसका सम्बन्ध अर्थात् कल्याण। समझ में आया? '**शिवसंगमं**' शब्द पड़ा है। शिव अर्थात् भगवान आत्मा वस्तु पूर्ण प्रभु अनन्त-अनन्त गुण का सागर आत्मा, उसका संगम; संगम अर्थात् सम्बन्ध; सम्बन्ध अर्थात् कल्याण। उसे **छोड़कर तू कहीं भी मत जा,...** बहुत संक्षिप्त में। अन्तिम गाथायें हैं न यह तो अब। २२६ है। पीछे की आती है, बहुत सार-सार है।

हे भाई! हे मुनि! लो! मुनि को, हों! गुरुवर। अहो! तू गुरु हुआ न, मुनि हुआ न। मुनि, गुरुवर, और वर। तेरा स्वभाव जो शुद्ध अन्तर में है, उसका संसर्ग मत छोड़ना।

अर्थात् कि उसका सम्बन्ध नहीं छोड़ना, अर्थात् कि उसकी कल्याणपने की दशा प्रगट हुई, उसे मत छोड़ना। और विकल्प की जाल जो अकल्याण है, उसमें मत जाना, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? दिशा को मत बदलना। जो ध्येय है, उसमें जो तूने दशा को जोड़ा है, उस दशा को मत बदलना। ऐसी दशा को मत जोड़ देना। बाहर विषय में शुभाशुभ विकल्प कोई भी वहाँ उस दशा में मत जोड़ना। दिशा बदलने से दशा बदल जायेगी। भगवान आत्मा को जो दृष्टि में, ध्येय में लिया है, उस दिशा से, उस ध्येय से तेरी दशा कल्याणमय हुई है। आहाहा! उस दिशा को मत बदल। अर्थात् कि उस दिशा के ध्येय को मत बदल अर्थात् कल्याण को मत बदल। वर्तमान कल्याण जो प्रगट हुआ है ध्येय से, (उसे मत बदल)। आहाहा! कथन तो देखो, बाहर वन में रहे हुए सन्त ऐसे अकेली करुणा बहती है, हों!

अरे, भगवान! तू तो प्रभु है न भाई! प्रभुता की अनन्त शक्तियों का तो तू प्रभु स्वयं है। उसका जो संगम किया है, दिशा (बदलकर), ध्येय करके संगम किया और कल्याण प्रगट हुआ, उसे अब मत छोड़ना। लौकिक जाल में इसके लिए यह, इसके लिये यह, यह रहने देना अब, ऐसा कहते हैं। वाड़ा बनाये रखने के लिये और सम्प्रदाय बनाये रखने के लिये और संघ को बनाये रखने के लिये... आहाहा! ऐसा कहते हैं मूल। वह सब व्यवहार के विकल्प की जाल में मत जुड़ना। आहाहा!

मुनि काम इसलिए कर गये न, देखो पहले। कुछ पड़ी नहीं थी। एक शास्त्र लिखते थे, वह विकल्प आया था। लिखकर रखे कहीं पड़ा हो। उन्हें कुछ पड़ी नहीं। उन्हें घड़ीक में अप्रमत्त, घड़ीक में प्रमत्त विकल्प आवे। आवे ऐसे लिखे जरा ताड़ (पत्र) पर। रखकर चले जायें। उन्हें कहाँ पड़ी थी? उन्हें तो अन्तर में ध्येय को पकड़ा वहाँ ही बारम्बार झुकाव जाता है। वह कहाँ बाहर के सम्हालने जाये? पर्वत और पहाड़ और वे सब... आहाहा! वह तो महासन्त आत्मा का करके चले गये।

कहते हैं, भाई! **तू कहीं भी मत जा,...** हों! बात यह **तू कहीं भी मत जा,...** यह भगवान का संग छोड़कर पामर के संग में न जा। आहाहा! विकल्प है, वह तो पामर है, तुच्छ है, विकार है, जहर है। अमृत के सागर को पकड़ा, अब तू जहर में न जा, हों!

जो कोई अज्ञानी जीव निजभाव में... देखो, '**शिवसंगमं**' की व्याख्या। शिव अर्थात् भगवान आत्मा का संगम अर्थात् भाव निर्मल किया वह। पूर्ण शुद्धस्वरूप ध्रुव, ऐसा शिव अपना स्वरूप शाश्वत, उसका संगम किया अर्थात् जुड़ान किया अर्थात् भाव प्रगट हुआ। ऐसे निज भाव में **नहीं लीन होते हैं,...** ऐसे निज भाव में जो लीन नहीं होते, **वे सब दुःख को सहते हैं, ऐसा तू देख।** देख। तू यह देख। इस विकल्प के जाल में खदबदाहट में पड़े हैं, वे सब दुःखी होते हैं। समझ में आया? देखो न, पहले के महामुनियों को कुछ पड़ी थी? कुछ नहीं होता। वह तो एक विकल्प आया और कुछ और लिखा गया। कोई ऐसा शासन रहेगा या नहीं? इसके बाद उसका क्या होगा? कोई विकल्प आ गया, लो न, एक यह धरसेन मुनि को कि अरे! ऐसे... आ गया, छूट गया।

अपने ध्यान में मस्त, जंगल में सिंह की भाँति, बाघ की भाँति पड़े हों अन्दर। आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... बाहर में क्या होता है, क्या काम है तुझे? और बाहर के देखनेवाले को तू दुःखी देख, ऐसा कहा, देखो, है न? जो अन्तर में लीन नहीं होते, वे बाहर में जाये, उन सबको दुःखी देख। आहाहा! अब इसमें तकरार का कहाँ स्थान है? वाद-विवाद को कहाँ, बापू! तेरा भगवान तेरे पास पड़ा है। वह करवट बदला। ऐसी है दिशा, उसे ऐसा कर डाल, बस। उसमें तेरा कल्याण का पंथ खड़ा है। दूसरे को दुःखी देख अर्थात् तू न कर और दूसरे ऐसा करते हों, उन्हें दुःखी देख। विकल्प की जाल में पड़े हों, दुःखी देख। उससे बाहर में होना, न होना, वह तो कुछ विकल्प के कारण से होता नहीं। होता है? बाहर की अवस्था कहीं विकल्प से होती है वहाँ? वह तो वहाँ होने की हो तो होती है। आहाहा!

मुमुक्षु : बहु भाग होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई भाग नहीं होती। बहु भाग क्या हो? यह हमारे दलाल हैं। स्पष्ट करने के लिये (कहते हैं)। ऐसा कि विकल्प हो और बहु भाग बाहर व्यवस्था हो व्यवस्थित। नेमिचन्दभाई! वह राग है, भगवान! शुभ हो तो भी दुःख है। उस शुभराग से तू जाने कि यह मन्दिर हो जाये, यह व्यवस्था रह जाये, शिष्य हो, यह हो व्यवस्था, इस बात में दम नहीं है। कहो, ऐसा विकल्प कर तो दुःखी होगा। इससे पुस्तक बन

जायेगी, विकल्प किया, इसलिए पुस्तक बन जायेगी और बाहर में प्रभावना बढ़ जायेगी। शान्त हो,... शान्त हो। यह ऐसा कहते हैं। बाहर की अवस्था क्या तेरे विकल्प के आधीन है? वह तो होनेवाली हो, तब उसकी परमाणु की पर्याय उसके प्रवाह में परिवर्तन में आयी हो, तब होती है। छोड़ तू उसका लक्ष्य। ले इसमें बारम्बार लक्ष्य। देखो, पुनर् है न? बारम्बार उसे देख। वरना दूसरे को दुःखी देख। आहाहा! भगवान आत्मा में से हटे और बाहर प्रपंच में पड़े शुभाशुभभाव में, हों!

मुमुक्षु : शुभभाव में।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह शुभ, वह दुःख है। वहाँ कब सुख था? शुभ से क्या अन्दर में लाभ होता है? शुभ से क्या बाहर में दूसरे को लाभ होता है? बहुत सूक्ष्म बातें, बापू! आहाहा! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, उस भाव से आत्मा को लाभ है? वह तो राग है। उस भाव से जगत को लाभ है? है? सूक्ष्म बातें हैं, भाई! वह तो जो लाभ होने के योग्य जो हो, उसे वह वाणी आदि निमित्त पड़ती है। ऐसी बातें हैं, भाई! समझ में आया? उसके उपादान से उसे लाभ होगा न, तब वाणी को निमित्त कहा जाता है। उस वाणी से वास्तव में उसे लाभ हुआ नहीं। उस वाणी के कारणरूप से शुभभाव था पहला, और बन्धन हुआ तो उस शुभभाव से कहीं आत्मा को लाभ नहीं था। वह तो छोड़े तब वीतराग होगा। समझ में आया?

मार्ग भाई! यह स्व के लक्ष्य का मार्ग, ध्येय का मार्ग अलौकिक है और वीतराग के अतिरिक्त यह मार्ग कहीं तीन काल में हो नहीं सकता। वीतराग भी ऐसा कहते हैं कि तू मेरे सामने देखना छोड़ दे। आहाहा! यह वीतराग की वाणी में आवे। तू भी मेरे सामने देखना छोड़ दे। जहाँ तक मेरे सामने देखेगा, वहाँ तक विकल्प है। आहाहा! अरे! यह वह कहीं... मुख के सामने ग्रास किसे बुरा लगे? किसे अच्छा न लगे? सब ... पहला। खाने बैठे तो लड़के को फिर खिलावे, स्वयं पहले खाये। ... बैठाया बर्तन में। भाणुं अर्थात् वासण। तो पहले रोटी खाये, वह चबावे तब थोड़ी देर लगे तब लड़के को थोड़ा दे। वह देर लगे उसमें से। क्योंकि बड़ा ग्रास लिया हो इतना, उसे चावे वहाँ लड़का हो, उसे दे।

मुमुक्षु : देखा हुआ है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब देखा हुआ है। देखकर बात है। वापस देखकर— देखकर वापस देखा हुआ कि यह क्या होता है यह ? विचार किया हो या नहीं यह क्या है ? बड़ा ग्रास लिया हो, वहाँ चबाने में काम आवे, वहाँ थोड़ा उसको दे तो वह खाये। परन्तु मुझे तो ऐसा कहना है कि मुख के सामने पहला ग्रास यहाँ जाये, बाद में जाये। वीतराग कहते हैं कि मेरे सामने देखना छोड़ दे। यह तो दुनिया के भिन्न परन्तु परमेश्वर। आहाहा! मेरे सामने देखेगा, तब तक विकल्प है। अरे, कोई बात! तेरे सामने देख तो तुझे शान्ति और सुख मिलेगा। यह कहनेवाले एक वीतराग ही होते हैं। समझ में आया ? मुझे भूल तो भगवान होगा, यह भगवान कहे। आहाहा! मुझे भूल तो भगवान होगा। तेरी दृष्टि वहाँ जायेगी तो भगवान होगा। ऐसे रखेगा वहाँ तक भगवान नहीं होगा। समझ में आया ? यह वह मार्ग, वह मार्ग!

कहते हैं, उस दूसरे को तू, विकल्प में पड़े को दुःख में पड़ा देख, दुःख में पड़ा देख। आनन्द में पड़ा तो अन्तर में पड़ा, वह आनन्द में पड़ा। समझ में आया ? 'माही पड्य तू महा सुख माणे, देखनारा ते दाझे जोने।' दूसरे जले कि यह क्या कर बैठा है ? यह क्या किसी के सामने देखे नहीं, कुछ करे नहीं। लो! कर डाला। कुत्ते भी पेट तो भरते हैं। एक व्यक्ति कहता था। आचार्य नाम उपाध्याय नाम धराता था। मन्दिरमार्गी आया था वहाँ ९२ के वर्ष में। पेट तो कुत्ते भी भरते हैं। अपना करना हो तो कुत्ते भी करे, ऐसा। दूसरे का करना चाहिए। आहाहा! यह तुम क्या बोलते हो ? खतरगच्छ के थे कोई। क्या नाम कुछ ? हाँ वे। वे वहाँ आये थे हीराभाई के मकान में। मैं अकेला था और वे आये थे। शिक्षा देने लगे। क्या अकेले बैठकर आत्मा-आत्मा का करते हो। कुत्ते भी वह तो पेट भरते हैं अकेले। क्या कहते हो तुम यह ? कहा। कुत्ते पेट भरे और आत्मा का स्वयं काम करे, उसके साथ तुम तुलना करते हो ? क्या कहते हो तुम यह ? कुछ बेचारे समझे नहीं। साधु का वेश धारा। २० वर्ष तक मुँडाया। ऐसा कि कुत्ते भी पेट भरते हैं। अपना काम तो कुत्ते भी करते हैं, ऐसा। अपना काम कुत्ते करते हैं या अपना काम स्वयं करे, वही बादशाह है। दूसरे का कौन करता है ? आहाहा! अकेले बैठ गये

लो, ऐसे आत्मा के लिये। ऐसे बाहर प्रसिद्ध हों, ऐसा करें। ऐसा मारता था, बकवास मारता था।

भाई! बापू! धीर हो तो यह बात कहने जैसी है। बाहर से यह किसी का कर देना, उपदेश देना, मन्दिर ऐसे बनाना, पाठशाला बनाना। यह देखो न दिगम्बर मुनि ध्यान... यह सब शिखर में है। सम्मेदशिखर चले गये थे। कौन मुनि? जो पड़े वे तो अपने में पड़े थे। किसे खबर है वहाँ बाहर की? जो होना हो वह होगा। जिसका पुण्य हो, वह बाहर में अधिक हो जाये। पवित्रता हो, वह अन्दर में अधिक हो जाये। यह दो चीज़ें हैं। जिसका पुण्य हो, वह बाहर में अधिक हो जाये, जिसकी पवित्रता हो वह अन्दर में अधिक हो। यह दो चीज़ें हैं। अब इसमें करना क्या है इसे? आहाहा! भाई! (संवत्) १९९० में कहा था न रामजीभाई को। ९० के वर्ष में। नहीं वहाँ अपने सदर में। ऐसा कि यह सब राजाओं। कहा, देखो भाई! कोई भी राजा है, उसके सामने पड़ना, यह शास्त्र इनकार करता है। विरुद्ध... आती है न? ... नहीं आती? श्रावक का अतिचार नहीं आता है? राजा... शब्द हमारे यह आता है विरुद्ध... राजा ने जो कायदा बाँधा हो, उसका विरुद्ध धर्मी को नहीं करना। अपना काम कर लेना। यह शब्द आता है। सिद्धान्त है। दोष है यह। विरुद्ध नहीं करना। वे पुण्य में अधिक हो गये हैं। राजा पुण्य से अधिक हुआ है, इसलिए उसके सामने तू पड़ना नहीं। तुझे पवित्रता का काम करना है न? तो राजा ने कायदा बाँधा, उसके विरुद्ध करना नहीं। तेरा काम कर ले अन्दर में जाकर, बस। पुण्यवाला... तथापि कोई दोष लगे, वह अलग बात है। परन्तु वह करनेयोग्य, ऐसा स्थापित करे (तो) वह अतिचार है। करनेयोग्य स्थापित करे दोष को, वह वस्तु को समझता नहीं। बड़ी चर्चा चली थी। ऐसा राजा क्यों आया? राजा वह क्या चीज़? पुण्य के कारण आया है। बड़ा राजा किसका हुआ? संसार में पुण्य से अधिक से बड़ा। धर्म में पवित्रता से अधिक वह बड़ा। दोनों के सिद्धान्त लो। पण्डितजी! कहा ऐसा नहीं। फिर रामजीभाई को कहा था तब। मैंने कहा यह क्या?

फिर तो उन भगवानजीभाई से कहा नहीं था? नहीं, ऐसा नहीं होता। न हो तो तुम, कहा, नौकर को—बनिया को किसलिए रखते हो? बनिया दशाश्रीमाली है, उसे

वेतन दो पच्चीस और तुमने लाखों रुपये रखे हैं। पुण्य में तुम अधिक हो, इसलिए बड़े हो। तुम ऐसा कहो, जो गुण में बड़ा, वह राज्य में बड़ा। ऐसा नहीं हो सकता। गुण में बड़ा वह गुरु, पुण्य में बड़ा वह राजा। यह दो तत्त्व हैं। जिसे जो तत्त्व है, उसे उस प्रकार से अधिकरूप से जान लेना। हट जाना। अतिशय दोष लगाना नहीं, ऐसा आचार्य कहते हैं। समझ में आया? ऐई!

एक व्यक्ति ने कहा था। (संवत्) १९८३ के वर्ष में, बहुत हमारे थे न। महाराज! तुम ऐसा कहते हो, तो कोई ऐसा आ जाये कि सौ घर का गाँव हो और एक आया मीयाडो। कठोर। मीयाडो समझे? डाकू। तो फिर डाकू के सामने नहीं पड़ना? मैंने कहा तुम क्या भावना भाते हो यह? क्या करते हो यह? तुम्हारे अभी तो छोटे गाँव में जन्मना है और डाकू आवे और धाड़ पाड़े (डाका डाले) और सामने विरोध करना, ऐसे विकार की भावना, क्या करते हो तुम यह? वीतराग त्रिलोकनाथ कहते हैं कि धर्मी जीव को राज के विरुद्ध नहीं करना। ऐसा सिद्धान्त है उसमें। वह पुण्य से अधिक है। भले नरक में जाये। उसके साथ यहाँ क्या सम्बन्ध है? परन्तु पुण्य में अधिक है, उसे इस प्रकार से जानना। विरोध करना नहीं। समझ में आया? यह विरुद्ध रज्झाई... एक-एक अतिचारों में आदि वस्तु में पूरे नियम भरे हैं। शास्त्रों में... तुझे पवित्रता करनी है न? तू धर्मी है न? तो आत्मा की ओर झुकाव कर ले। बस, बाहर में हो तो इस प्रकार का काम राजा की आज्ञा समझ ले न। वहाँ तू सामने पड़ने जायेगा तो उसके पुण्य की अधिकता है तो विरुद्ध होगा। उसके पुण्यतत्त्व की अधिकता को भी तूने जाना नहीं। ऐसी बात है, भाई!

दामोदर सेठ ने बहुत कहा (संवत्) १९८३ में। ऐसा होवे तो? क्या सेठ यह भावना भाते हो? ऐसा जीव? तुम्हारे तो अभी गाँव में जन्मना है और सामने एक डाकू आवे और वह क्या चौपाल कहलाये न? चौपाल में डाले खाट तो उसके सामने नहीं पड़ना। परन्तु तुम क्या कहते हो? विकार करना, अभी भविष्य में भी विकार करना, ऐसी भावना तुम्हारी है?

यहाँ तो वीतराग कहते हैं कि यदि पुण्य का अधिक कोई जीव आया। बस,

उसके समझ लेना तू। हट जाना। आत्मा में उतरना। तेरा काम यह है, तेरा काम सामने पड़ने का नहीं। और तो भी कहीं सामने पड़ने का हो जाये तो वह दोष है। उसकी भावना होती नहीं। भावना नहीं होती कि हम ऐसा करेंगे... ऐसा करेंगे... ऐसा करेंगे। हो गया, यह तो पूरा संसार खड़ा किया तूने। समझ में आया? बात यह है। वीतरागमार्ग का स्वरूप ऐसा है। पुण्य से अधिक... कहा ... पहले तुम पुण्य से अधिक हो, इसलिए तुमको नौकर रखा दशाश्रीमाली। बनिया था कोई उसका रसोईया। यह रसोईया को कैसे रखा? बड़े को न मानो। तुमको यह बड़ा मानता है। पुण्य में बड़ा है इसलिए। ऐसा नहीं चलता। जैसे माँ-बाप को तुम बड़ा मानते हो तो गुण से बड़े हों तो मानो, ऐसा भी नहीं चलता। माँ-बाप स्वयं हुए, वे पुण्य से अधिक हैं। गुण से अधिक हों तो माँ-बाप, ऐसा नहीं। गुण से अधिक हो तो उन्हें माँ-बाप मानूँ, ऐसा नहीं होता। वहाँ तो पहले बड़ेरूप से आये और तू जन्मा है, वहाँ तो पुण्य से अधिक हैं। लौकिकरूप से तुझे जानना पड़ेगा। धर्म में गुरु, धर्म वह गुण से अधिक, वह अधिक पवित्र। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, देखो। विकल्प में पड़े हुए को दुःखी देख। सामने पड़ नहीं। तेरा काम नहीं। समझ में आया? न्याय से इसे जरा विचार करना पड़ेगा या नहीं? ऐसा नहीं। यह तो महामार्ग वीतराग का है। उसे एक-एक जो आज्ञा में जो वस्तु का स्वरूप बताया है, उसमें पूरे तत्त्वों के सिद्धान्त भरे हैं। समझ में आया? ऐसा नहीं। बापू! पाँचवें गुणस्थान में रहा हुआ श्रावक है और तेरे कोई ऐसे संयोग में उतरा तू पुण्य से अधिक राज में। बस, यह समझ लेना। विरोध करना नहीं। विरोध करने जायेगा तो सब चूक जायेगा। ऐसा भगवान ने कहा है। अतिचार नहीं करना, ऐसा नहीं करना। फिर हो जाये, वह अलग बात है और अतिचार करनेयोग्य है, ऐसा करनेयोग्य है, वह तो भावना है उसकी अन्दर की। समझ में आया? मार्ग ऐसा है, भाई!

निवृत्तस्वरूप का मार्ग ही विकल्प से रहित होना, वह तेरा मार्ग है। समझ में आया? देखो न, मुनि को कहते हैं कि भाई! लप में पड़ना नहीं। इतने साधु बनाना है और इतने शिष्य बनाना है, इतनी पुस्तकें बनाना है। वह तो आ गया विकल्प, परन्तु वह है दुःखदायक। तू जाने कि विकल्प आया, इसलिए मुझे सुखदायक है अथवा विकल्प

आया, इसलिए दूसरे को सुखदायक होगा, ऐसा न जान। देखो, ऐसा कहते हैं। उसे सुखदायक होगा दूसरे को? ऐसा कि हमारा यह निमित्त मिलेगा न, परन्तु निमित्त उसे अपना उपादान तैयार होगा तो इसे निमित्त कहा जायेगा। आहाहा!

वीतरागमार्ग ऐसा है। तीन काल में न भूतो, न भविष्यति, ऐसा यह पवित्र मार्ग है। यह अन्यत्र कहीं हो सकता ही नहीं। देखो, यहाँ वीतरागी मुनि को कहते हैं, हों! एक मुनि (दूसरे) मुनि को कहते हैं। विकल्प में पड़े, उसे दुःख देख। महाराज! हमारे शिष्य बनाना नहीं? अब आ गया तो आ गया विकल्प, परन्तु अब तू ऐसा मान कि यह हमारे करना ही पड़े, हमारे करना ही पड़े, ऐसा नहीं होता। राग का विकल्प कर्तृत्व तो न हो, परन्तु आवे वह ठीक है, यह भी नहीं होता। समझ में आया? विकल्प का कर्तृत्व, वह तो मिथ्यादृष्टि है, परन्तु आवे वह ठीक है, ऐसा भी नहीं होता। दो बातें। आवे, होवे, वह अलग बात है। परन्तु वह ठीक है, ऐसा यदि जायेगा तो तेरी दिशा बदल जायेगी। समझ में आया? मुनि को कहते हैं, ऐई! देवानुप्रिया! आहाहा!

भावार्थ :- यह आत्म-कल्याण, प्रत्यक्ष में संसार-सागर के तैरने का उपाय है,... भगवान आत्मा शिव उसका संगम अर्थात् कल्याण। वह आत्मा शिवस्वरूप प्रभु, उसकी दृष्टि, उसका ज्ञान, उसे ज्ञेय बनाकर उसमें स्थिरता। बस! यही कल्याण और यही **प्रत्यक्ष में संसार-सागर के...** उदय से हट जाने का यही उपाय है, दूसरा कोई उपाय नहीं। उदय पूरा संसार है। यह तो निमित्त संसार है, द्रव्य, क्षेत्र, काल, और भव। भाव जो है न, वह संसार है। उदय का भाव, वह संसार, अशुद्ध भाव है। उसे उस स्वभाव के संगम के कल्याण द्वारा तिरा जा सकता है। समझ में आया? ऐसा मार्ग सूक्ष्म पड़ता है न लोगों को कितनों को, इसलिए फिर यह वस्तु कैसी है, ऐसी बैठती नहीं, फिर अन्यत्र चढ़ जाते हैं।

मुमुक्षु : मार्ग ही एक है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : मार्ग ही यह एक है। 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पंथ।' दूसरा पंथ, दो प्रकार से हो सकता ही नहीं।

देखो, **यह आत्म-कल्याण, प्रत्यक्ष में संसार-सागर के तैरने का उपाय है,**

उसको छोड़कर हे तपोधन! तू शुद्धात्मा की भावना के शत्रु... भगवान शुद्धस्वरूप की भावना अर्थात् एकाग्रता अर्थात् कि निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के वैरी जो मिथ्यात्व और रागादि हैं। रागादि में ठीक मानना, वह मिथ्यात्व और राग स्वयं अस्थिरता, वह दोष। मिथ्यात्व और रागादि दोनों आ गये। वे शत्रु हैं। स्वभाव की दृष्टि के और स्वभाव की स्थिरता के वे शत्रु हैं। यहाँ ठीकरूप से जहाँ दृष्टि की, उसे राग में ठीकरूप से करे, तब तो मिथ्यात्व शत्रु है वह तो। यहाँ स्थिरता की भावना है, वहाँ अस्थिरता करे, वह तो अस्थिरता शत्रु है। समझ में आया? भाई! यह तो मार्ग ऐसा है। जिसे कल्याण करना हो और दुःख टालना हो, उसे बहुत ही धीरज से इस मार्ग को पकड़ना चाहिए। ज्ञान में उसका भासन, भासन होना चाहिए। भाव भासित हो। ऐसे के ऐसे किया करे। ऐसा हो, ऐसा हो, ऐसा हो, ऐसा नहीं चलता।

यहाँ तो आचार्य कहते हैं कि भाई! तू मिथ्यात्व, रागादि शत्रु है आत्मा की भावना के। भगवान आत्मा की भावना में सम्यग्दर्शन आया, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र आया। उससे वैरी जो मिथ्यादर्शन—राग को ठीक मानना, राग से कुछ मेरा ठीक होगा और दूसरे का ठीक होगा, यह मिथ्यात्व है। उसमें नहीं आता? श्लोक आता है न? बोहिलाभ, नहीं? पण्डितजी! मुझे यह होओ, यह होओ। आता है न श्लोक? मुझे बोधि मिलो, ऐसा एक श्लोक आता है। एक शब्द आता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह, यह। पण्डितजी ने कहा यह। कर्म क्षय हो। समाधिमरण, बोहि लाहो... ऐसा का ऐसा रहो दर्शन-ज्ञान-चारित्र की, यह शब्द। आरोग्ग बोहिलाभ तो लोगस्स में आता है। यह तो उसमें भी लोगस्स आता है अपने दिगम्बर में। आरोग्गबोहिलाभं आता है। लोगस्स आता है न? चौबीस तीर्थंकर की स्तुति आती है सामायिक में। वह इसमें आती है। तुम्हारे यहाँ ... नहीं अपने। यह लोगस्स आता है। पाठ। उसमें आता है आरोग्गबोहिलाभं। मेरा निरोगता का आत्मस्वभाव, उसका बोधिलाभ मुझे प्राप्त होओ। उन लोगों में प्रचार बहुत है श्वेताम्बर में इस शब्द का। उसमें अपने दिगम्बर में है, यह सामायिक पाठ। अमितगति का नहीं, दूसरा एक पाठ है। यहाँ है

पाठ, ऊपर है। पुण्य-पाप का भाव वह रोग है। कहते हैं कि हे प्रभु! मुझे आरोग्यता चाहिए है। मुझे तो विकल्परहित आरोग्यता का बोधिलाभ, दर्शन-ज्ञान-चारित्र का लाभ और वापस ऐसा का ऐसा सन्धि करके जहाँ जाऊँ, वहाँ वह लेकर जाऊँ, ऐसा लाभ मुझे चाहिए है। वहाँ भी उसकी प्राप्ति रहा करे। एकाध भव है सही न, ऐसा कि पंचम काल में (हैं, इसलिए)। वहाँ यह बात सन्धि में सम्यग्दर्शन-ज्ञान रहा करे वहाँ। यह बात चाहिए प्रभु! मुझे, दूसरी कुछ चाहिए नहीं। समझ में आया?

उनमें कभी गमन मत कर,... उस रास्ते न जा। वह रास्ता छोड़ दे, ऐसा कहते हैं। ... पड़े तो उसकी निर्बलता के कारण से, उसका उत्साह नहीं होता।

मुमुक्षु : बचाव तो हो न।

पूज्य गुरुदेवश्री : बचाव नहीं होता। तब तो बचाव हुआ कि यह तो करना पड़े हमारे, करना पड़े हमारे। क्या करे? किसका उत्साह करता है? आवे, वह अलग बात है, परन्तु आवे उसका उत्साह हो तो उसकी मिठास होगी। निश्चय के साधन में जब तक पूर्ण न हो, तब व्यवहार के विकल्प आवें सही, होवे सही। उत्साह किसका? उत्साह किसका? उत्साह किसका? उत्साह तो इस ओर हो या उत्साह वहाँ हो?

मुमुक्षु : उसका माहात्म्य छूटना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : छूटना चाहिए। उसका यहाँ माहात्म्य आया, वहाँ यहाँ माहात्म्य कैसे रहेगा? आवे सही, होवे तो सही और व्यवहार से उसका माहात्म्य है, ऐसा भी कहा जाये। परमार्थ से उसका माहात्म्य नहीं होता। ... माहात्म्य कहलाता है, परन्तु परमार्थ की दृष्टि से उसका माहात्म्य नहीं कहते। देखो, कहते हैं न। **कभी गमन मत कर,...** अकेले अशुभ की बात नहीं, शुभ परिणाम में भी मत कर, वह आत्मा की स्थिरता के वैरी हैं। समझ में आया?

केवल आत्मस्वरूप में मगन रह। लो! **केवल आत्मस्वरूप...** भगवान आत्मा ज्ञान का प्रभु, ज्ञान, दर्शन, आनन्द का उसका स्वरूप, ऐसा जो आत्मस्वरूप उसमें मग्न रहे। उसमें गमन था, यहाँ मगन। एक शब्द बदला थोड़ा। गमन-मगन। कहो, समझ में आया? यहाँ म पहले आया, उसमें ग पहले आया। **केवल आत्मस्वरूप...** अकेला

भगवान आत्मा, उसकी प्रीति और रुचि अकेली ही कर बस। उसमें स्थिर होना, वही तेरा मार्ग है। वे कहे, अरेरे! उसमें व्यवहार उत्थापित हो जाता है। परन्तु भाई! व्यवहार उत्थापित का अर्थ कि स्वभाव में वह नहीं। उसका आश्रय लेने जाये, वहाँ विकल्प उठते हैं और दुःख होता है। हो भले परन्तु उसका (उत्साह नहीं होता कि) होना चाहिए, वहाँ करना चाहिए। वहाँ न करे तो ऐसा होगा, ऐसा नहीं होता। होवे सही। ऐसी भूमिका के योग्य विकल्प हो। देखो न, छठवें गुणस्थान में मुनियों को विकल्प उनके योग्य हो अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प। तथापि वहाँ गमन न कर, मगन यहाँ हो जा। समझ में आया?

जो कोई अज्ञानी विषय-कषाय के वश होकर... विषय-कषाय अर्थात् पर के ध्येय में, कषाय बनाकर पर के ध्येय में लीन हो जाता है। **शिवसंगम...** शिव अर्थात् निरूपद्रव भगवान का सम्बन्ध अर्थात् कल्याणभाव, निजभाव **लीन नहीं रहते,...** ऐसे भाव में लीन हो जाये और इस भाव में **लीन नहीं रहते, उनको व्याकुलतारूप दुःख भव-वन में सहता देख।** ओहोहो! अरे! उसे भव मिलेगा। एक व्यक्ति कहे, हमारे दुनिया के लिये भले एक भव बढ़े, परन्तु हमारे दुनिया का कल्याण करना है। मूढ़ है। भव बढ़े, उसका अर्थ कि भव के कारणों का प्रेम तुझे रुचि (है तो) तुझे दृष्टि मिथ्यात्व है। भले एकाध भव बढ़ जाये, परन्तु मुझसे यदि दुनिया का कल्याण होता हो तो मेरे भले भव बढ़े। मूर्ख है। तुझसे कल्याण हो, ऐसा कभी बनेगा नहीं। निमित्त भी तुझमें नहीं रहे। भव की भावना अभी एकाध भव, ऐसा लोग बहुत बोलते हैं। इसलिए लोगों को बहुत अच्छा लगे। इसे कितनी करुणा है! भले भाई! मुझे एक अधिक ढेढ का भव हो, हरिजन का भव हो, फलाने का भव हो। परन्तु यदि मुझसे दुनिया का हित होता हो (तो वह मंजूर है)। वह अज्ञानी मूढ़ है। वह भव के भाव की विकल्प की भावनावाला है। वह भव के अभाव-स्वभाव की भावनावाला नहीं। लोगों को भी मीठा बहुत लगे, लो! तुम्हारे लिये एकाध भव मुझे करना पड़े तो भले मैं करूँ। सभा को ऐसा लगे कि आहाहा! भिखारी तो है सभा। इसलिए उसे ऐसा कहते हैं कि आहाहा! अपने को सहारा मिलेगा, हों! भव करके। सहारा नहीं मिले, उसे अवतार ही... तीर्थंकरपने का विकल्प था तो ऐसा नहीं था कि मैं एक भव करूँ और दुनिया का कल्याण करूँ। ऐसा

था ही नहीं, ऐसा होता ही नहीं। विकल्प आया कि पूर्ण होऊँ। पुण्य बँध गया। परन्तु है तो हेयबुद्धि से विकल्प। उस समय हेयबुद्धि से है, आदरबुद्धि से नहीं। आदर किसका हो? अन्तर में आनन्द में आदर है, वहाँ यह आदर कहाँ से होगा? समझ में आया?

इसलिए कहा न बनारसीदास ने कि जितने मिथ्यात्वभाव, उतने व्यवहारभाव केवली उकत है। ऐसा कहा। अध्यवसाय नहीं? अखिलं। बन्ध अधिकार का श्लोक है। अध्यवसाय अखिलं ... त्याज्य—यदुक्तं। तो हम ऐसा मानते हैं कि भगवान ने पराश्रित समस्त व्यवहार छुड़ाया है। वह श्लोक है न बन्ध अधिकार में। डाला है। और यह भाई ने ऐसा ही अर्थ फिर उसका किया। बन्ध का। उसमें अन्तर पड़ा था न उन लोगों को फिर तो।

असंख्यात लोकप्रमाण जो मिथ्यात्वभाव, ते ही व्यवहारभाव केवली उकत है। कठिन पड़े, देखो।

जिन्हकौ मिथ्यात गयौ सम्यक् दरस भयौ, ते नियत-लीन विवहारसौं मुकत है।
निविकलप निरुपाधि आतम समाधि, साधि जे सुगुन मोख पंथकौ ढुकत है।
तेई जीव परम दसामैं थिररूप ह्वैकै, धरममैं धुके न करमसौं रुकत हैं।

सर्वत्राध्यवसानमेवमखिलं त्याज्यं यदुक्तं जिनै-
स्तन्मन्ये व्यवहार एव निखिलोऽप्यन्याश्रयस्त्याजितः।
सम्यग्ङ्निश्चयमेकमेव तदमी निष्कम्पाक्रम्य किं
शुद्धज्ञानघने महिम्नि न निजे बध्नन्ति संतो धृतिम्॥१७३॥

यहाँ तो धड़ाका बुलाया है। असंख्यात लोकप्रमाण मिथ्यात्व, वह व्यवहारभाव केवली उकत है। इसका अर्थ कि जितना व्यवहार में आया और उसका उत्साह किया, उतना मिथ्यात्वभाव है। यह बात कठोर पड़ गयी है। उस समय श्वेताम्बर में एक दिग्विजय हो गये न। इसका बहुत विरोध लिखा था। पुस्तक बनायी है। किस अपेक्षा से कहते हैं यहाँ? समझ में आया?

भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप की भावना छोड़कर, उसकी रुचि छोड़कर और व्यवहार की रुचि का उत्साह और प्रेम आता है, जितने व्यवहारभाव, उतने मिथ्यात्वभाव

भगवान कहते हैं। ऐसा कहा है। इस अपेक्षा से, हों! अकेला व्यवहारभाव मिथ्यात्वभाव नहीं। व्यवहार तो मुनि को भी होता है, परन्तु व्यवहार में उत्साह... आहाहा! उससे लाभ होगा। जितने व्यवहार के भाव, उतना लाभ होगा, उतने भाव सब मिथ्यात्वभाव हैं। सख्त लिखा है सख्त। समझ में आया?

कहते हैं, **दुःख भव-वन में सहता देख।** ओहो! व्याकुलतारूप दुःख भव-वन में सहता देख। ऐसा भगवान आत्मा अपने संग को छोड़कर विकल्प में जाता है, (उसे) दुःखी देख। आहाहा! **भव-वन में सहता देख।** वह तो भव मिलेगा उसमें से तो। विकल्प है, वह तो भव स्वयं ही उदयभाव है। उस भव का कारण वह स्वयं ही भव है। भगवान आत्मा भवरहित स्वभाव की ही भावना दृष्टि, ज्ञान और चारित्र, वही भव के अभाव का कारण है। अबन्ध परिणाम, वह अबन्ध मोक्षदशा का कारण है। यह तो बन्ध परिणाम है विकल्प। समझ में आया? **भव-वन में सहता देख।** इसका अर्थ कि तू विकल्प में न जा, ऐसा। पर को कहाँ देखने की बात है?

भगवान आत्मा अपने स्वरूप में स्थिर नहीं रह सके और विकल्प आवे, वह कमजोरी के कारण से है। परन्तु आवे वह दिशा पर के लक्ष्य से आया, इसलिए ठीक है, ऐसा नहीं। वह दुःखदायक है। ठीक न माने तो (भी) वह दुःखदायक है। विकल्प आया, वह दुःखदायक है। अतीन्द्रिय आनन्द की लूट होकर खड़ा हुआ है। **संसारी जीव सभी व्याकुल है,...** वे सब संसारी व्याकुल हैं। मुनि हुए पंच महाव्रतधारी, परन्तु जिसे राग में एकता है, वे सब संसारी व्याकुलता में पड़े हैं। उन्हें संसारी कहा है न? वे सब व्याकुल हैं, **दुःखरूप हैं, कोई सुखी नहीं है,...** कोई सुखी नहीं? ऐई! देवानुप्रिया! कोई सुखी नहीं। ऐसा कि उसे शरीर अच्छा, उसे पुत्र अच्छे। वह सुखी नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। वह दुःख है।

मुमुक्षु : बाहर में दुःख नहीं, ऐसा।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह स्वयं कल्पना करके बैठा है, वह दुःख है। उस जाति का।

ऐसा नहीं। उसका शरीर ठीक है, इसलिए सुखी ऐसी जो कल्पना है न उसकी, वही उसे दुःख है। उसे दुःखी देख। पुत्र अच्छे, इसलिए कल्पना आयी, वह स्वयं उस कल्पना से दुःखी है। दुःख ही है उसे, ऐसा देख।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बस, वह यदि हो तो ऐसा माने तो दूसरे को ऐसा अधिक है, मुझे कम है, यह बात उसे न रहे। मोहनभाई! आहाहा! वह न देखे कि यह केवलज्ञानी को परमात्मा को पूरा प्रगट हुआ है, मुझे पूरा नहीं, ऐसा देख न। जिन्हें पूर्णानन्द प्रगट हुआ, आहाहा! ढ़ेर पका है जिन्हें। क्षेत्र असंख्य प्रदेश में अनन्त गुणा पाक आकर पक गया पर्याय में। उनका क्षेत्र पका, उसे देख न! तेरा क्षेत्र थोड़ा पका, ऐसा देख न, अधिक करना चाह न। ऐसा कहाँ देखता है कि यह पैसेवाला बढ़ गया, इसे स्त्री-पुत्र अच्छे, उसे सब आज्ञाकारी मिले। मुझे स्त्री-पुत्र मिले सही, परन्तु कोई ऐसे व्यवस्थित नहीं। मलूकचन्दभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु इसके लिये तो कहते हैं कि, भाई! तेरी आँख को-दृष्टि को बदल डाल। यह सुविधा देखकर तू सुखी है, ऐसा न मान। उसे विकल्प आये हैं, वह दुःखी है, ऐसा तू देख। आहाहा! साधन की हीनाधिकता की शैली न देख। साधु को भी ऐसा कि देखो, ओहोहो! सैंकड़ों शिष्य, खम्मा-खम्मा हो और उनकी व्याख्यान की शैली में लाखों मनुष्य ऐसे सामने देखे। उसे न देख। वह तो बाहर की चीज़ है। उसे न देख। वह तो बाहर की बात है। वह अधिकता नहीं। उसमें रागरहित जितनी दृष्टि करके स्थिर हुआ, उसे देख। समझ में आया? बहुतों को ऐसा हो जाता है कि आहाहा! सभा में बैठे हों, ऐसी व्याख्यान शैली चले, लोग ऐसे नजर करेंगे। क्या है परन्तु? सुन न! यह विकल्प उठा, उतना तो दुःख है। उपदेश में जितना विकल्प उठा, उतना दुःख है। आहाहा! तुझे क्या चाहिए है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु पाँच हजार हो, उसमें आत्मा को क्या? वह यहाँ कहते

हैं उसे क्या? जितना परलक्ष्यी विकल्प उठा है, उतना दुःख है। ऐसा तू उसे देख। ऐसा न देख कि ऐसे हम ऐसे और उसको ऐसा। यह न देख। वह तो बाहर की चीज़ है, उसके साथ क्या सम्बन्ध है? समझ में आया? आहाहा! कहो, राजमलजी! यह वकालत है, देखो, यह भगवान की। कितने वर्ष में पास हुए वकील का, मेहनत करी तब। लोग माने।

कहते हैं कि विकल्प विकल्प है, वह हम पास हुए, हम यह हुए, वह विकल्प स्वयं दुःख है। बड़ी पदवी मिली, इसलिए सुखी, ऐसा न देख। एल.एल.बी. हुए, एक महीने में इतनी आमदनी की, ऐसा न देख। उसे परलक्ष्यी विकल्प उठता है, वे सब दुःखी हैं, ऐसा देख। दिशा दृष्टि बदल डाल। देखने की दृष्टि को बदल डाल। ऐसा कहते हैं न यहाँ? आहाहा! भाई! यह तो संसारमार्ग और मोक्षमार्ग तो दोनों जाति ही अलग हो न। ... दोनों विपक्ष। दोनों विपक्ष हैं। दोनों की जाति ही अलग, बापू! आहाहा! संसार और मोक्ष के मार्ग ही दोनों पूरे उल्टे हैं।

आचार्य ने जंगल में रहकर कितनी मस्ती की है अन्दर में! दूसरे को कहते हैं, अरे! विकल्पवाले को दुःखी देख। ऐसा न देख कि आहाहा! कितने शिष्य हो गये इसे! कितने माननेवाले हो गये! यह प्ररूपणा हो तो बहुत माने। प्ररूपणा बिना कौन माने? ऐसा न देख। माने, न माने, परन्तु तुझे क्या? कोई माने, वह तो उसके भाव को माने। तुझे मानता है? वह तो उसे जो सुहाता है, उसे वह मानता है। तुझे कौन मानता है? तेरी बात में ही अन्तर है। रहने दे ऐसी दृष्टि से देखना, ऐसा यहाँ कहते हैं। कहो, पाटनीजी! आहाहा! भाई! वस्तु तो जैसी हो, वैसी रहेगी। वह कहीं दुनिया की कल्पना से दूसरी खड़ी होगी?

एक शिवपद ही परम आनन्द का धाम है। देखो, आहाहा! भगवान आत्मा पूर्णानन्द प्रभु वर्तमान उसका संगम, उतना हित और उसकी पूर्ण प्राप्ति हुई, वह परम आनन्दधाम मोक्ष। **जो अपने स्वभाव में निश्चयनयकर ठहरनेवाला केवलज्ञानादि अनन्त गुण सहित परमात्मा, उसी का नाम शिव है,...** व्याख्या की। शिव अर्थात् दूसरा कोई नहीं। जगत का कर्ता और कोई था अनादि से शिव—ऐसा नहीं। अनादि से सिद्ध है,

हों! ऐसा नहीं कि सिद्ध... और उसने कल तर्क किया है, लो! अनादि से कोई सिद्ध नहीं होता। सिद्ध पहले ही हो, संसार, बाद में होता है। यह तो एक व्यक्ति की अपेक्षा से (बात है)। अरे भगवान! तुझे खबर नहीं, भाई! अनन्त ऐसे के ऐसे पड़े हैं। अनन्त सिद्ध, अनन्त निगोद जैसे हैं, वैसे हैं। समझ में आया? वह नहीं, शिव तो यह।

अपने स्वभाव में निश्चयनयकर ठहरनेवाला... रहनेवाला। मुनि है न। **केवलज्ञानादि अनन्त गुण सहित परमात्मा उसी का नाम शिव है, ऐसा सब जगह जानना।** शिव का अर्थ ऐसा करना, ऐसा। भगवान आत्मा पूर्ण शुद्धस्वरूप निरुपद्रव कल्याण की मूर्ति, वह शिव है। उसका सम्बन्ध किया है, वह कल्याण का कारण है। जितना इस संसार का सम्बन्ध किया विकल्प, वह सब दुःखरूप है। समझ में आया? **अथवा निर्वाण का नाम शिव है,...** यही बात ली है। या द्रव्य का ही नाम शिव और या परमानन्द की प्राप्ति पूर्ण पर्याय का नाम शिव। **अन्य कोई शिव नाम का पदार्थ नहीं है,...** दूसरा कोई शिव नाम का पदार्थ नहीं। **जैसा कि नैयायिक वैशेषिकों ने जगत का कर्ता-हर्ता कोई शिव माना है, ऐसा तू मत जान।** है ही नहीं। स्वभाव है, उसमें सब स्वभाव पड़े हैं (उसे) करे कौन और कौन करे? स्वभाव-स्वभाव। स्वभाव को करना क्या और स्वभाव को छोड़ना क्या?

तू अपने स्वरूप को... अर्थात् द्रव्यदृष्टि **अथवा केवलज्ञानियों को...** पर्याय को **अथवा मोक्षपद को शिव समझ। यही श्री वीतरागदेव की आज्ञा है।** लो! समझ में आया? भगवान सर्वज्ञ परमात्मा ने ऐसा देखा है और इस प्रकार से ही है, ऐसी अन्तर दृष्टि करके अन्दर में स्थिर होनेयोग्य है। विकल्प है, वह दुःखरूप है, ऐसा निर्णय करके अन्तर में स्थिर होनेयोग्य है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आषाढ़ शुक्ल १३, रविवार, दिनांक - ११-०७-१९६५
गाथा - १४३, प्रवचन - १६७

गाथा - १४३

परमात्मप्रकाश, १४३ गाथा है। **आगे सम्यग्दर्शन को दुर्लभ दिखलाते हैं —** १४३, दूसरा अध्याय।

२७४) कालु अणाइ अणाइ जिउ भव-सायरु वि अणंतु।
जीविं बिण्णि ण पताइँ जिणु सामिउ सम्मत्तु॥१४३॥

क्या कहते हैं? **काल भी अनादि है,...** अनादि का काल है। योगीन्द्रदेव में पहले में आता है, भाई! दोहा में आता है। वह यह योगीन्द्रदेव का है, शैली है। दोहे में आता है। तीन काल अनादि जिसकी आदि नहीं। जीव अनादि। सत्ता जीव की अस्तित्वरूप से वह अनादि है। और उसमें संसार समुद्र जो अनादि-अनन्त। संसार अर्थात् परिभ्रमण, वह अज्ञानी को अनादि से है। तीनों अनादि से हैं। **लेकिन इस जीव ने जिनराजस्वामी और सम्यक्त्व ये दो नहीं पाये।** अर्थ करेंगे, हों! वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा को स्वामीरूप से कभी नहीं जाना, नहीं माना। और सम्यग्दर्शन अर्थात् कि पुण्य-पाप के शुभाशुभ रागरहित आत्मा का शुद्ध चिदानन्दस्वरूप, उसकी दृष्टि रागरहित करना, स्वभाव की दृष्टि वह सम्यग्दर्शन अनादि काल से पाया नहीं। अर्थात् कि जिनराजस्वामी पाया नहीं, ऐसा। इसलिए उसने वीतरागस्वामी पाये नहीं। जहाँ-तहाँ उसके हृदय में कुछ विकल्प शुभादि वृत्ति रहे तो उससे लाभ होगा, ऐसा मिथ्यात्व शल्य अनादि का उसे रह गया है।

मुमुक्षु : वह तो राग स्वामी हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह राग का स्वामी है। जिनराज को स्वामी बनाया नहीं। अनादि से भगवान आत्मा अत्यन्त पुण्य-पाप के शुभाशुभ विकल्प से रहित, ऐसा आत्मा का वीतरागी विज्ञानघन चैतन्यस्वरूप है, उसकी दृष्टि नहीं की, इसलिए राग का

स्वामी होकर, राग हो तो ठीक, शुभराग हो तो ठीक, ऐसे राग को स्वामी बनाया, उसने जिनराज को स्वामी नहीं बनाया। समझ में आया? यह कहेंगे। स्पष्टीकरण करेंगे।

भावार्थ :- काल, जीव और संसार ये तीनों अनादि हैं, उसमें अनादि काल से भटकते हुए इस जीव ने मिथ्यात्व-रागादिक के वश होकर... देखो, यह शब्द है। संस्कृत में है। भगवान आत्मा अपना वीतरागी अत्यन्त निर्विकल्पस्वरूप के आधीन न होकर, अनादि से विपरीत मान्यता और शुभ-अशुभ विकल्प और राग के **वश होकर...** वह उसके आधीन हुआ है। ऐसे भगवान चिदानन्दस्वरूप अत्यन्त ज्ञायक अखण्ड आनन्द को अन्तर में पर्याय में, पर्यायवान के आधीन होकर, सम्यग्दर्शन—राग बिना की प्रतीति, अनुभव नहीं किया। इसलिए उसकी दृष्टि में मिथ्या अभिप्राय रहा और राग के आधीन अनादि से रहा। जैन का साधु हुआ, नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया, पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण पाल-पाल कर थोथा हुए। इतना क्रियाकाण्ड (किया कि) जिसकी चमड़ी उतारकर नमक छिड़के तो क्रोध न करे, परन्तु अन्तर आत्मा के स्वभाव की रुचि नहीं। जिसे पुण्य के शुभराग की रुचि है, उसे भगवान आत्मा के प्रति क्रोध अर्थात् द्वेष वर्तता है, ऐसा कहते हैं। न्यालभाई! बहुत सूक्ष्म बात है। भूराभाई के काका हैं।

भगवान आत्मा... यह यहाँ कहते हैं। स्वरूप शुद्ध चिदानन्द का जिसे प्रेम नहीं और जिसे शुभराग, अरे! भगवान त्रिलोकनाथ की भक्ति का राग, उस राग की भी रुचि है, उसे आत्मा के प्रति क्रोध और द्वेष है। समझ में आया? वह क्रोध के वश अथवा राग के वश हो गया। भगवान आत्मा निर्विकल्प वीतरागी विज्ञानघन ऐसा स्वतः स्वभाव, उसके अन्तर वश हुआ नहीं। इसलिए **शुद्धात्मस्वरूप अपना न देखा,...** समझ में आया? अपना स्वरूप अत्यन्त विकल्प और मन और राग के संगरहित चीज़ है। उस चीज़ को उसने नहीं देखा। क्योंकि राग के, मिथ्यात्व के वश हो गया। अन्दर गहरे-गहरे अन्दर शुभराग, पुण्य राग कुछ भी मुझे सहायक-स्वभाव को (सहायता) करेगा, उससे मुझे स्वभाव मिलेगा, ऐसे स्वभाव का विरोधी-वेरी-शत्रु राग, उसके प्रेम में उसने स्वभाव का द्वेष किया है। समझ में आया? रतिभाई!

आनन्दघनजी कहते हैं न 'द्वेष अरोचक भाव।' हे नाथ! हमको हमारे आत्मा के

प्रति द्वेष वर्ता है। क्योंकि वह रुचा नहीं। हमको राग रुचा, फिर शुभ हो या अशुभ। वह रुचा, वह रुचि, वही हमको आत्मा के द्वेष को बताती है। समझ में आया? इससे मिथ्या अभिप्राय अर्थात् कि राग से मुझे लाभ होगा, ऐसा मिथ्या अभिप्राय और राग, वह विकल्प, उसके वश हो गया। भगवान आत्मा शुद्धात्मस्वरूप अपना न देखा। जो अत्यन्त राग से निरपेक्ष, निर्लेप है, निरपेक्ष और निर्लेप वस्तु की उसने अन्तर्मुख दृष्टि की नहीं। इसलिए वह सम्यग्दर्शन पाया नहीं। समझ में आया? इसलिए जिनवरस्वामी उसे मिले नहीं, ऐसा। यह कहेंगे।

जिनवर को कहना है वीतरागभाव, गुरु को कहना है वीतरागभाव, शास्त्र को कहना है वीतरागभाव। तो वह वीतरागभाव ऐसा आत्मा, उसकी रुचि वह वीतरागभाव, वह जिसने प्रगट नहीं किया अर्थात् कि वीतरागस्वभाव है, उसे रुचा नहीं, उसे सच्चे देव-गुरु-शास्त्र भी रुचे नहीं। समझ में आया? उसे **शुद्धात्मस्वरूप अपना...** अपनी शुद्ध चैतन्य वस्तु को उसने नहीं देखा। राग के विकल्प का कषाय का अंश, उसके आधीन होकर, फिर चाहे जो राग हो; देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का राग हो, दया-दान का राग हो, उस राग के वश हुआ आत्मा अपने शुद्धात्मस्वरूप को देख नहीं सका। अर्थात् कि जिसे राग की बहिर्मुख रुचि है; राग है, वह बहिर्मुख है। उसकी रुचि है, उसे अन्तर्मुख भगवान की रुचि होने नहीं दी।

सच्चे देव-गुरु-शास्त्र का राग व्यवहार समकितरूप से निश्चय हो, उसे आता है। उसे व्यवहार कहा जाता है। जहाँ निश्चय दृष्टि रागरहित की (हुई नहीं), ऐसा आत्मस्वभाव विज्ञानघन, चिदानन्द अमृत का पिण्ड ऐसी अन्तर स्वभाव की रुचि का प्रेम और दृष्टि की नहीं, इसलिए उसे राग की रुचि रह गयी। ... जैन साधु हुआ, व्रत पालन किये, त्याग किया, भगवान की भक्ति भी अनन्त बार की, साक्षात् मणिरत्न के दीपक से, कल्पवृक्ष के फूल से, हीरा के थाल से भक्तियाँ कीं, परन्तु परद्रव्य अनुसारी भाव, वह परद्रव्य अनुसारी भाव राग था। रतिभाई! उस राग से मुझे कल्याण होगा और वह होगा तो आगे जाया जायेगा — ऐसी मिथ्याशल्य की रुचि ने इसे अन्तर सन्मुख होने नहीं दिया। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वीतराग की नहीं उतारता था, राग की उतारता था। इसमें कहेंगे। भावभक्ति राग की रुचि छूटे बिना, स्वभाव की दृष्टि सम्यक् हुए बिना, वह भगवान का भक्त हो ही नहीं सकता। रतिभाई! गजब बात, भाई! ऐसा मार्ग वीतराग का। वीतराग कहे, हमारे सामने देखना छोड़ दे, तू तेरे सन्मुख हो। हमारे सामने देखा करेगा, हमको मानेगा तब तक राग होगा। पंचास्तिकाय में आता है न। नौ तत्त्व की रुचि, देव-गुरु-शास्त्र की रुचि जब तक रहेगी, तब तक राग है, तब तक मुक्ति नहीं होगी।

कहते हैं, भगवान शुद्धस्वरूप प्रभु, जिसमें विकल्प का, उदयभाव का, अशुद्धभाव का जिसमें अभाव है। ऐसे स्वभाव को (छोड़कर) राग की रुचि के बहिर्मुखी शुभराग के प्रेम में पड़ा, उसने अन्तर्मुख रुचि नहीं की। बस, यह महाशल्य उसे पड़ा है। कहो, समझ में आया? कुछ सहारा मिलेगा, शुभराग होगा न। किंचित् दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, जप, कुछ भगवान की भक्ति होगी कुछ तो ज्ञान सच्चा होगा। ऐसा गहरे भक्ति का राग, उसके प्रेम में पड़ा, भगवान आत्मा की रुचि नहीं की। मिथ्यात्व का शल्य रहा। समझ में आया?

अपना स्वरूप न देखा, न जाना। नहीं देखा, नहीं जाना। जाना नहीं। क्योंकि वह स्वरूप तो रागरहित स्वरूप है भगवान आत्मा का। और राग की रुचि के वश हुआ अरागी स्वभाव को कैसे जाने? अरागी आत्मा को कैसे देखे? अर्थात् कैसे अन्तर रुचि करे? **यह संसारी जीव अनादि काल से आत्म-ज्ञान की भावना से रहित है।** भगवान आत्मा अकेला ज्ञान का रसकन्द, शुद्ध अनन्त चिद्स्वरूप परमात्मा स्वयं है। ऐसा आत्मज्ञान और भावना। भावना अर्थात्? एकाग्रता। ऐसे राग की एकाग्रता के कारण से यहाँ आत्मा की एकाग्रता रहित हो रहा। **आत्म-ज्ञान की भावना से...** देखो, शास्त्रज्ञान आदि नहीं। शास्त्रज्ञान, वह पर है; वह आत्मज्ञान नहीं। शास्त्रज्ञान से आत्मज्ञान नहीं होता। उसका लक्ष्य छोड़े और आत्मा का लक्ष्य करे, तब होता है। शास्त्रज्ञान परज्ञान है, परालम्बी ज्ञान है, बन्धन का कारण है। समझ में आया?

आत्म-ज्ञान की भावना से रहित है। ऐसा कहा है। शास्त्रज्ञान बारह अंग भी विकल्प और भेद है। वह परसन्मुख के लक्ष्यवाला बोध है, वह स्व का बोध नहीं। समझ में आया? वह **आत्म-ज्ञान की भावना से...** भगवान आत्मा अकेला अनाकुल आनन्द और ज्ञान का रस है। उसकी रुचि कर तो उसमें एकाग्रता की भावना हो। भावना शब्द से एकाग्रता। उससे रहित अनादि से है। एक समय भी इसने आत्मस्वभाव भगवान की एकाग्रता एक समय भी नहीं की और एक समय भी इसने राग की एकाग्रता कभी तोड़ी नहीं। ओहोहो! लोगों को यह अवरोधक है। बाह्य त्याग करो, यह करो, यह करो, कुछ व्रत पालन करो, यह करो तो धीरे-धीरे होगा। क्या होगा? आहाहा! जीव को मूल चीज़ रुचती नहीं उसे। वीतरागस्वभाव निर्विकल्प वस्तु वह अन्तर्मुख दृष्टि का विषय, वह बहिर्मुख राग के अभाव से प्राप्त हो, ऐसा विषय है, वह उसे बाहर के विषय से प्राप्त करना है। वह हो, ऐसा नहीं। समझ में आया?

कहो, **अनादि काल से...** आत्मज्ञान की भावना शब्द से एकाग्रता। भगवान आत्मा ऐसे ज्ञानस्वरूप है, चैतन्य पुंज है, उसकी एकाग्रता। ऐसे राग की एकाग्रता छोड़कर उसकी एकाग्रता (करनी चाहिए), उससे अनादि से रहित है। पंच महाव्रत पालन किये, अट्ठाईस मूलगुण अनन्त बार पालन किये। दया, दान करके करोड़ों, अरबों के दान के भाव किये। हजारों रानियाँ छोड़ी, मुनि हुआ, नग्न हुआ, नग्न बाबा हुआ अनन्त बार। कुछ किया नहीं, कुछ किया नहीं। ऐई! रतिभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : किया राग, किया राग।

आत्म-ज्ञान की भावना से रहित है। भगवान आत्मा बिल्कुल राग की जहाँ अपेक्षा नहीं, शुभ विकल्प की अपेक्षा जहाँ नहीं, ऐसा निरपेक्ष भगवान की इसने रुचि और एकाग्रता कभी की नहीं। **इस जीव ने स्वर्ग, नरक, राज्यादि सब पाये,...** स्वर्ग मिले, वह कहीं पाप से मिलता होगा? कितनी बार पुण्य किये। शुभ दया, दान, भक्ति, व्रत, तप, जप, णमोकार स्मरण, भक्ति स्मरण ॐ.... ॐ.... ॐ.... ॐ.... ॐ.... भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... वह तो राग है। उससे पुण्य बँधा और स्वर्ग

में गया। पाप के परिणाम हों तो नरक में (जाये)। राज्यादि भी अनन्त बार (प्राप्त हुआ), आदि अर्थात् रंक भी अनन्त बार हुआ। राज भी अनन्त बार प्राप्त हुआ अरबों का राज और भिखारी सौ बार बोले और एक बार ग्रास मिले, ऐसा रंक भी अनन्त बार हुआ। **परन्तु ये दो वस्तुएँ न मिलीं, एक तो सम्यग्दर्शन न पाया, दूसरे श्री जिनराजस्वामी न पाये।** स्पष्टीकरण करेंगे, हों! **श्री जिनराजस्वामी न पाये।** वह जिनराज को, भगवान को भजे, वह जिनराजस्वामी नहीं पाया। रागरहित आत्मा के दृष्टि का सम्यक्पना प्रगट करे तो वह जिनराज को स्वामीरूप से स्वीकार सकता है। वरना जिनराज को स्वामी स्वीकार नहीं कर सकता। समझ में आया? भगवान की वाणी में और भगवान का स्वरूप तो वीतराग है और उनकी आज्ञा तो वीतरागपना प्रगट करने के लिये आज्ञा है। राग रखना और राग से होगा, ऐसी आज्ञा भगवान की नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, दो नहीं पाया। **यह जीव अनादि का मिथ्यादृष्टि है, और क्षुद्र देवों का उपासक है।** लो! भगवान का सेवक हुआ अनन्त बार तो कहे, क्षुद्र देव (उपासित किये)। उसे अन्दर में वीतराग भासित नहीं हुए। समझ में आया? **क्षुद्र देवों का उपासक है।** उसकी मान्यता में ऐसा है कि भगवान ने इस राग से लाभ कहा। वह देव को ही पहिचाना नहीं। क्षुद्र देव का उपासक है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभ क्या मिले? धूल मिले।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, वह क्या मिले? आशा रखे तो कुछ न मिले। वह तो शुभराग हो तो पुण्य बँधे, धूल मिले। स्वर्ग और यह राज की कहलाती है वह। कहो, समझ में आया?

श्री जिनराज भगवान की भक्ति इसके कभी नहीं हुई,... अनन्त काल में जिनराज की भक्ति कभी नहीं हुई। यह क्या? **अन्य देवों का उपासक हुआ, सम्यग्दर्शन नहीं हुआ।**

यहाँ कोई प्रश्न करे,... अब प्रश्न किया। **कि अनादि का मिथ्यादृष्टि होने से**

सम्यक्त्व नहीं उत्पन्न हुआ, यह तो ठीक है,... यह तो बराबर है। **परन्तु जिनराजस्वामी न पाये, ऐसा नहीं हो सकता ?** महाराज! यह क्या कहते हो तुम? वीतराग स्वामी नहीं मिले? वीतराग का वाडा और देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा कभी नहीं की? समवसरण में अनन्त बार गया, भगवान की भक्ति अनन्त बार की। कहते हैं। दृष्टान्त देते हैं, देखो, **परन्तु जिनराजस्वामी न पाये, ऐसा नहीं हो सकता।** महाराज! शिष्य की शंका है। यह बात मुझे नहीं बैठती। और देखो शास्त्र में '**भवि भवि जिण पुज्जिउ वंदिउ**' शास्त्र में ऐसा है भव-भव जिन को पूजा, गुरु को वन्दन किया, गुरु को माना, गुरु की भक्ति की, ऐसा तो पाठ शास्त्र में है। शिष्य का प्रश्न है। चन्दुभाई! '**भवि भवि जिण पुज्जिउ वंदिउ गुरु**' गुरु को वन्दन किया, गुरु की भक्ति की, गुरु का विनय किया, गुरु की सेवायें की। शास्त्र में तो ऐसा आता है और तुम कहते हो कि जिनराजस्वामी मिले नहीं? समकित पाया नहीं, यह तो ठीक।

मुमुक्षु : यह कहते हैं, भव-भव मिले और तुम बिल्कुल इनकार करते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : गाथा में तो भव-भव में अर्थात् बहुत भव, ऐसा। अनन्त भव में अनन्त बार जिनराज की भक्ति, जिनराज का सम्प्रदाय, जिनराज का साधु, जिनराज का श्रावक वाडा का अनन्त बार हुआ।

ऐसा शास्त्र का वचन है, अर्थात् भव भव में इस जीव ने जिनवर पूजे... भव भव अर्थात्? जो मनुष्यभव जब मिले, तब उसमें भी जब जिन का कुल मिला, तब ऐसे अनन्त भव में जिनवर की पूजा की है। भगवान की मूर्ति, पूजा, समवसरण अनन्त बार पूजे हैं, एक बार नहीं। शास्त्र ऐसा कहते हैं और तुम कहते हो कि जिनराज स्वामी (मिले) नहीं। अपने को बैठता नहीं, भाई! शिष्य की शंका है। **जिनवर पूजे और गुरु वंदे।** ये महागुरु मिले, मुनिराज भावलिंगी सन्त छठवें गुणस्थान में विराजमान, छठवें-सातवें में झूलें, ऐसे सन्त अनन्त बार मिले और उनकी भी पूजा और वन्दन अनन्त बार किये, ऐसा पाठ है और तुम कहते हो कि किया नहीं कभी। सुन-सुन!

परन्तु तुम कहते हो कि इस जीव ने भव-वन में भ्रमते जिनराजस्वामी नहीं पाये, उसका समाधान — जो भाव-भक्ति इसके कभी न हुई,... आत्मा की भावभक्ति

वीतराग रुचि की नहीं, इससे भगवान की भी उसे भावभक्ति कभी नहीं हुई। समझ में आया? यह शुभभाव, वह भावभक्ति नहीं, ऐसा कहते हैं। समन्तभद्राचार्य कहते हैं स्वयंभूस्तोत्र में अभव्य की बात लेते हुए (कहते हैं) हे नाथ! वह राग का रसिक अभव्य आपको नहीं वन्दता। उसे राग का प्रेम है, प्रभु! आप वीतराग हो, वह आपको नहीं वन्दता। वह बाहर में वन्दन नहीं करता? अभव्य साधु हुआ अनन्त बार। णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं। करोड़ पूर्व का आयुष्य के समय तो कितने अरबों बार णमोकार गिनता होगा और जैन का दिगम्बर साधु अनन्त बार हुआ। तथापि स्वामी समन्तभद्र स्तुति करते हुए कहते हैं, नाथ! अभव्य ग्रन्थीवाला है। राग की एकत्वबुद्धिवाला है। राग की एकत्वबुद्धिवाला रागरहित आपको नहीं वंदे। अर्थात् कि राग में एकत्वबुद्धिवाला, हे नाथ! आपको स्वामी स्वीकार नहीं करे। समझ में आया?

यह चिल्लाहट मचाते हैं न व्यवहार... व्यवहार... व्यवहार चाहिए, व्यवहार हो तो होगा। यह कहते हैं कि राग की रुचिवाला वीतराग को मानता नहीं। व्यवहार अर्थात् विकल्प, विकल्प अर्थात् राग। राग के रसीला, प्रभु! आपको नहीं मानता, हों! ऐसा समन्तभद्र (आचार्य) स्वयंभूस्तोत्र में कहते हैं। आता है न पण्डितजी? अभव्य ... आता है शब्द कहीं। किसमें? स्तवन है। नाम अपने को सब कहीं आता है कुछ? चौबीस स्तुति है न उसमें। अभव्य सत्ता ऐसा शब्द स्तुति में है। निकालना। नहीं मानता। क्योंकि अनादि राग की एकत्वबुद्धि है उसे। ऐसे जो जीव भव्य हो, परन्तु जिसे अन्दर शुभराग विकल्प रुचता है, सुहाता है, उसे ठीक है, यह हो तो होगा, प्रभु! वह आपको नहीं मानता। वह आपको नहीं वन्दता, आपको स्वामी नहीं स्वीकारता। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें?

भाव-भक्ति इसके कभी न हुई, भाव-भक्ति तो सम्यग्दृष्टि के ही होती है,... ऐसे रागरहित वीतरागस्वभाव दृष्टि में न बैठे, तब तक उसे भावभक्ति अपनी भी नहीं और भगवान की भी नहीं। चाहे जैसे वह टोकरा बजाया करे और भक्ति किया करे और स्तुति किया करे। भगवान के मन्दिर लाख, करोड़ बनाया करे, हराम उसे आत्मा का लाभ हो तो। लाख करोड़ मन्दिर बनावे। ऐई! मानस्तम्भ बनावे लाख-करोड़ तो? वह

तो परपदार्थ होने की क्रिया से होता है। उसमें भाव हो तो शुभ हो। उसमें एकत्वबुद्धि में यह धर्म है, ऐसा माने तो मिथ्यात्व है। कहो, समझ में आया इसमें? **भाव-भक्ति तो सम्यग्दृष्टि के ही होती है,...** वीतरागस्वरूप आत्मा, अकषायस्वरूप आत्मा (की) अन्दर में रुचि, दृष्टि सम्यक् हुई, उसने जिनराजस्वामी स्वीकार किये। समझ में आया? वरना तो वह जिनराज को मानता नहीं, वह क्षुद्र देव को मानता है। समझ में आया?

और बाह्यलौकिकभक्ति इसके संसार के प्रयोजन के लिये हुई, वह गिनती में नहीं। क्यों लक्ष्य-प्रयोजन रहा राग का। राग के प्रयोजन से भक्ति, वह कहीं गिनती में है नहीं। कहो, समझ में आया इसमें? **ऊपर की सब बातें निःसार (थोथी) हैं,...** भगवान आत्मा अत्यन्त निर्लेप, निर्विकल्प वीतरागघन उसकी अन्तर दृष्टि, रुचि की नहीं, वे जीव सब भक्ति आदि भगवान की, देव की, गुरु की करे, वह थोथा है। है? अभव्य सत्ता है या नहीं?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह। कहाँ आया यह? महावीर भगवान में। ठीक। 'हे जिन तू असुर तुम्हें पूजे मिथ्यात्वी चित्त नहीं तुम्हें पूजे।' जिसकी दृष्टि मिथ्यात्व है, वह तुमको नहीं पूज सकता। राग के प्रेमवाला वीतराग को नहीं माने। उनकी भक्ति करे और राग हो तो भी कहे, उसे नहीं मानता। राग की भक्ति है। समझ में आया? उसमें विशेष कहेंगे, देखो। भाई ने किया है न। दिल्लीवाले जुगलकिशोर ने अर्थ किये हैं। समझ में आया?

कहते हैं, **ऊपर की सब बातें निःसार (थोथी) हैं,...** ऊपर का अर्थ? यह ज्ञानानन्द भगवान जिसे रागरहित का रुचा नहीं, सुहाया नहीं, प्रतीति की नहीं, उन सब जीवों को पुण्य के, राग के प्रेम में पड़े, वह भक्ति भगवान की खोटी है। समझ में आया? वे कुछ दे देंगे, उन्हें मानूँगा तो दे देंगे और उन्हें मानूँगा तो भाव हुआ, उसमें से भी कुछ कल्याण होगा। वे सब भक्ति करनेवाले खोटी भक्ति करते हैं।

मुमुक्षु : बाल जीवों को ऐसा हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : तत्त्व हो वैसा हो या कुछ विरुद्ध हो? बाल जीवों को क्या

कहा जाता है ? बाल जीव वे आत्मा है या नहीं ? आत्मा तो इस प्रकार से कहते हैं कि आत्मा को यह उपदेश कहना। '**जो जाणदि अरहंतं**' अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय ऐसे हैं, ऐसा जिसे जानकर आत्मा के साथ मिलान करता है। ऐसा मिलान करके मोह का क्षय करता है। हमने भी इस प्रकार से मोह का क्षय किया और राग-द्वेष वीतराग कहते हैं कि हमने नाश किये, ऐसा ही हमने जगत को उपदेश दिया है। (प्रवचनसार की) ८२वीं गाथा।

मुमुक्षु : उपदेश तो अनेकान्त का दिया है, ...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे एकान्त नहीं हुआ ? कि आत्मा के स्वभाव के आश्रय से लाभ होगा, राग के आश्रय से नहीं होगा, इसका नाम अनेकान्त है। अनेकान्त (अर्थात्) राग से लाभ होगा और स्वभाव से लाभ होगा, उसे अनेकान्त कहा जाता है ? वह तो फुदड़ीवाद है, मिथ्यात्ववाद है। समझ में आया ? भगवान कहते हैं कि हम सर्व तीर्थंकरों ने '**सव्वे वि य अरहंता तेण विधाणेण खविदकम्मंसा, किच्चा तधोवदेसं...**' ऐसा ही उपदेश हमने किया। केवलज्ञान की पर्याय सर्वज्ञ की एक समय की पर्याय हो, तीन काल, तीन लोक को देखे। ऐसी अरिहन्त की पर्याय जो आत्मा के साथ मिलान करे कि यह पर्याय जो प्रगट करे, उसकी योग्यतावाला मैं हूँ। ऐसी योग्यतावाला मैं, उसकी दृष्टि द्रव्य के ऊपर जाती है। पर्याय में तो है नहीं सर्वज्ञपद। तो सर्वज्ञपद की पर्याय प्रतीति करने जाता है, वहाँ एक समय की पर्याय में पर्याय के आश्रय से प्रतीति नहीं होती। सर्वज्ञ की प्रतीति करने जाता है अर्थात् कि मोक्षतत्त्व की प्रतीति करने जाता है, तो एक समय की पूर्ण ज्ञान का सामर्थ्य, उसकी प्रतीति करने जाये वहाँ अन्दर द्रव्य में सर्वज्ञपद है, उसका आश्रय ले, तब सर्वज्ञ की प्रतीति होती है, इसके बिना प्रतीति होती नहीं। समझ में आया ? आहाहा!

एक न्याय से तो, सर्वज्ञपर्याय मोक्ष एक न्याय से तो परद्रव्य कहा है। क्योंकि मोक्ष एक समय की पर्याय है। एक समय का स्वद्रव्य नहीं, स्वद्रव्य नहीं। इस अपेक्षा से तो परद्रव्य कहा है एक न्याय से। क्योंकि अपने को—साधक को है नहीं और दूसरे को हुई है, वह तो परद्रव्यय में जाता है। जब केवल (ज्ञान) को प्राप्त करने की पर्याय

की प्रतीति करने जाये, तब उसे सामने केवली के ऊपर नजर करे तो प्रतीति नहीं होती, अपना साधकभाव है, उसके सामने देखे तो उसकी प्रतीति हो नहीं सकती, उघड़ी हुई पर्याय है, उसकी प्रतीति करने जाये तो प्रतीति हो नहीं सकती। भगवान मोक्षतत्त्व, सर्वज्ञतत्त्व अर्थात् कि मोक्षतत्त्व सात तत्त्व में। इसलिए मोक्ष अर्थात् केवल (ज्ञान) और केवलदर्शन अनन्त चतुष्टय पर्याय प्रगट पूर्ण। तीन काल, तीन लोक जिसने देखे, ऐसी पर्याय की प्रतीति तो, पर्याय की प्रतीति से पर्याय की प्रतीति नहीं होती। पर्यायवान द्रव्य की प्रतीति करने से उस पर्याय की प्रतीति होती है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, **ऊपर की सब बातें निःसार (थोथी) हैं, भाव ही कारण होते हैं, सो भाव-भक्ति मिथ्यादृष्टि के नहीं होती।** जिसे एक शुभ विकल्प, जिससे स्वर्ग प्राप्त हो, पुण्य बँधे कि दया, दान के परिणाम, महाव्रत के परिणाम या भक्ति के परिणाम, पर आश्रय परिणाम, परलक्ष्यी परिणाम, परद्रव्य आश्रय विकल्प का होना, उसका जिसे प्रेम है, वह मिथ्यादृष्टि (है, वह) भगवान का भक्त नहीं हो सकता। अर्थात् कि वह समकिती नहीं हो सकता। समकिती बिना भगवान का भक्त नहीं हो सकता। समझ में आया? इसने बात सुनी नहीं। ऐसे ऐसी... हाय... हाय... भिखारी है न। कुछ सहारा हो न कुछ सहारा थोड़ा। पंगु मनुष्य को लकड़ी चाहिए। लकड़ी बिना चल सके? इसी प्रकार पंगु मानता है उसे। कुछ सहारा... सहारा... सहारा... उस सहारा में पूरा मार्ग हट गया।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : रह गया पूरा।

कहते हैं, **भाव-भक्ति मिथ्यादृष्टि के नहीं होती। ज्ञानी जीव ही जिनराज के दास हैं,...** जिनराज का दास ज्ञानी होता है। भगवान चिद्घन आत्मा अकेली वीतरागमूर्ति प्रभु की सम्यक् दृष्टि करनेवाला जिनराज का दास हो सकता है। समझ में आया? **सो सम्यक्त्व बिना भाव-भक्ति के अभाव से जिनस्वामी नहीं पाये,...** कहो, समझ में आया इसमें? परमात्मप्रकाश है इसका नाम। परमात्मा स्वयं द्रव्यस्वरूप से है, पर्याय में परमात्मा होना हो, उसकी बात है। दोनों परमात्मा। वस्तु से परमात्मा है, स्वयं आत्मा द्रव्य से मुक्तस्वरूप परमात्मा ही है। उसकी एकाग्रता द्वारा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र

द्वारा मुक्ति की पर्याय, पर्याय में परमात्मा हुआ जाता है।

उस पर्याय में परमात्मा कैसे हुआ जाये? कि यह परमात्मा अकेला शुद्ध अखण्डानन्द प्रभु, उसकी दृष्टि, रुचि, परिणति करने से मोक्ष का मार्ग होता है और वह मोक्ष अर्थात् परमात्मा होता है। इसके बिना बीच में राग और विकल्प की बातें लाख-करोड़ आवे, उन बन्धन के कारणों से मुक्ति के परिणाम कभी उत्पन्न नहीं होते। कहो, समझ में आया? व्यवहाररत्नत्रय सम्यग्दर्शन-ज्ञान, वह राग है। वह बन्ध का कारण है, उससे मुक्ति का उपाय कभी नहीं होता। निमित्तरूप से आरोप देकर कथन किया जाता है। वस्तु बन्ध का कारण है। समझ में आया? शशीभाई! भारी कठिन बात!

यह तो कहे, स्वयं सम्यक्त्व प्राप्त करे, तब भगवान का दास, लो! परन्तु इससे पहले भगवान का दास हुए बिना समकित पावे कैसे? नवनीतभाई! बस! यही विवाद है न! विवाद ही यह है अनादि का जगत को। पहले यह हो तो होगा... पहले यह हो तो होगा... पहले यह हो तो होगा... अर्थात् पहले जहर हो तो अमृत होगा... पहले जहर हो तो अमृत होगा, पहले जहर खाया जाये तो अमृत होगा। इसी प्रकार पहले राग शुभ हो तो अमृत होगा, आत्मा मिले। यही अनादि का शल्य वीतरागपने की रुचि नहीं करने देता। कहो, समझ में आया इसमें? यह विपरीतता ऐसी घुसाई, वह वापस धर्म के नाम से। मीठा लगे इसे। कुछ सहायता मिले, आश्रय हो कुछ। लो, यह तो सीधी बात।

मुमुक्षु : बच्चा को तो सहारा चाहिए न।

पूज्य गुरुदेवश्री : सहारा-बहारा कहाँ? मुर्दे को सहारा क्या दे? चलता हो, उसे वह सहारा निमित्त से कहा जाता है। मुर्दा चल सकता होगा? इसी प्रकार भगवान आत्मा अकेला ज्ञान का पुंज प्रभु वीतरागी विज्ञानघन जिसे राग, जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह राग भी जिसे जहर है। जिसके स्वभाव के समक्ष वह राग जहर है। आहाहा!

मुमुक्षु : यह कठिन / जटिल लगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन / जटिल लगे या न लगे, उसे मानने से ही छुटकारा है। धर्म समझना हो तो। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह उदयभाव है, वह उदयभाव अर्थात् राग है, वह तो जहर है। आहाहा! चिल्लाहट मचा जाये। ऐसे अच्छा-अच्छा

लगे। षोडशकारण भावना भाये। क्या आता है? दर्शनविशुद्धि। तीर्थंकरपद पाये। परमगुरु होय... यह गायन आवे तो मजा भी आवे उसमें। दर्शनविशुद्धि भावना भाये षोडशकारण और तीर्थंकर हो, लो! क्या परन्तु सुन तो सही! वह तीर्थंकर का विकल्प भी किसे हो? सम्यग्दृष्टि को। और जिसे वह विकल्प जहर जैसा दिखता है। आत्मा के अमृत में से लूटकर खड़ा होता है, वह विकल्प। उससे सम्यग्दृष्टि लाभ नहीं मानता। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, उससे लाभ नहीं मानता। राग से लाभ माने? उदयभाव, आस्रवभाव, उससे लाभ माने?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तीर्थंकर उससे हुआ? तीर्थंकर हुआ, वह तो बाहर की सामग्री हुई। वह राग से बन्धन हुआ, उस बन्धन का पाठ कब आयेगा? कि राग का अभाव करके सर्वज्ञपद होगा, तब प्रकृति के पाक का उदय आयेगा। उसमें उसे क्या हुआ? तब यह ढ़ेर समवसरण के प्राप्त होंगे। कहो, समझ में आया?....

ज्ञानी जीव ही जिनराज के दास हैं,... जिनराज वीतराग परमात्मा का दास कौन हो सकता है? समझ में आया? **सो सम्यक्त्व बिना भाव-भक्ति के अभाव से जिनस्वामी नहीं पाये,...** ओहोहो! वीतराग परमेश्वर, जिन्हें एक विकल्प की गन्ध नहीं और अनन्त-अनन्त आनन्द और ज्ञान जिसके विकास पद को प्राप्त हुए हैं, ऐसे भगवान की आज्ञा में वीतरागपने की दृष्टि करना, ज्ञान करना और चारित्र वीतरागी करना, ऐसी भगवान की आज्ञा है। वह आज्ञा समझा, तब उसे आत्मा की रुचि हुई। आत्मा अखण्डानन्द शुद्ध चैतन्य की दृष्टि हुई, वह वीतराग का दास कहा जाता है। तब तक वीतराग का दास नहीं, राग का सेवक है। राग का भजन। मोह-भजन। अनुभवप्रकाश में कहा है न, भाई! आत्मदर्शन की प्रतीति और अनुभव बिना, आत्मा के अनुभव बिना भगवान की भक्ति, वह मोह-भजन। अनुभवप्रकाश में कहा है। मोह-भजन है। वह वन में हिरण और गाँव में साधु, वे दोनों एक सरीखे हैं। न्यालभाई! यह है भाई उसमें है न! अनुभवप्रकाश। दीपचन्दजी। है न लाओ न भाई! निकालो तो सही। थोड़ा हो तो अधिक विस्तार हो। यहाँ कहीं सब याद रहता है? थोड़ा-थोड़ा याद आ जाये मस्तिष्क

में और कुछ। आहाहा! भगवान आत्मा, एक राग का विकल्प पुण्य-पाप का उठे, उस रहित की चीज़ है। ऐसी जिसने दृष्टि और अनुभव किया नहीं, वह सब भगवान का भजन नहीं करता, मोह का भजन करते हैं वे तो। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, **भाव-भक्ति के अभाव से जिनस्वामी नहीं पाये, इसमें सन्देह नहीं है।** इसमें सन्देह नहीं। कहो, बराबर होगा? रतिभाई! आहाहा! अरे! परन्तु ऐसा एकदम! थोड़ा-थोड़ा धीरे-धीरे कहो तो। कहीं है न निकालो तो सही! तुम निकालकर दो तब खबर पड़े न! यहाँ मैं निकालने जाऊँ? उस ओर के भाग में है नीचे। उस ओर के भाग में है। उसकी ओर के भाग में कहा, हों! वापस देखने लगा। अनुभवधारा। ६३ (पृष्ठ)। भगवान आत्मा की दृष्टि और अनुभव करना, इसके बिना, अनुभव के बिना '**उस अनुभव धरा (मूसलाधार वर्षारूप-धाराप्रवाहरूप) जागते, दुःखदावानल रंच भी रहता नहीं। मुनिजन स्वानुभव को भववास घटा के नाश करने के लिये परम प्रचण्ड कहते हैं। अनुभवसुधा का पान करके अनेक भव्य जीव अमर हुए। अनुभव ही परम पूज्य पद को करता है, उसके बिना सर्ववेदपुराण निरर्थक है,...**' यह आत्मा की वीतराग दृष्टि हुए बिना वेद-पुराण तेरे सब थोथा है शास्त्र का पठन। **स्मृति विस्मृति है,...** यह स्मरण चाहे जितना रख तो भी वह सब विस्मरण है।

मुमुक्षु : भगवान का स्मरण करें वह?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह विस्मरण।

शास्त्रार्थ व्यर्थ है,... तेरे शास्त्र के वाद-विवाद के पठन आत्मा की दृष्टि वीतराग किये बिना, **पूजा भजन मोह है,...** यह ६३ पृष्ठ। इस **अनुभव बिना निर्विघ्न कार्य विघ्न है, परमेश्वर कथा वह भी झूठी है।** परमेश्वर की वार्ता कर तो भी झूठी। भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द की दृष्टि की नहीं, उस बिना परमेश्वर कथा झूठी, **तप भी झूठ है, तीर्थसेवन झूठ है। (अनुभव बिना) तर्क, पुराण, व्याकरण खेद है,...** अनुभव बिना **गाँव में गाय, श्वान की भाँति और वन में हिरणादि की भाँति अज्ञान तपसी है।** चाहे जहाँ घूम बाबा होकर, योगी होकर, मुनि होकर, परन्तु आत्मा की वीतराग दृष्टि बिना राग के प्रेम में पड़े, वे सब हिरण, गाय और भैंस जैसे हैं। समझ में आया? बहुत

व्याख्या की है। दो लाईन की है। पृष्ठ ६३ है, हों! कहो, समझ में आया इसमें? अनुभवप्रकाश भाई का—दीपचन्दजी का है। सर्व व्याख्यान यह सब उतर गया है। स्वानुभव सब बहुत आ गया है। कहो, समझ में आया?

जो जिनवरस्वामी को पाते, तो उसी के समान होते,... देखो, ओहोहो! सर्वज्ञ परमात्मा वीतराग—राग बिना की पूर्ण पदवी प्राप्त की। ऐसी अन्तर में राग बिना की प्राप्ति आत्मा की करे तो जिनवर हुए बिना रहे नहीं। जिनवर समान। देखा! **उसी के समान होते, ऊपरी लोग-दिखावारूप भक्ति हुई,...** लोक... ऊपर लोक दिखावा। ऐसे देखे कि ओहोहो! भक्ति करे, पूजा करे, स्तवन करे, स्तुति करता है। आहाहा! राग (लय) खींचे बड़ी-बड़ी। बड़ा भगत है। पूरे दिन चौबीस घण्टे भगवान की भक्ति करे। भक्त, वह सब राग है भक्ति, सुन न! भगवान आत्मा रागरहित चीज़ स्वरूप चिदानन्द है उसकी दृष्टि करता नहीं, उसे रुचता नहीं अभी। वह राग से छूटकर यह करना, यह सुहाता नहीं। सुहाता है वह राग।

तो किस काम की,... ऊपरी लोग-दिखावारूप भक्ति हुई, तो किस काम की, यह जानना। अब श्री जिनेन्द्रदेव का और सम्यग्दर्शन का स्वरूप सुनो। अनन्त ज्ञानादि चतुष्टय सहित और क्षुधादि अठारह दोष रहित (जिनवरस्वामी) हैं। लो! भगवान तीर्थंकरदेव अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य प्राप्त और भगवान को क्षुधा नहीं होती, तृषा नहीं होती, रोग नहीं होता। समझ में आया? क्षुधा, तृषा रोग भगवान को माने वह भगवान को पहिचानता नहीं, गुरु को पहिचानता नहीं, शास्त्र को पहिचानता नहीं। वह आत्मा को पहिचान सकता नहीं।

मुमुक्षु : वह तो विचारयोग है, उसमें क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : विचार हो? महा क्षुधा-तृषा लगे, उसे असाता की तीव्रता उदय में है। यहाँ अनुभाग का रस शिथिल पड़ना चाहिए, अन्दर शुद्धता के ध्यान में बहुत शिथिल पड़कर बहुत शुभ होना चाहिए, उस शुद्धता के ध्यान का इसने नकार किया है। शुद्धता का ध्यान का नकार करके शुद्धता इतनी होने पर भी इतना रस रह जाये कि जिसे कारण वहाँ भूख लगे, तृषा लगे, रोग हो, उस शुद्धता की परिणति को नहीं

जाना, उसने आत्मद्रव्य को नहीं जाना, केवली को नहीं जाना, उसने केवल (ज्ञान) पाने के योग्य संवर-निर्जरा की दशा में कितना असाता का रस घट जाये, कितना बहुत अनन्तवाँ भाग में रह जाये, वह कर्म के निमित्त में भी ऐसा हो, उसे भी उसने जाना नहीं। अजीव को नहीं जाना, संवर-निर्जरा को नहीं जाना, राग विकल्प बहुत मन्द रहे, उसके बदले तीव्र ऐसा राग रहे कि जिससे असाता तीव्र रहे और उदय आवे। वह सब एक भी तत्त्व को उसने नहीं जाना।

मुमुक्षु : सभी पहलू खोटे?

पूज्य गुरुदेवश्री : सभी पहलू खोटे। वह अनन्त ज्ञान भी नहीं मानता। अनन्त केवलज्ञान जो पर्याय द्वारा होता है, उस पर्याय में अन्दर असाता का अनन्त बहुत रस रह जाये, ऐसा कभी बनता नहीं। जो मोक्षमार्ग की पर्याय से केवल (ज्ञान) होता है, उस मोक्षमार्ग में असाता का रस अनन्तवाँ भाग पड़ जाता है, अनन्तवाँ भाग रह जाता है, उसके बदले इतना अनन्त रस रह जाये और निर्मल पर्याय ऐसी हो, (ऐसा माने) उसकी उसे खबर नहीं — मोक्षमार्ग की खबर नहीं, मोक्ष की खबर नहीं। बात तो ऐसी है। इसलिए यह कहते हैं। समझ में आया?

कहते हैं कि **अनन्त ज्ञानादि चतुष्टय सहित और क्षुधादि अठारह दोष रहित हैं।** एक यह पूछा था मोतीराम ने। यह अठारह दोष पूछे थे न तुमने? वे अठारह दोष यह। सर्वज्ञ परमात्मा को क्षुधा नहीं है। अनन्त आनन्द प्रगट हुआ, उसे क्षुधा कैसी? और आहार लावे और खाये और... वह तो अज्ञानियों ने (कल्पना की)।

मुमुक्षु : स्वयं ने....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं नहीं जाये, दूसरे लावे। एकदम उल्टी दृष्टि के सब कथन हैं। कहो, समझ में आया? इसलिए यह रखा है हों पाठ में है, देखो, '**क्षुधाघष्टादश-दोषरहितो**' संस्कृत की पहली लाईन है। सहित और रहित अनेकान्त किया। ऐसे दोष नहीं और ऐसे गुण की पर्याय प्रगटी है, ऐसे सर्वज्ञ परमात्मा पूर्णानन्द जिन्हें है। जिसके सेवकों को वासुदेव या बलदेव या इन्द्र और उन्हें रोग न हो और इन्हें कठोर रोग हो। तत्त्व की बात में एक भी तत्त्व सच्चा नहीं। जीवतत्त्व नहीं, उसकी शक्ति का सामर्थ्य

नहीं, उसकी पर्याय की ताकत कितनी मोक्ष के लिये प्रगटे, उसकी खबर नहीं। उस समय राग मन्द किस प्रकार का होता है ? और इसलिए मन्द साता, उस साता में विशेष रस हो, वहाँ असाता होती नहीं। वह सब अजीव और राग तथा संवर और द्रव्य और सब तत्त्व की भूल इसके अन्दर खड़ी होती है। ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया ? शास्त्र ही नहीं। क्षुधा, तृषा, भगवान को रोगवाला माने, वह शास्त्र ही नहीं। ऐई! ...भाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! तत्त्व की दृष्टि ... उसमें तो।

देखो, क्या कहते हैं ? **क्षुधादि अठारह दोष रहित हैं।** आहाहा! पूर्ण परमात्मा, पूर्ण वीतराग वह परमेश्वर की पर्याय, वह पर्याय जिसे अपनी प्रतीति में लेनी है, उसे असाता कर्म आदि के रस कितने मन्द पड़ गये होते हैं, उन्हें रोग आवे, क्षुधा लगे और तृषा लगे और शरीर में असाता दिखाई दे, ऐसा रोग हो। इस बात की एक भी तत्त्व को समझे नहीं। बिल्कुल नौ तत्त्व की भूल, नौ (तत्त्व) की विपरीत भूल। चन्दुभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि से पड़े हैं। उसे कुछ-कुछ ऐसे मिले नहीं तो भटके किस प्रकार ?

अर्थात् कि **चतुष्टय सहित और क्षुधादि अठारह दोष रहित हैं। वे जिनस्वामी हैं, वे ही परम आराधने योग्य हैं,...** लो! वे जिनस्वामी उसे मिले नहीं। **तथा शुद्धात्मज्ञानरूपी निश्चयसम्यक्त्व...** लो! वह वस्तु कल आयेगी। भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप पवित्र, उसे रागरहित अन्तर अनुभव में प्रतीति, उसका नाम निश्चय समकित, वह भी कभी पाया नहीं। जिनराज स्वामी पाया नहीं और समकित पाया नहीं। समकित पावे तो जिनराज स्वामी पाये कहलाये, वरना पाये कहलाये नहीं।

मुमुक्षु : दोनों एक साथ प्राप्त करता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों एक समय में साथ में।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आषाढ़ शुक्ल १४, सोमवार, दिनांक - १२-०७-१९६५
गाथा - १४३ - १४४, प्रवचन - १६८

परमात्मप्रकाश अध्याय दूसरा। १४३ गाथा चलती है। अन्तिम अधिकार है अन्त में देखो! थोड़ा चला है। फिर से देखो।

अब श्री जिनदेव का और सम्यग्दर्शन का स्वरूप सुनो। मूल पाठ में यह है न। जिनदेव किसे कहते हैं और सच्चा सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं। **अनन्त ज्ञानादि चतुष्टय सहित...** जिनवरदेव अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य इत्यादि **ज्ञानादि चतुष्टय सहित और क्षुधादि अठारह दोष रहित हैं।** सर्वज्ञ परमात्मा वीतरागदेव को आहार, पानी, क्षुधा, तृषा, रोग होता नहीं। यह नास्ति से बात की है। अस्ति से अनन्त चतुष्टयसहित कही। **वे जिनस्वामी हैं,...** वह वीतरागस्वामी हैं। यह वीतरागस्वामी किसके होते हैं? उनका दास हो, उनके वे स्वामी होते हैं। उनका दास कैसा होगा? कि जो राग का स्वामी न हो अथवा राग से लाभ मानता नहीं।

मुमुक्षु : राग का स्वामी नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग का धनी नहीं हो—स्वामी नहीं हो। और राग आवे सही शुभाशुभभाव, परन्तु उसका स्वामी नहीं होता और राग से लाभ नहीं मानता। चैतन्य वीतरागी विज्ञानघन आत्मा, उसकी दृष्टि में आत्मा वीतरागस्वरूप ही शरण है। ऐसा माननेवाला वीतराग का दास हो सकता है। समझ में आया? जो राग का स्वामी हो, वह चैतन्य का स्वामी रह सकता नहीं। शुभाशुभ परिणाम हों, उनका स्वामी—धनी हो, वह सहजात्म चैतन्यस्वरूप का स्वामी हो नहीं सकता और सहजात्मस्वरूप का स्वामी हो वह शुभाशुभ परिणाम का धनी-स्वामी हो नहीं सकता। वह वीतराग का दास हो सकता है। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : वीतराग का दास।

पूज्य गुरुदेवश्री : वीतराग का दास है वह। अभी वीतरागदशा पूर्ण हुई नहीं और वीतरागस्वभावी आत्मा का आदर किया है, अन्तर दृष्टि के अनुभव में। पुण्य-पाप के विकल्प का धनीपना-स्वामीपना दृष्टि में छूट गया है, वही वास्तव में वीतराग का दास है। वही जैन परमेश्वर जैन को स्वामीरूप से स्वीकारता है। कहो, समझ में आया? **वे ही परम आराधने योग्य हैं,...** ऐसे वीतराग परमात्मा सेवनयोग्य है। अर्थात्? कि आत्मा ही वीतरागी अपना निजस्वरूप है, उसे सेवनयोग्य है। वही वीतराग को सेवनयोग्य मानता है। एक बात।

सम्यग्दर्शन की बात है। **शुद्धात्मज्ञानरूप निश्चयसम्यक्त्व... 'शुद्धात्मभूतिलक्षणं वीतरागसम्यकत्वम्'** वीतराग समकित। संस्कृत में यह है। भगवान आत्मा भले गृहस्थाश्रम में हो, नरक में नारकी हो, पशु में ढाई द्वीप के बाहर भी पशु होते हैं। असंख्य पशु पड़े हैं बाहर समकिती। ढाई द्वीप के बाहर असंख्य पशु समकिती निश्चय सम्यग्दृष्टि हैं। वह शुद्धात्मानुभूति लक्षण वीतराग समकित है। जिसे नीचे **शुद्धात्मज्ञानरूप निश्चयसम्यक्त्व...** कहा है। अनुभूति का अर्थ ज्ञान किया है। भगवान आत्मा अत्यन्त शुद्धस्वरूप अस्ति महा धाम, उसका ज्ञान और उसका अनुभव, उसका अनुभव करके प्रतीति करना कि 'यह आत्मा', उसका नाम निश्चय, सच्चा, सत्य सम्यग्दर्शन है। जिसे वीतराग सम्यग्दर्शन कहते हैं। वीतराग सम्यग्दर्शन कहते हैं, परन्तु वीतराग भाव को यहाँ सम्यग्दर्शन कहते हैं। ऐसे समकित को वीतरागदेव सम्यक् निश्चय कहते हैं और ऐसे समकित को वीतराग समकित कहा जाता है। समझ में आया? अर्थात् कि सच्चा समकित, सम्यक् सत्य।

स्वयं परमात्मा शुद्ध आनन्दकन्द है, यह आत्मा, उसका अन्तर ज्ञान करके अर्थात् कि अनुभव करके। ज्ञान का अर्थ इतना यहाँ करना है। उसका अनुभव (करना) कि यह आत्मा शुद्ध अखण्ड अनादि-अनन्त, नित्यानन्द का अनुभव करके प्रतीति उसमें होना, ऐसे ज्ञान में भान में पहचान कर प्रतीति होना, उसे निश्चय समकित अथवा वीतराग सम्यक्त्व, उस सम्यक्त्व को वीतराग समकित कहते हैं। वीतरागदेव, उस समकित को वीतराग समकित कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : कब हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : चौथे में। अभी होता है। ऐसा कि आठवें में, नौवें में, दसवें में होगा? ऐसा पूछते हैं। यह आता है न बाहर में। वह सब लिखते हैं न। आठवें में, नौवें में, दसवें में निश्चय होता है। अरे भगवान! नीचे सराग होता है। वह आता है न सब पम्पलेट वाँचते हैं घर में। आहाहा! अरे भगवान!

वह स्वयं परमात्मा का स्वरूप ही उसका पूरा पड़ा है। उसकी निर्विकल्प अर्थात् राग की एकता टूटकर स्वभाव की वीतरागस्वभाव में एकता हुए बिना और उसका अनुभव हुए बिना सम्यग्दर्शन कभी सच्चा हो नहीं सकता। समझ में आया? जिसमें पूरा अनन्त संसार का कट हो गया।

मुमुक्षु : व्यवहार में होता होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार समकित से होता होगा? व्यवहार तो राग कहेंगे अभी। व्यवहार समकित तो राग है। ऐसा निश्चय समकित हो, वहाँ स्वयं वीतराग सर्वज्ञ जब तक न हो, उसे व्यवहार समकित का राग होता है। कैसा? यह कहते हैं अभी। पहली निश्चय की बात की। समझ में आया? ओहो! अपना स्वभाव महान शुद्ध परम आनन्द ऐसा स्वभाव दृष्टि में, ज्ञान में लेकर, अनुभव करके उसमें प्रतीति होना, उसमें प्रतीति होना कि यह आत्मा, इसका नाम निश्चय-सच्चा समकित है। यह उसे चौथा गुणस्थान कहा जाता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कि चार दूनी आठ। आठवें गुणस्थान में निश्चय होता है और यह चौथे में व्यवहार होता है। ऐसा। अरे! क्या हो? इस काल में ऐसी बात बाहर आयी खोटी, पहले ऐसा नहीं था। यह समुच्चय बिना भान के चलता था।

मुमुक्षु : परम सत्य बाहर आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर बात आयी तब कहे कि नहीं। व्यवहार समकित ही चौथे, पाँचवें, छठवें में होता है।

मुमुक्षु : सातवें में होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : सातवें में भी व्यवहार होता है। आठवें में निश्चय का एक देश। सच्चा वास्तविक निश्चय तेरहवें में। (ऐसा अज्ञानी कहते हैं)।

यहाँ तो कहते हैं, भगवान आत्मा विद्यमान प्रभु महान पदार्थ के सन्मुख और विकल्पादि निमित्तों से विमुख। विकल्पादि जो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, उससे विमुख और स्वभाव पूर्णानन्द के सन्मुख, उसका ज्ञान करके जो सम्यग्दर्शन—प्रतीति हो, ज्ञान करके, हों! भान बिना किसकी श्रद्धा करना? यह आत्मा शुद्ध परिपूर्ण पवित्र है, ऐसा ज्ञान में आया और उसमें प्रतीति हुई, उसे सच्चा समकित और मोक्ष के मार्ग का भाग कहते हैं।

अथवा अब व्यवहार कहते हैं। देखो, यह निश्चय समकित अर्थात् वीतराग सम्यक्त्व। **अथवा वीतराग सर्वज्ञदेव के उपदेशे हुए...** त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव परमात्मा ने पर्याय में जो षट् द्रव्य देखे, उन्होंने उपदेश षट् द्रव्य—छह द्रव्य (का दिया)। तो छह द्रव्यों में अनन्त सिद्ध भी आ जाते हैं। समझ में आया? अनन्त सिद्ध, लाखों केवली... महाविदेहक्षेत्र में अभी विराजते हैं लाखों केवली। तीर्थंकर बीस आदि। लाखों केवली अनन्त (सिद्ध), वे सब षट् द्रव्य में समाहित हो जाते हैं। अनन्त निगोद, असंख्य समकिती साधक, वे सब षट् द्रव्य में समाहित हो जाते हैं। उन षट् द्रव्य की श्रद्धा वह व्यवहार समकित है, अर्थात् शुभराग है। वास्तव में वह समकित नहीं। क्योंकि समकित गुण की वह पर्याय नहीं। निश्चय सम्यक्त्व, वह श्रद्धागुण की सम्यक् पर्याय है। निश्चय समकित, वह वस्तु स्वरूप जिसमें श्रद्धागुण त्रिकाली पड़ा है, उसका अन्तर स्वभाव का अवलम्बन लेकर जो श्रद्धा-सम्यक् प्रतीति—अनुभव में हो, वह तो श्रद्धागुण की सवळी-सुलटी-सम्यक् पर्याय है। समकित एक पर्याय है, गुण नहीं।

जो श्रद्धागुण की विपरीत मिथ्या पर्याय थी — मिथ्याश्रद्धा, वह पलटकर सम्यक् श्रद्धा (होती है) वह श्रद्धागुण की ही वर्तमान निर्मल पर्याय है। वह निश्चय है, वह वीतराग समकित है, वह सच्चा समकित है। साथ में षट् द्रव्य की श्रद्धा का विकल्प-राग उठता है, उस राग को समकित कहना, वह उपचार से है, व्यवहार से है। राग, वह चारित्रगुण की उल्टी पर्याय है। उसे व्यवहार समकित कहना, वह उपचार से है। समझ

में आया? षट् द्रव्य, सात तत्त्व में पुण्य-पाप आस्रव में मिल जाते हैं, नौ पदार्थ में पुण्य-पाप पृथक् पड़ जाते हैं। देखा!

और पाँच अस्तिकाय... काल के अतिरिक्त पाँच अस्तिकाय। काल अस्ति है, परन्तु काय नहीं। **उनका श्रद्धानरूप...** इसका अर्थ यह कि उनका जो ज्ञान प्रगट हुआ क्षयोपशम और उसके साथ राग-विकल्प है, यह उसे **सराग सम्यक्त्व...** व्यवहार समकित कहा जाता है। जहाँ निश्चय हो, वहाँ व्यवहार होता है। निश्चय बिना व्यवहार नहीं हो सकता। समझ में आया? जहाँ स्व आश्रय से सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ, वहाँ पराश्रय से जो राग है, उसे व्यवहार समकित का आरोप कहा जाता है।

यह निश्चय-व्यवहार दो प्रकार का सम्यक्त्व है। इस प्रकार के, हों! दो प्रकार का कथन-निरूपण है। दो प्रकार के समकित सच्चे नहीं। दो प्रकार का निरूपण है। ऐसा ज्ञान भी सम्यग्ज्ञान-आत्मज्ञान और शास्त्रज्ञान, ऐसे दो प्रकार के ज्ञान में ज्ञान एक ही यथार्थ है। निरूपण ज्ञान के दो प्रकार से चलते हैं। इसी प्रकार चारित्र का निरूपण दो प्रकार से है — एक भगवान आत्मा अपने रागरहित वीतराग परिणति से परिणमे, वह सच्चा चारित्र है। पंच महाव्रतादि का विकल्प-राग उठे, वह उपचार चारित्र है। वास्तविक चारित्र नहीं, उसे चारित्र कहना, वह व्यवहार का लक्षण है। यहाँ **निश्चय-व्यवहार दो प्रकार का सम्यक्त्व है। निश्चय का नाम वीतराग है, व्यवहार का नाम सराग है।** स्पष्ट स्पष्टीकरण किया है। शुभ उपयोग है, वह सरागपना और यह अन्तर में शुद्ध परिणति में प्रतीति, शुद्धस्वभाव के भान में प्रतीति, वह निश्चय है। कहो, समझ में आया?

यह सम्यग्दृष्टि जीव निश्चय वह जिनराज को स्वामीरूप से स्वीकारता है। अनन्त काल का नौवें ग्रैवेयक में गया जैन दिगम्बर साधु होकर, उसने भी जिन को स्वामीरूप से स्वीकारा नहीं। हजारों रानियाँ छोड़कर, त्यागकर जंगल में, मुनि ध्यान में पड़ा हो ऐसे। उस प्रकार के विकल्प कम करके। परन्तु वह शुभराग परालम्बी है, उसमें उसकी दृष्टि पड़ी है। रागरहित भगवान अन्दर पूर्णानन्द प्रभु के ऊपर वह दृष्टि करता नहीं। इसलिए उसे निश्चय समकित नहीं, इसलिए वास्तव में उसे व्यवहार समकित भी नहीं। व्यवहाराभासरूप से है। समझ में आया?

स्वाश्रयो निश्चय, पराश्रयो व्यवहार — यह सिद्धान्त का महासूत्र है। अपने स्वरूप में स्व आश्रय करके, पहिचानकर, ज्ञान करके, भान करके, अनुभव करके उसकी प्रतीति अन्दर श्रद्धा होना, वह सच्चा समकित स्व-आश्रय है और षट् द्रव्य आदि की श्रद्धा करना, वह पर-आश्रय — लक्ष्य से इसलिए व्यवहार समकित है। समझ में आया? एक ही आत्मा कोई माने और व्यवहार के विकल्प में भी एक ही आत्मा है, ऐसा माने तब तो उसका निश्चय भी खोटा है और व्यवहार भी खोटा है। समझ में आया? षट् द्रव्य-वस्तु है अनादि-अनन्त। नौ तत्त्व वस्तु है, नौ पदार्थ। सात तत्त्व, पंचास्तिकाय जगत की चीज़ है। इसके लिये (कहते हैं कि) उसके ज्ञान की पर्याय (के साथ) ऐसी श्रद्धा-विकल्पवाली श्रद्धा हो, उसे व्यवहार कहते हैं और त्रिकाल ज्ञायकभाव का आश्रय करके सम्यक्त्व हो, उसे निश्चय और वीतराग समकित कहते हैं। निश्चय ऐसा आत्मा को मानता हो, उसे व्यवहार में षट् द्रव्य आदि की श्रद्धा का विकल्प होता है। ऐसा कहते हैं कि एक ही आत्मा है और सब अव्यापक है और एक ही अद्वैत है, ऐसा माने, उसे निश्चय और व्यवहार एक भी सच्चा नहीं। इसलिए कहा।

षट् द्रव्य, सात तत्त्व, नौ पदार्थ और पाँच अस्तिकाय... सात तत्त्वों की श्रद्धा का जिसे ठिकाना नहीं, उसे निश्चय समकित कभी हो नहीं सकता। और उसकी श्रद्धा करने से भी निश्चय समकित नहीं होता। समझ में आया? यह तो ज्ञान के रसिक को रसिक होना हो उसकी बात है। अनादि का राग का रसिया... भगवान आत्मा, ओहो! अनन्त काल से अशरण... अशरण... अशरण... अशरण... कहीं उसे शरण मिला नहीं। वह शरण तो अन्दर है। भगवान पूर्णानन्द प्रभु की शरण में जा न! आहाहा!

वहाँ तालाब में पड़े न भाई, धीरुभाई गुजर गये, नहीं? जामनगर। हम देखने गये थे वहाँ। एक क्रीड़ा के लिये, खेल के लिये गये थे। वहाँ आगे देखने गये थे तो कहे यहाँ हाथ डाला था। लोग कहे वह अन्दर लड़का फिसल गया, अपने यह छोटाभाई यह ...वाले। खेलने गया था, क्या कहलाता है? खेल। वहाँ एक तालाब है। रणजीत तालाब है। उसमें पानी पीने गये लड़के। तीन लड़के पीकर निकल गये और यह स्वयं पीछे रह गया। अपने अकलंक-निकलंक का खेल यहाँ किया था। शिक्षक है। बहुत रुचिवाला

था, जिज्ञासु, धीर था। नाम धीरू था। हम देखने गये थे कि वह कहाँ फिसला। वहाँ गये तो कहे, इस जगह ऐसे काई थी और ऐसे फिसला, फिसला साथ में हाथ डाला ऐसे पकड़ने को कुछ। परन्तु क्या पकड़ में आये वहाँ? समाप्त हो गया। तैरना आवे नहीं। कोई शरण? इसी प्रकार बाहर में शरीर की स्थिति के लिये ऐसे हाथ डाला, वह पत्थर की हो न ऐसे पाळ। पुल की बाँधी हुई पाळ। तो पाळ में वह पानी ऐसे-ऐसे भटके न तो काई हो गयी। लील-फुग समझे न? काई। काई हो गयी। इसलिए वह फिसल गया शरीर तो हाथ ऐसे डाला तो कुछ सहारा मिले, परन्तु वहाँ कहाँ सहारा था? फिर ऐसे पैर हुआ, देह छूट गया। चौबीस घण्टे निकाले। देखो यह! बाहर में कहाँ शरण है? शरीर की स्थिति हो तो वहाँ निमित्त ऐसे होते हैं। स्थिति नहीं हो वहाँ।

मुमुक्षु : निमित्त नहीं था, इसलिए गुजर गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो पूर्ण स्थिति ऐसी ही थी उसकी। उसी समय में — उसी काल में और वहाँ क्षेत्र में और उस प्रकार से देह छूटने की थी। तीन काल में कोई बदल नहीं सकता।

यहाँ तो कहना है कि आहाहा! उसमें — पानी में तिरने के लिये कि कोई हाथ आवे कुछ ऐसे। जवान व्यक्ति। यहाँ कॉलेज में पढ़ता था, भावनगर। यहाँ आवे। शनि-रवि (वार को) अवकाश पड़े तो यहाँ हमेशा आवे। चलो न देखने जायें। वैराग्य का स्थान, कहा, यह देखो। आहाहा! कोई शरण नहीं। जहाँ नजर डालनी है, उस चीज़ में नजर करता नहीं। यह शरीर और वाणी और पुण्य यह विकल्प और पाप। या तो देव-गुरु-शास्त्र तिरा देंगे और या तो सम्मेदशिखर और शत्रुंजय तिरा देगा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ आया नहीं। वह दास हुआ वीतराग का दास। राग का दास छूट गया, वह तिरता है। आहाहा! तब वह वीतराग का दास होता है। ऐसा नहीं कहा उसमें? समयसार में? भगवान! केवली की सच्ची स्तुति किसे कहना तब? शिष्य ने पूछा कि यह बाहर राजा की महिमा करे तो राजा का कहलाये, परन्तु आस-पास बाग की, वह महिमा करने से राजा की महिमा नहीं। इसी प्रकार यह शरीरादि की महिमा

करे तो वह केवली की स्तुति नहीं कहलाती। वह केवली इस माता के पुत्र थे और इस पिता के पुत्र थे और उनका शरीर ऐसा था और ऐसे रंगे के थे, ऐसे फलाना थे। यह केवली की स्तुति (नहीं है)। तब केवली की स्तुति कहना किसे? प्रभु! शिष्य ने प्रश्न किया। केवली की स्तुति किसे कहना? तब उत्तर ऐसा दिया कि आत्मा रागरहित होकर, जितेन्द्रिय होकर आत्मा को जो अनुभव करे, वह केवली की स्तुति करता है। ऐसा ३१ वीं गाथा में जवाब दिया। परन्तु हम पूछते हैं कि तीर्थंकर की सच्ची स्तुति कौन सी? ऐसा पूछकर तुमने डाला आत्मा अन्दर। समझ में आया? शीर्षक बाँधा है ऊपर यह, हों! समझ में आया? कि सच्ची स्तुति क्या? ३१ शुरु की है न! ३१ सामने है। देखो, यह नीचे। कौन जाने कैसे है? देखो! पृष्ठ में कुछ डाला नहीं, हों! रखा नहीं। यह याद भी अभी आया। ऐसा इसमें मस्तिष्क में यह आया।

(श्री तीर्थंकर-केवली की) निश्चय स्तुति कहते हैं। श्री तीर्थंकर केवली की निश्चय स्तुति कहते हैं। संस्कृत है न उसमें भाई! संस्कृत में है। तीर्थंकर-केवली की निश्चय स्तुति। देखो, शीर्षक यहाँ है। इस ओर है। तब उसका जवाब ऐसा भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने दिया।

जो इंदिये जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं।
तं खलु जिदिंदियं ते भणंति जे णिच्छिदा साहू॥३१॥

जो कोई, विषय, द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय यह सब परद्रव्य है, इनकी रुचि छोड़कर अकेला ज्ञायकभाव, उसकी रुचि और एकाग्र हो और उसके गुण में एकाग्र हुआ, उसने गुण की स्तुति की, उसने केवली और तीर्थंकर की स्तुति की। ऐसा उत्तर दिया, देखो, देखो है न नीचे? **इस प्रकार शरीर का स्तवन करने पर भी उससे तीर्थंकर-केवली पुरुष का स्तवन नहीं होता क्योंकि यद्यपि तीर्थंकर-केवली पुरुष को शरीर का अधिष्ठातापना है तथापि, सुस्थित सर्वांगपना, लावण्य आदि आत्मा के गुण नहीं होने से तीर्थंकर-केवलीपुरुष को उन गुणों का अभाव है।** इसलिए शिष्य ने पूछा कि प्रभु! निश्चय स्तुति तीर्थंकर की कहना किसे? उत्तर देते हैं कि यह भगवान आत्मा रागरहित चिदानन्द जितेन्द्रिय। यह इन्द्रियाँ भावेन्द्रिय खण्ड-खण्ड एक समय का विषय करे

वह, द्रव्येन्द्रिय और विषय सब। विषय अर्थात् सब, हों! भगवान आदि सब पर। उनमें से दृष्टि हटाकर ज्ञायक में दृष्टि लगाकर अपने आत्मा की दृष्टि सहित को अनुभव करे, उसने केवली और तीर्थंकर की स्तुति की, (ऐसा) कहा जाता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह देखो न, यह अटपटी बात आयी है। तीर्थंकर को लक्ष्य में से छोड़ा और आत्मा को लक्ष्य में लिया, तब तीर्थंकर की स्तुति की, ऐसा कहा। आहाहा! कोई विवाद उठावे। परन्तु प्रभु! हम पूछते हैं उसका जवाब? उसका जवाब यह है, सुन न! था, वह हो गया। यह देखो न, पूछा ऐसा। कोष्ठक में डाला है। पाठ में इतना **निश्चयस्तुति कहते हैं। 'अब, (तीर्थंकर-केवली की) निश्चय स्तुति कहते हैं। उसमें पहले ज्ञेय-ज्ञायक के संकरदोष का परिहार करके स्तुति कहते हैं :—** वहाँ यह गाथा रखी। कहो, समझ में आया? तीर्थंकर का लक्ष्य छोड़ा, केवली का लक्ष्य छोड़ा, तब आत्मा का लक्ष्य किया, तब केवली की स्तुति कही, देखो न! आहाहा! समझ में आया? इसमें संस्कृत टीका है न उसमें? शब्द है या नहीं? देखो! '**अथ निश्चयस्तुतिमाह।**' ऐसा है। देखो, '**अथ निश्चयस्तुतिमाह।**' वह कोष्ठक में डाला न तीर्थंकर-केवली। '**अथ निश्चयस्तुतिमाह। तत्र ज्ञेयज्ञायकसंकरदोषपरिहारेण तावत्—**' पहली यह बात करेंगे। अब पूछते हैं कि निश्चय स्तुति भगवान की। तुम कहो कि शरीर नहीं, फलाना नहीं, फलाना नहीं। वह स्तुति कहलाये नहीं। तब अब सच्ची स्तुति कौनसी? इसका अर्थ हुआ न इसमें? अब भगवान के आत्मा की स्तुति कौन सी? कि यह आत्मा की स्तुति यह भगवान के आत्मा की स्तुति। '**जो इंदिये जिणित्ता**' है न, देखो! '**अथानंतरं यदि देहगुणस्तवनेन निश्चयस्तुतिर्न भवति**' यह जयसेनाचार्य में है। '**तर्हि कीदृशी भवतीति पृष्टे**'। देखा! देखो, '**अथानंतरं यदि देहगुणस्तवनेन निश्चयस्तुतिर्न भवति तर्हि कीदृशी भवतीति पृष्टे सति द्रव्येन्द्रियभावेन्द्रिययपंचेन्द्रियविषयान् स्वसंवेदनलक्षणभेदविज्ञानेन जित्वा योऽसौ शुद्धमात्मानं संचेतयते स जिनो जितेन्द्रिय इत सा चैव निश्चयस्तुतिः परिहारं ददाति—**' यह जयसेनाचार्य की टीका में है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ले! यह समयसार। नीचे कोई इस शास्त्र में से उतारा (नहीं)। यह पण्डितजी बड़े बैठे हैं या नहीं? इन्हें सब खबर मुखाग्र नहीं? यह जयसेनाचार्य का पाठ पढ़ा गुजराती। उसमें संस्कृत नहीं था। उसमें संस्कृत नहीं था। इसलिए यह संस्कृत जरा (पढ़ा)। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा! परन्तु मैं पूछता हूँ न प्रभु यह, कि केवली के आत्मा की स्तुति हमको बताओ। न्यालभाई! यह तो पूछे यह और जवाब यह।

मुमुक्षु : बड़े की बातें सुनना और समझने के लिये बड़ा होना पड़ेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक व्यक्ति पूछता था। यहाँ नहीं था भाई वह (संवत्) १९९२ में? केवली ने देखा तो बदलेगा नहीं (उसमें) पुरुषार्थ कहाँ रहा? वह साधु हुआ था न, बाद में श्रद्धा भ्रष्ट हो गयी। पहले स्थानकवासी साधु था, बाद में श्रद्धा भ्रष्ट हो गयी। जवाहरलाल में साधु था। फिर यह निमित्त-नैमित्तिक की श्रद्धा में विवाद आ गया उसे कि इसमें असाता का उदय आवे और यहाँ बैल का सींग लगे, ऐसा मेल कौन करता है ऐसा? इसलिए बीच में भगवान चाहिए। असाता का उदय आवे यहाँ और यहाँ कोई बाहर निकले बलद-बलद—बैल। यहाँ सींग लगे तो वह असाता का उदय हो, तब इन दो का मेल कौन करता है? श्रद्धा भ्रष्ट हो गयी। अरे! कहा ऐसा तो अनन्त बनता है समय-समय में, निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध करे कौन अन्दर? फिर उसने प्रश्न रखा था। दो-तीन व्यक्ति ही थे रामजीभाई और मैं। ९२ की बात है। बापू! यह केवलज्ञानी को जो तुम ऐसा कहो, केवलज्ञानी ने जो देखा, उसमें कुछ बदले नहीं। तो फिर पुरुषार्थ कहाँ रहा? ऐसा प्रश्न रखा, प्रश्न रखा।

मुमुक्षु : वह का वह चला आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह का वह चला आता है, वह का वह चला आता है। ९२ में पहला प्रश्न रखा उसने। ९२ के वर्ष। २९ वर्ष हुए। इसलिए मैंने ऐसा कहा कि भाई! केवलज्ञान को मानते हो तुम? ऐसा पूछा था। रामजीभाई ऐसा बोले, परन्तु ऐसा नहीं पूछते। वे कहते हैं उसका जवाब यह है। वे कहते हैं मुझे खबर है, कहा। यह केवलज्ञानी ने देखा वह होगा, उसमें पुरुषार्थ कहाँ? ऐसा प्रश्न रखा। केवलज्ञान उड़ाना

है उसे। समझ में आया? भाई! तुम पूछते हो कि केवलज्ञानी ने देख, वह होगा तो पुरुषार्थ कहाँ रहा? तो तुम केवलज्ञान को मानते हो? परन्तु तुम केवलज्ञानी हो, ऐसा स्वीकार करते तो उन्होंने देखा वैसा होगा, ऐसा मानते हो? केवलज्ञान मानते हो या नहीं पहले? यह निर्णय करो, कहा। तुम्हारे प्रश्न में ही विवाद उठा है। तुम्हारे केवलज्ञान मानना नहीं। एक समय में तीन काल, तीन लोक जाने, वह तुम्हारे उड़ाना है। मानना नहीं। क्योंकि वह मानने जाये तो यह सब इस प्रमाण होगा, तो पुरुषार्थ कहाँ रहा? परन्तु केवलज्ञान तुम मानते हो या नहीं? पहले यह प्रश्न है, कहा। ९२ के वर्ष की बात है। केवलज्ञान है, ऐसा मानते हो तुम। केवलज्ञान है, ऐसा यदि मानो तो स्वभाव सन्मुख पुरुषार्थ आ जाता है। समझ में आया? ऐसी सब बहुत शंका पड़ गयी और फिर श्रद्धा से भ्रष्ट हो गया। जैन श्रद्धा रही नहीं उसे। फिर वह उड़ाने लगे केवलज्ञान और यह। पढ़ा हुआ सही ३२ सूत्र स्थानकवासी के। होशियार पढ़ा हुआ बहुत। स्थानकवासी का साधु जवाहरलालजी का, थे बड़े, उनका शिष्य हुआ। पाँच वर्ष में पण्डित कहलाया। श्रद्धा भ्रष्ट हो गयी। यह क्या? यह सब! बीच में कोई ईश्वर चाहिए। अब कौन सा ईश्वर चाहिए?

मुमुक्षु : फिर वहाँ ही बात निपट गयी या आगे चली?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, उसे तो कहाँ दूसरा कुछ... फिर क्या करे वह? पहले तुमने पूछा है कि केवलज्ञानी ने देखा, वैसा होगा, उसमें पुरुषार्थ कहाँ रहा? उसका प्रश्न था पहला ही ९२ में। यह प्रश्न तो हमारे (संवत्) १९७२ से चलता है। ७२ से चला आता है हमारे सम्प्रदाय में। अभी चला आता है ऐसा का ऐसा। कहा नहीं? ७२ से फाल्गुन शुक्ल १३ को यह प्रश्न उठा। ७२ के वर्ष। २८ और २१, ४९ वर्ष हुए। वह सरवा है सरवा। वींछिया से उठकर सरवा गये तीन कोस, वहाँ से तीन होता है पाळियाद। रात्रि में प्रश्न उठा। मूलचन्दजी बारम्बार रात्रि में प्रश्न किया करते। क्या कहते हो तुम, कहा, यह बारम्बार? केवली ने देखा वह होगा, भगवान ने देखा वह होगा, अपने अधिकार की कुछ बात नहीं। अपना पुरुषार्थ कुछ काम करे नहीं। पुरुषार्थ तब काम करेगा। किसके वाक्य हैं यह? कहा, यह वाणी कौन बोलता है? भगवान की

ऐसी वाणी आगम में है? क्या बोलते हो तुम यह? तब तो प्रवचनसार पढ़ा भी कहाँ था? खबर भी नहीं। ८०, ८१, ८२ गाथा।

वीतराग की वाणी में वीतरागता आती है, कहा। सर्वज्ञ की वाणी में वीतरागता आवे और सर्वज्ञ जिसके ज्ञान में बैठे, उसे भव होते नहीं। क्या कहते हो? फिर मुझसे बोला गया जरा तब तो। उम्र छोटी न। कहा, कदाचित् भगवान ने तुम्हारे अनन्त भव देखे होंगे। दो वर्ष की दीक्षा, अभी तो २५ वर्ष की उम्र। ५० वर्ष पहले की बात।

क्या कहते हो यह? सर्वज्ञ भगवान ने देखा, ऐसा जिसे प्रतीति में आवे, ऐसे जीव के भव भगवान के ज्ञान में होंवे? बिल्कुल नहीं। जिसने ज्ञान में भगवान बसाये, भगवान को भव होवे तो उसे भव हो फिर। अल्प कोई एकाध-दो भव हो, वह अलग बात है। समझ में आया? ... तो हमारे गुरु थे वे बहुत भद्रिक थे, बहुत भद्रिक। कानजी! यह मूलचन्दजी बारम्बार ऐसा कहते, मुझे खटकता था। मूलचन्दजी बारम्बार ऐसा कहते थे। मुझे कहे, बात सच्ची लगती है। परन्तु वे बेचारे भद्रिक थे। और वापस श्रद्धा की खबर न हो न, इसलिए दूसरे दिन वे वापस भूल गये। वे मेरा पक्ष लेने गये, परन्तु हमारे गुरुभाई थे उसे कहा, मूलचन्दजी! केवली ने भव्य-अभव्य देखे हैं। भव नहीं देखे। ओय ...! ऐसे प्रश्न ७२ के फाल्गुन शुक्ल १३-१४ की यह चर्चा है। हमारे गुरु पक्ष करने गये, भद्रिक बहुत थे, हों! कषाय मन्द। देखा है या नहीं हीराजी महाराज को? भाई ने तो देखा होगा। ऐसे कषाय मन्द और तत्त्व की दृष्टि की कुछ खबर नहीं। परन्तु ऐसे कषाय मन्द, ब्रह्मचारी, ऐसे छाप लोक में बहुत अच्छी छाप, बहुत छाप गम्भीर। बहुत छाप अच्छी। इसलिए वे बेचारे पक्ष लेने गये, परन्तु कहे भगवान ने... उसको कहा। मुझे नहीं। भगवान ने-केवली ने भव्य-अभव्य देखे हैं। भव नहीं। यदि भव देखे हों तो पाँच समवाय सिद्ध हो जायें। पाँच समवाय वे मानते नहीं। हमारे विवाद तब ७२ से उठता है। वह माने... अरे! यह बोले। भगवान ने तो सब तीन काल, तीन लोक देखे हैं। केवलज्ञान में क्या बाकी है? और उस केवलज्ञान की जिसे प्रतीति और मोक्षतत्त्व की श्रद्धा हुई, मोक्ष तो अब कहलाये, तब तो मोक्ष कहाँ था? परन्तु केवलज्ञान की जिसे प्रतीति हुई, उसे भव हो नहीं सकते। भगवान की वाणी में, केवलज्ञानी (जिसे) बैठे, उसे भव हों, ऐसा आगम में नहीं आता।

वह ऐसा बोला ९२ में वापस। वह ७२, यह ९२। २० वर्ष। वह नास्तिक से पूछने लगा। केवली ने देखा। वह देखो, पुरुषार्थ कहाँ रहा? केवलज्ञानी मानते हो पहले, कहा? केवलज्ञानी मानते हो तुम? तुम्हारे प्रश्न के उत्तर में पहले केवलज्ञान मानते हो यह पहले, बाद में वह प्रश्न हो। कहे, मैं ऐसा पूछता नहीं। परन्तु तू पूछता है ही यह। तुझे केवलज्ञान उड़ाना है। एक समय की ज्ञान की सामर्थ्यता तीन काल, तीन लोक को जाने, यह तुझे उड़ाना है। इस बहाने सामने देखे, ऐसा (नहीं) होता, ऐसा तुम्हारे मनवाना है। नहीं, ऐसा नहीं होता।

केवलज्ञान आत्मा... ओहोहो! जिसे प्रतीति में बैठा, उसे राग अल्प बाकी हो, एकाध-दो भव हो, (बाकी उसे) भव-बव होते नहीं। उसका नाम केवली की स्तुति कहलाती है। भगवान की ऐसे नहीं। भगवान तो भगवान के पास रहे। स्तुति ऐसे निकली ३१ गाथा में।

और ८०, ८१, ८२ में यह निकला वापस प्रवचनसार में। भगवान के केवलज्ञान को कोई जाने, वह आत्मा को जाने बिना रहे नहीं, उसे दर्शनमोह नाश हुए बिना रहे नहीं। और वे भगवान राग-द्वेष टालकर वीतराग हुए, तब उन्होंने उपदेश भी ऐसा ही किया है। समझ में आया? उन भगवान का उपदेश भी ऐसा ही वाणी में—शास्त्र में होता है। दूसरा उपदेश होता नहीं।

यहाँ कहते हैं कि परन्तु केवली की स्तुति हमने पूछी। वह आत्मा है। यहाँ कहे कि जिनवर स्वामी किसके? जिनवर स्वामी किसके? कि चैतन्यस्वामी हो उसके। जो चैतन्यस्वामी हो, उसके जिनदेव स्वामी हो। राग का स्वामी हो, उसके जिनदेव स्वामी होते नहीं। बुद्धिवाला व्यक्ति है परन्तु अब जरा... उसमें सब शुभ से हो, कुछ व्यवहार से हो कुछ सहारा है या नहीं? सीधे निश्चय से हो निश्चय से? यह पूरा खटकता है, जगत को खटकता है। भाई! तेरी चीज़ अन्दर निरालम्बी पड़ी है ऐसे, बापू! ऐसे पर के ऊपर लक्ष्यवाला राग वह होवे तो यह हो, इसका अर्थ क्या? राग तेरे कषाय की मन्दता चाहे जितनी हो, परन्तु उस कषाय की मन्दता का लक्ष्य पर के ऊपर है। उस पर के लक्ष्य से अन्तर के लक्ष्य में जाया जाये, तीन काल-तीन लोक में नहीं। इसलिए वह व्यवहार का

पक्ष और लक्ष्य छोड़े तब निश्चय में आवे। उसके द्वारा आवे, (ऐसा नहीं होता)। समझ में आया? यह जिनवरस्वामी कहे, देखो, आहाहा!

'ढींग धणी माथे कीयो रे, कुण गंजे नर खेट?' आनन्दघनजी कहते हैं। 'विमळ जिन दीठां लोयण आज। ढींग धणी माथे...' यह हमारी काठियावाड़ी भाषा है, हों! आनन्दघनजी। ढींग अर्थात् बलवान धणी सिर पर धारण किया है अब। वीतराग परमात्मा को सिर पर धारा है। 'ढींग धणी माथे कीयो, कौण गंजे नर खेट।' अब गधे जैसा ... उससे कौन....। इसी प्रकार तीन लोक के नाथ वीतरागी देव की पर्याय जिनके हृदय में प्रविष्ट हुई है, उनके हम दास हैं और उन्हें हमने धनी (स्वामी) बनाया। समझ में आया? आहाहा!

यह चरणानुयोग में आता है न भाई, नहीं? प्रवचनसार में। उसमें आता है। हे इस शरीर के जनक—पिता! इस शरीर के, इस पुरुष के शरीर के जनक! ऐसा कहते हैं। यह आत्मा अब ज्ञानरूप से जगा है तो अब तुम आज्ञा दो। पण्डितजी! वह आता है न उसमें? शुरुआत में। आज्ञा दो। यह ज्ञानरूपी आत्मा जगा है, हों! खबर पड़ गयी? खबर न पड़े न? कोई कहता है न। यह ज्ञानज्योति जगी। पिता किसके? इस शरीर के, हों! इस आत्मा के नहीं। अब हमारी ज्ञानज्योति जगी है। यह हमारा पिता तो यह आत्मा है अन्दर। अनादि पिता, अनादि पिता देखो तो सही! यह संस्कृत है, भाई! है न पण्डितजी? अनादि पिता मेरा। आहाहा!

इस पुरुष के शरीर के जनक के आत्मा, पिता के आत्मा... पिता के आत्मा। अहो! इस पुरुष के शरीर की जननी के आत्मा! माता। इस पुरुष का आत्मा तुम्हारे से जनित नहीं। माता-पिता! यह आत्मा तुम्हारे से जन्मा नहीं, हों! ऐसा तुम निश्चय से जानो। इसलिए इस आत्मा को तुम छोड़ो, मुझे आज्ञा दो। जिसे ज्ञानज्योति प्रगट हुई है, हमने ज्ञानस्वरूप चैतन्यज्योति जानी है—जानी है। हमारी ज्योति प्रगट हो गयी है। ऐसा यह आत्मा, यह जो आत्मारूपी अपना अनादि जनक—अनादि का बाप, उसके पास जाता है। आहाहा!

भगवान आत्मा, हमारी निर्मल पर्याय का पिता-बाप आत्मा है। हमारी निर्मल

पर्यायरूपी प्रजा, उस प्रजा का बाप आत्मा, उसके पास हम तो अब जाते हैं। शरीर के पिता! छोड़ो हमको। वह कहीं 'छोड़ो' यह तो व्यवहार किया है। छोड़े तो मुनि हो, ऐसा कुछ नहीं है। आज्ञा न भी दे। चला जाये जंगल में। समझ में आया? यह लिखा है भाई अन्दर में? यह परिवार को प्रसन्न करके मुनिपना धारण करने का कोई नियम नहीं है। पण्डित (हेमराजजी) ने सब लिखा है। हाँ, सब लिखा है। बराबर है न! यह तो एक व्यवहार का विकल्प आवे, कि भाई! पिताजी! शरीर के पिता! इस आत्मा के तुम पिता नहीं। हमारा पिता अनादि-अनन्त भगवान विराजता है। आहाहा! हमारी पर्याय का पिता आत्मा है। वह यह प्रजा नहीं, इस शरीर की प्रजा तुम्हारे से नहीं। समझ में आया? यह प्रजा हमारी और इस प्रजा के पिता, उनके पास हम जाते हैं। सबका अर्थ किया है, हों! कहो, समझ में आया?

एक तो चौथे पद का यह अर्थ है,... चौथे पद का हुआ न यहाँ? '**जिणु सामिउ सम्मत्तु**' इतने पद का अर्थ किया। '**जिणु सामिउ सम्मत्तु**' ओहोहो! **और दूसरे ऐसा...** अब पाठान्तर है। '**सिवसंगमु सम्मत्तु**' ऐसा पाठान्तर है। पाठान्तर संस्कृत में है। '**सिवसंगमु सम्मत्तु' इति पाठान्तरे** अब इसकी व्याख्या चलती है। **इसका अर्थ ऐसा है कि शिव जो जिनेन्द्रदेव, उनका संगम अर्थात् भाव-सेवन इस जीव को नहीं हुआ,...** इस जीव को भाव—सेवन हुआ नहीं **और सम्यक्त्व नहीं उत्पन्न हुआ।** दो बातें ली। **सम्यक्त्व होवे तो परमात्मा का भी परिचय होवे।** परमात्मा अर्थात् स्वयं। स्वयं अन्दर भगवान परमात्मा पूर्णानन्द प्रभु, उसकी दृष्टि हो तो उसका परिचय हो कि यह आत्मा। दृष्टि बिना उसका परिचय, उसका संसर्ग हो नहीं। इसलिए आत्मा का संग करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन। वह परमात्मा का इसने संग किया, ऐसा कहते हैं। '**सिवसंगमु**' है न? जिसने आत्मा का संग, वीतरागी स्वभाव की दृष्टि और रुचि और सम्यक्त्व किया, वह शिवसंगम। वह परमात्मा का परिचय किया उसने। यह परमात्मा। उसने भगवान सच्चे का भी परमात्मा कहा, ऐसा कहा। १४३ (गाथा पूरी) हुई।

★ ★ ★

गाथा - १४४

आगे शुद्धात्मज्ञान का साधक जो तपश्चरण उसके शत्रुरूप गृहवास को दोष देते हैं — भगवान आत्मा का अनुभव, उसमें विघ्न के निमित्त यह स्त्री, पुत्र, घर। उसमें स्त्री को मूल लेंगे।

२७५) घर-वासउ मा जाणि जिय दुक्किय-वासउ एहु।
पासु कयंतें मंडियउ अविचलु णिस्संदेहु॥१४४॥

हे जीव! तू इसको घर वास मत जान,... इस घर को तू वास मत जान। यह घर **पाप का निवासस्थान है,...** यह पाप की उत्पत्ति के स्थान हैं। **यमराज ने (काल ने) अज्ञानी जीवों को बाँधने के लिये यह... 'पाशः मंडितः' अनेक फाँसों से मण्डित...** यह फाँसों से मंडित है यह सब। स्त्री, पुत्र और परिवार। आहाहा! एक स्वयं और मेरे का पार नहीं होता। मेरा... मेरा... मेरा... यह मेरा... यह मेरा... यह मेरा... धूल मेरी... स्त्री मेरी, पुत्र मेरा, पैसे मेरा। अरे! कितने मेरे करना है तुझे? कितने मेरे खड़ा करना है? मारा अर्थात् मारनेवाला। कितने तुझे खड़े करने हैं मारा? खूनी खड़े करना है कितने तेरे खून के करनेवाले? यह मेरा... यह मेरा... यह मेरा... यह मेरा... यह स्त्री, यह पुत्र, यह मकान, यह पैसा, यह वस्त्र। कितने खड़े करने हैं तुझे?

यह यम अर्थात् काल ने फाँसे बाँधे हैं। जैसे हिरण को बाँधने के लिये जाल रखते हैं न, उसी प्रकार यह सब अज्ञानी को बाँधने के लिये फाँसे हैं। अज्ञानी अर्थात् उसका भान नहीं जिसे कि यह क्या? और मैं कौन हूँ? मेरी चीज़ क्या और यह क्या है? मुझे और इसे कुछ सम्बन्ध नहीं। भान नहीं होता ऐसे अज्ञानी को यह फाँसले बाँधे हैं। इसमें भी अधिक न्याय देंगे अभी। **बहुत मजबूत बन्दीखाना बनाया है, इसमें सन्देह नहीं है।** बन्दीखाना, उसमें भी कहेंगे।

भावार्थ :- यहाँ घर शब्द से मुख्यरूप स्त्री जानना,... यह स्त्री ली है मुख्य। अर्थात्? उसमें आया है न भाई, उसमें भी? स्त्री को भी कहते हैं, हे इस पुरुष के शरीर की रमणी! हे इस पुरुष के शरीर की रमणी का आत्मा! मैं तुझे कहता हूँ कि इस आत्मा

को तू रमण नहीं करा सकती। मुझे ज्ञानज्योति प्रगट हुई है, हे रमणी! शरीर को रमानेवाली रमणी! मैं अनादि मेरी अनुभूति रमणी के निकट जाता हूँ। आहाहा! यह... बात है, हों! अकेली स्त्री छोड़कर भगे, ऐसा नहीं। इस पुरुष के शरीर की रमणी के आत्मा! उसके आत्मा को कहना है न? तू इस आत्मा को अब रमा नहीं सकेगी। शरीर को रमा। क्यों? यह आत्मा ज्ञानज्योति है। प्रगट हुई है, भान हुआ है। हम तो ज्ञान हैं, हों! हम शरीर, वाणी और राग नहीं। ऐसे ऐसी टीका है। वह हमारी अनादि अनुभूति, अनादि अनुभूति हमारी रमणी, उसके निकट हम जाते हैं। छोड़, लक्ष्य छोड़ने दे। कहो, समझ में आया?

हम अनुभूति आत्मा के आनन्द की अनुभूति (प्रगट करने के लिये दीक्षा लेना चाहते हैं)। भाषा तो ऐसी ली (कि) अनादि की अनुभूति, भाई! ऐसा लिया। अर्थात् हमारी शक्ति में तो अनुभूति पड़ी ही है। हमारा अनुभव आत्मा में अनादि पड़ा है अनादि। वह प्रगटरूप से यहाँ ज्ञानज्योति प्रगटी, अब आत्मा में रमना चाहते हैं। हे पुरुष की, इस पुरुष के शरीर की रमणी! छोड़, लक्ष्य छोड़ने दे। हम लक्ष्य छोड़ते हैं, तू (भी) लक्ष्य छोड़ दे। आहाहा!

मुमुक्षु : धन्य स्वरूप धन्य .... !

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रस्फुटित मस्ती प्याला है। यह तो बहुत सरस लिखा (हेमराज) पण्डित ने तो कि भाई! यह कहीं विकल्प आया है, उसके कर्ता-हर्ता नहीं। जब से सम्यग्दर्शन हुआ अनुभव-ज्ञान में, तब से राग के कर्ता-हर्ता छूट गये हैं, परन्तु व्यवहार से ऐसा विकल्प चारित्रदोष का बाकी है, इसलिए ऐसी एक वाणी निकली और इस जाति का विकल्प होता है। (हेमराज) पण्डित ने बहुत सरस-बहुत सरस लिखा है। हेमराज पण्डित ने लिखा है, हाँ हेमराज पण्डित ने बहुत अच्छा लिखा है। कहो, समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि घर का मूल स्त्री। अर्थात् कि स्त्री का आश्रय करनेवाला विकल्प। वह रमानेवाली है। ऐसे भोग, राग का भोग, वह स्त्री है और उसका निमित्त स्त्री है, फाँस है यह। छोड़, लक्ष्य छोड़, कहते हैं। भगवान आत्मा, हमारी अनादि

स्वानुभूतिरूपी रमणी हमारे पास है वह। समझ में आया? शक्तिरूप से तो अनुभूति त्रिकाल पड़ी है। पर्यायरूप प्रगट करने के अनुभव के लिये, हे स्त्री! छोड़ मुझे। अब तू मुझे रमा सके, ऐसा नहीं है। सम्यग्दृष्टि के वैराग्य के वचन भी वहाँ मस्त होते हैं। ऐसा नहीं होता कि मुझे ऐसा करोगे, मुझे ऐसा होगा। चरणानुयोग का अधिकार भी कुन्दकुन्दाचार्य की शैली ही कोई... व्यवहार अधिकार है परन्तु गजब की बातें उनकी!! ओहोहो! द्रव्यानुयोग का अधिकार अलौकिक, उसके साथ चरणानुयोग का निमित्त कैसा विकल्प, कैसी जाति होती है और उस समय कैसे संयोग का अभाव या संयोग होते हैं? अद्भुत वर्णन! अद्भुत वर्णन...!! वस्तु की स्थिति का वर्णन।

हे स्त्री! अकेले तुझे छोड़ते नहीं हम। जानकर हमारे पास एक-दूसरी रमणी है, वहाँ जाने के लिये छोड़ते हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया? स्वानुभूतिरूपी रमणी। हमारा स्व अनुभव, उसकी जो रमणी—परिणति, वह परिणति प्रगट हो, वह स्वभाव में तो पड़ी है और प्रगट हो। वहाँ कहीं अद्धर से आती है? प्राप्त की प्राप्ति है, कुएँ में हो वह बाहर आवे या मुफ्त का आता है? वह अन्दर पड़ा है हमारा स्वानुभव रमणी शक्ति, वह प्रवाह उसकी दृष्टि होने से वह प्रवाह अन्दर में से आता है। राग में, विकल्प में, पुण्य में, निमित्त में से नहीं। ऐसा पहले धड़ाके बोलते हुए तो माँगणी करता है। आहाहा! क्या बात! परन्तु यह एक बोलते भी याद न रहे।

तुम्हारी उस मोटर में गये थे न एक बार? और मोटर में भाई थे साथ में, प्रभुभाई आये थे। और एक वह आधा घण्टा बाकी रहा था और रखा था कुछ मुझे। 'देख लो रे संतों की...' कुछ कौन जाने भाषा भूल गये हम। मस्ती... वह कहाँ से ... तेरे भजन इसमें? वह रेडियो में आया हुआ। जंगल में आधा घण्टा बाकी रहा राजकोट, हम यहाँ से गये तब। तब वह ड्राईवर था उसने जरा ऐसा किया। वहाँ ऐसी भाषा थी। नहीं? चन्दुभाई थे या नहीं? देखा, भाषा ही भूल गये। देख लो सन्तों की विभूति। ऐसा कोई शब्द था। उसने तो उस बाहर के वैराग्य की बात से रचा हुआ।

यहाँ तो भगवान आत्मा की विभूति। उसकी क्या महिमा! आहाहा! जिसके चैतन्य में कहते हैं, यह स्वानुभूति तो हमारे पेट में—ध्रुव में पड़ी है। केवलज्ञान हमारे

पेट में पड़ा है, वहाँ से आता है, बाहर से नहीं आता। चार ज्ञान में से केवलज्ञान नहीं आता। आहाहा! मोक्षमार्ग में से मोक्ष नहीं आता। मोक्षमार्ग का तो व्यय होता है। उत्पाद, व्यय में से आता है? व्यय (होकर) ऐसा जो उत्पाद आवे, प्रवाह अन्दर में पड़ा है शक्तिरूप से ऐसा... हमारी स्वानुभूति रमणी आनन्द की पड़ी है अन्दर में। वह हमें दृष्टि देकर ज्ञान-भान हुआ, वह रमणी उसके पास हम जाते हैं। छोड़ उसे तू, छोड़ दे। आहाहा!

देखो न, चरणानुयोग का अधिकार भी खुमारी और मस्ती चढ़ा दे, ऐसा है न! वीतराग के शास्त्र हैं। कोई भी अनुयोग हो नहीं, उसमें क्या है? उसमें वीतरागता जिसमें वर्णन की है अकेली। ओहोहो! कथा का हो भले आदिपुराण की कथा, परन्तु उसमें तत्त्व भरा है। मुख्यरूप से बात होती है, परन्तु वापस द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग में भरा हो थोड़ा। नहीं, ऐसा नहीं। मुख्यरूप से एक और दूसरे तीनों गौण में होते हैं। परन्तु यह दृष्टि और इस नय को समझे बिना शास्त्र का उकेल नहीं कर सकेगा। यह वस्तु ऐसी और यह भेद और यह पर्याय और निश्चय यह। यह किस नय का कथन है, इसके ज्ञान बिना नहीं समझ सकेगा।

पुरुषार्थसिद्धि उपाय में लिया है न भाई! कहनेवाला तो निश्चय-व्यवहार का जाननेवाला है, परन्तु सुननेवाला भी ऐसा चाहिए। आता है न उसमें आता है। पण्डितजी! गाथा में आता है। पुरुषार्थसिद्धि उपाय। उसे भी निश्चय-व्यवहार का ज्ञान (होना चाहिए)। है न? वह गाथा है। है, ऐसा कहे, तुम ऐसा (कहते हो)? हाँ, उसे भी उसका—निश्चय-व्यवहार का ज्ञान होना चाहिए। तो यथार्थ श्रोतारूप से श्रवण कर सकेगा। समझ में आया? है या नहीं? अब समय हो गया है। यह आता है उसमें, भाई! श्रोता को निश्चय-व्यवहार का (ज्ञान) होना चाहिए, उसे मध्यस्थ से...

मुमुक्षु : व्यवहार-निश्चय ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... समझ में आया इसमें? उसे रस... श्रोता के लिये ही कहा। तेरे लिये भी बराबर ध्यान रखना।

मुमुक्षु : श्रोता को तो उपदेश है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे उपदेश करना है यह। वीतराग के तत्त्वों के कथा के, भाव का आशय पकड़ में नहीं आयेगा। समझ में आया?

व्यवहारनिश्चयौ यः प्रबुध्य तत्त्वेन भवति मध्यस्थः।
प्राप्नोति देशनायाः स एव फलमविकलं शिष्यः॥८॥

देखो, शिष्य को, पीछे शब्द रखा है। **जो जीव व्यवहारनय-निश्चयनय को वस्तुस्वरूप के द्वारा यथार्थरूप जानकर मध्यस्थ होता है अर्थात् निश्चयनय-व्यवहारनय से पक्षपात रहित होता है, वह ही शिष्य...** देखा! **वही शिष्य उपदेश का सम्पूर्ण फल को प्राप्त करता है।** भाई उसे... आठवीं गाथा, देखो! यह श्रोता को भी निश्चय-व्यवहार का ख्याल न हो तो कुछ का कुछ तोड़-मरोड़ कर डालेगा तो उसे निश्चय-व्यवहार का लाभ नहीं। ८वीं गाथा में पुकार करते हैं, देखो!

इसी प्रकार यहाँ स्त्री को घर का स्थान कहने में आशय क्या है, यह विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आषाढ़ शुक्ल १५, मंगलवार, दिनांक - १३-०७-१९६५
गाथा - १४४ - १४५, प्रवचन - १६९

१४४ गाथा। परमात्मप्रकाश, अध्याय दूसरा। **यहाँ घर शब्द से मुख्यरूप स्त्री जानना,...** स्त्री का प्रतिबन्ध है संसार में, ऐसा कहने में आता है। इसलिए वास्तव में राग का ध्येय स्त्री विशेष है और वह राग, वह एकत्वबुद्धि है, वह संसार है। राग है न, उसमें मुख्य संसार में स्त्री राग का निमित्त है, विषय में। उसका विषय है न? ऐसे विषय नहीं और ऐसे विषय है। अर्थात् राग का विषय स्त्री को मुख्यरूप से गिनकर और वह स्त्री ही प्रतिबन्ध का कारण है। वास्तव में तो उसकी ओर का लक्ष्य ऐसा जो राग प्रतिबन्ध का कारण है। वास्तव में तो वह है। समझ में आया?

स्त्री ही घर का मूल है, स्त्री बिना गृहवास नहीं कहलाता। ऐसे तो स्त्री अनन्त बार छोड़ी, ऐसा नहीं। स्त्री की ओर का विकल्प जो है, उससे रहित आत्मा निर्विकल्प स्वरूप है, उसकी दृष्टि करके विकल्प की एकता छोड़े, उसने स्त्री छोड़ी, ऐसा असद्भूतव्यवहारनय से कथन किया जाता है और अशुद्ध राग की एकता टूटी, वह अशुद्ध निश्चयनय से छूटी, ऐसा कहा जाता है। परन्तु बहुत लम्बी बातें, भाई! समझ में आया? पर का त्याग, वह तो असद्भूत है, वह कहाँ...? पर का त्याग तो त्याग ही है। उसका कहीं त्याग है नहीं। वह तो परद्रव्य ही है। समझ में आया? यहाँ तो आत्मा में स्त्री सम्बन्धी राग हो, वह भी वास्तव में परद्रव्य है और उसमें एकत्वबुद्धि, वही अपने स्वभाव के घर में से निकलकर पर में एकत्व (किया)। अर्थात् पर को अपना घर किया। ऐसा इसका अर्थ है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसका अर्थ यह है। वैसे तो स्त्री अनन्त बार छोड़ी, परन्तु उसके ऊपर का लक्ष्य है भोग की वृत्ति राग, उसका मूल वस्तु वह है, इसलिए प्रतिबन्ध का कारण, ऐसा कहकर राग में एकताबुद्धि है, उसमें वह निमित्त है, वही संसार और

वही घर है। गृहस्थाश्रम का भटकने का अभिप्राय ही वह वस्तु है। समझ में आया? न्यालभाई! न्यालभाई को शाम को कहा, परद्रव्य तो... वे बहुत चिल्लाहट मचाते हैं न कि यह देव-गुरु-शास्त्र परद्रव्य? वीरचन्दभाई ने प्रश्न किया था। अगास में बहुत जाते हैं न वीरचन्दभाई, इसलिए एक बार प्रश्न किया, दस वर्ष पहले। यह देव-गुरु-शास्त्र, वे परद्रव्य? कहा, तब क्या स्वद्रव्य?

मुमुक्षु : दलील तो उसने की....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह शुद्ध है न। दलील की। वह शुद्ध है न? शुद्ध हो तो क्या है? हैं वे परद्रव्य। उनका लक्ष्य करने से राग ही होता है। उससे आत्मा का कल्याण बिल्कुल नहीं होता। समझ में आया?

मुमुक्षु : .... कल्याण होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : कल्याण, ऐसा बोलने में आवे व्यवहार से। कल्याण तो अन्दर करे, तब उसकी भक्ति को व्यवहार कहा जाता है न? अनन्त बार ऐसी भक्ति की भगवान की।

यहाँ तो आचार्य तो यहाँ तक कहते हैं न नियमसार में तो। भाई! देव-गुरु-शास्त्र तो परद्रव्य है और व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प उठे, वह परद्रव्य है। यह तो ठीक, परन्तु क्षायिक समकित और चारित्र जो छठवें गुणस्थान में सच्चा प्रगट हो, वह पर्याय भी परद्रव्य है।

मुमुक्षु : बड़े पुरुष हैं ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बड़े, परन्तु बड़े कहीं मुफ्त में कहते होंगे बड़े? देखो, (नियमसार) ५०वीं गाथा में है। शाम को कहा था। यह तो यहाँ आया।

पुवुत्तसयलभावा परदव्वं परसहावमिदि हेयं।
सगदव्वमुवादेयं अंतरतच्च हवे अप्पा॥५०॥

जरा सूक्ष्म बात है। अनन्त काल में इसने लक्ष्य में बात को लिया नहीं। इसने सब किया। यहाँ तो कहते हैं कि भगवान आत्मा को शरीर, स्त्री, पुत्र, परिवार, देव-गुरु-

शास्त्र तो परद्रव्य है, भगवान आत्मा के लिये सिद्ध परद्रव्य है, परन्तु जैसे उस परद्रव्य में से आत्मा की निर्मल पर्याय प्रगट नहीं होती, तो आत्मा में जो राग होता है व्यवहार देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का राग, वह परद्रव्य है। क्योंकि उसमें से भी कहीं निर्मल सम्यग्दर्शन या चारित्र की पर्याय नहीं आती। और आत्मा में सम्यग्दर्शन-ज्ञान और शान्ति आत्मा के आश्रय से प्रगट हुई, वह पर्याय भी वास्तव में परद्रव्य है। निर्मल पर्याय, वीतरागी पर्याय। क्योंकि वह वीतरागी पर्याय है, उसमें से नयी पर्याय धर्म की वृद्धि की, शुद्धि की वृद्धि पर्याय में से नहीं आती, पर्याय के आश्रय से नहीं आती। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो वहाँ तक कहा है कि वास्तव में भगवान किसे कहते हैं? कि सर्व विभावगुणपर्याय से रहित शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप स्वद्रव्य उपादेय है। सब विकारी पर्याय या निर्विकारी पर्याय (से रहित)। सूक्ष्म बात है। छोटाभाई! यह सब अभ्यास करना पड़ेगा, हों! हित करना हो तो। यह सब भटकने के रास्ते हैं बाकी तो सब। कहो, समझ में आया इसमें?

अरे भाई! भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में... यहाँ तो वहाँ तक कहते हैं कि आत्मा में जो स्वाभाविक त्रिकाली ज्ञान, त्रिकाली दर्शन, त्रिकाली शान्ति-चारित्र गुण और त्रिकाली सहज वीतराग सुखस्वरूप, वह शुद्ध अन्तःतत्त्व स्वरूप, उस अन्तःतत्त्व स्वभाव को यहाँ स्वद्रव्य कहा गया है। अभी उस स्वद्रव्य का आधार दूसरा वापस और। उस भाव को—स्वभाव को अन्तःतत्त्व गिनकर; पर्याय नहीं, राग नहीं, परद्रव्य नहीं। भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में जो स्वाभाविक त्रिकाली ज्ञानगुण, त्रिकाली दर्शनगुण, त्रिकाली चारित्रगुण, त्रिकाली शान्त सुख-वीतरागी सुखगुण, ऐसा शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप वह यह स्वद्रव्य। यह स्वद्रव्य, वह वस्तु। स्वभाव को स्वद्रव्य कहा। उसका आधार, उसका आधार सहज परमपारिणामिकलक्षण कारणसमयसार। क्या कहा? शब्द अन्तःतत्त्व '**हवे अप्पा**' शब्द पड़ा है न '**अप्पा**' निकाला कारणसमयसार। उसमें से परमपारिणामिक निकाला। '**अप्पा**' में से। '**अंतरतच्च**' में से वे भाव निकाले।

भगवान आत्मा एक वस्तु है, उसमें स्वाभाविक त्रिकाली शुद्ध ज्ञान, शुद्ध दर्शन एकरूप त्रिकाल, आनन्द आदि सुख वीतरागभाव त्रिकाल, हों! उस त्रिकाल भाव को यहाँ अन्तःतत्त्व, अन्तःवस्तु, अन्दर की वस्तु, अन्दर का भाव, अन्दर का स्वभाव गिनकर उसे अन्तर स्वद्रव्य कहा गया है। इसके अतिरिक्त पर्याय प्रगट हुई क्षायिक समकित, चारित्र पर्याय या राग, वे सब परद्रव्य कहे गये हैं।

मुमुक्षु : यह आचार्य कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आचार्य कहते हैं मुफ्त कहते हैं कहीं?

यहाँ तो जो स्वभाव है न, वह अनेकरूप हुए। स्वाभाविक ज्ञान, स्वाभाविक दर्शन, स्वाभाविक आनन्द, त्रिकाल, हों! पर्याय नहीं, राग नहीं, निमित्त नहीं, पर्याय नहीं, प्रगट हुई-उघड़ी हुई, वह चारित्र की पर्याय उघड़ी हुई हो सामायिक आदि छठवें गुणसथान में, तो वह पर्याय परद्रव्य है। क्योंकि जैसे परद्रव्य में से नयी पर्याय नहीं आती तो उस पर्याय में से नयी पर्याय नहीं आती। इसलिए भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने सर्वज्ञ का जो अनादि सहज पंथ है, उसे इस प्रकार से जाहेर-प्रसिद्ध किया है कि भाई! तू आत्मा है। उस आत्मा में अन्तःतत्त्वरूप जो वस्तु गुणरूप-स्वभावरूप, उसे हम स्वद्रव्य कहते हैं, तो इसके अतिरिक्त की पर्याय रागादि को परद्रव्य कहते हैं।

अब, वापस उस स्वद्रव्य का आधार। देखो, स्वद्रव्य का आधार, एकरूप त्रिकाली द्रव्य वस्तु, त्रिकाली परमपारिणामिकस्वभाव, वह एकरूप है, उसे कारणसमयसार, कारण-आत्मा कहते हैं। ऐसे कारण-आत्मा एकरूप भगवान के ऊपर दृष्टि देने से, उसमें ध्येय को पकड़ने से आत्मा को सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की उत्पत्ति, वृद्धि, टिकना और शुद्धि बढ़ती है। दूसरे किसी के अवलम्बन से बढ़ता नहीं, टिकता नहीं और वृद्धि पाता नहीं। भारी सूक्ष्म, भाई! समझ में आया?

पर्याय-अवस्था तो एक ओर रह गयी। ऐसे गुण जो त्रिकाली हैं, उन गुण का (एकरूप) अन्तःतत्त्व, अन्तःभाव, अन्तःस्वभाव गिनकर उससे एक समय की प्रगट हुई पर्याय धर्म की, वह परद्रव्य, परभाव, हेयं ईति कहा। उसे हेय कहा। भगवान! तेरी चीज़ क्या है, उसकी तुझे खबर नहीं होती और जहाँ-तहाँ भटकने के कारणों में भटका

करता है। यह जन्म-मरण के अन्त लाने की चीज़ कुछ दूसरी है। उसे पहले समझण में—ज्ञान में तो लेनी पड़ेगी न? बाद में प्रयोग कर सकेगा। पहले समझण में न आवे तो प्रयोग किस प्रकार करे? प्रयोग समझे? अन्तर में एकाकार कहाँ होना, कैसे होना, यह पद्धति जाने बिना किसमें एकाकार होना?

यहाँ तो आचार्य (ने) इतना सब वर्णन (गाथा) ५० में (किया है)। **'पुवुत्तसयलभावा'।** उदय-उपशम-क्षयोपशम और क्षायिक चारों ही भाव परद्रव्य हैं, परभाव है, हेय है — तीन बोल लिये हैं पाठ में कुन्दकुन्दाचार्य ने। तब उपादेय कौन? **'सगदव्वमुवादेयं'—**अन्तःतत्त्व। अन्तर स्वभाव वस्तु जो ज्ञान-दर्शन-आनन्द त्रिकाल, वह स्वद्रव्य उपादेय। परन्तु वह स्वद्रव्य जो कहा, उसे जो अन्तर भावरूप कहा तो कहते हैं कि उस भाव का आधार एकरूप कारणसमयसार भाववान, उसे हम कारणसमयसार और परमात्मा कहते हैं। उसके लक्ष्य से और उसकी दृष्टि से और उसके आश्रय से धर्म होता है, धर्म टिकता है, धर्म बढ़ता है और मोक्ष होता है।

मुमुक्षु : आचार्य की संस्कृत टीका है?

पूज्य गुरुदेवश्री : आचार्य का पाठ है। संस्कृत टीका की तो बात कहाँ और? यह पाठ किसका कहा यह? और यह टीका है। मूल पाठ की तो बात होती है यह। बाद में टीका में तो है यह। टीका की तो बात की। टीका में तो विस्तार है। देखो यह! **सर्व विभावगुणपर्यायों से रहित...** तो इन चार भावों को भी विभावगुण कहा। **शुद्ध-अन्तःतत्त्वस्वरूप...** भगवान पूर्ण स्वरूप अन्तःतत्त्व। तत्त्व अर्थात् भाव, भाव अर्थात् स्वभाव। ऐसा अन्तःतत्त्व स्वभाव ऐसा **स्वद्रव्य...** उसे स्वद्रव्य कहा। उसे भी अभी कभी सुनने को मिले नहीं, वह कब समझे? समझ में आया?

यह देव-गुरु-शास्त्र तो कहीं परद्रव्य में रह गये। यह तो उनके प्रति की श्रद्धा का राग, वह परद्रव्य। यह तो ठीक, परन्तु उसका जो उघाड़ हुआ, स्वद्रव्य की श्रद्धा, स्वद्रव्य के आश्रय से ज्ञान, स्वद्रव्य के आश्रय से शान्ति अर्थात् चारित्र, उस प्रगट हुई पर्याय को भी यहाँ परद्रव्य कह दिया है। क्योंकि परवस्तु में से जैसे नयी शुद्धि बढ़ती नहीं, उसी प्रकार प्रगट हुई पर्याय के आश्रय से नयी शुद्धि बढ़ती नहीं। इसलिए, जैसा

परद्रव्य है, वैसी पर्याय को सबको परद्रव्य में डाल दिया। न्यालभाई!

क्यों? कि देखो, दूसरी भाषा से। पर्याय जो प्रगट हुई, वह द्रव्यति इति द्रव्यं — ऐसी नहीं है। वह पर्याय द्रवे और पर्याय आवे, ऐसा है? वह वस्तु जो त्रिकाल है, वह द्रवती है ऐसे। अन्तर में एकाग्रता (होने पर) वह द्रवती है, इसलिए उसमें से प्रवाह बहता है। उसकी पर्याय द्रव्य के ध्येय से प्रगट होती है। इसलिए स्ववस्तु को द्रव्य कहा गया है। आहाहा! कहो, वजुभाई! अभी तो यहाँ बाहर में भटके। वह कहे, हें! भगवान परद्रव्य? परद्रव्य अनन्त बार। त्रिलोकनाथ परमात्मा परद्रव्य, वह तो नहीं परन्तु उनकी मान्यता करना, परद्रव्य के अनुसार श्रद्धा, वह भी राग परद्रव्य। उससे आत्मा को बिल्कुल लाभ नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : कब की बात है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अभी की बात करते हैं। कब की बात करते हैं यह? केवलज्ञान की बात करते हैं यह?

जिसकी खान में पड़ी है वस्तु, वह द्रव्य-वस्तु भगवान आत्मा कारणसमयसार। यहाँ तो कारणसमयसार लिया। पद्मप्रभमलधारि मुनि ने तो गजब बात की है। समयसार की अपेक्षा से भी किसी बात में इतनी ऊँची बात ले गये हैं। यद्यपि उन्होंने दृष्टान्त तो दिया है कि ... परद्रव्य है न भाई वह? ... मेरे लिये तो ... उसके साथ क्या सम्बन्ध है? मेरे लिये तो अकेला ज्ञायकभाव त्रिकाल स्वरूप, यहाँ तो ज्ञायकभाव... भाव... भाव... त्रिकाल स्वभाव का एकरूप द्रव्य, वही आत्मा है, उसे आत्मा कहा जाता है। उस आत्मा का अन्तर आश्रय ले, तब उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता है, शुक्लध्यान होता है, केवलज्ञान होता है। उसके आश्रय से होता है, बाकी किसी के आश्रय से नहीं होता। समझ में आया? यह गजब!

पूर्वोक्त सर्व भाव परस्वभाव हैं... यह पाठ है, हों! **परद्रव्य है...** क्षायिकभाव परद्रव्य है, क्षायिकभाव परस्वभाव है, क्षायिक समकित हेय है, क्षायिक समकित परद्रव्य है, क्षायिक समकित परभाव है, क्षायिक समकित हेय है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : उसका कारण?

पूज्य गुरुदेवश्री : कारण दिया न कि अन्तःतत्त्व ऐसा स्वद्रव्य। अर्थात् अन्दर ज्ञानानन्दस्वभाव त्रिकाल भरपूर शुद्धभाव, वह स्वद्रव्य और उसका आधार, वह आत्मा अर्थात् एकरूप वस्तु। आत्मा शब्द पड़ा है न? **'सगदव्वमुवादेयं अंतरतच्च हवे अप्पा'।** इसलिए मुनि ने निकाला इसमें से। भगवान आत्मा में अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, त्रिकाल स्वभाव, हों! वस्तु। ध्रुव... ध्रुव स्वभाव। उस स्वभाव को यहाँ स्व अन्तःतत्त्व कहकर स्वद्रव्य कहा, वर्तमान प्रगट हुई निर्मल धर्म की पर्याय को भी परद्रव्य कहा। राग तो परद्रव्य है और देव-गुरु-शास्त्र तो परद्रव्य है। क्योंकि देव-गुरु-शास्त्र तो आत्मा की एक समय की पर्याय में अस्तित्वरूप से है नहीं। इसके अस्तित्व में राग है, वह परद्रव्य। इसके अस्तित्व में पर्याय है, परन्तु उस पर्याय में से पर्याय प्रगट नहीं होती। वह वास्तविक द्रव्य नहीं है, द्रव्य नहीं है। द्रव्य उसे कहते हैं कि द्रवे... द्रवे... द्रवे... बहे... बहे... उसमें से प्रवाह बहे। तो द्रव्य में से प्रवाह बहता है, पर्याय में से प्रवाह नहीं बहता। आहाहा! पण्डितजी! यह तो सन्तों की अन्दर की आनन्द की मस्ती की वस्तु है, बापू! आहाहा! भाई! तू उसे लक्ष्य में ले, उसे ख्याल में ले। यह ख्याल बिना तेरा कहीं शरण निकले ऐसा नहीं। देखो न!

अन्तःतत्त्व ऐसा स्वद्रव्य... आत्मा उपादेय है, यह वस्तु। स्त्री तो कहीं रह गयी, देव-गुरु-शास्त्र कहीं रह गये। समझे न? यह तो स्व-घर किसे कहना? कि जिस घर में सब भरा है। सब भरा है, ऐसा अनन्त ज्ञानादि वह भी अन्तःतत्त्व का (आधार) एकरूप कारणसमयसार। उसे यहाँ उपादेय वर्णन कर, इसके अतिरिक्त की वर्तमान प्रगट हुई निर्मल पर्याय (जो) स्वद्रव्य के आश्रय से हो तो भी वह परद्रव्य है। क्योंकि उसके अवलम्बन से, उसके आश्रय से, उसके आधार से, सम्यग्दर्शन भले उसके आधार से हुआ, परन्तु सम्यग्दर्शन के आधार से वापस चारित्र नहीं होता। वह चारित्र वापस द्रव्य के आश्रय से होगा। राग के आश्रय से तो चारित्र नहीं होगा, निमित्त के आश्रय से तो चारित्र नहीं होगा, समकित के आश्रय से चारित्र नहीं होगा। समकित, ज्ञान उसे चारित्र का कारण कहा है। बन्ध अधिकार में कहा है न कि अभव्य को चारित्र का मूल कारण जो सम्यग्दर्शन, कारण के अभाव से चारित्र नहीं। वह कारण जो कहा, वह

सम्यग्दर्शन और ज्ञान, उनके कारण से चारित्र नहीं प्रगट होता। उनके आश्रय से नहीं, उनमें से नहीं, उनमें से नहीं। बातें बहुत सूक्ष्म।

यह भगवान आत्मा वस्तु ऐसी एकरूप खान पड़ी है। उसे अभी ख्याल में नहीं, सुना नहीं, विचार नहीं किया, उसे प्रयोग में कैसे ले? एकरूप वस्तु ऐसे अन्दर पड़ी है। अखण्डानन्द भगवान द्रव्यस्वभाव वस्तु अनादि-अनन्त एकरूप कारणजीव, कारणपरमात्मा कहो, कारणसमयसार कहो, त्रिकाली को, हों! त्रिकाली द्रव्य को कारणसमयसार कहो, कारणजीव कहो या कारणपरमात्मा कहो। एक कारण को लक्ष्य में लेने से कार्य प्रगट होता है, बाकी किसी कारण से कार्य प्रगट नहीं होता। समझ में आया? चन्दुभाई! सूक्ष्म बातें हैं यह।

कुछ समझने की दरकार हो और ऐसा समय मिला मनुष्य का, आँखें मिंचेंगी और कहीं चला जायेगा। कोई धनीधोरी नहीं वहाँ। है कोई? फू होकर कहाँ-कहाँ चौरासी के... आहाहा! उसका किनारा कहाँ? उसका किनारा लाने का उपाय तो यहाँ अन्दर है। कहीं छोर... एक भव... दो भव... यह भव... भव... भव... भव... दुःख... दुःख... दुःख... कहो, जेचन्दभाई! यह आज उकताहट करके आये थे। क्या है परन्तु? कहा। एक जहाँ खोखा—शरीर को जरा कुछ हो वहाँ... ऐसे शरीर तो अच्छा दिखता है राजा के कुँवर जैसा। ऐसे कुर्सी में बैठे वहाँ ऐसा करके ऐसा है। वहाँ तुमको कहाँ दुःख हो गया? जेचन्दभाई! परन्तु यह... यह... यह... यह... इसके पर खेद लाने योग्य नहीं, इसे अपना माननेयोग्य नहीं, ऐसा यहाँ तो है। यह विघ्नकर्ता भी नहीं और सहायकर्ता भी नहीं, ऐसा यहाँ तो कहना है। उस परवस्तु में खेद का कारण भी नहीं और तत्त्व को सहायक हो, ऐसा भी कारण नहीं, वह तो ज्ञेय है। आहाहा! एक बार अन्दर दृढ़ निर्णय तो करे। मेरे अतिरिक्त परपदार्थ सब ज्ञान में अकेले जाननेयोग्य है। मुझे कोई श्रेय का कारण उसमें कुछ है नहीं। देव-गुरु-शास्त्र भी परज्ञेय है। मेरे ज्ञान का ज्ञेय है। न्यालभाई!

यहाँ तो इससे अधिक बात है। सुन न! परद्रव्य तो कहीं गये। भगवान आत्मा में जो विकल्प उठता है शुभ, जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव परद्रव्य है, आस्रव

है, परद्रव्य है। सुख का कारण उसके आश्रय से नहीं, स्वयं सुखरूप नहीं। परन्तु भगवान आत्मा अपने त्रिकाल ज्ञायकरूप स्वभाव को अन्तर में लक्ष्य में, दृष्टि में, ध्येय में लेकर, जो धर्म दशा प्रगट होती है, वह धर्म सुखरूप है, परन्तु उसके आश्रय से सुखदशा बढ़े और उत्पन्न हो, ऐसा नहीं। समझ में आया? आहाहा! क्या कहते हैं, यह पकड़ में नहीं आता।

आत्मा अन्दर खान में अन्दर अनन्तरूप पड़ा है, वह वस्तु द्रव्य पदार्थ। वह स्वयं द्रव्य परिणमता है पूरा। प्रवचनसार में कहा न? भाई! उसने प्रश्न किया था कि गुण परिणमते हैं या द्रव्य? कि द्रव्य परिणमता है। गुण भिन्न कब? पूरा द्रव्य परिणमने पर गुण परिणमते हैं। ऐसे परिणमते हैं। वस्तु एक समय में पूरा भगवान, परन्तु इसे कीमत नहीं आती। मैं इतना? यह क्या? भगवान बड़े हों या मैं बड़ा होऊँ? इसे भगवान बड़े लगते हैं इसके लिये। खोटी बात है, कहते हैं। तेरे लिये तू बड़ा, तेरी पर्याय भी तेरे लिये बड़ी नहीं। क्योंकि वह प्रगट हुआ धर्म सुखरूप है परन्तु उसके आश्रय से सुख बढ़ता नहीं, उसके आश्रय से धर्म की वृद्धि होती नहीं, उसके अवलम्बन से शुद्धि की वृद्धि होती नहीं। धर्म के आश्रय से शुद्धि की वृद्धि होती नहीं। यह वह कुछ बात? देव-गुरु तो कहीं रह गये। व्यवहाररत्नत्रय तो विकल्प-राग में रह गया। भाई! यह वस्तु के महा नियम हैं। यह वस्तु का स्वरूप भी न्याय से तो कहा जाता है।

यह वस्तु जो है ऐसे एकरूप चिदानन्द भगवान, उसे कारण बनावे तो पर्याय में कार्य हो। पर्याय को कारण बनावे तो कार्य नहीं होता, राग को कारण बनावे तो नहीं होता, निमित्त को कारण बनावे तो नहीं होता। ऐसा है, भाई! आहाहा! समझ में आता है या नहीं इसमें? बाबूभाई! समझ में आया? क्यों तुम्हारे नहीं आये? आज नहीं आवे ऐसा? कहो, आहाहा!

त्रिभुवन तिलक है न कहीं बड़ा मन्दिर, नहीं? मूडबिद्री। त्रिभुवन तिलक। यह त्रिभुवन तिलक तो यह है। ऐसा याद आया। है न हजार स्तम्भ का एक मन्दिर है। दिगम्बर मन्दिर मूडबिद्री। पण्डितजी! एक मन्दिर है न? उसका नाम त्रिभुवन तिलक है। बहुत बड़ा मन्दिर, प्राचीन दिगम्बर मन्दिर। एक हजार स्तम्भ। त्रिभुवन तिलक

इतना नाम है ? त्रिभुवन तिलक चूड़ामणि नाम है उसका, लो ! उस मन्दिर का। क्योंकि दो बार गये हैं न वहाँ तो। त्रिभुवन तिलक चूड़ामणि। कहो, त्रिभुवन तिलक चूड़ामणि तो यह है। इस समय यह त्रिभुवन तिलक चूड़ामणि भगवान आत्मा। उसके गुण और पर्याय भी नहीं, एकरूप द्रव्य। विशाल बँगला भगवान, जिसमें अनन्त ज्ञान आदि दैवी दिव्य शक्तियाँ जिसमें बसती हैं। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द जो स्वभाव शक्ति, अनन्त शक्तिरूपी दैव शक्तियाँ दैवी, जिसमें देव—भगवान में बसती है, ऐसा एकरूप भगवान आत्मा वह महा त्रिभुवन तिलक चूड़ामणि है। आहाहा ! उसकी अन्तर में दृष्टि करने से उसे सम्यक्त्व होता है, उसमें एकाकार होने से उसे चारित्र होता है, उसमें एकाकार होने से शुक्लध्यान होता है, उसमें एकाकार होने से केवलज्ञान होता है। समझ में आया ?

क्या हो ? लोगों को मूल चीज़ का ही जहाँ माहात्म्य नहीं होता, खबर नहीं होती। चलो धर्म करें। धर्म कहाँ बाहर लटकता है ? धर्म कहीं बाहर से आता होगा ? कहाँ से आवे वह खान कौन है ? कितनी है ? कहाँ है ? खबर है ? सोना की खान हो तो खोजने जाता है। यह हीरा-माणेक की खान लगती है। इसमें से तो निकला ही करते हैं... निकला ही करते हैं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल निकला ही करती है।

मुमुक्षु : आज का पाठ जोरदार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पाठ जोरदार है आज का ? यह तो गुरु पूर्णिमा है न आज। गुरु पूर्णिमा है आज, पूर्णिमा है। आज स्वाध्याय का दिवस था, परन्तु अब, कहा, मेहमान हैं, इसलिए प्रवचन रखते हैं। कहो, समझ में आया ? आहाहा !

यहाँ तो वह घर आया न, स्त्री अर्थात् इतने घर को त्यागे, यह घर मिले, ऐसा नहीं और उसके प्रति की ममता कदाचित् घटाये तो भी यह घर मिले, ऐसा नहीं। समझ में आया ? यह घर तो अन्तर में सन्मुख अवलम्बन करे तो यह घर मिले, यह माल बाहर पर्याय में प्रगट हो। घरवखरा को तुम्हारे हिन्दी में क्या कहते हैं ? क्या कहते हैं ? इस घर

में चीज़ बहुत होती है न? घरवखरा हमारी काठियावाड़ी भाषा में कहते हैं। माल बहुत होता है न माल घर में? घरवखरी। सब उपकरण घर की चीज़ होवे न, उसे घरवखरो कहते हैं। उसी प्रकार यह आत्मा का घरवखरो (माल)।

भगवान आत्मा अन्दर... परन्तु उसे ऐसे बिन्दु, वह ध्येय-ध्येय क्या है? वह किस प्रकार से है, वह इसके ख्याल में लेने की दरकार की नहीं। समझ में आया? कहते हैं, यहाँ तो स्त्री की बात ली है कि **स्त्री बिना गृहवास नहीं कहलाता। ऐसा ही दूसरे शास्त्रों में भी कहा है,...** परन्तु यहाँ वास्तविक घर तो यह छोड़ा, यह आश्रय राग का छोड़े और पर्याय का आश्रय छोड़े, तब निजघर की प्राप्ति होती है। समझ में आया? और कोई कहे, यह स्त्री छोड़ दी। सब ... है। इसका अर्थ कि उसके सम्बन्धी का जो राग है, उसकी जो एकत्वबुद्धि है, इस शुद्धात्मा की अनुभूति द्वारा उसका नाश होता है, ऐसा है। समझ में आया? यह कहेंगे, देखो!

ऐसा ही दूसरे शास्त्रों में भी कहा है कि घर को घर मत जानो, स्त्री ही घर है, जिन पुरुषों ने स्त्री का त्याग किया, उन्होंने घर का त्याग किया। परन्तु इस प्रकार से, हों! यह कहते हैं इस प्रकार से। यह आगे कहेंगे अभी। **यह घर मोह के बन्धन से अति दृढ़ बँधा हुआ है,...** भगवान आत्मा महा आनन्द का कन्द प्रभु, उसे दृष्टि में नहीं लेता और यह स्त्री दृष्टि में तैरती है उसे। तरवरे समझ में आता है? उसका ही लक्ष्य रहा करता है उसे।

मुमुक्षु : वहाँ ही नजर जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, नजर वहाँ बँध गयी। नजर बँध गयी।

मोह के बन्धन से अति दृढ़ बँधा हुआ है, इसमें सन्देह नहीं है। यहाँ तात्पर्य ऐसा है,... देखो, आया अब। अब तात्पर्य आया। **शुद्धात्मज्ञानदर्शन शुद्धभावरूप जो परमात्मपदार्थ...** देखो? क्या कहते हैं? कि यह भगवान आत्मा शुद्धात्म ज्ञान त्रिकाल। शुद्ध आत्मा का ज्ञान त्रिकाल। ज्ञान त्रिकाल ध्रुव-ध्रुव। दर्शन त्रिकाल। ऐसा शुद्धभावरूप, शुद्धभावरूप जो परमात्मपदार्थ। ऐसा शुद्धभावस्वरूप अखण्ड प्रभु परमात्मा अपना भाव, पदार्थ **उसकी भावना से विमुख जो विषय कषाय हैं,...** ऐसा भगवान आत्मा।

यहाँ दो ही गुण लिये। ऐसे अनन्त गुण, उनका स्वभाव, उनका एकरूप परमात्म पदार्थ। ऐसा परमात्मा अपना पदार्थ है। परम आत्मा अर्थात् परमस्वरूप वस्तु, ऐसी त्रिकाली चीज़, उसकी भावना—उसकी ओर की एकाग्रता, उसके ध्येय में उसमें लीनता। उससे विमुख यह विषय कषाय है। स्त्री आदि सब इस स्वभाव से विमुख है। समझ में आया? गजब।

घर में रहना। क्या कहते हैं नहीं? पानी में रहना और मगरमच्छ के साथ वैर। ऐसा नहीं कहते? जल में रहना और मगरमच्छ के साथ वैर। अब रहना यहाँ और ये मेरे नहीं। कब रहे हो? सुन न! एक समय की विकारी पर्याय भी उत्पन्न-ध्वंसी है, उसमें कहाँ तू रहा हुआ है? पर का तो कहाँ, परन्तु उत्पन्नध्वंसी, उत्पन्न हो, नाश हो विकार, हों! उत्पन्न हो, नाश हो, उसमें कहाँ रहा हुआ है? आहाहा! रहा हुआ तो त्रिकाली ज्ञायकभाव अनन्त गुण का पिण्ड वस्तु, उसमें रहा हुआ है तू। बाहर कहाँ रहा हुआ है?

कहते हैं, उससे उल्टे विषय-कषाय हैं। देखो, यह विषय, हों! स्वभाव त्रिकाली ज्ञायकभाव, उसका एकरूप परमात्मा स्वयं, उसकी भावना अर्थात् उसके सन्मुख की एकाग्रता अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, उससे विमुख यह विषय और कषाय। इस प्रकार से विमुख। ऐसे स्त्री को छोड़े और उसका राग जरा घटाये और शुभराग रहे, उसके साथ एकत्वबुद्धि (हो), उसने कुछ छोड़ा नहीं। समझ में आया? छूटे, उनका संग न हो फिर से। जो छूटे, उनका संग न हो। संग कब न हो? कि असंग वस्तु स्वयं ज्ञायकभाव में अनन्त गुणरूप एक, उसकी भावना-श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र करे, तब यह जो (बाह्य) वस्तु का संग, उसका संग रहे नहीं। रहे नहीं उसका संग। व्यय हो जाये।

उनसे यह मन व्याकुल होता है। देखो! यहाँ भगवान आत्मा त्रिकाली शुद्ध वस्तु, परमात्मा स्वयं वस्तुरूप से उसकी एकाग्रता में अनाकुलता भावना है वह और यह विषय-कषाय, वह आकुलता है। उसके मन में विकल्प उठते हैं, वह सब आकुलता है। पैसे की हो, इज्जत की हो, कीर्ति की हो, अरे! देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा की हो, तो भी वह परविषय हुआ, इसलिए उसमें मन की आकुलता है। विषय-कषाय हुआ न

वह ? पर के विषय में हुई कषाय, वह कषाय आकुल है। स्व के विषय में हो अनाकुलता, यह सुख का मार्ग है। समझ में आया या नहीं ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब कहा जाता है। सब यह समझे तो उसे कहा जाये।

मुमुक्षु : समझे बिना उपकार क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : समझे बिना उपकार क्या ? श्रीमद् ने नहीं कहा ? समझे नहीं, उसमें उपकार किसका कहना ? क्या चीज़ है, वह तो समझता नहीं और उपकार-उपकार किया करता है। किसका उपकार ? आता है न ? न्यालभाई ! 'समझे बिन उपकार क्या, समझे जिनस्वरूप।' 'समझे जिनस्वरूप' देखो ! जिनस्वरूप समझे, तब उसको उपकार व्यवहार से कहा जाये। जिनस्वरूप अर्थात् वीतरागस्वरूप, वीतरागस्वरूप अर्थात् पर की अपेक्षा बिना का स्वरूप, पर की अपेक्षा बिना का अर्थात् विकल्प की अपेक्षा भी जिसे नहीं कि यह विकल्प हो तो यह लाभ होगा, ऐसा निरपेक्ष तत्त्व है। आहाहा ! उसकी दृष्टि-ज्ञान हुए बिना भगवान का उपकार, ऐसा कहाँ से लाया तू ? समझ में आया ? वस्तु की तो खबर नहीं।

इसलिए मन की शुद्धि के बिना गृहस्थ के यति की तरह शुद्ध आत्मा का ध्यान नहीं होता। यहाँ अधिक जोर किया है न ! मन की शुद्धि विशेष बिना गृहस्थाश्रम में निर्विकल्प उपयोग का ध्यान विशेष नहीं होता। विशेष का, हों ! किंचित् तो है परन्तु यहाँ विशेष जोर देना है, इसलिए नहीं, ऐसा कहा। **मन की शुद्धि के बिना...** जहाँ-तहाँ विकल्प उठा करे। यहाँ दृष्टि स्वरूप की होने पर भी, अस्थिरता के विकल्पों का जाल उठा करे, उसे **मन की शुद्धि के बिना गृहस्थ के यति की तरह...** मुनि को तो बहुत विकल्प नाश हो गये। एक पंच महाव्रत आदि के विकल्प हैं। अल्प... अल्प... अल्प। बाकी महान भगवान आत्मा निवृत्ति के साधन में पड़ा, उसे निर्विकल्प उपयोग का ध्यान बारम्बार आता है।

गृहस्थ के यति की तरह शुद्ध आत्मा का ध्यान नहीं होता। उसके जैसा ध्यान नहीं होता। **इस कारण घर का त्याग करना योग्य है,...** यहाँ तो विशेष बात करते हैं न !

मुनिपना, बापू! अन्दर में वस्तु की चारित्रदशा उसके बिना वीतरागता कहाँ से आवे? और वह मुनि तो वनवास में किसी के संग बिना, ऐ... अकेले स्थित हों। बाघ और सिंह को कुछ आवश्यकता है दूसरे की? ऐसा सिंह की भाँति दहाड़ मारता हो अन्दर में अकेला मस्त आनन्दकन्द में स्थित हैं मुनि। उन्हें शुक्लध्यान अथवा निर्विकल्प ध्यान बारम्बार आता है। यह स्त्री, कुटुम्ब की जिम्मेदारी / सिरपच्ची। दृष्टि होने पर भी अभी अस्थिरता के बहुत प्रसंग हैं, इसलिए निर्विकल्प ध्यान आना महामुश्किल है। बिल्कुल नहीं, ऐसा नहीं वापस, हों! अब कोई उसमें से यह निकालता है। यह तो सातवें गुणस्थान में निर्विकल्प ध्यान होता है, ऐसा नहीं।

घर का त्याग... यहाँ तो वह त्याग बतलाना है न घर के राग का। वह बतलाने के लिये यह बात की है। बाकी चौथे गुणस्थान में, पाँचवें गुणस्थान में भी निर्विकल्प ध्यान का उपयोग किसी-किसी समय हो सकता है, परन्तु मुनि को जो हो, वैसा हो नहीं सकता। इसलिए वजन देते हैं। उन्हें तो कहाँ पड़ी है, मुनि को कुछ पड़ी नहीं। क्या होता है शासन में। क्या होता है श्रावक-श्राविका में। वह पड़ा अन्दर अवलम्बन में। कुछ भान नहीं, बाहर की खबर भी नहीं। अरे! आनन्दकन्द में झूलता होता है अन्दर में। मुनि किसे कहते हैं? स्त्री कैसी, घर कैसा, मकान कैसे, व्यापार का विकल्प कैसा वहाँ? उत्कृष्ट बात बताते हैं। ऐसे महामुनि को ध्यान जम जाता है। क्योंकि बाहर का कोई विकल्प का संग-प्रसंग है नहीं और आत्मा असंग स्वरूप की दृष्टि हुई है और उसमें ऐसा अन्दर रागादि का त्याग है। इसलिए वस्तु स्वरूप में विशेष ध्यान में आ जाते हैं। गृहस्थ में वैसा ध्यान जमा नहीं।

और दूसरी जगह भी कहा है कि कषायों से और इन दुष्ट इन्द्रियों से मन व्याकुल होता है,... राग के परिणाम से और विषयों के लक्ष्य से मन में आकुलता... आकुलता... आकुलता होती है। भगवान आत्मा अत्यन्त शान्त... शान्त... शान्त... वीतरागी बिम्ब, वीतरागी चैतन्यबिम्ब आत्मा है। उसमें से यह बाहर के विषयों में लक्ष्य जाना या कषाय का लक्ष्य होना, वह सब आकुलता है। समझ में आया? **इसलिए गृहस्थ लोग आत्मभावना कर नहीं सकते।** जैसी मुनि कर सकते हैं, वैसी भावना

गृहस्थाश्रम में नहीं हो सकती। समझ में आया? विशेष बात करते हैं न यह तो? **आगे...** इसमें सुधारा है? नये में। इसमें **जागे घर की ममता छुड़ाकर...** है। **शरीर का ममत्व छुड़ाते हैं :-** अब शरीर... शरीर... शरीर... बापू! शरीर भी तेरा नहीं, स्त्री-पुत्र तो कहाँ गये? अब, देखो!

★ ★ ★

गाथा - १४५

२७६) देहु वि जित्थु ण अप्पणउ तहिँ अप्पणउ किं अण्णु।
पर-कारणि मण गुरुव तुहुँ सिव-संगमु अवगण्णु॥१४५॥

जिस संसार में शरीर भी अपना नहीं है,... शरीर भी तेरा नहीं, प्रभु! शरीर तो मिट्टी का जड़-पुतला है। जिसमें शरीर के रजकण मिट्टी के पुद्गल के उस अजीवतत्त्व से बना हुआ यह पुतला, वह आत्मा का कहाँ से हो? **शरीर भी अपना नहीं है, उसमें अन्य क्या अपना हो सकता है?** किस चीज़ को तुझे अपनी मानना है? एकदम क्षण में (छूट जाये)। खाते-खाते ग्रास मुख में रहे। गांठीया (खाता हो) और चाय पीता था एक बार। लड्डू खाते-खाते। अपना बनिया दशाश्रीमाली बनिया लड्डू बाँधे न लड्डू? वह पारेख था। पारेख, राजकोट। भूल गये। गिरधर पारेख। दशाश्रीमाली पारेख थे वृद्ध लम्बे। लड्डू बाँधे तब भानेज को बुलावे न? सेठिया को बुलावे। वह ताजा कैसा है चखे न थोड़ा? कळी के लड्डू बाँधते। सेठिया को बुलावे न्यालभाई जैसे को। चलो भाई लड्डू थोड़ा चखकर देखो, कोई स्वादफेर न हुआ हो। समाप्त। देह छूट गयी। ऐसा का ऐसा लड्डू रह गया। क्या करना इसमें? आहाहा!

देखो न, हमारे यहाँ से जाना था यह उमराला (संवत्) २०१० के वर्ष में। हमारे भाई थे न शिवलालभाई। दस मिनिट में गुजर गये शाम को। सवेरे मकान का उद्घाटन करना। ६००-८०० लोग बाहर से आये। अब यहाँ हमारे बड़े बापू के पुत्र शिवलालभाई। हेमचन्दभाई के बड़े भाई, यह भूपेन्द्र डाईंग। उसके बड़े भाई थे। वहाँ गये, वहाँ शाम को आहार किया होगा। उसमें कौन जाने सोये और दस मिनिट में उड़ गया। करना क्या

अब? कुँवरजीभाई और सब उलझन में। आये यहाँ। बड़े रामजीभाई थे न इसलिए आये। क्या करना? सवेरे अपने उद्घाटन करना, यह ६००-८०० लोग। मेहमान जीमाना है। यह मुर्दा। अब यह महाराज के भाई होते हैं। करना क्या इसमें? और वह छोटा भाई यहाँ था हेमचन्द। तब यहाँ था। भूपेन्द्र डाईंग। मुम्बई है न बड़ी कम्पनी? वे यहाँ मौके से। करना क्या अब? भाई ने फिर कहा, भाई रात्रि और रात्रि में निबटा दो। रात्रि और रात्रि में जला आये। सवेरे तो यहाँ से हमारे जाना मकान का उद्घाटन। या करे? ६००-८०० लोग। यह स्थिति। घड़ीक में क्या होगा? यहाँ अन्त में आ गये। महाराज! मैं जाता हूँ। हेमचन्द आया है न, मैं जाता हूँ। बस, इतना कहा। गये। रात्रि में आहार करके और क्या हुआ जरा? वहाँ समाप्त हो गये। क्या करे उसमें? देह की स्थिति जहाँ पूरी हो। कहते हैं कि बापू! देह तेरी नहीं। किसे तेरा मानना है तुझे? कहो, यह बात तो सच्ची होगी या नहीं? छोटाभाई! यह तो भाई का देखा है या नहीं तुमने? धोती की पटली मोड़ते थे वह पटली नहीं मुड़ी, स्थिति पूरी हो गयी। आहाहा!

अरे! परन्तु वैराग्य के स्थान कहाँ खोजना है तुझे? एक-एक जगह वैराग्य के स्थान हैं। आहाहा! अरे! उसे नहलाया, उसे खिलाया, उसमें तेल डाला, बाल में माँग पाड़ी। यह लड़के बहुत पाड़ते हैं ऐसे-ऐसे करके। घडीक में... बापू! वह तो जड़ है। उसकी पर्याय पूरी हुई संयोग से तो एकदम छूट जायेगा। जैसे घड़ा छूट जाये गाडा में से... घड़ा पानी का हो गाडा में डाला हो और उसमें कुछ नीचे आवे, घड़ा एकदम फूटे। नीचे कुछ अवरोधक है। गाड़ा के नीचे शीका में पानी बाँधते। उसमें नीचे कुछ ऐसा आया हो तो फूटे, पानी निकले नीचे। इसी प्रकार इसकी जहाँ स्थिति पूरी हुई, वहाँ भटका कहीं। घड़ा फूटा। वह कहाँ आत्मा था कि इसके साथ रहे? आहाहा! भगवान! एक बार शरीर से भिन्न आत्मा, ऐसा निर्णय तो कर। उसका जितना करने जायेगा, वह चिन्ता निरर्थक होगी। उसके लिये जितनी चिन्ता करेगा, इस चिन्ता से उसमें कुछ नहीं होगा। क्योंकि वह तो उसकी...

मुमुक्षु : होता ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : होता नहीं, परन्तु उकताहट आती है, वह वापस महापाप है।

ऐसा नहीं। कहते हैं कि वह कल्पना उसके लिये कर तो वहाँ तो व्यवस्था-अवस्था होने की होगी वह होगी। तेरी कल्पना उसकी व्यवस्था के लिये निरर्थक जायेगी और तेरी कल्पना तेरे लाभ के लिये भी निरर्थक जायेगी, नुकसान के लिये है।

मुमुक्षु : साहेब! ममता कैसे रहती है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सुलगता है दूसरे को देखकर। दूसरे को है और मुझे नहीं। यह होली सुलगती है अन्दर। जयचन्दभाई! ऐसा है। यह सब व्यवस्थित फिर, ऐसा हो। मेरे यह? परन्तु मेरे क्या, वह तो जड़ का शरीर है। उसे होता है। उसमें मुझे कहाँ है? उसमें है? आत्मा को है वह? और दूसरे के शरीर अच्छे, वे उसके आत्मा के हैं? उसके शरीर से देखना कि उसे अच्छा, वह दृष्टि ही खोटी है। उसके शरीर से उसे ठीक है, उसके पैसे से उसे ठीक है, उसकी इज्जत से उसे ठीक है — ऐसा कल्पित किया, वह दृष्टि खोटी है। उसे अच्छा उनके कारण से है? दृष्टि में बड़ा विपर्यास है और मुझे यह सुविधा नहीं, इसलिए ठीक नहीं। सुविधा नहीं, इसलिए ठीक नहीं? या मान्यता की है कि मुझे ऐसा चाहिए, इसलिए ठीक नहीं? वह तो कल्पना की बात है, वस्तु के कारण से वह है नहीं। यहाँ आया, देखो!

क्या अपना हो सकता है? शरीर भी अपना नहीं। किस चीज़ को तुझे रखना है? आज तो सवेरे गाँधी को देखो न, याद आया था। वह मारनेवाला, गाँधी को ऐसे मारा न एकदम ऐसे बन्दूक। निर्दय कितना! दरकार अब। पहले ऐसा किया, चरण छुए। आर्य मनुष्य। जीभ चले नहीं परन्तु राम इतना बोला गया, लो। दूसरा समय रहा नहीं। राम। उसके लौकिक के लिये कोई किसी को प्रतिकूल करने का भाव नहीं था कुछ।... वह अलग बात है परन्तु यह लौकिक खाता का ऐसा मेल। यह वह कुछ हिम्मत उसकी! अब ऐसे सब स्तुति करने इकट्ठे होते हैं। स्वयं भी इकट्ठा आया, स्वयं ऐसे पैर छूता है। हाथ में वह (बन्दूक) थी, अन्दर होगी... आहाहा! यह वह भी क्या करता है जीव? कैसे भाव? भाव, हों! क्रिया तो होने की वह अलग बात है। यह परिणाम किस जाति के करता है वह? कहाँ तुझे जाना होगा? यह देश मेरा पकड़कर साथ में आयेगा वहाँ?

जीव को नहीं खबर (कि) शरीर नहीं रहे? मारने लगे उसको। कोर्ट में कहेगा क्या, इसलिए यह किया। क्या है वह कोर्ट में कहेगा, अभी नहीं। आहाहा! ... जीव होता है या नहीं? अब जहाँ शरीर नहीं उसका, बापू! तुझे देश किसे मानना है? यह मेरा देश हिन्दुस्तान। यह मेरी हिन्दी भाषा। क्या चलता है महाराष्ट्र में। मराठी? मराठी में तो मर गये कितने ही। अरे! परन्तु किसकी—बाप की भाषा? वह तो जड़ है।

मुमुक्षु : आमची मुम्बई।

पूज्य गुरुदेवश्री : आमची मुम्बई। मार डाला कितनों को। परन्तु कहाँ तेरे बाप की मुम्बई थी? तेरा शरीर नहीं, मुम्बई कहाँ से आयी तेरी? मर गये। सुलगा दिया। आहाहा! समझ में आया?

यह काला बाजार था। अखबार में आया। बहुत काला बाजार उसके गाँव में चलता होगा। कहा कि यह काला बाजार होगा तो मैं मर जाऊँगा अग्नि से! जल गया। अग्नि से जल गया। अग्नि से जलकर मर गया। ... यह सब न करे तो यह। कौन करे? बापू! सुन न अब। आहाहा! परन्तु लम्बा विस्तार बहुत उसका। कहाँ तक मेरा... मेरा... मेरा... मेरा... करे। लम्बा विस्तार बहुत। यह मेरे, यह मेरे, देश मेरा, परिवार मेरा, ढींकणा मेरा, इज्जत मेरी। आहाहा! परन्तु तेरा है (वह) यहाँ है। पृथक् पड़े वह तेरे नहीं। शरीर भी तेरा नहीं, अब किसे तेरा मानना है? निर्णय तो कर।

इस कारण तू मोक्ष का संगम छोड़कर... देखो! '**सिव-संगमु**' अर्थात् आत्मा का स्वभाव। उसकी एकाग्रता छोड़कर **पुत्र, स्त्री, वस्त्र, आभूषण आदि उपकरणों में...** लो '**पर-कारणि**' है न? '**मा मुह्य**' भगवान! तू उसमें उलझ मत। भाई! तुझे अन्यत्र जाना है, तू दूसरा है। अन्यत्र जाना है, दूसरा है। यह नहीं, यहाँ रहना नहीं। आहाहा! धर्म के बहाने भी कितने जनून करता है, देखो न! हमारा मानो वरना तुम... अरे... भगवान! किसी को बलजोरी मनाने से कोई मानता होगा? शरीर तेरा मानता नहीं। खलबलाहट होने लगती है ऐसी। यहाँ होता है, और यहाँ होता है, और यहाँ होता है। यहाँ होता है, या यहाँ हो घड़ीक में। अभी गये थे न दवाखाना वह राजकोट। भाई! इसके बुआ का पुत्र है। लालूभाई के बुआ का पुत्र। वह उसका पिता था। १७ ऑपरेशन

किये। जहाँ हो वहाँ हड्डियाँ टूटे, हड्डियाँ टूटे हड्डियाँ। जवान व्यक्ति। १७ ऑपरेशन। सीधे यहाँ टुकड़ा होकर हड्डी निकले। यहाँ टूटकर हड्डी निकले, यहाँ टूटकर हड्डी निकले। ऐसे १७ ऑपरेशन किये शरीर में। ऑपरेशन कहलाये न? क्या कहा यह? इंजेक्शन अलग। १७ किये, हों! बेचारा उतरा नीचे पैर छुए ऐसे। १७ तो छिद्र किये थे चारों ओर। जहाँ-जहाँ हड्डियाँ टूटे एकदम। अपने उसे वास्तव में पहले हाडसांकली का रोग कहते थे। हाडसंकली अर्थात् हड्डी सड़े और टुकड़ा होकर बाहर निकले। ऐसे निकले, यहाँ निकले, यहाँ निकले। एकदम निकले अपने आप, हों! टुकड़ा होकर निकले टुकड़ा। १७ जगह निकले। १७ ऑपरेशन किये। पड़ा है अभी।

यह शरीर तेरा नहीं, अब किसे तेरा करना है? और साथ में पटेल का लड़का था। अपने गोंडलवाला नहीं? आंबा पटेल? किसका लड़का था? वह लड़का जवान था। तो उसके दो पैर काट डाले हुए। ऐसा पड़ा था अकेला। यह काट डाले। पहले पोर सड़ा था एक। एक यहाँ काट डाला। सड़ने दे तो ऐसे जायेगा। इसलिए चालू समय में यह काट डाला। दो यह काट डाले हुए इतने। किसान का पुत्र। गोंडल। एक जगह दो साथ-साथ में पलंग थे। यह दशा... यह दशा! तुझे शरीर को मानकर भी क्या है? कहो, कान्तिभाई! यह घड़ी - बडी तो कहीं रह गयी। आहाहा!

कहते हैं, अब किंचित् पर की ममता छोड़ और कुछ आत्मा की ओर के झुकाव को कर, वरना तेरे ठिकाने पड़ेगा नहीं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आषाढ़ कृष्ण १, बुधवार, दिनांक - १४-०७-१९६५
गाथा - १४५ - १४६, प्रवचन - १७०

भगवान की दिव्यध्वनि के दिन का आरोप करके आज ही है, ऐसा कहने में आवे न? श्रावण कृष्ण १। भगवान को केवलज्ञान महावीर परमात्मा को तो वैशाख शुक्ल १० को हुआ। वैशाख शुक्ल १०, परन्तु ६६ दिन तक दिव्यध्वनि बन्द रही। वाणी नहीं निकली। कथन में ऐसा आता है व्यवहार कहने में आता है कि गणधर की उपस्थिति नहीं थी, ऐसा निमित्त से कथन है। बाकी वाणी का योग ही निकलने का नहीं था। वह राजगृही के विपुलाचल पर्वत पर भगवान की वाणी ६६ दिन बाद केवलज्ञान होने के समय हुआ, वाणी यह श्रावण कृष्ण एकम् को निकली, वह यहाँ श्लोक है इसमें। यह धवल है, धवल है। 'श्रावण कृष्ण प्रतिपदा के दिन...' यह श्रावण कृष्ण एकदम कहलाती है। शास्त्र के हिसाब से आज श्रावण महीना लगा। श्रावण कृष्ण एकम्। कृष्ण पहले होता है शास्त्र के हिसाब से और शुक्ल बाद में होता है। क्योंकि शुक्ल में पूर्ण आता है—पूनम। पूनम अर्थात् पूर्ण और अमावस अर्थात् अधमास। अमावस अर्थात् अधमास। पूर्ण मास अर्थात् पूनम। इसलिए पहले से शुरु हुई अमावस से यह पूनम कल अषाढ़ महीना पूरा हो गया। पूनम को पूरा। आज कृष्ण एकम् से शुरु होता है।

'श्रावण कृष्ण प्रतिपदा' कृष्ण अर्थात् यह अन्धेरा। 'दिन रुद्र मुहूर्त में' मुहूर्त का काल होगा शास्त्र प्रमाण। **सूर्य का शुभ उदय होने पर अभिकी नक्षत्र के प्रथम योग में जब युग की आदि हुई।** युग की शुरुआत हुई। तभी तीर्थ की उत्पत्ति समझना चाहिए। भगवान की वाणी निकली उस समय। उस समय गौतमस्वामी गणधर की उपस्थिति थी। उन्होंने सुना और एकदम चार ज्ञान और चौदह पूर्व प्रगट हो गये। वह भी आज का ही दिन है। अन्तर्मुहूर्त में जिन्होंने बारह अंग और चौदह पूर्व की क्रम-क्रम से रचना की। बारह अंग, चौदह पूर्व कहीं एक समय में तो नहीं होती न! इसलिए क्रम से रचना

की, ऐसा शब्द पड़ा है, हों! दूसरा कहीं है। क्रम से रचना की। समझ में आया? एक अन्तर्मुहूर्त के अन्दर बारह अंग और चौदह पूर्व की रचना। तब पहले गणधर का योग नहीं था। ऐसा प्रश्न उठा है उसमें। उसमें ही होगा... क्रम इसमें होगा। उसमें होगा क्रम प्राय: इसमें होगा। क्रम शब्द पड़ा है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहाँ प्रश्न है? देखो यह ७६। शब्दों की शैली हो कथन की पद्धति, ऐसा आवे। क्या कहा? **केवलज्ञान की उत्पत्ति के अनन्तर ६६ दिन तक दिव्यध्वनि की प्रवृत्ति क्यों न हुई?** ऐसा प्रश्न किया है अन्दर वीरसेनस्वामी में। भगवान को केवलज्ञान वैशाख शुक्ल दसवीं को हुआ। और ६६ दिन तक वाणी नहीं निकली। तब प्रश्न हुआ, **केवलज्ञान की उत्पत्ति के अनन्तर ६६ दिन तक क्यों न निकली? कि गणधर न होने से। उतने दिन तक दिव्यध्वनि की प्रवृत्ति न हुई।** यह निमित्त से कथन है। वाणी का योग ही नहीं था, अब कहेंगे देखो। यहाँ से कहेंगे।

सौधर्म इन्द्र ने केवलज्ञान के प्राप्त होने के समय गणधर को क्यों नहीं उपस्थित किया? वीरसेनस्वामी ने प्रश्न लगाया है। अन्दर पाठ है, हों! .... अर्थात् क्यों नहीं लाये? यदि भगवान की वाणी ६६ दिन में निकले और गणधर आये, तब निकली, तो फिर गणधर को उस समय क्यों नहीं लाये? इन्द्र क्यों पहले गणधर को नहीं लाये? ऐसा प्रश्न हुआ। तब कहते हैं, समाधान। नहीं, ऐसा नहीं, सुन। **क्योंकि काललब्धि के बिना सौधर्म इन्द्र गणधर को उपस्थित करने में असमर्थ था।** ... उसके काल में उसकी योग्यता की पर्याय पकने की हो, तब उसे आवे। तब उस वाणी का निमित्त हो। उसकी लब्धि, काललब्धि, उसकी समय-समय की गणधर की पर्याय को भी जिस समय की प्राप्ति होने की होती है, ऐसी काललब्धि हो, तब उसे वाणी का योग होता है, तब इन्द्र को लाने का विचार आया। यह शब्द है, देखो! समझ में आया? ऐसे गणधर आये और वाणी निकली, उसकी काललब्धि पकी है। उस काललब्धि का अर्थ यह कि अन्दर उस समय की योग्यता है, उस समय की पर्याय में भगवान की वाणी। अन्तर में पुरुषार्थ में अन्दर ढले हैं अन्तर आनन्द में। पूर्णानन्द भगवान आत्मा की महिमा में अन्तर (में)

उतरे, चार ज्ञान और चौदह पूर्व और बारह अंग। क्रम शब्द पड़ा है कहीं, हों! यह क्रम से रची है, ऐसा कहा जाता है।

मुमुक्षु : धवल में पाठ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धवल में? धवल में कहाँ? ६५ पृष्ठ पर होगा यह, ठीक। कहीं है सही कहा, देखो! देखो, उसमें है। उसमें है ६५ पृष्ठ पर है। कहते हैं कि **अनन्तर भावश्रुत पर्याय से परिणत इन्द्रभूति ने बारह अंग और चौदह पूर्वरूप ग्रंथों की एक ही मुहूर्त में क्रम से रचना की।** भगवान की वाणी निकली, अन्दर योग्यता थी, एकदम बारह अंग और चौदह पूर्व अन्तर्मुहूर्त में रचना की। इतनी सामर्थ्य स्वयं के कारण से है। वरना तो भगवान की वाणी सबके लिये निकली थी। वाणी तो एक साथ प्रपात निकला। उसकी वह योग्यता प्रमाण उसकी पर्याय प्रगट हुई। और दूसरे कितने ही तो ठोठ रहे अन्दर। नहीं आता वह? आता है कुछ, नहीं? कौन वे पारसनाथ भगवान की (परम्परा के)... मश्करी। मश्करी साधु। वह बैठा था अन्दर कि यह मुझे गणधर पद मिलेगा। समझे न? वहाँ तो गौतम को मिला। ऐसा कि मुझे गणधर पद मिलेगा। पहले जाकर बैठा था। ऐई! परन्तु जहाँ वाणी निकली, वहाँ उसे नहीं मिला, वहाँ तो नहीं बोला। बाहर निकला, सभा के बाहर (निकला और बोला) कि यह भगवान सर्वज्ञ नहीं। सर्वज्ञ हो तो मैं पहले का पुराना व्यक्ति गणधर के योग्य (होने पर भी) मुझे गणधर पद क्यों नहीं देते?

मुमुक्षु : मुनि, पारसनाथ (की परम्परा के)

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पारसनाथ के मुनि थे, देखो, यह लाईन है। उनकी योग्यता नहीं थी। तथापि उन्हें ऐसा कि... सर्वज्ञ भगवान नहीं, ये सर्वज्ञ नहीं। इन्हें तीन काल का ज्ञान नहीं। ज्ञान हो तो मुझे योग्य पात्र न गिने? अब उसमें वह किसका गिनना उसमें? अपनी योग्यता है। पहले से लाख वर्ष से बैठा हो तो क्या है? जिसकी समय की अपनी पात्रता है, उसे वह पद कहीं किसी का देने से दिया जाता है? वह योग्यता ही लेकर आया हुआ हो सहजरूप से, लब्धि है न? क्षयोपशम लब्धि आती है। क्षयोपशम लब्धि के बोल आते हैं। क्षयोपशम लब्धि की योग्यता उसकी अपनी है वह। वह पर से क्या

प्राप्त होती है ? आचार्य पद और जो यह बाहर से दे, ऐसी वस्तु नहीं शास्त्र में। ऐसा क्षयोपशम आचार्य पदवी का लेकर ही ऐसा उघाड़ लेकर ही आया हो। इसलिए उसे क्षयोपशमभाव में पदवी को गिना है उन सबको। आचार्य पदवी ऐसे नाम। क्षयोपशम है न भाव ? तत्त्वार्थसूत्र में। इस जाति की अन्दर पात्रता, लब्ध की प्राप्ति होकर आये हैं। योग्यता उसे उस जाति की प्राप्त—मिलती है।

भगवान की वाणी भी उस समय में निकलने की ही थी। उसके पुण्य का योग गणधर का और सबको सुनने का योग था न उस समय। गणधर को अन्तर्मुहूर्त में चार ज्ञान प्रगट हो गये। रचना भी अन्तर्मुहूर्त में की। इतनी अपनी सामर्थ्य। वह दिन आज का गिनने में आया है। भगवान की ध्वनि निकली, गणधरपद आज हुआ, तीर्थ आज स्थापित हुआ। क्योंकि तीर्थ में मुख्य तो गणधर हैं। समझ में आया ? और यह चार ज्ञान, चौदह पूर्व की रचना भी आज की। चार ज्ञान और चौदह पूर्व और बारह अंग की उत्पत्ति भी गणधर को आज ही हुई। ऐसा यह दिन बड़ा, इसे शासन का दिन गिनने में आता है। दिव्यध्वनि का दिवस गिनने में आता है। समझ में आया ?

यह बात श्वेताम्बर में नहीं। वे तो ऐसा ही कहते हैं कि दिव्यध्वनि निकली सही, परन्तु पुरुष नहीं थे। धर्म के प्राप्त करनेवाले मनुष्य नहीं थे इसलिए। यह बात सच्ची नहीं है। ऐसा नहीं हो सकता। क्योंकि भगवान तीर्थंकर को जब तीर्थंकरपना प्राप्त हुआ, तब उनके विकल्प में ऐसा था कि धर्म की वृद्धि अथवा पूर्ण पुष्टि होओ। तो उस विकल्प में बन्ध ऐसा पड़ा कि यह वाणी निकले और धर्म प्राप्त करनेवाले न हों, ऐसा नहीं होता तीन काल में। यह वस्तु की स्थिति है। समझ में आया ? लोगों ने तोड़-मरोड़कर फेरफार कर डाला है। वाणी निकले और धर्म प्राप्त करनेवाले न हों, (ऐसा नहीं होता)। स्वयं ने जब बाँधा था तीर्थंकर (नामकर्म), तब तो ऐसा विकल्प था कि पूर्णानन्द की प्राप्ति करूँ। साधक है सम्यग्ज्ञान-चारित्र आदि। पूर्ण होऊँ... पूर्ण होऊँ... उस समय का विकल्प उसका पुण्यबन्धन हो और वह वाणी निकले और धर्म प्राप्त करनेवाले न हों, ऐसा कभी नहीं हो सकता। समझ में आया ? यह वस्तु की स्थिति ऐसी है। उस समय वाणी निकली और गणधर थे। ऐसी वस्तु है। गणधर होते ही हैं, धर्म पाते ही हैं।

कुन्दकुन्दाचार्य जैसे ने कहा पाँचवीं गाथा में। समझ में आया? '**तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।**' मैं मेरे वैभव से दिखाऊँगा। तो पहले दिखाऊँगा तो कहा। '**तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।**' पश्चात् और दूसरा पद लिया। '**जदि दाएज्ज पमाणं**' यह दूसरा पद लिया और वापस। दिखाता हूँ तो प्रमाण करना। निमित्त में उपादान जीव ऐसे निकलेंगे, उस सत्य की श्रद्धा करनेवाले। ऐसा सामने निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध सिद्ध कर दिया है। समझ में आया? परन्तु (प्रमाण) करना, अर्थात्? करनेवाले निकलेंगे, ऐसा। समझ में आया? '**जदि दाएज्ज**' बस इतना। '**पमाणं**' यह शब्द पर के लिये है। प्रमाण करना... प्रमाण करना। ऐसी वाणी और इस स्थिति का योग निकलता है तो सामने ऐसे योग्य जीव भी होते हैं। भले थोड़े (हों), उसका कुछ प्रश्न नहीं, परन्तु वे धर्म को समझनेवाले, अनुभव से प्रमाण करनेवाले हैं। प्रमाण करना। '**चुक्केज्ज छलं ण घेत्तव्वं।**' कोई व्याकरण-संस्कृत आदि के शब्दों में तुझे विशेष कोई क्षयोपशम हो और तुझे ख्याल आ जाये कि इसमें भूल है, शब्द का फेरफार है, वहाँ ध्यान रखना नहीं। ध्यान वहाँ नहीं रखना। हम जो भाव कहते हैं, उसके ऊपर ध्यान रखना। तो तू तेरे स्वरूप को प्राप्त कर सकेगा। कहो, समझ में आया? लो, इतनी बात आज की जरा। आज श्रावण कृष्ण एकम् है न आज? दिव्यध्वनि का दिवस है, इतना निकला, लो!

चलता अधिकार, परमात्मप्रकाश। दिव्यध्वनि की ही है न यह सब वाणी! भगवान की वाणी निकली, उसमें से बारह अंग की रचना हुई। उसमें से यह सब षट्खण्डागम की बारह अंग के साथ सम्बन्ध धरानेवाली वाणी है। उसमें जयधवल, यह सब टीकायें हैं, परन्तु मूल षट्खण्डागम जो है, वह भगवान की वाणी की सन्धि से (रचित है)। धरसेन आचार्य महाराज यहाँ विराजते थे। गिरनार की गुफा में। वह ठेठ की वाणी उन्हें कण्ठस्थ थी। पुष्पदन्त, भूतबलि महाराज को दी। महासन्त, भावलिंगी वीतरागी सन्त थे वे दोनों। धरसेनाचार्य तो महासन्त, परन्तु दोनों मुनि वीतरागी सन्त, उनको दी। उन्होंने षट्खण्डागम बनाये। वह भगवान की वाणी के साथ सन्धि धारते हैं। उसमें से यह सब शास्त्र फिर जयधवल, महाधवल, धवल यह सब उसमें से बाद में (टीकारूप) बने हैं। यह है ज्ञान अधिकार में से बने हैं।

परमात्मप्रकाश। १४५ (गाथा)। भावार्थ से है न? कहते हैं कि अरे प्रभु! यह **अमूर्त वीतराग भावरूप जो निज शुद्धात्मा...** कैसा है यह आत्मा? अमूर्त है। तब यह शरीर मूर्त है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब व्यवहार के निमित्त से (कथन है)। कहा जाता है, वह तो निमित्त से बात है। वस्तु कैसी? प्रवचनसार में नहीं आया? पहले ज्ञान अधिकार में भी। ज्ञेय अधिकार में ज्ञेय में। जो अरूपी द्रव्य, उसके अरूपी गुण, उसकी अरूपी पर्याय। आता है या नहीं? पहले आता है वह। यह तो—निमित्त तो अपेक्षा से कहा है। बाकी पाँच द्रव्य जो हैं अरूपी हैं, अमूर्त हैं, उनके गुण अमूर्त हैं, उनकी पर्याय अमूर्त है। एक रूपी रजकण है, उसका द्रव्य रूपी, गुण रूपी और पर्याय रूपी। प्रवचनसार ज्ञेय अधिकार में है। ऐसे ज्ञेय हैं। अरूपी ज्ञेयों के गुण और पर्याय अरूपी हैं, अमूर्त हैं। यह तो व्यवहार का वह साथ में निमित्त कर्म है न, इस अपेक्षा से मूर्त कहा। वस्तु मूर्त हो जाती है? गजब बात, भाई! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, यह भगवान आत्मा अमूर्त है। रजकण के रंग, गन्ध, रस, स्पर्श है, वह इसमें नहीं। वीतरागभावरूप। कैसा है भगवान आत्मा? वीतराग अर्थात् राग के दोषरहित वह है। और ऐसा **भावरूप जो निज शुद्धात्मा...** देखो, ऐसा स्वभावरूप निज शुद्धात्मा। एक बात सिद्ध की। **उससे व्यवहारनयकर दूध-पानी की तरह यह देह एकमेक हो रही है,...** उसके साथ, भगवान आत्मा अरूपी वीतराग निज शुद्धात्मा, ऐसे भाव से भरपूर भगवान आत्मा के साथ यह शरीर व्यवहार से दूध-पानी की भाँति। दूध और पानी की भाँति **यह देह एकमेक हो रही है,...** परन्तु पानी पानीरूप और दूध दूधरूप से है।

ऐसी देह, जीव का स्वरूप नहीं है,... यह जीव का स्वरूप नहीं। भगवान आत्मा अरूपी वीतरागभावस्वरूप। वह आस्रव है, वह तो तत्त्व आस्रवतत्त्व है, वह कहीं आत्मतत्त्व नहीं। इसलिए आत्मतत्त्व तो उसे कहते हैं कि अमूर्त, रागरहित स्वभावभावस्वरूप भगवान आत्मा को आत्मा कहते हैं। ऐसा आत्मा व्यवहार से, इस

शरीर के साथ दूध और पानी की भाँति **एकमेक हो रही है, ऐसी देह भी जीव का स्वरूप नहीं है,...** असंख्य प्रदेश सब इकट्ठे क्षेत्र से। यह देह भी जड़ मूर्त, यह (आत्मा) अमूर्त चैतन्य। यह देह इस जीव का स्वरूप नहीं। कब होगा? ऐई! राजमलजी! अभी। कब क्या? कब की बात चलती है यह? शान्तिभाई! क्या यह? अभी कहा जाता है। पृथक् पड़े तो व्यवहारनय फिर स्वीकार करने जाता है। यहाँ तो अभी है।

भगवान अपने स्वचतुष्टय में है। शरीर उसके परचतुष्टय अर्थात् इससे (आत्मा से) पर, उसके स्वचतुष्टय में है। शरीर के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव शरीर में, शरीर के अस्तित्व से है, भगवान आत्मा के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव द्रव्य में स्वयं अपने में है। यहाँ तो उसकी पर्याय में विकार, वह भी गिनने में आता नहीं। वरना वह है तो पर्याय के स्वकाल में। परन्तु यहाँ त्रिकाली स्वभाव वर्णन करना है, आत्मतत्त्व वर्णन करना है, इसलिए वह आत्मतत्त्व तो इस आस्रव और शरीररहित जो तत्त्व वीतराग विज्ञानघन, उसे आत्मा कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा! अरे.. भगवान! यह तू और शरीर दोनों एक जगह रहे। दूध और पानी की भाँति एक लगे, वे भिन्न। भिन्न होंगे यह? छोटाभाई! अभी यह शरीर भिन्न होगा? या एकमेक होगा?

मुमुक्षु : आपने कहा, दूध-पानी की भाँति एकमेक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु दूध-पानी की भाँति न? दूध दूधरूप से और पानी पानीरूप से रहकर न?

मुमुक्षु : एकमेक कहा न।

पूज्य गुरुदेवश्री : एकमेक कहा अर्थात् क्या दूध पानीरूप हो गया और पानी दूधरूप हो गया है? अग्नि का निमित्त पड़ा और पानी भाप होकर उड़ जाता है और दूध मावा होकर रह जाता है। यह तो एकमेक है नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। परन्तु पिण्ड मानकर बैठा है न यह। ... मानो बड़ा। धूल है यह तो मिट्टी का पिण्ड रूपी है। भगवान अरूपी आनन्द का पिण्ड है। अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड आत्मा और यह जड़ का पिण्ड परमाणु। एक जगह दूध और पानी का अर्थ क्या? दोनों एक हो गये या दोनों दो रहकर एकक्षेत्रावगाही हैं? परन्तु वे दो, तब एकमेक कहा न? दोनों एक जगह एकमेक

दिखाई देते हैं, ऐसा। परन्तु दोनों दोरूप से है या दोनों एक हो गये हैं? पानी पलटकर दूध हो गया? दूध पलटकर पानी हो गया है? इसी प्रकार भगवान आत्मा एक जगह रहा होने पर भी भगवान अरूपी पलटकर यह रूपी हो गया है? और यह रूपी मिट्टी के घन रजकण, वे कहीं अरूपी आत्मा हो गये हैं? वे रजकण आत्मा हो गये हैं? और आत्मा रजकणरूप हो गया है? तीन काल में नहीं। आहाहा! परन्तु इसे ऐसा लगे अन्दर से... अभी तो दूसरा कहेंगे कि ...! यह शरीर यहाँ एक जैसा लगे, वह भी तेरा स्वरूप नहीं।

तो पुत्र-कलत्रादि धन-धान्यादि अपने किस तरह हो सकेंगे? कहो, छोटाभाई! कहो, यह तेरा पुत्र और यह उसकी पुत्री और यह उसकी स्त्री और उसकी पुत्री, यह उसके पैसे, यह उसका अनाज, यह उसके गहने, यह उसके वस्त्र, यह उसका घर और यह उसका मकान और यह उसकी इज्जत, **अपने किस तरह हो सकेंगे?** शान्तिभाई! क्या होगा इसमें? आहाहा! भगवान! तेरा रूप पररूप कभी तीन काल में हुआ नहीं और पररूप तेरे रूप में कभी आ नहीं गये। अनन्त तत्त्व अनन्तरूप से रहकर वर्तमान पलट रहे हैं। अनन्त-अनन्तपने में पलटा, एक भी दूसरे में मिले तो एक घट जाये तो सब अनन्त घट जाये। एक क्षेत्र में रहे दिखाई देते हैं, परन्तु वह भी तेरा स्वरूप नहीं।

भगवान! **पुत्र-कलत्रादि...** पुत्री, पुत्री, बहू, बाई, स्त्री, कुटुम्ब और धन। **धन,...** अर्थात् लक्ष्मी, **धान्यादि...** ऐसे मानो कोठार भरे हों तिल के, बाजरा के, गेहूँ के, चावल के। अब अपने दिक्कत नहीं। बारह महीने का अनाज इकट्ठा किया है। नहीं कहते? यह स्त्री फुरसत में ऐसी बात करे। बारह महीने का अनाज पहले से इकट्ठा ले लिया है। अब बारह महीने दिक्कत नहीं। परन्तु किसका है अनाज भी? तेरा है?

मुमुक्षु : इसके बाप का नहीं, परन्तु इसके पति का तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसके पति का नहीं। इसके पति का शरीर भिन्न, उसका आत्मा भिन्न, और तू भी भिन्न। और फालतू-फालतू बातें करे। बारह महीने का एक साथ ले लिया और वापस सुधारकर रखे। क्या कहलाता है वह? साफ करके भरकर रखा है, इसलिए अब दिक्कत नहीं। क्या दिक्कत नहीं? मर जाना है तुझे अभी वापस थोड़ी देर

में। देह तू नहीं वहाँ और यह चीज़ कहाँ से आयी तेरी यह? अरे! ममता के—मोह के डोरे ने इसको बाँध रखा है।

मुमुक्षु : माँ-बाप को तो ऐसा हो न कि यह मेरे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं। माँ-बाप किसका कहना? आत्मा को—माँ-बाप होंगे। आत्मा को पुत्र होगा किसी का। नहीं कहा उसमें? आहाहा! मनुष्य यह तो शरीर है, यह तो मिट्टी है। आत्मा तो भिन्न है। मनुष्य की गति कहो तो वह तो उसका उदयभाव है जीव की पर्याय में। किसका आत्मा? आहाहा!

भगवान आत्मा एक जगह रहे हुए शरीर का नहीं, तो फिर यह स्त्री, परिवार का कहाँ से हुआ? क्या हुआ तुझे, कहते हैं यह! समझ में आया? उसकी एकताबुद्धि तोड़, वरना सुख मिलेगा नहीं। दुःखी होने के रास्ते हैं। यहाँ एकता तोड़ने की बात करते हैं मूल तो, हों! एकपना नहीं, भिन्न-भिन्न वस्तु है। कहो, शान्तिभाई! बराबर होगा? एकदम सच्चा? आहाहा! **किस तरह हो सकेंगे?** ऐसे पैसा... पैसा... पैसा... आहाहा! पचास-पचास हजार की दिन की आमदनी। पैसा डालना कहाँ? कहो, दस-दस हजार की आमदनी प्रतिदिन की। पैदाश समझे न? आमदनी-आमदनी। डालना कहाँ? वह जाने, मैं बड़ा पैसेवाला हो गया। मूढ़ है? पैसा कहाँ तेरा था? वे तो जड़ के हैं, मिट्टी के धूल के ढेले हैं। उसे भी...

मुमुक्षु : धूल के ढेले की कीमत बहुत है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहीं धूल की कीमत आती नहीं। मर जाये वहाँ खाये नहीं सोना का हीरा निगल जाये थोड़ा अन्दर? मरते समय हीरा घिसकर निगले। अन्दर फँस जायेगा ऐं... ऐं... हो जायेगा अन्दर से। कहो, नहीं था उस भाई के घर में हीरे कितने भरे? दस करोड़। (दीपचन्दजी) सेठिया के मामा। यह सोभागचन्दजी के मामा हैं न वहाँ, सरदारशहर। दस करोड़ कहते हैं। दस करोड़ वे कितने परन्तु कितने होंगे खबर नहीं। क्योंकि दस करोड़ तो कब के कहलाते हैं। परन्तु जहाँ देखो वहाँ तो सन्दूक में सोने की ईंटें भरी हों, हीरे भरे हों, माणेक भरे हों, मोती भरे हों। अकेले ढ़ेर। दस करोड़ तो कब के। अभी तो तीस करोड़ जितनी कीमत होगी। इतनी पड़ी है। आहाहा! सेठिया

के मामा अभी है न, सरदारशहर। धूल में भी उसमें। वापस वे कहते थे बेचारे, हों! यह तीन आना की शीशी बेचने के लिये आदमी को भेजे। शीशी खाली हो न। खाली हो तो बेचने भेजे। शीशी समझे? बोतल-बोतल। खाली हो न बोतल, कुछ माल लाये हों तो खाली हो तो आदमी को कहे कि जाओ, बेच आओ।

मुमुक्षु : ज्ञान का विवेक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या ज्ञान का विवेक.. ? ऐसा कहे विवेक है उसमें। पैसा मुफ्त में न जाने देना। परन्तु अब यहाँ तेरे करोड़ों हीरा पड़े है, माणेक इतने सन्दूक में पड़े हों कि अभी सन्दूक खोले नहीं, कहे। कौन खोले? समझे? एक तो ऐसा का ऐसा मर गया दस करोड़वाला उसका। फिर मर जाने के बाद उसके भाई के पुत्र का पुत्र लिया। दो भाई थे दस-दस करोड़वाले। पहले के गिने जायें। अभी तो ३०-४० करोड़ रुपये। हीरा-माणेक के भाव बढ़ गये हैं न। धूल में भी फें... फें... होकर मर गया। हाय! हाय! यह तीन पैसे की क्या कहलाती है? तीन आना की बोतल। ... बराबर लेना, हों, बेचना। ...परन्तु अब तू इतना... अरे भगवान! यह वह दशा जगत की! यह बना हुआ है अभी, हों! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह खबर है न। यह तो याद आया था परन्तु अब कहा न, कहना। अरेरे! सुई सिलता हो। सुई होती है न सुई? दर्जी-दर्जी। वह सिलता हो और डोरा होता है न? डोरा की क्या कहलाती है वह? रील-रील। लकड़ी के ऊपर डोरा लिपटा हुआ हो न? डोरा से सीवे तो वह रील खाली पड़ी रही। तो दर्जी ने डाल दी। लकड़ी की नहीं गोल होती है न? वह डाल दी। सेठ आये, कहाँ गयी? खोजकर लाओ, इसके बिना पैसे नहीं दूँगा। अरे, यह वह! शशीभाई! देखो, इस जगत में अन्धापन तो देखो! अन्धे वह भी कैसे अन्धे! आहाहा!

कहते हैं कि यह मेरे... यह मेरे... परन्तु यह कैसे जाने दिया जाये उस लकड़ी की वह? खाली पड़ी हो। ऐसी तो पाँच, सात, दस सिलने में खाली पड़ जाये। वहाँ कौन खोजने जाये? कहाँ गयी? तीन में की दो कहाँ गयी? मुझे खबर नहीं, कौन

ले गया होगा। लाओ। वरना शाम को आज के पैसे नहीं मिलेगे। आहाहा! अरे... परन्तु आत्मा यह! और छोड़े तब छह खण्ड एक ऐसे कफ छोड़े वैसे छोड़ दे। आहाहा! कफ।

कहते हैं कि यह मेरे... यह मेरे... परन्तु वह कैसे जाने दिया जाये उस लकड़े की वे खाली पड़ी हो। ऐसी तो पाँच, सात, दस सिलने में खाली पड़ जाये। वहाँ कौन खोजने जाये? कहाँ गयी? तीन में से दो कहाँ गयी? मुझे खबर नहीं, कोई ले गया होगा। लाओ। वरना शाम के आज के पैसे नहीं मिलेंगे। आहाहा! अरे.. परन्तु आत्मा वह! और छोड़े तब छह खण्ड एक ऐसे कफ छोड़े वैसे छोड़ दे। आहाहा! कफ।

छह खण्ड के राज चक्रवर्ती के, सोलह हजार देव सेवा करें। अरे! हमारी चैतन्य ऋद्धि को सम्हालने के लिये हम अब जाते हैं। यह हमारा नहीं, हों! यह हमारा नहीं। अकेले जंगल में वस्त्र, मनुष्य बिना के जंगल में चले जायें। उसे छोड़ते हुए जरा भी ऐसा नहीं लगे कि यह... परन्तु वह छूटा हुआ ही है। मेरा कहाँ था? जहाँ मैं हूँ, वहाँ मैंने नजरें-स्थिरता की नहीं थी, अब मैं स्थिरता करने निकल जाता हूँ। मेरी स्थिरता पर में, विकल्प में न रहो। इस प्रकार कफ छोड़े, वैसे छह खण्ड का राज (छोड़ दिया)। छियानवें हजार स्त्रियाँ चोटियाँ खींचती खड़ी रहे। चले जाते हैं। हम कहीं नहीं। जहाँ है, वहाँ दूसरे में हम नहीं। हम हमारे में समाना चाहते हैं। कफ छोड़े एक मिनिट में। इसे इतना छूटना कठिन। जगत की ममता वह कितनी! आहाहा!

कहते हैं, भाई! यह पुत्र, परन्तु मेरा प्रिय लगे। ऐसे बड़े-बड़े अंग्रेज जैसे रूपवान हों पाँच हाथ के लम्बे और मक्खन जैसा शरीर। ऐसे मलमल के कोट-बोट पहने हों। लम्बी शाल के। लम्बी शाल। लम्बी शाल समझे न? ऐसे छूटी। और कोट कपड़ा कठिन। ऐसे... ऐसे... आहाहा! उसमें छह लोहे जैसे देखे तो आहाहा! रस ही लगे या नहीं? किसका परन्तु? उसका शरीर उसका नहीं तो तेरा कहाँ से आ गया वह? मोह ने जगत को मार डाला। कोई तेरा नहीं, भाई!

ऐसा जानकर बाह्य पदार्थों में ममता छोड़कर... भगवान! वह वस्तु तेरी नहीं और तुझमें नहीं। तेरी नहीं, तुझमें नहीं। तुझमें तो क्या है? **शुद्धात्मा की अनुभूतिरूप**

जो वीतराग निर्विकल्प समाधि... आहाहा! यह राग पुण्य-पाप के विकल्प, उनसे रहित प्रभु! तेरा स्वरूप है। ऐसा शुद्धात्मा, उसकी अनुभूति। उसका अनुभव, उसका आश्रय, उसकी महिमा, भगवान आत्मा की अन्तर महिमा करके, स्थिर हो, महिमा करके स्थिर हो, उसमें तुझे शान्त और शरण है। बाकी कहीं शान्ति-शरण नहीं है।

वीतराग निर्विकल्प... शान्ति। समाधि अर्थात् शान्ति। भगवान आत्मा में अकेला शान्तरस का पिण्ड पड़ा है। वीतरागरस कहो या शान्तरस कहो। श्रीमद् ने कहा न,

वचनामृत वीतराग के, परम शान्त रसमूल;
औषध जो भवरोग के, कायर को प्रतिकूल रे।
गुणवन्ता रे ज्ञानी अमृत झरा रे पंचमकाल में।

भगवान आत्मा अमृत का सागर प्रभु। 'वचनामृत वीतराग के अरु परम शान्त रसमूल...' क्या कहा यह? वाणी में तो परम आनन्द शान्तरस बतलानेवाली वाणी है। यह विकल्प और राग वाणी के सन्मुख देखकर कर, ऐसा उसमें है नहीं—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? 'औषध जो भवरोग के...' भव का रोग जो अज्ञान का, राग-द्वेष का, उसे टालने के लिये यह औषध एक ही है। 'औषध जो भवरोग के परन्तु कायर को प्रतिकूल।' जिसका वीर्य घात हो गया है, जिसे विकार में रुचि लग गयी है, जिसे भगवान अन्तर में अनन्तगुण का प्रभु भासित नहीं होता, ऐसे कायरों को यह वाणी सुनते हुए कलेजा काँपे, ऐसा है। हाय... हाय...! यह क्या कहते हैं? न्यालभाई! आहाहा! वाणी को एकबार अमृत कह दिया। भगवान अमृत स्वयं है। इसलिए वचनामृत वीतराग के परम शान्त... शान्त... अविकारी स्वरूप को बतलानेवाले हैं, उसकी रुचि कर तो यह वीतराग की वाणी तुझे निमित्त कही जायेगी। 'कायर को प्रतिकूल।' कायर... यह? एकदम शान्तरस प्रगट हो? कुछ राग और पुण्य और क्रिया किये बिना? अरे! सुन न अब! राग क्लेश करके अमृत हो - ऐसा है न? राग तो क्लेश है। शुभराग भी क्लेश है, शुभराग भी पुण्य है, शुभराग जहर है। जहर में से अमृत आता होगा?

भगवान अमृतस्वरूप शान्त, सीधी दृष्टि करने से प्रगट होता है, यह बात कायर को समझ में नहीं आती। कायर को ऐसा कलेजा काँप उठता है अन्दर से। अरर! यह

क्या ? ऐसा निरालम्बी मार्ग ! कुछ आलम्बन नहीं ? बाहर में मूर्ति का आलम्बन (नहीं)। एक ओर मूर्ति का आलम्बन कहना और एक ओर विकल्प का आलम्बन नहीं ? भाई ! मूर्ति का अवलम्बन किस अपेक्षा ? बापू ! जब शुभराग हो, तब उसका लक्ष्य वहाँ जाये, इसलिए व्यवहार से आलम्बन कहा जाता है। बापू ! विकल्प का आलम्बन भी चैतन्य को नहीं। ऐसी दृष्टिरहित विकल्प उठे, (तब) उसे निमित्त का आलम्बन, यह व्यवहार से भी नहीं कहा जाता। इस वस्तु का आलम्बन करे, तब विकल्प उठा, तब व्यवहार से आलम्बन कहा जाता है। निश्चय में उसका आलम्बन है नहीं। समझ में आया ?

शुद्धात्मा। एक से शुरु किया है, हों ! भगवान आत्मा। भगवान ! प्रभु ! शुद्धात्मा। राम भाई वह... नागनेश की एक बाई थी। ग्वालिन। रबारण-रबारण, ग्वालिन न ? उसका इकलौता जवान पुत्र। वहाँ बह गया। यह बरसात खिंच गयी, वह गया ऐसा ? तो लड़का गायों और भैसों को लेकर बाहर गया पाँच-पच्चीस कोस दूर। तुम्हारे गाँव के। छोटाभाई पहिचानते हैं। नाम जाने ग्वाले का। जुमा वह बाई। बरामदे में वह वासीन्दा निकालती थी सवेरे। और लड़का गया हुआ बाहर गायों को ... उसमें वहाँ कुछ सर्प काटा और लड़का मर गया। वह जवान, हों जवान। यहाँ पत्र नहीं आया हुआ। वहाँ जलाती थी उसमें एक व्यक्ति निकला। माँ ! लड़का वहाँ मर गया। राम भाई ! राम की रीति है तो जाये। इकलौता लड़का। सुना नहीं कान से। वह कहे कि तुम्हारा लड़का मर गया। राम भाई राम। वह स्थिति पूरी होती है। आहाहा ! यह जुमा न ? वह जुमाबाई। ऐसे बेचारी सरल। तत्त्व की कुछ खबर नहीं होती परन्तु राम भाई ! परन्तु पुत्र मर गया उसका सुनाया तो राम भाई ? चिल्लाहट तो मचा। ऐई ! जेचन्दभाई ! समझ में आया ? वह ग्वालिन-ग्वालिन। इकलौता पुत्र और मर गया। वे गायें और भैंसें बह गयी तो बाहर चराने में। घास हो न पर्वत में। गिरनार-गिरनार। वहाँ बहुत घास होती है। ले गये। उसमें कोई सर्प काटकर, लड़का मर गया। पत्र आने में देरी लगे और वहाँ कौन सगा-सम्बन्धी था ? और एक व्यक्ति वहाँ का परिचित ऐसे निकला और वह जलाती थी। माँ ! तुम्हारा पुत्र मर गया। राम भाई ! लो, ऐसा बोलती है। आहाहा ! ऐसा नहीं कि अरर्र ! कहाँ मर गया ? अब भाई मर क्या गया अब ? वह तो स्थिति पूरी होने की है। राम भाई ! ऐसा कहा, हों ! नेमिचन्दभाई ! और यह बनिया को यदि सुनावे न कुछ, वहाँ वापस

बनिया चिल्लाहट मचाये। सिर पर साफा ओढ़कर। पागल है या नहीं, परन्तु क्या है तुझे? वह तो जगत की चीज़ें हैं। संयोग से आवे और संयोग वियोग लेकर आता है। उसके काल में गयी और उसके काल में आयी। परन्तु तुझे क्या है?

दृष्टान्त दिया है न अनुभवप्रकाश में? वड़ का। वड़ के सूखे पत्ते। वड़-वड़ यह। सूखे पत्ते। एक बन्दर आकर बैठा हुआ ऊपर। दो डालियाँ ऐसे। उसमें हवा आवे और एक-एक पत्ता खिरे, वहाँ रोवे। ऐई! मेरा गया। कितनों को रोयेगा परन्तु तू? पत्ते बहुत हैं। आहाहा! वह ग्वाले का दृष्टान्त नहीं दिया था? कल दिया था न? एक रबारण थी। थी तो ब्राह्मणी महिला। पति-पत्नी दोनों जंगल में निकल गये यों ही रात्रि में घूमने। उसमें अन्धेरा, किसी सन्त का देवल। कोई जंगल में नहीं। दोनों रहे हुए। पत्नी-पति दोनों। उसमें कोई राजा भी आ गया उस स्थान में। उसके उस मकान में। वह महिला रूपवान होगी, वहाँ गया। उस रूप से राजा महिला के ऊपर मोहित हुआ। और महिला का कन्धा पकड़ा। इसलिए वह कहे निश्चित (मुझे) भ्रष्ट करेगा। इसलिए कुछ था, (उससे) महिला ने राजा को मार डाला। वह जहाँ मार डाला कि यह मकान जहाँ पति के पास आती है। पति को सर्प काटा हुआ। जंगल में कुछ नहीं मिलता। आहाहा! अब? वहाँ एक डाकू आया। डाकू ने उसे उठाया। कोई नहीं होता। यहाँ पति का मुर्दा, यहाँ राजा का मुर्दा। तीन थे। जंगल में हों बाहर। डाकू ने उठाया। वहाँ वेश्या के घर में बेच दिया। वेश्या के घर में। बेचकर उसमें एक छह महीने, बारह महीने हुए होंगे तो उसका ही पुत्र अपना वह वहाँ आया और उसे खबर रही नहीं रात्रि में कि यह पुत्र है, यह माँ। विषय लिया। बाद में खबर पड़ी कि यह पुत्र। हाय... हाय...! अब? मरूँ।

नदी के किनारे जाकर, लकड़ियाँ इकट्ठी की ओर इकट्ठी करके अन्दर घुसी, उसे सुलगाया। वहाँ आया पानी। नदी का ऊपर से पूर। वे लकड़ियाँ और स्वयं बह गयी। दो-चार कोस दूर मूर्च्छा खाई हुई निकली। उसमें एक ग्वाला (आया)। यह महिला कौन है? वह मर गयी नहीं लगती। श्वास चलता है। थोड़ी दूर उसने तपाया तो अच्छी हो गयी। घर ले गया। पत्नी बनाया। उस घर में दूध और दही और वह करे और छाछ बेचने निकली। अधमण मोटा छछिया (छाछ का बर्तन) छाछ सिर पर रखकर बेचने

निकली बेचने। बाजार में निकली, उसमें लगी ठोकर। ठेस समझे? पैर की। छाछ का बर्तन ऊपर पड़ा। दाँत निकाले। वह बनिया पूछे परन्तु यह दाँत किसके निकाले पड़कर? किसकी मैं भी मांडु? मुझे तो ऐसा कुछ हो गया है।

एक ओर राजा को मारा, मेरा पति मर गया, वेश्या के घर में गयी, यह हुआ, जलने को हुई वहाँ इसके घर में आयी। अब छाछ बेचने (निकली)। छाछ से क्या... ऐसी कथा आती है। यह छाछ से... ऐसी भाषा आती है। यह ... स्वाध्याय... है न स्वाध्याय, क्या कहलाता है? सज्झाय। सज्झाय-सज्झाय। सज्झायमाला। उसमें यह आता है। वहाँ दुकान पर पढ़ा था। 'छाछ को शोक कहाँ करूँ...' 'छाछ को शोक कहाँ करूँ।' छाछ समझे न? वह मठ्ठा-मठ्ठा। उस मठ्ठे का शोक क्या करूँ? ऐसा तो कुछ बीत गया है मेरे ऊपर। ऐई! जेचन्दभाई! यह वह एक भी बीता नहीं और जहाँ आया, वहाँ हाय-हाय शोर मचाया सीधे।

कहते हैं कि अरे भगवान! आहाहा! तेरे ऊपर तो कुछ बीत गयी है, बापू! तूने तेरा इतिहास सुना है? तूने तेरा इतिहास सुना है? निगोद में, नरक में, बाघ में, भालू में, सड़े हुए शरीर में पड़ा जंगल में। आहाहा! कोई धणी नहीं, धोरी नहीं। समझ में आया? ऐसे में अवतार किये। काठी था। वह आता है न एक लेख। काठी था। फिर डाकू निकला डाकू। काठी-काठी समझे न? जमींदार। जमींदार व्यक्ति बहारवटे निकला हुआ—डाकू।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : डाकू-डाकू। डाकू निकला हुआ। घर में स्त्री, माँ-बाप। परन्तु वह निकल गया इस प्रकार से। एक किसान के साथ वैर और किसान पानी पीता था घर में, वहाँ जाकर उसके टुकड़े किये और गाँव में टुकड़े-टुकड़े शरीर के बेचे और हो गया डाकू। अब? करते... करते... करते...प्रतिदिन चोरी करने जाये, डकैती करने। उसमें एक किसी का मजबूत सन्दूक होगा। पैसे भरे हुए अन्दर। पटारो समझे न? पेटी। बड़ा सन्दूक-सन्दूक। परन्तु मजबूत कि टूटे नहीं और नंगे पैर। नंगे पैर। पैर ऐसा मारा उसे। उसमें कील लग गयी। अब? वह बाहर गया। पैसा तो आया नहीं, गया परन्तु

फिर सड़ा। अब वह कहीं डॉक्टर के पास पट्टी करने जाये ? वह तो डाकू। डॉक्टर के पास दवा करने किस प्रकार जाये परन्तु ? वह सड़ा। साथ के लोग डाकू थे सब इकट्ठे। सब चले गये। अकेला रहा। फिर चिल्लाहट मचाये, हों ! कोई आवे तो। अरेरे ! मैंने यह पाप (किये)। ऐसे तो आर्य व्यक्ति था न। मैंने गायों को बहुत मार डाला है। ओहो ! उसके पाप मुझे आये। क्योंकि वह पका और सड़ा और बलवाला वह था। इसलिए साथ में साथवाले थे काठी, वे तो चले गये। अकेला रह गया। पूर्व में जिसे मारा वह आया। व्यक्ति आकर बन्दूक मारकर उसे। पुकार... पुकार... अरे ! कोई हमारा नहीं मिलता। मैंने जंगल में गायों को रोका था। लो ! होवे न। नेरु हो नेरु। दोनों ओर पर्वत हो न। दोनों ओर बड़े पर्वत दोनों ओर। दोनों ओर पर्वत हो न बड़े और नीचे नेरु चले। उसमें गाये था। फिर दोनों ओर उसने काँटे के गळिया डाल दिये। तो ऐसे भी न जाये और ऐसे भी न जाये और पर्वत के ऊपर चढ़ सके नहीं। इसलिए गायों को वैसा किया मैंने पाँच सौ गायों को। बड़ा पर्वत हो न गहरा। और गहरे से पानी निकलता हो ऐसे। इसलिए दोनों ओर काँटे के गळिया ऐसे डाल दिये और दोनों ओर ऐसे काँटे समझे न ? बड़े-बड़े। इसलिए न जाये ऐसे... न जाये ऐसे... ऊपर चढ़ सके नहीं। ऐसे की ऐसी पाँच सौ गायें सूख गयीं। उनका मुझे स्मरण आया कि अरेरर ! यह मैंने (पाप) किये। वैसे तो व्यक्ति जमींदार न ! मैंने किये हुए पाप मुझे भोगने पड़े अकेले। हाय... हाय... ! ऐसी पुकार करता था, वहाँ एक आकर बन्दूक मार गया। ऐसी तेरे ऊपर अनन्त बार बीती है। जेचन्दभाई ! क्या ? 'छाछ को शोक कहाँ करूँ' ... जरा ऐसे-ऐसे हुआ वहाँ उसमें शोक करता है ? आहाहा ! किसकी मांडनी है तुझे ? किसे रोता है परन्तु तू ? 'रोनेवाला नहीं रहनेवाला रे, किसे तू मांडकर रोता है ?' वह रोनेवाला व्यक्ति रहे ? तू रोनेवाला रहे, ऐसा है ? क्या है परन्तु तुझे ?

यहाँ आचार्य कहते हैं, अरे भगवान ! ऐसा काल आया, बापू ! अन्दर देख। भगवान निधान-निधान खजाना पड़ा है अन्दर। खजाना कहीं हो और बतावे चाबी उत्साह में उघाड़ने के लिये ऐसे फट... फट... फट... जाये अन्दर। हीरा-माणेक है। देखो, पच्चीस करोड़ के हीरा-माणेक पड़े हैं। हें ! लाओ... लाओ... लाओ... किसी को

बताता नहीं। खबर न पड़े, वैसे खोलने जाये। ... यह हीरा-माणेक, उस धूल में क्या? यह तो अनन्त चैतन्य रत्नाकर है। अनन्त चैतन्य रत्नाकर गुण का भण्डार भगवान। अरे! उसमें एकाग्र होने की चाबी लगाता नहीं। किस प्रकार से खुलेगा? और बाहर की ममता में होली (करके) पड़ा है। यह... यह... यह... ऐसे अनन्त भव किये परन्तु कहीं शान्ति मिली नहीं।

सब प्रकार से शुद्धोपयोग की भावना करनी चाहिए। देखो, समझ में आया? निर्विकल्प समाधि ली है न, उसका अर्थ इन्होंने शुद्ध उपयोग किया। शुद्ध उपयोग। पहली दृष्टि में, रुचि में तो ले कि करनेयोग्य यही है, दूसरा कुछ करनेयोग्य नहीं। भगवान आत्मा के खजाने में दृष्टि देकर स्थिर होने योग्य है। बस, स्थिर न हो सके तो दृष्टि कर। यह दृष्टि कर सके नहीं तो श्रद्धा तो कर, करने का तो यह ही है। दूसरा कुछ करनेयोग्य नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा यह परमात्मप्रकाश है न! तेरा परमात्मा तुझमें पूरा पड़ा है, प्रभु! उसमें नजर डाल तो खजाना खुले ऐसा है। यह सब धूल तेरी एक भी है नहीं।

★ ★ ★

गाथा - १४६

आगे इसी अर्थ को फिर भी दूसरी तरह प्रगट करते हैं —

२७७) करि सिव-संगमु एक्कु पर जहिँ पाविज्जइ सुक्खु।
जोइय अण्णु म चिंति तुहुँ जेण ण लब्भइ मुक्खु॥१४६॥

हे योगी!... योगी शब्द से ही यहाँ शुरु किया है। हे भगवान पूर्णानन्द प्रभु! उसमें रुचि रखनेवाले हे आत्मा! **हंस,...** देखा! हंस कहा हंसला। वह हंस जैसे दूध और पानी भिन्न करे। भगवान! इसी प्रकार तू भी, तुझमें सामर्थ्य है। राग पानी है और तू मोटा दूध है। दोनों को पृथक् पाड़ने की सामर्थ्य (तुझमें है)। बापू! इसलिए तुझे हंस कहा गया है। पूर्णानन्द की प्राप्ति एकदम कर और राग से सर्वथा पृथक् हो, वह परमहंस है। यह हंस, वह परमहंस, हों! वह दुनिया में कहा जाता है, उसकी बात नहीं। भगवान

पूर्णानन्द प्रभु को पुण्य-पाप के विकल्प से पृथक् पाड़कर विवेक करना, इसका नाम हंस—आत्महंस कहा जाता है। वह विवेकी सन्त कहलाता है। उन विकल्पों का सर्वथा अभाव करके स्थिर होना, वह परमहंस है। समझ में आया?

तू एक निज शुद्धात्मा की ही भावना केवल कर,... आहाहा! देखो! भाई! तेरे हित की बात एक ही है, हों! तेरे सुख की बात एक ही है, हों! तेरी स्वतन्त्रता की सुख की धारा अनन्त काल बहे, उसकी एक ही बात है—शुद्ध आत्मा में दृष्टि करके स्थिर हो। बाकी दुःख की धारा अनन्त काल से चलती जाती है। विकार... विकार... विकार... विकार... विकार... विकार... वह तो दुःखधारा है। वह सुख की धारा, अमृत की धारा बहानी हो, भगवान आत्मा एक निज शुद्धात्मा। देखो, विकल्प व्यवहार-फ्यवहार एक ओर रह गया। उसकी भावना केवल। ऐसा शब्द है न? परम का अर्थ किया। परम—एक ही करनेयोग्य है, भाई! यह बात निश्चय कर, निर्णय कर और नियम ले। नियम ले कि स्वभाव में रुचि करनेयोग्य है। इसके अतिरिक्त (कहीं) नहीं। इसका नाम नियम। इस नियम की खबर नहीं होती और दूसरे नियम लेकर बैठे।

भगवान आत्मा वस्तु स्वरूप ऐसा है, उसे जानकर, उसमें श्रद्धा करनेयोग्य है, उसमें स्थिर होनेयोग्य है, ऐसा नियम पहले निर्णय कर। समझ में आया? उसकी प्रतिज्ञा कर कि मेरे पूर्णानन्दस्वरूप के अतिरिक्त मुझे कोई एक भी वस्तु रुचती नहीं और रुचे ऐसी कोई चीज़ है ही नहीं। रुचे ऐसी चीज़ एक आत्मा पूर्णानन्द है। उसकी प्रतिज्ञा का नियम कर। एक! न्यालभाई! इसका ठिकाना नहीं और फिर यह कर, यह खाना नहीं, और यह पीना नहीं। वह तो मर गया अनन्त बार कर-करके।

मुमुक्षु : कब किया?

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त बार किया। नौवे ग्रैवेयक जैन का साधु हुआ, तब तो लंगोटी का धागा भी नहीं था। कहो, और भिक्षा के लिये जाये, महीने के अपवास में एक मुरमुरा (खाये)। ममरा समझते हो? मुरमुरा-मुरमुरा। चावल का होता है न? चावल के। मुरमुरा मिले तो बस सन्तोष होकर चला जाये। कुछ न ले कोई चीज़। सब पड़ी है, सुन न अब! पूरी दुनिया लेकर पड़ा है। एक विकल्प उठता है, उसमें यह मैंने

त्यागा, यह मैंने छोड़ा—ऐसी मान्यता का मिथ्यात्वभाव पड़ा है, (उसमें) पूरा जगत तेरे पास पड़ा है। आहाहा! मैंने यह छोड़ा है। तूने यह छोड़ा? तुझमें था वह (कि) तु उसे छोड़े? मैंने उसे ग्रहण किया। तो तुझमें परवस्तु को ग्रहने-लेने की सामर्थ्य होगी? और परवस्तु तेरे विकल्प से वहाँ आती होगी? बिल्कुल मिथ्या अभिप्राय। समझ में आया? इसने छोड़ा आत्मा के धर्म को। यह मैंने ग्रहण किया और यह मैंने छोड़ा। यह मैंने छोड़ा और यह मैंने ग्रहण किया। महा मिथ्यात्वभाव, महामिथ्यात्व विपरीत। जो अजीव और परतत्त्व, उन्हें मैंने छोड़ा। तो छोड़ा कब? तुझमें घुस गये थे वे (कि) छोड़े?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो ममता थी। ममता तो वह की वह रही वापस। मैंने यह छोड़े। मैंने यह छोड़े अर्थात् मुझसे छूटे वे। मुझसे यह छूटे अर्थात् उनका स्वामी हुआ न तू? स्वामी हुआ न तब मुझसे छूटे न? यह तो वह का वह हुआ। समझ में आया? पाटणीजी! ऐसा कहते हैं यह।

एक शुद्धात्मा के अतिरिक्त दूसरी भावना कहीं करनेयोग्य नहीं। आहाहा! किसे छोड़े और किसे ले? आत्मा में पर के ग्रहण-त्यागरहित स्वभाव आत्मा का है। वह तो उसका स्वभाव है। (पर के) ग्रहण-त्याग रहित स्वभाव है। उसे ग्रहण-त्याग करूँ, तब तो मिथ्यादृष्टि, मिथ्याबुद्धि हुई। मिथ्या पाप की बुद्धि ग्रसी, घठ्ठ की। और इस पाप की उसे खबर नहीं कि इसमें कौनसा बड़ा पाप लगा और मैंने क्या किया?

कहते हैं कि **एक निज शुद्धात्मा की ही भावना केवल...** दूसरा छोड़ना-त्यागना रहने दे और विकल्प उठे, उसकी नजर करना रहने दे। वस्तु है वहाँ नजर कर। विकल्प को छोड़ना और रखना, वह स्वरूप में नहीं। राग को छोडूँ। वह आत्मा छोड़ता है? क्या वह राग घुसा है अन्दर? स्वरूप की दृष्टि होने पर स्थिरता होने पर राग उत्पन्न नहीं होता, उसे राग छोड़ा ऐसा कथनमात्र कहा जाता है। राग के त्याग का भी परमार्थ से कर्ता आत्मा है, राग के त्याग का, वह है ही नहीं। राग के त्याग का आत्मा कर्ता, यह आत्मा के स्वभाव में तीन काल में नहीं। राग के त्याग का कर्ता, हों! आहाहा! आता है या नहीं? समयसार में आता है। ३४ गाथा में आता है, ३४ गाथा में आता है। भगवान

आत्मा... यह राग का त्याग मैं करूँ, ऐसा कर्तापना आत्मा में नाम—कथनमात्र है। वस्तु के स्वरूप में राग का त्याग कर्तापना, वह आत्मा में है ही नहीं। अरे! समझ में आया? उसके बदले बाह्य वस्तु छोड़ी और त्यागी। वह तो बड़ा अभिप्राय में मिथ्या शल्य लेकर पड़ा है।

कहते हैं एक चिदानन्द प्रभु की भावना कर। **जिसमें कि अतीन्द्रिय सुख पावे,... 'प्राप्येत'** दुःख प्राप्त करता है मिथ्या अभिप्राय से, मिथ्या श्रद्धा से, विपरीत आश्रय से। भगवान आत्मा के प्रेम की प्रतीति के आश्रय से तुझे अतीन्द्रिय सुख प्राप्त होगा। **अन्य कुछ भी मत चिन्तवन कर,...** कुछ भी दूसरा चिन्तवन करने से सुख मिले, ऐसा नहीं। इसलिए दूसरा कुछ चिन्तवन न कर। **जिससे कि मोक्ष न मिले।** जिससे मोक्ष न मिले, ऐसा कुछ चिन्तवन न कर। मोक्ष मिले ऐसा तो आत्मा है, इसलिए उसमें एकाग्र हो। समझ में आया? बात तो कठोर ऐसी पड़े लोगों को। प्रथा दूसरी हो गयी और ऐसा धट में आ गया कि मानो वीतरागमार्ग यह है ऐसा माना। इसलिए लोगों को यह बात... खाली खाना व्यवस्थित लगाना किस प्रकार से? किस प्रकार व्यवस्थित करना कि यह मार्ग ऐसा? ओहोहो!

कहते हैं कि भाई! पर से तो तीनों काल खाली है, परन्तु विकल्प से खाली है तीनों काल और भरा हुआ है तीनों काल अनन्त चैतन्य रत्न से। आहाहा! उसका चिन्तवन कर, उसका चिन्तवन कर, दूसरा रहने दे। क्योंकि वह चिन्तवन करने से कहीं परवस्तु की व्यवस्था रह जायेगी, ऐसा (नहीं है)। तेरा पर का चिन्तवन करने जायेगा तो निरर्थक जाता है पर में और तेरे चिन्तवन में पर का चिन्तवन करे, उसमें आत्मा को नुकसान होता है। लाभ तो जरा भी नहीं होता, चिन्तवन का विकल्प उठे, वह सब दुःखरूप है। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ :- हे जीव, तू शुद्ध अखण्ड स्वभाव... देखो! **निज शुद्धात्मा का...** एक तो प्रभु आत्मा शुद्ध है। बुद्ध अर्थात् अकेला ज्ञान का पिण्ड है और एक है, इसलिए अखण्ड है। एकरूप वस्तु है, एकरूप है। स्वभाव इसका है। ऐसा निज शुद्धात्मा। अपना भगवान आत्मा निज अखण्ड एक स्वभावी प्रभु का चिन्तवन कर। चिन्तवन शब्द

से एकाग्रता। परन्तु पहली रुचि हो तो वीर्य मुड़े न! 'रुचि अनुयायी वीर्य' रुचि ही जहाँ वस्तु की यह है, उसकी रुचि की खबर नहीं, वीर्य कहाँ मुड़े? जहाँ रुचि हो, वहाँ वीर्य मुड़े, विकल्प में रुचि, प्रेम में वहाँ पड़ा, उससे होगा। तो वीर्य वहाँ ढला हुआ है अनादि का।

यदि तू शिवसंग करेगा... शिव अर्थात् आत्मा। समझ में आया? १४६ है न? देखो! '**शिवशब्दवाच्यशुद्धबुद्धैकस्वभावनिजशुद्धात्मभावनासंसर्ग**' टीका है। 'शिव' शब्द का अर्थ कि स्वभाव का संसर्ग कर। भगवान आत्मा शुद्ध निराकुल परमात्मा अपना निजपद है, उसका संसर्ग कर, वह संगम है। वह भगवान की भेंट, अन्दर एकाग्र होना, वह आत्मा का संसर्ग है। उस आत्मा का परिचय किया इसने। बाकी राग और पुण्य का परिचय, वह आत्मा का परिचय नहीं है, वह नुकसान करनेवाला है। **तो अतीन्द्रिय सुख पावेगा।** लो! **यदि तू शिवसंग करेगा...** शिव अर्थात् आत्मा, हों! निरुद्रव भगवान कल्याणमूर्ति प्रभु का संग-संसर्ग-संसर्ग, परिचय, अभ्यास, आदत, टेव **करेगा तो अतीन्द्रिय सुख पावेगा।** इसमें से अतीन्द्रिय का सुख मिलेगा, बाकी कहीं सुख है नहीं। राग में, पर्याय में, निमित्त के आश्रय में कहीं नहीं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आषाढ़ कृष्ण ३, शुक्रवार, दिनांक - १६-०७-१९६५
गाथा - १४६ से १४८, प्रवचन - १७१

१४६ गाथा, परमात्मप्रकाश का भावार्थ। थोड़ा चला है। फिर से देखो! लो, यह परमात्मप्रकाश है। अर्थात् यह आत्मा परमात्मस्वरूप है। परमात्मस्वरूप ही आत्मा है। परमात्मा का आत्मा भाग है, ऐसा नहीं। ऐसा नहीं। स्वयं ही परमात्मस्वरूप है अन्दर। उसका ध्रुवस्वरूप, द्रव्यस्वरूप, स्वभावस्वरूप, नित्यस्वरूप, वह एकदम परमात्मस्वरूप ही है। जिसमें संसार का उदयभाव नहीं, जिसमें कर्म-शरीर का भाव भी उसमें नहीं। अकेला चैतन्यघन आनन्दकन्द वस्तु है। वह स्वयं ही वस्तु परमात्मा है। उसे पर्याय में परमात्मा प्रगट करने के लिये उपाय क्या, वह यहाँ बताते हैं। कहो, समझ में आया? क्योंकि होवे वह प्रगट होता है। प्राप्त की प्राप्ति होती है। परमात्मा पर्याय में प्राप्त होता है। पर्याय में परमात्मा प्रगट होता है। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द आदि, वह कहाँ से प्राप्त होगा? वह चीज़ कहीं बाहर से नहीं आती।

मुमुक्षु : गुरु की कृपा हो तो होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : गुरु की कृपा किसी की कृपा, केवली की कृपा वहाँ काम नहीं आती। कृपा कहाँ उसे केवली को? कृपा सबके ऊपर वर्तती है। कहो, समझ में आया इसमें? यह इसकी इसके ऊपर कृपा चाहिए। निहालभाई!

कहते हैं कि, **हे जीव! तू शुद्ध (बुद्ध) अखण्ड स्वभाव...** लो, भगवान आत्मा अन्दर शुद्ध निर्मल है। विकल्प जो मलिन है, वह तो उदयभाव है, वह स्वभाव में नहीं। शुद्धस्वरूप में नहीं। ऐसा भगवान आत्मा तू शुद्ध, बुद्ध—अकेला ज्ञान का रसिक, ज्ञान का पिण्ड तू है, अखण्ड है, एकरूप है। कोई वस्तु है, वह एकरूप है। उसमें खण्ड, भाग, भेद नहीं। ऐसा जो स्वभाव, अन्तर वस्तुस्वभाव **निज शुद्धात्मा का...** ऐसा स्वभाववाला निज शुद्धात्मा अर्थात् कि स्वभावस्वरूप निजशुद्धात्मा।

क्या कहा? हे आत्मा! तुझे तेरा हित और कल्याण करना हो तो यह एक रास्ता है, इस रास्ते के अतिरिक्त दूसरा उपाय नहीं। क्यों? कि तू शुद्ध है, बुद्ध है, अखण्ड है, आनन्दमूर्ति है। बराबर होगा निहालभाई? वह वस्तु स्वयं वस्तु आत्मा उसे कहते हैं कि जिसमें विकार नहीं, कर्म नहीं, शरीर नहीं। वह तो सच्चिदानन्दस्वरूप है। सत् अर्थात् शाश्वत्, ज्ञान और आनन्द के स्वभावस्वरूप आत्मा, उसे आत्मा कहते हैं। उस आत्मा का **चिन्तवन कर,...** उस आत्मा का अन्तर चिन्तवन कर। उसके सन्मुख से एकाग्रता कर। यही एक सुख का रास्ता, धर्म का रास्ता, मुक्ति का रास्ता है, दूसरा कोई रास्ता है नहीं। कहो, समझ में आया इसमें? कहो, छोटाभाई! कहो, कितने व्यापार के धन्धे में चिन्तवन में यह चिन्तवन चलता होगा? यह कहेंगे अभी भाईसाहेब! छोड़ दे अब यह चिन्तवन तेरा। आहाहा! अरे! तुझे हैरान होने का रास्ता, दुःखी होने का रास्ता सूझता है और यह आत्मा क्या चीज़ है? तू स्वयं कौन है? स्वयं कौन है, इसकी कीमत नहीं होती और कीमत इन पुण्य-पाप के भाव और शरीर और पुण्य-पाप के फल बाहर मिले यह धूल अनुकूल-प्रतिकूल, उसकी इसे महत्ता, उसकी इसे कीमत, उसकी इसे अधिकाई। भगवान आत्मा पूर्णानन्द से भरपूर वह कोई तुच्छ लगता है, इसे अनादि से।

पूरा सच्चिदानन्द सत्... सत्... सत् वस्तु है और ज्ञान और आनन्द से भरपूर वह पदार्थ है। अकृत्रिम, अकृत अनादि-अनन्त चीज़ है। उस चीज़ में तू अन्तर एकाग्र हो तो तुझे शान्ति मिलेगी, जन्म-मरण टलेंगे और दुःख का अभाव होकर अकेली सुख की दशा प्रगट होगी। कहो, समझ में आया इसमें?

तो अतीन्द्रिय सुख पावेगा। शिवसंग करेगा... शिवसंग अर्थात्? यह आत्मा शिव। संस्कृत में है। '**शिवशब्दवाच्यशुद्धबुद्धैकस्वभावनिजशुद्धात्मभावनासंसर्ग**' भाई! तू निरूपद्रव्य भगवान है अन्दर। कहाँ परन्तु इसे यहाँ कीमत? एकसरीखी दाल न हो तो खड़खड़ाहट होती है, बीड़ी ठीक से न मिले तो सिगरेट... सिगरेट। सिगरेट कहते हैं न क्या ऐसे? ऐसे और दो अँगुली कोई ऐसे रखे और कोई ऐसे रखे। यह शौक होगा अन्दर इस प्रकार का। ऐसे रखे और ऐसे रखे क्या खबर? ऐसे... ऐसे... ओहोहो! मानो कहाँ घुस गया हूँ मानो आनन्द में! अरे! भगवान! तू कहाँ भटकने के विकल्प में तुझे प्रीति

और भगवान स्वयं, स्वयं अपना कौन स्वरूप है, उसकी तुझे प्रीति नहीं, यह वह अनादि की गहलता और पागलपन कैसा? कहते हैं। समझ में आया?

कहते हैं, भाई! तू **शिवसंग करेगा...** तेरा आत्मा ही कल्याणमूर्ति अन्दर है। उसका संग तू संसर्ग कर, संसर्ग कर। यह संसर्ग छोड़ दे। बाहर के संसर्ग दुःख के हैं, उन्हें छोड़, अन्तर का संसर्ग कर **तो अतीन्द्रिय सुख पावेगा।** तो अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है, ऐसी अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति तुझे होगी। दूसरे किसी प्रकार से सुख का और धर्म का रास्ता नहीं है।

जो अनन्त सुख को प्राप्त हुए, वे केवल आत्म-ज्ञान से ही प्राप्त हुए,... अभी तक सब अनादि संसार के अनन्त जीव जो कोई आत्मा की शान्ति को प्राप्त हुए, सुख को प्राप्त हुए, परमात्मपद को प्राप्त हुए, वे सब केवल आत्मज्ञान, अकेला वह आत्मा का ज्ञान, हों! दूसरा ज्ञान नहीं। लौकिक तो नहीं, शास्त्र भी नहीं। स्वयं भगवान आत्मा पूर्णानन्द की ज्योति का ज्ञान अर्थात् उसकी महत्ता अर्थात् उसकी ओर का झुका हुआ ज्ञान, उस ज्ञान से अनन्त सुख को प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त कोई उपाय अनन्त काल में कोई दूसरा उपाय जीव ने किया नहीं। मोक्ष के लिये तो यही उपाय है। कहो, बराबर होगी यह बात? परन्तु हमारे यह करना, परन्तु यह स्त्री, पुत्र सब लगे हों, उनका करना या यह करना? यह अभी माना है न इसने? लगे हों तब तो यहाँ से पृथक् पड़कर जाये नहीं यहाँ से।

मुमुक्षु : वे जाने नहीं देते।

पूज्य गुरुदेवश्री : जाना क्या? आँख मींचे तो एकदम चला जाये। वहाँ कहाँ इसका कोई रोके वहाँ? सब हजार लोग बैठे हों। यह लो दरबार जैसा चला गया लो! रानी को कहा, मुझे असुख है। लो, वह जहाँ कहने गयी वहाँ तो यहाँ जाओ परलोक। जैसी भावना की, तत्प्रमाण चले दूसरे स्थान में, अब यह सब कुछ नहीं मिलता। धूल में भी नहीं मिलता। यह तो श्मशान के बँगले हैं सब। उसमें सो रहा है ऐसे पोढ़कर मानो, ओहोहो! क्या है?

भगवान आत्मा सुख-शैय्या है। वह आत्मा सुख-शैय्या। सुख-शैय्या समझे?

उस सुख को पोढ़ने का स्थान—पलंग। वह सुख-शैय्या चली है, हों! सुख-शैय्या बात। वह आत्मा सुख की सेज है। यह पुण्य-पाप के भाव दुःख की सेज है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हें! यह एक बात रह जाती है। १३ की। (संवत्) २०१३ के वर्ष का व्याख्यान था न, पण्डितजी! अपने ७२वीं गाथा चलती थी वहाँ। क्या कहलाये वह? मधुवन में। भाई! अशुचि—पुण्य-पाप के भाव मैल हैं, पुण्य-पाप का भाव जड़ है-अचेतन है, पुण्य-पाप का भाव दुःखरूप है। इसलिए उसके बिना....

★ ★ ★

गाथा - १४७

आगे भेदाभेदरत्नत्रय की भावना से रहित जीव का मनुष्य-जन्म निष्फल है,.... जिसने इस भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप की दृष्टि, ज्ञान और लीनता नहीं की और उसके साथ देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का विकल्प। दोनों लेते हैं। यह ऐसा निश्चयपूर्वक व्यवहार आदि साधन नहीं किये, यह उसे मनुष्य जन्म निष्फल होता है।

२७८) बलि किउ माणुस-जम्मडा देक्खंतहँ पर सारु।
जइ उट्ठब्भइ तो कुहइ अह डज्झइ तो छारु॥१४७॥

क्या कहते हैं? **इस मनुष्य-जन्म को मस्तक के ऊपर वार डालो...** ऐसा नहीं कहते? छोड़ दो ऐसा। कि **जो कि देखने में तो केवल सार दिखता है,...** धूल दिखती है अच्छी ऐसे। चमड़ी रूपवान, दाँत ऐसे, नाक ऐसा गरुड़ के उस जैसा नाक, दाँत अच्छे, नाक अच्छा, कान कुण्डल जैसे कान, सब दिखने में अच्छा लगता है, कहते हैं। परन्तु है कैसा, कहते हैं देखो! **केवल सार दिखता है, जो इस मनुष्य-देह को भूमि में गाड़ दिया जावे,....** इस देह को यदि भूमि में गाड़ दे **तो सड़कर दुर्गन्धरूप परिणमे....** क्या होता होगा? कस्तूरी होती होगी वहाँ? गाड़े अन्दर, सड़कर परमाणु सड़कर दुर्गन्ध उत्पन्न होती है। मात्र दुर्गन्धरूप परिणमते हैं। एक बात।

और जो जलाईये.... जलाये, जलाये तो राख होती है। गाड़े तो सड़कर धूल

होती है, यह जलाये तो राख होती है, उसमें दूसरा कुछ सार है नहीं। कहो, समझ में आया? इस देह में सार नहीं तो स्त्री, पुत्र, पैसा और धूल तो कहीं रह गयी अब। भाई! परन्तु लगा है न वह भी। और जिसे छोड़ना न चाहे, वे किस प्रकार छूटे? यहाँ भगवान आत्मा में भी अन्दर एकाग्र होना न चाहे, उसे वह प्राप्त कैसे हो? और यह छोड़ना न चाहे, वे छूटे कैसे? अनादि काल से बाबा हुआ, त्यागी हुआ, जैन साधु हुआ, परन्तु अन्दर में सच्चिदानन्द प्रभु पूर्ण मैं आनन्द हूँ, ऐसा इसने अन्तर में आश्रय और शरण ली नहीं, बाहर की शरण में कहाँ-कहाँ रुक गया।

कहते हैं कि यह **इस मनुष्य-देह को व्यवहारनय से बाहर से देखो तो सार मालूम होता है, यदि विचार करो तो इसमें कुछ भी सार नहीं है। तिर्यंचों के शरीर में तो कुछ सार भी दिखता है,....** ढोर के शरीर। **जैसे हाथी के शरीर में दाँत सार है,....** दिखते हैं। दाँत... दाँत। हाथी के दाँत होते हैं न, चिमनभाई! इसके तो दाँत भी काम नहीं आते। कुछ काम नहीं आते। **सुरह गौ के शरीर में बाल सार हैं....** यह चमरी गाय। चमरी गाय होती है न। चमरी गाय के तो बाल, उसकी पूँछ, कहते हैं कि बाल काम आवे। **परन्तु मनुष्यदेह में सार (कुछ) नहीं है,...** धूल में कुछ सार नहीं इस मनुष्य देह में।

मुमुक्षु : कब की बात है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अभी की बात है। कब की बात है यह? ऐसा कहते हैं, यह सड़कर मरे तब न? कब की बात होगी यह? यह अभी की बात चलती है, बापू! यह धूल है, मिट्टी है और तू प्रभु चैतन्य है। तेरे परमेश्वर की बात सर्वज्ञ की वाणी में पूरी न पड़े, ऐसा तू है। सर्वज्ञ की वाणी में भी पूरी बात न आवे, ऐसा परमात्मा आनन्दकन्द सच्चिदानन्द पूर्ण ज्ञान और आनन्द का घर पूरा तेरा है। उसे भूलकर यह शरीर मुर्दा, जला हुआ राख, उसके ऊपर चिपटा मुर्दे में। आता है न मूर्च्छा मुर्दा-मुर्दा। अभी कहा मुर्दा। यह समयसार में ९६ गाथा में कहा। समयसार में ९६ गाथा में कहा है। समझ में आया? यह तो अभी प्रश्न आया न अभी? अभी या नहीं? कि अभी। ९६, देखो! क्या कहते हैं? देखो!

और मृतक कलेवर के द्वारा... यह मृतक कलेवर कहा है इसे। यह ९६ गाथा में अमृतचन्द्राचार्य महाराज। **इस मृतक कलेवर द्वारा परम अमृतरूप विज्ञानघन मूर्छित हुआ होने से उस प्रकार के भाव का कर्ता प्रतिभासित होता है।** सामने-सामने गुलाँट मारी है। यह मृतक, वह अमृत। यह मृतक, यह अमृत। शब्द लागू किये अमृतचन्द्राचार्य ने। टीका है न! यह मृतक, यह अमृत। यह मृतक कलेवर है शरीर अभी। मुर्दा-मुर्दा। पाठ है, देखो! मृतक कलेवर पाठ है। संस्कृत टीका। उस द्वारा भगवान अमृत का कुण्ड प्रभु। आहाहा! तेरे अमृत के एक कण के अन्दर में पूरी दुनिया इन्द्र के इन्द्रासन सड़े हुए तिनके लगें, ऐसा तेरा आनन्द तुझे पड़ा हुआ है, उसके एक कण के समक्ष इन्द्र के इन्द्रासन सड़े हुए तिनके लगें, ऐसा अमृतस्वरूप। इस मृतक कलेवर में अमृतस्वरूप मूर्च्छित हो गया है। आहाहा! आचार्य ने गुलाँट मरकर बात की है।

मृतक कलेवर (-शरीर) द्वारा परम अमृतरूप विज्ञानघन... अमृतरूप विज्ञानघन, कभी मरे नहीं और उसमें आनन्द का पार नहीं। ऐसा भगवान अमृत से, आनन्द से भरपूर वह अपनी दृष्टि करता नहीं। मृतक कलेवर में मूर्च्छित हो गया। मरे हुए में मूर्च्छित हुआ। वह मरे हुए में मूर्च्छित, ऐसा कहते हैं। यह अभी की बात है। जीवते की करते हैं, हों!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मृतक ही है न! क्या है? उसमें कब परमाणु की पर्याय वह जीव थी? वह तो मिट्टी है।

मृतक कलेवर द्वारा परम अमृतरूप विज्ञानघन... वापस अमृत, वह परमअमृत। अमृत का सागर भगवान आत्मा अर्थात् कि अकेला अमृतरूप और अतीन्द्रिय आनन्दरूप, ऐसा प्रभु मृतक कलेवर में अनादि से मेरा मानकर उसकी चिन्ता में पड़ा, अपने को खो बैठा। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : बोलता।

पूज्य गुरुदेवश्री : बोलता। कौन बोलता है? वह तो धूल बोलती है। आत्मा बोलता है? मृतक कलेवर महा मुर्दा शरीर, रजकण बोलते हैं।

कहते हैं, अरे! इस मनुष्यदेह में तो कुछ सार नहीं। उस हाथी को तो दाँत भी सार। चूड़ी-बूड़ी करके पहने, ढींकणा करे। यह उसको बाल। **घुन के खाये हुए गन्ने की तरह मनुष्य-देह को असार जानकर परलोक का बोज करके सार करना चाहिए।** क्या दृष्टान्त देते हैं अब देखो! गन्ना होता है न गन्ना? उसे सियाल खा जाये। सियाल-सियाल होता है न? क्या कहलाता है वह? सियाल नहीं होता वह जानवर? लोमड़ी। गन्ना-शेरडी को खाता है न सियाल? हाँ, शूकर खा जाता है वह। यहाँ धुनि नाम पाड़ा। वरना अपने सियाल कहते हैं। वह सियाल आवे न तो खा जाये। कस रहे नहीं। चूसे तो रस रहे नहीं, परन्तु बीज है तो बोबे तो अनेक गन्ने हों। उसका चूसा हुआ हो, रस नहीं हो, रस न दे, परन्तु वह गाँठ हो न गाँठ? बोबे तो वापस अनेक गन्ने हों। सांठा अर्थात् गन्ने।

इसी प्रकार इस शरीर को। दृष्टान्त दिया है, देखो! **घुन के खाये हुए गन्ने की तरह मनुष्य-देह को असार जानकर परलोक का बोज करके सार करना चाहिए। जैसे घुनों का खाया हुआ ईख....** ईख अर्थात् शेरडी—गन्ना। **किसी काम का नहीं है, एक बीज के काम का है,...** गाँठवाला होता है न गाँठ? गाँठ न खाये और वह गाँठ होती है न, बोबे तो गन्ने हों। बाकी खाने में काम नहीं आवे। **सो उसको बोकर असार से सार किया जाता है,....** बोबे तो गन्ने हो। **उसी प्रकार मनुष्य-देह किसी काम का नहीं,....** बालपन अज्ञान में, वृद्धपन दुःख में, जवानी भोग में पूरा खाया गया शरीर। अब इस शरीर में, कहीं आत्मा में करने का इसे समय रहता नहीं। उसमें से जो कहते हैं, यह सब सड़ गया शरीर आदि उसमें।

उसमें से **जैसे घुन के खाये गये ईख को बोने से अनेक ईखों का लाभ होता है, वैसे ही असार शरीर के आधार से....** निमित्त से **वीतराग परमानन्द शुद्धात्मस्वभाव का सम्यक् श्रद्धान ज्ञान आचरणरूप निश्चयरत्नत्रय की भावना के बल से मोक्ष प्राप्त किया जाता है,....** लो! इस गन्ने को घुन ने खायी हो। अपने सियाल कहलाता है। सियाल चूस जाये न, कस न हो फिर अन्दर। उसकी गाँठ हो अकेली। उस गाँठ को बोबे तो उससे गन्ने होते हैं। यों ही चूसने में काम आती नहीं। इसी प्रकार यह पूरा

मनुष्यदेह जीर्ण... जीर्ण... जीर्ण हो गया है। उसमें से कहते हैं कि आत्मा का कार्य यदि करना हो तो आत्मा का बीज बोबे सम्यग्दर्शन का, तो उसे केवलज्ञान होता है। बाकी यह शरीर किसी काम का है नहीं। लो, शरीर काम का नहीं तो अब स्त्री, पैसा, धूल और इज्जत। क्या होगा ऐसा परन्तु? यह किसने ऐसा किया होगा?

वह एक व्यक्ति कहता था। वह सुखलाल था न सुखलाल जीवराज। वढवाण का नहीं था? वढवाणवाले नागरभाई के भाई। वढवाण-वढवाणवाले। नागर जीवराज और सुखलाल। वह क्या कहलाता है? डीसा। डीसा में नौकरी थी न। बहुत नौकरी ४० वर्ष, ५० वर्ष पहले। ४० वर्ष पहले बड़ा ४००-५०० वेतन तब। बड़ा था बड़ा। फिर यह सब वाँचे सब। दिगम्बर के शास्त्र वाँचे। वह स्थानकवासी। वाँचे सब। गीत बनावे। कवि। फिर एक बार प्रश्न किया। यह सब बनावे और वापस प्रश्न किया। उमराला आये थे। ८६ के अन्दर। (संवत्) १९८६ में। यह भी यह सब किया किसने कि हमारे अब उपाय करना यह सब? अरे! सुखलालभाई! यह तुम बड़े वेतनदार। ४००-४०० के वेतनदार। यह तो ८६ की बात है, हों! ३७ वर्ष पहले की बात है। ३७ वर्ष। इससे पहले डीसा में बड़े थे। तब थे डीसा में बड़ी नौकरी थी। यह तुम गायन बनाते हो। पद्मनन्दि आचार्य में से गायन बनाये हुए, हों! पद्मनन्दि है न? पद्मनन्दि में से। यहाँ रस सही दिगम्बर शास्त्रों का। रस अर्थात् उसमें गायन कवि बनावे। पुस्तक बनाये हुए। परन्तु अन्दर में वह न मिले। यह किया किसने? कहे। हमारे नारणभाई के मित्र थे। दीक्षा ली थी न हमारे नारणभाई ने। कि यह किया कि उपाधि का अब हमारे उसमें से उपाय करना। परन्तु किसने किया? तूने खड़ा किया है। 'उपजे मोह विकल्प से समस्त यह संसार, अन्तर्मुख अवलोकते विलय होत नहीं वार।' तूने खड़ा किया है अज्ञान में अनादि से। भगवान स्वरूप है आत्मा का, उसे भूलकर पुण्य और पाप के विकल्प में मूर्च्छित पूरा मोह खड़ा किया है। और उसे लेकर पूरा संसार निगोद से लेकर नरक और नौ ग्रैवेयक तूने खड़े किये। मोह के कारण खड़ा किया। किसी दूसरे ने किया नहीं। करनेवाला तू और मिटानेवाला भी तू। कोई दूसरा है नहीं।

कहते हैं कि इस **शरीर के आधार से वीतराग परमानन्द शुद्धात्मस्वभाव का....**

देखो! **सम्यक् श्रद्धान....** भगवान पूर्ण शुद्ध चैतन्यप्रभु, उसकी सच्ची अन्तर्मुख होकर सम्यक् / सच्ची श्रद्धा, उसका नाम सम्यग्दर्शन। और उसकी ओर का सम्यग्ज्ञान, वह वीतराग परमानन्द शुद्धस्वरूप का ज्ञान, उसका ज्ञान। दूसरे का नहीं। और वीतराग स्वयं। वीतराग अर्थात्? रागरहित अपना स्वरूप है, ऐसा। वीतराग अर्थात्? वीतराग हुए, वे नहीं, वह तो पर्याय में हुए। यह तो तेरा स्वरूप ही राग और आस्रव और मलिन परिणाम बिना का है। ऐसे स्वरूप का आचरण। देखो! उस शुद्धात्मस्वभाव का आचरण, यह उसका नाम चारित्र। समझ में आया? यह निश्चयरत्नत्रय कहलाता है, वह सच्चा रत्नत्रय कहलाता है। उस सच्चे रत्न से मुक्ति मिलती है। वह भगवान आत्मा शुद्ध परमानन्द की मूर्ति, वीतराग विज्ञानघन ऐसे आत्मा की अन्तर्मुख की श्रद्धा, अन्तर्मुख का ज्ञान, अन्तर्मुख का आचरण, उसे यहाँ सच्चा रत्न कहा जाता है, सच्चा रत्नत्रय—मोक्ष का मार्ग। उस रत्नत्रय से तुझे मुक्ति मिले, ऐसा है। बाकी किसी से मिले, ऐसा नहीं। समझ में आया?

रत्नत्रय की भावना के बल से.... ऐसा लिखा है न? '**ज्ञानानुचरणरुपनिश्चय-रत्नत्रयभावनाबलेन**' यह निश्चयरत्नत्रय एकाग्रता। कहो, समझ में आया? **और निश्चयरत्नत्रय का साधक जो व्यवहाररत्नत्रय उसकी भावना के बल से स्वर्ग मिलता है,....** और साथ में जहाँ तक पूर्ण वीतराग, यह दोनों रखे हैं न इसमें? स्वर्ग-अपवर्ग दोनों। साधक व्यवहाररत्नत्रय से स्वर्ग और निश्चय से मोक्ष। समझ में आया? देखो, अन्दर है यह। '**निश्चयरत्नत्रयभावनाबलेन**' बस इतना। '**तत्साधकव्यवहाररत्नत्रय-भावानाबलेन**' अर्थात् एक का फल स्वर्ग और एक का फल अपवर्ग। अपना शुद्धस्वरूप पूर्णानन्द अखण्ड अभेद स्वरूप एकरूप आत्मा है अन्दर। उसके अन्तर में सम्यक् श्रद्धा, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् आचरण, यह तो साक्षात् मुक्ति का कारण। संसार के जन्म-मरण को मिटाने का कारण। परन्तु इसके साथ जरा पूर्ण सर्वज्ञ आत्मा न हो, तब तक उसे देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, उनकी श्रद्धा, उनका विनय, शास्त्र का चिन्तवन, पठन, ऐसा नौ तत्त्व की भेदवाली श्रद्धा, ऐसा विकल्प / राग होता है। उस राग के फलरूप से उसे स्वर्ग मिलता है। राग है, वह पुण्य है तो उसके फल में स्वर्ग मिले।

निश्चय स्वभाव के फल में मुक्ति मिले। दोनों के फल अलग और दोनों के कारण भी अलग। समझ में आया?

इसमें कितने काल में यह समझ में आता होगा? कोई कहे भाई, हम कितना काल निवृत्ति लें तो समझ में आये? छोटाभाई! धन्धा करने गये वहाँ अवधि करके गये हैं? कि कितना काल हमारे धन्धा करना? ऐसी अवधि की है कभी? भाई! यह ५० लाख हों तब यह बन्द करना, ऐसी अवधि की है कभी? वे नरभेरामभाई एक बार यहाँ कहते थे। यह कामाणी नरभेरामभाई कहते थे कि भाई! अपने तो बस पाँच लाख हों न, अपने को बहुत नहीं चाहिए। हमारे वे जसाणी हैं न, जसाणी यहाँ मोटर लेकर आये थे एक बार। हमारे जसाणी जैसा होना नहीं, अपने को पाँच लाख बहुत हुए। पाँच हुए, पचास हुए, साठ हुए तो भी अभी चैन नहीं उसे। कोई उससे सन्तोष होगा? लकड़ियाँ अग्नि में डालने से अग्नि बुझेगी? धग... धग... सुलगेगी वह तो। इसी प्रकार तृष्णा... तृष्णा... तृष्णा से सन्तोष होगा? आत्मा में सन्तोषस्वरूप आनन्दमूर्ति है, उसकी दृष्टि करने से सन्तोष होगा। कुछ चाहिए नहीं। अभी राग हो जरा। अस्थिरता है, इसलिए राग हो, परन्तु दृष्टि में कुछ चाहिए नहीं। यह राग आवे, वह भी नहीं चाहिए, राग का फल भी नहीं चाहिए। चाहिए तो यह स्वभाव भगवान आत्मा भरपूर यह मुझे चाहिए है और उसकी शान्तिरूप का फल मुझे चाहिए है। ऐसी दृष्टि किये बिना उसके कल्याण का एक अंश भी कभी शुरु हो, ऐसा नहीं है। समझ में आया? वहाँ अवधि मारते होंगे दुकान की? कि इतने काल हमारे दुकान में रहना।

मुमुक्षु : पाँच करनी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पाँच करनी है। जैसे पैसा बढ़े, वैसे कषाय सुलगे। अधिक डालो एक दुकान कपड़े की, डालो एक कपास की, डालो एक कपासिया की। निहालभाई! ऐसा होता है या नहीं?

कहते हैं, यह भगवान आत्मा की महान दुकान अन्दर पड़ी है महा स्वभाव। जिसमें चैतन्य रत्नाकर, जिसमें रत्न पड़े हैं आनन्द, ज्ञान, शान्ति आदि। आत्मवस्तु। वस्तु है न? पदार्थ है या नहीं आत्मा? तो वस्तु है, उसमें अनन्त गुण पड़े हैं शक्ति से।

उन अनन्त गुण का एकरूप ऐसा भगवान, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और लीनता द्वारा ही मोक्ष का उपाय होता है। बीच में व्यवहाररत्नत्रय आवे, देव-गुरु की श्रद्धा, छह द्रव्य की श्रद्धा, नौ तत्त्व की व्यवहारश्रद्धा, पंच महाव्रत के परिणाम और शास्त्र का ज्ञान, ऐसे शुभराग से स्वर्ग मिले और शुद्धता से संवर और निर्जरा हो, शुद्धि बढ़े, फिर आगे जब उस दूसरे भव में जाये, तब पूर्ण शुद्धि करके राग को छेदकर केवल (ज्ञान) प्राप्त करे तो मुक्ति हो। कहो, समझ में आया?

तथा परम्परा से मोक्ष होता है। देखो! व्यवहार से। परम्परा अर्थात् यह। वह राग है, फिर भविष्य में अभाव करेगा। पूर्णानन्दस्वरूप में स्थिर होगा, तब उसकी मुक्ति होगी। जब तक राग है, तब तक राग का फल स्वर्ग मिलेगा। धर्मी जीव आत्मा की दृष्टि धर्म किया, स्वभाव—भान हुआ, परन्तु पूर्ण सर्वज्ञदशा नहीं हुई, उसे बीच में राग रह जाय तो वह मरकर कहाँ जायेगा? स्वर्ग में ही जायेगा। समझ में आया? स्वर्ग में जाये, वह धर्मशाला है वहाँ। वह वहाँ से निकलकर मनुष्य होकर, पूर्ण करके परमात्मा हो जायेगा। समझ में आया?

यह मनुष्य-शरीर परलोक सुधारने के लिये होवे तभी सार है, नहीं तो सर्वथा... सर्वथा असार है। यह असार। घड़ीक में दगा दे। यह क्या हुआ? कुछ खबर नहीं पड़ी। और ऐसा कहे। ऐसा कहे न? चिमनभाई! क्या हुआ? कुछ खबर नहीं पड़ी। कुछ खबर नहीं क्या हुआ। एकदम सो गया, एकदम बैठे थे और ऐसा हो गया। अब हुआ, वह देह की स्थिति पूरी होने की थी उस काल में। तीन काल—तीन लोक में बदले नहीं। यह दगा देगा एक दिन, तू जाने कि अभी सो जायेगा। वहाँ सोता हुआ जागेगा नहीं और जागता सोयेगा नहीं। एक दिन तो आयेगा या नहीं ऐसा? कि सोता उठा होगा, वह सोयेगा नहीं और सोया होगा वह उठेगा नहीं। ऐसे के ऐसे मर जायेंगे कितने ही सोते हुए। बड़ा राजा था न वह जॉर्ज नहीं? देखो न! रात्रि में नींद में मर गया। नहीं? उसके साढ़े तीन करोड़ के बँगले में था। सवेरे देखा तो मुर्दा। साढ़े तीन करोड़ का बँगला था उसका। ऐसे सवेरे देखो तो कुछ नहीं मिलता। ऐई...! बड़े-बड़े डॉक्टर जिसे देखनेवाले, उसे इतनी खबर नहीं पड़ी अनुमान से कि यह रात्रि में समाप्त हो जायेगा?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कोई साथ में सोये न—बैठे साथ में रहे। कोई नहीं था। सवेरे उठाया, वहाँ मुर्दा पड़ा था। साढ़े तीन करोड़ का बँगला था। उसके प्रमाण में कितनी ऋद्धि होगी? जॉर्ज गुजर गया तब। उठो। उसे तो नरक में जाना हो। अन्यत्र तो जाना हो नहीं। लोहे का भार, बड़ा लोहे का गोला पानी में छोड़ो तो नीचे ही जाये। इसी प्रकार जिसने माँस खाया, शराब पी, मछलियाँ खायीं, महा पाप। उस पाप का बोझा बढ़ा, वह पानी नीचे गया, नीचे नरक में ही जाये। दुनिया ऐसा माने कि आहाहा! खम्मा... खम्मा... खम्मा, ऐसे बाहर से करे। निकाला होगा तो बहुत इससे निकाला होगा न! गाड़ने के लिये। गाड़े नहीं, उस पेटी में रखे उसे। पेटी में रखे, पेटी में रखे। और उसका बड़ा हो न वह दण्ड बड़ा हो ऊँचा रत्न का। वह सब रखे। ऐसा रखे और ऐसा रखे। वे भाईसाहेब नीचे बैठे हों।

मुमुक्षु : उसके स्थान में पहुँच गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उसका स्थान हो, वहाँ पहुँचा नीचे नरक में। यह दुनिया के पर्दे तो देखो! ओहोहो! एक क्षण में खम्मा और दूसरे क्षण में नरक। ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती जैसा लो न! ७०० वर्ष का आयुष्य और छियानवें हजार स्त्रियाँ, सोलह हजार देव सेवा करे। मरकर नरक में। अन्त में रत्न के उसमें सो रहा था पलंग में। क्या कहलाता है? पलंग। परन्तु महापापी। पाप बहुत किये भोग के, विषय के, हिंसा के। वह वहाँ सोया हुआ उसमें। खम्मा अन्नदाता, देव कहे। यहाँ से सातवें नरक में गया। ३३ सागरोपम। उसके वर्ष गिनो तो पार नहीं होता। आहाहा! ३३ सागरोपम। उसके दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम का एक सागरोपम। एक पल्योपम के प्रमाण में आयुष्य के वर्ष असंख्य अरब। अब यहाँ ७०० वर्ष। एक मिनिट में असंख्य अरब वर्ष का दुःख। एक मिनिट का चक्रवर्ती का सुख माना हुआ, उसके असंख्य वर्ष का सातवें रव-रव नरक का दुःख। अरे! इसने कभी हिसाब भी कहाँ किया है? कि यह क्या हुआ परन्तु? यह क्या है यह? ७०० वर्ष रहा। अभी अब नरक में ३३ सागर में है। अब अभी मरकर गया है न। अभी थोड़ा काल गया। ३३ सागर। नीचे रव-रव नरक है सातवाँ नरक। पाँच

पईठा है। ओहोहो! उसकी एक पल वह जाये उसे। दुःख की तो रात बड़ी पड़ती है न, अभी लगता है या नहीं बहुतों को? रात में दुःख आवे तो मुझे यह रात बड़ी हो पड़े। रात कहीं बड़ी होती नहीं, परन्तु नींद नहीं आती। क्यों, जैचन्दभाई!

मुमुक्षु : सच्ची बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सच्ची बात है, देखो! नींद नहीं आती। अब अकेले दो व्यक्ति। अब कोई पूछनेवाला नहीं मिले वहाँ। सब कहाँ से पूरी रात बैठे? जागरण करने बैठे? हाय... हाय... रात बड़ी हो पड़ती है। रात बड़ी होती होगी? कुछ होती नहीं। रात तो है, उतनी है, परन्तु प्रतिकूलता का काल उसे लम्बा-लम्बा लगता है। ऐसे प्रतिकूल लम्बा। ऐसे नरक के दुःख। आहाहा! चार गति के दुःख, प्रभु! तुझे उकताहट नहीं आयी अभी? आता है। योगसार में आता है न? 'चार गति दुःख से डरी...' वह। योगसार में आता है। चार गति के दुःख से डरकर। अरे! प्रभु! चारों ही गति, हों! स्वर्ग का दुःख। धूल में भी वहाँ सुख नहीं। वहाँ भी आकुलता-अंगारा सुलगते हैं। पंचास्तिकाय में लिया है न! पण्डितजी! वह पंचास्तिकाय में (आता है) कि पुण्य बाँधकर देव के अंगारे के सुख भोगेगा वहाँ। जलेगा, सुलगेगा। गर्म घी जैसे गर्म घी। घी कहते हैं न गर्म। जलता हुआ घी छिड़के, वैसे इस पुण्य के फल में जलता हुआ घी है वहाँ। आहाहा!

और पंचास्तिकाय में ऐसा लिया है न, भाई! दुःख के अंगारों में सीकेगा। यहाँ पुण्य बाँधा है समकिती ने। मुनि आत्मज्ञानी, आत्मध्यानी, परन्तु अभी थोड़ा राग बाकी रह गया। यह जो कहा वह अभी। देव-गुरु-शास्त्र का राग। सर्वज्ञ हुए नहीं। उस राग के फल में अग्नि के अंगारे जैसा देवों के दुःख को भोगेगा। कहो, समझ में आया? आहाहा! शुभभाव के फल में ऐसे स्वर्ग, वह अग्नि के दुःख हैं। कहो, अब यह सब पैसेवाले कैसे होंगे? ऐई! मलूकचन्दभाई! सुखी होंगे या नहीं? ऐसा होगा? कल नाम आया था उसमें अन्दर पच्चीस हजार दिये पूनमचन्द ने। तो अन्दर से प्रसन्नता होगी या नहीं? लड़का तो मेरा है न, कहेंगे।

मुमुक्षु : लड़का तो इनका अच्छा....

पूज्य गुरुदेवश्री : तीन काल में नहीं मिलता। क्या इनकार करे? कल आया था

प्रजातन्त्र में। कोई लाया था। आज कौन लाया था, नहीं? हें? यह चन्दुभाई अपने। वहाँ पूनमचन्द ने अभी पच्चीस हजार दिये। प्रजातन्त्र में आया था। अब वहाँ दो करोड़, ढाई करोड़ में पच्चीस हजार वहाँ कहाँ आवे? धूल बहुत इकट्ठी हो गयी अन्दर। दुःखी... दुःखी... दुःखी। मलूकचन्दभाई! ऐसा होगा या नहीं? सुखी होगा वह?

मुमुक्षु : इच्छा के कारण से?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। ममता के कारण से। इच्छा के कारण से किसने कहा?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या जाना इसमें होली? यह मरते श्मशान में पाँच हजार लोग इकट्ठे हों। कितने ओळिया आये थे? अच्छा न मरण? होओ ऐसा प्रतिदिन। मेरा पुत्र मरा पच्चीस वर्ष का और पाँच हजार लोग श्मशान में इकट्ठे हुए थे। परन्तु वह क्या है? तू किसकी महिमा करता है? चुन्नीभाई! ऐसा होता है न, बड़े लोग हों तब। ओहोहो! पाँच हजार लोग इकट्ठे हुए थे। क्या है परन्तु अब? उसमें उसे क्या? परन्तु मरे हुए को क्या? वह तो मरकर गया कहीं भटकने। चार गति में कहीं पार नहीं मिलता। किस जगह गया और कहाँ जायेगा? आत्मा का भान नहीं होता, आत्मा को शरण नहीं मिलती, उस वस्तु का बहुमान नहीं होता, चिदानन्द आत्मा कौन है, उसकी कीमत नहीं होती। यह कीमत बाहर की करने निकल गया चार गति में। बाहर की कीमत लेकर गया, बाहर में भटकेगा।

भगवान आत्मा ऐसे सच्चिदानन्द प्रभु, ओहो! जिसे उसकी कीमत हुई उसे अपने में पुण्य परिणाम आवे, उसकी कीमत उड़ गयी। भले रहे उसे फल आवे स्वर्ग में, परन्तु वह अंगारेरूप से उसे दुःख लगेगा। यह नहीं... यह नहीं... यह नहीं। मेरा आनन्द मेरे पास है। यह पुण्य के फल स्वर्ग के, वे दुःखरूप हैं। कहो, समझ में आया इसमें? यह गन्ने का भाग, कहते हैं ऐसे गन्ने को चूस लिया हो घुना ने। उसमें से बोबे तो उगेगा, नहीं तो चूसने में काम नहीं आयेगा। बालपना, वृद्धापना जाड़ा जैसा। गन्ना-गन्ना होता है न? गन्ना। नीचे वह हो भोथुं। भोथुं अर्थात् जाड़ा। ऊपर आड़ा हो आड़ा। खारा। बीच का भाग थोड़ा हो, उसमें सियाल खा गया हो। अब उसमें सार उसमें बीच में जवानी

अवस्था पच्चीस वर्ष की। बीस वर्ष मुफ्त गये, बीस वर्ष के बाद से ६० से ८० मुफ्त जायेंगे। इस बीच के २० वर्ष रहे, उसमें जो भोग में, विषय में, राग में, नींद में, खाने में, पीने में गये। अब समय कहाँ रहा तेरे लिये?

यह कहते हैं कि प्रत्येक समय तुझे समय है, ऐसे देख तो। परन्तु ऐसे देखने की नजर करता नहीं, निवृत्त होता नहीं। मैं एक आत्मा अखण्डानन्द प्रभु, जिसके मेरे गुणगान परमात्मा की वाणी में पूरे पड़ते नहीं। ऐसा मैं, उसकी प्रतीति कर, विश्वास ला, विश्वास ला। उसका ज्ञान कर और उसमें स्थिरता, यही मेरा कल्याण है। ऐसी प्रतीति बिना तेरा रास्ता कभी सुख का निकलेगा नहीं। कहो, समझ में आया? समय कहाँ ले, परन्तु समय कहाँ ले? ६० वर्ष का आयुष्य हो, ८० का हो तो भी क्या? २० वर्ष बालक में जाये, २० वर्ष उसमें जाये ६० से। अब रहे बीच में ४० में। उसमें ४० में जाये २० नींद में। आधे। आहाहा! अब रहे २०। इन २० में जाये कोई रोग में, कुछ कमाने में, कुछ भोग में, कुछ कोई-कोई मरे, उसमें रोने में। अब तेरे लिये क्या रहा? ऐई! छोटाभाई! बात बराबर है यह? यह बनिया व्यापार करे, तब हिसाब लिखते हैं या नहीं? कि क्या किया, उसका हिसाब लिखते हैं यह।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह हिसाब। आहाहा! आज आया नहीं था उसमें? वह आता है न, तुमने नहीं डाला था? 'जिन्दगी में कितना कमाया रे जरा हिसाब लिखना।' अन्त में तो लकड़ी और कण्डा और उठाये सवेरे से वह बड़ा पाणा। पाणा अर्थात् पत्थर। ऐसा आता है, भजन में आता है। आता है न? सवेरे से शाम तक उठाये पत्थर। यह व्यापार के पत्थर, बोरियाँ यह दाना और यह अमुक, हीरा और माणेक पत्थर उठाये पूरे दिन। भगवान आत्मा कौन है, उसकी नजर करने का समय मिला नहीं। हाय... हाय... कहाँ जाऊँगा? मरते रोवे, हों! अरेरे! कुछ किया नहीं। अरर! कहते थे बहुत, हों! कुछ हुआ नहीं, कुछ हुआ नहीं। हाँ, जाओ अब कुछ हुआ नहीं उसमें भटकने अब।

कहते हैं कि यह मनुष्य (जन्म में) प्राप्त करनेयोग्य हो तो भेदाभेदरत्नत्रय। स्वरूप की दृष्टि, ज्ञान और आचरण और या देव-गुरु, सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा,

ज्ञान और उनकी भक्ति आदि का भाव—यह दो अन्दर आते हैं। निश्चय हो वहाँ व्यवहार आता है। पूर्ण न हो तब तक। परन्तु उसका फल स्वर्ग है और इसका फल मुक्ति है। दो इसकी नजर में हो। उसमें मनुष्य को सफल करने का उपाय एक ही है। दूसरा कोई उपाय नहीं है।

★ ★ ★

गाथा - १४८

आगे देह को अशुचि, अनित्य आदि दिखाने का छह दोहों में व्याख्यान करते हैं—

२७९) उव्वलि चोप्पडि चिट्ठु करि देहि सु-मिट्ठाहार।
देहहँ सयल णिरत्थ गय जिमु दुज्जणि उवयार॥१४८॥

यह '**यद्यप्ययं कायः खल**' '**खल**' शब्द पड़ा है न, देखो अन्दर संस्कृत में। नीचे लाईन संस्कृत। वह क्या अर्थात् '**कायः**' अर्थात्? '**कायः खल**' '**खल**' समान ऐसा? '**खल**' अर्थात् क्या वहाँ? '**यद्यप्ययं कायः खलखलस्तथापि किमपि ग्रासादिकं दत्त्वा**' यह '**खल**' अर्थात् क्या? उसमें है पण्डितजी? यह '**कायः खल**' है न? दुष्ट। वह सज्जन की उपमा देते हैं न। यह '**खल**' है न '**खल**'? '**यद्यप्ययं कायः खल**' यह १४८ की अन्तिम संस्कृत लाईन। १४८। अन्तिम संस्कृत लाईन है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह तो बराबर है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ यह यह। यह तो बराबर है। '**ग्रासादिकं दत्त्वा**' '**खल**' है '**खल**' ? '**खल**' अर्थात् यह खल जैसा है ऐसा? दुष्ट जैसा है। वह दुष्ट; जैसे सज्जन है, वैसे यह काया दुष्ट जैसी है। '**खल**' की उपमा दी है। है? आहाहा! '**खल**' '**खल**' यह '**खल**' की उपमा दी है।

कहते हैं, **इस देह का...** यह उवटणा करो। खल। मैथी और हल्दी चोपड़ा करो।

और रुपये-रुपये के साबुन, दो-दो रुपये के साबुन, नीम के साबुन आते हैं न चमड़ी को बहुत अनुकूल। चमड़ी को वह बाधक न हो। नीम के रसवाले आते हैं न? नीम के साबुन होते हैं। छोटाभाई! वे वापस चमड़ी बिगाड़ते नहीं। वरना वह चमड़ी को तराड करे, कुछ अमुक करे। चाहे जितना उबटन कर परन्तु एक बार फू हो जायेगा। तेरे पास एक क्षण नहीं रहेगा। देखो, ऐसा कहते हैं। तेरा आत्मा अन्दर त्रिकाल पड़ा है, उस पर तू नजर करता नहीं।

यह **उबटना करो, तैलादिक का मर्दन करो,...** सवेरे उठकर कसरत करे, तेल चोपड़े बहुत-बहुत ऐसा ऊँचा-नीचा करे। चाहे जो कर। एक क्षण में फू... श्मशान की राख हो जायेगा। बापू! यह तुझे दगा देगा, हों! यह विश्वास करनेयोग्य इस दुष्ट के साथ नहीं है। दुष्ट की उपमा देंगे, देखो! **तैलादिक का मर्दन करो, शृंगार आदि से अनेक प्रकार सजाओ,... 'चेष्टां कुरु'** सवेरे तेल चोपड़कर ऐसे देखे, ऐसे देखे, ऐसे देखे। दर्पण में देखे न उठकर सवेरे? नहा-धोकर वस्त्र बराबर बाल-बाल व्यवस्थित करके, कपड़े-बपड़े की बराबर वह हो न ऐसे व्यवस्थित? ऐसी व्यवस्थित करके वह अप-टू-डेट होकर बाहर निकले ऐसे। हाथ में बड़ी लकड़ी ठीक सी, चाँदी की ऊपर। क्या है? यह मुर्दा चला मुर्दा। ऐई! जैचन्दभाई! आहाहा! भगवान! तू देह में चाहे जितना कर न, एक बार ऐसे क्षण में पड़ जायेगा। हाय! लो, यह आत्मा है, इसलिए ऐसी रहती है शरीर की गर्दन? नहीं। वह गर्दन तो उसके कारण से (रही है)। वहाँ आत्मा गया है? आहाहा!

कहते हैं, यह **अनेक प्रकार सजाओ,...** सजाओ। सजाओ समझे न? शृंगार। वस्त्र-कपड़े उसमें इत्र... इत्र डाले। आधी शीशी डाले, अच्छी ऊँची शीशी हो न इत्र की? उसे चोपड़े-डाले। यहाँ डाले... यहाँ डाले। सुगन्ध आवे अन्दर। कहीं जाये तो सुगन्ध आवे अन्दर। लो! **'सुमृष्टाहारान्' अच्छे-अच्छे मिष्ट आहार दो,...** यह बादाम के मैसूर खिलाओ इसे, पिस्ता के पापड़ और मिर्च का अथाणा। मिर्च-मिर्च। मिर्च का अथाणा होता है न? चुनीभाई! वह चरपरा नहीं आता? वह मिर्ची होती है न मिर्ची? क्या? काली मिर्च। उस काली मिर्च का अथाणा होता है अपने। मलबार से डिब्बा

आवे। हमने तो देखा है न सब। एक घर में भिक्षा के लिये गये थे। वे गृहस्थ लोग बड़े लाखों बहुत। सीधा निकाला मिर्ची का। अरे! क्या है यह? अरे! कहा यह गोल अथाणा, इसमें जीवांत है। यह वह कहीं...! वहाँ जामनगर में। वह नहीं वलम सेठ। वलमजी सेठ है खाण्ड के व्यापारी। बड़ा व्यापारी। खाण्ड के बड़े व्यापारी। इसलिए वहाँ डिब्बा पूरा मिर्च के अथाणे का बरनी-बरनी। होती है न मिर्ची की बरनी भरी थी पूरी भरी हुई। निकाली और ऐसे लो महाराज! अरे! कहा यह छुआ नहीं जाता। यह खाया नहीं जाता, यह लिया नहीं जाता। यह तो एकान्त जीवांत है यह तो। खार अकेली सड़ी हुई। वह मिर्ची का अथाणा ऐसे चप-चप खाता हो। मिठास, चरपराई, खारापन, सब इकट्ठा हो अन्दर। नमक डाला हो, खारा हो और साथ में सड़ा हुआ हो थोड़ा। सड़ा हुआ हो। उसमें बादाम के वापस मैसुख हो, बादाम के मैसुख और पिस्ता के पापड़। पिस्ता होते हैं न, उसके पापड़। हीरा के थाल और... ऐसे बैठा था। ओहोहो! यह चाहे जैसे कर, कहते हैं कि एकबार मर जायेगा, इसी प्रकार कि कोई सामने नहीं देखे देह। ले। यह दगा देगी, यह दुर्जन है, ऐसा कहते हैं। देखो! दुर्जन की उपमा दी है। '**खल**' '**खल**' कहा न? आहाहा!

इतने वर्ष से सम्हाल की और अब तो कुछ मुझे चैन आने दो थोड़ा। अरे! मुझे यहाँ कुछ होता है, हों! क्या होता है? कर न। श्वास खींच न। खींचा अब तूने। यहाँ होता है मुझे, हों! यहाँ होता है। जागता श्वास यहाँ से हट गया। कहा न, हमारे पटेल थे न? शिवा पटेल थे। खाया ठीक से भले प्रकार। यह सिंकी हुई मूंगफली का, सिंकी हुई कहलाती है न? यह कच्ची मूँगफली, उसके सिंकी हुई खाये। दो-चार केले खाये। और यहाँ के दाल-भात सब्जी रसोई की ऊँची होती है बहुत, बचुभाई के हाथ की। इसलिए दाल, भात, रोटी खाई ठीक से दाल, भात, सब्जी, वह खाया, साथ में बदहजमी, रूपचन्दभाई! और कुछ-कुछ ऐसा हुआ कुदरती। यहाँ थे एक उन वल्लभ पटेल के गाँव के। करमसद के। हमारे... वे अगास में रहते थे पहले। फिर यहाँ दूसरे वर्ष से यहाँ रहते थे। ऐसा हुआ। कौन जाने कैसे हुआ? यह खाया इकट्ठा यहाँ से श्वास हट गया, नाभि से श्वास हटा एकदम। कुछ दूसरा नहीं, हों! न हो दस्त, न हो उल्टी। नीचे बैठे

थे ऐसे। मैं गया, वहाँ शाम को घूमता हूँ न, नीचे बैठे थे। कैसे पटेल? कहे, अन्त क्रिया। परन्तु किसकी अन्त क्रिया? बैठे हो, कुछ नहीं न। ऐसा ही बोले। अन्तिम अन्त क्रिया मेरी। परन्तु क्या है? कुछ नहीं और खाकर आये हो न! श्वास छूट गया यहाँ से, श्वास यहाँ से हट गया है। नाभि से श्वास का डोरा हट गया है। अन्तिम लगता है, मेरी अन्त क्रिया है अन्तिम। परन्तु नीचे बैठे हुए कुछ नहीं होता। बस! अब यह अन्तिम श्वास ही उठा है। यहाँ से हट गया श्वास। खाकर आया और खाकर आये। बड़ा लट्ठ जैसा शरीर, हों! उस श्वास ने यहाँ से दौरा छोड़ दिया एकदम। नाभि से जो ऐसे चलता है, वह नीचे जो ठेठ जाता था, वह नहीं गया। एक दोराबार ऐसे आगे ऊँचा रह गया। श्वास ने रास्ता छोड़ दिया है, मेरी अन्तिम क्रिया। अरे! परन्तु पटेल क्या बोलो? वह ३६ घण्टे रहा। ऐसा का ऐसा ३६ घण्टे श्वास।

ऐई..! कितनी सम्हाल की और यह क्या किया? बैठे थे। कुछ नहीं होता, हों! वस्त्र-वस्त्र निकाल डालो पटेल, कहा। अब यह तैयारी हो गयी। दोरा-बोरा यहाँ पहना हुआ न जरा। वह वस्त्र निकाल डालो अब। क्योंकि यह तो घण्टा भर। अभी बैठे थे, कुछ नहीं होता। निकाल डालो यह। अब यह तैयारी हो गयी है कहा शरीर छूटने की। दगा दे तब ऐसे दे। वह तो और ३६ घण्टे रहे। एक आधे मिनिट। यह चाहे जितना कर परन्तु आत्मा का यदि नहीं किया, साधा नहीं तो यह दगा देगा और यह भाव नरक में ले जायेगा।

कहते हैं, यह **अच्छे-अच्छे मिष्ट आहार दो,...** कहो, समझ में आया? रस और पूड़ी, घी में तली हुई पूड़ियाँ और रस, वह ऐसा ऊँचा मीठा। आहाहा! उसमें पतरवेलिया— अरबी के पत्ते के पतरवेलिया होते हैं, वे तीनों मीठे। खा-खाकर... यह चाहे जैसा कर कहते हैं, ले। **यह सब यत्न व्यर्थ हैं,...** यह तेरे यत्न व्यर्थ जायेंगे, मुफ्त में जायेंगे। पाप लगेगा मुफ्त में और उसमें कुछ नहीं होगा। वहाँ तो होना होगा, वह होगा। तेरी कल्पना के कारण शरीर में फेरफार हो, हराम बात है। शरीर की अवस्था जिस समय में जिस प्रकार से होनेवाली है वह हुआ ही करती है। तेरी कल्पना व्यर्थ जायेगी। यह बराबर होगा? परन्तु किस प्रकार? यह बराबर हो तो इसके प्रति ममता छोड़ दे। ऐसा बराबर

है। बराबर करके फिर वहाँ ममता रखकर, यह दुःख है, व्यवस्थित नहीं देते। व्यवस्थित दे तो चैन दे, ऐसा होगा? जैचन्दभाई! वह व्यवस्थित हो तो चैन दे, यही मूढ़ता है, कहते हैं। घड़ीक में बदल जाये। यह रगतग हो गयी। क्या हुआ? यह मुख नहीं फिरता ऐसे दाढ़? फिर इकट्ठा नहीं होता। ऐसे उबासी खाये, इकट्ठा नहीं होता यह। मुख फट जाता है न? बापू! वह तो जड़ है। उसकी पर्याय होनेवाली है, वह होगी। तेरा विकल्प करना, वह चिन्ता भी व्यर्थ जायेगी। तू सम्हाल रख तो रहे, इस बात में एक भी प्रतिशत सच्चा नहीं है। बराबर है या नहीं? छोटाभाई! यह देखा न बालुभाई का, देखा या नहीं?

मुमुक्षु : सबको ऐसा ही होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सबको ऐसा ही होता है। घड़ीक में कहाँ, आहाहा! फू। खबर भी नहीं था, क्या होगा सवेरे? आहाहा!

कहते हैं, **उपकार करना वृथा है।** यह **दुर्जनों का उपकार करना वृथा है।** देखो! जैसे दुर्जन का उपकार करना वृथा है, उसी प्रकार यह दुर्जन जैसा शरीर, इसका उपकार करना व्यर्थ में जायेगा तेरा, कहते हैं। यह दुर्जन जैसा शरीर है। ऐसी उपमा देकर उसे वैराग्य कराते हैं। भाई! इसकी चिन्ता कर न, बापू! तेरे आत्मा की। यह चिन्ता यहाँ मांडी, उसकी कर न। इस ओर चिन्ता अर्थात् एकाग्र हो न! ज्ञानानन्द प्रभु पूरा पड़ा है। तेरी जितनी एकाग्रता की चाहिए, उतनी शान्ति आयेगी। जितना फव्वारे को दबायेगा, उतना पानी निकलेगा। इसी प्रकार भगवान आत्मा की दृष्टि करके जितना एकाग्र होगा उतना अन्दर में से आनन्द आयेगा। वह अन्यत्र कहीं से मिले, ऐसा नहीं है। इसलिए आत्मा का ज्ञान कर और शरीर की चिन्ता वृथा व्यर्थ छोड़ दे, ऐसा इसमें कहने का आशय है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आषाढ़ कृष्ण ४, शनिवार, दिनांक - १७-०७-१९६५
गाथा - १४८ - १४९, प्रवचन - १७२

यह परमात्मप्रकाश, दूसरा भाग है। १४८ गाथा। अब यह अन्तिम गाथायें हैं न। पीछे का भाग है, इसलिए इस शरीर की बात करते हैं। मुख्यरूप से मुनि को लक्ष्य करके है। सबको लक्ष्य करके यह समझना। यह शरीर भी दुर्जन है, अब तू उसे पोसेगा तो कहीं तेरी कल्पना प्रमाण रहेगा नहीं। परपदार्थ को तुझे क्या करना है? ऐसा कहेंगे।

भावार्थ—शरीर जैसे दुर्जन पर अनेक उपकार करो, वे सब वृथा जाते हैं,.... कहो, समझ में आया? चाहे जितना उपकार करे दुर्जन पर, वह तो उसका बदला दिये बिना रहेगा नहीं। वह कहीं उपकार मानता नहीं, वह कुछ समझता नहीं। **दुर्जन से कुछ फायदा नहीं, उसी तरह शरीर के अनेक यत्न करो,....** यत्न, पुरुषार्थ करो राग-द्वेष का, वह तुझे पाप लगता है। परन्तु इससे शरीर में कुछ फेरफार होता है, ऐसा नहीं है। यह बराबर आया। यह तो अच्छा था, तब भी नहीं होता था, ऐसा कहते हैं। अभी की नहीं।

मुमुक्षु : तीनों काल में?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, जब अच्छा था न, तब कल्पना करके ऐसे ऊँचे-ऊँचे खिलाते थे लड्डू-फाडवा, कहते हैं, वह कल्पना थी। उससे शरीर ऐसा अच्छा नहीं रहा था। वह तो किसके कारण से रहा था।

मुमुक्षु : लड्डू न खिलाये तो मर जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन वहाँ मरना हो तो। यह तो जुगलिया भी इतना खाते हैं और टिकते हैं। नहीं? तीन-तीन कोस के जुगलिया। बोर जितना आहार तीन दिन में ले। आहार के लिये निभते हैं? वे तो उनका पोषण उनका उतना हो थोड़ा और इतना निभने का कारण हो। निभते हैं आयुष्य के कारण। शरीर की चाहे जितनी यत्ना करो,

परन्तु उस यत्ना का भाव तेरे पास रहेगा। शरीर में कहीं तेरे पुरुषार्थ से हो, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : निमित्त तो होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त का अर्थ यह। कुछ हो, तब निमित्त कहलाये। दूसरा निमित्त का अर्थ क्या? उससे क्या होता था?

मुमुक्षु : कुछ होता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दूसरे प्रकार से तुम कहते हो वह। जैचन्दभाई! भाई! तुम दूसरे प्रकार से कहते हो। तुम ऐसा कहते हो, अब होता नहीं, पहले होता था। ऐसा। यह बात खोटी है, ऐसा कहते हैं। पहले भी होता नहीं था, अभी भी होता नहीं। ये कल्पना करता था कि यह मैंने किया और मैंने हिलाया, मैंने इस प्रकार शरीर को बुलवाया, ऐसा बुलवाया, ऐसा किया, शरीर को स्नान करके चुस्त रखा। यह कल्पना थी, कहते हैं। उस कल्पना के कारण शरीर ऐसा रहा नहीं। कब? सदा ही। अभी नहीं। आहाहा! वह तो परवस्तु है। उसे कैसे रहना, वह तो उसकी पर्याय के आधीन है, उसकी अवस्था के आधीन है। यह आत्मा राग करे तो उसके प्रमाण में यहाँ व्यवस्थित व्यवस्था रहे? राग अवस्था जीव की विकार और यह अवस्था जड़ की। कोई विकार की अवस्था के कारण से ऐसी अवस्था व्यवस्थित रहे? वह तो उसके कारण से है।

मुमुक्षु : कर्म के कारण से हुआ न।

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म का वह निमित्त है। भाषा। वह अपना उपादान, अपनी अवस्था के कारण से रहती है, तब कर्म को निमित्त कहा जाता है। निमित्त एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को करे क्या?

मुमुक्षु : मदद करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी मदद नहीं करता। व्यर्थ में मानता है।

यहाँ कहते हैं, **शरीर के अनेक यत्न करो, इसके अनेक तरह से पोषण करो,....** समझ में आया? खाने-पीने का टाईमटेबल हो आठ पहर का। सेवेर उठे तो चाय, तुरन्त वापस अमुक, उसके बाद चाय के साथ कुछ बिस्कुट बिस्कुल या ऐसा होगा, दूसरा न

खाये तो पूड़ी, उसके बाद रोटी और दाल, शाम को और दोपहर में चाय, और नाश्ता थोड़ा, और शाम को खींचड़ी तथा कढ़ी, उसके साथ और कुछ धूल। खींचड़ी, कढ़ी नहीं तो यह पूड़ी और थेपला। शाम शाम को वह चरपरे तमतमाते करते हैं न लोग? अब यह करते हैं भाई। भुजिया बनावे, पूड़ी बनावे, क्या कहलाते हैं पेठा क्या? पुडला।

मुमुक्षु : फरसाण।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, फरसाण। शाम को फरसाण बनावे। उसमें ऐसी सर्दी हो तो थोड़ा फरसाण हो तो ठीक पड़े। लाख यत्न कर परन्तु शरीर तो रहनेवाला होगा, वैसा रहेगा, ऐसा कहते हैं। तेरे यत्न से और तेरे खिलाने के कारण से तेरे शरीर की अवस्था रहे, (ऐसा नहीं है)। और वह क्रिया जड़ की है, खाये कौन और पीये कौन? वह तो जड़ की क्रिया जड़ के कारण से होती है। सूक्ष्म बात है। युवा अवस्था सांढ जैसा (शरीर) हो, बैल जैसा बराबर और ऐसे धम... धम... धम... जमीन चलती हो। पैर में वे पहने हों, क्या कहलाते हैं? पाईप-पाईप। लोहे के पाईप होते न? पाईप कहते हैं? पाईप कहते हैं न। आसपास चले तो कोई जवान व्यक्ति चलता है, ऐसी खबर पड़े। जमीन काँपे। वह ऐसे पड़े वहाँ। आँख ऐसी करने की अधिकार रहे नहीं। ऐसे भी ऊँचा न हो। मक्खी यहाँ बैठे, ख्याल आवे कि बैठी है, ऐसे (दूर) न कर सके। वह जड़ की अवस्था है। वह जड़ का कार्य आत्मा कर नहीं सकता, परन्तु उसे परपदार्थ और स्वपदार्थ की भिन्नता की खबर नहीं, इसलिए इसे कहते हैं कि....

मुमुक्षु : निरोग हो, तब किया जाता है; बीमार हो, तब नहीं किया जाता।

पूज्य गुरुदेवश्री : तीनों काल में नहीं किया जा सकता और निरोग हो तो किया जा सकता है और बीमार हो तो नहीं किया जा सकता, ऐसा होगा? जैचन्दभाई! निरोग हो तब किया जाता था और अभी नहीं किया जाता। यह पैर ठीक से नहीं चलता। यह अभी की बात नहीं। जब निरोग था और ऐसे दो व्यक्ति चलते राम और लक्ष्मण। मोहनभाई और दो, राम और लक्ष्मण जैसे चलते। उस समय वह शरीर उसके कारण चलता था, तुम्हारे कारण नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अरे! इसे यह मिट्टी कहीं की। अरे! इसके बर्तन में दाल, भात और रोटियाँ पड़ी थीं। वासण—बर्तन में। वह जमाया

है यहाँ। रखा है। जैसे मोढवुं खडके नहीं? मोढवुं कण्डे का, कण्डे का मोढवुं। मोढवुं समझते हो? कण्डे का ढ़ेर नहीं होता? वह गोबर के कण्डे बनाते हैं न? उन कण्डों का वह फिर बड़ा बनाते हैं न। ऐसा यह है। इस बर्तन में जो दाल, भात, रोटी, सब्जी, चाय, दूध जो था वह यहाँ जमा है, रखा है। वह जड़ का ढ़ेर है, आत्मा नहीं। अब इसे खबर नहीं होती कि वह मैं कौन और किसकी सम्हाल करता हूँ? समझ में आया? भान नहीं होता भान। कहो, समझ में आया या नहीं इसमें?

एक काठी था। उस काठी को, काठी अर्थात् गरासदार, गरासदार—जागीरदार। फिर उसे पैर में फोड़ा हुआ। फोड़ा... फोड़ा। महीने, दो महीने, चार महीने (रहा)। नाई। नाई होता है न? वाणंद को क्या कहते हैं? नाई। नाई बाँधे न, नाई होता है न? ऐसे कपड़ा बाँधे। छोड़े तो उंहुं ऐसा हो जाये। फिर ऐसा करता हुए चार-छह महीने में मिट गया। फोड़ा मिट गया। फिर खोले जरा ऐसे उंहुं... उंहुंहुं... ऐसा करे। वह आदत पड़ गयी न छह महीने से। खोलते उंहुं करे। वह नाई ठग। इसलिए एक बार वहाँ से पट्टी बाँधकर इस ओर बाँध दिया। यहाँ छोड़कर यहाँ बाँधा, इस ओर बाँध दिया। फिर जहाँ सवेरे खोले तो उंहुं... क्या है परन्तु? यह पट्टी किस ओर बँधी, उसका भान नहीं। फोड़ा यहाँ था, वह मिट गया तो भी उंहुं... उंहुं... करता था तू तो। यह दूसरी जगह मारा तो उसे छोड़ने पर उंहुं करता है। क्या है परन्तु यह? अरे! ऐसा किसने किया? ऐसा किसने किया? परन्तु किया चाहे जिसने, किन्तु तुझे भान नहीं?चन्दुभाई आये? जमींदार। आओ आओ चन्दुभाई। किस पैर में फोड़ा था, उसका भान नहीं होता। ऐसे के ऐसे ममतावाले। कहो, समझ में आया इसमें? वह नाई ठग, इसलिए वह फोड़ा था, उसमें से पट्टी छोड़ दी। पट्टी यहाँ बाँध दी। अब यहाँ जहाँ खोले तो उंहुंहुं... करे। परन्तु क्या है कि उंहुं? कहे, यह दुःखता है। परन्तु यह पैर दूसरा है। उसे भान नहीं होता। उसी प्रकार यह शरीर दूसरा जड़। उसमें यह कुछ हो, उसमें तुझे कुछ होता नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। चिल्लाहट मचा जाता है। इसे कुछ हो वहाँ चिल्लाहट मचा जाता है।

मुमुक्षु : उंहुं तो हो न।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह किसके कारण? इसके कारण? ममता... ममता... ममता।

आहाहा! परन्तु क्या? यह तो पर है। यह दूसरा पैर है। चन्दुभाई! अभी वह जमींदार का दृष्टान्त दिया था। उस जमींदार को यहाँ इस पैर में बहुत फोड़ा हुआ था। फिर छह महीने चला। वहाँ खोले न पट्टी, खोले तो बहुत दर्द हो। फिर एक नाई था। करते... करते... करते... छह महीने में मिट गया। मिट गया तो भी उंहुं किया ही करे खोले इसलिए। तो उस नाई ने यहाँ की पट्टी उस ओर बाँध दी उस पैर में। उसे जहाँ खोले वहाँ उंहुं... करने लगा। परन्तु क्या है? यह पैर बदला। किसने किया? परन्तु चाहे जिसने किया, किन्तु यह पैर दूसरा है, तुझे भान नहीं? यहाँ कहाँ दुःखता था। इसी प्रकार यह शरीर दूसरा और तू दूसरा, यह क्या उंहुं किसकी लगायी है तूने?

मुमुक्षु : राग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : देखो, बस यह तो कहते हैं। यह शरीर जड़, वह पर, वह मिट्टी, वह रूपी और तू अरूपी। तुझमें कहीं उसे सम्बन्ध नहीं होता। उसे कुछ हो, उसको हुआ तो आहा! हो। यहाँ हो इसलिए मुझे हो गया। परन्तु तुझे कहाँ? तुझे अर्थात् अरूपी में हो गया? जड़ में होने पर तो अरूपी में हो गया? उस अज्ञानी को आत्मा की सत्ता की भिन्नता और जड़ की भिन्नता की खबर नहीं। न्यालभाई! आहाहा! यह बनिया के बाप करते हैं, सब क्या और? बनिया क्या करते हैं यह?

मुमुक्षु : वह तो दृष्टान्त था।

पूज्य गुरुदेवश्री : दृष्टान्त, वह तो दृष्टान्त था। वह दूसरे पैर में बाँधा तो क्या किया? यह दूसरा पैर है यह शरीर। यह कहाँ आत्मा था? आत्मा तो अलग चीज़ है अरूपी ज्ञानघन। अरूपी अन्तर अनन्त गुण की सत्ता अभी कहेंगे। समझ में आया? इसका चाहे जितना पोषण करो परन्तु दुर्जन का उपकार जैसे होगा नहीं, उसी प्रकार उसमें से तेरा कुछ हो ऐसा नहीं, ले! कहते हैं। ऐसा करके तू आत्मा है, उसकी दृष्टि कर, उसे पहिचान और उसकी कीमत कर। इसके बिना मर जा, अनन्त काल से मर गया है। कहो, अब उसके शरीर की तो बात एक ओर रही, फिर यह तो अभी मकान और दुकान... छोटाभाई! परन्तु अब इसके बिना चले नहीं, लो! तो यह बालुभाई चले गये, उनके बिना चलती है या नहीं दुकान?

मुमुक्षु : दुकान तो चलती है परन्तु पूरा उसका होता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो ममता थी। मर जाने से पहले किसी से उसका पूरा किसी ने किया नहीं और मर जाने के बाद अधूरा किसी का रहा नहीं। किसी का रुका नहीं। सब काम करनेवाले मरा ही करते हैं सब। बराबर है? जीते-जी किसी का पूरा हुआ नहीं, मरते किसी का पीछे अधूरा रहा नहीं। वह तो करता ही है, दूसरे करनेवाले नहीं निकलते? तू क्या करे परन्तु?

कहते हैं कि शरीर **अपना नहीं हो सकता।** लाख प्रकार से पोषण कर। मिट्टी है, यह तो धूल है। अब दूसरे की बात तो कहीं रही, यह तो राख होकर खड़ा रहेगा। ऐसे फू। भाई! तू आत्मा है। वह तेरा यह पहलू नहीं। तेरा पहलू तो अन्दर चैतन्य है। इसके पहलू की सेवा और पूरे दिन इतनी सम्हाल। आठ पहर का टाईम-टेबल हो इसका। लो! सवेरे से शाम तक। इसका यह फिर यह... फिर यह... फिर यह। परन्तु तेरा कुछ है? यह मर गया। थोड़े वर्ष मिले ५० या ६० वर्ष मिले मनुष्यभव में। उसमें से यदि तेरे आत्मा का कुछ नहीं किया और ऐसा का ऐसा मर गया (तो) यह चौरासी के अवतार के खड्डे में वापस कहीं पता नहीं लगेगा।

परन्तु यह अपना नहीं हो सकता। इसलिए यही सार है कि इसको अधिक पुष्ट नहीं करना। लो! बहुत खाकर बैल जैसा नहीं रखना। थोड़ा-बहुत पोषण दे (देना)। कहते हैं **कुछ थोड़ा-सा ग्रासादि देकर...** थोड़ा आहार लेकर **करके मोक्ष साधन करना;...** इस आत्मा की मुक्ति हो, ऐसा साधन करना। वरना तो मुक्ति तो होगी शरीर से। शरीर से छूट जायेगा, परन्तु वापस दूसरे अवतार में जायेगा। कहाँ अवतार! आहाहा! एक गाय अभी देखी। गाय पड़ी थी गाय। वह सब पेट... पेट मुड़ गया है। अब बेचारी ढसडे ऐसे-ऐसे किया पैर से। ऊँची हो सकती नहीं। पूंछडे पड़ी है। खाना का नहीं मिलता। हो गया ऐसा का ऐसा मर जानेवाली है, लो! रास्ते में थी। गाय है। अब ऐसे बहुत ऊँची करने लगी स्वयं ऐसे-ऐसे पैर, परन्तु ऊँची हो सके नहीं। पेट मुड़ गया। सूखा घास, उसमें अभी मिले नहीं, उसका मालिक दे नहीं, फिर ऐसे... बैठी थी। हो गया। ऐसे के ऐसे सूखकर मर जानेवाली है। घर में कोई ले जाये नहीं। यह दशा, देखो

यह दशा! आहाहा! ऐसे अवतार तो अनादि काल का है या नया है आत्मा? प्रत्येक ने ऐसे अनन्त भव किये। उसे ऐसा कि इसे यह है। बैठी निरोगी है ऐसे मानो, परन्तु सब पसलियाँ मुड़ गयी हैं अन्दर। अब खड़ी हो सके, ऐसा नहीं है। रास्ते में पड़ी है ऐसी की ऐसी।

वह ऊँट होता है, लो न ऊँट। ऊँट का पैर टूटे जरा। जवान ऊँट हो जवान, हों! वह पैर जरा टूटा, वह ऐसा का ऐसा सूखकर रहेगा। उसे दूसरा कुछ नहीं होता। जंगल में ऊँट था वहाँ एक बार। हम राणपर से नागनेश जाते थे, ऊँट पड़ा था रास्ते में वाड के पास। जवान ऊँट, हों! अपने को कभी खबर नहीं, अपनी छोटी उम्र। इसलिए कहा ऊँट यहाँ क्यों पड़ा है ऐसा अच्छा? हमने कभी सुना नहीं। उसका पैर टूटा है। तब अब? यहीं का यहीं मर जानेवाला है। उसे घास कौन दे? जंगल में था बीच में। नागनेश और राणपर के बीच में। उसे घास कौन दे? मर जानेवाला है। घास कौन दे? और महाजन ले कैसे जाये गाड़ा में इतना बड़ा ऊँट? तब यहाँ ऐसा का ऐसा सूख जानेवाला है। दो, चार, छह, आठ, दस दिन में सूख जायेगा। आहाहा! भाई! तूने ऐसे अनन्त अवतार किये, बापू! तुझे खबर नहीं। अनादि काल का है। नया है आत्मा? नया हुआ है कहीं से? वह तो अनादि-अनन्त है। अनादि त्रिकाल सत् अकृत्रिम—शाश्वत् वस्तु है। वह अनन्त काल में ऐसे भव शरीर की ममता के लिये किये, परन्तु तूने तेरी समता क्या चीज़ है, उसे देखा नहीं। उसे पहिचाना नहीं कि मैं कौन हूँ? ओहो! यह कहेंगे अभी, देखो।

सात धातुमयी यह अशुचि शरीर है,... देखो! लेंगे। ऐसे गुलाँट खाकर बात करेंगे। शरीर तो सात धातुमयी अशुचि है। **इससे पवित्र शुद्धात्मस्वरूप की आराधना करना।** लो! समझ में आया? बहुत वह नहीं किया। अन्दर से ऐसा किया है। स्पष्टीकरण किया है, हों! '**अस्थिरेणापि स्थिरं मोक्षसौख्यं गृह्यते।**' देखो! ऐसी भाषा है न, संस्कृत में है। '**अस्थिरेणापि स्थिरं मोक्षसौख्यं गृह्यते।**' यह वस्तु अस्थिर है। स्थिर भगवान आत्मा शुद्ध शाश्वत् बिम्ब है, उसकी श्रद्धा-ज्ञान करके उसका मोक्ष का साधन करना तो अस्थिरता छूट जायेगी, अकेला आत्मा स्थिर रह जायेगा, उसे सुख और शान्ति की प्राप्ति होगी।

'**सप्तधातु मयत्वेनाशुचिभूः**' कहो, समझ में आया? इसका अर्थ इतना नहीं आया अन्दर, अस्थिर का। सब अर्थ नहीं किया। वरना तो यह अस्थिर है, तो यह (आत्मा) स्थिर है, ऐसी गुलाँट खायी है। यह (शरीर) अशुचि है तो यह आत्मा शुचि है, ऐसा कहा है। जैसे उस ७२ गाथा में आता है न? (समयसार) कर्ताकर्म (अधिकार) में। '**आसवाणं असुचित्तं च विवरीयभावं च। दुक्खस्स कारणं ति य दो णियत्तिं**' उसके सामने गुलाँट खायी है कि आस्रव अशुचि है, पुण्य-पाप के भाव मलिन, तब भगवान पवित्र है, शुद्ध चिदानन्द मूर्ति है। पुण्य-पाप के भाव मलिन हैं, तब भगवान आत्मा निर्मल है, इसलिए दोनों का भेदज्ञान कर और आत्मा की शरण ले।

पश्चात् विपरीत। आत्मा चैतन्यमूर्ति है, पुण्य-पाप के भाव अचेतन हैं, जड़ हैं, इसलिए इससे भिन्न है। आत्मा आनन्दमूर्ति है, तब पुण्य और पाप के भाव दुःखरूप है। यह पुण्य और पाप के भाव दुःखरूप है। आहाहा! आकुलता है। यह भगवान आत्मा अन्दर अनाकुल आनन्दकन्द सच्चिदानन्द है। इन दोनों का विभाजन कर। यह शैली थोड़ी यहाँ ली है। यह (शरीर) अस्थिर है तो भगवान स्थिर है, उसका साधन कर। शरीर जब सप्त धातुमय अशुचि शरीर है। देखो! '**तेनापि शुचिभूतं शुद्धात्मस्वरूपं गृह्यते**' भगवान आत्मा; यह शरीर तो अशुचि माँस, हड्डियाँ आदि विशेष बाद में लेंगे।

पवित्र शुद्धात्मस्वरूप की आराधना करना। आहाहा! थोड़े दिन मिले, थोड़ा समय मिला। आँख मिंचकर कहीं चला जायेगा भाई! तेरा स्वरूप शाश्वत् है, शुद्ध ज्ञान है, उसकी अन्दर अनुभव दृष्टि तो कर। उसे दृष्टि में तो ले कि यह मैं हूँ। पुण्य और पाप और पर, वह वस्तु मेरी चीज़ है नहीं। देखो! **इस महा निर्गुण शरीर से....** देखो! शरीर निर्गुण है, ऐसा लेना है। समझ में आया? है न? '**निर्गुणेनापि केवलज्ञानादिगुणसमूहः**' शरीर निर्गुण है। निर्गुण अर्थात् यह ज्ञानादि गुण नहीं, हों! उसमें भले उसके हों। **शरीर से केवलज्ञानादि गुणों का समूह साधना चाहिए।** भगवान आत्मा तो केवलज्ञान और आनन्द है अन्दर शुद्ध स्वरूप पवित्र। परन्तु कभी समागम किया नहीं, विचार किया नहीं, मनन किया नहीं। ऐसी की ऐसी जिन्दगी पूरी। भगवान महासत्ता अन्दर भिन्न है, वह तो गुण का पिण्ड है। यह (शरीर) निर्गुण है। इसमें कहीं ज्ञान, दर्शन, आनन्द गुण

नहीं। आत्मा ज्ञान, दर्शन, आनन्द गुणवाला है। ऐसे आत्मा का साधन कर ले। कहो, समझ में आया?

यह शरीर भोग के लिये नहीं है,.... समझ में आया? भोग के लिये शरीर है? भोग अर्थात् क्या? कल्पना। शरीर तो अकिंचित्कर है। तुझे कल्पना के सुख के लिये यह शरीर तो बिल्कुल अकिंचित्कर है। कल्पना की है कि यहाँ मुझे ठीक पड़ता है, यहाँ मुझे खाने में यह मुझे भोग में, यह मुझे इसमें। यह तो तेरी कल्पना से सन्तोष माना है। वह कहीं शरीर के कारण कुछ हुआ नहीं। विषय के साधन से कुछ हुआ नहीं। विषय के साधन अकिंचित्कर है। आता है न पण्डितजी यह? प्रवचनसार में। स्वर्ग के लिये देव। देह कुछ करता नहीं। यह विषय अकिंचित्कर है। आता है न शब्द? मूल में अकिंचित्कर है न! मूल पाठ है। शरीर अकिंचित्कर है, उसके विषय के लिये। मात्र कल्पना कर रहा है। यह मुझे ठीक... यह मुझे ठीक... यह तेरे ठीक के लिये बिल्कुल यह कार्यगत नहीं है। तेरी कल्पना अन्दर की, वह भी तुझे खबर नहीं कि यह मैं कल्पना करता हूँ। यह कार्यगत इसके कारण से है नहीं। भगवान आत्मा विकल्प से भिन्न है। उसकी समझण तूने कभी की नहीं। कहो, समझ में आया?

यह शरीर भोग के लिये नहीं है, इससे योग का साधनकर.... योग। देखो! भोग सोम योग। भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञान का घन है, उसकी कभी इसने अनुभव की प्रतीति की नहीं। तो उसका योग कर। उसका योग साध। स्वरूप की दृष्टि कर, स्वरूप में ध्यान कर, स्वरूप का ज्ञान कर। उससे **अविनाशी पद की सिद्धि करनी।** आहाहा! **ऐसा कहा भी है,....** दूसरा आधार देते हैं। दोहा पाहुड़ है। **इस क्षणभंगुर शरीर से स्थिरपद मोक्ष की सिद्धि करनी चाहिये,...** देखो! यह आया। **'अथिरेण थिरा मलिणेण णिम्मला णिग्गुणेण गुणसारं काएण जो विढप्पइ सा किरिया किण्ण कायव्वा॥'** अहो! भगवान आत्मा तो स्थिरस्वरूप है, शुद्ध है, उसकी दृष्टि करके स्थिर / कायम रहे, ऐसे मोक्ष का साधन कर न! शरीर तो अस्थिर है। **शरीर से स्थिर पद मोक्ष की सिद्धि करनी चाहिए,....** इतना निमित्त है न शरीर?

यह शरीर मलिन है,.... नव द्वार झरते हैं, कहेंगे नीचे। **इससे निर्मल वीतराग की**

सिद्धि करना,.... शरीर तो मैल है। अब यहाँ शरीर की बात लगायी, वहाँ दूसरे की तो क्या कहना, कहते हैं। स्त्री, पुत्र, परिवार, व्यापार, धन्धा तो कहीं जड़ के कारण उसकी अवस्था होने के काल में हुआ करे। आत्मा उसका कर्ताहर्ता नहीं। दुर्जन शरीर का भी कुछ नहीं कर सकता तो दूसरे का तो क्या करे, कहते हैं। निर्मल वीतराग भगवान आत्मा निर्दोष, वीतराग अर्थात् रागरहित स्वरूप है, उसकी श्रद्धा-ज्ञान करना चाहिए।

और यह शरीर ज्ञानादि गुणों से रहित है,.... देखो! आया। उसमें गुण था न! शरीर में ज्ञान, दर्शन, आनन्द नहीं। इस मिट्टी में कुछ ज्ञान, दर्शन और आनन्द नहीं। ज्ञान, दर्शन और आनन्द तो आत्मा में है। यह तो निर्गुण है, भगवान गुणवाला है। गुण अर्थात्? रजो, तमो वह नहीं, स्वाभाविक गुण। त्रिकाल ज्ञान, आनन्द आदि गुणों से सहित है। शरीर तो ज्ञानादि गुणों से रहित है। **इसके निमित्त से सारभूत ज्ञानादि गुण सिद्ध करनेयोग्य हैं।** भगवान आत्मा का साधन करके अपना ज्ञान, श्रद्धा, शान्ति अर्थात् चारित्र, वह साधन करना चाहिए। कहो, समझ में आया यह?

इस शरीर से तप संयमादि का साधन होता है,.... कहलाता है न निमित्त से? मुनिपना है, संयम, इन्द्रियदमन है **और तप संयमादि क्रिया से सारभूत गुणों की सिद्धि होती है।** अन्तर के एकाग्र संयम द्वारा आत्मा की शान्ति गुण की सिद्धि होती है। **जिस क्रिया से ऐसे गुण सिद्ध हों, वह क्रिया क्यों नहीं करनी? अवश्य करनी चाहिए।** जिससे अल्प काल में आत्मा को शान्ति मिले, वह करना? या इस अल्प काल में इसकी ममता के कारण अनन्त काल का दुःख भोगना? अल्प काल की इसकी सम्हाल के कारण अनन्त काल का दुःख भोगना। अल्प काल का इसका साधन करे तो अनन्त काल का मोक्ष का सुख प्राप्त होता है। बनिया तो लाभ हो तो काम करता है। ऐई! चन्दुभाई! बनिया लाभ का काम करे। चन्दुभाई! बराबर है? तब इसमें कैसे लाभ का काम, कहते हैं समझता नहीं? ऐई! छोटाभाई! लाभ का काम करे या नहीं? या नुकसान का करे? जिसमें नुकसान लगे, वह व्यापार करता होगा? फिर भले व्यापार माल का हो जाये, आ जाये अलग बात है। अपना धन्धा न करे।

ऐसा कहते हैं, बापू! तू आत्मा है न! तुझे लाभ का धन्धा नहीं आता? नुकसान

का ही धन्धा आता है अकेला? विकार करके, शरीर को पोषने का भाव करके यह धूल और धाणी, कुटुम्ब कबीला, व्यापार, धन्धे में मर गया अनन्त काल से। यह तुझे नुकसान लगा तो भी तुझे तेरी खबर नहीं। यह नुकसान होता है, नुकसान तेरे घर में। पुकार तो करता है शास्त्र अनादि काल का। कान में पड़ता है इसे, नहीं पड़ता? यह ननूर हो गया है ननूर। ननूर। ननूर अर्थात् बिना का। ननूर कहते हैं न? तेज नहीं होता अन्दर। तेजहीन हो गया है? बहुत मारे और बोले नहीं, फिर कहे यह सुन्न हो गया है सुन्न? बोल तो सही। इसी प्रकार यह मेरा सुन्न हो गया है मूढ। मूढ-मूढ। भगवान आत्मा, अरे! वस्तु तेरी पर है। शरीर से अत्यन्त भिन्न और यह शरीर तुझसे तीनों काल भिन्न है। उसके निमित्त में आया, उसे तू साधन कर ले स्वरूप का। इसका साधन छोड़ दे। आत्मा का साधन कर। कहो, समझ में आया? यह १४८ हुई।

★ ★ ★

गाथा - १४९

अब अधिक **आगे शरीर को अशुचि दिखलाकर ममत्व छुड़ाते हैं—**

२८०) जेहउ जज्जरु णरय-घरु तेहउ जोइय काउ।
णरइ णिरंतरु पूरियउ किम किज्जइ अणुराउ॥१४९॥

हे योगी!.... हे धर्मी, हे मुनि अथवा हे आत्मा! **जैसा सैकड़ों छेदोंवाला नरक-घर है,....** नरक है न नरक नीचे। सैंकड़ों छिद्र। मधुमक्खी होती है न। मधु-मधु। यह मधु का छत्ता। ऐसे वहाँ छिद्र पड़े हुए। उसमें नारकी उपजे और नीचे गिरे। नीचे सात नरक है। पहला नरक, दूसरा नरक। कम से कम दस हजार वर्ष की स्थिति है नरक में। थोड़े में थोड़ी, हों! साधारण मनुष्य शराब खानेवाला (पीनेवाला) थोड़े में थोड़ी दस हजार वर्ष की स्थिति। अधिक में अधिक एक सागर की स्थिति है, यहाँ पहला नरक नीचे। एक सागरोपम अर्थात् असंख्यात अरब वर्ष का एक पल्योपम। ऐसे दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम का एक सागर। बड़े-बड़े राजा, महाराजा जो होते हैं, वह सब पार्लियामेन्ट वहाँ उनकी नरक में भरती है। न्यालभाई! वह सब नरक में जाते हैं।

मुमुक्षु : पार्लियामेन्ट ने उसका क्या प्रस्ताव किया है?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रस्ताव किया वहाँ दु:खी होना यह। रोज दु:खी... रोज दु:खी... हाय रे हाय। अरेरे! यह क्या है यह? इतने दु:ख कैसे वेदे जाये? वेदे जायें? पुकार... पुकार रोवे... रोवे। वह राजा-महाराजा यहाँ के बड़े हों और शिकार किये हों। लाख-लाख रुपये, दो-दो लाख रुपये की मोटर में बैठे हों वे सब। समझ में आया?

देखो न! वह तुम्हारा आया था अभी गुरु नहीं उसका? ख्रिस्ती का गुरु पोप। कितने लाख की बड़ी मोटर आयी थी वहाँ। रोम से आयी थी। इतना नाम उसका। वह वापस दे दी किसी को। आहाहा! यहाँ ऐसे पाँच-पाँच लाख की मोटरें और कितने करोड़ रुपये बड़े उसके पास बहुत। कितने ही तो यहाँ दे दिये उसमें। माँस खाये। नयी दुकान कितनी अमुक.... देकर। क्योंकि ... बहुत देखे। दो-तीन लाख गोरे आये हुए।

मुमुक्षु : सब बाहर से मेहमान आये हुए।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, मेहमान आये हुए। दुकानें नयी माँस की। कितने मुर्गे एक दिन में, कितने अण्डे एक दिन में, कितने बकरे एक दिन में। यह कुकर्म। दुनिया वह बाहर में रंग-बिरंगी दिखे। यह पाँच वर्ष, पच्चीस वर्ष बाद देखो... माँस के एक-एक टुकड़े में महाजीव है। उसकी इसे तद्वर्ण के वह जीव पंचेन्द्रिय हो तो उस प्रकार के अन्दर सूक्ष्म जीव (होते हैं), ऐसा माँस सेर, सेर, दो सेर खाये वह मरकर नरक में ही जाये। अब यह किस प्रकार दिखे? बाहर में ऐसे खम्मा! खम्मा! अन्नदाता। हीरा की - रत्न की वह लकड़ी हो हाथ में। ऐसे मानो ओहोहो! कोई ... तो मानो ओहो! ये बड़े गुरु हैं न! आगा खान में ऐसा हो। आगा खान हाथ न छूने दे उसे कोई। चन्दुभाई! उसे लकड़ी हो लकड़ी। लकड़ी ऐसी ऊँची हो। लकड़ी को ऐसे छुए तो सब प्रसन्न हो जाये। लकड़ी हाथ में हो बस इतना। स्वर्ग मिले। अरे! मरकर वह स्वयं कहाँ गया, तुझे खबर नहीं। मात्र माँस खानेवाले, शराब पीनेवाले, कुकर्म करनेवाले। दुनिया के गुरु माने, दुनिया वह पागल-मूर्ख है या नहीं? आहाहा! उसकी एक लकड़ी पड़ी हो अच्छी...

मुमुक्षु : ऐसे को इतना अधिक पुण्य कैसे?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पूर्व में ऐसा कोई पुण्य बाँधा हुआ पापानुबन्धी पुण्य।

मुमुक्षु : सुख कब था?

पूज्य गुरुदेवश्री : सुख कब था? पापानुबन्धी पुण्य। शुभभाव में कोई अहंकाररूप किया हुआ। एकेन्द्रियादि में कोई शुभभाव आदि होता है अहंकार मिथ्यात्वभाव में, उसके फलरूप से आवे वह पापानुबन्धी पुण्य परम्परा मिथ्यात्व का पाप बाँधकर नीचे धमो नमः। वे नरक में जानेवाले। दुनिया को मिलान कैसे करना आवे? आहाहा! प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये कि आहाहा! अपने ऐसे धर्म गुरु हों। परन्तु क्या है? मरकर नीचे जानेवाले हैं। क्या है तुझे? हजारों बकरे मारते थे। कुकर्म तब कहते हैं। कितने दिन? तीन दिन रहे। गाँव में कुकर्म वर्ते। जीव मारे, बकरे मारे, भेड़ मारे, मुर्गे मारे, अण्डे कितने कुछ लिखे थे। कितने लाख प्रतिदिन अण्डे चाहिए। लोगों को उनके सेवकों को। अरे! पुण्य वह क्या काम करता है? पुण्य का अस्तित्व है। यह आता है न पण्डितजी! प्रवचनसार में। पुण्य का अस्तित्व है, ऐसी गाथा आती है, गाथा आती है। प्रवचनसार पहले (अधिकार) में। कि पुण्य का अस्तित्व है। ऐसा पाठ है, हों! मूल पाठ कुन्दकुन्दाचार्य का। परन्तु अस्तित्व के फल में धूल मिली, वह सब होली है। आहाहा! समझ में आया? महाप्रभु पवित्रता का धाम, उसे इस पुण्य के फलरूप से ऐसे संयोग मिले और जाये मरकर नीचे। वे किस काम के? आहाहा!

कहते हैं, हे धर्मी! **सैकड़ों छेदोंवाला नरक-घर है,....** नारकी के घर। नारकी में यह छत्ते जैसे उपजने के स्थान होते हैं। मधु छत्ता होता है न, मधु छत्ता? वैसे ऐसे छिद्रवाले उत्पत्ति के स्थान नीचे पहले नरक में हैं। उसमें उपजे। और उपजकर पड़े धड़ाम अग्नि में। नीचे अग्नि होती है। इस पहली नरक में, फिर सर्दी होती है। ऐसे गिरे। वह पीड़ा। यहाँ से बड़ा राजा, महाराजा हो। यहाँ तो अभी उसे निकाला भी न हो। मुर्दा बाहर न निकाला हो। क्योंकि बड़े व्यक्ति, इसलिए लोग अधिक आवे, लोग आवे, तार किये हों। वहाँ तो भाईसाहेब पुकार करता हो वहाँ। आहाहा! अरे! संसार के पर्दे एक क्षण में राजा-महाराजा, दूसरे क्षण में नरक का छिद्र का नारकी। भगवान! यह तेरे पाप के परिणाम के यह सब फल हैं, भाई! यह तुझे खबर नहीं पड़ती। पर्दा, वह

अलग-अलग प्रकार का गिरे और ऐसे वह रच-पच जाये। हाय! हाय! यह हो गया मुझे। यहाँ भोगता था, लहर करता था, यहाँ कुछ है नहीं मेरा दूसरा आत्मा-फात्मा। मर गया वहाँ जाकर हैरान... हैरान।

वैसा यह शरीर मल-मूत्रादि से हमेशा भरा हुआ है। यह संस्कृत में से निकाला है। '**कायस्तु गूथमूत्रादि**' इस ओर अन्तिम शब्द है। '**गूथ**' अर्थात् विष्टा। यह विष्टा और पेशाब भरे हैं इसमें, बापू! यह ऐसी मशीन है दुनिया की मशीन की अपेक्षा। दूसरी मशीन में मैसूर डालो तो तुरन्त बिगड़ेगा नहीं। और इस मशीन में मैसूर डालो तो आठ घण्टे में विष्टा। ऐसी मशीन कोई दुनिया में नहीं। यह जहाँ डाला, वहाँ थूँक हो गया। थूँक होकर ऐसे कुत्ते की उल्टी जैसे नीचे उतरा है। खाने से पहले कोई निगले बिना निकलकर जाये नहीं। भले जामुन हो मावा का। जरा दो सेकेण्ड, पाव सेकेण्ड पिघले नरम (होकर) नीचे उतरे। नीचे उतरने से पहले ऐसे देखे तो पता पड़े, कुत्ते की उल्टी है। परन्तु मिठास से नीचे उतारे अन्दर। क्या खाया? जामुन। जामुन-मावा के जामुन। वह क्या है? यह शरीर खबर है तुझे? यह तूने खाया था वह श्वान की उल्टी थी तुरन्त। एक आधे पाव मिनिट में उल्टी हो गयी ऐसे। दाँत के नीचे जरा जीभ हो न तो ऐसा मुख करके देखना कि यह क्या है? आहाहा! यह शरीर, यह चीज़ उसे तू अपना मानकर, भगवान पवित्र आत्मा को भूल गया। तेरी चीज़ महान प्रभु है। आहाहा! समझ में आया? यह विष्टा और पेशाब से, थूँक, कफ, मैल, कान सबसे भरा हुआ, पूरा मैल का पुतला है। कहेंगे बाद में, हों!

ऐसे शरीर से प्रीति कैसे की जावे? ऐसे शरीर के साथ प्रेम कैसे करना अब? मैल की मूर्ति, मैल की मूर्ति। भगवान निर्मलानन्द की मूर्ति। निर्मलानन्द गुण। दोनों में विरोध, दोनों शत्रु हैं। मैल की मूर्ति यह शरीर, जबकि भगवान निर्मलानन्द, ज्ञानानन्द अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु है और उसकी प्रीति छोड़कर इसकी प्रीति करता है। क्या हैरान होने का रास्ता लिया है, ऐसा कहते हैं। **जैसे नरक का घर अति जीर्ण जिसके सैकड़ों छिद्र हैं,....** नरक का घर कहलाये, यह और लो। ठीक! यहाँ घर बनावे न, वैसे नरक के घर बनाये हुए हैं अनादि के ऐसे के ऐसे। उसमें उपजा वह नरक के घर में।

आहाहा! आचार्य कहते हैं, नरक का घर अति जीर्ण, और **जिसके सैकड़ों छिद्र हैं,....** मक्खी को प्रविष्ट होने के होते हैं न जैसे छिद्र। मक्खी को—मधुमक्खी। राजा, महाराजा, अरबोंपति, यह मिल के पति महा, मछलियाँ मारते हों हमेशा। हौज में सैकड़ों मछलियाँ मरे। गर्म पानी करे न गर्म। धग... धग... धग... गर्म पानी बहुत हो। वह पानी हौज में पड़े, हौज में मछलियाँ पड़ें, बिल्लियाँ पड़े, कौवे मरे। मरे बहुत प्राणी अन्दर। यहाँ कहलाये कि दो करोड़ की आमदनी है। वह कहे वहाँ होली सुलगती है तेरे नाम की। तूने पाप का बड़ा कारखाना बाँधा है। यह वह भी जगत अन्ध। आँख मींचकर कुँए गिरता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आँख मींचकर। जा फू होकर। भगवान! परन्तु तू कौन? बापू! तेरी सम्हाल एक सेकेण्ड भी कभी की नहीं? और यह अनन्त काल से इसकी सम्हाल (करते हुए) अनन्त काल हुआ तो कहीं एक परमाणु तेरा हुआ नहीं। अनन्त काल का प्रयत्न परमाणु को अपना बनाने का, एक परमाणु (अपना बनाने का) तेरे अनन्त प्रयत्न का फल आया नहीं कि एक परमाणु तेरा हुआ। आहाहा! और आत्मा एक क्षण अपनी दृष्टि करे तो उसे आत्मा की प्राप्ति अन्दर होने से अल्प काल में वह केवलज्ञान को प्राप्त करे। कहो, समझ में आया?

सैकड़ों छिद्र। नरक का घर कहा भाई उसे। वह उपजने के स्थान हैं न नारकी के। सात उपजने के स्थान हैं। आहाहा! बड़े राजा, महाराजा हों और वे वहाँ उपजे, हों! नारकी। और पौने आठ धनुष का देह। वे वहाँ से उपजे साथ में नीचे पड़े। नीचे अकेली अग्नि। उस अग्नि में पड़े। हाय... हाय... क्या है यह? क्या है यह? वापस उस आत्मा पर विचार नहीं। क्या है यह? ऐसा ही होगा यह? अकेली अग्नि। और यहाँ राजा का कुँवर। वह मरकर यह नया शरीर मिला। नरक के घर में उपजा और पड़ा नीचे। ओहो! नरकगति—अधोगति! उसके घर में ऐसे पड़े वापस पड़े तो नीचे पड़ा। वह अधोगति सही न! शरीर नीचे गिरे। वे जो देव हैं, वे पुण्य के फल में शैय्या में उपजें। शैय्या बिछी हुई हो न, उसमें उपजे पुण्य के फलरूप से। बहुत पुण्य किया हो तो दो घड़ी में खड़ा

हो जाये। अहो! यह क्या है? विचार करे। सम्यग्दृष्टि हो तो ओहो! मैं पूर्व भव में था और धर्मसाधन किया, परन्तु अधूरा रह गया। यह राग रह गया थोड़ा, उसका पुण्य बँधा, उसके फलरूप से यह स्वर्ग है। मेरा साधन पूरा नहीं हुआ। मैंने पूरा किया होता तो मुझे भव नहीं मिलता। यह क्या है? वहाँ देव आवे, अन्नदाता! यह विमान है, सौधर्म स्वर्ग है, उसके ३२ लाख विमान का यह ३१ लाख और ९९८वाँ यह विमान है। आप यहाँ उत्पन्न हुए हो बड़े रूप से। आपको भगवान की भक्ति करनी... भगवान के मन्दिर हों तीर्थंकर के वहाँ। तैयार करो। अरे देवों! मैं सम्यग्दृष्टि जीव हूँ। पूर्व से आया हूँ। मुझे यह राग रह गया, उसका फल आया। चलो, पहले भगवान की भक्ति करें। सबको हुकम करता है, पहले भक्ति करता है। आहाहा!

और मिथ्यादृष्टि देव हो, पुण्य बाँधा हो, मिथ्यादृष्टि हो, भान न हो। वह तो ऐसे देखे कि आहाहा! यह क्या है? देव! आज से आप—तुम हमारे स्वामी हुए। फँस गया उसमें एकाकार। अरे! लाखों वर्ष रहकर, करोड़ों-अरबों वर्ष रहकर। असंख्य अरब वर्ष (रहे)। शाश्वत् प्रभु इस चैतन्य की सत्ता की दृष्टि की सम्हाल की नहीं और इन सब सम्हाल में, कहते हैं अनन्त बार इस नरक के छिद्र में भी तू गया।

वैसे यह कायरूपी घर.... लो, उसके जैसा यहाँ बताते हैं इसे। यह नरक का मन्दिर। यह **साक्षात् नरक का मन्दिर है,....** देखो न, छिद्र है या नहीं सर्वत्र? यह छिद्र है या नहीं, देखो न? पसीना निकले चारों ओर से। भाई! यहाँ दूसरा बतलाना है, हों! कि तू अन्दर ज्ञानानन्द अखण्ड पदार्थ है। उसमें छिद्र-बिद्र नहीं, ऐसा बतलाना है। अखण्ड प्रभु चैतन्यसत्ता आनन्दकन्द की ज्योति है। उसे भूलकर पर्याय में—अवस्था में विकार करे। वस्तु है, वह तो छिद्र रहित अखण्ड पड़ी है ऐसी। सच्चिदानन्द ज्योति आत्मा अखण्ड प्रभु है। यह छिद्रवाली है, तब तू छिद्ररहित है। समझ में आया? इसलिए छिद्रवाली चीज़ की ममता छोड़, वह रुचि तो छोड़। ममता फिर और अस्थिरता। और रुचि ऐसी कर कि एक यह चैतन्यसत्ता मैं आनन्दकन्द हूँ। अकेला ज्ञानज्योति से भरपूर ज्ञान का दीपक अकेला हूँ। स्व को, पर को प्रकाशित करूँ, ऐसा मैं आत्मा हूँ। ऐसी दृष्टि कर तो भी क्रम-क्रम से चारित्र होकर कल्याण होगा।

नव द्वारों से अशुचि वस्तु झरती है। लो! इस शरीर में नव द्वार। पेशाब, विष्टा, आँख, दो कान, यह मुख, पेशाब, विष्टा.... आहाहा! समझ में आया? यह अशुचि वस्तु झरती है। कान दो यह है न। दो कान, दो ये। छह और सात तो यहाँ हुए और दो ये हुए विष्टा और पेशाब। नौ द्वार हैं। यह दो हुए या नहीं यह? यह दो हैं, दो ये हैं। चार। दो ये हैं। छह और एक यह मुख हुआ। सात और दो—पेशाब और विष्टा हैं। नौ द्वार हैं। मुख्य नौ द्वार। बाकी यह सब पसीना निकलता है, बाल, उसके तो बहुत द्वार। आहाहा! हमारी मौज उड़ा देंगे। यह शरीर मिला, उसमें से मौज मानते हैं। मक्खन जैसा शरीर, बैल जैसा शरीर हो मजबूत। अरे! मरकर जायेगा अब सुन न। यह बैल का होगा नारकी। हाय! हाय! आँख में से आँसू बहते जायेंगे। रोयेगा... रोयेगा बापू! तेरा रोना भगवान जाने और तू वेदे दुःख को। ऐसी दशा, भाई! वह इस आत्मा की पहिचान सत् समागम में कभी की नहीं। उसे पहिचाना नहीं। उसकी कीमत की नहीं। उसकी कीमत करे तो जगत के पदार्थ की कीमत उड़ जाये। यह सुन्दर दिखे तो दूसरी सुन्दरता दृष्टि में आवे नहीं। यह दूसरी सुन्दरता दृष्टि में आने से यह सुन्दर आत्मा इसकी दृष्टि में नहीं आता। आहाहा! समझ में आया?

नव द्वारों से अशुचि वस्तु झरती है। लो! कस्तूरी झरती है इसमें से? पेशाब, विष्टा, आहाहा! वापस उसमें यह व्याधियाँ अभी बहुत हुई हैं न? क्या कहलाती है वह? कैंसर। चन्दुभाई! यहाँ का कैंसर, यहाँ का कैंसर, यहाँ का कैंसर, छाती का, गुदा का। आहाहा! अब मोटा पेट हो, इतना बड़ा अन्दर कैंसर। अन्दर है, अब करना क्या अन्दर में? हाय.. हाय! अवधि थोड़ी। एक व्यक्ति को कैंसर। ४८ वर्ष की उम्र। बहुत वर्ष पहले की बात। दस लाख रुपये। नया विवाह किया। डॉक्टर कहे, कैंसर है भाई! भाईसाहेब! बाहर प्रसिद्ध करना नहीं, हों! डॉक्टर को कहे, बाहर प्रसिद्ध करना नहीं। पत्नी नयी है, नया विवाह किया है अभी। और यह पैसा दस लाख। समझे न? बड़ा व्यापार। धन्धा लेन-देन का, सट्टा बाजार में, उस बाजार में। यह तो बहुत वर्ष पहले की बात है, हों! ३०, ३५, ४० वर्ष पहले की बात है। भाईसाहेब! डॉक्टर कहे, हें! कैंसर। क्या? नहीं निभोगे। ४८ वर्ष। नया विवाह किया हुआ। सेठिया का परिवार, घर, पैसावाला व्यक्ति, विसाश्रीमाली बड़ा गृहस्थ धनाढ्य। अब? भाईसाहेब! बाहर

कहना नहीं, हों! मैं गल जाऊँगा अब। घर में लड़का और स्त्री चिल्लाहट मचायेंगे। फिर जब मरने की तैयारी आयी, तब खबर पड़ गयी सबको कि अरे! कैंसर है। डॉक्टर ने तो भाई कहा था मुझे। मैं बाहर प्रसिद्ध करूँ तो तुमको दुःख हो। कैंसर है। साहेब! मेरी स्थिति पूरी होनेवाली है। कहो, आहाहा! ४८ वर्ष में समाप्त, देह छूट गया। क्या करे उसमें?

शिवलाल पानाचन्द बड़ा कलेक्टर। चन्दुभाई! तीन हजार वेतन। बड़ा कलेक्टर और दीवान, जयपुर का राजा का दीवान। वह उसे रोग हुआ कौन जाने कैसा! छोटी उम्र ४८ वर्ष की उम्र। ऐसा कोई रोग हुआ। समाप्त हो गया छोटी उम्र में। सिविल सर्जन बड़ा। ऐसी इज्जत ऐसे अलमारी की अलमारी पुस्तकें भरी हों। वे कहते थे एक बार, वाँचु तो मुझे याद आ जाये कि इस पुस्तक में यह लिखा है। इतनी यादशक्ति। बड़ी पदवी थी न कुछ। तब का क्या कहलाये? सिविल... बड़ी। अपने आया था न यहाँ ७७ में आया था, वहाँ व्याख्यान में। क्यों शिवलालभाई! कहा, कुछ आत्मा के लिये? पहली शुरुआत में नौकरी हुई ७०० वेतन। पहले महीने का ७०० वेतन। फिर तो तीन हजार, पैंतीस सौ का आधा चला गया। जयपुर का दीवान। कहे, मैं पढ़ा है महाराज! परन्तु आत्मा है या नहीं, यह अभी मैंने निर्णय नहीं किया। आहाहा!

व्याख्यान पूरा हो गया, फिर वे आये और वह है न मनुचन्द का बाप नहीं नागरवेल। नागर। नागर जुंजावाला। नागर है। वे दोनों आये। व्याख्यान पूरा हुआ न बोटाद की सभा में बाद में आये। भाई! कहा, वाँचा है आत्मा है उसका कुछ? मैंने बहुत वाँचा है। पुस्तकें बहुत वाँची हैं। परन्तु अभी आत्मा है या नहीं, यह निश्चयपना आया नहीं। चन्दुभाई! आहाहा! अभी तो है और फिर कैसा? और कैसे? यह बाद में। अरर! कहा। यह ७७ की बात है, ७७। संवत् १९७७। व्याख्यान पूरा हुआ और आकर मैंने पूछा कि आत्मा का कुछ? कहे, वाँचा है परन्तु अभी मैंने निर्णय (नहीं किया)। आहाहा! अरे रे! यह जीवन, क्या कहा यह? भिखारी जैसा जीवन। रंक। यह रंक के रंक गींजकर मर जायेंगे सब। सहज क्या हुआ, ४८ वर्ष में समाप्त हो गया। ऐसा कुछ रोग यहाँ का आया। कोहनी का। हाथ ही ऐसा हो गया। ऐसा का ऐसा मर गया। बहुत होशियार। बहुत होशियार, हों! बुद्धि बहुत बुद्धि। लो, यह योगफल।

भाई! यह तो दो घड़ी का पर्दा सन्ध्या का रंग है। सन्ध्या का लाल रंग लगे, वह जहाँ पीछे जाये, वहाँ धबो नमः काला। इसी प्रकार यह बाहर के पुण्य के ठाठ देखकर उलझ गया। प्रभु तेरा अन्दर पड़ा है, उसकी तुझे खबर नहीं। आनन्द का कन्द अतीन्द्रिय आनन्द का सुन्दर-सुन्दर महल अन्दर है। उसकी तुझे प्रीति नहीं, उसकी तुझे रुचि नहीं, उसका तुझे आश्रय नहीं, उसका तुझे शरण नहीं। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, इन **नव द्वारों से वस्तु झरती है। और आत्माराम जन्म-मरणादि छिद्र आदि दोष रहित है,....** भगवान आत्मा अन्दर अरूपी चिद्घन, अनादि-अनन्त शाश्वत् उसे छिद्र कैसा? उसमें तो अखण्ड वस्तु है वह तो। यह तो पर्याय में इसने पुण्य-पाप और भ्रमणा खड़ी की है। वस्तु में छिद्र-बिद्र और वस्तु में मैल है नहीं। ऐसा भगवान पूर्णानन्द शाश्वत् आत्मा स्वयं तो छिद्रादि दोषरहित। छिद्र नहीं और मैल भी नहीं। जन्म-मरण वह नहीं। जन्म-मरण उसे कहाँ? अन्दर वस्तु के स्वभाव में कहाँ है?

ज्ञानानन्द प्रभु की प्रतीति कर, उसकी दृष्टि कर। उसे बारम्बार याद कर, बारम्बार उसे याद कर। सब भूल... भूल, इसे याद कर। पाँच वर्ष में गाली दी हो तो याद करे। सही समय में, मुझे गाली दी थी इसने, हों! उस गाली को गाँठ बाँधता है। परन्तु गुण? आहाहा! जिसके—मेरे एक गुण की एक समय की झलक तीन काल—तीन लोक को जाने, ऐसी मेरी सामर्थ्य है, ऐसा मुझे सुनाया और उसे गाँठ नहीं बाँधे, रुचि न करे कि यह आत्मा ऐसा है। वह तो तीन काल—तीन लोक को जाने-देखे, बस। किसी का करे-हरे नहीं, ऐसी शान्तिवाला भगवान आत्मा है, उसे सुनकर अन्दर में रुचि की गाँठ बाँधी नहीं और वह गाँठ बाँधी (कि) इसने मेरा अपमान किया था, इसने मुझे गाली दी थी। आहाहा!

खस में थे न दो। साला-बहनोई जमींदार थे। यह जमींदार कहते हैं न काठी। साला-बहनोई। तो साला को किसी समय गाली दी होगी उसके बहनोई को। किसी समय अपमान किया होगा। वह और उसका बहनोई रोटियाँ खा रहे थे। उसकी बहिन रोटियाँ बना रही थी। वहाँ आया वह साला आया। वहाँ उसने आदर दिया उसके बहनोई ने। आओ... आओ आपा आओ। परन्तु आया छुरा लेकर आया हुआ। सगे

बहनोई और बहिन बैठे थे और बहनोई को मार डालने के लिये आया। उसे खबर नहीं। बेचारा रोटियाँ खाता था और उसकी बहिन रोटी बनाती थी। आओ आपा आओ। साथ में बैठो। छुरा (मारा)। उसकी बहिन... आहाहा! क्या हुआ? एक बार अपमान किया था मेरा। अब परन्तु... वह सगा बहनोई, हों! मारा, खाते-खाते सुला दिया एकदम। यहाँ होंगे सब घर जाने अब उसे रहने के। मर गया वह बेचारा। अब उसे फिर कुछ क्या हुआ, खबर नहीं।

यह बैर-विरोध करके भगवान! तू किसके साथ भटक रहा है? क्या कर रहा है तू? कहते हैं, भगवान शुद्धात्मा प्रभु कैसा है अन्दर? **भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्ममल से रहित हैं,....** वह मल-मल। वह भगवान आत्मा अन्दर जिसे आत्मा कहते हैं, वह तो भावकर्म अर्थात् पुण्य-पाप के राग से तो रहित वह वस्तु है। जड़कर्म, आठ कर्म के परमाणु के अस्तित्व से, मौजूदगी से उसकी अस्ति अत्यन्त भिन्न है। नोकर्म वाणी, शरीर के परमाणु की मौजूदगी से प्रभु भगवान की मौजूदगी / अस्ति अत्यन्त भिन्न है। उसमें वह द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म का मैल उसकी वस्तु में नहीं। आहाहा!

भगवान शुद्धात्मा भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्ममल से रहित है, यह शरीर मल-मूत्रादि नरक से भरा हुआ है। यह पाक हो, यह पीव हो, यह झपकारा मारे। पीव कहते हैं न? क्या कहते हैं? पीव नहीं होता। पीव। वह खून। सौ बिन्दु का एक पीव हो, ऐसा कहते हैं। खून का। वह जब ऐसे हो, झपकारा मारे। हाय.. हाय! यह झपकारा तो जड़ में है। परन्तु इसकी दृष्टि का अस्तित्व वहाँ गया है ऐसे। वह किसी के पैर में पट्टी बाँधते चिल्लाहट मचाता है। यह तो वहाँ होता है। भगवान आत्मा वह जाननहार है। उसे भिन्न जाना नहीं। एक मानकर बैठा, वह उसकी पीड़ा में मानो पीड़ित हो गया। हाय... हाय! अरे! मुझसे सहन नहीं होता, हों!

एक व्यक्ति को वायु का-वायु का दर्द था भाई! सेठिया पैसावाला बड़ा सेठिया। दस लाख चालीस हजार की बड़ी उपज। वायु-वायु। वायु होती है न! फिर कहे मुझे गोली मारो, हों! यह मुझसे सहन नहीं होता। समझ में आया? यह दामोदर सेठ लो न, दामनगर। वे तो गुजर गये न। दामोदर सेठ, भाई! चन्दुभाई पहिचानते हो न? यह

दामनगर नहीं? बहुत वायु हो गयी। पीड़ा, फिर वायु की पीड़ा। मुझसे रहा नहीं जाता। मुझे गोली से मारो, कहे। कहो, लौकिक में बहुत होशियार व्यक्ति कहलाये। लौकिक में बहुत वैसा। ऐसी पीड़ा... ऐसी पीड़ा... ऐई! सुखलाल! ऐई! बन्दूक की गोली ले, हों! मुझसे यह सहन नहीं होता। आहाहा! वह तो फिर कितने काल में मिट गया। परन्तु यह स्थिति। बन्दूक से मार। पैसा देखो तो दस लाख (पूँजी), चालीस हजार की उपज घर में। घर में घोड़े, घोड़ागाड़ी। बनिया दशाश्रीमाली का परन्तु जमींदार जैसा बड़ा। वह इस रोग में। आहाहा! अरे! तुझे थोड़ा दुःख सहन नहीं होता। अभी आया था न पहले, भाई! तो बड़े पाप करके, बड़े दुःख कैसे लेता है तू? छोटा दुःख तुझसे सहन नहीं होता तो बड़े पाप करके बड़ा दुःख कैसे लेता है तू? उसका योगफल तो कर कुछ। आहाहा! परन्तु भाईसाहेब! यह तो बाबा हो तो होवे। और एक व्यक्ति ऐसा कहता था। ऐसी बात तो बाबा होकर अकेले (हों तो हो)। अब यह सब जंजाल पड़ी, स्त्री, पुत्र। अब हमारे क्या करना? कुछ व्यवस्था रखनी या सब उड़ा देना? नाक को काट डालना अभी?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ... था? बाप धूल का। नरक में जानेवाला... किया। क्योंकि नरक में तो जाना पड़ेगा, तो करो... पहला तैयार, चित्रामण किया। शास्त्र में दृष्टान्त आता है कि भाई! तुझे भविष्य में होना हो, वैसा चित्रामण कर। कैसा होना है? तेरे परिणाम करे, वैसा भविष्य में होगा। चित्रामण तूने किया है तेरे लिये, दूसरा कौन करता था तुझे? जैसे परिणाम कर, वैसा तुझे मिलेगा। वहाँ चित्रामण नारकी का शरीर या ढोर का या मनुष्य का। तेरे चित्रित फल यह हैं, किसी ने दिये नहीं हैं और आत्मा को चित्तस्वरूप की दृष्टि और ज्ञान जिसने किये, भविष्य में शान्ति... शान्ति... शान्ति... और स्वरूप का अधूरा साधन हो। (पश्चात्) पूरा करके मुक्ति प्राप्त करे। कहो, समझ में आया?

कहते हैं, **शरीर मल-मूत्रादि नरक से भरा हुआ है।** भगवान आत्मा तो अकेला आनन्द का निर्मल पिण्ड है। कैसे बैठे? आहाहा! **ऐसा शरीर का और जीव का भेद जानकर....** देखो! शरीर और जीव की भिन्नता जानकर **देह से ममता छोड़के....** अब

उसका प्रेम छोड़, उसका प्रेम छोड़ और इसका प्रेम कर अब अन्दर। **वीतराग निर्विकल्प समाधि में ठहरके....** आहाहा! भगवान जैसे निरन्तर तूने पर की प्रीति को जोड़ा है, वैसे यहाँ दृष्टि करके निरन्तर उसका विचार कर। रागरहित अभेद शान्ति में रहकर भगवान शान्तस्वरूप है, परम शान्तरस है।

वीतरागबिम्ब प्रभु आत्मा है। निर्दोषी स्वरूप, उसकी दृष्टि करके स्थिर हो। **निरन्तर भावना...** अन्तर पड़े बिना भगवान की—आत्मा की एकाग्रता करना। भावना अर्थात् एकाग्रता। **करनी चाहिए।** लो! यहाँ तो शरीर पर ही माँडा है मुनि ने। यहाँ माल को तुलना करता है। माल नहीं मिलान करता? कि यह माल अच्छा है और यह खराब है। लाते हैं या नहीं यह? बाजरा, ज्वार हाथ में लेकर कहे यह माल ऊँचा लगता है। माल लेने जाये वहाँ बाजरा, ज्वार तो कहे यहाँ तो तुलना कर कि यह जड़ है, वह चैतन्य है, दो में कौन सा अच्छा है, देख तो सही। न्यालभाई! बनिया जाये तो कितनी जाँच करे माल के लिये। आहाहा! घी के लिये पळो नीचे डाले ठेठ। मण घी हो और डिब्बा घी का, इसलिए ऊपर से डाले तो पळो ले। पळो समझे न? एक पळी बड़ी नीचे डाले। नीचे कचरा है या नहीं लाओ ऊपर से। इतनी जाँच कर। ऊपर अच्छा और अन्दर नीचे कचरा हो तो? कीटू अर्थात् कचरा। ठेठ जाँच करे। आहाहा! ऐ...! उसमें कुछ अन्दर में गया और क्या है इसमें मैल? या निर्मल क्या है? कहीं इसकी जाँच की?

इसलिए कहते हैं कि अब आत्मा का विचार कर, मनन कर, सत्समागम से उसकी पहिचान कर और उसमें स्थिर हो, यह करनेयोग्य है और यह प्रीति छोड़। क्योंकि वह तो एक बार फू होकर पड़ा रहेगा। श्मशान में। वह कहीं साथ आवे ऐसा नहीं। और वह अभी तेरा नहीं, इसलिए आत्मा की पहिचान करके समझ करना, यह बात विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आषाढ़ कृष्ण ५, रविवार, दिनांक - १८-०७-१९६५
गाथा - १५० - १५१, प्रवचन - १७३

परमात्मप्रकाश। योगीन्द्रदेव दिगम्बर मुनि लगभग ९०० वर्ष पहले इस भरतक्षेत्र में हुए हैं, उन्होंने यह परमात्मप्रकाश आत्मा के हित के लिये बनाया है। १५० गाथा। १४९ हो गयी।

आगे फिर भी देह की मलिनता दिखलाते हैं— देखो! क्या कहते हैं? यह देह है, दूसरी चीज़ें तो कहीं दूर रही परन्तु यह देह ही स्वयं अशुचि, पाप और दु:ख का ढ़ेर है। दु:ख-दु:खमय देह है। भगवान आत्मा अन्दर आनन्द की मूर्ति है, उसकी यह रुचि कराते हैं। भाई! आत्मा के अतिरिक्त दूसरी चीज़ तो बाह्य रही। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार और लक्ष्मी, वे तो परपदार्थ बाहर बहुत दूर हैं। यह तो नजदीक है, यह देह भी मलिन और पाप और दु:खरूप है और तेरा आत्मा ही आनन्द और सुखरूप है, ऐसे देह से भिन्न करके आत्मा की दृष्टि करके आत्मा का अनुभव कर तो तुझे जन्म-मरण मिटेंगे और दु:ख का नाश होगा। ऐसा १५० में बताते हैं।

२८१) दुक्खइँ पावइँ असुचियहँ ति-हुयणि सयलइँ लेवि।
एयहिँ देहु विणिम्मियउ विहिणा वइरु मुणेवि॥१५०॥

तीन लोक में... 'दु:खानि पापानि अशुचीनि' यह जितने जगत में दु:ख हैं, उतने दु:ख से कर्मरूपी शत्रु ने यह शरीर बनाया है। कर्मरूपी शत्रु। आत्मा अरूपी, कर्म जड़-अजीव। दोनों विरोधी हैं, ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा ज्ञानानन्द, अरूपी, चैतन्यघन; तब कर्म जड़, अजीव, रूपी इन दोनों को बैर-विरोध है। तो कहते हैं कि भगवान आत्मा में यह शरीर जो दिखता है, यह पूर्व में उसने विकारभाव आत्मा के स्वभाव से विरुद्ध बैरभाव किया था। आत्मा शुद्ध चिदानन्दस्वरूप की दृष्टि छोड़कर अकेले पुण्य और पाप के भाव किये, वे वास्तव में शुद्धस्वरूप से विरोधी बैर है। समझ में आया? यह शुभाशुभभाव, वह बैर है, शत्रु है, उससे कर्म बँधा तो उसे यहाँ शत्रु कहने में आया

है। आहाहा! न्यालभाई! यह दुःख शरीर है या... जितने दुनिया में यह दुःख हैं, उनसे यह बना हुआ है। जितने दुनिया में पाप हैं, उनसे यह शरीर पाप से बना हुआ है। देखो! विशिष्टता क्या करते हैं? पुण्य और पाप दो भाव आत्मा के स्वभाव से विरुद्ध थे वह वास्तव में तो दोनों पाप हैं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : देव को भी शरीर तो है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। परन्तु वह देव का शरीर, देह का शरीर, वह सब पाप ही है। पाप के परिणाम से उत्पन्न हुआ कर्म और कर्म से हुआ शरीर अर्थात् यह पूरा शरीर, पुण्य और पाप के भाव, वे दुःखमय हैं, उनसे कर्म हुए और उनसे हुआ शरीर। इसलिए यह शरीर अकेला दुःखमय है। आहाहा! किसका प्रेम करना है तुझे? कहते हैं। धर्म करना है या नहीं? धर्म करना हो, सुखी होना हो तो भगवान आत्मा देह की चिन्ता छोड़ दे। उस चिन्ता द्वारा देह रहेगी नहीं। देह तो उसकी स्थिति से रहेगी। तेरी चिन्ता कर। चिन्तवन शुद्ध चिदानन्दस्वरूप। लेंगे दोनों परस्पर कि यह देह, वैरी ऐसे पुण्य-पाप के भाव दुःख, वह इसने कर्म बना और उसने बनाया शरीर। इसलिए शरीर अकेला दुःख का पुतला है। आहाहा!

मुमुक्षु : पहला सुख वह निरोगी काया।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी बात नहीं। अज्ञानियों ने गप्प मारी है सब। पहला सुख निरोगी काया। शरीर में निरोगता हो तो सुख। सुख मूढ में भी नहीं। वह तो जड़, मिट्टी है। वह तो मिट्टी रूपी पुद्गल है। उसमें निरोगता सुख कहाँ से आया? यहाँ तो कहते हैं कि शरीर की निरोगता, वह भी दुःख का पुतला है, ऐसा कहते हैं। क्योंकि आत्मा के स्वभाव से विरुद्ध भाववाला तत्त्व है। आहाहा! और आत्मा के स्वभाव से विरुद्ध भाव ऐसे पुण्य और पाप, उनसे उत्पन्न है। उनसे उत्पन्न है न? कहीं आत्मा के धर्म से शरीर उपजता नहीं। आत्मा तो शुद्ध चिदानन्द की दृष्टि और उसका ज्ञान करे तो उससे कर्म नहीं बँधते और उससे शरीर नहीं मिलता। समझ में आया? अब यह शरीर ऐसा, उसे बाहर की तो बात भी कहाँ करना? पैसा, स्त्री, पुत्र कहीं रह गये धूल कचरा।

मुमुक्षु : अभी तक धूल था, आगे आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो यहाँ दु:खमय कहा न, इसलिए फिर यह कचरा कहा दु:खमय तो वह तो कचरा (ही है)। उकरडो कहते हैं पण्डितजी? कचरे का ढ़ेर, कचरे का ढ़ेर। कचरे का ढ़ेर होता है न, उसे यहाँ उकरडो कहते हैं। वह कचरे का ढ़ेर होता है न! समझ में आया? वह दु:ख का ढ़ेर है, ऐसा कहते हैं।

परमात्मप्रकाश। महासन्त मुनि दिगम्बर जंगल में बसनेवाले आत्मा के आनन्द की अनुभूति, आत्मा के आनन्द की अनुभूति में विशेष अन्तर में स्वसंवेदन शान्ति में झूलनेवाले। वे मुनि जंगल में रहकर इस दुनिया के हित के लिये जरा यह शास्त्र बनाया। अरे जीवो! यह शरीर ही अकेला दु:खमय है। फिर सामने पाठ इतना है। सामने से निकालेंगे टीका। और यह शरीर ही अकेला पाप का पुतला है। यह दु:खी के समय नहीं, हों, जैचन्दभाई! रोग हो, उस समय नहीं। निरोग और रोग सब समय अकेला दु:खमय ही है, ऐसा कहते हैं। निरोगता के समय भी यह शरीर तो दु:खमय ही है। क्योंकि भगवान आत्मा अपने आनन्द को भूलकर जितना पुण्य-पाप का भाव जितना किया था, उतना कर्म बँधा, यह उसके फलरूप से शरीर (मिला)। आत्मा आनन्द और तब यह दु:खरूप है, ऐसा कहना है।

मुमुक्षु : ऐसी तो कहावत है, शरीर से सुखी तो सुखी सर्व बातें।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह तो भाई ने कहा अभी, तुमने सुना नहीं। यह तुमको घुस गयी है अन्दर विपरीतता। शरीर से सुखी तो सुखी सर्व बातें। यहाँ तो कहते हैं, शरीर से सुखी जो है, वह शरीर स्वयं दु:ख का पुतला है, ऐसा कहते हैं। धूल में भी सुख नहीं। सुख तो भगवान आत्मा में उसका सम्यग्दर्शन करने से, उसकी प्रतीति करने से जो आनन्द आवे, वह आनन्द तीन काल में दूसरे विषयों में है नहीं। समझ में आया?

भगवान आत्मा सच्चिदानन्द सिद्धस्वरूप। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' ऐसा चिदानन्दस्वरूप की अन्तर्दृष्टि विश्वास करने से—भरोसा करने से भरोसे से भगवान तिर जाता है अन्दर में से। पर्याय में आनन्द की दशा प्रगट होने से जिसके आनन्द के स्वाद की प्रतीति के समक्ष पूरी दुनिया जिसे तुच्छ लगती है। आहाहा! समझ में आया? तीर्थंकर के समवसरण भी जिसे सम्यग्दर्शन के आनन्द के समक्ष तुच्छ, तुच्छ, तुच्छ।

आहाहा! भगवान आत्मा से यह शरीर विरुद्ध दुःख है, पाप है, अशुचि वस्तु है। मात्र अपवित्र वस्तु से भरपूर—विष्टा, खून, हड्डी, चमड़ी। एक शेरडी-शेरडी—गन्ना-गन्ना, गन्ना होता है न? उसका एक छोल निकालो, छोल ऊपर से जरा। छाल को क्या कहते हैं? ऊपर से एक सहज निकाले थोड़ी। इतनी एक चमड़ी को उतरकर इस शरीर को खड़ा रखे तो थूँकने के लिए खड़ा न रहे। जैसे यह शेरडी—गन्ना। गन्ने की छाल होती है न छाल? छाल निकालकर सफेद दिखे। इतनी छाल यहाँ से निकाल डाले ऊपर से जरा। दुर्गन्धमय... दुर्गन्धमय एक छाल निकाले ऊपर की चमड़ी की। इस चमड़ी की छाल का वस्त्र-कपड़ा है। इतना जरा निकाले ऊपर से यह। भगवान! तेरे आनन्द से, वह इस अपवित्रता से यह विरुद्ध वस्तु है। इस वैरी ने बनाया है, ऐसा कहेंगे अभी। इस कर्मरूपी वैरी ने यह तुझे पंजे में डालने के लिये बनाया है। आहाहा!

'सकलानि' उन सबको लेकर... सबको लेकर... अर्थात्? दुनिया के जितने दुःख, दुनिया के जितने पाप, दुनिया में जितनी अपवित्र चीज़ें, उन सबको इकट्ठी करके **इन मिले दुःखों से विधाता ने....** अर्थात् कर्म ने **वैर मानकर शरीर बनाया है।** यह उपमा अलंकार दी है न! वह कर्म वैरी है। उस कर्म वैरी ने यह शरीर बनाया है। भगवान आत्मा में यह शरीर है नहीं। कहो, समझ में आया? तो शरीर की कोई भी क्रिया वह जड़ की है और शरीर की कोई भी पर्याय भी दुःखरूप है, पापरूप है और अशुचि है, ऐसे तीन उपमा दी। समझ में आया? इस शरीर से कुछ कर लें शरीर से। परन्तु शरीर ही दुःखरूप, पापरूप और अशुचि है। तुझे शरीर से क्या करना है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यही इनकार करते हैं। साधन तो तेरे स्वभाव में है। यह तो जड़ मिट्टी है। आहाहा! भगवान ज्ञानमूर्ति सचेतन, चैतन्यसूर्य है, चैतन्यसूर्य। अनाकुल आनन्द का कन्द तेरी दृष्टि पड़ने से वह परमात्मा तुझे भासित हो। ऐसा वह आत्मा, उससे यह वैरी कर्म ने यह बनाया तेरे लिये पंजे में—जेल में डालने के लिये। यह शरीर मिले तो खुशी... खुशी... खुशी... खुशी... प्रसन्न... प्रसन्न... हो जाये, शरीर कुछ ठीक हो तो। भाई! यह दुनिया से विरुद्ध बात है। देखो! कहो, यह वैरी, कर्म को तेरा वैरी मानकर, तेरे शत्रु से वैर के समय देख और यह बनाया है।

भावार्थ—तीन लोक में जितने दुःख हैं,... देखो अब टीका। भगवान आनन्दमूर्ति प्रभु, तब तीन लोक के जितने दुःख, वे सब शरीर के रचे हुए हैं। यह शरीर ही दुःखमय है, ऐसा कहते हैं। **उनसे यह देह रचा गया है,...** दुःख से देह रचा है। शास्त्र में आता है न कुन्दकुन्दाचार्य (कृत) अष्टपाहुड में। एक अंगुल में छियानवे रोग। अष्टपाहुड में आता है। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज (कृत) अष्टपाहुड शास्त्र है न? उसमें है भावपाहुड में। एक अंगुल में छियानवे रोग। समझ में आया?

मुमुक्षु : दूसरे अंगुल में दूसरे छियानवे रोग?

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे एक यहाँ में छियानवे... यहाँ छियानवे... यहाँ छियानवे... यहाँ छियानवे... है या नहीं? ऐई! अष्टपाहुड है? क्या है वह पृष्ठ है न? लिखा होगा सामने कुछ। भावपाहुड में है प्रायः करके। समझ में आया? यह शरीर पूरा साढ़े तीन हाथ का लम्बा, उसके एक-एक अंगुल में छियानवें रोग। ऐसे पूरे शरीर में एक-एक अंगुल में एक-एक में छियानवे... छियानवे... छियानवे... सब। एक ही छियानवे ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : पूरे शरीर में मिलकर छियानवे, ऐसा नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। आहाहा!

आचार्य महाराज परमात्मस्वरूप बतलाते हैं। भाई! तू परमस्वरूप है न अन्दर! तीन लोक का नाथ तेरे एक समय की पर्याय में तीन काल—तीन लोक ज्ञात हो, ऐसा तू यह शरीर मेरा, क्रिया मेरी, यह मुझे सुख देगी, यह मानकर भ्रमणा में पड़ा है। मूढ़ता में निगोद में जायेगा चार गति में। समझ में आया? आहाहा! शरीर को अच्छा, इसलिए मानो क्या कर लूँ? बटका भर लूँ या इसमें से खा लूँ या क्या करूँ मानो अन्दर से। अरे! भाई! यह तो शरीर अकेले दुःख का पुतला है। इस वैरी ने तेरे लिये दुःख की मूर्ति बनायी है।

मुमुक्षु : ममता छुड़ाने के लिये कहा है या वास्तव में है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वास्तव में ही है और क्या है? आत्मा के आनन्द से यह विरुद्ध है।

उनसे देह रचा गया है, इससे दुःखरूप है,.... इसलिए यह शरीर दुःखरूप है। **और आत्मद्रव्य....** भगवान आत्मा **व्यवहारनयकर देह में स्थित है,....** अब गुलाँट मारकर बात करते हैं स्वयं। अब आत्मा निकाला उसमें से। जैसे कुन्दकुन्दाचार्य महाराज ने (समयसार के) कर्ताकर्म की ७२ गाथा बनायी। अशुचि, विपरीतं, दुःख। तो उसमें से तीन बोल अमृतचन्द्राचार्य ने निकाले कि शुचितं, आत्मा शुचि है, चैतन्यस्वरूप और सुखरूप है। यह पाठ में तीन है और उसमें से अमृतचन्द्राचार्य ने दूसरे तीन अन्दर से निकाले हैं। यहाँ आचार्य महाराज ने (तीन निकाले हैं)। यह शैली सब समयसार की शैली जो है, वह तो अलौकिक! उसकी टीका (के) कर्ता अमृतचन्द्राचार्य अलौकिक महा सन्त दिगम्बर मुनि जंगल में रहनेवाले, जिन्हें आत्मध्यान में मस्ती में स्थित थे, यह जरा विकल्प आ गया। कर्ता-बर्ता विकल्प के नहीं होते। यह जरा पुस्तक बन गयी। जगत के हित के लिये विकल्प आया, बन गयी। पुद्गल से बन गयी, उसका कर्ता यह आत्मा नहीं। समझ में आया?

तीन लोक में जितने दुःख हैं, उनसे यह देह रचा गया है, इससे दुःखरूप है,.... ऐसा कहते हैं कि पूरी दुःख की मूर्ति, तेरी नजर छोड़ दे उसके ऊपर से। अन्दर भगवान आत्मा आनन्दमूर्ति व्यवहार से शरीर में रहा, ऐसा कहा जाता है। देखो! **देह में स्थित है, तो भी निश्चयनयकर....** यथार्थ दृष्टि से देखें (तो) **देह से भिन्न निराकुलस्वरूप सुखरूप है,....** भगवान आत्मा पुण्य-पाप के भाव, ये दोनों आकुलता, आकुलता है, दुःखरूप है। यह पुण्य-पाप के भाव दोनों आकुलता और दुःखरूप है। भगवान आत्मा अनाकुल है। देखो! भावपाहुड गाथा ३७, ३७ है।

एक्केक्कंगुलि वाही छण्णवदी होंति जाण मणुयाणं।
अवसेसे य सरीरे रोया भण कित्तिया भणिया॥३७॥

अर्थ—इस मनुष्य के शरीर में एक-एक अंगुल में छयानवे-छयानवे रोग होते हैं,.... ३७। भावपाहुड की ३७वीं। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज महा सन्त दिगम्बर मुनि धर्म के धुरंधर स्तम्भ उन्होंने यह कहा कि अरे भाई! तुझे देह। दूसरी चीज़ तो अब कहीं रह गयी। यह देह। एक **शरीर में एक-एक अंगुल में....** है।

एकैकागुंलो व्याधयः पण्णवतिः भवंति जानिहि मनुष्यानां।
अवशेषे च शरीरे रोगाः भण कियन्तः भणिताः॥३७॥

दूसरे, पूरे शरीर में कितने रोग हैं, भाई! तू गिन न! ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? भगवती आराधना में एक यहाँ रखा है। पृष्ठ ३७५ है। उसमें कुछ रोग कहे हैं। उसमें कुछ कहे हैं। समझ में आया? एक अंगुल रखो, उसमें छियानवें रोग। यह दूसरे अंगुल में छियानवे, तीसरे में छियानवे, चौथे में छियानवे। इसे अँगुल कहा जाता है इतने को, ऐसे। उसमें छियानवे रोग। ऐसे-ऐसे पूरे शरीर में एक-एक अँगुल में छियानवे रोग। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य महाराज पंच महाव्रतधारी सन्त, दिगम्बर महन्त जिनकी वाणी पंच महाव्रतवाली सत्य वाणी है। समझ में आया? वे कहते हैं कि देखो! इस शरीर में ऐसे रोग भरे हैं। तुझे शरीर का प्रेम, यह पर जड़, मिट्टी, धूल, श्मशान की राख, श्मशान की राख, उसमें तुझे प्रेम और भगवान अमृत का पिण्ड तू, उसमें तुझे प्रेम नहीं। आहाहा! कहो, शशीभाई! कहते हैं, समझे न? वहाँ तो फिर ऐसा कहना है। हे जीव!

ते रोया वि य सयला सहिया ते परवसेण पुव्वभवे।
एवं सहसि महाजस किं वा बहुएहिं लविएहिं॥३८॥

तुझे अधिक क्या कहना? ऐसे दुःख तूने अनन्त बार सहन किये। एक आत्मा के सम्यग्दर्शन बिना। आत्मा अखण्डानन्द प्रभु शुद्ध की अन्तर अनुभव प्रतीति किये बिना अनन्त बार जैन साधु दिगम्बर भी क्रियाकाण्डी अट्ठाईस मूलगुण पालनवाला अनन्त बार हुआ। नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया। यह आता है न, छहढाला में आता है। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' यह भगवान आत्मा यह पुण्य-पाप के विकारभाव रहित ऐसी अखण्डानन्द मूर्ति, यह उसका तूने प्रेम और रुचि, दृष्टि तूने की नहीं। उसकी रुचि-दृष्टि किये बिना ऐसे रोग तूने अनन्त बार। आहाहा! अनन्त भव में अनन्त बार सहन किये।

हे महायश! ऐसी तो उपमा देते हैं। साधु को कहते हैं न, **हे महायश!** यह तूने अनन्त बार सहन किया। अब तो इस आत्मा के आनन्द का अनुभव कर। अतीन्द्रिय

आनन्द का अनुभव कर। अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव और वह अनुभव ही मोक्ष का मार्ग है। इसके अतिरिक्त कोई (मोक्ष का मार्ग नहीं है)। 'अनुभव रत्न चिन्तामणी, अनुभव है रसकूंप, अनुभव मारग मोक्ष का, अनुभव मोक्षस्वरूप।' यह बनारसीदास का कलश (काव्य) है। समयसार नाटक। कहते हैं कि अब तू **हे महायश! हे मुने! इस प्रकार ही सहेगा, बहुत कहने से क्या है ?** देखो! यहाँ भी फिर गर्भावास में उत्पन्न हुए, ऐसी बात बहुत ली है भाव में। समझ में आया? कहो, कैसा अब यह शरीर अच्छा, यह बड़ा अच्छा? जितना बड़ा, उतने अधिक रोग होंगे अँगुली भरे तो कहते हैं। आहाहा!

भगवान आत्मा निश्चय से भगवान देह से भिन्न है। भाई! तूने तेरी कीमत नहीं की। तुझे तेरी कीमत करना नहीं आया, करना नहीं आया। आहाहा! एक गरीब व्यक्ति था गरीब। पहले धनवान होगा गृहस्थ लोक, फिर अमुक निर्धन हो गये। अब ऐसे करते... करते... करते... एक पेटी होगी, यह सन्दूक-सन्दूक। एक पुराना सन्दूक होगा। सन्दूक खोजते-खोजते एक हार निकला, मोती का हार। ऐसे अभी निर्धन हो गये। पहले गृहस्थ और पहले का एक हार पड़ा हुआ कौन जाने पुराने गोदड़ा के नीचे। वह हार बाहर निकाला। मोती का हार था। अब उसने तो हार बाहर निकाला, इसलिए एक व्यक्ति झबेरी तुरन्त मिला, इसलिए सात हजार में माँगा। सात हजार में दे दिया। सात हजार। इसके तो कुछ कीमत नहीं मिलती। और अपने तो गरीब लोगों को सात हजार तो मिले। वह मोती का हार।

दूसरे झबेरी ने देखा कि अरे! यह तो भाई! तेरह हजार में देना है? उस सात हजारवाले को कहता है। तेरह हजार। तीसरे झबेरी ने देखा कि... बीस हजार में देना है? बीस हजार। चौथे झबेरी के यहाँ गया कहे, साठ हजार में देना है। सात से साठ आये। ऐसा मोती का हार। कीमत नहीं। उसे कीमत नहीं थी गरीब व्यक्ति को। वह कहे, हम गृहस्थ थे और कुछ पुराना पड़ा होगा। सात हजार आये तो ऐसे प्रसन्न-प्रसन्न हो गये। परन्तु जिसकी कीमत झबेरी ने साठ हजार दी। देवीदास केवैया कहते थे यहाँ पोरबन्दरवाले। यह हार ऐसा, जिसकी कीमत नहीं, उसने सात हजार में दे दिया। और गृहस्थ ने वापस एक झबेरी से साठ हजार में लिया, साठ हजार में लिया। वह और कितने में बेचेगा?

इसी प्रकार जिसे यह आत्मा अन्दर कौन है, इसकी कीमत नहीं। सन्दूक के नीचे पड़ा है पूरा। गहरा-गहरा शरीर बिना, पुण्य-पाप के भाव रहित अकेला चिदानन्द हार पड़ा है। उसे यह एक विषय पुण्य और पाप में बेच डालता है। जाओ। बहुत तो पुण्य... पुण्य... पुण्य किया न? दया, दान, व्रत किये, ओहोहो! बहुत किया जाओ। बेच डाला परन्तु भाई! तेरी कीमत भगवान कहते हैं कि वह अनन्त पुण्य तू इकट्ठा कर तो भी वह पुण्य से मिले ऐसा नहीं, ऐसी वह चीज़ है।

भगवान आत्मा, जिसकी अन्तर नजर करने से निर्विकल्प दृष्टि करने से प्राप्त हो, ऐसा वह आत्मा है। उसकी कीमत तो बहुत भरनी पड़ेगी। तब वह आत्मा प्राप्त होता है। ऐसा चिन्तामणि तू है और तुझे तेरी कीमत नहीं होती और इन पुण्य-पाप की कीमत। कुछ पुण्य किया तो बहुत किया, पाप किया तो यह किया, हम होशियार थे और यह किया। बापू! शरीर ही दुःख और पापमय है, उसमें तू किसके लिये महिमा करता है? ओहोहो! क्या करना यह? छोटाभाई! ऐसा सुनकर फिर दुकान में निकम्मे हो जाना, कहेंगे। यह रायपुर में फिर....

एक डॉक्टर कहते थे। रतिभाई डॉक्टर है न, यह सर्जन नहीं? बड़े। दो-तीन दिन सुना। ९५ के वर्ष में। तीन दिन। यह महाराज जो कहते हैं, वह यदि सुने और समझने जायें तो इस दुनिया के कहीं निकम्मे हो जायेंगे। दुनिया के निकम्मे, अपने धन्धा कर सकेंगे नहीं। तब यह कहे, यह कहीं कर नहीं सकते। कहा, एक रजकण तीन काल में बदल नहीं सकते। आँख की पलक फिराना ऐसे... ऐसे..., वह तेरे अधिकार की बात नहीं। वह जड़ की क्रिया है।

मुमुक्षु : सुनकर शान्ति बहुत होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : छोटाभाई! उसे लक्ष्य कर तो कहते हैं। वे बालुभाई थे तो बालुभाई को कहते। वे यहाँ बैठते थे। हँसकर सुनते थे, हों! प्रसन्न होकर। आहाहा! ऐसा कोई दिन मर गये पूरी जिन्दगी। कर-करके जिन्दगी व्यर्थ गयी। व्यर्थ ही गयी और... थोथा गया और फिर वापस प्रसन्न हो। कुछ तो प्राप्त किया। पचास लाख मिले, दस लाख मिले, धूल लाख मिले। अब क्या धूल है। यह शरीर ही कहते हैं कि अकेला

दु:ख का पुतला और तू तो निराकुलता सुखस्वरूप है। उसे आत्मा कहते हैं। आत्मा पुण्यवाला नहीं, कर्मवाला नहीं, शरीरवाला नहीं।

मुमुक्षु : व्यवहारनय से।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहारनय से अर्थात् एक समय का जानने के लिये। व्यवहारनय से कहलाता है एक समय की पर्याय। उसका ज्ञान, दर्शन और वीर्य का जो उघाड़ वर्तमान एक समय का है, वह भी व्यवहारनय से आत्मा कहलाता है। आहाहा! निश्चय से आत्मा त्रिकाली अनाकुल आनन्द का कन्द है, उसे आत्मा कहने में आता है। आहाहा! यह उसकी दृष्टि कर तो सम्यक्त्व होगा तो तुझे सुख मिले ऐसा है। वरना सुख कहीं तीन काल में कहीं है नहीं। समझ में आया? लो! एक बोल हुआ।

भगवान **देह से भिन्न निराकुलस्वरूप सुखरूप है,....** अकेला सुख का पिण्ड, सुख से रचित प्रभु आत्मा सुख का सागर, अतीन्द्रिय आनन्द की वह मूर्ति है, अतीन्द्रिय आनन्द से गढ़ा हुआ आत्मस्वभाव है। आहाहा! भगवान अकृत्रिम पदार्थ अनाकुल आनन्द है। उसकी प्रीति और रुचि कर। इस धूल के, पाप के इस दु:खमय शरीर की प्रीति छोड़ दे। आहाहा! देखो न यह कलशा होते हैं झाड़ा झाड़ा। सैंकड़ों झाड़ा। हों, सैंकड़ों झाड़ा (दस्त)। ओहोहो! पालेज में एक बाई को देखा था वह दस-दस मिनिट में, पाव-पाव घण्टे में झाड़ा बेचारी को। गरीब हो गयी कौन जाने, हमारी दुकान के पीछे खड़ी थी। अकेली परन्तु दस्त... दस्त... दस्त...। कोई मनुष्य बहुत न निकले, इसलिए अकेली। दस-दस मिनिट में बैठना पड़े। दस्त चलते जाये। गन्ध मारे दस्त। झाडा समझते हो? दस्त। क्या कहते हैं? टट्टी चलती जाये। अरे! यह तो क्या यह पारेख, मनसुख पारेख थे न भाई। राजकोट। मोटे, उन्हें अन्तिम रोग हुआ। मस्जिद के पास रहते थे और अन्त में दर्शन करने के लिये बुलाया था। परन्तु उसकी खाट थी, बैठते यूँ ही। और तुरन्त बैठे वहाँ एक वह दस्त। यहाँ से यहाँ जाये और यहाँ से ऐसे। सैंकड़ों दस्त और वह गन्ध मारे। गन्ध मारे... मरने की तैयारी थी। ऐसे बैठे थे। ऐसे तो बैठे दस्त परन्तु अब वह दस्त अन्दर से दस्त गन्ध मारे। अब वह सब गन्ध की मूर्ति और गन्ध बिना का भगवान आनन्दकन्द प्रभु, उसकी तुझे श्रद्धा और रुचि नहीं होती और

इसके प्रेम में फँसा। कहते हैं, चौरासी के अवतार में जायेगा। समझ में आया? धर्मचन्दजी! क्या इंजैक्शन से कैसा दु:ख मिटता है? यहाँ कहते हैं कि वह दु:खमय ही है। इस इंजैक्शन से निरोगता हो तो भी निरोगता दु:खमय है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : उसके ऊपर लक्ष्य जाने से....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके ऊपर लक्ष्य जाने से राग होता है और राग, वह दु:खरूप ही है। धूल भी नहीं उसे साधन बनावे धूल में। एक बात।

दूसरी बात। **तीन लोक में जितने पाप हैं,....** तीन लोक में जितने पाप हैं, **उन पापों से शरीर बनाया गया है,....** आहाहा! आचार्य भी दिगम्बर सन्त नागा बादशाह से आघा। नग्न दिगम्बर मुनि आत्मध्यान में मस्त हैं। अरे! तेरा शरीर अकेले पाप ने बनाया है। समझ में आया? कहते हैं, यह पूर्व के तेरे पुण्य और पाप तूने किये, वे पाप ही थे। आत्मा की पवित्रता से विरुद्धभाव था, वह एक वैरी था। उससे वैरी कर्म बँधा और उससे वैरी यह पाप हुआ, यह ले। जयन्तीभाई! आहाहा! गजब बात! वीतराग परमात्मा को दुनिया की कुछ दरकार भी नहीं कि अब थोड़ा भाईसाहेब शिथिल तो करो थोड़ा।

मुमुक्षु : होवे वैसा कहे, उसमें क्या शिथिलता करे? देह में तो नग्नता थी परन्तु भाषा में भी नग्नता आयी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, दिगम्बर सन्त, ऐसी वाणी अन्यत्र नहीं मिलती। मुनियों की वाणी है और अन्तर में तो वह भड़ाक देकर (कहते हैं), तोड़। भगवान आत्मा अमृत का सागर अन्दर विराजता है, उसका प्रेम करता नहीं और इस धूल में प्रेम करके पड़ा है। मरकर कहाँ जायेगा तू? कहो, समझ में आया? बाहर के तो कहीं रह गये, अब यह स्त्री, पुत्र, पैसा, बँगला इसका। हजीरा अर्थात् समझ में आया? मकान।

इसलिए यह देह पापरूप ही है,.... पापों से यह शरीर बनाया गया है, इसलिए यह देह पापरूप ही है,.... आचार्य की कथन की पद्धति दूसरी है। वह कहते हैं कि तेरे आत्मा के पवित्र स्वभाव के अतिरिक्त जितना भाव तूने किया पुण्य-पाप का, वह सब पाप ही था और उस पाप से बना कर्म, वह वैरी है। पुण्य और पाप जैसे वैरी है, वैसे कर्म वैरी है। ऐसा कर्म ने शरीर बनाया, वह भी अकेला पापमय ही है। आहाहा! समझ

में आया? उसका लक्ष्य करके जो तुझे विकल्प उठेगा, वह आकुलतावाला उत्पन्न होगा। आहाहा! समझ में आया?

स्व चैतन्यप्रभु निराकुल भगवान अकेला पवित्रता का धाम, उसकी नजर पड़ने से उसमें एकाग्र होने से तुझे शान्ति मिलेगी। अनन्त काल में नहीं मिले, ऐसा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होगा। शरीर के लक्ष्य से तो राग ही होगा। उसके लक्ष्य से धर्म तीन काल—तीन लोक में नहीं। कहो, अब पैसे से कितना धर्म होता होगा? दान करे, उतना होगा या नहीं? धूल में भी नहीं अब। वह तो अभी राग की मन्दता करे पैसे में तो पुण्य हो। यह तो अभी दुनिया में फुंकाना (प्रसिद्ध होना) है। सामने देकर पचास हजार मैंने दिये, मेरा नाम रखो। बड़ी तख्ती लगाओ पत्थर की। पत्थर की लगाते हैं न? संगमरमर में मेरा नाम रखो। अब वह तो तेरा अकेला पाप है। यह तो कदाचित् कोमलता से दिये हों पचास हजार, राग की मन्दता से, तो पुण्य है। धर्म कहाँ था वहाँ? पैसे में धर्म कब? अरे! साक्षात् भगवान का मन्दिर बनावे। उसके बनाने में भाव हो तो वह पुण्य है; धर्म-बर्म नहीं।

मुमुक्षु : आठ भव में मोक्ष जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : तीन काल में नहीं जाये। आठ भव हमारे कहते थे वे पण्डितजी न, इन्दौरवाले हैं न मुन्नालाल। मुन्नालाल। हमारे २००६ के वर्ष में मन्दिर हुआ न ढाई लाख का, यहाँ राजकोट में। तो वहाँ हमारे तो नाथूलालजी आते थे, हर समय तो इन्दौरवाले। परन्तु उनके घर में स्त्री को दो जीव थे तो नहीं आ सके। तो वे आये। आये तो बड़ा मन्दिर बनाया तो ढाई लाख रुपये का, ऊपर सोने के कलश। सवा लाख रुपये नानालालभाई ने खर्च किये चार भाईयों ने और ढाई लाख। बड़ी धूमधाम। पाँच हजार, छह हजार लोग। इस ओर दिगम्बर बस्ती नहीं, इसलिए यहाँ तो पाँच-छह हजार बहुत कहलाये न! यहाँ कहाँ दिगम्बर बस्ती थी? सब यह लोग आनेवाले श्वेताम्बर। इसलिए लोग ऐसे, ओहोहो! मुन्नालाल कहे, सेठ साहेब! तुम आठ भव में मोक्ष जाओगे। ऐसा मन्दिर बनाया आठ भव में (मोक्ष जाओगे)। ऐसा हम मानते नहीं, हों! नानालालभाई कहे, हम ऐसा मानते नहीं। महाराज इनकार करते हैं। महाराज कहते हैं कि यह मन्दिर

तो मन्दिर के कारण से बने, परन्तु हमारा भाव हो तृष्णा मन्द का (तो) पुण्य होता है। उससे जन्म-मरण मिटे, ऐसा महाराज इनकार करते हैं और हम भी मानते नहीं। नानालालभाई ने इनकार किया कि हम मानते नहीं। यह ढाई लाख का मन्दिर बनाया, सवा लाख डाले और उससे मोक्ष हो जाये। इनकार करते हैं, महाराज इनकार करते हैं।

मुमुक्षु : कोई मन्दिर बनायेगा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन बनाता था? बनने के काल में बने बिना रहता नहीं। कौन बनाता है? आहाहा! समझ में आया? इनको अभी बनाना है। वह तो बनना होगा, तब बनेगा। मलूकचन्दभाई और इनका लड़का क्या करे वहाँ? आहाहा!

कहो, शरीर पाप... पाप। यह दिगम्बर आचार्य की बात। **इसलिए यह देह पापरूप ही है, इससे पाप ही उत्पन्न होता है, और चिदानन्द चिद्रूप....** देखो! ज्ञानानन्द चिद्रूप आत्मा ज्ञानरूप **जीव पदार्थ व्यवहारनय से देह में स्थित है, तो भी देह से भिन्न अत्यन्त पवित्र है,....** वह पाप, यह पवित्र, वह दुःखरूप, (यह) आनन्दरूप। भगवान आत्मा पवित्र, उसे आत्मा कहते हैं, हों! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव आत्मा नहीं, वह आस्रव है। आस्रव आत्मा है? आत्मा नहीं। बराबर है, भाई? जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधता है न, भाव? वह तो आस्रवभाव है। धर्मभाव नहीं। वह आत्मा नहीं, वह आस्रव, वह आत्मा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : परम्परा है या नहीं महाराज?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं परम्परा। ऐसा कहते हैं। समझकर पूछते हैं। परम्परा वह तो उसका अभाव करे, तब वीतराग होता है। तीर्थंकरप्रकृति बँधी, वह जड़ है और शुभभाव आया, वह तो विकार है। उस विकार का नाश करके जब केवलज्ञान प्राप्त किया, तब उस तीर्थंकरप्रकृति का विपाक आया तेरहवें (गुणस्थान में), क्या परम्परा किया? तेरहवें गुणस्थान में उस प्रकृति का विपाक आया, तीर्थंकरप्रकृति का। बाँधी चौथे में, पाँचवें में, छठवें और सातवें में जहाँ बाँधी वहाँ, पाक-पाक आया तेरहवें में। कब? जिस भाव से बँधी, उस भाव का नाश करके वीतराग हुआ तब। वीतराग और केवलज्ञान हुआ, तब प्रकृति का पाक तेरहवें (गुणस्थान में) हुआ। फिर क्या करे

आत्मा को? आहाहा! वह यह भाषा। अब राग तोड़कर, प्रकृति तोड़कर आगे स्थिरता करेगा, ऐसा करके बात की है। बाकी अपने स्वभाव आश्रय बिना तीन काल में कहीं शरण है नहीं। कहो, समझ में आया?

तीन जगत में जितने पाप थे, उतने से देह बना। तब भगवान तो अत्यन्त पवित्र हैं। महा अत्यन्त पवित्र, अत्यन्त पवित्र, उसे हम आत्मा कहते हैं। जिसमें विकल्प की उत्पत्ति की गन्ध जिसकी चीज़ में नहीं। वह अध्धर से, पर्याय में से पुण्य-पाप के विकल्प उठते हैं, वह उसके मूलस्वभाव में नहीं। उसका स्वरूप तो अत्यन्त पवित्र का पिण्ड प्रभु महा आनन्द की, उस आनन्द की खान है, पवित्रता की खान आत्मा है। उसकी दृष्टि कर, उसका विश्वास कर और उसका अनुभव कर तो कल्याण होगा, बाकी कल्याण-फल्याण हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! न्यालभाई!

मुमुक्षु : यह इन्द्रियाँ मिलीं, ज्ञान मिला।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ धूल मिली तो अनन्त बार मिला, उसमें क्या हुआ?

मुमुक्षु : कितना अधिक लाभ हुआ?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या लाभ हुआ? अनन्त बार मिले। यहाँ तो कहते हैं पाप मिला, ऐसा कहते हैं। यह इन्द्रियाँ मिली, यह शरीर के अवयव और शरीर पाप तो उसके अवयव पाप। यह तो सब पाप मिला, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उसका लक्ष्य छोड़कर अपना प्रभु आत्मा अन्दर आनन्दकन्द का लक्ष्य कर, तब तुझे सम्यग्दर्शन होगा, नहीं तो सम्यग्दर्शन होगा नहीं। इसके बिना धर्म की शुरुआत भी नहीं, वहाँ फिर चारित्र-फारित्र कैसा? जिसे आत्मज्ञान और दृष्टि हुई नहीं, उसे चारित्र होता नहीं। कहो, समझ में आया?

तीसरा बोल। दो बोल हुए। अब **तीन जगत में जितने अशुचि पदार्थ हैं,....** तीन लोक में जितने अपवित्र पदार्थ हैं, **उनको इकट्ठेकर यह शरीर निर्माण किया है,....** लाओ उसकी कोई चीज़ कि जो ऐसे मैसूर, मैसूर कहते हैं न मैसूर? पकवान नहीं होता? मैसूर, गुलाबजामुन, लो यह मावा के गुलाबजामुन नहीं होते?

मुमुक्षु : पेड़ा।

पूज्य गुरुदेवश्री : पेड़ा लो। पेड़ा लो। यहाँ डाला साथ में थूँक। यह एक ऐसी मशीन है कि थूँक बनावे। लाओ दूसरी मशीन। थूँक समझे न? लार बनती है। पेड़ा डाला साथ में लार। दूसरी चीज़ में नहीं। चमड़े में उसमें डालो तो तुरन्त लार नहीं हो जाती। यहाँ तो डाला साथ में लार... लार, ऐंठ। और पेट में उतरे, आठ घण्टे में विष्टा। यह मशीन। आठ घण्टे में यह विष्टा की मशीन। दूसरी कोई मशीन विष्टा बनाने की दुनिया में है नहीं। यह मौसम्बी के पानी पिया हो तो पेशाब करना हो तो यह मशीन है एक। मौसम्बी के पानी का पेशाब हो, इसलिए यह मशीन है। मौसम्बी का पानी होता है न? सेर- दो सेर पीवे तो पेशाब हो जाये। दूसरे में चाहे जिस बोतल में डालो तो एकदम पेशाब नहीं होगा ऐसा। आहाहा!

कहते हैं कि यह मशीन ही कोई ऐसी है कि इस मौसम्बी के पानी को दो घण्टे में पेशाब बनावे। मानो बड़ा मैसूर और लड्डू चूरमा का, पेड़ा, पेड़ा मावा का सफेद बादशाह जैसा पेड़ा शक्कर डालकर अन्दर। रुपये की सेर की शक्कर। तुरन्त ही वह तो विष्टा तुम्हारे आठ घण्टे में। ऐसी यह महापापी मशीन है यह। कहो, बराबर? छोटाभाई! लाओ दूसरी मशीन लाओ। किसी डिब्बी में डालो तो सड़ने में देरी लगे, थोड़ी देरी लगे। परन्तु यह एक मशीन ऐसी (कि) एकदम विष्टा। विष्टा बनाना, किसी मशीन से बनती होगी? समझ में आया? विष्टा का हलुवा बनावे अभी। हाँ हाँ। हलुवा समझे? विष्टा का हलुवा बनाते हैं। कहा था।

अभी अमेरिका में गये थे, एक हमारे थे न वढवाणवाले। दादभावाले चुनीलाल गये थे। तो एक पौन मण पूरे टोकरे का विष्टा का पाखाने में से लाये। पाखाने में पड़ी हो न विष्टा। विष्टा समझे न? टट्टी ऐसी पड़ी थी, लाये। उसे कहे तुम्हारे हलुवा खाना है? वह व्यक्ति कहे। हलुवा-हलुवा। हलुवा। हलुवा खाना है? तो लाओ पन्द्रह रुपये लाओ। यह पन्द्रह रुपये में पौन मण हलुवा बना दूँ। तो एक औषधि लाये वे स्वयं। एक औषधि डाली, वहाँ सुगन्ध बदल गयी। दुर्गन्ध मिट गयी। दूसरा जहाँ डाला वहाँ अन्दर से मानो सुगन्ध आने लगी। तीसरी वस्तु जहाँ डाली हू-ब-हू हलुवा। यह बनी हुई बात है। हलुवा ऐसा घी में तला हो। घी में, घी में होता है न ऐसा। घी में तलकर बनाया।

लो भाई खाओ, कहे। अरर्र! परन्तु हम इस विष्टा का हलुवा गरीबों को खिला दो। गरीब व्यक्ति थे न, दे दिया। पन्द्रह रुपये की औषधि। वहाँ औषधि होती होगी। ऐसी कोई औषधि होगी। वहाँ एक, दो और तीसरी डाली, वहाँ हलुवा बन गया। हलुवा सुगन्ध-सुगन्ध मारे अन्दर से। लो, सेठ खाओ। अरर! अभी नजर पड़ी है और विष्टा। पन्द्रह रुपये हुए पौन मण में। ऐसा कैसे करे?

इकट्ठे कर महा अपवित्र जगत के पदार्थ। ऐसे गन्ध मारे। उसके अवयव यह गन्ध... गन्ध... गन्ध... आहाहा! दुर्गन्ध, दुर्गन्ध। एक आदमी विषय लेने गया परस्त्री का। उसमें उसे ऐसी गन्ध मारी, ऐसी गन्ध मारी और एकदम उपाश्रय में आया। हमारे तो बहुत बनते हैं न ऐसे। महाराज! नियम दे दो अब कि अब हमारे परस्त्री (नहीं चाहिए)। कोई ऐसी हल्की बाई होगी और उसे वृत्ति हो गयी और उसमें गन्ध ऐसी मारकर। आहाहा! उस दुर्गन्ध में यह जीव लोभित हो गया। सेठिया व्यक्ति था गृहस्थ। बाई चाहे जो हो तो वे लोग। तुरन्त आया उपाश्रय में कि नियम दो, अब परस्त्री नहीं। वह शरीर दुर्गन्धमय, अपवित्र, यह उसके लिये कहते हैं, प्रेम करके पड़ा। यह भगवान आत्मा कैसा है?

व्यवहारनयकर देह में विराजमान है, तो भी देह से जुदा परम पवित्र है। समझ में आया? वह पाप में। इसमें निराकुल स्वरूप लिया है। पहले में निराकुल स्वरूप सुखरूप लिया था। दूसरे में लिया था वह स्वयं अत्यन्त पवित्र लिया। इस तीसरे में भी परम पवित्र लिया। इतनी बात। परम पवित्र भगवान। देखो! यहाँ विशिष्टता तो यह कहते हैं कि शरीर, वाणी, कर्म, आत्मा तो नहीं, परन्तु जिस भाव से दया, दान पले पंच महाव्रत के परिणाम, वह आत्मा नहीं। वह आस्रव, वह पाप, वह अशुचि, दुःखरूप— ऐसा कहकर डालते हैं। ऐसे दो भाग करते हैं। आहाहा! दिगम्बर सन्तों की कथन की पद्धति कठिन... कठिन जगत को लगे। श्रीमद् ने लिखा है न? नहीं? दिगम्बर के वचनों के कारण, तीव्र वचनों के कारण रहस्य कुछ समझा जा सकता है। श्वेताम्बर की शिथिलता के कारण रस ठण्डा हो गया। ऐसा वचन है। ढीला पड़ता गया ढीला। यह उग्र वाणी सन्तों की महान पुरुषार्थवाली आत्मा को प्रेरित करे, जगा दे, ऐसी वाणी।

जाग रे जाग भगवान! अब तुझे सोना पोसायेगा नहीं।

चिदानन्द प्रभु, इस शरीर से व्यवहार से रहा है, ऐसा कहते हैं। कहते हैं निमित्त देखकर। भगवान उससे परमार्थ से तो अत्यन्त भिन्न है। उससे भिन्न तो अब यह बाहर की धूल और पैसा और बँगला कहीं रह गया तेरा। भगवान आत्मा, उस अशुचि के बने हुए शरीर से अत्यन्त भिन्न पवित्र प्रभु है, त्रिकाल भिन्न है। ऐसे भगवान की दृष्टि करना, उसका अनुभव करना, यह इसका नाम धर्म और शान्ति है। इसके बिना धर्म कभी बाहर के कारण से होता नहीं। कहो, समझ में आया?

इस प्रकार देह का और जीव का अत्यन्त भेद जानकर निरन्तर आत्मा की भावना करनी चाहिए। हेतु तो यह है, भाई! पाँच, पच्चीस, पचास वर्ष रहे ऐसा शरीर और अनन्त काल रहना आत्मा को। ऐसे संयोग अनेक बार आये और गये। दृष्टान्त दिया है न! बड़ी सड़क हो सड़क। सड़क कहते हैं न? क्या कहते हैं? रोड, रास्ता। तो सड़क के ऊपर हजारों वृक्ष हों वृक्ष और ऐसे सूर्य की छाया पड़ती हो छाया। एक व्यक्ति उसे उल्लंघकर ऐसे जाता हो तो व्यक्ति तो वह का वह है और वह छाया अलग-अलग प्रकार की सड़क के ऊपर। इसी प्रकार आत्मा वह का वह है। वह ऐसे छाया के शरीर को उल्लंघ-उल्लंघकर एक, दूसरा, तीसरा, ऐसे अनन्त छाया को उल्लंघ गया।

मुमुक्षु : उसे ही साफ किया करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे फिर साफ (करे)। वह तो अनुभवप्रकाश में डाला। एक मिले उसकी झोंपड़ी को साफ किया करे। यह करूँ और यह करूँ और यह करूँ। पूरा हो वहाँ जाये दूसरा वापस। वहाँ दूसरा साफ करे। कर-करके हैरान हो गया, मर गया। अनुभवप्रकाश में है। एक-एक शरीर की झोंपड़ी को व्यवस्थित रखने में मर गया, मथ गया ऐसा का ऐसा। यह जेल में नहीं होता? कैदी होती हैं न कैदी? उसे एक कोठरी देते हैं। फिर कितने ही ऐसे होते हैं कि वहाँ जेल में ही उन्हें मजा आवे। दो वर्ष का पूरा हो तो कहे, ऐ... मेरा घड़ा। घड़ा होता है न पानी का, बिगाड़ना नहीं। मैं अभी दो दिन में वापस आता हूँ। गुनाह करके वापस आऊँगा, ऐसा कहे। और मुझे पानी का घड़ा हो, और वह लेने न जाना पड़े कुम्हार में से, इसलिए वहीं का वहीं साफ-सूफ किया हो

नीचे, चूहे आनेवाले हों उसमें पत्थर डाले हों, छाण-बाण किया हो, सब कोठरी साफ की हो। अब वह गुनाह करके यहाँ आया और यहाँ पूरा हो तो भी फिर कहता जाये। इस कोठरी को दूसरा बिगाड़ना नहीं। क्यों? कि मैं तो दो-तीन दिन में अभी एक गुनाह करके वापस यहाँ आनेवाला हूँ। पाप करके गुनाह यह चोरी गुनाह करके वापस इस कोठरी में, जेल की कोठरी में आनेवाला हूँ, इसलिए कोई मेरा यह घड़ा बिगाड़ना नहीं।

मुमुक्षु : यह जेल की कोठरी?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह जेल की कोठरी है। यह मेरी जेल की कोठरी एक हो गयी फिर दूसरी तैयार रखना। तैयार रखना, हों! अभी मैं गुनाह करके ही आता हूँ। आहाहा! पुण्य और पाप के गुनाह करे और एक शरीर और दूसरा शरीर मिले बिना रहे नहीं। गुनाहगार... गुनाहगार... गुनाहगार। यह १५० हुई।

★ ★ ★

गाथा - १५१

१५१। **आगे फिर भी देह को अपवित्र दिखलाते हैं—**

२८२) जोइय देहु घिणावणउ लज्जहि किं ण रमंतु।
णाणिय धम्में रइ करहि अप्पा विमलु करंतु॥१५१॥

आहाहा! देखो तो सही!

हे योगी!... हे धर्मी! हे जीव! **यह शरीर घिनावना है,....** घिनावना। घृणा... घृणा उपजे ऐसा। आहाहा! एक व्यक्ति था। हम गये गाँव में। उसका शरीर गधा गन्ध मारे गधा। गधा गधा कहते हैं न? ऐसा गन्ध मारे। खाट में सोया हुआ। ऐसे गये। ऐसा गन्ध मारे। मांगलिक सुनाओ, कहे। परन्तु मांगलिक सुनाऊँ इतना गन्ध मारे। बहू-स्त्री कहे यह महाराज (आये हैं)। गाँव में गये गाँव छोटा। दो-तीन घर थोड़े पाँच-सात घर। वावड़ी, वहाँ गये तो कहे महाराज आये हैं, हों! अपने हाथ जोड़कर ब्रह्मचर्य लें। वह कहे आज नहीं। शरीर देखो तो गन्ध मारता था। यह सड़ गया कलेजा, यह सब। गधा सड़े वैसा सड़ गया। परन्तु कहे आज नहीं, हों! परन्तु कल यह महाराज नहीं रहेंगे।

क्योंकि यह गाँव है। यहाँ तो रहे (नहीं)। एक दिन आये हैं।

वहाँ रात्रि में हमने सुना। वहाँ रात्रि में वह मर गया। उसी रात्रि में। आहाहा! अन्दर से कौन जाने ऐसा सड़ा और अच्छा हो जाये तो? महाराज तो आये और स्त्री कहती है ब्रह्मचर्य ले लेवें। परन्तु कदाचित् खड़ा होऊँ तो? अरे! परन्तु विश्वास कितना? सड़ गये हुए शरीर का विश्वास और पवित्र भगवान त्रिलोकनाथ अनादि रहनेवाले का विश्वास नहीं। स्त्री ने कहा, यह महाराज आये हैं अपने गाँव, कल सवेरे तक रहेंगे। क्योंकि वहाँ नौ बजे जायेंगे। एक दिन रहा जाता है। गाँव में तो निर्दोष आहार लेते थे न? हमारे लिये बनाया हुआ लें नहीं कभी कहीं। गाँव में कोई पाँच-सात घर हों। हमारे लिये बनाया हो पानी परन्तु एक बूँद न लें। पानी की बूँद हो बनायी हो तो बूँद न लें। पूरे दिन पानी बिना (रहें)। ऐसा तो बहुत वर्ष किया है न। उस समय तो माना था न। पानी, आहार बिल्कुल (हमारे लिये) बनाया हुआ न लें। इसलिए कहे, यह महाराज कल यहाँ नहीं रहेंगे। यह तो एक दिन आये और अनजाने आये और अनजाने आहार लेकर चले जायेंगे कल। कल बात, कल बात। आहाहा! अरे! इस सड़ गये हुए शरीर का इतना विश्वास कि कल रहेगा और यह पवित्र पिण्ड नित्यानन्द प्रभु, कायम टिकती चीज़ की सम्हाल करूँ, उसकी खबर नहीं। तब रात्रि में सोते हुए सुना ग्यारह, साढ़े ग्यारह, बारह। वह चिल्लाहट आयी। शोर-चिल्लाहट की। कोई मरे तब रोवे न जोर से रोना-पीटना? मर गया कहे। आहाहा! दुनिया की ममता, वह ममता। अभी और कोई अच्छा हो गया तो? अच्छा होकर चलूँ तो और। उम्र भी हो गयी होगी ६० की, हों!

कहते हैं कि हे जीव! **यह शरीर घिनावना है, इस देह से रमता हुआ तू क्यों नहीं शरमाता?** आचार्य जरा उलहाना ऐसा देते हैं। जैसे पिता, पुत्र को कहे न, अरे पुत्र! यह बनिया होकर यह तू वाघरी के घर में जाता है, भाई! हमें शर्म आती है, हों! पिता कहें, हों! वाघरी-वाघरी समझते हो? वह हल्की जाति होती है न? दाँतुन-दाँतुन देती (बेचती) है। वह हल्के लोग। वह यह मेरा पुत्र होकर तू वाघरी के घर में जाता है, भाई! मुझे शर्म आती है, हों! दुकान में बैठते हुए, कि तेरा लड़का ऐसा। मुझे शर्म

(आती है) भाई! मेरे लिये तो छोड़। यहाँ मुनि कहते हैं कि हे आत्मा! यह शरीर घृणावाला दुर्गन्ध का पुतला, तुझे इसके साथ रमते हुए शर्म नहीं लगती? लज्जा नहीं आती? आहाहा! समझ में आया?

हे ज्ञानी! तू आत्मा को निर्मल करता हुआ धर्म से प्रीति कर। यह सड़ा हुआ शरीर, इसमें प्रीति करता है। यहाँ तो मुनि को लक्ष्य कर बात और सबको लक्ष्य करके है न बाद में? भाई! यह सड़ गया हुआ शरीर, इसमें प्रीति करेगा? भाई! भगवान अन्दर पवित्र धाम है न, वह सिद्ध भगवान में विराजता है, वैसा तू सिद्ध है। शक्ति से, सत्त्व से, द्रव्यस्वभाव से सिद्ध समान। तीनों काल सिद्ध समान है। ऐसे परमात्मा के प्रति तू भेंट करता नहीं, उसके साथ रमता नहीं, अर्थात् एकाकार होता नहीं अर्थात् कि सम्यग्दर्शन करता नहीं और तू इसके साथ इस सड़े हुए के साथ प्रेम करता है, भाई! लज्जा नहीं आती? देखो, क्या कहते हैं? '**लज्जहि किं ण रमंतु**' उस योगसार में आता है न, भाई? यह जन्म-मरण। 'शर्मजनक जन्मो मिटे।' वह यह शर्मजनक। यह जन्म करना, वह शर्म... शर्म... शर्म है। योगसार में आचार्य कहते हैं, हों! और यह योगीन्द्रदेव हैं। यहाँ लज्जा आयी न, वहाँ भी लज्जा कहा है। यह शर्मजनक, यह भव करना, यह शर्म नहीं आती? अकेला भगवान निराला, उसे इस चमड़े के शरीर को लिपटाना, साथ में करना है। भगवान पवित्रता का पिण्ड उसे यह सड़ा हुआ शरीर लेना है तुझे साथ में? लज्जा नहीं आती? शर्म नहीं आती? आहाहा! निर्लज्ज हो गया है क्या तू?

भगवान आत्मा की अन्तर स्वभाव की प्रीति की रुचि छोड़कर, भगवान! सड़े हुए शरीर के प्रति रमना, विषय में, भोग में एकाकार होना, भगवान! तुझे लज्जा नहीं आती? समझ में आया? यह क्या कहे? आहाहा! कहा था न? हमारे एक लड़के की बात नहीं थी? हमारे गृहस्थाश्रम में। पढ़ते थे तब लड़का था एक भावसार सुन्दरजी। भावसार जाति नहीं होती? भावसार। वह कपड़े रंगते हैं न कपड़े? वह भावसार था। सुन्दरजी नाम था। स्थानकवासी जैन थे। यह बात तो ६२-६३ वर्ष पहले की है। हमारी बारह-तेरह वर्ष की उम्र थी। तब वह साथ में बैठा था। गुँगा निकाल कर... गुँगा कहते हैं न, क्या कहते हैं? नाक का मैल। मैल निकालकर दो दाँत के बीच में दबावे। दबाकर

फिर जीभ छुआवे उसे। अरे! सुन्दरजी! क्या करता है तू यह? उसकी जाति भावसार। भावसार नहीं? जाति भावसार। नात समझे न? जाति। और नाम सुन्दरजी। बराबर उस लड़के का नाम था। हम साथ में पढ़ते थे। हम कहें कि... परन्तु हम यह बैठे हैं और तू क्या करता है यह? गुँगा निकालकर दाँत के नीचे रखे और अन्दर जीभ छुआवे। फिर कहे, अरे भाई! मुझे आदत पड़ गयी है। कौन जाने स्वाद लेने की, गुँगा के स्वाद की आदत पड़ी है। जैचन्दभाई! और जहाँ पाव घण्टा हो, और निकाले दूसरा इतना बड़ा। परन्तु यह तू क्या करता है यह?

मुमुक्षु : नाक में से ऐसे निकला ही करते होंगे?

पूज्य गुरुदेवश्री : छोटे लड़के होते हैं, इसलिए निकले। बालक हों इसलिए। यह सुन्दरजी नाम। इसी प्रकार भगवान आत्मा भावसार है। अकेला अनन्त ज्ञान का पिण्ड भाव का सार है और है सुन्दर पवित्र। परन्तु वह विकार के—पुण्य-पाप के गुंगा निकालकर और उनका स्वाद लेना उसे। आहाहा! यह पुण्य-पाप के भाव निकालकर, जो उसमें नहीं, हों! अध्धर से गुँगा निकालकर स्वाद लेना है। लो, उसका नाम गुँगा और इसका नाम गु—विष्टा। आहाहा! कहते हैं, भगवान! ऐसा पवित्र प्रभु! तुझे इस शरीर का प्रेम करते हुए तुझे शर्म नहीं आती? शरीर के साथ रमना, प्रेम करना, मुर्दे के साथ सगाई की, अब करूँगा विवाह। शर्म नहीं आती? मुर्दे के साथ सगाई? सगाई कहते हैं न? क्या कहते हैं? सगाई कहते हैं। अनुभवप्रकाश में आया है। यह सब शब्द शास्त्र में पड़े हैं। सगाई कही मुर्दे के साथ, अब कल विवाह करूँगा। लग्न समझे? शादी। इसी प्रकार इस जड़ के साथ सगाई करके इसके साथ रमते हुए, अरे! निर्लज्ज! तुझे लज्जा नहीं आती? दिगम्बर आचार्य महा सन्त वैराग्य के लिये उलाहना कहते हैं। ओलंभा देते हैं ओलंभा। भाई! इस पवित्र प्रभु को जिसके साथ तू रमाता है। उसमें रमने की चीज़ अन्दर पड़ी है न तेरे पास। उसकी दृष्टि कर और उसमें एकाग्र हो। यह तुझे लज्जा नहीं आती? ऐसा कहकर ओलंभा देकर उसे वीतराग शान्ति में जोड़ने के लिये यह बात करते हैं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आषाढ़ कृष्ण ६, सोमवार, दिनांक - १९-०७-१९६५
गाथा - १५१ - १५२, प्रवचन - १७४

परमात्मप्रकाश, १५१ गाथा, इसका भावार्थ है। शब्दार्थ तो थोड़ा (हो) गया था। हे आत्मा! तेरा अन्तर परमात्मपद छोड़कर तुझे यह देह जो अपवित्र, उसमें रमने की लज्जा नहीं आती? ऐसा सम्बोधन किया है। कहो, एक ओर भगवान आत्मा परमात्मस्वरूप को भूलकर, जिसमें रमना चाहिए, जिसमें एकाग्र होकर आनन्द लेना चाहिए कि जो पवित्र स्वरूप है, उसे छोड़कर यह देह अपवित्र, उसमें तू प्रीति करके रमता है, क्यों लज्जा नहीं आती? '**किं न लज्जसे**' लज्जा नहीं आती? अरे! यह पेड़ा छोड़कर विष्टा खाता है। ऐसा नहीं कहते लोग? पेड़ा कहते हैं न? पेड़ा। उसे हमारे (गुजराती में) पेंडा कहते हैं। पेंडा और पेड़ा। पेड़ा मक्खन के ऐसे भैंस के दूध के मावा के उसे छोड़कर तू यह विष्टा खाता है। कौवा विष्टा खाता है, देखो! इसी प्रकार यहाँ आचार्य महाराज योगीन्द्रदेव (कहते हैं), अरे आत्मा! तेरा परमात्मरूप, उसे छोड़कर यह जड़ दुःखमय, पापमय अशुचि, दूसरी बात तो कहीं रह गयी, उसमें तुझे रमने में लज्जा नहीं आती?

हे जीव! देखो, पाठ में शब्द 'धर्म' पड़ा है। '**णाणिय धम्में रइ करहि**' ऐसा पाठ में शब्द पड़ा है। इसका अर्थ क्या करते हैं? देखो (भावार्थ) : **हे जीव! तू सब विकल्प छोड़कर वीतरागचारित्ररूप निश्चयधर्म में प्रीति कर।** देखो, धर्म की व्याख्या ही निश्चयधर्म है। धर्म अर्थात् जो प्रवचनसार में शुद्ध उपयोग, साम्यभाव, निश्चयचारित्र, निश्चयधर्म (कहा), उसे यहाँ धर्म कहा जाता है। समझ में आया? देखो, अर्थ कैसा किया? '**णाणिय धम्में रइ करहि अप्पा विमलु करंतु।**' जो आत्मा को निर्मल करे, ऐसा भगवान आत्मा का चारित्र धर्म। यहाँ चारित्र अर्थात् धर्म और धर्म अर्थात् चारित्र अर्थात् वीतरागी चारित्र। पंच महाव्रत आदि के परिणाम को, देखो, यहाँ याद भी नहीं किया। समझ में आया?

वीतरागचारित्ररूप निश्चयधर्म में... देखो, यहाँ मुनि बात करते हैं और वर्तमान पंचम काल के प्राणी को कहते हैं कि इस वीतरागचारित्रधर्म में प्रीति कर, उसमें रह। अभी तो कोई कहे कि चौथे से सातवें (गुणस्थान) तक व्यवहार है। निश्चयधर्म तो अभी नहीं, ऐसा कहते हैं। यहाँ तो पहली बात पंचम काल के मुनि, पंचम काल के जीव को कहते हैं। वह अभी के यह तो। यह तो ८००-९०० वर्ष पहले (हुए हैं)।

भाई! तू आत्मा है, परमात्मा। परमात्मप्रकाश है न? परमात्मा—परम-आत्मा अर्थात् परमस्वरूप है। अर्थात् एक समय की दशा भी नहीं, राग तो नहीं, निमित्त तो नहीं, परन्तु दशा भी नहीं। परमस्वरूप भगवान पूर्ण शुद्ध द्रव्य। जिसमें तेरी नजर पहुँचने से वह निधान खिले, ऐसा तेरा स्वभाव, वह स्वभाव। स्वरूप में एकाग्र होने का उसका स्वभाव है। विकार होने का उसका कोई गुण या स्वभाव नहीं। संसार होने का कोई गुण नहीं द्रव्य-गुण में। वह पर्याय में खड़ा करता है। समझ में आया? और इस स्वभाव में एकाग्र होना, ऐसा उसका गुण है। समझ में आया? क्योंकि स्वयं वीतरागस्वरूप आत्मा है, इसलिए उसमें एकाग्र होना, ऐसी वीतरागी पर्याय तो उसका वह स्वभाव है, वह स्वभाव है। समझ में आया इसमें? राग होना इसका कोई, द्रव्य-गुण ऐसा कोई गुण नहीं। यदि गुण हो, तब तो राग सदा ही हुआ करे। विकार तो एक समय की पर्याय में विकृत योग्यता के कारण से होता है पर्यायधर्म में। द्रव्य-गुण का धर्म कोई ऐसा विकार होने का नहीं है। समझ में आया?

आत्मा में द्रव्य और गुण में कोई विकार होने की ऐसी कोई शक्ति उसमें नहीं। पर्याय में ऐसी शक्ति है मात्र योग्यता। एक समय की पर्याय में संसार खड़ा करता है। और भगवान आत्मा यहाँ कहते हैं कि तेरा स्वभाव ही वीतरागी विज्ञानघन है। स्वभाव है तो उसमें स्थिर होकर वीतरागी पर्याय हो, वह तो तेरा स्वरूप है। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें? **वीतरागचारित्ररूप...** भाषा प्रयोग की, देखा न? है न अन्दर में यह, भाई! '**निश्चयधर्मशब्दवाच्येन वीतरागचारित्रेण कृत्वा रइ करहि रतिं प्रीतिं कुरु।**' देखो, आहाहा! अरे! तेरा प्रेम शरीर लूट जाता है, राग की क्रिया लूट जाती है, तेरे स्वभाव को छोड़कर। भाई! तुझे लज्जा नहीं आती? आहाहा! सन्तों को करुणा का

विकल्प है यह कि भाई! प्रभु! तेरा पवित्र धाम है न बड़ा। उसे छोड़कर यह कृत्रिम, अशुचि, पापमय शरीर के अवयव और उसकी सुन्दरता में तू मोहित हुआ, परन्तु भगवान के अवयव, भगवान आत्मा के अवयव तो अनन्त गुण हैं। अवयव होंगे आत्मा को? आत्मा अवयवी और उसके गुण उसके अवयव। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह आत्मा को होता है। शास्त्र में कहा है कि अनन्त गुण और पर्याय उसके अवयव हैं, भगवान अवयवी है। आहाहा!

कहते हैं कि इसका एक-एक अवयव सुन्दर देखकर तुझे अन्दर लालच हो जाये, परन्तु इस भगवान का एक-एक गुण का अवयव, अनन्तगुण का रूप, वह अवयवी और एक-एक गुण, वह उसका अवयव। एक-एक गुण का अवयव, उससे प्रीति नहीं करता और यह एक सुन्दर, यह धूल, इस शरीर को, यह इन्द्रियाँ और फलाना (इसमें प्रीति होती है), ऐसा कहते हैं मूल तो। पूरा रूप एक-एक अवयव में तेरी प्रीति, भगवान पूरा अवयवी अनन्त गुण का पिण्ड, उसमें तुझे प्रीति और रुचि नहीं होती? प्रभु! क्या होगा तेरा? ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहते हैं, यह धर्म का अर्थ निश्चय आत्मा की वीतरागी पर्याय। न्यालभाई! यह गजब बात परन्तु! यह तो व्यवहार पंच महाव्रत और बारह व्रत, वे कहाँ गये? वह विकल्प आवे, परन्तु वह धर्म नहीं। उसे यह निश्चयधर्म हो तो ऐसे पंच महाव्रत या बारह व्रत को उपचार धर्म, आरोपित धर्म, व्यवहारधर्म अर्थात् कि धर्म नहीं और धर्म व्यवहारनय कहता है। समझ में आया?

आर्त-रौद्र आदि समस्त विकल्पों को छोड़कर... भगवान आत्मा का जो स्वभाव, उसकी रुचि करके स्थिर हो, ऐसा चारित्रधर्म। उस चारित्रधर्म का कारण तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान, परन्तु धर्म वह। है न सूत्र? यहाँ है न अपने देखो। '**दंसण मूलो धम्मो**' है न सामने बड़े अक्षर? यह कुन्दकुन्दाचार्य का सूत्र है। नाम नीचे लिखा है? दर्शनपाहुड़। यह दर्शनपाहुड़ का सूत्र है। '**दंसण मूलो धम्मो**' अर्थात् कि धर्म का मूल दर्शन। धर्म चारित्र, धर्म वीतरागी परिणामरूप चारित्र, उसका मूल सम्यग्दर्शन। कितने ही फिर ऐसा कहते हैं अभी। भाई! धर्म का मूल सम्यग्दर्शन न? सम्यग्दर्शन धर्म तो नहीं न?

इसलिए धर्म तो चारित्र। चारितं खलु धम्मो आता है न! यह लेख में ऐसे लेख ऐसे आते हैं अभी, बहुत लेख ऐसे। परन्तु मूल अभी सम्यग्दर्शन तो वह महान धर्म जो अनन्त काल में नहीं प्रगट हुआ वह। परन्तु धर्म यहाँ चारित्र का धर्म गिनना है। क्योंकि चारित्र, वही मुक्ति का कारण है। खास वीतरागी पर्याय, चारित्र साक्षात् मोक्ष का कारण है। वह चारित्र, सम्यग्दर्शन-ज्ञान बिना होता नहीं। इसलिए चारित्र को धर्म गिना और चारित्र का मूल गिना सम्यग्दर्शन। '**दंसण मूलो**' यह दर्शन किसका मूल? चारित्र का।

मुमुक्षु : (चारित्र) होवे वहाँ दर्शन और ज्ञान होते ही हैं न।

पूज्य गुरुदेवश्री : होते ही हैं, परन्तु कौनसा चारित्र? ऐसा कि दर्शन हो, इसलिए यह व्रत लेते हैं, वह चारित्र है, वहाँ दर्शन हो ही, ऐसा। है न? दलील करते हैं। ऐसा है। पत्र में आता है कि जहाँ व्रत, पंच महाव्रतादि लिये, बारह व्रत लिये, वहाँ चारित्र है इसलिए सम्यग्दर्शन तो होता ही है न उसे? आहाहा! अरे... परन्तु कहाँ? कहाँ का कहाँ परन्तु भटका और भूल करता है न!

मुमुक्षु : पत्ते में से मूल होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पण्डितजी तो बराबर कहते हैं। पत्तों में से मूल हो। ठीक कहते हैं। बराबर है। मूल में से पत्ते हों, परन्तु पत्तों में से मूल? दृष्टान्त बराबर है। समझ में आया? आहाहा! आम आदि आँबा होता है न? आँबा। उसके फल बड़े। अब उसे पुष्टि देनी हो तो वहाँ आम के ऊपर पानी डाले? पानी वहाँ डाले? जल-जल। उसके मूल में पानी डाला जाता है। अथवा नारियल लो। ऊपर नारियल होता है न। अब उसमें पानी डालना हो तो ऊपर नारियल के ऊपर पानी डाले? वह नीचे पीने डाले तो वहाँ एकदम चढ़ जाये। नीचे पानी डाले न नारियल में। जिसे प्यास लगी हो और पानी चाहिए हो, ऐसे बड़े नारियल के ... वहाँ बाहर पानी साफ हो दूसरा। इसलिए दूसरा पानी चाहे जैसा मैला डाले न उसमें। अच्छा पानी वहाँ तुरन्त ही चढ़ जाये उस नारियल के अन्दर। फोड़कर पानी पीवे। नारियल के ऊपर डाले तो? उसी प्रकार चारित्र का मूल तो सम्यग्दर्शन है। उस मूल को एकाग्र हुए बिना चारित्र कभी प्रगट होगा नहीं। कहो, समझ में आया?

यह क्या कहते हैं ? देखो, कहते हैं अरे ! **समस्त विकल्पों को छोड़कर आत्मा को निर्मल करता हुआ...** पाठ है सही न, '**अप्पा विमलु करंतु।' वीतरागभावों से प्रीति कर।** भगवान आत्मा जिसमें पहली सम्यग्दृष्टि, वह भी वीतराग है; सम्यग्ज्ञान, वह वीतराग है; चारित्र, वह वीतरागभाव है। और उस चारित्र से पहले दर्शन और ज्ञान होते हैं, इसलिए यहाँ चारित्र की प्रधानता मुक्ति के कारण में देने के लिये निश्चय धर्म को, हे आत्मा ! तू कर। और उस द्वारा तू आत्मा निर्मल होगा। ऐसा सिद्धान्त कहकर अर्थात् चारित्र से पहले दर्शन-ज्ञान होते हैं, उस चारित्र से तेरा आत्मा निर्मल होगा। व्यवहाररत्नत्रय से निर्मल नहीं होगा, ऐसा उसमें कहा जाता है। समझ में आया ?

उन गेंदालाल ने दृष्टान्त दिया है अभी, नहीं ? वर के साथ वह वाणंद हो। वाणंद को क्या कहते हैं ? नाई-नाई। नाई होता है न वर के साथ। वर अर्थात् दूल्हा। उसके साथ एक उसका नाई होता है। भेजे हों, बारात में ले जाये। इसलिए कहीं उसे कन्या देते होंगे ? कि मैं सब इसे करता हूँ। मैं हजामत करता हूँ, इसे नहलाता हूँ, पीठी लगाता हूँ, पैर दबाता हूँ। कितना। यह तो मैं हूँ तो यह है। इसलिए मुझे परणाओ, यह कहे तो ? न्यालभाई ! इसी प्रकार व्यवहाररत्नत्रय साथ में विकल्प है, वह तो नाई की तरह है। सुन न ! ऐसा दृष्टान्त दिया था, हों ! इस बार भाई नहीं वह क्या कहलाता है ? सन्मति सन्देश। सन्मति सन्देश में दृष्टान्त ऐसा आता है। क्योंकि उसने उन बाबूभाई का दृष्टान्त सुना होगा न वहाँ। अब बदला। अब फिर उसे आया दूसरा दृष्टान्त लेना। बाबूभाई तो यह दृष्टान्त यह देते हैं कि वर और अणवर। अणवर तो कहना साथ में। वर हो, उसके साथ अणवर कहलाता है, परन्तु कहीं अणवर को कन्या मिले ? वह तो ऐसा का ऐसा धोये हुए मूला की भाँति चला जाये। मिले उसको (वर को)।

इसी प्रकार आत्मा वीतरागी श्रद्धा, वीतरागी ज्ञान और वीतरागी चारित्र करे, उसे केवलज्ञान परणे, उससे केवलज्ञान आवे, उस व्यवहाररत्नत्रय से नहीं। यह तो देखकर चला जाये, समाप्त हो गया। उसका तो अभाव होता है। कहो, समझ में आया इसमें ? इसलिए आचार्य महाराज योगीन्द्रदेव ने भगवान जैसा काम किया है ! दिगम्बर मुनि अर्थात् आहाहा ! धर्म के स्तम्भ ! उसे ऐसा कहे। शुरु की है बात '**णाणिय धम्में रइ**

करहि' अरे, ज्ञानी! तू वीतरागचारित्र में प्रीति कर न, स्थिर हो न! आहाहा! परन्तु महाराज! पहला व्यवहार तो कहो, पहला व्यवहार कहो। भाई! वह व्यवहार अर्थात् राग। तुझे राग से क्या है?

मुमुक्षु : क्या प्रयोजन है?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या प्रयोजन है उससे? कहो, यह आया न सर्वविशुद्ध अधिकार में अन्त में। यह आत्मा आत्मा का है, ऐसा व्यवहार भेद करके तुझे क्या सिद्ध करना है? व्यवहार तो एक ओर गया, निमित्त तो एक ओर डाला, ज्ञायक-ज्ञायक का है। यह आता है न? पण्डितजी! चेतयिता चेतयिता का है। यह सर्वविशुद्धि (ज्ञान) अधिकार में। सेटिका-सेटिका (की गाथा ३५६ से ३६५ में आता है) चेतयिता चेतयिता का है। वह सेटिका सेटिका की है, उसी प्रकार चेतयिता चेतयिता का है। ऐसा जब प्रश्न हुआ, तब गुरु कहते हैं, परन्तु चेतयिता चेतयिता का है, (ऐसे) दो अंश का तुझे क्या काम है? प्रयोजन क्या है? चेतयिता चेतयिता का है। आत्मा आत्मा का है, ज्ञायक ज्ञायक का है। ऐसे भेद पाड़कर तुझे काम क्या है? उसमें तुझे किस प्रयोजन की सिद्धि होगी? व्यवहार विकल्प से तो प्रयोजन सिद्धि नहीं, निमित्त से तो सिद्धि नहीं, यह ज्ञायक चेतयिता चेतयिता का, कलई कलई की है, यह अंश-अंशीभाव ऐसे भेद पाड़कर तुझे क्या काम है? आहाहा! देखो न, कहाँ तक ले गये हैं! सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार। आहाहा!

भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप वह ज्ञायकस्वरूप ही है। उसमें और ज्ञायक का ज्ञायक और उसका एक स्व और एक स्वामी, ऐसा भेद पाड़कर विकल्प उठते हैं। उसमें कहीं तेरा प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। ऐसा वहाँ रखा है अमृतचन्द्राचार्य ने। समयसार के तो एक-एक श्लोक, गाथा के अर्थ ही कोई अलौलिक जाति (की) बात!! अब यहाँ (अज्ञानी) कहते हैं कि वह व्यवहार हो तो होता है। यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा आत्मा का, ऐसा भेद पाड़ तो विकल्प है। उसमें से कुछ सिद्धि होती नहीं। समझ में आया? आहाहा!

निर्मल करता हुआ... भगवान आत्मा वीतरागी विज्ञानकन्द है। उसे वीतरागी

पर्यायरूप चारित्र द्वारा निर्मल होता आत्मा पूर्ण परमात्मपद को प्राप्त करता है। परमात्मा है, उसकी प्रीति, एकाग्र होकर पूर्ण परमात्मा को पर्याय में पाता है। यह तीन प्रकार लिये। वस्तु परमात्मा है द्रव्य। उस द्रव्य की वीतराग पर्याय, वह कारणपर्याय है। किसकी? उस कार्य की, मोक्षमार्ग की। उस पर्याय द्वारा कार्य पूर्ण परमात्मा होता है। कारण में से कार्य होता है, परन्तु यह साधकपना प्रगट करे तो। समझ में आया? लोगों को इतना निरालम्ब कठोर लगता है। यह बात वहाँ पूरी हुई, देखो, १५१।

★ ★ ★

गाथा - १५२

१५२। **आगे देह के स्नेह से छुड़ाते हैं —** यह १५२।

२८३) जोइय देहु परिच्चयहि देहु ण भल्लउ होइ।
देह-विभिण्णउ णाणमउ सो तुहुँ अप्पा जोइ॥१५२॥

हे योगी! इस शरीर से प्रीति छोड़,... 'परित्यज' शब्द है न? छोड़ना अर्थात् क्या कहीं शरीर छोड़ना है? उसकी एकाग्रता छोड़, प्रभु! यह शरीर मिट्टी का पिण्ड, हड्डियों का पिण्ड, चमड़ी और माँस का लोचा है। तू तो आनन्द का-आनन्द का कन्द प्रभु है। आहाहा! उसकी एक बार प्रीति तो कर, उसका प्रेम तो जगा। भगवान आनन्द की मूर्ति है। यह शरीर माँस, हड्डियाँ और अकेला कृमि जाल पिण्ड है। उसमें '**परित्यज**' अरे! उसकी प्रीति तो छोड़। यहाँ छोड़ तो यहाँ (आत्मा में) जायेगी, यहाँ छोड़ी तो यहाँ गयी है। आत्मा के परमात्मस्वभाव की प्रीति छोड़ी तो शरीर में प्रीति गयी है। इसकी प्रीति छोड़ तो परमात्मा अपना आत्मा, उसमें प्रीति होगी। यह परमात्मप्रकाश तो तैयार हुए लड्डू हैं ऐसे। लड्डू तैयार लड्डू-लड्डू होते हैं या नहीं? कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : उसमें स्वाद है। इसमें कुछ स्वाद नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, धूल में स्वाद नहीं। मर गया खा खाकर। राग-राग को, हों!

यह देह अच्छा नहीं है... 'भद्रः न भवति' आहाहा! यह शरीर भद्र नहीं, भला

नहीं, अच्छा नहीं। परन्तु साधन तो काम आवे या नहीं कुछ? यह तो उसका लक्ष्य छोड़कर चैतन्य का लक्ष्य कर तो निमित्तपने का आरोप आवे। सुन न अब। संहनन मजबूत, वज्रकाय और मनुष्यदेह। एक पण्डित कहता था न? मनुष्यदेह, वज्रकाय बिना मिले? वह कुचामन का ही पण्डित था। नहीं? कुचामन का था? एक पण्डित नहीं था कोई? घासीलालजी। घासीलालजी था। वे घासीलालजी कलकत्ता रहता था। वह यहाँ एक बार आया था। वह कुचामन का था घासीलाल। बहुत वर्ष हो गये। बीसेक वर्ष हुए। वह फिर यहाँ सुने और सुने न जरा कुछ अन्दर... परन्तु यह शरीर-बरीर मनुष्यदेह मिला, संहनन अच्छा मिला तो उसके कारण से होगा न। अब ऐसा अनन्त बार मिला, उसके कारण होता हो तो। उसका प्रेम छोड़ और यहाँ कर तो फिर निमित्तरूप से आरोप दे। माल ले तो बारदान को आरोप दिया जाता है। माल बिना किसका बारदान कहना? कोथळो समझे न? बोरी-बोरी। माल डाले तो कहलाये कि भाई यह चावल की बोरी। कोथळो अर्थात् बोरी, यह शक्कर की बोरी, यह दाल की। परन्तु माल हो उसकी कहलाये न। खाली बोरी को क्या कहना?

मुमुक्षु : अकेली बोरी।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसकी बोरी? शण की बोरी है शण की। माल डाले तो कहलाये कि इस माल की बोरी। इसी प्रकार चैतन्य की दृष्टि, ज्ञान कर तो यह शरीर आदि को निमित्त, बारदान को निमित्त कहा जाये। आहाहा!

मुमुक्षु : .... खांड की बोरी कहलाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह खांड डाले तो। कहलाये वह तो भूतकाल की अपेक्षा से। वह अलग बात है।

इसलिए देह से भिन्न ज्ञानादि गुणमय ऐसे आत्मा को तू देख। 'पश्य' अर्थात् देख, ऐसा। **'जोइ'** शब्द पड़ा है न इसमें? **'जोइ'** का अर्थ ही यह करते हैं। **'अप्पा जोइ' 'अप्पा'** देख, ऐसा। **'आत्मानं पश्य'** भाई! तू आत्मा को देख, भाई! आत्मा को अवलोकन (कर)। अवलोकने के लिये अनेक चीज़ें तेरे ज्ञान में और अवलोकने के लिये तू चीज़ तेरे ज्ञान में नहीं?!

मुमुक्षु : आश्चर्य की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आश्चर्य की बात है। तेरे ज्ञान को पर्याय में अवलोकने के लिये अनन्त पदार्थ और तेरे ज्ञान की पर्याय को अवलोकन के लिये पूरा चैतन्य द्रव्य, वह एक नहीं! बराबर है? न्यालभाई! सब मुझे जाननेयोग्य, अवलोकन योग्य है। तू है? तेरी पर्याय से तू अवलोकन योग्य? वह क्या? यह क्या? उसे तो विस्मय लगे। भाई! महान पदार्थ जिसकी एक समय की अवस्था में ऐसे सब पर का अवलोकन (हो), वह तो विकल्प उठे और बन्ध का कारण है। जिसकी पर्याय से अनन्त अवलोकन हो, उसकी पर्याय से तेरा एक आत्मा अवलोकन कर, उसकी तो तुझे दरकार नहीं। समझ में आया? पर्याय आत्मा की ज्ञान की, अवलोकन पर का। परन्तु पर्याय आत्मा की और अवलोकन स्व का (होवे तो) तब तो उसका कल्याण हो। अवलोकने को अनेक मिले और एक मिलता नहीं अवलोकन के लिये और एक अवलोकन किया तो तीन काल और तीन लोक के अवलोकन का केवलज्ञान हुए बिना रहेगा नहीं। समझ में आया? आहाहा!

भावार्थ :- कहते हैं, **नित्यानन्द अखण्ड स्वभाव जो शुद्धात्मा...** पहली व्याख्या यह। कैसा आत्मा अन्दर है? **नित्यानन्द अखण्ड स्वभाव...** वह प्रभु नित्य आनन्द है, नित्य आनन्द। यह दु:ख तो समय जितना क्षणिक है। वह आनन्द की उल्टी-विपरीत दशा क्षणिक है। यह भगवान आत्मा नित्यानन्द है। नित्यानन्द-नित्यानन्द। बाबा का नाम पाड़ते हैं न कितने ही। नहीं? शशीभाई! क्या नाम? परमहंस अर्थात् नित्यानन्द महाराज। उसका नाम पाड़े शरीर का। नित्यानन्द महाराज। ... परन्तु नित्यानन्द शरीर कहाँ से आ गया? नित्यानन्द महाराज तो आत्मा है। नित्यानन्द थे। तुम्हारे है उतने में थे कहीं वे। ... एक बार गये थे। वह वडाल-वडाल नहीं, परन्तु कोई पीठडा, पीठडिया। पीठडिया में थे एक। वेदान्ती थे वेदान्ती।

यहाँ कहते हैं, भगवान आत्मा जिसे आत्मा के आनन्द का एक समय विरह पड़ता नहीं। अतीन्द्रिय आनन्द और भगवान आत्मा को तादात्म्य सम्बन्ध है, इसलिए एक समय के आनन्द को धरनेवाले को—आत्मा को विरह पड़ता नहीं। बराबर है?

क्या कहा? यह आत्मा जिसे अतीन्द्रिय आनन्द के साथ एक समय विरह पड़ता— अन्तराल पड़ता नहीं। क्योंकि आत्मा और आनन्द तादात्म्यस्वरूप है, एकरूप है। आनन्दस्वभाव है और आत्मा स्वभाववान है। स्वभाव और स्वभाववान का विरहपना-अन्तराल हो नहीं सकता। समझ में आया? यह भी ऐसा आत्मा!

नित्यानन्द... यह शब्द प्रयोग किया है पहला। समझ में आया? १५२। है न? '**शुचिदेहांन्नित्यानन्दैकस्वभावात्**' भगवान आत्मा जो वस्तु स्वयं नित्य है, ऐसा ही उसका आनन्द अतीन्द्रिय नित्य स्वभाव है। क्योंकि वस्तु हो और उसका स्वभाव न हो। वस्तु हो और स्वभाव न हो तो वह वस्तु ही नहीं होती। हाँ, वह विकार बिना रह सकता है। आत्मा और उसका स्वभाव विकार बिना रह सकता है। दुःख बिना रह सकता है, परन्तु भगवान आत्मा उसके स्वभाव बिना कभी नहीं रहे, यह तीन काल में नहीं होता और उसका स्वभाव तो अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर पूर्ण है। आहाहा!

यह नित्यानन्द और, शब्द क्या प्रयोग किया है? **अखण्ड स्वभाव...** वह एकरूप स्वभाव है, ऐसा कहना है। वस्तु में अतीन्द्रिय आनन्द है, वह एकरूप है। एक अर्थात् खण्ड नहीं, ऐसा। ऐसा पदार्थ जो आत्मा वस्तु-वस्तु। उसका आनन्द नित्य। स्वभाववान का स्वभाव नित्य। अतीन्द्रिय और वह एकरूप है। वस्तु एक है न, इसलिए वस्तु अखण्ड है न, तो उसका आनन्द भी अखण्ड अर्थात् एकरूप है। ऐसा एकरूप जिसका स्वभाव, ऐसा शुद्धात्मा। आहाहा! इसने गीत भी सुने नहीं। न्यालभाई! इसके गीत सुने नहीं। गीत इसके गीत कैसे?

यह गीता। गीता में ऐसा कहते हैं न पण्डितजी! गीता अर्थात् क्या? गाने गाना। वह गीता उसे कहते हैं न। उन लोगों में गीता कहते हैं न। वह तो यह गीता है। समयसार आत्मा की गीता है। गीता अर्थात् कि आत्मा के गुण जो गाता है। कोई पूछे कि तुम्हारे गीता है? कि हमारे गीता है समयसार। यह परमात्मप्रकाश, यह आत्मा की गीता है, लो! समझ में आया? ऐसा यह अध्यात्मशास्त्र परम गीता। यह अकेले आत्मा के गुण को गाये। और हमारे यहाँ वापस उसकी टीकायें की तो हमारे भाई ने हरिगीत नाम रखा है न? उन श्लोक के,... किये है न अपने गुजराती। अपने हरिगीत। हरिगीत—हरि

अर्थात् भगवान के गीत। यह समयसार, प्रवचनसार, नियमसार के हरिगीत हुए हैं न। अपने स्वाध्याय करते हैं, उसका नाम हरिगीत। भाई ने बनाये न हरिगीत। वह हरि अर्थात् पाप-ओघ का हरना, हरति इति हरि। अज्ञान और विकार को हरे, ऐसा भगवान हरि ऐसा आत्मा, यह उसके गीत हरिगीत, उसका नाम हरिगीत है। समझ में आया? वह कहे तुम्हारे पास गीता जैसी पुस्तक है? हाँ। अनेक पुस्तकें हैं। वास्तव में तो चारों ही अनुयोग गीता जैसे ही हैं। आत्मा के गुणगान करनेवाले ही हैं। परन्तु उनमें यह समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय, परमात्मप्रकाश, समाधिशतक, ऐसे देखो तो एक के एक ऐसे गीत पूरे कह सके नहीं। नियमसार में तो मुनि को शब्द मिलते नहीं। भाई ने ऐसा लिखा था न! पद्मप्रभमलधारिदेव। गाते-गाते शब्द कम पड़ते हैं, गुण गाते। ऐसी शैली वाँचे तब उसमें आती है। नियमसार में टीका। शब्द बहुत संक्षिप्त पड़ते हैं। कुछ हाथ लगते नहीं, उसे किस प्रकार आत्मा को शब्दों में कहना। शब्द थोड़े। यह तो अपार वस्तु है।

भगवान आत्मा, भाई! एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में वह नित्यानन्द अखण्ड स्वरूप भगवान शुद्ध आत्मा। देखो, इतनी व्याख्या तो एक पद में आयी। आहाहा **उससे जुदा...** उससे यह देह भिन्न। ऐसा भगवान अखण्ड आनन्दस्वभाव, उससे यह भिन्न और वह भी **दुःख का मूल...** भिन्न भले हो, परन्तु यह तो दुःख का मूल। उसके ऊपर नजर करने से राग ही होगा। उसका लक्ष्य और आश्रय कर तो राग ही होगा, परद्रव्यानुसारी विकल्प। आहाहा! समझ में आया? वह दुःख का कारण हों यह। दुःख तो स्वयं उत्पन्न करे, परन्तु ऐसे उसका लक्ष्य करता है न। '**परदव्वादो दुग्गइ सदव्वा हु सुग्गइ होइ।**' भगवान कुन्दकुन्दाचार्य महाराज मोक्षपाहुड़, अष्टपाहुड़, उसमें यह गाथा है। '**परदव्वादो दुग्गइ सदव्वा हु सुग्गइ होइ।**' यह गाथा है। आहाहा! है न? कहाँ है? यह तो समयसार नाटक है। कहो, समझ में आया? यहाँ तो अपने उस शरीर को दुःख कहना है न। '**परदव्वादो दुग्गइ**' वह दुर्गति का कारण है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! दो गाथायें हैं। एक '**सदव्वा हु**' और '**सदव्वरओ**' और ... ऐसी दो गाथायें हैं। १३ गाथा है।

परदव्वरओ बज्झदि विरओ मुच्चेइ विविहकम्मेहिं।
ऐसो जिणउवदेसो समासदो बंधमुक्खस्स॥१३॥

परद्रव्यरतः बध्यते विरतः मुच्यते विविधकर्मभिः।
एषः जिनोपदेशः समासतः बंधमोक्षस्य॥१३॥

आहाहा! यह मोक्षपाहुड़ की १३वीं गाथा। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं कहते हैं, परन्तु वीतराग के सहारे से कहते हैं, वीतराग का शरण लेकर कहते हैं। यह परमात्मा ऐसा फरमाते हैं, हों! आहाहा! '**एषः जिनोपदेशः**' यह जिन का उपदेश है। '**समासतः बंधमोक्षस्य**' संक्षिप्त में बन्ध और मोक्ष की यह व्याख्या भगवान के मुख से निकली हुई है। फिर १४।

सदव्वरओ सवणो सम्माइट्ठी हवेइ णियमेण।
सम्मत्तपरिणदो उण खवेइ दुट्ठट्ठकम्माइं॥१४॥

'**सदव्वरओ**' भगवान आत्मा में रत हुआ श्रमण '**सम्माइट्ठी हवेइ**' सम्यग्दृष्टि सहित चारित्र, '**सम्मत्तपरिणदो**' यहाँ तो एक समकित '**परिणदो उण खवेइ दुट्ठट्ठकम्माइं**' ऐसा पाठ लिया है। ऐसा पाठ है। यह १४वीं गाथा। समकितरूप से परिणमित हुआ, वह वीतरागी पर्याय भी उसका फल है समकित का आगे। करते हुए परिणमा वह '**खवेइ दुट्ठट्ठ**' दुष्ट आठ कर्म को। देखो, मोक्ष अधिकार, इसलिए दो भाग किये। यहाँ फिर आयेगा। '**परदव्वादो दुग्गई सद्दव्वादो हु सुग्गई होइ।**' यह १६वीं। '**इय णाऊण सदव्वे कुणह रई विरइ इयरम्मि॥**' इतर द्रव्य में से विरक्त हो, विरक्त हो भाई! मोक्ष अधिकार। गजब बातें कुन्दकुन्दाचार्य की! ऐसे दो भाग किये। एक स्वद्रव्य में रति मुक्ति का कारण, परद्रव्य में रति वह चार गति की दुर्गति का कारण। आहाहा! समझ में आया? भगवान की खान में अनन्त आनन्द आदि गुण हैं, इसलिए उसकी एकाग्रता। रति अर्थात् एकाग्रता, ऐसा। वह मुक्ति का कारण है। परद्रव्य का अनुसरण करने जाये, वहाँ परद्रव्य के कारण से—लक्ष्य से राग होगा। इसलिए '**परदव्वादो दुग्गइ**' उसके कारण से दुर्गति अर्थात् मुक्ति ऐसी सुगति से विरुद्ध (चार गतियाँ) मिलेंगी। समझ में आया? देखो!

मुमुक्षु : परद्रव्य में से किसे-किसे कम करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : परद्रव्य में से कम करना एक आत्मा को। ऐसा कि यह देव-

गुरु-शास्त्र वे सब परद्रव्य होंगे? ऐई! न्यालभाई! यह तो न्यालभाई को अब... परद्रव्य में से निरस्त कितना करना? गुरुदेव को परद्रव्य में से निरस्त करना या नहीं? सम्मेदशिखर को इसे करना या नहीं? यह गाथा पड़ी है, भाई! '**परदव्वादो दुग्गइ**' यह १६वीं गाथा है। '**सदव्वा हु**' 'व' डबल है न? '**सदव्वा**' 'व' भी डबल है। '**सदव्वा हु सुग्गइ होइ इय णाऊण**' यह जानकर '**सदव्वे कुणह रई विरइ इयरम्मि**' बस, आत्मा का स्वभाव उसकी रुचि करके उसमें एकाग्र हो। परद्रव्य के अनुसार का भाव छोड़ दे। यह मोक्ष अधिकार है न! इसलिए यह स्वद्रव्य, परद्रव्य डाला है।

कहते हैं कि भगवान शुद्धात्मा **उससे जुदा और दुःख का मूल तथा महान अशुद्ध...** इतने शब्द प्रयोग किये हैं। अशुद्ध अर्थात्? उसके अवलम्बन से अशुद्धता होती है, इसलिए वह अशुद्ध है, ऐसा कहा है। बाकी तो वह ज्ञेय जड़ है। आहाहा! वह तो ज्ञेय है शरीर तो। ज्ञान का ज्ञेय है। उसमें कोई इष्ट-अनिष्ट ज्ञेय में नहीं। परन्तु उसके लक्ष्य से अशुद्धता (होती है)। उसमें नजदीक का द्रव्य, अनादि का शरीर... शरीर... शरीर... शरीर... शरीर... आहाहा! उसमें चार इन्द्रियाँ तो छूट गयीं कितनी बार, एकेन्द्रिय में गया तब, परन्तु स्पर्श इन्द्रिय का शरीर तो कभी छूटा नहीं।

मुमुक्षु : अधिक समय....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें ही रहा। स्पर्श इन्द्रिय। एक इन्द्रियवाला शरीर। और पाँच इन्द्रियवाला शरीर तो किसी समय मिला। दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय किसी समय। और एकेन्द्रियवाला शरीर ऐसा जो उसमें—निगोद में अनन्त काल रहा। आहाहा!

कहते हैं, ऐसा जो यह शरीर, वह अशुद्ध है। अर्थात् कि उसके लक्ष्य से अशुद्धता उत्पन्न होती है। वह दुःख है (अर्थात् कि) उसके लक्ष्य से दुःख उत्पन्न होता है। समझ में आया? और **शरीर, उससे भिन्न आत्मा को पहचान...** यह तो भावना का ग्रन्थ है न! तो भिन्न-भिन्न प्रकार से, भिन्न-भिन्न प्रकार से, उसका मूल पकड़ाते हैं। मूल को पानी पिला तो फल में चढ़ेगा। भगवान आत्मा अभेद चिदानन्द प्रभु, उसमें प्रेम कर, एकाग्र हो। रति का अर्थ एकाग्रता है। निर्जरा (अधिकार) में आता है न भाई! नहीं? उसमें प्रीति कर, उसमें रति कर। वह कल्याण है न! २०६ गाथा। समझ में आया?

और कृष्ण, नील, कापोत इन तीन अशुभ लेश्याओं को आदि लेकर... भिन्न आत्मा को पहचान,... इनसे **आदि लेकर सब विभावभावों को त्यागकर,...** कृष्ण, नील तो छोड़, परन्तु सब विभावभाव। यह नील, तेज, पद्म और शुक्ल, वह भी विभावभाव है। यह शुक्ललेश्या भी विभावभाव है। शुक्ललेश्या अभव्य को भी आती है, अभव्य को होती है। वह कोई नवीन चीज़ नहीं। अभव्य, जिसकी मुक्ति कभी नहीं, उसे शुक्ललेश्या अनन्त बार आती है। नौवें ग्रैवेयक में जाता है तो शुक्ललेश्या द्वारा जाता है। वह कहीं आत्मस्वरूप नहीं। वह तो विकार... विकार... विकार... वह **सब विभावों को त्यागकर, निजस्वरूप का ध्यान कर।** अर्थात् कि उसे विषय बना। ध्यान का अर्थ? जो पर का विषय ऐसा बनाया है, उसे यह विषय बना। समझ में आया? उसका नाम ध्यान। यहाँ ध्यान किया है न ऐसे? यह विषय बनाकर ऐसे ध्यान किया है, ऐसे वह आर्त-रौद्रध्यान है। आर्त-रौद्र। ऐसी गुलाँट खाकर यहाँ विषय बनावे, वह धर्मध्यान, शुक्लध्यान है।

मुमुक्षु : ध्यान.... स्थिरता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्थिरता है। आर्त, रौद्रध्यान स्थिरता नहीं? वह उल्टा ध्यान है। ध्यान तो सबको आता है। ध्यान नहीं आता, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्यान का अर्थ कि जिसमें एकाग्र (हो)। एक विषय को लक्ष्य में लेकर दूसरी चिन्ता छूट जाये, उसका नाम ध्यान। संसार में भी एक विषय का लक्ष्य रहकर दूसरा विकल्प छूट जाये, उसका नाम ध्यान। वह आर्त और रौद्रध्यान। ऐई! पड़ा हो विचार में ऐसे... यहाँ भी अपना एक विषय बनाकर चैतन्य को। विषय एक ही बनाकर दूसरी चिन्ता भूल जाये, उसमें एकाग्र हो जाये, उसका नाम ध्यान। ध्यान तो आता है। एकेन्द्रिय को ध्यान आता है आर्त और रौद्रध्यान आदि। समझ में आया? आता है या नहीं ध्यान? नहीं आता? न आता हो आर्त, रौद्रध्यान हो किसका? एकाग्रता आती है, परन्तु एकाग्रता विकार में करता है। वह एकाग्रता स्वभाव में करे, इतना उसका ध्यान का अन्तर है। समझ में आया?

यह वस्तु क्या है ? इसका स्वभाव क्या है ? यह विभाव क्या है ? इसका बराबर ज्ञान होना चाहिए। और ज्ञान होने के पश्चात् उसे यह स्वभाव, उत्तम है, उसकी अन्तर रुचि और दृष्टि करना और स्थिर होना, इसका नाम ध्यान है। बहुत से कहते हैं न, ध्यान कैसे करना ? परन्तु पहले चीज़ क्या है, उसे समझे बिना तू किसमें एकाग्र होगा ? ऐसे समझे बिना बैठ जाये आँख मींचकर, उसमें क्या करेगा ? ऐसे के ऐसे विकल्प घुलेंगे, शून्य जैसा लगेगा। वह ध्यान नहीं है। और या तन्द्रा आ जायेगी ऐसे... निद्रा जैसी तन्द्रा होती है न। आहाहा! वह नहीं। ऐसी वस्तु लक्ष्य में विषय लेना, ऐसा कहते हैं। वस्तु को विषय बनाना स्व को। वह पर को विषय बनाता है। विषय अर्थात् ? विषय यह भोग, ऐसा नहीं। विषय अर्थात् पर को ऐसे लक्ष्य बनाकर एकाग्र होता है, ऐसे उसे लक्ष्य में लेकर एकाग्र होना। समझ में आया ? थोथा ध्यान नहीं। बड़ा भगवान लक्ष्य में लेकर बैठा, उसका नाम ध्यान, उसे ध्यान कहते हैं, ऐसा कहते हैं।

कहते हैं, **सब विभावभावों को त्यागकर, निजस्वरूप का ध्यान कर। ऐसा कथन सुनकर शिष्य ने पूछा,...** शिष्य ने प्रश्न किया। **हे प्रभो! इन खोटी लेश्याओं का क्या स्वरूप है ?** उन तीन लेश्याओं का नाम आया न ? खोटी कृष्ण, नील, कापोत का स्वरूप क्या है ? गोम्मटसार में है वह। **तब श्री गुरु कहते हैं—कृष्णलेश्या का धारक वह है,...** बुरी लेश्या। अन्तिम में अन्तिम बुरी। **जो अधिक क्रोधी होवे,...** सामान्य लक्षण है। **जो अधिक क्रोधी होवे, कभी बैर न छोड़े,...** किसी के साथ विरोध हुआ हो तो वैर छोड़े नहीं। बिच्छु के डंक की भाँति अन्दर वैर रखे। **उसका बैर पत्थर की लकीर की तरह हो,...** पत्थर की लकीर। लकीर अर्थात् ? लाईन। वह लाईन कहीं भरी जाये ? इकट्ठी नहीं होती। पत्थर में डाली हो वह इकट्ठी कहाँ से हो ? **महा विषयी हो,...** पर के ऊपर बहुत विषय लक्ष्य में करके महाभोगी आदि विषय हो। सामान्य बात ली है, हों! समझ में आया ?

परजीवों की हंसी उड़ाने में जिसके शंका न हो,... मश्करी करे, मजाक करे, मजाकिया। क्या मजाक करता है, इसका मेल न रहे। उसका सिर कट जाये ऐसी कोई मजाक कर डाले। मर जाये। हाय... हाय... ... ऐसे कृष्णलेश्या दूसरे की ठठ्ठा-मश्करी

उड़ावे, उसके परिणाम बहुत कलुषित है, कहते हैं। यह कृष्णलेश्या का स्वरूप है। **अपनी हंसी होने का जिसको भय न हो,...** दुनिया अपनी मश्करी करे तो उसकी दरकार न करे। वह बुरे परिणाम के धनी, बुरे परिणाम के धनी। मेरी यह मश्करी करेगा। अरे लोगों! यह तुम्हें क्या? यह लोग कहे, यह तुझे शोभता नहीं। यह तू क्या करता है? दरकार नहीं। जा, जा! समझ में आया?

शास्त्र में ऐसा एक दृष्टान्त यह श्वेताम्बर में आता है। बहुत पापी था, ऐकाई राठौड। एकाई राठौड़ आता है न दृष्टान्त? ऐसी लौकिक बातें की। बहुत पापी पाँच सौ गाँव का मालिक था। बहुत पाप करे। फिर अन्त में रोग आया। ऐसा अभिमानी कि कोई उसे देखने आवे और ऐसा कहे, साहेब! यह? वह सुन सके नहीं। इसलिए पहले गाँव में ढोल पिटाया। ढोल समझे न? गाँव में ढोल पिटाया। एकाई राठौड़ का आता है विपाक में। ढोल पिटाया पाँच सौ गाँव में कि एकाई राठौड को सोलह रोग हुए हैं। कोई भी वैद्य उसमें से एकाध रोग मिटायेगा, उसे दूँगा। इसलिए हेतु क्या? कि हमने तुमको प्रसिद्ध किया रोग आया, अब तू आकर कह कि हमको रोग है, ऐसा तू कहना चाहता है? क्या कहा, समझ में आया इसमें?

फिर से। शरीर में सोलह रोग हुए। फिर उसे इतना अभिमान कि कोई आकर कहे कि तुमको रोग हुआ। वह सहन नहीं हो सकता था। इसलिए पहले से ढोल पिटाया गाँव में कि ऐकाई राठौड को सोलह रोग हुए हैं। कोई भी वैद्य उसका एक रोग (मिटावे)... अर्थात् कोई आकर ऐसा कहे... तुमको खबर नहीं? सोलह रोग हुए, वह तो हमने पहले खबर दी है। पूछने किसका आया है तू? ऐसा करके मुँह तोड़ डाले। ऐसा कि तुमको रोग कितने। ऐसा हीन सुनकर वह अधिक हो जाता है। हमको हीन बताता है।

मुमुक्षु : स्वयं निरोग है और मैं बीमार हूँ, ऐसा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, हाँ, ऐसा कि यह निरोग अथवा गहरे-गहरे ऐसा कहे, आपको रोग हुआ, ऐसा करके गाली देता लगता है। यह पाप किये इसलिए रोग हुआ। यह सुनने का कामी नहीं था। इसलिए पहले से पाँच सौ गाँवों में ढोल पिटवाया। ऐकाई

राठौड को यह ऐसा कि रोग हुआ है। उसमें से कोई भी एकाध रोग मिटाने कोई आवे, वह अलग बात है। परन्तु रोग है तुमको, पूछने आवे तो उसके लिये हम निवृत्त नहीं। ऐई! जेचन्दभाई! समझ में आया इसमें?

एक बात इसमें उतारते थे उस समय उसमें से निकालकर। उसके प्रमाण में लोगों को... कि देखो! यह मान का पुतला कि जिसे रोग हुआ है, वह कोई पूछने आवे तो उसे नवीनता दूसरे को लगे। तुमको खबर नहीं? इसलिए पहले से पाँच सौ गाँव में ढोल पिटवाया है (कि) यह रोग हुए हैं। मिटाने आया हो तो भले कहो वैद्य। हमको एक रोग का उसके प्रमाण में गाँव, पैसा लाख, दो लाख रुपया दूँगा। परन्तु मिटाने के लिये पूछता हो तो अलग बात, परन्तु तू दूसरे प्रकार से पूछने आता हो, हमको हीन बताने को, वह मौका है नहीं यहाँ। सत्ताप्रिय ऐसा। ऐई! राजमलजी! आहाहा! परन्तु ऐसे बहुत होते हैं अभी। सेठिया बड़े पैसेवाले ऐसे हों, उन्हें हीन कहे तो उन्हें रास नहीं आवे। मैंने पाप किये, इसलिए यह हीनता मुझे हुई, ऐसा बताना चाहता है?

मुमुक्षु : .... महाराज को रोग हुआ, ऐसा नहीं कहा जाता।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह वहाँ कहा था, नहीं? वह रतलाम दरबार। पण्डितजी! उस रतलाम दरबार में दस लाख का तालुका। दस ही लाख, अधिक नहीं। उसे बुखार आया शरीर को। तो एक डॉक्टर आये थे, उसके डॉक्टर। पश्चात तो वह ... कैसा कहलाये? हरद्वार। डॉक्टर आये थे। वे डॉक्टर कहे कि हमारे दरबार को जब बुखार आवे। बुखार आवे, ऐसा नहीं कहा जाता। तब क्या कहा जाता है? दरबार साहेब! आपके दुश्मन को बुखार आया है तो वैद्य बुलाऊँगा? राजमलजी! यह अभी अब, हों यह! अरे! परन्तु उसमें कितनी...! आपके दुश्मन को। ऐसे बुलावे, पण्डितजी! आपको बुखार आया, ऐसा बुलाये नहीं। होवे साधारण राजा। दस लाख की उपज अर्थात्... तथापि इतना अभिमान कि ऐसा बुलाये नहीं कि आपको बुखार आया है, ऐसा बुलाये नहीं। आापके दुश्मन को। एक न्याय से तो बात सच्ची है। शरीर, वह आत्मा का दुश्मन है। परन्तु उसे दूसरे प्रकार से। आपके दुश्मन को बुखार आया है बुखार, तो वैद्य को बुलाऊँगा? अभिमान चढ़ गया है न! बुखार आया, ऐसा नहीं कहा जाता।

मरे तब, मर गये—ऐसा नहीं कहा जाता राजा को। साथ में लड़के हों तो कोई सुन न सके उसे। महाराज साहेब आज डेढ़े बजे पोढ़े हैं। पोढ़े हैं अर्थात् मर गये हैं, ऐसा। मर गये नहीं कहा जाता। महाराज साहेब... लखतर के दरबार गुजर गये तब यह बात आयी थी। बाहर में प्रसिद्ध की कि एकदम हुआ क्या? महाराज डेढ़ बजे पोढ़ गये हैं। बस, ऐसा बाहर प्रसिद्ध करे। मर गये, ऐसा प्रसिद्ध न करे। अब मर गया और गया नीचे। प्रसिद्ध कर न! आहाहा! मान के पुतले मक्के के डण्ठल जैसा पक्का। इतना भी अपमान शब्दों का सुनने के कामी नहीं। भले नरक में जाये और दु:ख भोगे अरबों वर्ष। यहाँ उसे कहे कि मर गये। कि नहीं। ओहो! तब मर गया नहीं तो क्या जीवित है? मर गया है। अन्दर में भी मर गया और बाहर में भी देह छूट गयी है। सुन न!

यहाँ कहते हैं कि ऐसे परिणाम हों उसके कि अपनी हंसी का भय नहीं। दुनिया हास्य करो, करो तो बोलोगे नहीं। हमारे पास नहीं बोलो, पीछे से करोगे। समझ में आया? **जिसका स्वभाव लज्जा रहित हो,...** लज्जा न हो लज्जा। देखो, यह दरबार थे न। रणजीत सिंह जामनगर दरबार। फिर यह सागरानन्द गये थे एक बार। वह मन्दिरमार्गी साधु। उसने बात की, महाराज! ऐसे पाप हो तो ऐसे जाये, पाप हो तो ऐसे जाये, नरक में जाये। अरे! हम क्षत्रिय हैं। इस हाथ से पाप करते हैं और इस हाथ से भोगते हैं। हमको उसका डर नहीं। ऐसा बोले। हम इस हाथ से करते हैं और इस हाथ से भोगते हैं। हम क्षत्रिय कहलाते हैं। वे जरा कहने गये तो उन्हें ऐसा जवाब दिया। बाहर एक कुंजरा नहीं होते कुंजरा? बड़े पक्षी नहीं होते? कुंजरा बहुत होते हैं यहाँ। सर्दी में जानवर आवे। सर्दी के दिन में बड़े पक्षी आते हैं। पूरे के पूरे निगले। कुंजरा बहुत कुंजरा वहाँ आसपास में। बहुत कुंजरा वहाँ और इतने बड़े-बड़े ऊँचे। मारने गया स्वयं। और एक ब्राह्मण की वह झोंपड़ी थी। वह मारे तो कहे, महाराज! वह ब्राह्मण कहे, महाराज! मेरी झोंपड़ी के पास यह? पश्चात् पाँच-सात-दस मारकर, बुलाओ ब्राह्मण को। उठा यह। उसने ब्राह्मण से मुर्दे उठवाये। बेचारा झोंपड़ी में बैठा होगा। उसकी झोंपड़ी होगी। कहे, हमारे पास यह नहीं होता। ऐसा कहा तो कहे तू ही उठा इन्हें। मुर्दे पाँच-सात उठाकर मोटर में डालने ले गये उसे। परिणाम, वे भी परिणाम हैं न। अब वह दौड़कर

दुर्गति में जाये या धीरे-धीरे जाते होंगे? आहाहा! उसको त्रास... त्रास... त्रास... हम ब्राह्मण, हमारे पास यह खून हो, कुंजरा मरे। वह तो पाँच-सात को मारा और कहे उठा इन्हें। मुर्दों को उठाकर गाड़ी में डाला। आहाहा! यह वह कहीं परिणाम की जाति! पश्चात् परिणाम और नरक के परिणाम की जाति कैसी होगी दूसरी? ऐसे करोड़ के तालुका दरबार कहलाये, लो! आहाहा! वे पोढ़े।

कहते हैं, **गरीब को सतानेवाला हो,...** लो, भाई! यही आया, देखो। देखा? **जिसका स्वभाव लज्जा रहित हो, दया-धर्म से रहित हो और अपने से बलवान के वश में हो,...** अपने से बलवान जो हो, उसके आधीन पड़ जाये। **गरीब को सतानेवाला हो,...** गरीब को सतावे। अपने से बलवान हो, उसके सामने दब जाये, वहाँ दब जाये। क्या करे? **ऐसा कृष्णलेश्यावाले का लक्षण कहा।** लो! ऐसे बुरे परिणामवाला (कृष्ण लेश्यावाला है)। भाई! ऐसा रहने दे, भाई! यह भाव रहने दे। जहाँ भगवान पूरा चिदानन्द अनन्त गुण का सागर उछलता है, उसे उछाल न! ऐसे परिणाम अन्दर मैले इकट्ठे करना है तुझे? समुद्र में मैला इकट्ठा हो, वैसे मैला इकट्ठा करना है तुझे? रहने दे, यह रहने दे। ऐसे परिणाम रहने दे। भगवान पवित्र धाम है न, भाई! उसमें देख न, उसकी नजर कर न!

नीललेश्यावाले का लक्षण कहते हैं,... दूसरी लेश्या। **जिसके धन-धान्यादिक की अति ममता हो,...** यह जिसे लक्ष्मी और मकान और पैसा तथा धान (उसकी) ममता... ममता... ममता... समझ में आया? **और महा विषयाभिलाषी हो,...** विषय का अभिलाषी **इन्द्रियों के विषय सेवता हुआ तृप्त न हो।** तृप्ति ही न आवे उसे तृप्ति न आवे। धूल में भी नहीं वहाँ (सुख)। **कापोतलेश्या का धारक रण में मरना चाहता है,...** रण में मरते हैं, हम राजा कहलाते हैं। बुरे परिणाम है। **स्तुति करने से प्रसन्न होता है।** खम्मा अन्नदाता। भोज राजा के जैसे आप हो। प्रसन्न हो। कुछ न हो मन में। **स्तुति करने से अति प्रसन्न होता है।** कापोतलेश्या हों, बुरी लेश्या है। **ये तीनों कुलेश्या के लक्षण कहे गये हैं, इनको छोड़कर पवित्र भावों से...** पवित्र भावों से—शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति से **देह से जुदे जीव को जानकर... पवित्र भावों से...** यह जानकर, ऐसा कहना है। ऐसे

भाव से नहीं ज्ञात हो। वह भगवान पवित्र भाव से ज्ञात होगा। **पवित्र भावों से देह से जुदे जानकर अपने स्वरूप का ध्यान कर। यही कल्याण का कारण है।** परमात्मप्रकाश, यह भावना का ग्रन्थ है न।

मुमुक्षु : तीन बाकी रही।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तीन गयी उसमें। बाकी नहीं रखी। ऐसा कि यह तीसरा पद शुक्ललेश्या, वह गयी उसमें सब ही। वह छोड़ दे... छोड़ दे... पर का छोड़ दे और इसकी ओर पवित्र भाव में आ जा। यह पीत, पद्म और शुक्ल, यह तीनों अधर्मदशा है, धर्मदशा नहीं। छहों लेश्या अधर्म है। आहाहा! धर्म में लेश्या कैसी? वह तो आत्मा का अलेशी परिणाम है। शुद्धस्वभाव पूर्णानन्द भगवान की प्रतीति, श्रद्धा और ज्ञान, लीनता, वे सब पवित्र भाव हैं। लेश्या तो श्लेष है। श्लेष तो बन्ध का कारण है। यह तो पवित्र धर्म, वह अबन्ध का कारण है। ऐसा ध्यान कर तो उससे कल्याण होगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आषाढ़ कृष्ण ७, मंगलवार, दिनांक - २०-०७-१९६५
गाथा - १५३ - १५४, प्रवचन - १७५

गाथा - १५३

१५३ गाथा, परमात्मप्रकाश। **आगे फिर भी देह को दुःख का कारण दिखलाते हैं :-**

२८४) दुक्खहँ कारणु मुणिवि मणि देहु वि एहु चयंति।
जित्थु ण पावहिँ परम-सुहु तित्थु कि संत वसंति॥१५३॥

आहाहा! भाई! जहाँ सुख नहीं, वहाँ वसना तुझे कैसे सुहाता है? ऐसा कहते हैं। जरा कहीं जाये और थोड़ा प्रतिकूल पड़े तो वहाँ से हट जाता है। कुछ थोड़ी प्रतिकूलता कहीं लगे दो घड़ी जाना हो तो भी कहे, नहीं, यहाँ नहीं। हवा नहीं, पानी नहीं, ठीक नहीं। उसमें तुझे बसना सुहाता नहीं। तो यह दुःख तो महा दुःख का ही कारण और महा दुःख का ही पिण्ड है। देखो देह शब्द से चार गति के, हों! वहाँ नारकी का देह, मनुष्य का और देव का देह अलग, ऐसा कुछ नहीं। अच्छा देह नहीं। देह तो मिट्टी का है। उस मिट्टी के प्रेम में भगवान का प्रेम छूट जाता है, कहते हैं। भाई! तुझे बसना कैसे (सुहाता है)? यह कहते हैं न, देखो न! **'तित्थु कि संत वसंति'** अरे सत्पुरुषों! अरे धर्मात्मा! इस शरीर-दुःख में बसना, उसे कैसे ठीक पड़े? अपने आनन्दस्वभाव में बसना छोड़कर उसमें रहना उसे कैसे सुहावे? ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

यह कहते है, देखो, **'दुःखस्य कारणं' नरकादि दुःख का कारण...** हों! नरक आदि दुःख का अर्थात् समस्त ही। नारकी, मनुष्य, देव और पशु। यह सब देह **इस देह को मन में दुःख का कारण जानकर...** यहाँ तो मूल बात चैतन्य स्वस्वरूप है, उसमें आनन्द है। उस आनन्द की रुचि छोड़कर जिसने देह में रुचि की है और देह के कारणरूप पुण्य और पाप में प्रेम किया है, वह दुःख में बसता है। पुण्य की रुचि में क्या होगा?

मुमुक्षु : दुःख।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुःख ? कहाँ दुःख है ? दुःख होगा ? तुम्हारे पुत्र को पूछते हैं, लो, ठीक! कहो, समझ में आया ? ओहोहो!

कहते हैं, प्रभु! ऐसे दो भाग है। जो भाग तुझे सुहावे वह ले। एक ओर चैतन्य का भाग आनन्द का पड़ा है। चैतन्य आनन्दमूर्ति है। वह एक ओर देह दुःख का पिण्ड है। यह दो भाग हैं। तुझे उसमें सुहाता कैसे है ? ऐसा यहाँ तो कहते हैं। और जब व्याधि आवे, उसे तो ऐसा लगे कि यहाँ से अब शीघ्र छूटें, शीघ्र भागें। उसमें रहना सुहाता नहीं। ... उस दुःख के समय तुझे सुहाता नहीं और अनुकूलता के समय सुहाता है, उसका अर्थ कि तुझे दुःख में ही सुहाता है। आहाहा! क्यों जेचन्दभाई! वह तो यहाँ जोड़े का दृष्टान्त है।

मुमुक्षु : उसे लक्ष्य कर....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, मैंने तो मन में यह साधारण बात, बहुत वर्ष पहले साधारण बात थी न। व्याधि शरीर में हो तब ऐसा हो, अकेली व्याधि जाने। अरे! एक क्षण भी इस देह में रहना ठीक नहीं। समझ में आया ? अकेली व्याधि का ही पोटला है यह। स्वर्ग का देह हो या मनुष्य का हो। वह स्वर्ग के देह में भले व्याधि न हो, परन्तु उसके लक्ष्य से आकुलता हो, वह व्याधि है। आधि, व्याधि और उपाधि। आधि अर्थात् मन में संकल्प-विकल्प होना, वह आधि है; देह में रोग आदि होना, वह व्याधि है और संयोग कहना, उसे उपाधि है। यह आधि, व्याधि और उपाधि, इन तीन से रहित दृष्टि आत्मा में करना, वह समाधि। समाधि अर्थात् शान्ति; शान्ति अर्थात् सुख। बराबर होगा ? यह दस लड़कों में सुख नहीं होगा ? नहीं ? ऐसे अच्छे लड़के जगे। धन्यकुमार जैसे ब्रह्मचारी। तो अच्छे हो तो ठीक नहीं ? आत्मा को क्या ? ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह तो एक न्याय से बात है न, भाई! एक प्रभु तू एक ओर चिदानन्द सच्चिदानन्दस्वरूपी... यही कहेंगे, देखो! यह भावार्थ में पहले से।

कहते हैं, हे ज्ञानी! **इस देह को मन में जानकर...** दुःख का हेतु जानकर, हों!

ऐसा का ऐसा नहीं। ऐसे देह के ऊपर लक्ष्य करना, वह दुःख ही है। इसलिए देह दुःख है। देह को अनुसरण कर विकल्प करना परद्रव्य-अनुसारी, वे सब दुःख हैं, इसलिए देह भी दुःख है। समझ में आया? ऐसे देह को मन में बराबर जानकर **ज्ञानी जीव उसका ममत्व छोड़ देते हैं,...** यह मेरी चीज़ ही नहीं तो मेरा निवास वहाँ कैसे हो? मेरा घर हो तो निवास हो। मेरा घर, यह देह मेरा घर नहीं। यह तो मिट्टी का पिण्ड हड्डियाँ, चमड़ी, खून, माँस। इसके लक्ष्य से तो राग ही होता है और दुःख ही होता है। समझ में आया?

क्योंकि जिस देह में उत्तम सुख नहीं पाते,... देखो, उत्तम सुख, हों! यह कल्पना का माना, ऐसा नहीं। जिसमें भगवान आत्मा को अनाकुल शान्तरस की प्राप्ति न हो, ऐसे देह में रहकर क्या करना है? उसकी ममता छोड़। **क्योंकि जिस देह में उत्तम सुख नहीं पाते, उसमें सत्पुरुष कैसे रह सकते हैं?** ओहो! धर्मी वहाँ निवास कैसे करे? जो भगवान चिदानन्दस्वरूप अपना स्वभाव, उसमें बसना चाहिए और वह इसमें बसावट करे, वह ज्ञानी को कैसे शोभे? आहाहा! यहाँ तो ठेठ से लगायी है।

परमात्मा अपना स्वभाव परमात्मा। अरे! उसमें बसना, दृष्टि का बसना छोड़कर इस देह में बसना ठीक, यह सत्पुरुष को कैसे हो सकता है? कहो, अब इस देह से धर्म होता होगा? यहाँ तो यह कहते हैं कि देह तो दुःख का कारण (क्योंकि) उसके लक्ष्य से तो राग और दुःख होता है। वह अब उसके आश्रय से आत्मा को धर्म होता होगा? अच्छा देश, किसी देश में होता होगा या नहीं कहीं? माने उसे होता होगा या नहीं? कोई कहे कि भाई! देह अच्छा हो तो धर्म होगा। जीवित देह हो तो धर्म होगा। अरे, भगवान! आहाहा! तेरी भी बलिहारी है न, भाई! तू भी जिसमें उतरे, उसे बड़ा बना देता है। धूल का घर, उसे बड़ा बनावे। ओहो! तुझसे भी मुझे धर्म होगा, हों! कितनी महत्ता दी! आहाहा! धूल में भी नहीं होता।

यहाँ तो कहते हैं कि देह दुःख का कारण का अर्थ? देह के लक्ष्य से विकल्प और विकार और दुःख होता है। वह तो मिट्टी है। उसे अनुसरकर विकल्प ही उठते हैं। विकल्प अर्थात् विकार और विकार, वह दुःखरूप है। इसलिए देह दुःखरूप है। देव

का हो, मनुष्य का हो। उसमें कहाँ फलाने का हो तो ऐसा कहा कि चक्रवर्ती का देह उसे सुखरूप हो।

मुमुक्षु : मनुय को....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो सभी चारों गतियों को लक्ष्य कर, जीव को लक्ष्य कर बात है। समझ में आया? यहाँ नरकादि दुःख का कहा, देखो न! सबको। सत्पुरुष को, स्वर्ग में भी धर्मात्मा को अन्तर में बसना होता है। शरीर में बसने की दृष्टि होती नहीं। अरे! नरक में नारकी जीव भी कहाँ बसे हैं समकिती? अपने में हैं। नारकी में कहना, वह तो एक निमित्त का ज्ञान कराने के लिये है। उस क्षेत्र में कहना, वह भी निमित्त का ज्ञान कराने के लिये है। वास्तविक वह भगवान आत्मा सम्यग्दृष्टि आत्मा में ही है। जो पुण्य-पाप के राग में नहीं, वह देह में कैसे होगा? आहाहा! जिसने अपना रहने का स्थान शुद्ध चैतन्य देखा है, जाना है, माना है, उसे पुण्य-पाप के भाव भी रहने के, विश्राम स्थान नहीं तो देह विश्राम स्थान समकिती को कैसे हो? आहाहा! समझ में आया? कोई कहे कि परन्तु यह तो बहुत ऊँची बात। अरे भगवान! यह तो अभी पहली बात है, भाई! तेरा तत्त्व महान आनन्दकन्द विराजता है न। अरे! उसमें दृष्टि स्थापित नहीं करता, उसे दृष्टि का विश्राम वहाँ मिले ऐसा है और यह भटकाभटक के पुण्य-पाप के भाव और उसके निमित्त, शरीरादि में दृष्टि स्थापित करके पड़ा है, भाई! ज्ञानी को शोभा नहीं देता, ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया?

भावार्थ :- वीतराग परमानन्दरूप जो आत्म-सुख... देखो, भगवान आत्मा में राग अर्थात् कषायरहित सुख, अकषाय आनन्द प्रभु आत्मा है। समझ में आया? उसका अकषायस्वभाव है अर्थात् कि आनन्द का रूप उसका अकषाय आनन्दरूप है। ऐसा भगवान अकषाय अनाकुल आनन्द का धाम, ऐसा वीतराग परमानन्द, वापस परमानन्दरूप है। ऐसा जो आत्मसुख। **उससे विपरीत नरकादिक के दुःख,...** उससे तो विपरीत। स्वर्ग के, नरक के, वे सब दुःख विपरीत हैं। आत्मा के आनन्द से विपरीत हैं। कहा नहीं था? दृष्टान्त नहीं था? नरक में अंगारों की भाँति सिंकता है। सम्यग्दृष्टि को भी राग बाकी रहा है, वह स्वर्ग में सिंकता है, ऐसा कहते हैं। पंचास्तिकाय में कहा था न! १७०

गाथा, १७१ गाथा में अमृतचन्द्राचार्य ने लिया है। अंगारों में सिंकेगा। आहाहा! समझ में आया? है न? बात तब की थी न। १७० और १७१ (गाथा)। अन्तिम, हों अन्तिम गाथायें हैं न। देखो, १७० में।

कहते हैं कि शुभरागवाला सम्यग्दृष्टि जीव भी **साक्षात् मोक्ष को प्राप्त नहीं करता परन्तु देवलोकादि के क्लेश की प्राप्तिरूप परम्परा द्वारा उसे प्राप्त करता है।** आहाहा! सन्तों ने काम तो सरल कर दिये हैं। यह कहते हैं, सम्यग्दृष्टि जीव को भी... १७० गाथा है।

सपयत्थं तित्थयरं अभिगदबुद्धिस्स सुत्तरोईस्स।
दूरतरं णिव्वाणं संजमतवसंपउत्तस्स॥१७०॥

जिसे **यहाँ, अर्हंतादि की भक्तिरूप परसमयप्रवृत्ति में साक्षात् मोक्षहेतुपने का अभाव होने पर भी परम्परा से मोक्षहेतुपने का सद्भाव दर्शाया है।** निमित्त से। **जो जीव वास्तव में मोक्ष के लिये उद्यमी चित्तवाला वर्तता हुआ, अचिन्त्य संयमतपभार संप्राप्त किया होने पर भी, परमवैराग्यभूमिका का आरोहण करने में समर्थ, ऐसी प्रभुशक्ति उत्पन्न नहीं की होने से,...** देखो, भाषा कैसी है? यह राग क्यों बाकी रह गया स्वर्ग में जाने का? वह प्रभुशक्ति प्रगट नहीं की इसलिए। कर्म थे, इसलिए रह गया, ऐसा नहीं कहा। देखो, संस्कृत पाठ है, हों! समझ में आया? **परमवैराग्यभूमिका का आरोहण करने में समर्थ, ऐसी प्रभुशक्ति उत्पन्न नहीं की होने से,...** भगवान आत्मा अपने स्वभाव की दृष्टि को प्राप्त की होने पर भी, अपने स्वरूप में जो प्रभु सामर्थ्य से स्थिर होना चाहिए, ऐसी शक्ति उसने प्रगट नहीं की। इसलिए कर्म के कारण से राग रह गया, ऐसा नहीं।

यह **धुनकी की चिपकी हुई रुई के न्याय से...** धुनकी होता है न, धुनकी? क्या कहलाता है वह? ... यह पींजरा। पींजरा हो न ऐसे-ऐसे (करे), हाँ वह। **धुनकी की चिपकी हुई रुई के न्याय से नौ पदार्थों तथा अर्हंतादि की रुचिरूप (प्रीतिरूप) परसमयप्रवृत्ति का परित्याग नहीं कर सकता,...** उसका राग अभी छोड़ नहीं सकता। **प्रभुशक्ति उत्पन्न नहीं की होने से,...** ऐसा लिखा है। आहाहा! अपने पुरुषार्थ की कमी

है। इसलिए स्वरूप की दृष्टि होने पर भी, सम्यग्दृष्टि होने पर भी, जो प्रभुशक्ति प्रगट करके स्वरूप में स्थिर होना चाहिए, उतनी नहीं की, इसलिए उसे नौ तत्त्व और प्रभु की भक्ति का राग रह जाता है। न्यालभाई! उस राग के फल में कहते हैं कि देखो, **वह जीव वास्तव में साक्षात् मोक्ष को प्राप्त नहीं करता परन्तु देवलोकादि के...** अर्थात् देवलोक, वहाँ से निकलकर चक्रवर्ती, वह उसकी **क्लेश की प्राप्तिरूप परम्परा द्वारा उसे प्राप्त करता है।** आहाहा!

मुमुक्षु : देखो, उसे परम्परा मोक्ष होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु किसके कारण? कहा, यह तो दुःख भोगते... भोगते... बाद में छोड़ेगा, ऐसा कहते हैं। तेरे राग के कारण से होगा? वह तो अपेक्षा से बात की है। पाठ में तो दूरतर शब्द पड़ा है न? **'दूरतरं णिव्वाणं'** अर्थात् वह फिर परम्परा इसका अर्थ निकाला। उसमें से निकाला है आचार्य ने। **'दूरतरं णिव्वाणं'** अर्थात् साक्षात् निर्वाण नहीं। वह राग है, इसलिए साक्षात् नहीं। **'दूरतरं णिव्वाणं'** उसका फिर अर्थ निकाला कि भाई! तुरन्त मोक्ष नहीं, परन्तु बाद में होगा। यह राग छोड़ेगा तब। ऐसा तो सीधा अर्थ है उसमें। समझ में आया? आहाहा! पाठ ऐसा बोलता है, देखो न! पाठ पुकार करता है। कुन्दकुन्दाचार्य तो कहते हैं कि **'दूरतरं णिव्वाणं'** जिसे अभी नौ पदार्थ की रुचि का विकल्प रह गया है, उसे अभी भगवान की भक्ति का राग रह गया है, तीर्थंकर तीन लोक के नाथ के प्रति भक्ति का विकल्प (रह गया है)। समझ में आया?

'अभिगदबुद्धिस्स सुत्तरोईस्स' सूत्र का, आगम का प्रेम रह गया है। वह **'दूरतरं णिव्वाणं'** उसे निर्वाण अभी दूर है, दूर है। वह राग छोड़कर स्थिर होगा, तब निर्वाण पायेगा। आहाहा! समझ में आया? यह इसका अर्थ बाद में स्वयं अमृतचन्द्राचार्य ने किया। समझे न? कि अभाव होने पर भी **परम्परा से मोक्षहेतुपने का सद्भाव...** यह **'दूरतरं'** का यह अर्थ किया है। अर्थात् कि तुरन्त साक्षात् न होकर, वह राग है, उतना तो उसे अग्नि में सिंकना पड़ेगा दो भव में। मनुष्य और स्वर्ग। दूसरा तो भव उसे होता नहीं। **परन्तु देवलोकादि के क्लेश की प्राप्तिरूप परम्परा द्वारा उसे प्राप्त करता है।** परम्परा का अर्थ यहाँ यह डाला। वहाँ परम्परा कही थी। **परम्परा से मोक्षहेतुपने का**

सद्भाव... इसका अर्थ कि परम्परा अर्थात् यह देवलोकादि के क्लेश के बाद होगा, ऐसा। आहाहा! गजब परन्तु जीव को जहाँ सुहावे वहाँ शास्त्र के भी अर्थ बदल डालना। भगवान को भी बदल डालना है, तीर्थंकर को भी बदल डालना है।

कहते हैं और १७१ में तो अन्त में तो यह कहा है, देखो! '**जो कुणदि तवोकम्मं सो सुरलोगं समादियदि**'

अरहंतसिद्धचेदियपवयणमत्तो परेण णियमेण।
जो कुणदि तवोकम्मं सो सुरलोगं समादियदि॥१७१॥

अर्थात्? सुरलोक भी कैसा? कि **रागरूपी अंगारों से दाह्यमान हुआ अन्तर में संतप्त (-दुःखी, व्यथित) होता है।** स्वर्ग में भी व्यथित-पीड़ा है, वहाँ राग की पीड़ा है। वह इन्द्राणी के भोग, वह यह राग बाकी रह गया यहाँ, भगवान की भक्ति का राग रह गया, उस राग में वहाँ फलरूपी अंगारों में सिंकेगा वहाँ। आहाहा! देवलोक में अंगारा कहा। धूल में नरक और ढोर में तो कहाँ था कहीं? यहाँ तो कहते हैं, वह सिंकता हुआ। देखो न, भाषा कैसी है? '**स्वर्गलोकं समासाद्य, सुचिरं रागाङ्गारैः पच्यमानोऽन्तस्ताम्यतीति।**' लो, अन्दर ताप होगा ताप। विकल्प उठता है, वह ज्वाला उठती है अग्नि की, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अंगारा... भगवान अनाकुल आनन्द की दृष्टि होने पर भी जो राग रह गया भक्ति आदि का, उसके फल में स्वर्ग में वहाँ राग की ज्वाला उठेगी। शान्तरूप प्रभु, शान्तरूप प्रभु में वह ज्वाला उठेगी। आहाहा! शान्त में स्थिर होना चाहिए। कल आया था न वह समवसरण में, नहीं? तुम थे? नहीं थे। वह शशीकान्त शिला। देव जहाँ विश्राम लेते हैं। आया था न। वह आदिपुराण में से सब लिया है। पहला वन है न उपवन? उसमें ऐसा कि नीचे ऐसी विशाल शिलायें हैं। शशीकान्त आत्मा। चन्द्र के किरण से मानो बनायी हो शीतल... शीतल... शीतल... शीतल... इन्द्र जाये ... यह शीतल... शीतल... शीतल... शिला। अनाकुल शान्तरस की शिला प्रभु आत्मा है। अकेला विकारी स्वभाव शीतल, वह इन्द्र अर्थात् ईश्वर धनी आत्मा उसमें विश्राम ले। वह तो बाहर की बातें जरा। समझ में आया?

शशीकान्त। ऊपर शशीकान्त आया था, नहीं? शशीकांतं जाने सब। वह आता है

न कुछ ? ऊपर शशीकान्त। जल समुद्र शशीकान्त मानो चन्द्र की किरणों से जल आया हो, उसमें से मानो यह सब बनाया है। चँवर और ऐसा कुछ है सही। हाँ, खाई का वर्णन पहला। उसमें पानी। आचार्य ने—जिनसेन आचार्य के अन्दर समवसरण का वर्णन है उसमें से यह सब भाई ने बनाया है। कहते हैं कि प्रभु! तेरी शिला शान्त अनाकुल आनन्द की महाधाम शिला पड़ी है आत्मा। उसमें स्थिर होना छोड़कर जितना राग बाकी रहेगा, उससे समकिती को भी अंगारों में सिंकना पड़ेगा, ऐसा कहते हैं, लो! समझ में आया ? यह १७१ और १७० (पंचास्तिकाय) दोनों में आया था।

कहते हैं कि अहो! **वीतराग परमानन्दरूप जो आत्म-सुख उससे विपरीत नरकादिक के दुःख,...** स्वर्ग का भी उससे विपरीत दुःख। सुख-बुख नहीं कुछ। कहो, समझ में आया ? अब यहाँ मनुष्यपना मिला, उसमें उकताहट हो और मरकर जाना नरक में। वहाँ कितना दुःख होगा ? परन्तु यह देखनेवाले तो न हो वहाँ। इतना तो सुख है या नहीं ? परन्तु यह देखनेवाले यह होली सुलगती है सामने। यह सब देखते तो अच्छा-अच्छा था। उसमें बिगड़ा। यह देखने का दुःख अधिक है न! यह न हो फिर मरकर चाहे जहाँ जाये भले वहाँ। लोग ऐसा कहते हैं कि भाई! इस देश में यदि रहें तो अपने परिचित उसमें अपना हल्का काम करें तो शर्म आवे। बाहर जाकर भले ही किसी के बर्तन मांजे। भाणा समझे ? बर्तन। परदेश में जाकर बर्तन मांजकर रोटियाँ खायेंगे, परन्तु देश में परिचित में पाँच लाख के आसामी कहलाते और पच्चीस मिलते नहीं महीने में, नौकरी हो नहीं, कोई बड़ा मानकर रखे नहीं।

मुमुक्षु : बड़ों को काम बतायें कैसे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : बतायें नहीं। हाँ, यह बात सब हो गयी। भाई! नाम किसलिए दें। सफेद वस्त्र पहने, पैसे न हों कुछ। बड़े के पुत्र। नामा लिखना आवे। परन्तु साहेब! तुमको हम किस प्रकार रखें ? क्योंकि तुमको काम बतायें नहीं। तुम बड़े के पुत्र, गाँव के बड़े सेठिया के पुत्र, देव हो गये। ऐसी सब बातें हो गयी है, यह सब नाम-ठाम, हों! सफेद वस्त्र पहने अच्छे। गरीब व्यक्ति साधारण हो गये। पिता ने रुपये दिये। पिता पास में बैठते। पिता के पास लाखों रुपये। परन्तु कितना दे ? दे तो उड़ा दे। समाप्त हो जाये।

पुण्य नहीं, इसलिए रहे नहीं। दो-तीन बार दिया। फिर कोई कहीं नौकरी दे नहीं। अपने कैसे बतायें काम। हम साधारण मनुष्य कहलाते हैं और तुम सेठिया के पुत्र। भाईसाहेब! परन्तु हम तो अभी अब कम हो गये हैं, अन्न नहीं मिलता। घी खाने को नहीं मिलता, हों! अकेली रूखी रोटी खाते। यह सब हमने नजरों से देखा है। आहार लेने जायें तो रोटी अकेली हो। घी-बी कहाँ से हो? ऐसे बेचारे गरीब हो गये। अब उसे नौकरी पर कौन रखे? बड़े के पुत्र, इसलिए नौकरी पर रखे नहीं। आहाहा! काम कैसे बतायें तुमको। परन्तु भाईसाहेब! अब तो नौकर रहने के योग्य हैं। परन्तु तुम भले हो, परन्तु तुम्हारा मुख देखकर, सफेद वस्त्र देखकर हम काम बतायें नहीं। तुमको क्या काम बताना? समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि भाई! यह पर में कहाँ तू जायेगा परन्तु? कहे। कहाँ जायेगा तू? यहाँ से निकलकर कहाँ जायेगा? नरक और ढोर में? तो इसकी अपेक्षा वहाँ अधिक आकुलता की अग्नि सुलगती है। और ऐसे भाव यहाँ से मरकर जाना, वह देवलोक में जाये नहीं और मनुष्य भी हो नहीं। पशु और नारकी में जाये। अब उसके भी वहाँ वे देखनेवाले तो नहीं। यह सब परिचित। पहले ऐसे थे। पाँच लाख के आसामी, गरीब हो गये। वस्त्र मलिन। ऐसे पकवान मैसूर उड़ाते थे, उसे घी चुपड़ी हुई रोटी मिले नहीं। इसकी अपेक्षा अनजाने घर में जायें तो दूसरे गाँव-देश में। ऐसे यह अनजाने भव में जायें मार डालकर। परन्तु अनजाना भी तू कहाँ अनजाना था? तू तो वहाँ का वहाँ है। वहाँ तुझे राग और द्वेष की होली सुलगेगी। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं **आत्म-सुख उससे विपरीत नरकादिक के दुःख...** यह देव के दुःख, चक्रवर्ती के देह के दुःख हैं, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। जितना देह में लक्ष्य जाता है, उसे आकुलता-आकुलता अंगारे सिंकते हैं। ज्वाला उठती है अन्दर से। यह पुण्य-पाप की वृत्तियाँ उठे, ज्वाला-अग्नि उठे, आत्मा की शान्ति को जलाती है। आहाहा!

मुमुक्षु : यहाँ तो तीखारा को भी छूना सुहाता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहते हैं न। छूता है कब? तीखारा-अंगारा यहाँ छूता ही नहीं कभी। एक द्रव्य, दूसरे द्रव्य को कभी तीन काल में छूता नहीं। जितने एक द्रव्य में

अपने धर्म हैं, उसे वह द्रव्य चूमता है, आलिंगन करता है, परन्तु दूसरे परस्पर में चूमते नहीं। यह तो वह गाथा (तीन) समयसार में (आ गया है)। **'एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुदंरो लोगे।'** अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि भाई! प्रत्येक पदार्थ अपने अनन्त धर्मों को चूमता है, छूता है, स्पर्शता है, परन्तु परस्पर कोई द्रव्य किसी द्रव्य को कभी स्पर्शता, छूता है नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह देह के दुःख की अपेक्षा से बात की। कहीं देह दुःख नहीं। देह को अनुसरकर विकल्प सुलगता है, वह दुःख है, ऐसा कहना है यहाँ तो। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, **उनका कारण यह शरीर, उसको बुरा समझकर...** बुरा का अर्थ कहीं वापस द्वेष नहीं, हों! वरना मोक्षमार्गप्रकाशक में आया है कि पहले मित्र से प्रेम करता था और फिर शत्रु हुआ तो दुश्मन देखा शरीर को। वह तो परद्रव्य के प्रति अनिष्टबुद्धि हुई। पहले राग था, फिर शरीर को, वह तो शरीर में विष्टा है और शरीर ऐसा है और वैसा है, वह तो द्वेष हुआ। ऐसा नहीं। वह अशुचिमय शरीर है, मैं शुचिमय प्रभु हूँ। ऐसा ज्ञान करके, उसे अशुचि जानकर, अपवित्र (जानकर)। द्वेष करके, ऐसा नहीं। पहले प्रेम करता था, फिर द्वेष किया कि छोड़ शरीर को। क्या है परन्तु छूटा हुआ ही पड़ा है। वहाँ कहाँ घुस गया है तेरे पास? तूने प्रेम से आदर किया है, अब तू द्वेष से नकार कर। दोनों कषाय है। यह नहीं। देह जो है, वह है, मैं भगवान आत्मा आनन्द हूँ। ऐसा जानकर, देह को अशुचि आदि जानकर उसमें मुझे सुख नहीं, ऐसा बुरा जानकर। समझ में आया?

समझकर ज्ञानी जीव देह की ममता छोड़ देते हैं,... आहाहा! ममता छोड़ देते हैं। देह तो छूटा हुआ पड़ा ही है वहाँ। वह कहाँ छोड़ा जाये ऐसा है? समझ में आया? अरे! एक पहली अवस्थायें हुई हो। माँ-बाप के पास कि माता के पास ऐसे लाड़ लड़ाया हो दस वर्ष का, बारह वर्ष का। वह याद करे कि नहीं, माँ! यह हो, फलाना यह। तो उसे ऐसा हो कि अरे! वहाँ आगे मुझे ऐसी यह निर्लज्ज बात शोभती नहीं थी वहाँ। और अब अभी यह क्या करता हूँ? समझ में आया? माता के पास बात करते। माँ! मुझे ऐसा है। भाई! तुझे दुःख है, अपने अब ऐसा करेंगे। अब वहाँ आगे कैसी

दीनता और ऐसे मानो माता के पास जाने... वह कुत्ते का बच्चा क्या कहलाता है वह? पिल्ला। गलुडीयुं कहते हैं? क्या कहते हैं हिन्दी में? दूसरा कहते हैं। कुत्ते का पिल्ला। माँ! मुझे ऐसा है, भाई! ऐसा करता। वहाँ कुछ अभिमान था उसे? माँ! मुझे ऐसा है हों! मुझे ऐसा है। भाई! अब ऐसा करेंगे हों! बापू! तुझे ऐसा करेंगे। अब वहाँ कहाँ मान था कुछ? यह स्थिति अभी याद करे। किससे तुझे मान लेना है? कहाँ तुझे दीनता किसके पास करनी है? आहाहा! समझ में आया?

पूर्व की बात याद करे तो खबर पड़े कि कब मेरी स्थिति १०-१० वर्ष की, ८ वर्ष की, १२ वर्ष की, १५ वर्ष की (थी)। मैं माता-पिता के सम्बन्ध में किस प्रकार मेरी दशा गुजरी थी। समझ में आया? उसमें तो कहीं दूसरा कोई विकल्प या कुछ नहीं था कि ऐसा हो... ऐसा हो... ऐसा हो... और उसमें ऐसी विषय-वासना या गृद्धि, वहाँ तो उसे याद भी नहीं आती थी। वहाँ तो ऐसा जरा यह ख्याल भी नहीं था कि यह क्या है? ऐसी स्थिति को याद कर तो निर्दोषता तेरी कैसी थी व्यवहार से? व्यवहार से निर्दोषता। समझ में आया? यह फिर से यहाँ वापस जहाँ बड़ा और कुछ ज्ञान जहाँ बढ़ा, सदोषता घुस गयी। ज्ञान को बढ़ने के कारण से घुसी है? समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, एक बार इस शरीर का स्वरूप है, उसे तू देख और जान और भगवान आत्मा में आनन्द है, ऐसा जान। ऐसा जानकर ममता छोड़। दूसरे प्रकार से ऐसे साधारण रीति से करते हैं, वह तो अनन्त बार छोड़ा, वह छोड़ा नहीं। अनन्त बार देह में जरा उपेक्षा की, परीषह सहन किये। परन्तु नहीं, जब तक अन्दर में परद्रव्य के लक्ष्य से होते राग में प्रेम है, वहाँ तक देह के परीषह इसने सहन किये, यह कहने में नहीं आता। राग और शरीर की एकताबुद्धि पड़ी है। है न? अमृतचन्द्राचार्य कायक्लेश (कहते हैं)। चरणानुयोग, २३६ गाथा प्रवचनसार चरणानुयोग (सूचक चूलिका) २३६ गाथा।। जिसे राग का एक अंश भी प्रिय लगता है, उसे छह काय की हिंसा का त्याग बिल्कुल नहीं और शरीर का त्याग बिल्कुल नहीं, आहार का त्याग बिल्कुल नहीं। २३६ गाथा है चरणानुयोग (सूचक चूलिका) प्रवचनसार। समझ में आया?

यहाँ तो भगवान एक ओर शुद्ध आत्मकन्द तथा एक ओर राग और शरीर आदि

सब गाँव पूरा। उसमें कहीं भी एकत्वबुद्धि है तो उसे शरीर का त्याग और ममता उसने छोड़ी नहीं। भले शरीर साथ में हो और सहन करता हो परीषह आदि, परन्तु वास्तव में अन्दर एकत्वबुद्धि है। एकत्वबुद्धि शरीर और राग के साथ एकत्वबुद्धि (है तो) कषाय का तीव्र अभिप्राय मिथ्यात्व का पड़ा है। समझ में आया? आहाहा!

परमात्मा पिता उसे जरा लक्ष्य में लेकर मैं क्या करता हूँ? कहाँ हूँ? यह विचारे तो खबर पड़े। माँ-बाप के पास जैसे अमुक काम करने में शरमाता था। वैसे परम परमात्मा तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ प्रभु विराजते हैं। तेरी समय-समय की बात भगवान जानते हैं। तीन लोक के नाथ परमात्मा साक्षात् देखते हैं। तेरे माँ-बाप तो तेरे परिणाम को देख सकते भी नहीं थे, परन्तु तो भी माँ-बाप के साथ नैतिक जीवन में ऐसी विपरीत की उद्धता के भाव तूने किये नहीं थे। बराबर है? आहाहा! तो यह तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ प्रभु धर्म पिता के निकट बैठकर तू क्या करता है तू यह? यह तूने विचार किया है? आहाहा!

प्रभु! मेरी बात सर्वज्ञ जानते हैं समय-समय में। तो मेरा आत्मा ऐसा ही उनका और ऐसा का ऐसा मेरा। तो उस आत्मा का प्रेम करके और शरीर के प्रति का प्रेम, एकत्वबुद्धि छोड़ दे। भगवान भी एकत्व छोड़कर पूर्ण हुए, उन्होंने यह आज्ञा दी, तू पुत्ररूप से यदि हो तो। उनका उत्तराधिकार यह है। आहाहा! किस प्रकार से समझाना? भगवान सर्वज्ञ परमात्मा... जैसे माँ-बाप के पास छोटी उम्र में उद्धता बिना विषय की चेष्टा और वृत्ति बिना वहाँ रहता या नहीं बैठता तब? कि वहाँ गोद में बैठे तब उसे दूसरे कुछ विचार होते थे? अरे १०-१० वर्ष के पुत्र माँ की गोद में बैठे। तो उसे कुछ विचार होगा दूसरा? माता है, इसकी गोद में बैठा हूँ। दूसरा विचार नहीं होता। कोई एक साधारण विकल्प और ममता की बात नहीं। परन्तु तीव्र उद्धता के भोग की वासना या ऐसा उसे हो उस समय? इसी प्रकार भगवान तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमात्मा की गोद में मैं बैठा हूँ। मुझे अमुक भाव हो नहीं सकते।

देवचन्दजी ने कहा नहीं? 'मोटाने उछंग बेठाने शी चिंता, तेम प्रभु चरण पसाय सेवक थया निश्चिंता' प्रभु! तेरी गोद में सिर रखा। अब हम निश्चिन्त हैं। माँ की गोद में

सिर रखे, उसे मरने का भय नहीं होता, कोई गाली देगा, मारेगा। माँ की गोद में सिर रखा हो, उसे डर होगा? कि मुझे मारेगा। माँ मरेगी तो मुझे मरने देगी। वहाँ तक... तो हे नाथ! तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ प्रभु! मैंने आपको पिता ठहराया और आपका मैं तो पुत्र हूँ। आहाहा! पुत्र बहुत प्रकार के चलते हैं, हों! एक धर्मपुत्र भी कहलाता है। आता है। गौतम को पुत्र कहा है। पण्डितजी! यह धवल में। गौतम को धर्मपुत्र कहा है। धवल में पाठ है। सब शास्त्र में तो पाठ के पाठ भरे हैं। धर्मपुत्र गौतम है। आहाहा! ऐसा पाठ है, हों! आता है न। बताया था, नहीं? नीचे नोट में है। कहीं उसका आधार दिया है। धर्मपुत्र गौतम। गणधर धर्मपुत्र। उस पुत्र ने भगवान की गोद में सिर रखा, उसे दूसरा अब शरीर और राग की एकता उसे शोभे? समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, भाई! यह देहादि की ममता छोड़कर जिसने परमात्मपद प्राप्त किया, ऐसे परमात्मा का यदि तुझे भक्त होना हो तो तू भी राग और देह की एकताबुद्धि छोड़कर, ममता छोड़ दे और स्वभाव की श्रद्धा कर। श्रद्धा आत्मा आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... तीन काल में मेरा आनन्द अन्यत्र है नहीं। ऐसी रुचिसहित उसमें निवास कर। अन्यत्र कहीं बसने जैसा नहीं है। बस न सके तो दृष्टि में तो यही रख। यहाँ बसने योग्य है, कहीं बसने योग्य नहीं। भगवान कैसे स्वरूप में पूरे बसे? जिन्हें तू बड़ा माने, वह पूरे बसे आत्मा में। तू जिन्हें बड़ा मानता है। तुझे बड़ा होना है या नहीं? आहाहा!

भगवान आत्मा... कहा न पहला? **वीतराग परमानन्दरूप जो आत्म-सुख...** उसे छोड़कर पर में ममता करता है, भाई! वह छोड़ ममता। समझ में आया? **और शुद्धात्मस्वरूप का सेवन करते हैं,...** भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप की दृष्टि, उसमें रखकर उसका सेवन करता है। उसमें दृष्टि रखकर अर्थात् परिणमन हुआ अर्थात् उसने आत्मा का सेवन किया। जिसने राग में दृष्टि शरीर में (दृष्टि) रखी, उसने राग और शरीर का सेवन किया। समझ में आया? यह तो मुद्दे की रकम की बात है। परमात्मप्रकाश अर्थात्? तैयार ताजा लड्डू। तैयार और ताजा। ताजा समझते हो? अभी बनाया हो नया लड्डू गर्म-गर्म घी डालकर। लसलसता शब्द आता है न? ऐसा अपने है न, नहीं?

आता है न कलश में आता है वहाँ समयसार (में) पीछे। शब्द क्या है वह? लसत। लसत है न? वह कलश है कलश कहीं। २७१। वह नहीं। २७१ नहीं। कितना है?

'स्याद्वाददीपितलसन्महसि प्रकाशे' लसत। लसत का अर्थ अपने किया है लसलसता। जगजगाहटमान, लसलस ऐसे प्रकाश... प्रकाश... प्रकाश... **'स्याद्वाद-दीपितलसन्महसि प्रकाशे'** लसलसता। तुम्हारी भाषा होगी कुछ ऐसी। हिन्दी में किया होगा, हिन्दी में किया होगा। लसत। समझ में आया? ऐसा जगजगाहट जिसका तेज, जिसमें शुद्ध स्वभाव की महिमा है। जिसका शुद्ध स्वरूप। आहाहा! ऐसा तेज... तेज... तेज... ऐसे चक... चक... चक... होता है न। जगमग-जगमग। हाँ, यह जगमग किया है कोष्ठक में। जगजगाहट करता, लसलसता।

हलुवा होता है न ताजा हलुवा। यह शीरा क्या कहलाता है? हलुवा। वह घी में तला हुआ हो ऐसे गर्म-गर्म ऐसे फर्स्ट क्लास घी का (सेंका हुआ) अच्छा आटा, उसे हमारी काठियावाड़ी भाषा में लसलसतो कहते हैं। बिना दाँत के मनुष्य को चबाना भी न पड़े। ग्रास उतर जाये। कहो, न्यालभाई! यह तो निहाल होने के रास्ते की बात है। आहाहा! भगवान न्यालकरण है। उन स्वामी नारायण में भाई कहते। स्वामी नारायण हुए न सहजानन्द। न्यालकरण कहते। स्वामी नारायण यह हुए न। वे स्वयं प्रभु कहलवाते।

मुमुक्षु : वे लोग मानते।

पूज्य गुरुदेवश्री : मानते थे। क्योंकि ब्रह्मचारी व्यक्ति था। व्यक्ति बालब्रह्मचारी तो सही, हों! कोई दूसरे प्रकार से कहे तो खोटा। भवनपति अथवा व्यन्तर में से कुछ आया हो ऐसा लगता है और व्यन्तर में जाना, इसलिए उसे वैकुंठ लगा। व्यन्तर के देव में से आये होंगे और वापस बालब्रह्मचारी, इसलिए ऐसा हो गया कि मैं प्रभु हूँ, ऐसा हो गया। पूरी जिन्दगी स्त्री का नहीं, हों! एक बार तो ऐसा हुआ कि वह स्वयं ब्रह्मचारी व्यक्ति तो एक कुछ विवाह होता था किसी का। कहे, यह क्या होता है? कहा, विवाह। विवाह अर्थात् क्या? कहे। कि स्त्री से विवाह करते हैं। तब मुझे विवाह कराओ न! ऐसी कुछ लाईन नहीं, हों! ऐसा। कहे मुझे विवाह कराओ न, तब कहे विवाह करायेंगे साहेब। यह विवाह का नाम जहाँ कान में पड़ा, तीन दिन उल्टी रही। तीन दिन वमन-

वमन। उल्टी। क्योंकि वह ख्याल आवे न शरीर उसे। तीन दिन तक। लोग उलझन में आ गये। अरेरे! यह भगवान को हमने क्या किया? वह तो बोला गया उससे कि भाई मुझे विवाह कराओ न! तब कहे चलो विवाह कराते हैं। और नाम जहाँ विवाह का कहा, वहाँ उल्टी शुरु हो गयी अन्दर से। वमन। तीन दिन तक वमन बन्द न रहे। मेरी भूल हो गयी। आप कैसे बोल गये और हमारी भूल हो गयी। ऐसा ब्रह्मचारी कि नाम जहाँ कान में पड़ा, वहाँ उल्टी शुरु हो गयी। समझे न? वमन। तीन दिन, हों! तीन दिन और तीन रात्रि। ऐसा ब्रह्मचारी। फिर उसे प्रभु का हो गया।

एक बार लींबड़ी में आये उपाश्रय में। साधु थे न। लींबड़ी में स्थानकवासी साधु थे। वहाँ गये हुए सब जाये इसलिए। उसमें साधु ने पूछा कि सहजानन्दजी! तुम प्रभु नाम धराते हो? कहे, हाँ। कि प्रभु में सब, प्रभु का पेट बड़ा है। प्रभु के पेट में सब समाये, ऐसा बोले थे। परन्तु वे जब गाँव में जाते, तब काठी लोगों को माँस छुड़ावे, मदिरा छुड़ावे, परस्त्री छुड़ावे बहुत ऐसा। इसलिए लोगों ने उनका नाम दिया न्यालकरण। काठी लोग चोरियाँ करते, वह सब बन्द करा दिया। ... बहुत था। आँख बड़ी, रूपवान बहुत। जूती पहने और मखमल के वस्त्र पहने, हों! वह तो घोड़ी रखे बड़ी पाँच-पाँच हजार की घोड़ी, उसके ऊपर बैठे। ऐसे दूसरे प्रकार से निर्दोष, परन्तु ऐसी दृष्टि की खबर नहीं। तत्त्व की खबर नहीं होती। ब्रह्मचर्य के लिये... इसलिए उन्हें ऐसा हो गया कि मैं तो भगवान हूँ। जहाँ हो, वहाँ ऐसा कहे। लोग उन्हें कहे न्यालकरण... न्यालकरण... न्यालकरण... हमको न्याल किया। न्यालभाई!

यह तीन लोक के नाथ वीतराग पके, वे न्यालकरण हैं। बाकी तो धूल में भी न्यालकरण नहीं। अन्दर वह तो पुण्य कोई न खाये माँस या लहसुन या अमुक, उसमें ऐसा पुण्य बाँधे थोड़ा। उसमें न्याल क्या हुआ? वापस मरकर नरक में जायेगा और पशु होकर भटकेगा। यहाँ तो तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ न्यालकरण प्रभु है। फरमाते हैं कि एक बार तू पर की ममता छोड़ और स्व की समता में आ। तेरा स्वभाव परिपूर्ण मेरे जैसा ही भरा है। मुझमें और तुझमें कुछ अन्तर नहीं।

शुद्धात्मस्वरूप का सेवन करते हैं, निजस्वरूप में ठहरकर देहादि पदार्थों में...

वापस हों, ऐसा। **निजस्वरूप में ठहरकर देहादि पदार्थों में प्रीति छोड़ देते हैं।** ऐसे देहादि की प्रीति छोड़ी, लो, वैराग्य कर लो, छोड़ दे—ऐसा नहीं। ऐसे अस्तिरूप पदार्थ में स्थिर होने से पर की ममता की नास्ति हो, उसका नाम वास्तविकता कहा जाता है। समझ में आया? देखो, **निजस्वरूप में ठहरकर देहादि पदार्थों में प्रीति...** देहादि सब। तो ममता छूटे यहाँ शान्ति दिखाई दे दृष्टि में। उसमें स्थिर हो, महानता लगे, महिमा लगे, इसलिए पर की महिमा छूट जाये। तो छोड़ा कहलाये। **और शुद्धात्मस्वरूप का सेवन करते हैं,... इस देह में कभी सुख नहीं पाते, सदा आधि-व्याधि से पीड़ित ही रहते हैं।** देखो, लिया अब आधि ली। यह शरीर व्याधि का घर, परन्तु इसके लक्ष्य से तुझे अकेली आधि ही उत्पन्न होगी। अर्थात् विकल्प, मानसिक विकल्प। मानसिक आधि, शारीरिक व्याधि, संयोग से उपाधि। समझ में आया? उससे रहित वह समाधि। आहाहा! बराबर अर्थात् वापस शरीर उपाधि है दुःखरूप, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : मेरा है, ऐसा मानना, वह दुःख है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह दुःखरूप है, ऐसा यहाँ तो कहा है।

देखो, **सदा आधि-व्याधि से पीड़ित ही रहते हैं।** शरीर में तो शरीर व्याधि और शरीर को अनुसरकर हो आधि। समुद्र उछलता है तो क्या कहते हैं? उसे कहते हैं न कुछ? आँधी आयी। आँधी कहते हैं। आँधी कहते हैं। उसे आधि कहते हैं। समुद्र में कहीं। बस, मानसिक व्यथा, वह आधि कहलाती है, शरीर की पीड़ा को व्याधि कहा जाता है। बाहर की उप-आधि। उपाधि। उप-समीप में जो आधि ली। ढ़ेर स्त्री, पुत्र सब धूल के, वह सब उपाधि। कहो, समझ में आया? उपाधि का अर्थ कि उसे अनुसरण करने का भाव, ऐसा। इसलिए आधि को मूल में लेकर व्याधि को बाहर से बताया है।

पंचेन्द्रियों के विषयों से रहित जो शुद्धात्मानुभूतिरूप परमसुख, वह देह के ममत्व करने से कभी नहीं मिल सकता। लो! अभी तो देह का (ऐसा स्वरूप)। उसके बदले पुत्र, मकान और इज्जत और मेरी इज्जत गयी, हम बड़े थे, हमें नीचे उतारा, मेरा नीचे अपमान किया। यह मार डाला जगत को। नीचे निगोद में जाये, उसके परिणाम करे तो उसे नीचा नहीं लगता। जिस परिणाम से निगोद में जाये तत्त्व का विरोध करके,

वह उसे हीन नहीं लगता। यह हीन गति में जाये, वहाँ फिर भले निगोद हो। यहाँ उसे कहे ... गधेड़ा! भाव करता हो कपट का और उस माया के फल में वह गधा होनेवाला हो। परन्तु उसे गधेड़ा कहे तो सुहावे नहीं। गधेड़ा के भाव सुहावे। जिस भाव से गधेड़ापन मिले, वह भाव सुहावे, गधेड़ा (कहे) वह सुहावे नहीं। ऐसे चार गति के भाव सुहावे। समझ में आया? परन्तु उसे कहे कि ... नारकी! मुझे नारकी कहते हैं? आज नहीं तो कल जायेगा, कल नहीं तो यह भव छूट जायेगा, ले। जो पाप के भाव किये, इसलिए नरक में जाने के लिये भविद्र नारकी है, ले न! भविद्रनारकी कहे। भविद्र अर्थात् भविष्य में होने के योग्य, उसे वर्तमान नारकी कहा जाता है। आहाहा! ऐसे चार गति में भटकने के भाव करे तो चार गति का नारकी है। वह नारकी जरा कठिन पड़े। बाकी देव हो तो ठीक, राजा हो तो ठीक, परन्तु यह चारों ही सब दुःख है, सुन न! देह ऐसी मिलेगी, ऐसा कहने पर वह प्रसन्न होता है। मूर्ख है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

अब ऐसी देह मिले, वहाँ प्रसन्न हो तो कहे मूर्ख है। पैसे इतने मिले, लड़के इतने हों। इज्जत कितनी बड़ी जगत में। लम्बी-लम्बी पार नहीं होता। बड़ी। यश-कीर्ति की व्याख्या की है न कुछ। थोड़े में व्यापे, वह यश कहलाये और पूरे देश में व्यापक, उसे कीर्ति। ऐसा आता है। यश-कीर्ति के शब्द दो के भिन्न-भिन्न (अर्थ हैं)। यह यशोकीर्ति नामकर्म की प्रकृति है न, उसका ऐसा अर्थ किया है कहीं। कहीं सब याद रहते हैं? परन्तु थोड़े में व्यापे, उस यश कहा जाता है और बहुत देशव्यापी हो, उसे कीर्ति कहा जाता है। धूल में भी नहीं। यहाँ व्यापे उसे कीर्ति कहा जाता है। समझ में आया?

भगवान आत्मा को अपनी दृष्टि करके **देह के ममत्व करने से (सुख) कभी नहीं मिल सकता। महा दुःख के कारण इस शरीर में सत्पुरुष कभी नहीं रह सकते।** देखो, है न? अरे! सत्पुरुष! अरे! सत्जन! सज्जन! सज्जन। डबल 'ज' है न? तो सत्जन होता है न? सत्जन। देखो, आगे आयेगा अभी, हों! वह गाथा आयेगी, १५४ में। वह ... आयेगी। २०६वीं गाथा निर्जरा की आती है न। वह आयेगी। **देह से उदास होकर संसार की आशा छोड़। सुख का निवास सिद्धपद उसको प्राप्त होते हैं।** भगवान आत्मा

अपनी दृष्टि अपने में करे और इस प्रकार से पर की एकताबुद्धि छोड़े तो उसका निवास सिद्धपद में है और राग की एकता में निवास करे, उसका निवास चार गति के देह में, भव में है। समझ में आया?

और जो आत्म-भावना को छोड़कर सन्तोष से रहित होके देहादिक में राग करते हैं, वे अनन्त भव धारण करते हैं, संसार में भटकते फिरते हैं। अनन्त भव के छेदरूप स्वभावभाव, जिसे रुचा उसे अनन्त भव नहीं और जिसे अनन्त शान्ति आदि अनन्त गुण न रुचे और राग का कण रुचा, उसे अनन्त भव का भाव रुचा है। वह अनन्त भव में रुलनेवाला है। समझ में आया? १५३ हुई।

★ ★ ★

गाथा - १५४

आगे यह उपदेश करते हैं, कि तू आत्म-सुख में प्रीति कर — देखो, १५४।

२८५) अप्पायत्तउ जं जि सुहु तेण जि करि संतोसु।
पर सुहु वढ चिंतंताहँ हियइ ण फिट्टइ सोसु॥१५४॥

हे शिष्य!... समझ में आया? '**वढ**' विशेष कहा है। कहीं शब्द प्रयोग किया है वापस कहीं है न! मित्र शब्द भी किया है कहीं। '**चिन्तयतां वत्स मित्र**' शब्द पड़ा है। संस्कृत में पहली लाईन है उस ओर। '**चिन्तयतां वत्स मित्र हियइ ण फिट्टइ**' है? वत्स का अर्थ ही मित्र किया है न? बराबर। शिष्य कहो, मित्र कहो, ऐसा कहा। **हे शिष्य!...** हे मित्र! देखो, आहाहा! आचार्य करुणा कितनी करते हैं। मित्र ठहराते हैं। अर्थात् अपने मैत्री करें न भाई! तुझे आत्मा का प्रेम हो, रुचि कर तो तू हमारा मित्र है। '**जो आत्मायत्तं सुखं**' वह आत्मा के आधीन सुख। भाषा देखो, आत्मा के आधीन सुख। **परद्रव्य से रहित आत्माधीन सुख है,...** लोग कहते हैं 'पराधीन स्वप्ने सुख नहिं।' इसका क्या अर्थ? यह राग और पर के आधीन होना उसमें कहीं धूल में भी सुख नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : शरीर खराब हो तो दुःख नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर खराब में दुःख कब था? उसके आधीन होता है, वह स्वयं दुःख है। आत्मा आधीन सुख और पराधीन, वह दुःख। पराधीन सपने सुख नहीं। लोग कहे, अपने को नौकरी मिली। वह नहीं। नौकरी पराधीन सुख नहीं, भाई! विचारा हुआ नहीं होता। यह नहीं। यहाँ तो पुण्य-पाप के आधीन होना, वह पराधीनपना है। उस पराधीन में स्वप्न में सुख नहीं। आहाहा! देखो, भाषा क्या प्रयोग की है? '**आत्मायत्तं सुखं**' भगवान आत्मा, जिसे आत्मा कहते हैं, वह तो पूर्ण पवित्र है। उसके आधीन सुख है। पुण्य-पाप के विकल्प के आधीन सुख नहीं, शरीर के आधीन सुख नहीं। शुभराग के आधीन सुख नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

'**आत्मायत्तं**' **परद्रव्य से रहित...** भगवान आत्मा के आधीन सुख है। **उसी में सन्तोष कर,...** सब समयसार के बीज लिये हैं सब, हों! **इन्द्रियाधीन सुख को चिन्तवन करनेवालों के चित्त का दाह नहीं मिटता।** इन्द्रियाधीन की कल्पना में चित्त का दाह सुलगेगा। समझे? वह शान्त नहीं होगा, भाई! वह परसन्मुख की चिन्ता शान्त नहीं होगी। उसमें दुःख ही है। उसमें दुःख है... दुःख है... ज्वाला-ज्वाला है। भगवान आत्मा परमात्मस्वरूप स्वयं, उसके आश्रय से जो हो, वही शान्त और सुख है। पर चिन्तवन में तो अकेली ज्वाला दुःखरूप भाव है। ओहोहो!

भावार्थ :- आत्माधीन सुख आत्मा के जानने से उत्पन्न होता है,... टीका। **आत्माधीन सुख आत्मा के जानने से...** देखो, भगवान आत्मा जानना। जानना अर्थात्? यह पुण्य-पाप के राग और शरीर, कर्म रहित जानना। तब वे चिल्लाहट मचाये। अरे! परन्तु अभी? भगवान! बापू! अभी यह निर्णय नहीं करे, वहाँ तक तुझे शान्ति और सुख नहीं मिलेगा। अभी कर्मबन्धनरहित? अरे! बन्धन तो रहित, परन्तु विकार रहित, सुन न अब। यह तो एक समय की पर्याय है। पूरा द्रव्य है, वह कहीं राग के आधीन हो गया है? तेरी मान्यता के आधीन हुआ है। मान्यता के आधीन तू हुआ। भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य वस्तु के आधीन जो उत्पन्न, उसे जानने से उत्पन्न हो, वह सुख उत्पन्न कहलाता है। उसे जानना कहलाता है। आत्मज्ञ। राग-द्वेष को जानना नहीं, पुण्य-पाप को जानना नहीं। वह तो पर है। स्वयं आत्मा ज्ञायकस्वरूप है, उसे जानने से आत्मा को सुख की उत्पत्ति होती है। जानना अर्थात् स्वसंवेदन से आत्मा को जानना।

ज्ञान से ज्ञान को जानना, इसका नाम जानना कहलाता है। समझ में आया? अध्यात्म की बात कहेंगे। देखो, नीचे अध्यात्म का अर्थ करेंगे। भाई! अध्यात्म की बात अलौकिक बात है, ऐसा बताने को अध्यात्म का अर्थ नीचे संस्कृत में करेंगे। समझ में आया? अध्यात्म अर्थात् आत्मा-आश्रित बात अलौकिक है। कहते हैं, **इसलिए तू आत्मा के अनुभव से सन्तोष कर,...** सन्तोष हो। आत्मा के अनुभव से सन्तोष हो। पैसे से नहीं। शरीर अच्छा हो तो हाश। ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : देह से सन्तोष नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी देह से सन्तोष नहीं होता। एक म्यान में दो नहीं समाते। एक म्यान में दो तलवार नहीं समाती, एक ही समाती है। या भगवान रुचि में पोसाये और या राग रुचि में पोसाये। दोनों पोसाये, ऐसा नहीं होता। कहो, समझ में आया?

आत्मा के अनुभव से सन्तोष कर, भोगों की वांछा करने से चित्त शान्त नहीं होता। मर जा तो भी नहीं होगा, कहते हैं। विकल्प किया कर ऐसे भोग ले लूँ और ऐसा ले लूँ, ऐसा ले लूँ। फिर कुतुहलता मिटे और फिर शान्त हो। यह दृष्टान्त देंगे। दृष्टान्त देंगे। ... यह श्लोक है कहीं का। पहले मुखाग्र किया था। ... ... प्रज्ञा-प्रज्ञा ऐसा कुछ आता है। ऐसे श्लोक आते हैं। शुरुआत में यह मुखाग्र किये हुए पहले। नाम था, उसका नाम प्रज्ञा या ऐसा कुछ था। यह गाथायें उसमें आती हैं। यह स्थानकवासी में आती हैं वे, हों! है न अन्दर श्लोक है। .... यह ईंधन के डालने से, तृण डालने से अग्नि कोई शान्त नहीं होती। लवण समुद्र... हजार नदियों का पानी डालने से लवण समुद्र कभी पूरा नहीं होता। ... कामभोग से। ऐसे कामभोग से कभी तृप्त होगा नहीं। कहो, यह श्लोक है कहीं का, हों! प्रज्ञा या ऐसा कुछ नाम दिया है। यह आता है। २५, ३०, ३५ श्लोक आते हैं। बहुत शुरुआत में किये (संवत्) १९७० के वर्ष शुरुआत में। वह पूरा भूल गये बाद में। वह तीन कठी अग्नि आती है। समझ में आया? सन्तोष कर।

भोगों की वांछा करने से चित्त शान्त नहीं होता। जो अध्यात्म की प्रीति है, वह स्वाधीनता है,... अध्यात्म की प्रीति, वह स्वाधीनता है। स्वाधीन यह हुआ, कहते हैं न,

देश स्वाधीन हुआ। अभी स्वतन्त्रता मिली। धूल में भी मिली नहीं। अध्यात्म की प्रीति से स्वाधीनता है। समझ में आया? है न संस्कृत? '**अत्राध्यात्मरतिः स्वाधीना विच्छेद-विघ्नौघरहिता च**' यह कैसा है? **इसमें कोई विघ्न नहीं है,...** आत्मा के आधीन में प्रीति स्वभाव की करना, उसमें किसी का विघ्न नहीं। कर्म-बर्म अवरोधक नहीं, कोई तुझे अवरोधक नहीं, शरीर अवरोधक नहीं, कुछ अवरोधक नहीं। **और भोगों का अनुराग वह पराधीनता है।** लो! भोगों का अनुराग पराधीन... पराधीन... पराधीन... **भोगों को भोगते कभी तृप्ति नहीं होती।**

देखो, आया अब। **जैसे अग्नि ईंधन से तृप्त नहीं होती,...** अग्नि कहीं ईंधन से तृप्त होगी? चाहे जैसा ईंधन डाले। भाई! ईंधन डालने से वह बुझ जायेगी? जरा भी नहीं बुझेगी। इसी प्रकार भोग भोगते हुए कुतुहलता मिटेगी अपने को? सन्तोष कर तो मिटेगी। उनसे नहीं मिटेगी तीन काल-तीन लोक में। दृष्टि बदल डाल। भोग की वृत्ति से कभी सन्तोष होगा नहीं। तीन काल में नहीं होगा। समझ में आया? देखो, **सैकड़ों नदियों से समुद्र तृप्त नहीं होता है।** यह जरा समयसार का दृष्टान्त दिया है। वह कहेंगे। २०६ गाथा का।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आषाढ़ कृष्ण ९, गुरुवार, दिनांक - २२-०७-१९६५
गाथा - १५४ से १५६, प्रवचन - १७६

परमात्मप्रकाश, दूसरे भाग की १५४ गाथा। **ऐसा ही समयसार में कहा है,...** यहाँ से शुरु हुआ बीच में। २०६ गाथा, समयसार की निर्जरा (अधिकार) की गाथा है। उसका यहाँ आधार दिया है। '**एदम्हि रदो णिच्चं संतुट्ठो होदि णिच्चमेदम्हि। एदेण होहि तित्तो होहदि तुह उत्तमं सुक्खं॥**' कहते हैं **कि हंस, (जीव)...** जीव को हंस लिखा है। भरतेश वैभव में तो जीव को हंस ही बुलाया है। रत्नाकर कवि। हंस-हंस। हे हंस! हंस की चोंच में जैसे खटाई होती है, वह पानी और दूध को भिन्न करके दूध का मावा करके ले लेती है। उसी प्रकार हे जीव! तेरा स्वभाव हंस जैसा है। अर्थात् विकार पुण्य-पाप के, वह पानी है और स्वभाव आत्मा का वह शुद्ध दूध है। वह दूध, उसका एकाग्र होकर मावा कर। मावा समझते हो? दूध का मावा होता है। दूध का मावा होता है।

हंस (जीव)! तू इस आत्मस्वरूप में ही सदा लीन हो... मूल शब्द में तो रति शब्द है न? '**एदम्हि रदो**' मूल अर्थ टीका में ऐसा लिया है कि हे आत्मा! यह सत्य परमार्थस्वरूप ज्ञान है, इतना ही आत्मा है। यह सत्य स्वरूप अर्थात् परमार्थ। मूल सत्य शब्द है टीका में। यह सत्य स्वरूप अर्थात् कि परमार्थ स्वरूप यह आत्मा इतना है कि जितना यह ज्ञान है। ज्ञान है, उतना आत्मा है और आत्मा है, उतना ज्ञान है, वह उसका सत्य स्वरूप और परमार्थ स्वरूप है। समझ में आया? शरीर, वाणी, मन, जड़, मिट्टी, पुण्य-पाप के भाव, वह विकार। इनसे रहित अकेला सत्य स्वरूप तेरा सच्चिदानन्द शुद्ध है कि जितना ज्ञान, उतना आत्मा। वह ज्ञान अर्थात् वह जानपने का स्वभाव। जानने का स्वभाव इतना सत्य और इतना आत्मा और उतना परमार्थ। उसमें प्रीति कर, रुचि कर तो तेरा हित होगा। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : छोड़ना किसमें से?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पर में से। छोड़ने की बात ही नहीं कुछ यहाँ। पुण्य और पाप के भाव और परवस्तु की प्रीति छोड़, ऐसा नास्ति से न कहकर, आत्मा के ज्ञानस्वरूप, सत्य स्वरूप में प्रीति कर, तो पुण्य-पाप और पर की प्रीति छूट जायेगी। छूट जायेगी, उसकी बात आचार्य ने नास्ति से नहीं की, अस्ति से की है। समझ में आया?

'**एदम्हि रदो**' यह शब्द पड़ा है। हे आत्मा! यदि तुझे धर्म करना हो... अन्तिम शब्द है न भाई! तो उत्तम सुख होगा। यह किसी को पूछने जाना नहीं पड़ेगा। ऐसा संस्कृत पाठ है। पूछने नहीं जाना पड़ेगा। भगवान आत्मा इतना सत्य है, देखो, इतना सत्य है कि जितना वह स्वयं ज्ञानस्वरूप है। वह ज्ञानस्वरूप है, उतना वह सत्य है और उतना वह आत्मा है। पुण्य-पाप के भाव, शरीर, वाणी, कर्म, वह आत्मा नहीं और वह आत्मा नहीं, इसलिए ज्ञानस्वरूप नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसकी अपेक्षा से असत् है। उसमें भले हो, परन्तु स्वरूप की अपेक्षा से स्व सत्, तो अपनी अपेक्षा से वे सब असत् है। समझ में आया? यह तो अध्यात्म भाषा है न, इसलिए अध्यात्म का अर्थ करेंगे।

'**एदम्हि रदो**' हे हंस! हे आत्मा! **तू इस आत्मस्वरूप में ही सदा लीन हो,...** है न? '**एदम्हि रदो णिच्चं**' ऐसा शब्द पड़ा है। नित्य अर्थात् कायम, सदा भगवान आत्मा वह ज्ञानस्वरूप, उतना वह सत्स्वरूप, उतना वह परमार्थस्वरूप। उसमें एकाग्र हो अर्थात् प्रीति कर, तुझे कल्याण होगा, अर्थात् तेरा हित होगा, अर्थात् तू सुखरूप होगा, ऐसा। एक बात। **सदा इसी में सन्तुष्ट हो।** है न? '**णिच्चं संतुट्ठो होदि णिच्चमेदम्हि।**' सन्तोष पा, उसमें सन्तोष पा। पुण्य-पाप के विकल्प में कहीं सन्तोष नहीं। व्यवहाररत्नत्रय के शुभराग में भी सन्तोष नहीं। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, पंच महाव्रत का राग, उसमें सन्तोष नहीं और वह जीव का सत्य परमार्थ स्वरूप नहीं। परमार्थ स्वरूप तेरा इतना कल्याणस्वरूप, सन्तोष में ऐसा लिया है, इतना तेरा सत्य है कि जितना कल्याण है। वह कल्याण कितना? कि जितना यह आत्मा ज्ञान है। यह ज्ञान उतना कल्याण है।

पुण्य-पाप के भाव आदि, वे कल्याणस्वरूप नहीं। समझ में आया? इतना भगवान आत्मा इतना वह सत्य है कि जितना उसमें कल्याण है। वह कल्याण कितना है? कि जितना उसमें ज्ञान है। अर्थात् ज्ञानस्वरूपी भगवान... यहाँ ज्ञानप्रधान से बात ली है। गुण तो अनन्त हैं, परन्तु ज्ञान ऐसा चैतन्यप्रकाश इतना कल्याण और उतना आत्मा, इसमें तू सन्तोष पा। अन्य कहीं सन्तोष है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : किसमें सन्तोष पावे?

पूज्य गुरुदेवश्री : इस आत्मा में। किसमें क्या? धूल में नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : .... दूसरा कुछ नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरा कुछ नहीं। किसमें? शरीर निरोग हो तो सन्तोष न मान, पैसा पचास लाख इकट्ठा हुआ, उसमें सन्तोष न मान। उसमें सन्तोष नहीं है। तृष्णा की ज्वाला सुलगती है वहाँ। चिमनभाई! कहो, सेठी! बराबर है?

भगवान आत्मा चैतन्यसूर्य प्रकाश का बिम्ब ज्ञान। इतना कल्याण कि जितना आत्मा, उसमें तू सन्तोष पा, अन्तर स्वरूप ज्ञान में सन्तोष पा। उसमें एकाग्र हो, वहाँ सन्तोष है। अन्यत्र कहीं सन्तोष है नहीं। आहाहा! समझ में आया? भाई! यह करोड़ मिले, फिर दो करोड़ मिले, तीन करोड़ मिले, धूल में भी नहीं कुछ।

मुमुक्षु : मिले तो हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसे मिले हैं? ममता मिली है। किसे मिले धूल? इसे कहाँ मिले हैं?

मुमुक्षु : सेठियाओं को मिले कुछ ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सेठिया को क्या मिले? सेठ को मिले ममता। पैसा तो पैसे में रहा। चिमनभाई! साथ लेकर आये हैं?

मुमुक्षु : पैसे के सुख की अपेक्षा हूंफ का सुख बढ़ जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह हूंफ का सुख होगा धूल का। हूंफ-हूंफ मिले कि हम पैसेवाले हैं। यह हूंफ अर्थात् ममता।

मुमुक्षु : परन्तु सुख प्रगट दिखता तो है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या दिखता है ? दुःखी दिखता है। नजर में अन्तर है। दुःखी... दुःखी... दुःखी... दुःखी... निर्धन दुःखी, सधन दुःखी। ममता से दुःखी है। कहो, अब लड़के अच्छे हों और कमाऊ हो तो कहते हैं कि सन्तोष है ? धूल में भी नहीं। वहाँ और दूसरा कुछ सुलगेगा। यह लड़के को लड़का होता नहीं। बीस वर्ष विवाह को हुए। अब क्या करना ? दूसरी कराना या नहीं ? यह सुलगा। होली सुलगती है, वहाँ कहाँ सन्तोष था ? है या नहीं परन्तु यह सब ? मर गये हैं कितने ही बेचारे, हों! लड़का न हो तो सासु जलकर मर जाये। मेरे लड़के को लड़का नहीं हो तो हम नया विवाह करायेंगे। यह विवाद हो और मरे। सासु मरे या बहू मरे। सन्तोष तो भगवान! तेरे ज्ञानस्वरूप में है। वह चैतन्य सत्य ज्ञान इतना है कि जितना यह आत्मा है और जितना आत्मा, उतना वह ज्ञानस्वरूप है। उस ज्ञानस्वरूप में एकाग्र हो, वहाँ सन्तोष है। बाकी पुण्य के विकल्प में भी सन्तोष नहीं। नये पुण्य के भाव करे, उसमें भी सन्तोष नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : और पाप के भाव में किसका सन्तोष ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो सब कहे, कुम्हार भी कहे। पाप नहीं करना, हों! पाप नहीं करना, हों! ऐसा तो सब ही कहे। यहाँ तो कहते हैं पुण्य का भाव वह सन्तोष नहीं, असन्तोष है। राग है न, तृष्णा है।

कहते हैं यहाँ, **इसी में सन्तुष्ट हो। इसी से तू तृप्त होगा...** देखो, अन्तिम शब्द यह है। है न ? '**एदेण होहि तित्तो**' ऐसे खाकर जैसे तृप्त होते हैं न लोग। खाया हो, भूख लगी हो। लड्डू हो और तृप्ति हो। यह दृष्टान्त है यहाँ तो। वहाँ क्या तृप्त होता था ? ऐसा कि सेर-सेर घी के लड्डू। चूरमा के होते हैं न चूरमा। उसमें सेर घी डाला हो अच्छा ऐसा ताजा अभी पाँच रुपये का सेर अभी महँगा मिलता है न।... चूरमा में एक सेर घी। वह लड्डू होवे तो ऐसा कि सन्तोष हो जाये, लो! होली सुलगती है वहाँ राग। वहाँ कहाँ सन्तोष धूल थी ?

भगवान आत्मा में तृप्त हो, तृप्त। बापू! यह तृप्ति का स्थान ही वह आत्मा है। जहाँ तृप्ति आयी। दूसरे से नहीं, चाहे जहाँ से हटकर वहाँ जा तो वहाँ तृप्ति है। कहीं अन्यत्र नहीं सुहाता हो तो वहाँ जा, वहाँ तृप्ति है। देखो, क्या कहते हैं? क्या कहा? **'एदेण होहि तित्तो' 'एदेण होहि तित्तो'** यह भगवान आत्मा ज्ञान का स्वरूप ज्ञानसूर्य, उसमें तुझे तृप्ति मिलेगी। बाकी अन्यत्र कहीं तृप्ति नहीं। आहाहा! पैसे में तृप्ति नहीं, स्त्री, पुत्र में नहीं, शरीर में नहीं, कर्म में नहीं, पाप के परिणाम में नहीं, यह पुण्य के परिणाम में भी तृप्ति नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया? तब उसे निर्जरा होती है। स्वरूप में तृप्तरूप से परिणमे और तृप्ति करे तो उसे अशुद्धता टले और शान्ति मिले। कहो, समझ में आया इसमें?

देखो न, उसमें अभी तो होली है न चारों ओर ऐसी। तृष्णा... तृष्णा... तृष्णा... तृष्णा... करोड़ मिले तो दो करोड़ और दो करोड़ मिले तो तीन करोड़। नुकसान मिटता ही नहीं। नुकसान। दो प्रकार के नुकसान कहते हैं न चिमनभाई! एक नुकसान। नुकसान समझते हैं? खाधीला को क्या कहते हैं? नुकसान। नुकसान-नुकसान (कमी) पड़ता है। टोटा करते हैं। एक तो मानो पचास लाख की पूँजी कहलाती हो और हो दस लाख। तो वह चालीस लाख की कमी कहलाये। बाहर में प्रतिष्ठा पचास लाख की हो और अन्दर हो दस लाख। तो वह चालीस लाख की कमी पड़ी न? टोटा-टोटा अन्दर में। एक प्रकार का वह नुकसान और दूसरे प्रकार का कि पचास लाख हुए हों तो दूसरे को करोड़ है, ऐसी नजर करे। इसलिए पचास लाख की वह कमी की वापस। क्यों, बराबर है? भाई! दो प्रकार की कमी। तुम्हारी भाषा होगी। खाधी अर्थात् नुकसानीवाला। टोटावाला लो न टोटावाला। टोटा-टोटा। बाहर में पचास लाख की पूँजी कहलाती हो। अन्दर में पाँच लाख या दस लाख हों। बहुत से ऐसे होते हैं। हमको तो बहुत अधिक खबर है न!

मुमुक्षु : वह ९९ प्रतिशत ऐसे होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह और अलग बात है, परन्तु हमको तो खबर है न! हमको तो हमारे पास सब आवे सही न। नाम बड़ा। और अन्त में एकान्त में आवे कि महाराज!

कुछ देना? अब बाहर से यहाँ दुकान में जाते हैं वहाँ यह (दिवाला) है, यदि कुछ सहारा। भाई! सहारा हमारे पास है? धर्म कर। वापस बात भी करे सब हमको, हों! कि ऐसा है, ऐसा है। सब अभी तक लुड़काया है। टका-टका का ब्याज। पहले टका का ब्याज नहीं देते थे। सौ में एक प्रतिशत नहीं देते थे। आठ आना, दस आना। अच्छा व्यक्ति हो बाजार में। टके-टके ब्याज देकर अभी तक निभाया है। निभाया समझे न? चलाया है। ऐसा नुकसान है। बाहर में पाँच लाख कहलाये, अन्दर में लाख भी नहीं। ... अब दो दिन में कोई ग्राहक आया असील लेने तो पैसा कुछ नहीं घर में। और एक व्यक्ति को न करने से इकट्ठा सबमें खुल्ला होगा कि ऐई! टूटा... टूटा... टूटा... चलो। न्यालभाई! होता है या नहीं ऐसा? आहाहा! यहाँ हमने तो किया नहीं, परन्तु जगत का अनुभव तो किया हो न! दुनिया का जाना हो और दुनिया में करते हैं सब। हमारे पास आवे सब बहुत आवे न बहुत लोग एकान्त में।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ... है। ओहोहो! दवा यह है। समझ में आया?

क्या कहा? यह नुकसान दो प्रकार का। टोटा। पाँच लाख की पूँजी हो और पच्चीस लाख कहलाते हों बाहर में। तो इतने बीस लाख की कमी तो अन्दर थी। उसका निभाव करते... करते... करते... करते... ऐई..! दिवाला निकले। और किसी को पच्चीस लाख पूँजी हो तो दूसरे के पचास लाख देखकर कहे, अरे! उसे पचास लाख, मेरे पच्चीस। मेरे पच्चीस। होवे पच्चीस सही, परन्तु उसको पचास और मेरी पच्चीस। इसलिए वह पचास देखकर पच्चीस लाख की कमी पाड़े, टूटक पाड़े। मैं इतना कम। यहाँ कहते हैं कि भाई! तुझे सन्तोष करना हो तो भगवान आत्मा का सन्तोष कर। ओहो! भगवान ज्ञानमूर्ति है, जिसमें शान्ति है, जिसमें सन्तोष है अर्थात् सुख है। ऐसा सुख का सागर आत्मा, उसमें तू स्थिर हो। तुझे उत्तम सुख होगा। अन्तिम शब्द यह है।

इसी से ही तुझे उत्तम सुख की प्राप्ति होगी। टीका में तो ऐसा लिया। दूसरे को पूछने जाना पड़ेगा नहीं। कि यह मुझे सुख मिलता है या नहीं? मुझे धर्म हुआ है या नहीं? यह दूसरे को पूछने जाना नहीं पड़ेगा। भगवान को पूछने नहीं जाना पड़ेगा कि

भगवान! मैं अब धर्मी हुआ या नहीं? तू आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप चिदानन्द की मूर्ति में स्थिर होने से तुझे शान्ति मिलेगी, यह दूसरे को पूछने नहीं जाना पड़ेगा। कहो, समझ में आया? **इस कथन से अध्यात्म-सुख में ठहरकर...** देखो, भगवान आत्मा में शान्ति पड़ी है, भाई! अन्यत्र कहीं शान्ति नहीं। पैसा धूल में भी नहीं, स्त्री, पुत्र, में नहीं, मकान, बँगले में नहीं। बँगले बड़े पड़े हों न पाँच-पाँच, दस लाख के बनाये हों। तुम्हारे शान्तिभाई यहाँ आये थे, कहते हैं, एक बार। आये थे? अपने को बराबर खबर नहीं। भाई कहता था सवेरे। भाई कहे साथ में मैं था। १५-२० वर्ष पहले आये होंगे।

मुमुक्षु : ९३ के वर्ष में।

पूज्य गुरुदेवश्री : ९३-९३। तब तो उस मकान में या यहाँ? यहाँ होंगे। ९४। आये होंगे। ... आये होंगे। ... था। कहो, समझ में आया?

उस **निजस्वरूप की भावना करनी चाहिए,...** आहाहा! लो! बात में 'लाख बात की बात निश्चय उर आणो।' करोड़ बात की बात, अनन्त बात की बात। सारे शास्त्र की—चार अनुयोग की बात कि भगवान आत्मा अनन्त आनन्द और शान्ति का स्वरूप है, उसमें स्थिर हो। एक ही बात अनन्त तीर्थंकरों को कहनी है। उसमें धर्म है, उसमें सुख है, उसमें शान्ति है, उसमें सन्तोष है, उसमें सत्य और परमार्थ है। समझ में आया? परन्तु उसे लगे कठिन, इसलिए मानो कि यह कुछ रास्ता होगा धीरे-धीरे? धीरे-धीरे जायें ऐसा दूसरा? धीरे कहो या उतावला कहो, रास्ता यह एक ही है। समझ में आया? धीरे-धीरे का अर्थ इतना कि पहले सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर और फिर क्रम-क्रम से चारित्र इतना धीरे-धीरे। परन्तु तू जाने कि यह पहले सम्यक् बिना तू एकदम चारित्र को प्राप्त कर। एकदम कोई समकितसहित चारित्र प्राप्त कर, वह उतावल से हुआ। समझ में आया? परन्तु जिसने मूल पकड़ा सम्यक् आत्मा की दृष्टि का अनुभव, वह क्रम-क्रम से चारित्र पाकर सुखी होगा, पूर्ण मुक्ति को प्राप्त करनेवाला है। कहो, समझ में आया?

दृष्टान्त दिया है न उस तत्त्वज्ञान तरंगिणी (में)। तत्त्वज्ञान तरंगिणी में दृष्टान्त दिया है कि भाई! एक आंबा है न आंबा—आम। आम होता है न? ऊपर आम हो पका, शाख का पका पका हो न पीला फर्स्टक्लास आम। तो तोता आकर सीधे खाये। चोंच

मारे सीधे। और चींटी मूल पकड़कर वहाँ जाकर खाये। कीडी समझते हो न? चींटी। उसे उड़ने की शक्ति नहीं है, परन्तु वह आम का मूल पकड़े, वहाँ से चढ़कर पका खाये। जो तोता खाता है वह पका खाये। यह धीरे-धीरे देरी लगे। और वह सीधा खाये। ऐसा दृष्टान्त तत्त्वज्ञान तरंगिणी में ज्ञानभूषण भट्टारक ने दिया है।

इसी प्रकार इस आत्मा को एकदम उतावले तोता की भाँति कोई सम्यग्दर्शन पकड़कर एकदम चारित्र में लीन होकर अल्प काल में अनन्त सुख को प्राप्त करे और कोई एकदम चारित्र को, सुख को प्राप्त न करे, परन्तु मूल पकड़े, शुद्ध चिदानन्द आत्मा, वह मूल है अनन्त केवलज्ञान को प्राप्त करने का, सुख होने का। वह मूल को पकड़े दृष्टि में तो धीरे-धीरे चारित्र करके वह भी तोता की भाँति आम खाये, उसी प्रकार यह भी धीरे-धीरे पूर्णानन्द को प्राप्त हो। परन्तु मूल पकड़ना चाहिए। आम के वृक्ष पर चढ़ने की अपेक्षा आक के वृक्ष पर चढ़ जाये तो? आक होता है न आक? नहीं होता? आंकड़ा का आकोलिया, उसके भी आम जैसे फल होते हैं पोला-पोला भम जैसा। आम जैसे होते हैं हरे। उसमें मूल चढ़े तो निकले एकदम पोला वहाँ। वह कहीं आम-बाम नहीं। उसी प्रकार पुण्य के विकल्प के रास्ते जो चढ़ गया, वहाँ आम-बाम नहीं। अर्थात् आम पकता नहीं, वहाँ धर्म पकता नहीं। आत्मा के मार्ग में चढ़ तो धीरे-धीरे भी वहाँ केवलज्ञान की प्राप्ति होगी। दूसरे रास्ते से नहीं होगी। कहो, बराबर न्यालभाई! आहाहा!

और कामभोगों से कभी तृप्ति नहीं हो सकती। इच्छा और उपभोग। ऐसा कहते हैं। कामभोग अर्थात् अकेला विषय नहीं, परन्तु इच्छा से कहीं तृप्ति होगी नहीं। इच्छा अर्थात् करना और भोग अर्थात् भोगना। राग को करना और भोगना, उसमें कहीं तृप्ति नहीं। भगवान ज्ञाता-दृष्टा होकर रहे दृष्टि से या स्थिरता से, उसमें सन्तोष और सुख है, अन्यत्र कहीं है नहीं। उसमें धर्म है। **ऐसा कहा भी है कि जैसे तृण, काठ आदि ईंधन से अग्नि तृप्त नहीं होती...** तिनके अथवा लकड़ी आदि ऐसे **ईंधन से अग्नि तृप्त नहीं होती...** इसी प्रकार चाहे जितने विषय सेवन करो, इच्छा करो, परन्तु इच्छा करने से इच्छा की तृप्ति नहीं होगी। इच्छा का अभाव करने से तृप्ति होगी। कहो, समझ में आया?

और हजारों नदियों से लवणसमुद्र तृप्त नहीं होता,... हजारों नदियों का पानी

पड़े, उस लवणसमुद्र में ज्वार आ जाता होगा? बाढ़ आयेगी? उसे क्या हजार नदी पड़े तो। वह तो वह का वह है। उसी प्रकार चाहे जितना भोग ले, इच्छायें करे, तो बहुत इच्छाएँ की, पश्चात् तृप्त हो जाऊँगा, पश्चात् ऐसा कि अपने कौतूहलता छूट जायेगी। बिल्कुल झूठी बात है। इच्छा छूटने का रास्ता एक ही है—भगवान आत्मा की दृष्टि करना और स्थिर होना, वही सन्तोष का कारण, इच्छा तोड़ने का कारण है।

उसी तरह यह जीव काम भोगों से तृप्त नहीं होता। इसलिए विषय-सुखों को छोड़कर अध्यात्म-सुख का सेवन करना चाहिए। विषय सुख अर्थात्? अपने विषय को छोड़कर (पर को) विषय बनाना, ऐसा। स्वविषय अर्थात् ध्येय को छोड़कर पर को ध्येय बनाना। किसी भी परद्रव्य को ध्येय बनाने से, विषय बनाने से उसमें कहीं सुख नहीं है। कहो, समझ में आया? कहते हैं, **विषय-सुखों को छोड़कर अध्यात्म-सुख का सेवन करना चाहिए।** बाह्य विषय का लक्ष्य छोड़कर अन्दर का विषय ऐसा भगवान आत्मा, उसे दृष्टि में, ध्येय में विषय बनाकर ध्यान का विषय आत्मा को बनाकर... राग का विषय पर बनता है, वह भी एक आर्तध्यान है। आर्तध्यान का विषय पर है और धर्मध्यान का विषय स्व है। इसलिए पर के विषय की ओर के झुकाव को छोड़कर, स्व के विषय की ओर जा तो वहाँ अध्यात्म सुख का सेवन होगा। समझ में आया?

अब **अध्यात्म-शब्द का शब्दार्थ करते हैं—** अध्यात्म शब्द की व्युत्पत्ति करते हैं, ऐसा चाहिए। आत्म-सुख शब्द प्रयोग किया है न, वह शब्द खोटा है। **अध्यात्म-शब्द का शब्दार्थ करते हैं—मिथ्यात्व विषय-कषाय...** अध्यात्म किसे कहना? देखो न, अध्यात्म... अध्यात्म... अध्यात्म... करे। अध्यात्म अर्थात् क्या? कि **मिथ्यात्व विषय-कषाय आदि बाह्य पदार्थों का अवलम्बन...** देखो, उसे **छोड़ना,...** ऐसे बाह्य पदार्थों का अवलम्बन छोड़ना। पुण्य और पाप के विषय बाह्य दूसरे, उन सबका सहारा छोड़ना **और आत्मा में तल्लीन होना...** यह अध्यात्म। भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप को विषय बनाना और उसमें स्थिर होना, उसका नाम अध्यात्म। और मिथ्या भ्रान्ति, पुण्य और पाप के भाव, वे परविषय हैं। पर में लक्ष्य जाये और उत्पन्न होता है। इसलिए वह अध्यात्म से विरुद्ध है। समझ में आया? यह तो मक्खन की बात है न अकेली?

परमात्मप्रकाश की बात है। परमात्मा स्वयं परमस्वरूप ज्ञान और आनन्दरूप, उसे विषय बनाना, उसका नाम अध्यात्म। और अपने विषय को छोड़कर पर का विषय, कोई भी परविषय बनाना तो वह पुण्य-पाप के राग बिना परविषय का आश्रय नहीं होता। इसलिए वह पुण्य-पाप का भाव, वह अध्यात्म नहीं। दूसरी भाषा में कहा कि व्यवहाररत्नत्रय भी अध्यात्म नहीं। ऐसा कहा यहाँ। आहाहा! समझ में आया? देव-गुरु-शास्त्र, छह द्रव्य की श्रद्धा आदि, पंच महाव्रत के परिणाम, वे भाव भी अध्यात्म नहीं। क्योंकि वह भी आत्मा के विषय को छोड़कर परविषय अर्थात् (पर) ध्येय में जानेवाले भाव हैं वे। इसलिए वह अध्यात्म नहीं। देखो न, इसलिए कहा न! मिथ्यात्व और विषय-कषाय, दो लिये न?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हेय-अहेय नहीं। अध्यात्म... अनाध्यात्म अर्थात् अनात्मा। राग, पुण्य, विकल्प और पर का लक्ष्य करना, उत्पन्न भाव, वह अनात्मा है। बहिरपदार्थों का अवलम्बन, वह अनात्मा है, स्वपदार्थ का अवलम्बन वह आत्मा है। बात तो ऐसी है, भाई! त्रिकाल ऐसी है। लोगों को अध्यात्म स्वरूप क्या है, वह उन्हें मिला नहीं। ऐसे सब बाहर का सहारा। ऐसा होगा, यहाँ से होगा, या भगवान की मूर्ति से होगा या यात्रा से होगा या सम्मेदशिखर जाऊँगा तो समकित प्राप्त होगा। धूल में भी नहीं, सुन न अब!

मुमुक्षु : यहाँ से महाविदेह में बैठा बैठा....

पूज्य गुरुदेवश्री : महाविदेह में क्या? महाविदेह में तेरे भगवान बैठे हैं? तेरा भगवान तो यहाँ बैठा है।

मुमुक्षु : जल्दी मोक्ष हो जाये न। यहाँ से ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं होता। अनन्त बार महाविदेह में गया। मनुष्य नहीं हुआ? अब कितने ही ऐसा कहे। धर्मी जीव हो तो उसके लिये ऐसा कहे। एकदम मोक्ष जानेवाले हैं। यहाँ से मरकर महाविदेह में गये। परन्तु मूर्ख! तू क्या कहता है? धर्मी महाविदेह में जाये, वह मिथ्यादृष्टि जाये। धर्मी महाविदेह में नहीं जाता। यह माहात्म्य करने जाये। पण्डितजी! यह माहात्म्य करने जाये, कि ओहोहो! धर्मी तो ऐसे

धर्मी थे न कि यहाँ से मरकर सीधे भगवान के पास गये हैं। यह तू क्या गाली देता है बिना बिसात का। तुझे भान नहीं। धर्मी सम्यग्दृष्टि हो, उसकी दृष्टि आत्मा के ऊपर होती है, उसे राग का पुण्य होता है, वह मनुष्य मरकर मनुष्य होता ही नहीं। वह तो स्वर्ग में ही जाता है। बहुत से ऐसा कहते हैं। उन देवचन्दजी को ऐसा कहते हैं। देवचन्दजी हो गये न वे, भाई! अध्यात्म की बातें करते... वे वहाँ जन्मे हैं और वहाँ आठ वर्ष में केवल (ज्ञान) को प्राप्त हुए हैं।

कोई श्रीमद् के लिये कहते हैं।... परन्तु तू गाली देता है? क्या कहता है तू यह? श्रीमद् को तू मिथ्यादृष्टि ठहराता है। मिथ्यादृष्टि हो, वह मनुष्य मरकर मनुष्य होता है। ऐई! न्यालभाई! यह सब सुनकर आये हैं। सब करके अब यह आये हैं अन्त में। ठीक किया परन्तु अच्छा सब देख लिया। यह कहा न मानतुंग आचार्य ने कि 'हरि मंदिर हरि हरादेव अेव दृष्टा' हे नाथ! पहले हमने सब हरिहर को देख लिया है। अब मुझे दूसरे में कहीं मन होता नहीं। भक्तामर में आता है। 'तुझे देखा वीतराग देव यह' तो वीतरागदेव जहाँ देखा ऐसी चीज़ कहीं हरिहर दृष्टा में कहीं है नहीं प्रभु। पूर्णानन्द का नाथ मैं ही हूँ। पूर्ण वीतराग का कन्द ही मैं हूँ। मेरी दृष्टि जहाँ मुझे में पड़ी (तो) तुझे भी मैंने पहिचाना और मुझे भी मैंने पहिचाना। समझ में आया? भक्तामर में आता है। यह प्रत्येक में भक्ति में भी मर्म है। मुनियों के कहे हुए हैं। आचार्य मुनि हैं या नहीं? भावलिंगी सन्त हैं। भक्ति में भले काम लिया हो, परन्तु अलौकिक बातें हैं सब। स्तवन के अर्थों में बहुत भाव भरे हैं।

मुमुक्षु : शंकर प्रसन्न हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन शंकर प्रसन्न होता था? कोई प्रसन्न नहीं होता था। अभी ही बात नहीं की थी? हमारे छप्पनिया में दस वर्ष की उम्र थी। वह दुष्काल पड़ा था न? दुष्काल बहुत पड़ा था। हमारे उमराला बड़ी नदी। फिर शंकर को डुबोया, वर्षा नहीं आती थी वह। तुमने तो सुना होगा वहाँ। उस छप्पनिया में नहीं? नहीं? हमारे वहाँ बड़ी नदी है न उमराला में। ५६ के वर्ष। तब दुष्काल पड़ा था। तब दस वर्ष की उम्र थी। बड़ी नदी है उमराला (में)। एक शंकर के सामने घोळनाथ है। घोळनाथ सामने है न।

फिर गाँव के सबने इकट्ठे होकर शंकर को ऐसे पानी में डाला। डुबोया। उन्हें डुबोया।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु हमको खबर है। मेरी दस वर्ष की उम्र थी, सब खबर है। शंकर को डुबोवे उन्हें पानी में डाला। भर दिया ऐसे। गहरा है ऐसा जरा। और स्वयं ब्राह्मण बैठे यहाँ तक पानी लेकर। हाथ में माला लेकर। धूल में भी बरसात नहीं आयी। और वहाँ तक खबर है कि वहाँ एक वाव है धोळनाथ में वाव। उस वाव के पानी का प्रवाह करने लगे खेंच-खेंचकर। तो वह कालुभार (नदी) है न बीच में, वहाँ तक पानी जाये तो नदी में पानी आयेगा। यह प्रवाह किया तो भी नहीं आया। दरेडो समझे? उस वाव में से, बड़ी नदी है न तो सामने से वाव में से पानी निकाल निकालकर, खेंच-खेंचकर उस नदी में ले गये बीच तक। ऐसा कि बीच में नदी में अपने यह पानी ले जायेंगे तो ऊपर से नदी आयेगी। धूल में भी नहीं आया। सब खबर है। दस वर्ष की उम्र थी। सब देखा। कहा, यह सब ढ़ोंग करते हैं।

मुमुक्षु : उनकी भक्ति खोटी?

पूज्य गुरुदेवश्री : थे भी कब परन्तु वहाँ भक्त? यह तो ब्रह्मानन्द भगवान स्वयं आत्मा है। ब्रह्मानन्दस्वरूप है। वह आत्मा स्वयं शंकर है। शंकर अर्थात् सुख का करनेवाला, वह शंकर। आत्मा आनन्दमूर्ति की तो बात चलती है। आत्मा ही स्वयं शंकर है। दूसरा शंकर था कब बाहर का? समझ में आया? त्वमेव ब्रह्मा, त्वमेव विष्णु, त्वमेव महेश। नहीं आता? भक्तामर में आता है। बस वह। वह बात यह है कि तू है यह। हो गये आत्मा वह भी उसमें हुए और तू यह है। त्वमेव ब्रह्मा, त्वमेव विष्णु, त्वमेव शंकर, त्वमेव विभु। हे नाथ! पूर्णानन्द का स्वरूप तेरा। वह पुण्य-पाप के विकल्प जो अनात्मा हैं, उनसे भिन्न जो आत्मस्वरूप है, वही सब शंकर शिव है। उसकी दृष्टि की एकाग्रता करने पर पर्याय में प्रगट होता है, वह परमात्मा साक्षात् कहलाता है। वह शक्तिरूप से कहलाता है, यह व्यक्तिरूप से कहलाता है। कहो, समझ में आया? आहाहा!

मिथ्यात्व विषय-कषाय आदि बाह्य पदार्थों का अवलम्बन (सहारा) छोड़ना...

देखो, **और आत्मा में तल्लीन होना...** अथवा आत्मा का विषय करना। अन्दर विषय ध्येय बनाना अन्तर्मुख होकर। ज्ञान की दशा को आत्मा का ज्ञेय बनाना, ध्येय बनाना, विषय बनाना, उसे लक्ष्य में लेना, बस यही अध्यात्म है और उससे तुझे शान्ति है। कहो, समझ में आया? यह १५४ (गाथा) हुई।

★ ★ ★

गाथा - १५५

१५५। **आगे आत्मा का ज्ञानस्वभाव दिखलाते हैं —** आत्मा का तो ज्ञानस्वभाव है। वह पुण्य-पाप का भाव, वह कहीं आत्मा का स्वभाव नहीं। विकल्प उठे दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, जप का विकल्प, वह राग है। वह आत्मा का स्वभाव नहीं। समझ में आया? व्यवहाररत्नत्रय का शुभराग, वह आत्मा का स्वभाव नहीं। आहाहा! अब उसे तो यहाँ पहले से मांडते हैं सब। चौथे में, पाँचवें में, छठवें में, सातवें में व्यवहार होता है। निश्चय बाद में। यह होगा और कहीं। अभी तो है ही नहीं। पाँचवें काल में तो निश्चय होता ही नहीं, ऐसा पत्रों में लिखते हैं। पाँचवें काल में अभी निश्चय होता नहीं। इसलिए तुम व्यवहार का निषेध करते हो, निश्चय होता नहीं, फिर कहाँ जाना उसे? इसलिए व्यवहार वही धर्म है अभी तो। कहो, समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि भगवान आत्मा, वह तो ज्ञानस्वभाव त्रिकाल है। पाँचवें काल में हो, चौथे काल में हो, नरक में हो या पशु में हो, उसका स्वभाव ज्ञान है। उसे पकड़ने से धर्म सभी स्थानों में होता है। उस ज्ञान को पकड़ने से धर्म सर्वत्र होता है। पर को, राग को, पुण्य को पकड़ने से कहीं धर्म नहीं होता। समझ में आया?

२८६) अप्पहँ णाणु परिच्चयवि अण्णु ण अत्थि सहाउ।
इउ जाणेविणु जोइयहु परहँ म बंधउ राउ॥१५५॥

देखो न शब्द सादा और सरल।

आत्मनः ज्ञानं परित्यज्य अन्यो न अस्ति स्वभावः।
इदं ज्ञात्वा योगिन् परस्मिन् मा बधान रागम्॥१५५॥

आहाहा! बहुत संक्षिप्त शब्द से, संक्षिप्त भाव, संक्षिप्त भाव। भगवान आत्मा... कहते हैं कि भाई! देखो, क्या आया?

'आत्मनः' आत्मा का निजस्वभाव... शब्दार्थ। **'ज्ञानं परित्यज्य'** यह **वीतराग स्वसंवेदनज्ञान के सिवाय...** ऐसा। **'परित्यज्य'** अर्थात् ज्ञान के अतिरिक्त, ऐसा। ज्ञान अर्थात्? वीतराग स्वसंवेदनज्ञान। भगवान आत्मा का स्वभाव भी वीतरागी ज्ञान है। वस्तु ही वीतरागी ज्ञान है। अविकारी ज्ञान कहो, अकषाय ज्ञान कहो, वीतरागी विज्ञान कहो। वस्तु आत्मा को विषय बनाकर एकाग्र होने से स्वसंवेदनज्ञान प्रगट हो, वह भी वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान है। वीतराग स्व-अपने, सं-प्रत्यक्ष, वेदन का ज्ञान, उसके अतिरिक्त **'अन्यः स्वभावः' दूसरा स्वभाव...** यह दूसरा स्वभाव उसका नहीं। आहाहा! शरीर कहाँ रह गया? अभी तो शरीर से धर्म होता है, (ऐसा मानते हैं)। भगवान! भगवान! कौन जाने जयपुर में क्या किया उन लोगों ने? यह जयपुर के वहाँ थे या नहीं? तब नहीं थे। थे तब? सेठी! यह (जयपुर खानिया) चर्चा चली तब। गये थे। जीवित शरीर से धर्म होता है या नहीं? भगवान! भगवान! भगवान! भगवान! आहाहा! प्रभु! क्या कहता है? यह पाँचवें काल में किसकी उल्टी पुकार पड़ी?

यहाँ कहते हैं, भगवान! तेरा स्वभाव भाई! वह ज्ञान वीतरागी ज्ञानदशा होना, वह धर्म है। क्योंकि वीतरागी विज्ञानघन तेरा द्रव्यस्वभाव है। वीतरागी विज्ञानघन। वीतरागी अर्थात् कि रागरहित अर्थात् कषायरहित तेरा विज्ञान स्वभाव है। उसे एकाग्र होकर स्वसंवेदन ज्ञान से आत्मा को जानना, वह स्वसंवेदन वीतरागज्ञान वह धर्म है। समझ में आया? **दूसरा स्वभाव नहीं है,...** तीन काल, तीन लोक में। भगवान अकषाय वीतरागी विज्ञानघन। मंगलमय, आया था कल, नहीं? 'मंगलमय मंगलकरण वीतराग विज्ञान।' देखो न, मांगलिक किया है। वीतरागी विज्ञान। भाई! वह वीतराग शब्द से तू ऐसा न उलझन में आ कि वीतराग, यह जैन का शब्द है। वीतराग अर्थात् वीत अर्थात् रहित, राग अर्थात् कषाय। जहाँ राग नहीं, वहाँ द्वेष भी नहीं। इसलिए राग और द्वेष के अन्तर्भेद क्रोध, मान, माया और लोभ, वे जहाँ नहीं, ऐसा जो आत्मा का स्वभाव। आहाहा!

भगवान आत्मा का स्वभाव वह विकाररहित कहो या वीतराग विज्ञान कहो। वह वीतराग शब्द आवे न। ऐई! वह तो जैन का हो वीतराग। परन्तु यहाँ तो वीत अर्थात् राग नहीं। समझ में आया? रागरहित। एक साधु मजाक करता था भाई! कि तुम सब वीतरागी हो, हों! तुम सब वित्तरागी। सब सभा में भरे हुए। तुम सब वीतरागी हो। वह कहे, भाईसाहेब! हम वीतरागी नहीं। ऐसा हो वीतरागी हो तुम। कैसे? वित्त अर्थात् पैसा, उसके तुम रागी, इसलिए वीतरागी। पैसा। वित्त अर्थात् धन का नाम है न। वित्त नाम धन का है। वहाँ लगा दिया। उसको कहे, तुम सब वीतराग हो भाई! हों! एक बात सच्ची, वीतराग हो। यह उसे खबर नहीं। यह तो वीतराग हो अर्थात् तुम वित्त अर्थात् पैसे के रागी, इसलिए वीतराग। कहो, जेचन्दभाई! भाई! अरे! यह तो वीतराग। वित्त अर्थात् पैसे का राग। यहाँ तो वीत (राग) अर्थात् रागरहित। रागरहित भगवान आत्मा का स्वरूप त्रिकाल अखण्डानन्द सच्चिदानन्दस्वरूप है। ऐसा यह भगवान आत्मा सच्चिदानन्द सत्-सत् अनादि-अनन्त शाश्वत ज्ञान और आनन्द का कन्द, उसका नाम वीतराग विज्ञानघन कहा जाता है। समझ में आया? कहो, अब उसे कहाँ से याद आया, कहो। यह वीतराग यहाँ लगाना चाहिए उसके बदले वीतराग को ऐसी मजाक में लगा दिया। तुम सब वीतराग हो, कहे। वह बेचारे कहे, परन्तु महाराज! हम वीतरागी कहाँ से? हम तो बहुत राग में पड़े हैं। नहीं, नहीं तुम पैसे के रागी नहीं? यह तो अर्थ बदल गया।

मुमुक्षु : विचारने का समय बहुत।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा भी विचारने का समय? तत्त्व की खबर नहीं होती।

देखो, अस्ति-नास्ति की। क्या कहा? '**आत्मनः ज्ञानं परित्यज्य अन्यः स्वभावः न अस्ति**' अनेकान्त किया। एक-दो शब्द में अनेकान्त किया। भगवान आत्मा '**णाणु परिच्चयवि**' ज्ञान के सिवाय '**अण्णु ण अत्थि सहाउ**' दूसरा कोई उसका स्वभाव नहीं। फिर लाख बातें, जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव भी आत्मा का स्वभाव नहीं। आहाहा! भगवान चिदानन्द निर्विकल्प, चिदानन्द की मूर्ति आत्मा है, उसे आत्मा कहा जाता है। वह आत्मा अपने ज्ञान और आनन्द को छोड़कर अन्य स्वभावरूप कभी तीन काल में है नहीं। माना है, इसलिए भटकता है। मैं

पुण्यवाला, मैं पापवाला, मैं रागी, मैं द्वेषी, मैं विकल्पवाला, यह इसकी मान्यता ही परिभ्रमण का कारण है। आहाहा! कहो, समझ में आया? मक्खन है अकेला मक्खन।

आत्मा केवलज्ञानस्वभाव है,... देखो, केवल अर्थात् उस केवलपर्याय की बात नहीं। अकेला परिपूर्ण ज्ञानमूर्ति। समझण-समझण अर्थात् ज्ञान और ज्ञान का स्वरूप अकेला। ज्ञानस्वरूप, चैतन्यस्वरूप ज्ञान, वह आत्मा, बस। उसमें कोई पुण्य-पाप, विकल्प, शरीर, वाणी उसमें नहीं। उसे आत्मा कहते हैं। ऐसा **केवलज्ञानस्वभाव है, ऐसा जानकर हे योगी,...** अर्थात् कि हे धर्मी! हे जीव! हे हंस! **परवस्तु से प्रीति मत बाँध।** है न? '**परस्मिन् रागम् मा बधान**' तेरे निजस्वभाव के अतिरिक्त वह अनन्त परचीज़ें हैं, (उनमें) कहीं प्रीति न कर। तू एक ही पूरा पड़ा है तुझमें, उसकी प्रीति कर और अनन्त में कहीं किसी में प्रीति न कर। यहाँ तो भगवान के प्रति प्रीति न कर, ऐसा कहते हैं। आहाहा! तीन लोक के नाथ तीर्थंकर वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर भी इस आत्मा से परवस्तु है। उनकी प्रीति भी मत कर, ऐसा यहाँ कहते हैं। ऐसी बात! वीतराग कहे, मेरे ऊपर प्रीति न कर। यह एक वीतराग ही कहे। दूसरा कोई भार नहीं तीन काल में। हमको मानो तुम्हारा कल्याण होगा, हमको लड्डू दो, तुमको वैकुंठ में मिलेंगे। एक वीतराग और वीतराग के सन्त एक ही बात करते हैं (कि) हमको भी तू भूल और तुझे तू जान तो तू भगवान होगा। आहाहा! कहो, समझ में आया?

सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल, तीन लोक को जानने की विज्ञान वीतरागदशा प्रगट हुई। मुख में वाणी में यह आया, हे आत्मा! तेरा अकेला ज्ञानस्वभाव है, तेरे स्वभाव के अतिरिक्त परद्रव्य की प्रीति को छोड़ दे, भाई! प्रभु! परन्तु तुम्हारी भी? मैं भी तेरे लिये परद्रव्य हूँ। आहाहा! मुख के सामने ग्रास किसे खराब लगे? यह कहे, नहीं। आहाहा! वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है, बापू! भाई नहीं भगवान कहते हैं यह। तू भगवान को मानता हो तो भगवान ऐसा कहते हैं। शास्त्र को मानता हो तो शास्त्र ऐसा कहते हैं। गुरु को मानता हो तो गुरु ऐसा कहते हैं कि तेरे ज्ञानस्वभाव के ऊपर जा, परपदार्थ की प्रीति छोड़। ऐसा हमारा कहने का आशय है। समझ में आया?

कल आया था न मोक्षमार्गप्रकाशक में, अन्तिम नहीं आया था? सर्व शास्त्र का (प्रयोजन) स्वरूप चिन्तवन। प्रयोजन एक है कि आत्मा की एकाग्रता। आहाहा! सर्व शास्त्रों का प्रयोजन यह है। भगवान आत्मा इस शास्त्र में यह कहना है, गुरु को ऐसा कहना है, केवली ने ऐसा जाना है। दिशा को बदल डाल। परदिशा सन्मुख जो है, उसे स्वदशा की ओर मोड़ दे। यह एक ही भगवान अनन्त तीर्थंकरों का कहना है। आहाहा!

मुमुक्षु : .... समझने का देव-गुरु-शास्त्र कहे, ऐसा ही वह।

पूज्य गुरुदेवश्री : समझना यह। निर्मानी होकर अर्थात् क्या?

मुमुक्षु : निर्मानी होकर हमारे समझना चाहिए न....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... समझना उससे? तथापि ऐसी समझण करे, उसे देव-गुरु-शास्त्र के प्रति बहुमान आये बिना नहीं रहता। विकल्प है न। कहाँ वीतराग हो गया है? जब तक वीतराग नहीं हुआ, तब तक ऐसा ज्ञान का बहुमान अपना हो, तब भी वीतराग देव-गुरु-शास्त्र के प्रति बहु भक्ति आये बिना रहती नहीं, परन्तु वह विकल्प है, इतना बन्ध का कारण है, ऐसा उसके ख्याल में होता है। इतना भी लक्ष्य छोड़कर स्वरूप में पूर्ण स्थिर होगा, तब मैं परमात्मा होऊँगा। उसके बिना मैं केवलज्ञान पाऊँगा नहीं। वास्तविक विवेक उसे ही आता है। अज्ञानी परद्रव्य से लाभ माननेवाले को वास्तविक विवेक आता ही नहीं। क्योंकि पर से भिन्न तो पड़ा नहीं। इसलिए उसे वास्तविक विवेक (आता नहीं)। पर का बहुमान वास्तविक आया ही नहीं। समझ में आया?

भावार्थ :- पर जो शुद्धात्मा से... 'त्यक्त्वा अण्णु ण अत्थि सहाउ' पर जो शुद्धात्मा से भिन्न देहादिक, उनमें राग मत कर,... वह संक्षिप्त अर्थ ले लेवे देहादि। परन्तु देहादि - आदि में सब आ गया। **आत्मा का ज्ञानस्वरूप जानकर...** लो! है न? **'शुद्धात्मज्ञानं स्वभावं ज्ञात्वा'** लो! उसमें राग मत कर। कहो, समझ में आया? **मत कर, आत्मा का ज्ञानस्वरूप जानकर रागादिक छोड़के निरन्तर आत्मा की भावना करनी चाहिए।** ओहोहो! दृष्टि में, श्रद्धा में तो यही हो कि निरन्तर उसमें ही रहना। वही कल्याण का कारण है। रह नहीं सकता, विकल्प आवे, तो भी उससे मुझे लाभ होगा,

ऐसा दृष्टि में हो नहीं सकता। आहाहा! दृष्टि की कीमत है। दृष्टि में पूरे आत्मा को तोलना। जैसे अग्नि सबको पचा रखे, वैसे सम्यग्दर्शन पूरे आत्मा को पचाता है। पूर्णानन्द निर्विकल्प पूरा वीतरागी स्वरूप, उसे पचाता है। प्रगट न होने पर भी पूरा यह है, ऐसा पचाता है। समझ में आया? कहते हैं, निरन्तर आत्मा की भावना करनी चाहिए। लो, यह १५५ हुई।

★ ★ ★

गाथा - १५६

१५६। **आगे आत्मा की प्राप्ति के लिये चित्त को स्थिर करता, ऐसा परम उपदेश श्री गुरु दिखलाते हैं— 'स्थिरीकरण'।**

२८७) विसय-कसायहिँ मण-सलिलु णवि डहुलिज्जइ जासु।
अप्पा णिम्मलु होइ लहु वढ पच्चक्खु वि तासु॥१५६॥

ओहोहो! श्रीगुरु उपदेश करते हैं, **जिसका मनरूपी जल विषय-कषायरूप प्रचण्ड पवन से नहीं चलायमान होता है,...** जिसका मनरूपी जल विषय-कषाय अर्थात् परलक्ष्य से प्रचण्ड पवन से, परलक्ष्य का प्रचण्ड पवन, उससे जिसका मनरूपी जल चलायमान नहीं होता। **उसी भव्य जीव की आत्मा...** उस योग्य जीव का आत्मा। **हे बच्चे,...** वत्स। गुरु कहते हैं कि हे बच्चा! हे शिष्य! हे वत्स! **'निर्मलो भवति'** उसका आत्मा निर्मल होता है। **'लघु'** एक तो निर्मल होता है और **शीघ्र ही प्रत्यक्ष हो जाती है।** अल्प काल में उसे आत्मा प्रत्यक्ष हो जायेगा। समझ में आया? कितनी बात भरते हैं थोड़े में। अकेली मक्खन की भावना है। मक्खन-मक्खन। रोटी के साथ मक्खन खाये तो कैसा लगे उसे? चोपड़-चोपड़ कर। घी की अपेक्षा उसे मक्खन अच्छा लगे और हों! पोंचा-पोंचा हो तो ऐसा। यह क्षयवालों को मक्खन बहुत देते हैं। यहाँ क्षय (टी.बी.) हॉस्पीटल है न। मक्खन। अण्डा दे अण्डा। आहाहा! यहाँ टोकरे के टोकरे अण्डे हॉस्पीटल में। उसका हो, क्या कहलाता है? कॉन्ट्रेक्टर हो। बारह महीने में अण्डा पूरा करने का कान्ट्रेक्टर। भावनगर का कोई है। ऐसा है। बहुत उपाय ऐसे ...

ऐसे टोकरे के टोकरे अण्डे। फिर कोई बनिया हो, उसे नहीं देते। उसे दूसरे प्रकार से कुछ ढ़ेबरा में डालकर देते होंगे। कुछ दूसरी पूड़ी-बूड़ी बनाकर उसमें डालकर।

मुमुक्षु : वह समझे कि इसमें ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें जीव नहीं, ऐसा समझे। परन्तु वे उसे कहे ही नहीं कि ऐसा समझे कि... पूड़ी अच्छी बनावे फर्स्टक्लास ऐसी पूड़ी। उसमें अन्दर डाला हो। सब आभडछेट है चारों ओर। अच्छे मनुष्य को तो वहाँ हॉस्पीटल में... और वह आयुष्य होगी, वैसा होगा। उसमें कुछ ... ऐसे खायेंगे तो रहेंगे ? कुछ है नहीं धूलधाणी। सज्जन मनुष्यों को... एक बार देखने गये थे न वे बीमार हो न। सवेरे पूड़ी बाँटी जाती हो। हरिजन। हरिजन बाँटता था टोकरा भरकर। होवे सब ब्राह्मण, बनिया, सबको वह दे, हरिजन दे। नौकर ही हरिजन सब।

मुमुक्षु : हरिजन अर्थात् भंगी ?....

पूज्य गुरुदेवश्री : भंगी भी होंगे। आहाहा!

भावार्थ :- कहते हैं, **ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मरूपी जलचर मगर-मच्छादि जल के जीव उनसे भरा जो संसार-सागर...** उपमा देते हैं अब। यह संसार सागर कैसा है ? कि जिसमें ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मरूपी जलचर मगरमच्छ भरे हैं। संसार में तो आठ कर्मरूपी जलचर मगरमच्छ भरे हैं, ऐसे सर्वत्र। आहाहा! **उसमें विषय-कषायरूप प्रचण्ड पवन...** पानी में हिलोर उठे न ऐसे पानी में। वह हवा आवे तो हिलोरे उठे ऐसे पानी में। उसी प्रकार विषय-कषाय के निमित्त मन की चंचलता उठे उसमें। एकदम विकल्प की जाल, मन का पानी। मन का पानी कल्पना हिलोरें खाये हिलोरें ऐसे। घड़ीक में कुछ विचार और घड़ीक में कुछ विकल्प, घड़ीक में कुछ विकल्प। आहाहा! हिलोरें समझते हो न ? वह हिलोरें होती है न तुम्हारे क्या कहते हैं ? झूला-झूला। उसी प्रकार मन के पवन में विषय-कषाय का... झूले में चढ़ा मन। यहाँ होगा, यहाँ मिलेगा, यह मिलेगा... यह मिलेगा... इस शब्द में, इस रूप में, इस गन्ध में। धूल में भी नहीं। परन्तु उन आठ कर्मरूपी मगरमच्छ से भरपूर संसार में यह विषयकषायरूपी प्रचण्ड पवन **जो कि शुद्धात्मतत्त्व से सदा पराङ्मुख हैं,...** वह बाहर का लक्ष्य करना, वह

शुद्धात्मा से बिल्कुल विपरीत है। समझ में आया?

उसमें आता है न कि भाई! '**सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा**' अर्थात् वे उतना सुने। काम, विषय, भोग और भोग की बात बहुत सुनी, इसलिए अब भोग छोड़ो। ऐसा नहीं। वहाँ तो ऐसा कहते हैं कि अनन्त बार श्रुत, परिचित, अनुभूता काम अर्थात् इच्छा और भोग अर्थात् भोगना — राग करना और राग का भोगना, यह बात तूने अनन्त बार सुनी है। फिर फलाना भोग, वह यहाँ बात नहीं। कामभोग शब्द आता है, इसलिए वे पाँचों ही इन्द्रिय विषय, वे भोग, ऐसा नहीं। भगवान आत्मा ने अनन्त बार '**सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि**' '**सव्वस्स वि**'। '**सव्वस्स वि**' में एकेन्द्रिय जीव को ले लिया है। आहाहा! उसने सुना है यह? सुने का वेदन है न उसे? निगोद के जीव को भी राग का करना और राग का वेदना, वह कामभोग की ही कथा उसने सुनी, वेदी और परिचय किया है। समझ में आया? 'श्रुत परिचित अनुभूता' महा विस्तार से तत्त्व की बात की है। भाई! कामभोग का अर्थ शब्द, ऐसा नहीं ले जा कि यह पाँच इन्द्रिय के, यह स्थूल स्त्री, परिवार का विषय।

भगवान आत्मा का विषय छोड़कर जितना विकल्प उठता है शुभाशुभभाव, उसका करना, वह परविषय है, उसका भोगना। यह शुभभाव का करना और शुभ का भोगना, वह भी कामभोग है। समझ में आया? यह '**सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा। एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलहो विहत्तस्स॥४॥**' परन्तु भगवान आत्मा एकत्व, राग से (विभक्त) है, इसलिए भिन्न है, अपने स्वभाव से एकत्व है और पर से-राग से भिन्न है। वह विकल्प जो शुभ-अशुभ है, उसके करने और भोगने से भिन्न है। यह बात उसने कभी सुनी नहीं। वह संक्षिप्त शब्द कामभोग आवे, इसलिए अपने अब यह कामभोग छोड़ो। परन्तु क्या कामभोग छोड़े? समझ में आया?

भगवान आत्मा का विषय जो वीतरागी विज्ञानघन आत्मा की दृष्टि का विषय, उसने कभी सुना नहीं स्वभाव की एकता और राग की पृथक्ता। मात्र उस राग का विकल्प और उसका करना और भोगना, उसका नाम कामभोग की कथा। एकेन्द्रिय से लेकर नौवें ग्रैवेयक द्रव्यलिंगी जैन साधु हुआ, उसने कामभोग की कथा सुनी है। कहो,

समझ में आया? यह व्यवहाररत्नत्रय देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा में तल्लीन था। वरना वहाँ न जाये नौवें ग्रैवेयक में। इतनी उसकी क्रिया थी, परन्तु वह कामभोग में ही लीन है। आहाहा! समझ में आया?

यह यहाँ बात करते हैं, देखो! **उसी प्रचण्ड पवन से जिसका चित्त चलायमान नहीं हुआ, उसी का आत्मा निर्मल होता है।** लो! परसन्मुख के लक्ष्य में, विकल्प में चलायमान न हो, वह स्वसन्मुख के लक्ष्य में निर्मल चित्त को पाता है। कहो, समझ में आया? अब इसकी उपमा देते हैं जरा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आषाढ़ कृष्ण १०, शुक्रवार, दिनांक - २३-०७-१९६५
गाथा - १५६ - १५७, प्रवचन - १७७

१५६ गाथा। परमात्मप्रकाश, दूसरा भाग। भावार्थ है। देखो, फिर से थोड़ा। यहाँ क्या कहते हैं ? कि इस आत्मा को पर विषयकषाय की ओर का झुकाव न रहे तो आत्मा निर्मल होता है। आत्मा अपना स्वभाव तो शुद्ध और निर्मल है, परन्तु उसका झुकाव अनादि से अकेला पर विषयकषाय के झुकाव की ओर ही उसका झुकाव है। परद्रव्य के झुकाव के कारण से आत्मा में कभी मलिनपना उसमें से मिटता नहीं। समझ में आया ?

भावार्थ :- ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मरूपी जलचर... जल में रहे हुए **मगर-मच्छादि जल के जीव....** यह ज्ञानावरणीय जलचर जीव गिनने में आये हैं। **उनसे भरा जो संसार-सागर उसमें विषय-कषायरूप प्रचण्ड पवन...** उस कर्म को जलचर कहा और यह बाहर का जो लक्ष्य जाना, भगवान आत्मा पूर्ण निर्मल शुद्ध का लक्ष्य और ध्येय छोड़कर पर विषयकषाय का लक्ष्य और ध्येय किया, वह पवन — प्रचण्ड पवन। आत्मा में स्थिर होना चाहिए दृष्टि में ध्येय करके, ऐसा न करके, वह स्वयं आठ कर्मरूपी जलचर जीव और उसमें पर की ओर के उन्मुखता का झुकाव, स्वद्रव्य को छोड़कर परद्रव्य की ओर का झुकाव, वह प्रचण्ड पवन। उससे जिसका मन चलायमान नहीं होता, उसका मन निर्मल होता है।

शुद्धात्मतत्त्व से सदा पराङ्मुख हैं,... ऐसा। भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दस्वरूप उससे यह सब पर की ओर के विषय-कषाय, विषय-कषाय शब्द से (आशय) परद्रव्य की ओर का कोई भी झुकाव, उससे शुद्धात्मतत्त्व अत्यन्त विपरीत है। समझ में आया ? **उसी प्रचण्ड पवन से जिसका चित्त चलायमान नहीं हुआ,...** अर्थात् ? जिसका मन परद्रव्य की ओर के झुकाववाला न रहे अर्थात् कि जिसे चैतन्यद्रव्य की ओर के झुकाववाला ज्ञान हो, उसका आत्मा निर्मलरूप से प्रगट होता है। गजब! समझ में

आया? **उसी प्रचण्ड पवन से जिसका चित्त चलायमान नहीं हुआ, उसी का आत्मा निर्मल होता है।** बहुत संक्षिप्त बात। भगवान आत्मा स्ववस्तु शुद्धात्मा, परमपवित्र आनन्दकन्द का धाम आत्मा, उसमें जिसकी दृष्टि-ज्ञान की एकाग्रता है, उसे परद्रव्य की ओर के विकल्प का झुकाव छूट जाता है। समझ में आया? और परद्रव्य की ओर के विकल्प का झुकाव न छूटे तो स्वद्रव्य की ओर की निर्विकल्प दृष्टि नहीं होती। बहुत सूक्ष्म ...! भाषा भी कठोर। परन्तु करने का कहते हैं न, भाई! दया पालो, वनस्पति नहीं खाना, हरितकाय नहीं खाना। आहाहा! परन्तु अब यह पाँच अपवास कर डालना, ऐसा कोई कहे तो ठीक पड़े, समझ में भी आये। पाँच अपवास खींच डालने में कुछ दिक्कत है?

मुमुक्षु : धर्म हो तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म कहाँ था?

यहाँ तो बहुत संक्षिप्त बात की। आठ कर्मरूपी जलचर से भरपूर पूरा संसार। उसमें मन का परसन्मुख का झुकना, वह पवन। उससे आत्मा परिभ्रमण कर रहा है। ऐसा जिसका मन चंचल परसन्मुख के झुकाववाला नहीं और स्वसन्मुख के अन्तर में स्वभाव-सन्मुख की दृष्टि और अन्तर झुकाव है, उसका ही आत्मा धर्म प्राप्त कर निर्मल होता है। **आत्मा रत्न के समान है,...** आत्मा, लो, यह रत्न आया। सेठी! १५६ (गाथा)। रत्न के व्यापारी हैं न ये।

मुमुक्षु : यह रतन दूसरा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरा है। बात तो सच्ची है। वे पत्थर के रत्न हैं।

यह तो **आत्मा रत्न के समान है,...** भगवान आत्मा वह तो परमात्मा स्वरूप ही शक्ति से सत्त्व है। परमात्मा में और पर्याय प्रगट हुई, उसमें द्रव्यरूप से कुछ अन्तर नहीं। वस्तुरूप से आत्मा परमात्मा और प्रगट हुई पर्याय परमात्मा और वस्तुरूप के स्वभाव की अपेक्षा से अन्तर नहीं। समझ में आया? पर्याय में अन्तर है, अवस्था में अन्तर है। प्रगट अवस्था में-व्यक्त में अन्तर है। शक्तिरूप भगवान आत्मा... यह परमात्मप्रकाश है। अकेला प्रकाश का पुंज आनन्द का भरपूर भरा हुआ। जैसे पानी से

भरा घड़ा हो तो घड़ा और पानी तो अभी भिन्न हैं, यह तो आनन्दस्वरूप ही आत्मा। आहाहा! अकेले चैतन्य के तेज जहाँ भरे हैं, आनन्द की आह्लादता जहाँ अन्दर टिक रही है अनादि से, ऐसा भगवान आत्मतत्त्व, जिसे शुद्धात्मा कहते हैं, वही स्वयं परमात्मस्वरूप ही साक्षात् है। समझ में आया? साक्षात् अर्थात् द्रव्यस्वरूप से, वस्तुरूप से। उसकी पर्याय में निर्मल होने के लिये परसन्मुख के झुकाव का चंचल मन छूटकर अन्तर में दृष्टि और ध्येय करके स्थिर हो तो आत्मा निर्मलपने को प्राप्त हो। वरना दूसरे किसी प्रकार से ... है नहीं।

आत्मा रत्न के समान है, अनादि काल का अज्ञानरूपी पाताल में पड़ा है,... देखो! आहाहा! भगवान आत्मा चैतन्य का रत्न, चैतन्य रत्न। परन्तु उसका अभान अर्थात् कि उसका अज्ञान, वह महापाताल कुएँ में ऐसा चैतन्य रत्न पड़ गया है। आहाहा! अज्ञानरूपी पाताल में पड़ा है। अपने को स्वयं भूल गया है, ऐसा कहते हैं। दूसरी कोई बात नहीं। स्वयं कौन है? यह चीज़ क्या है? खबर नहीं। यह पर्याय प्रगट है, उसका लक्ष्य जाता है राग के ऊपर और उसका लक्ष्य जाता है संयोग के ऊपर। बस! इतना उसका अस्तित्व। प्रगट अंश, राग-विकार और संयोग। परन्तु इन तीन से भिन्न इतना अंशवाला नहीं, रागवाला नहीं, संयोगवाला नहीं। पूर्णानन्द प्रभु अनादि-अनन्त चैतन्य पदार्थ परमात्मस्वरूप से भरा हुआ है, परन्तु वह अज्ञानरूपी पाताल में पड़ गया है। भान नहीं होता। एक राग का कण देखे तो उसमें शुभभाव से तो, आहाहा! पाप के परिणाम की अपेक्षा अपने बहुत अच्छे अधिक हो गये, दूसरों से बढ़ गये।

मुमुक्षु : पाप के परिणाम से बढ़ गये?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, बढ़ गये न देखो, कैसा काम करते हैं! दूसरे को आता है? व्यापार-धन्धा हम तो ऐसे उड़ते पक्षी को गिराते हैं। कहते हैं या नहीं? न्यालभाई! उड़ते पक्षी को... समझ में आया या नहीं? यह पक्षी उड़ता हो न। यह वह ...वाला नहीं था? धन्धा है न उसे। सोने की ... क्या कहलाये उसे? ज्योतिष है कुछ। भाव बतावे। उससे मैंने पूछा, तुम दूसरे के भाव बताओ और तुम उस प्रमाण लो तो? यह सोने की चकली हम दूसरे को बताते हैं, हमारी न ... कहे। दूसरे के भाव कहें कि यदि यह जाये

सोने की चकली जाओ पकड़ने। परन्तु तू पकड़ न! कहे हमारा काम नहीं। यह चूड़ावाला है न वह जगजीवनभाई का पुत्र। ... आता है। बोटाद का है।

यहाँ कहते हैं, भगवान आत्मा वहाँ अज्ञान के पाताल में। अर्थात्? यह राग मेरा, पुण्य मेरा, पाप मेरा, देह मेरी, स्त्री मेरी, पुत्र मेरा, परिवार मेरा, देश मेरा... लम्बा... लम्बा... लम्बा... कर-करके या तो मेरे देव-गुरु, मेरे शास्त्र, ये मेरे। ऐसे परसन्मुख के अज्ञानरूपी पाताल में चैतन्यरत्न को छिपा दिया है। समझ में आया? छिपाया अर्थात् कि पाताल में गिरा दिया है। यह ऐसा कैसे कहा पाताल? समझ में आया? अनादि कालरूपी महापाताल ... है। वहाँ उसका पता लगता नहीं कि यह चैतन्यरत्न कहाँ गया और क्या हुआ? पुण्य-पाप के विकल्प जाल और संयोग की अनित्यता, संयोग की अनन्तता। इतने अनन्त जीव हैं तो कहाँ उसका अपनापन है, (उसे) भूलकर यह मेरा... यह मेरा... यह मेरा... अन्त में देव मेरे, गुरु मेरे, शास्त्र मेरे, यह मेरा, सम्मेदशिखर मेरा, शत्रुंजय मेरा, यह समवसरण मेरा। हमारे समवसरण में गये थे। हमारे भगवान थे न वहाँ ... उसके अज्ञान के महा पाताल का कुआँ बड़ा गहरा है, कहते हैं। समझ में आया? यह पर में अपने को मानकर पूरा चैतन्यरत्न अज्ञान में पड़ गया है। आहाहा!

सो रागादि मल के छोड़ने से शीघ्र ही निर्मल हो जाता है,... अर्थात् कि यह आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप, पुण्य-पाप आदि परपदार्थ में एकत्वबुद्धि से अज्ञानरूपी महापाताल में पड़ा हुआ रत्न, उसे वहाँ से बुद्धि हटाकर, चैतन्य भगवान आत्मा में यदि दृष्टि और एकाग्र ध्येय करे तो वह **शीघ्र ही निर्मल हो जाता है,...** अल्पकाल में, देखा! जितना संसार भटकने में चाहिए, उतना परमात्मपद प्राप्त करने के लिये काल नहीं चाहिए।

मुमुक्षु : क्रमबद्ध कहाँ रहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्रमबद्ध ही रहा। ...अर्थात्? उसे थोड़े काल में केवल (ज्ञान) प्राप्त करेगा, ऐसा। काल थोड़ा बताते हैं। आड़ा-टेढ़ा काल उसका कहाँ प्रश्न है? जिसका झुकाव चैतन्य के ज्ञाता-दृष्टापने में राग और पर के कर्तापने से हटा, स्वभाव के चैतन्यरत्न की जिसे कीमत हुई, उसका ज्ञान उसे होने पर वह अल्प काल में केवलज्ञान पायेगा। अब अल्प काल उसे केवलज्ञान में है। अल्प काल अर्थात? जो

आड़ा-टेढ़ा काल, ऐसा प्रश्न नहीं। इस प्रमाण करे, उसे अल्प काल में ही केवलज्ञान होगा, ऐसा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : लम्बा संसार ऐसे कहलाता है। गाथा तो ऐसी ही आवे न। मिथ्यात्व का भाव था, वह उसका अनन्त संसार था। वह अनन्त संसार था। इसलिए तो अज्ञानरूपी पाताल कहा है। मिथ्यात्वरूपी पाताल में पड़ा, तब अनन्त संसार ही था। क्योंकि अनन्त गुण का भगवान सागर, उसका इसने अनादर किया। भव और भव के भावरहित स्वभाव, भव और भव के भावरहित स्वभाव, वह स्वभाव कैसा? कि चैतन्य में रत्न। अनन्तगुण के रत्न की खान। उसका अनादर किया तो मिथ्यात्वभाव में अनन्त संसार ही आया उसे। वह मिथ्यात्व, वही उसका संसार है। समझ में आया? और अनन्तानुबन्धी कषाय भी उस अनन्त मिथ्यात्व को साथ देनेवाली वह कषाय है।

ऐसा अपने शुद्धस्वरूप के ऊपर, वह परसन्मुख के विकल्पों के जाल में न रुककर वह ... कुएँ में प्रत्यक्ष खो गया है उसमें तो। परन्तु जिसे चैतन्य रत्न चाहिए हो, वह भगवान आत्मा के सन्मुख दृष्टि करे तो उसे निर्मल होकर परमात्मा हो। अज्ञान में ... वह भी उसके आधीन है, स्वाधीन होकर परमात्मा होना, वह भी उसके ही आधीन है। किसी के आधीन है नहीं। दूसरे के आधीन नहीं। समझ में आया?

हे बच्चे!... वत्स कहा है न? वत्स हे शिष्य! **आत्मा उन भव्य जीवों का निर्मल होता है,... आत्मा उन भव्य जीवों का...** उन भव्य जीवों का निर्मल होता है और **प्रत्यक्ष उनको आत्मा का दर्शन होता है।** उन्हें प्रत्यक्ष आत्मा के दर्शन होते हैं। **परमकला जो आत्मा की अनुभूति वही हुई निश्चयदृष्टि...** देखो, यह परम कला। भगवान आत्मा का निश्चय सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान उसरूपी अनुभूतिरूपी परम कला। जो कला दुनिया में कोई ७२ कहलाती वह बाहर की कला। ७२ कला आती है न शास्त्र में? राजा के कुँवर बड़े ७२ कला के जाननेवाले होशियार। वह सब कला, वह अकला—अज्ञानकला है। यह एक कला। भगवान चैतन्यरत्न प्रभु उसे, पुण्य-पाप के विकल्प से हटकर स्वभाव की अनुभूति के भान द्वारा उसे प्रगट करना, वही अनुभूति, वह परमसूक्ष्म दृष्टि

की कला है। समझ में आया? उसमें लिखा है, भाई! '**सूक्ष्मनिरीक्षणं**' संस्कृत में। पंडितजी! यह संस्कृत में है। १५६ है न? '**अनुभूति**' '**परमकला एव दृष्टिः परमकलादृष्टिः तया परमकलादृष्टया यावदवलोकनं सूक्ष्मनिरीक्षणं तेन प्रत्यक्षोडपि स्वसंवेदनग्राह्योडपि**' दो बातें लीं। ...रामजी! तुम प्रश्न करते थे न अभी। यह बोल लिया यहाँ। भगवान आत्मा अपने अनुभूति की कला से। परमकला-परमकला यह। दूसरी कोई कला आत्मा को प्राप्त करने के लिये काम न आवे। यह ... ज्ञान काम न आवे और शास्त्रज्ञान भी काम न आवे, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। कितनी जगह काम आती होगी? ... किसलिए ... क्या होगा यह?

यहाँ कहते हैं कि वह तो नहीं, परन्तु शास्त्र की कला भी काम न आवे। ऐसा यहाँ तो कहते हैं। यहाँ तो कहते हैं। भाषा देखो न! '**परमकला**' '**शुद्धात्मा परम इत्युच्यते तस्य परमस्य कला अनुभूतिः परमकला एव दृष्टिः परमकलादृष्टिः**' भगवान आत्मा में जो दृष्टि राग, अल्पज्ञ पर्याय और संयोग में जाती है, वह दृष्टि अन्तर में करे तो उस दृष्टि को परम कला कहा जाता है। समझ में आया? ... खबर नहीं कि यह वह क्या चीज़ है। चैतन्य चमत्कार वस्तु। जिसमें ... एकाग्र करने से केवलज्ञान प्रगटे, ऐसा चैतन्य महारत्न चिन्तामणि रत्न। वह चिन्तामणि रत्न पत्थर हाथ में आवे तब तो ऐ... आहार और पानी, स्त्री और पुत्र वे मिलें। यह चिन्तामणि रत्न ऐसा है, इसमें जितना एकाग्र हो, उतना तुरन्त उसे आनन्द और शान्ति की प्राप्ति होती है। समझ में आया? इसलिए उसे रत्न कहा, चैतन्यरत्न। परन्तु उसकी कीमत बड़ी होगी न, भाई! कहते हैं कि उसकी कीमत तो परम अनुभूति की कला है।

भगवान आत्मा यह पूर्ण प्रभुरूप से पड़ा है परमात्मा स्वयं। उसके सन्मुख की सम्यग्ज्ञानरूपी निश्चय दृष्टि परमकला सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा '**सूक्ष्मनिरीक्षणं तेन प्रत्यक्षोडपि**' उस द्वारा निर्मल होता है, उस द्वारा प्रत्यक्ष होता है और स्वसंवेदन से ग्राह्य भी होता है। पकड़ में आ जाता है, लो, यह आत्मा ज्ञान से पकड़ में आ जाये, ऐसा है। गजब भाई! यह तो मक्खन निकलता है। कहो, प्रवीणभाई! समझ में आया? यह सब बातें की, हों! आगे कहेंगे। कि ऐसे ज्ञान बिना के जो ध्यान करे, वह उसका थोथा है। आगे कहेंगे।

समझ में आया? यह १५८ में। '**अप्पा मेल्लिवि णाणमउ अण्णु जे जायहिँ झाणु**' १५८ में है न। यह सब करते हैं न कितने ही समझे बिना के। अस्तित्व आत्मा का क्या है। उसे छोड़कर ऐसा का ऐसा करे। ऐसे करे। ॐ... ॐ... ॐ... अन्दर शून्य हो जाये विकल्प से। वह सब थोथा है तेरा।

एक समय का भगवान पूर्णानन्द चैतन्य रत्न अस्तिरूप से उसे दृष्टि में लिये बिना उसमें एकाग्रता कभी तीन काल में होती नहीं। बहुत अन्यमति के बाबा... आत्मा साक्षात्कार हो गया। ... गये थे। मोरबी-मोरबी के पास थे न एक। जमींदार थे। जमींदार। मकान वहाँ वहीं था। ... बहुत पड़ी हुई परन्तु। वह जमींदार वह उसके भगवान की आरती उतारता था। उसमें बोलता था। समझ में आया? वह नाम कुछ क्या था? काळु-काळु। काळुभा दरबार। तुम तब नहीं थे? यह तो (संवत्) १९९१ की बात है। मोरबी के पास। और काळुभा को प्रत्यक्ष आत्मा हुआ। हम अन्दर कमरे में थे। यह गप्प-गप्प ... को कुछ खबर नहीं। ... व्यक्ति नरम, हों! कुछ खबर नहीं होती। आत्मा प्रत्यक्ष। अब प्रत्यक्ष किसे कहना आत्मा। अभी ऐसे मिथ्याशल्य के तो बड़े गोदड़े ओढ़े हैं। रामपीर को मानना और ढींकना को मानना और रामापीर एक बड़े हो गये हैं।

यह भगवान आत्मा आत्मराम है। ऐसा अकेला अखण्ड अनन्त गुण का धनी स्वतन्त्र चीज़ एक पदार्थ भिन्न है। ऐसी दृष्टि किये बिना उसे आत्मा का साक्षात्कार कभी होता नहीं। आत्मा... हो गया। कैसा चमत्कार? कि सफेद रंग का चमत्कार। समझ में आया? यह वे थे न एक क्षुल्लक। क्षुल्लक नहीं। सात प्रतिमाधारी। वे प्रभुजी कहलाते। सात प्रतिमाधारी। यह क्षुल्लक थे चिदानन्दजी। उनके पास ले आवे। एक बार तो पा... यहाँ आये। सात प्रतिमाधारी। इंडुरी सिर पर। ... है कपड़े की थी। ऐसे के ऐसे। कुछ खबर नहीं होती। ... आत्मा कैसा होगा प्रभु! ऐसा का ऐसा कह दिया। कि लाल कलर है लाल, भाई! लाल-लाल। लाल आत्मा। यह वस्त्र लाल पहने न, इसलिए लाल हो जाये। फिर और सफेद हो जाये। वह तो सफेद ... दूसरी वह एक आर्यिका आयी थी। वह आर्यिका... आयी। तृषा लगी हुई ... रात्रि में ... स्वयं ने रखा। उसे किसी ने पूछा कि आत्मा कैसा? पहले आत्मा लाल और फिर हो सफेद। अरे भगवान! यह वह कहीं

त्यागी... क्या किया है ? कहाँ है ठिकाना ? कुछ ... रही नहीं, खबर नहीं होती कुछ। लाल क्या कि ... ऐसा करे न तो लाल-लाल हो जाये। यहाँ से ऐसा हो। पश्चात् सफेद। परन्तु वह तो जड़ है। वह तो परमाणु, मिट्टी की पर्याय है। वह कहाँ ? आत्मा तो अरूपी है। वह तो वेदन से ज्ञात होता है। प्रत्यक्ष तो केवल (ज्ञान) हो, तब ज्ञात होता है।

इसलिए यहाँ शब्द प्रयोग किया है कि भगवान आत्मा **उन भव्य जीवों का निर्मल होता है, और प्रत्यक्ष उनको आत्मा का दर्शन होता है।** कि **परमकला जो आत्मा की अनुभूति, वही हुई निश्चयदृष्टि, उससे आत्मस्वरूप का अवलोकन होता है।** देखो, पाठ में है न। अवलोकन। इस अपेक्षा से अवलोकन ऐसे, हों! असंख्य प्रदेश और अनन्त गुण ऐसे प्रत्यक्ष दिखाई दे, ऐसा नहीं, परन्तु यह ज्ञान का वेदन प्रत्यक्ष जानपना जो हुआ, वह पूरा आत्मा ऐसा ही है, उसे... उसे उस प्रकार से अवलोकन किया गया। सब असंख्य प्रदेश और गुण प्रत्यक्ष तो केवल (ज्ञान) हो तब होते हैं। परन्तु वेदन में प्रत्यक्ष यह आनन्द अतीन्द्रिय आत्मा ही है। जो स्वाद राग में अनन्त काल में नहीं था, पुण्य-पाप में नहीं था, इन्द्र के इन्द्रासन में नहीं था, ऐसा यह आनन्द अतीन्द्रिय पूरा ध्येय, पूरा पूर्ण तत्त्व को दृष्टि में लेने से उसका स्वाद 'यह पूरा आत्मा आनन्द है' ऐसे ज्ञान द्वारा अवलोकन हो, उसे आत्मा साक्षात्कार हुआ, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसे माहात्म्य ही नहीं आता। यह सब यह कुछ करे... करे... आहाहा! बाह्यपदार्थ छोड़े, बाह्य पदार्थ हल्का दिखाई दे, हल्का दिखाई दे। बाहर बैठा हो, खिड़की के नीचे बैठा हो, पाँच ... हों, कोई वाड-वाड न हो और खुल्ली धूप हो, यह सरस है। अज्ञानी की दृष्टि संयोग के ऊपर है। संयोग कितने ? कि बढ़े उसके ऊपर उसका माप। परन्तु संयोगीभाव जो है, उसे अपना मानता है और वह मान्यता छोड़कर ज्ञान के ऊपर की दृष्टि में अनुभव करे, उसकी कीमत अज्ञानी को साधारण को लगती नहीं। समझ में आया ? या तो उसे जानपने का बोल आवे तो उसे कीमत हो। ओहो! बहुत जवाब देना आता है, हों! ज्ञान बहुत है। उसकी कीमत नहीं। वह तो जानपने

की... क्षयोपशम के ज्ञान का विषय है। कहो, निहालभाई! ... वह तो परपदार्थ का ज्ञान तो बहुत प्रकार का होता है। अन्तर वस्तु सूक्ष्म अनुभूति द्वारा आत्मा को पकड़े, उस ज्ञान को ज्ञान कहते हैं। परपदार्थ का ज्ञान कम हो, आवे नहीं, जवाब भी देना आवे नहीं, व्याख्यान करना आवे नहीं। इसका अर्थ कि वह दूसरी चीज़ है। यह दूसरी चीज़ है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, किसान नजर से देखता है न। पण्डितजी! यह उसका गाँव है आंकडिया। वह आठ वर्ष का बालक है किसान है न। वह आठ वर्ष का बालक। तो हम गये थे दो वर्ष पहले। बुलाया उसे। महाराज आये हैं। वह आठ वर्ष का दूसरी कक्षा पढ़ता है। करोड़ों का दृष्टान्त दे, अरबों का दृष्टान्त मुखाग्र अरबों का। गुणाकार एकदम ऐसा करे। बड़े-बड़े प्रोफेसर। बड़े प्रोफेसर आ गये उसके पास। स्वयं प्रश्न करे कि एक ट्रक के एक हजार को साढ़े पन्द्रह रुपये की कीमत एक ट्रक की। खटारो समझे न? बड़ा माल भरने का होता है न? माल भरने का। तो वह साढ़े आठ सौ ट्रक के कितने रुपये? ऐसा स्वयं पूछे। वे प्रोफेसर कहे भाईसाहेब! हम ... तुम कहो। तो झट कह दे। दूसरी कुछ जानकारी न हो, हों! दूसरी कुछ नहीं होती। किसान पानी मोड़ता था। खेत में पानी समझे न वह। खेत में पानी डाले न... वहाँ बोला। कोई लड़के ने बुलाया कि महाराज आये हैं, हों! महाराज के पास आ न। आया था। बेचारा नरम व्यक्ति। लड़का आठ वर्ष का ... अरबों का जवाब ऐसे फट-फट मुखाग्र। मैंने कहा, क्या तुझे कुछ आता है? मुझे कुछ खबर नहीं। यह कुछ पूछे तो मुझे ऐसा आवे। परन्तु यह क्यों आता है, यह मुझे खबर नहीं। बहुत जवाब दे। बड़े प्रोफेसर सब आ गये। प्रोफेसर कहे, भाईसाहेब! तेरे प्रश्न हम कागज में लिखते हैं, फिर योगफल करेंगे तो जवाब आवे। तब तुम कहो न। वह तुरन्त कह दे। एक जरा ऐसे विचार करे थोड़ा। दो कक्षा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके साथ क्या सम्बन्ध है। वह कोई तत्त्व-वस्तु नहीं। वह

कहीं तत्त्वदृष्टि नहीं। वह तो उघाड़ उस जाति के ज्ञान के उघाड़ के बहुत प्रकार हैं। अज्ञानी को विभंग नहीं होता? अभव्य, भव्य, मिथ्यादृष्टि को विभंग। सात द्वीप-सात समुद्र देखे। इससे क्या चीज़ हुई? यह भगवान आत्मा एक समय में अन्तर ज्ञान की क्षयोपशम दृष्टि के अवलोकन से देखने में, अनुभव में आवे, उसे ज्ञान कहा जाता है। बात बहुत सूक्ष्म, भाई! समझ में आया? इसलिए यह रखा है, यह सब शब्द। व्यर्थ में नहीं रखे कहीं ब्रह्मदेव ने।

कि यह अनुभूति परमकला। ऐसा जवाब दे। मुझे यह क्या! वे थे न तुम्हारे वह। उनकी कुछ गिनती। शान्तिभाई के भाई का पुत्र है न। ... का पुत्र है। वह तो यहाँ जामनगर। परन्तु उसे जरा ऐसा पूछे तो ... लगता है। फलानी तिथि में तारीख कौन सी थी? मेरा जन्म फलाने पचास के वर्ष में श्रावण कृष्ण एकम को था। तब तारीख कौनसी? कह दे। पचास वर्ष पहले का... ऐसे देखो तो पत्र बेचकर रोटियाँ खाये। यह पत्र क्या कहलाते हैं? अखबार। अखबार बेचकर। साधारण। बुद्धि भी साधारण दिखे, परन्तु अब उस जाति का एक उघाड़ होता है। ... तिथि स्वयं... जवाब दे कोई पूछे... तुरन्त जवाब दे। इस प्रकार के एक विकास की कला अनन्त काल में अनन्त बार प्रगट हुई है। वह कोई अपूर्व बात है नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह तो सब नजरों से देखा हुआ है न!

और जामनगर का एक लड़का ऐसा है कि ऐसे ट्रक निकले... खटारो समझे? यह मोटर ... भरे हुए। उसका जो नम्बर हो, वह ऐसे बैठा हो और उसे पूछे कि यह ट्रक किस नम्बर का? वह नम्बर कह दे। सामने देखे नहीं ऐसे। इस जाति का कोई विकास क्षयोपशम का आवे, उस प्रकार से, वह अज्ञानता है। परन्तु वह अज्ञान के पाताल में पड़ गया और यह जाने कि मुझे विकास हुआ। समझ में आया? कुछ नहीं होता कुछ। सब थोथा।

भगवान आत्मा जिसके ज्ञान का सत्त्व ऐसे सर्वज्ञपना पूरा सत्त्व पड़ा है। ऐसे सर्वदर्शी का पूरा सत्त्व है। आनन्द का पूरा सत्त्व है, वीर्य का पूरा सत्त्व है, स्वच्छत्व का पूरा सत्त्व है। ऐसे अनन्त गुण का सत्त्व एक सत्। ऐसे अनन्तगुण के सत्त्व का एक सत्।

उसे अन्तर की परमज्ञान की अनुभूति कला से जाने, तब उसे प्रत्यक्ष हुए बिना रहे नहीं, ऐसा कहते हैं। जाने, अवलोकन करे सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा '**प्रत्यक्षोडपि स्वसंवेदनग्राह्योडपि**' यह स्वसंवेदनज्ञान। ज्ञान ज्ञान को वेदे। अद्धर रूखा ज्ञान न हो वह। घण्टे, दो घण्टे पढ़े तो कुछ ख्याल में आवे। एक आधे घण्टे अन्दर में रुके तो कुछ नवीन अन्तर दिखाई दे तब न। आनन्द अतीन्द्रिय शान्ति अपूर्व भाव अनुभूति के द्वारा आत्मा ज्ञात हो और ग्राह्य हो। बाकी कोई दूसरे प्रकार से ऐसा है नहीं। समझ में आया?

अन्यमति बहुत प्रकार से ध्यान करना चाहते हैं। बहुत यहाँ हमको पूछने आते हैं। महाराज! ध्यान। ध्यान-ब्यान, आत्मा को पहिचानो, वह ध्यान। समझे बिना किसका ध्यान तुम्हारा? थोथा ध्यान है। एक तत्त्व उसका सत्त्व कितना है, कितने प्रकार का अनन्तगुणा है, उसके ज्ञान में भास होकर अन्तर ज्ञान न हो, तब तक कुछ हो ऐसा धूल भी नहीं वह। ॐ... ॐ... करके ॐ... ॐ... ॐ... ॐ... ॐ... ॐ... अनन्त ॐ... ॐ... कर न, अब, वह तो विकल्प है। निहालभाई! सहजात्मस्वरूप-सहजात्मस्वरूप आता है या नहीं? चैतन्य पूर्ण सहजात्मस्वरूप-सहजात्मस्वरूप। परन्तु वह तो विकल्प है। सहजात्मस्वरूप जैसा है, वैसा अन्तर के ज्ञान में भासित हो, तब सहजात्मस्वरूप कहलाये। यह माला गिने भाई! सर्वज्ञ वीतराग, सर्वज्ञ देव महादेव, सर्वज्ञ प्रभु महादेव, सर्वज्ञदेव परमगुरु, सर्वज्ञदेव परमगुरु, सर्वज्ञदेव परमगुरु। आता है या नहीं? गिनी है या नहीं? यह गिनी होगी। परमदेव परमगुरु। परन्तु सर्वज्ञदेव परमगुरु यह भाषा में है? विकल्प में है? या अन्दर में है? जहाँ है, वहाँ नजर करता नहीं और नजर बिना विकल्प और वाणी में रटा करे। सर्वज्ञदेव परमगुरु। वह वहाँ कहाँ सर्वज्ञदेव परमगुरु थे? वाणी में थे? विकल्प में थे? अरे! गजब बातें, भाई! समझ में आया? भगवान सर्वज्ञ चैतन्यमूर्ति चमत्कार। जिसका चमत्कार, जिसमें एकाग्र होने से अनुभूति से भान हो, ऐसा और विशेष स्थिरता से केवलज्ञान हो वैसा। देखो, यहाँ तो सब व्यवहार के क्रियाकाण्ड से होता है, इस बात को स्मरण ही नहीं किया यहाँ। समझ में आया?

आत्मा स्वसंवेदनज्ञान करके ही ग्रहण करनेयोग्य है। देखो, दूसरे किसी ज्ञान द्वारा—ग्यारह अंग और नौ पूर्व पढ़ा हो तो भी उस ज्ञान से आत्मा ग्राह्य हो, ऐसा है

नहीं। **स्वसंवेदनज्ञान करके...** पहली इसकी पद्धति की खबर नहीं होती, पद्धति की खबर नहीं होती, स्वरूप कैसा है, उसका अनुभव किसे करना है ? किसलिए और कैसा है आत्मा ? खबर नहीं होती और उसे धर्म कहना अब! कहते हैं, **स्वसंवेदनज्ञान करके...** दूसरी लाख बात, करोड़ बात हो, परन्तु इसे लागू पड़ती नहीं, ऐसा कहते हैं। जैसे दया, दान के परिणाम या व्यवहार के... ध्यान में पकड़ना, अनुभव करने में काम आते नहीं। उसी प्रकार शास्त्र का ज्ञान भी आत्मा को अनुभव करने में काम नहीं आता। 'कोई क्रियाजड़ हो रहे...' यह आता है न ? श्रीमद् ने तो बहुत कहा है अन्दर। '...शुष्क ज्ञान में कोई, माने मार्ग मोक्ष का करुणा उपजे जोई।' अकेले राग की क्रिया से धर्म माने और सुख माने अकेले ज्ञान जानपने का क्षयोपशम। उससे हो गया ज्ञान। नहीं... नहीं... नहीं... समझ में आया ? आहाहा!

आठ वर्ष का बालक हो और होवे क्षायिक समकित। आहाहा! और वह हो मुनि। धन्य अवतार। ऐसे राजा का कुँवर हो, क्षायिक समकिती हो। विशेष बोलना भी न आता हो। भगवान तीर्थंकर, लो न! छह महीने का बालक हो, उसे बुलावे कि तुम्हारा नाम क्या ? भाषा बोल सकेगा ? क्षायिक समकित और तीन ज्ञान हैं अन्दर। तीर्थंकर को क्षायिक समकित और तीन ज्ञान हैं। यह ... है कितनों को, हों! कितने ही क्षयोपशम, बाद में (क्षायिक) होता है। परन्तु यह तो शान्तिनाथ... तीन ज्ञान, क्षायिक समकित। तो तीन ज्ञान और क्षायिक समकित, बोलो तुम्हारा नाम। उसे ज्ञान में आवे, अवधिज्ञान में उपयोग लगाये तो ? भाषा कहाँ से ? यह तो परसाधन है। समझ में आया ? छह महीने का बालक किस प्रकार बोलेगा ? वह बोलेगा ? भाषा करेगा ? और भाषा नहीं आती, इसलिए अन्दर ज्ञान और समकित, तीन ज्ञान नहीं – ऐसा है ? यह दूसरी चीज़ है, वह दूसरी चीज़ है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इन्द्र आकर ऐसे खम्मा अन्नदाता। ... इस भव में केवल (ज्ञान) पाकर मुक्ति पानेवाले हैं। अभी तो एक दिन का बालक, एक दिन का कहाँ ? ऐसे जन्मा हो। ... हाथ में लेकर। भाषा कहाँ है अन्दर ? समुद्र जैसा, समुद्र जैसा गम्भीर

शरीर। वृद्ध व्यक्ति हो जो सौ वर्ष का वृद्ध, ऐसा शरीर गम्भीर... गम्भीर... गम्भीर... बोले कुछ? क्या बोले परन्तु भाषा का योग होना चाहिए न! उसके प्रमाण में कला जब खिलती हो, तब भाषा आयेगी। अन्दर तो खिला हुआ है। तीन ज्ञान और क्षायिक समकित है। और शरीर भी (अद्भुत है)। आहाहा! ... एक दिन का जन्मा हुआ। मेरुपर्वत पर ऐसे रखे। पानी के कलश कैसे आठ-आठ योजन के। पण्डितजी! कितना बड़ा आया है? गप्प नहीं, हों! अतिशयोक्ति नहीं। महान पुरुषों के ऐसे पुण्य हैं। ऐसा शरीर ... एक घण्टे के जन्मे हुए के ऊपर पानी डाले तो तुरन्त मर जाये। यह तो १००८ कलश। क्या कहते हैं वहाँ?

मुमुक्षु : डॉक्टर सिर पर पानी डालने से इनकार करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : डॉक्टर ... मर जाये परन्तु यह। यह मनुष्य तो मर जाये। उनको १००८ (कलश) डाले, तब लोगों को महिमा आवे कि आहाहा! यह वह चैतन्यरत्न कौन है और इनका शरीर भी कैसा है? यह अभी का जन्मा, अभी रात्रि में जन्मे और ... अभी लाये मेरु के ऊपर। इन्द्र हाथ में लेकर बैठे। ... बिठावे, शिला है न। ... यहाँ इन्द्र की पंक्ति बैठी हो। दूध और पानी (क्षीर समुद्र का जल)। ... मर जायेगा। शंका है इन्द्रों को? शरीर की जाति अलग हो गयी है। पूर्व में जब तीर्थंकरगोत्र बाँधा, तब शरीर ही कोई अलग प्रकार का हो गया। पहले से परम औदारिकशरीर है। दूसरे को तो केवल (ज्ञान) हो तब होता है। बापू! यह तो वस्तु की मर्यादा है। ऐसा न समझो (कि) यह सब गप्प है। चैतन्य वहाँ उजला प्रगट हुआ है और जहाँ भूमिका में पुण्य बँधा है। शरीर भी पत्थर जैसा, रत्न जैसा हो गया। ऐसा कलश बड़ा आठ योजन का ऐसा वैसे। बीच में चार योजन का अन्तर... १००८। मर जाये न दूसरा तो।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मटका हो? कलश ठण्डा डाले ठीक सा तो शान्त हो जाये। ठण्डा हो जाये। अर्थात् क्या कहा, समझ में आया? अर्थात् मर जाये। ठण्डा हो जाये। और यह, आहाहा! देखो तो सही। यह उसके उत्तम भान की दशा में पुण्य बँधे, उसके फल कोई अलौकिक होते हैं। क्या कहना? ऐसे ज्ञान और आनन्द के समक्ष के पुण्य

बँधे, उस पुण्य की बातें क्या करना? है तो जाननेयोग्य। परन्तु वह पुण्य जिसे ऐसा। आहाहा! इन्द्रों को होता है। प्रभु! आप इस देह से सर्वज्ञ होनेवाले हैं। हमारे तो अभी देरी है। अभी एक भव मनुष्य का करेंगे, तब होगी। यह शकेन्द्र। एक भव अभी हमारे बाकी है। यह ... बहुत वर्ष बाकी है इस देह में। आप तो इसी भव में केवल (ज्ञान) होकर ... मोक्ष ....

यह अन्तर कला खिली, जागकर आये, यह जागकर आये और उसके जागृत भाव में जो पुण्य बँधा, वह बात बहुत अलौकिक है। आत्मा भी अलौकिक और पुण्य भी अलौकि अर्थात् लोकोत्तर, ऐसा। पुण्य अलौकिक अर्थात् लोकोत्तर पुण्य। साधारण के पुण्य को साधारण। सातिशय पुण्य। वस्तु की स्थिति ऐसी है। शंका करनेयोग्य नहीं कि ऐसा होगा या नहीं? ऐसा ही है। आहाहा! भगवान के पवित्र आत्मा के समक्ष पुण्य की क्या कीमत? चाहे जैसा पुण्य हो, उसकी कीमत क्या? ऐसा पुण्य होता ही है। समझ में आया? दाना बड़ा हो उसका डण्ठल बड़ा हो। राडुं समझे न? राडुं को क्या कहते हैं? सांठा। हमारी भाषा में सांठा (कहते हैं)। इस गन्ने का या कोई भी बाजरा-ज्वार हो डुंडा। डुंडा के नीचे ऐसा पूरा होता है न। ... परन्तु अपनी भाषा में कहे। हाँ, वह डुंडा बड़ा होता है। ... बड़ा, उसका डुंडा बड़ा। जाड़ा-मोटा। हमने तो सब देखा है न। आसोज महीने में, समझे न। (संवत्) १९७३ के वर्ष। आसोज में छह महीने वर्षा आयी थी। ७३ के वर्ष छह महीने, हों! चैत्र से आसोज। तो ... गये, बेचरभाई का गाँव है न। ... वह ... देखा तब। ७३ की बात है। २७ और कितने हुए? ४७-४८ वर्ष हुए। परन्तु ऐसे नजर में तैरता है अभी। बहुत वर्षा आयी थी। छह महीने। चैत्र से आसोज महीने तक। इसलिए ज्वार... ज्वार... ज्वार... और बड़े-बड़े ... वर्षा ऐसी आयी हुई कि उसे पोषण मिले ऐसा। बिगड़ जाये ऐसा नहीं। ऐसी वर्षा आयी... ... दो, चार, पाँच बहुत खेत बहुतों को इसलिए बहुत पानी आ जाये तो डुंडा भारी हो जाये न तो ऐसे नम न जाये। इसलिए २५-२५ उनको बाँध दे। उन डुंडा को २५-२५ बाँध दे। इसलिए ऐसे भी न नमे और ऐसे भी न नमे। यह ७३ की बात है। तो वे ऐस उसके डुंडे मजबूत। इसी प्रकार जिसकी पवित्रता जिसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट हुए, उसके पुण्य डुंडा है, वह

डुंडा। उसका डुंडा भी मजबूत होता है। समझ में आया? ७३ में ऐसा हुआ था। ज्वार बहुत पड़ी... ... हमारे तो वहाँ बहुत ....

जिसका मन विषय से चंचल न हो, उसी को आत्मा का दर्शन होता है। आहाहा! विषय शब्द से? अकेले भोग, ऐसा नहीं। परद्रव्य की ओर का विषय अर्थात् ध्येय, उसे छोड़े, उसको आत्मा का ध्येय पकड़ में आता है। देव-गुरु-शास्त्र विषय है। चिल्लाहट मचा जाये। एक बार हमारा (प्रवचन का) लेख आत्मधर्म में आया है। अरे! यह तो देव-गुरु-शास्त्र को विषय कहते हैं। सुन न अब। विषय अर्थात्? यह आत्मा के अतिरिक्त का लक्ष्य जितना, वह सब पर विषय है। शुभाशुभभाव अर्थात् वह तो सब परविषय है। स्वविषय तो अकेला चिदानन्द भगवान सम्यग्ज्ञान का विषय अकेला ध्रुव आत्मा है। समझ में आया? वस्तु की खबर नहीं होती और ऊपर-ऊपर से ऐसे। इन्होंने एकान्त किया है। ऐई! इन्होंने ऐसा किया, फलाना है। सुन न अब। यह १५६ हुई। **उसी को आत्मा का दर्शन होता है।** लो, १५६ हुई।

★ ★ ★

गाथा - १५७

१५७ अब।

२८८) अप्पा परहँ ण मेलविउ मणु मारिवि सहस त्ति।
सो वढ जाएँ किं करइ जासु ण एही सत्ति॥१५७॥

जिसने शीघ्र ही मन को वश में करके... यहाँ तो परविषय की ओर के झुकाव वाला मन छोड़ता नहीं, उसे स्वविषय भगवान आत्मा दृष्टि में आता नहीं। यह बात है, भाई! उसके लक्ष्य में, उसकी श्रद्धा में तो विषय ले कि यह भगवान आत्मा अन्तर्मुख के लक्ष्य से अनुभव में आ सके, ऐसा है। बाकी किसी उपाय से वह अनुभव में आवे, ऐसी वस्तु है नहीं। **यह आत्मा परमात्मा में नहीं मिलाया,...** देखो, जिसने पर की ओर के मन को मोड़कर अन्तर में आत्मा के साथ परमात्मा को। आत्मा से आत्मा को। परमात्मा अर्थात् त्रिकाल स्वरूप। अपना त्रिकाल स्वरूप परमात्मा। अपना, हों परमात्मा। वे

परमात्मा नहीं।

आत्मा परमात्मा में... अर्थात् निर्विकल्प पर्याय द्वारा आत्मा पूर्ण स्वभाव **नहीं मिलाया, हे शिष्य, जिसकी ऐसी शक्ति नहीं है, वह योग से क्या कर सकता है ?** योग करते हैं न बहुत से ? अन्यमति के ऐसे करे। क्या कहलाता है ? इंगला और पिंगला। आता है न ! यह कुम्भक और रेचक और घातक को फलाना अब धूल में भी वह नहीं, सुन न ! ऐसे देखे।... वह तो श्वास की क्रिया, परन्तु उसमें तुझे क्या ?... फिर धीरे-धीरे बाहर निकले। उसका नाम ध्यान। धूल में भी ध्यान नहीं, सुन न ! मर जायेगा, मुफ्त का काल जायेगा तेरा। यहाँ तो कहते हैं। यह कहते हैं। यहाँ कहना चाहते हैं कि **आत्मा परमात्मा में...** निर्विकल्प दृष्टि-ज्ञान द्वारा भगवान द्रव्य से जिसने मन को नहीं मिलाया। **जिसकी ऐसी शक्ति नहीं है, वह योग से क्या कर सकता है ?** योग से ... साध्य नहीं। फलाना और ढींकणा। कुछ भी नहीं कर सकता।

'सहसा मनः मारयित्वा' यह तो मक्खन की बातें हैं अकेली। **जिसने शीघ्र ही मन को वश में करके... 'सहसा मनः मारयित्वा' 'सहसा'** अर्थात् शीघ्र **मन को वश में करके यह आत्मा परमात्मा में नहीं मिलाया... 'परस्य न' 'परस्य'** अर्थात् परमात्मा, ऐसा। परम-परम परस्पर स्वरूप अपना उत्कृष्ट। उत्कृष्ट स्वरूप भगवान आत्मा द्रव्यस्वरूप। **हे शिष्य! जिसकी ऐसी शक्ति नहीं है, वह योग से क्या कर सकता है ?** योग साधते हैं, अभी योग साधते हैं हम। समझ में आया ?

भावार्थ :- यह प्रत्यक्षरूप संसारी जीव विकल्पसहित है दशा जिसकी,... देखो, यहाँ तो प्रत्यक्ष दिखता है, कहते हैं। **'प्रत्यक्षीभूतः सविकल्प आत्मा'** उसे राग का ... पुण्य और पाप के विकल्पसहित आत्मा प्रत्यक्ष दिखता है। प्रत्यक्ष अर्थात् कि रागवाला है, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञान में आता है, दिखता है ऐसा। अर्थात् क्या कहा यह ? कि भाई ! उसे विकल्प और पुण्य-पाप पर्याय में है ही नहीं, ऐसा नहीं। उसकी पर्याय में पुण्य, पाप, विकल्प, राग, संसार, मिथ्यात्व वह है। वह तो आत्मा परद्रव्य निर्मल है, भाई ! लो ! द्रव्य से निर्मल, गुण से निर्मल, पर्याय से निर्मल। ऐसा नहीं। द्रव्य से निर्मल, गुण से निर्मल, पर्याय से निर्मल नहीं। यह कहते हैं, प्रत्यक्ष दिखता है कि यह विकल्पवाला,

रागवाला आत्मा है। मलिन पर्याय है। समझ में आया? इसने कहा कि नहीं आत्मा बस, बिल्कुल सिद्ध समान भी पर्याय में है। नियमसार में नहीं कहा? सिद्ध भगवान ऐसे सब संसारी, ऐसा लिखा है। जैसे सिद्ध को आठ गुण ऐसे संसारी को आठ गुण हैं। ऐसा पाठ है। मूल पाठ। वह तो शक्तिरूप की ही बात है। प्रगटरूप कैसा? सिद्ध की प्रगटरूप पर्याय वैसे प्रगटरूप पर्याय हो, फिर आवरण किसका? मलिन स्वभाव हो किसका? वे आठ गुण प्रगट क्षायिकभाव भी हो और वापस उसका उदयभाव भी हो राग का? दो भाव होंगे? कितने ही कहे, देखो इसमें लिखा है सिद्ध समान आत्मा। परन्तु सिद्ध समान तो स्वरूप इसका ऐसा है। देखो न, स्वरूप शुद्ध चैतन्य। परन्तु कहते हैं कि पर्याय में प्रत्यक्ष पुण्य-पाप, भ्रमणा, राग-द्वेषवाला मलिन दिखता है। बराबर है? मोहनभाई! या मलिन है ही नहीं पर्याय में? ... न हो तो फिर तुझे करने का क्या रहता है? न हो तो करने का तुझे रहे क्या?

यह प्रत्यक्षरूप संसारी जीव विकल्प सहित है दशा जिसकी, उसको समस्त विकल्प-जाल रहित निर्मल ज्ञान-दर्शन स्वभाव परमात्मा से नहीं मिलाया। ओहोहो! भगवान आत्मा शुभाशुभरागसहित जो दशा में दिखता है। उसकी निर्मल पर्याय द्वारा पूर्ण द्रव्यस्वभाव में जिसने मिलाया नहीं, अपनी निर्मल पर्याय द्वारा वस्तु के स्वभाव के ओर की एकता की नहीं। वह कैसा है भगवान? **निर्मल ज्ञान-दर्शन स्वभाव परमात्मा...** अपना निर्मल स्वभाव है। ज्ञान-दर्शन तो त्रिकाल निर्मल ही स्वभाव है। ऐसा जो अपना परमात्मा। उसके साथ निर्विकल्प पर्याय से आत्मा के साथ जुड़ान नहीं किया हो और **मिथ्यात्व विषय कषायादि विकल्पों के समूहकर परिणत हुआ...** मिथ्यात्व भ्रान्ति। भ्रम हुआ, विकल्प है और निर्विकल्प मान बैठा। रागसहित है और वीतरागी मान बैठा। भ्रमणा है, कहते हैं। पर्याय में राग है और मानता है कि हम वीतरागी हैं। पर्याय में, हों! द्रव्य-गुण से तो वीतराग है, यह अलग बात है।

मिथ्यात्व विषय... पर में लक्ष्य जाता है ऐसे **विकल्पों के समूहकर परिणत हुआ जो मन उसको वीतराग निर्विकल्प समाधिरूप शस्त्र से शीघ्र ही मारकर...** देखो, उसको रागरहित अभेद समाधि अर्थात् आत्मा के ओर की एकाग्रता। शुद्ध भगवान

आत्मा की ओर की एकाग्रता, ऐसी जो परम शान्ति। ऐसे **शस्त्र से शीघ्र ही मारकर आत्मा को परमात्मा से नहीं मिलाया...** ऐसे विकल्पवाले मलिन परिणाम को, अन्तर में स्वभाव की एकाग्रता अर्थात् निर्विकल्प पर्याय द्वारा ऐसी मलिन पर्याय को मारा नहीं। **वह योगी योग से क्या कर सकता है ?** वह योगी ऐसा का ऐसा विचार करे और अन्दर में धुन लगा दे क्या कर सकता है ? बोलता नहीं। बोले नहीं। बारह वर्ष से बोलते नहीं कहे, लो... एक गये थे हम वहाँ। कौनसा गाँव ? ... मठ था मठ। उसमें एक व्याख्यान देने... लोग बहुत आये। आवास उनके मकान में किया था। बाबा था, वह बारह वर्ष से बोले नहीं। और उसे बाबा-बाबा भगत बहुत थे। व्याख्यान में आये बेचारे, हों! ... यह बारह वर्ष से बोले नहीं। एकेन्द्रिय को भाषा नहीं, क्या हो गया परन्तु ? बोले नहीं तो क्या हुआ ? फिर कहे तीन-तीन दिखाव दे प्रतिदिन। सवेरे फलाने का, दोपहर में कृष्ण का, शाम को फलाना ऐसे वस्त्र पहने। ऐसा बाबा, हों! परन्तु वस्त्र रेशमी राजा के कुँवर जैसे पहने। घड़ीक में लंगोटी, एक दिन में कितने वेश पहने। मर गया बेचारा। मनुष्य ऐसे वह था, व्याख्यान सुनने आवे। उसके मठ का ... बाबा बहुत लेकर आये थे। बाबा-बाबा तो बहुत बैठे थे सुनने।

मैंने कहा, आत्मा को उसे कहना... वह पीपर का दृष्टान्त देते हैं न, वह बहुत। छोटी पीपर का दृष्टान्त। आत्मा-आत्मा करे, ऐसा नहीं चलता, कहा। आत्मा एक पीपर में जैसे चौंसठ पहरी चरपराहट और हरापन, हरा रंग भरा है, वैसे आत्मा में पूर्ण आनन्द और ज्ञान एक-द्रव्य में पूरा भरा है। ऐसे आत्मा की दृष्टि बिना आत्मा-आत्मा करे, उसे आत्मा हाथ नहीं आता, लो! तब वह बाबा कहे, दृष्टान्त बहुत गजब! उन बाबाओं को... वे लोग नहीं बोले। दूसरे। ऐसे आत्मा क्या चीज़ है, उसकी खबर न हो और तुम आत्मा... आत्मा... आत्मा का ध्यान करने लगो। किसके ध्यान हैं सब ? अब ऐसा आत्मा किसने कहा, उस देव को भी परखना चाहिए, ऐसा आत्मा किसने साधा, ऐसे गुरु को भी पहिचानना चाहिए और ऐसा आत्मा किसने कहा, ऐसे शास्त्र को जानना पड़ेगा। समझ में आया ? ऐसे के ऐसे सब हो गये, लो, यह बाबा हो गये, ओहोहो! कुछ बोलते नहीं। दो रोटियाँ खाये, रूखी खाये। न खाये तो क्या हो गया परन्तु अब ?

वस्तु क्या है आत्मा? वह यहाँ कहते हैं। अरे! तेरी चीज़ को दृष्टि में लेने की सामर्थ्य नहीं। ... घर में स्त्रियाँ आठ अपवास करें तो माहात्म्य आ जाये, लो। वापस महोत्सव करना पड़े थोड़ा-बहुत, सौ, दो सौ, पाँच सौ खर्च करके। पर्यूषण के दस अपवास, बापू! दस लक्षण शुरु किये हैं। फिर भले लंघन की हो। लंघन ही है। लांघण समझते हो? लंघन कहते हैं न? लंघन। विषय-कषाय जिसमें आत्मा के परसन्मुख के विषय-कषाय के परिणाम छूट जायें और अन्तर स्वरूप में दृष्टि को उपवास अर्थात् समीप में वास किया है, स्वरूप का भान करके उसमें बसा है, उसे उपवास है। बाकी सबको लंघन है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करता था? छोड़े कौन और करे कौन? उसे विकल्प आने का हो, आया हो, बाहर का होना हो वैसा होता है। मानता है दृष्टि में विपरीत, वह इसे समझना चाहिए। समझना पड़ेगा।

मोक्षमार्गप्रकाशक में दृष्टान्त देते हैं। ... **जिसमें मन मारने की शक्ति नहीं है, वह योगी कैसा?** ... वह टलता है, वह पर्याय थी; स्वभाव शाश्वत है, अनन्त गुण हैं और एकाग्र होने से निर्मल पर्याय प्रगट होती है और मलिन पर्याय जाती है। यह उत्पाद-व्यय-ध्रुववाला द्रव्य, द्रव्य में अनन्त गुण हैं। उसे ... प्रगट होते हैं। ऐसा सब नहीं, यह किये बिना आत्मा कभी दृष्टि में नहीं आता। अकेली बातें करे उत्पाद-व्यय-ध्रुव की, उसका आत्मा क्या उत्पाद और क्या व्यय और क्या ध्रुव? यह सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं नहीं होता। समझ में आया? दूसरे बाबा मर जाये ऐसे-ऐसे कर-करके। धूल भी हाथ नहीं आवे। जायेगा चार गति में। ऐसा आचार्य कहते हैं।

योगी तो उसको कहते हैं, कि जो बड़ाई पूजा... देखो, दो अर्थ आये। '**सत्ति**' है न? '**सत्ति**' पूजा '**सत्ति**' का अर्थ बड़ाई, पूजा का अर्थ महिमा। बड़ाई बाहर में है और ... स्वयं है। **और लाभ...** बाहर की चीज़ का। कोई भी शिष्य का, गुरु का, कीर्ति का, **सब मनोरथरूप विकल्प-जालों से रहित निर्मल ज्ञान-दर्शनमयी परमात्मा को...** मलिन पर्याय। भगवान निर्मल त्रिकाल। तो पर्याय में मलिनता जाने, माने, पहिचाने, उसे निर्मल

होने की पर्याय द्रव्य में से आती है। ऐसा सब द्रव्य का ऐसा स्वरूप होता है, इससे विरुद्ध कहते हों, वह द्रव्य के स्वरूप को जानते नहीं। और बड़ा मानधाता हो और बाबा-बाबा। सब थोथा है, ऐसा कहते हैं। बाबा है न? बहुत बाबा। एक बाबा आया था बड़ा बाबा ऐसा लम्बा। हीराभाई के मकान में आया था। ऐसा बड़ा मुख, ऐसा बड़ा। ... बड़ी जटा। हमारा नाम बड़ा बाहर आवे न पहले से ... कि एक महाराज कमरे में हैं वहाँ। आया था। माँगता था फिर पाँच सौ। यहाँ आत्मा की बात है। हम किसी को पैसा देने-लेने का कुछ कहते नहीं। हम कोई ... करते नहीं और कहते भी नहीं। चला गया। था तो बड़ा जोरदार, हों! ऐसा मोटा। ... यज्ञ हो न, क्या कहलाये? यह कण्डे जलाते हैं न कण्डे? क्या कहलाये? पंचाग्नि तप ऐसा कोई किया हो और पुण्य बँध गया हो तो शरीर आवे मोटा। थोथा जैसा मिले। क्या है परन्तु इसमें? कहा उसे ऐसी हरकत और ... कराना है। अब तब माँग न भिखारी!

कहते हैं, योगी उसे कहते हैं कि जिसकी बड़ाई, पूजा और **लाभादि सब मनोरथरूप विकल्प-जालों से रहित निर्मल ज्ञान-दर्शनमयी परमात्मा को देखो,...** यह देखे, अवलोके चैतन्य ऐसा है ऐसा। **जाने, अनुभव करे।** तीन ले लिये। उसमें स्थिर हो उसे योगी कहते हैं। **ऐसा मन के मारे बिना नहीं हो सकता, यह निश्चय जानना।** अर्थात् कि विकल्प की पर्याय मन के साथ जुड़ी हुई दिखती है। उसका अभाव स्वभाव के आश्रय बिना नहीं होता। उसके बिना योगी नहीं कहलाता।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आषाढ़ कृष्ण ११, शनिवार, दिनांक - २४-०७-१९६५
गाथा - १५८ - १५९, प्रवचन - १७८

परमात्मप्रकाश, १५८ गाथा। यह तो अन्तिम गाथायें हैं न, मक्खन सार-सार कितना है, यह बात अभी कथन - वर्णन करते हैं। देखो, यह ध्यान। ध्यान अर्थात्? लक्ष्य कहाँ लगाना? जिसे हित करना हो, उसे लक्ष्य किस ओर करना? और किस ओर से लक्ष्य हटाना? यह मुद्दे की रकम की बात है। जिसे आत्मा का हित करना हो... आत्मा क्या चीज़ है? कि जिसमें हित हो और अहित टले। यह हित होता है, वह हितपना क्या? हितपना जो प्रगट हो, वह हितपना कहीं अन्दर स्वभाव में है या बाहर से आता होगा? ऐसा इसे पहले निर्णय करना चाहिए। हित अर्थात् मोक्ष। निर्जरा, वह हित और मोक्ष परम हित। कर्म के अंश का टलना, शुद्धि का होना, पूर्ण शुद्धि का होना और सर्व कर्म का टलना। यह हित और परम हित। समझ में आया इसमें? आंशिक शुद्धि का बढ़ना और शुद्धि का पूर्ण होना। पहला वह हित है और दूसरा परमहित है। आंशिक शुद्धि का होना, वह आंशिक कर्म का गलना। पूर्ण हित का होना अर्थात् पूर्ण कर्म का जाना। तो वह क्या चीज़ आत्मा है कि जिसमें से आत्मशान्ति मिले, अपूर्ण मिले और पूर्ण मिले और कर्म टले, वह चीज़ क्या है आत्मा? उसका इसे पहले यथार्थ ज्ञान करना चाहिए।

तो कहते हैं कि **आगे ज्ञानमयी आत्मा को छोड़कर...** भगवान आत्मा ज्ञानमयी। पहले कहा था। अन्दर में विशेष कहेंगे। भगवान आत्मा तो ज्ञानस्वरूप चैतन्यसूर्य प्रकाश है। अनन्त गुणवाला है। ऐसा दूसरा स्वरूप (है नहीं)। सर्वज्ञ परमात्मा के अतिरिक्त ऐसा आत्मा अन्यत्र कहीं हो नहीं सकता। तो कहते हैं कि अनन्त ज्ञानमयी आदि अनन्त गुणमयी **आत्मा को छोड़कर जो अन्य पदार्थ का ध्यान करते हैं,...** भगवान आत्मा की शुद्धता का पिण्ड प्रभु, उसे लक्ष्य में लिये बिना दूसरे को लक्ष्य में

लेता है। पुण्य-पाप, विकल्प, निमित्त, संयोग अनेक प्रकार के अन्यमति में ध्यान आदि कल्पते हैं लोग, वह ध्यान है नहीं। अपना आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड है, उसे समझण में, ज्ञान में लेकर, उसे लक्ष्य में लिये बिना अन्य पदार्थ का ध्यान करता है, वह अज्ञानी है। कहो, समझ में आया?

उनको केवलज्ञान कैसे उत्पन्न हो सकता है? क्योंकि दूसरा (किसी का) ध्यान करे, उसमें केवलज्ञान शक्ति नहीं। केवलज्ञान शक्ति तो आत्मा में है। तो आत्मा में केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवल आनन्द, केवल वीर्य, स्वच्छता, प्रभुता (भरे हैं) तो उसका लक्ष्य और ध्येय न करे, ध्यान न करे, लक्ष्य में न ले तो केवलज्ञान नहीं होता। दूसरी कोई भी बात लक्ष्य में ले... समझ में आया? उस लक्ष्य से केवलज्ञान होता नहीं। वह लक्ष्य भी सच्चा है नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : शरीर को लक्ष्य में लिये बिना....

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर को लक्ष्य में ले तो पाप होता है। यह तो कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र ने बताये हुए तत्त्व को लक्ष्य में ले तो पाप होता है, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। शरीर की तो कहाँ बात रही? भगवान सर्वज्ञ तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ परमेश्वर ने जो आत्मा अनन्त गुणवाला देखा और अनन्त गुणवाला है, उसे लक्ष्य में लिये बिना दूसरी किसी भी चीज़ को लक्ष्य में लेकर आत्मा का हित करता हूँ, ऐसा मानता है, वह अज्ञानी है।

मुमुक्षु : शरीर को लक्ष्य में ....

पूज्य गुरुदेवश्री : लक्ष्य में ले तो पाप होता है। प्रत्यक्ष है या नहीं? देखो! पूरा दिन पड़ा है न। तो क्या है वहाँ पाप होता होगा या पुण्य होता होगा? कल कहा न। जवाब तुम्हारा दिया मैंने। जेचन्दभाई! तुम्हारे अनुभव का। पूरे दिन यह हुआ... यह हुआ... यह हुआ... यह हुआ... ऐसा करे पूरे दिन। परन्तु यही कहते हैं। यह सब चिन्ता, बापू! यह चिन्ता सब पाप है, आर्तध्यान है। उस आर्तध्यान से शरीर की पर्याय बदले, व्यवस्थित हो, (ऐसा) तीन काल में नहीं। उस आर्तध्यान से आत्मा को नुकसान होता है।

मुमुक्षु : आत्मा को लाभ कैसे हो यह बताओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो बात यहाँ चलती है। आहाहा!

भगवान आत्मा जिसे हित करना और जिसका हित होता है। जिसका हित होता है और जिसे हित करना है, वह कौन है परन्तु? कैसा है? कैसे है? उसे लक्ष्य में लिये बिना, उसका हित कभी तीन काल में होता नहीं। आहाहा!

यहाँ विचार, ऐसा कहते हैं कि यदि तू अकेले देव-गुरु-शास्त्र के विकल्प लक्ष्य में लेगा तो भी तेरा हित नहीं सधेगा। दूसरे कोई भी कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र से कहे हुए तत्त्व हों, अथवा ऐसा... ऐसा... ऐसा... ऐसे ध्यान में रखूँ, भृकुटी लाल हो, उसमें ध्यान रखूँ। वे सब मिथ्यादृष्टि के, अज्ञान के ध्यान हैं, संसार में भटकने के हैं। समझ में आया या नहीं? फिर ऐसा किया, बाद में ऐसा करूँ भृकुटी। यह तो ज्ञानार्णव में आता है। परन्तु वह दूसरी बात है। वह तो भगवान जब तक स्वरूप में ठहरने का विकल्प न जाये, तब तक चिन्तवना करे। सर्वज्ञ परमात्मा ऐसे हैं, वह कमल चिन्तवन करता हूँ चौबीस पांखुड़ी का, उसमें एक-एक तीर्थंकर को विराजमान करता हूँ, भगवान के मुख में से ॐ ध्वनि निकलती है और वह निकलने पर सुननेवाले को सच्चा ज्ञान होता है, उस ज्ञान द्वारा उसे कर्म जलते हैं और ऐसी पहली विकल्प की विचारणा करे। वह तो स्वरूप में स्थिर न हो सके, तब तक ऐसी भूमिका होती है, परन्तु वह कहीं कर्मनिर्जरा का कारण नहीं। आहाहा! वह पुण्यबन्ध का कारण है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी तो यहाँ बात भी कहाँ थी दुकान, घर की? आहाहा!

यहाँ तो अब कहते हैं, अज्ञानी के बहुत ध्यान। यह घण्ट शास्त्र क्या कुछ कहते हैं न? मंत्र क्या कहलाये? घण्टाकर्ण। लोग बातें लावे, भाई! अपने को तो इसकी बहुत खबर नहीं। घण्टाकर्ण ऐसे घिसें तो क्या हो? कि धूल भी न हो, कहा। आत्मा क्या है, यह समझे बिना तेरे घण्टाकर्ण और कर्ण... एक व्यक्ति लाया था। यहाँ बहुत लोग सब आते हैं। नक्शा लेकर आया पूरा। घण्टाकर्ण का यह मन्त्र, फन्त्र। अपने को नहीं आता, भाई! यह कहा। यहाँ तो आत्मा क्या है और उसका हित करना हो तो मार्ग है। घण्टाकर्ण में मर जायेगा तो हित नहीं होगा ले, कहा। ऐसे! गहरी-गहरी आशा तो ऐसी की घण्टाकर्ण को जपे न, तो पैसा मिले, नंगे भूखे न रहें, रोटियों के, कपड़े के दीनता

वाले न रहें, सदा ही मिला करे, ऐसी मूढ़ की भावना। अब घण्टाकर्ण और फलाना कर। या बहुत तो भक्तामर प्रणीत... मैंने कहा, भक्तामर गिना? ...आजीविका... पाप की आशा से तो भक्तामर गिनता है। हमेशा ... गिने तो फिर पूरा दीन ठीक रहे, कुटुम्ब में परेशानी न आवे। परन्तु एक बार तो ...मर जायेगा एक बार। तेरा भक्तामर गिनेगा तो भी। वह तो देह की स्थिति पूरी हो, तब होनी ही है। यह आशा से हो? भक्तामर गिने भक्ति का शुभ विकल्प है। जब तक निर्विकल्प न हो सके, उससे पहले जरा विकल्प में मन को अशुभ से विमुख करके विकल्प के विचार में आवे। यह कहेंगे नीचे। परन्तु वह भी ध्यान हित का (कारण) नहीं, वह तो पुण्यबन्ध का कारण है। आहाहा! समझ में आया? एक व्यक्ति कहे ॐ... ॐ... ॐ... ॐ... ॐ... ॐ... परन्तु यह ॐ-ॐ तो विकल्प है। ॐ अन्दर अन्तर्जल्प की वृत्ति है, वह तो पुण्य है। उसके लक्ष्य में कोई आत्मा का हित-फित है नहीं। उसके लक्ष्य से उसके ध्यान से, उसके ध्येय से (हित नहीं होता)। आहाहा! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : .... दो प्रयोजन हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : दो प्रयोजन हो? एक ही हो प्रयोजन। ऐसा कि पैसा भी मिले और यह भी हो, ऐसा होगा? ऐसा कहते हैं। धूल में भी नहीं। वह तो सहज होता है। जहाँ सौ कलशी सौ खांडी अनाज हो, वहाँ सौ गाड़ा घास होती है। घास-घास न? घास। अनाज जहाँ हो, वहाँ घास होती है, परन्तु वह अच्छा किसान घास के लिये नहीं बोता। ऐसा होगा या नहीं? इसी प्रकार भगवान आत्मा, वह कैसा है एक समय में? जिसमें अनन्त गुण हैं। भगवान भी जिसे अनन्त को अनन्तरूप से जानते हैं। वह संख्या से अनन्त हों। रहना तो त्रिकाल। ऐसा यह एक ही आत्मा। दूसरे के आत्मा दूसरे के पास रहे। निज स्वरूप भगवान आत्मा को सेकेण्ड के असंख्य भाग में—एक समय में अनन्त गुण है। केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द ऐसे अनन्त गुणरूप एक द्रव्य (है)। ऐसा जिसे पहले ख्याल ही नहीं और वह ख्याल करने के पश्चात् भी जो उसका लक्ष्य नहीं करता और दूसरे लक्ष्य में रहता है, उसे आत्मा का हित नहीं होता। कहो, समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - १५८

ऐसा निरूपण करते हैं :- देखो, १५८।

२८९) अप्पा मेल्लिवि णाणमउ अण्णु जे झायहिँ झाणु।
वढ अण्णाण-वियंभियहँ कउ तहँ केवल-णाणु ॥१५८॥

ऐसे भगवान आत्मा अपना निज स्वरूप प्रभु, **महा निर्मल केवलज्ञानादि अनन्त गुणरूप...** देखो, पाठ में है अन्दर, हों! '**सकलविमलकेवलज्ञानाघनन्तगुणनिर्वृतं**' ऐसा स्वरूप है उसका। अभी उसे वर्तमान में एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में अनन्त गुण अन्दर में विराजमान हैं। एक द्रव्य अनन्त गुणरूप है। ऐसा आत्मा, उसे एक, दो, पाँच, पच्चीस, संख्य-असंख्य गुण नहीं, अनन्त-अनन्त गुण हैं। आकाश के प्रदेश जो अमाप से अनन्तगुणे गुण हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसे कहाँ थे? किसके पास थे। धूल में भी पैसे नहीं। पैसे के रजकण कितने? पैसे के रजकण, उनकी अपेक्षा तीन काल के समय अनन्तगुणे और उनकी अपेक्षा आकाश के प्रदेश अनन्तगुणे, उससे एक जीव में अनन्तगुणे गुण। पैसा कहाँ धूल में था? पूरी दुनिया का पैसा इकट्ठा करके उसके पास रखे, उस पैसे के जो रजकण की संख्या है, उसकी अपेक्षा तीन काल के समय की संख्या अनन्तगुणी है। उसकी अपेक्षा आकाश के प्रदेश अमाप की संख्या अनन्तगुणी है। उसकी अपेक्षा एक जीव में अनन्तगुणे गुण हैं। एक समय में अभी, हों!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसकी बात चलती है यह? वर्तमान। जेचन्दभाई! भिखारी नहीं। भान नहीं होता। यह पैसा... यह पैसा... यह पैसा... या पुत्र और या धूल और या अन्दर जाप करना, यह करना, यह करूँगा, यह करूँगा, जाप करना ॐ... ॐ... ॐ... करूँगा। मर जाये ॐ-ॐ करके तो भी कल्याण नहीं होगा, ले। वह तो विकल्प है, इसके लिये तो यहाँ बात चलती है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! तू कितना और कहाँ है, उसकी तुझे खबर नहीं तो तेरी नजर वहाँ कैसे जायेगी? और करने का तो यह है। बाकी तो सब समझने जैसी बात सब है जानने जैसी। भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में... देखो, क्या कहा? **केवलज्ञानादि अनन्त गुणरूप...** है। केवल-अकेला ज्ञान, अकेला दर्शन, अकेला आनन्द। एक अर्थात् उसमें खण्ड नहीं, भंग नहीं। एकरूप ज्ञान, एकरूप दर्शन, एकरूप शान्ति -चारित्र, एकरूप आनन्द, एकरूप स्वच्छता, एकरूप विभूता, एकरूप पुरुषार्थ, एकरूप परमेश्वरता प्रभुता गुण—ऐसे अनन्त गुणरूप एक समय में अभी विद्यमान आत्मा, मौजूदगीवाला आत्मा ऐसे अनन्त गुणवाला अभी है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ है। सिद्ध भगवान की जितनी पर्यायें निर्मल हैं, ऐसी अनन्त पर्यायें अनन्त-अनन्त एक-एक गुण में पड़ी है। आहाहा! प्रगटरूप से पर्याय नहीं। इससे तो यहाँ बात चलती है। प्रगटरूप करने के लिये जिसमें भरा हो, उसमें नजर करे तो प्रगट हो, या जिसमें नहीं भरा, उसमें नजर करे तो प्रगट हो? निमित्त में पड़े हैं, अनन्त गुण? राग-विकल्प उठे, उसमें पड़े हैं? एक समय की पर्याय में अनन्त गुण पड़े हैं? बिल्कुल नहीं। इसलिए निमित्त, विकल्प और पर्याय तीनों को लक्ष्य में से छोड़कर, एक समय में अनन्त गुणों का (एकरूप) विद्यमान मौजूदगी प्रभु विराजमान है। आहाहा! उसे बैठना कठिन पड़ता है यह। या तो भगवान कुछ दे देंगे, या तो भगवान ऐसा करेंगे, या तो ऐसे स्वर्ग मिल जायेगा। धूल में भी मिले तो वापस जायेगा नरक में। सुन न!

यहाँ कहते हैं कि भगवान आत्मा महानिर्मल। है न? '**सकलविमल**' अन्दर ऐसा शब्द पड़ा है। संस्कृत टीका। पूर्ण निर्मल भगवान, परन्तु उसने कभी सुना नहीं। यह धूल के पैसे हों तो गिने हों, या शरीर रूपवान हो तो गिनती जहाँ-तहाँ मुख देखा करे ऐसे... ऐसे... ऐसे... उसमें कहीं ... पड़ा हो तो देखा करे। या ऐसे ढाँके, चोपड़े, परन्तु यह कौन है, इसकी तुझे खबर है? ऐसा करते हैं न, नहीं? कुछ चोपड़े। आता है न। पाउडर ऐसा कुछ चोपड़ते हैं। उस नाटक में चोपड़ते नहीं? नाटक में बहुत रूपवान न

हो तो चोपड़े तो रूपवान लगे प्रकाश में। इसलिए तो यह सब कितने ही चोपड़कर आते हैं। अब वह तो धूल है, सुन न! अन्दर में क्या है, उसे तो देख। आहाहा!

यहाँ तो योगीन्द्रदेव योग की क्रिया कहना चाहते हैं। योग अर्थात् कहाँ जुड़ना? ... योग नहीं, कहाँ जुड़ना और कहाँ से जुड़ान हटाना? आहाहा! समझ में आया? मुद्दे के माल की रकम तो यहाँ है, भाई! '**सकलविमलकेवलज्ञानाघनन्तगुणनिर्वृतं**' देखा! पाठ ऐसा है। निवृत्त अर्थात् कि अनन्त गुणरूप, ऐसा। वह अनन्त गुणरूप से ही निपजा हुआ भगवान आत्मा है अनादि से। आहाहा! परन्तु शरीरप्रमाण इतना? बीड़ी बिना चले नहीं, उड़द की दाल सरीखी (एकरस) ... (न) होवे तो ढींचणिया* उड़े, उसे कहे कि अनन्त गुणवाला आत्मा। यह उड़द की दाल होती है न उड़द की। क्या कहलाती है? उड़द की कहते हैं? उड़द की दाल और वह छाछ-मठ्ठा। सरीखी ऐसे चढ़कर छाछ में एकरस होनी चाहिए सरीखी एकरस एकरस। उसमें दाना पूरा दिखाई दे और छाछ पृथक् रहे (तो द्वेष होगा)। अब क्या है परन्तु सुन न! भिखारी बाहर की वृत्ति के। भगवान बादशाह अन्दर विराजता है। एक समय में अनन्त गुणों का विराजमान परमात्मा स्वयं है। आहाहा! उसे समझण में लेकर, श्रद्धा में लेकर और फिर लक्ष्य में लेकर उसका ध्यान करने से संवर-निर्जरा होती है और मुक्ति—केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। बाकी इसके अतिरिक्त सब बातें समझने जैसी है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, उसका लक्ष्य करें तो भी पुण्य बँधेगा, विकल्प उठेंगे। आत्मा के आश्रय के अतिरिक्त संवर, निर्जरा और केवलज्ञान के कारणरूप दशा और केवलज्ञान आत्मा के लक्ष्य बिना होता नहीं। यह तो भाई! बहुत ऊँची बात करते हैं। कितने ही लोग ऐसा कहते हैं, हों! अरे! भगवान तो भगवान तो भगवान करने की बात करे। स्वयं भगवान हुआ हो तो भगवान की बात करे। कहीं नरक, निगोद में जाये, उसकी बात करते होंगे?

मुमुक्षु : .... न जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : न जाये। अरे! स्वर्ग में भी नहीं। वहाँ क्या? बीच में राग आ

* पुराने जमाने में भोजन करते समय थाली के नीचे रखा जानेवाला लकड़ी का छोटा टुकड़ा।

गया और गया, वह अलग बात है, उसका ध्येय वहाँ नहीं। धर्मी का ध्येय... ध्येय समझ में आता है? ऐसे लक्ष्य भगवान आत्मा सकल-विमल केवलज्ञान, निर्मल में यह लेना, 'केवलज्ञान आदि' है न? पाठ में है, हों! '**केवलज्ञानाघनन्तगुणनिर्वृतं**' शब्द है, उसे यहाँ अनन्त गुणरूप कहा है। समझ में आया? अनन्त गुण से निपजा हुआ। यह निपजा हुआ अर्थात् कहीं नया नहीं। ऐसे के ऐसे अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु एक समय में। पर्याय में लक्ष्य उसका, राग में लक्ष्य उसका, उसे यह आत्मा कितना, उसका लक्ष्य करता नहीं। धर्म के बहाने भी दूसरी बातें सुने। पूरे दिन सिरपच्ची किया करे। परन्तु बात यह कि आत्मा क्या, उसके लक्ष्य में कैसी चीज़ लेना चाहिए, कितना वह है, उसकी इसे खबर नहीं।

महा निर्मल केवलज्ञानादि... 'अनन्तगुणनिर्वृतं' अनन्त गुण से निपजा हुआ अर्थात् अनन्त गुणवाला, अर्थात् अनन्त गुणरूप, ऐसे **आत्मद्रव्य को...** देखो! ऐसा आत्मद्रव्य, ऐसा आत्मपदार्थ। भगवान आत्मा प्रत्येक का आत्मा ऐसा भगवान है। आहाहा! समझ में आया? यह घर में नया रास आवे तो प्रसन्न हो जाता है। रास समझते हो? यह बर्तन। यह खांडणी दस्ता लो न। वह खांडणी क्या कहते हैं? खांडणी घर में नयी लावे दो-पाँच रुपये की लोहे की तो सब इकट्ठे हों। अपने एक नया रास आया है। क्या है? धूल है अब। तुरन्त प्रसन्न हो जाये। लो! परन्तु वह बड़ा रास पड़ा है भगवान अन्दर, उसकी तुझे खबर है? मेहमानवाला घर हो, मेहमानवाला घर हो। पाँच-सात-दस मेहमान आया ही करते हों। यह हलुवा बनाने का हो न? क्या कहलाता है? लोहे की कढ़ाई। नहीं होती घर में। माँगकर लाते हों। उसमें अच्छी कढ़ाई मिल गयी, लाये। ओहो! अपने तो भाई अब मेहमान का घर, यहाँ बारम्बार आवे। माँगने जाने की अपेक्षा घर में। प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। धूल के राजा। ऐसा है या नहीं? ऐसे एक गहना लाये हों अच्छा पाँच हजार का एक। ऐसे आनन्दविभोर। दसों ही व्यक्ति इकट्ठे हों देखने। यह गहना। पचास हजार पैदा किये हैं तो यह पाँच हजार का गहना तो बसावें। दूसरा तो और दुकान में डाल देंगे पैसा। सब इकट्ठे हों। बापू कैसा लाये हैं? यह भगवान कहते हैं कि मैं अनन्त गुण का आत्मा लाया हूँ तुझे बताने को। देख तो सही जरा।

मुमुक्षु : वह गहना तो देख।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह गहना देख न। इस धूल में कुछ नहीं। क्यों हरिभाई! अच्छा कपड़ा लावे तो बस घर के इकट्ठे हों। धूल में भी नहीं अब, वह तो राख होगा अभी। दियासलाई लगेगी और कोई सुलगायेगा तो। वरना दो-पाँच वर्ष में तो... आहाहा! कितने गये अभी, देखो न! महुआ में बड़ी वर्षा आयी, चार सौ घर बेचारे। ... संसार तो ऐसा है। भरे बाजार में रत्न रखना और फिर खोजने जाना कि मुझे मिलेगा या नहीं? वहाँ कहाँ मिलेगा तुझे? इसी प्रकार चौरासी के अवतार में भटकना और वहाँ सुख लेने जाना। धूल में भी सुख नहीं। समझ में आया? ओहो! ऐसा भगवान ज्ञानमय उसका ...

आत्मद्रव्य को... 'मुक्त्वा' देखो, **छोड़कर जड़ पदार्थ परद्रव्य उनका ध्यान लगाते हैं,... 'अन्यद्'** अर्थात् ऐसा भगवान के अतिरिक्त कोई भी विकल्प आदि का ध्यान, वह जड़ का ध्यान है। ऐसा यहाँ तो कहते हैं। शुभ विकल्प का ध्यान, वह जड़ का। देव-गुरु-शास्त्र का ध्यान, वहाँ विकल्प उठे, वह जड़ का ध्यान है। क्योंकि विकल्प उठते हैं और विकल्प, वह अचेतन है, वह जड़ है। रजकण भले न हों, परन्तु चैतन्य के प्रकाश का भाग उसमें नहीं। भगवान आत्मा एक समय का अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसे छोड़कर, पाठ है न, देखो न। '**मुक्त्वा**' उसे छोड़कर कोई भी विकल्प, कोई भी भेद, कोई भी संयोग और कोई भी निमित्त, यह किसी भी मंत्र का उच्चार आदि (सब अचेतन हैं)। समझ में आया? दूसरे प्रकार से कहें तो अनन्त गुणरूप चेतन, वह चेतन है। उसके अतिरिक्त सब विकल्प आदि सब अचेतन हैं। और इस चेतन के अतिरिक्त दूसरे भगवान का आत्मा, इस (अपने आत्मा के) अतिरिक्त तो वह भी अचेतन है। यह चेतन वह नहीं, इसलिए अचेतन है। समझ में आया? यह भगवान आत्मा, यह द्रव्य है तो इस अपेक्षा से दूसरा अद्रव्य है; यह चेतन है तो इस चेतन की अपेक्षा से दूसरे अचेतन हैं; यह भाव है तो इस भाव की अपेक्षा से दूसरे आत्मा अभावस्वरूप है।

भगवान आत्मा एक समय में अनन्त चैतन्य गुण का पिण्ड, उसे छोड़कर जो कुछ अन्य का ध्यान करता है। **ध्यान लगाते हैं, हे वत्स!...** हे शिष्य! **वे अज्ञानी हैं...** कहो, समझ में आया? ध्यान तो उसका चाहिए कि जिसकी शक्ति में से सूझ होकर व्यक्त दशा प्रगट हो। जिसकी शक्ति में ध्यान उसका करने से शक्ति का उकेल होकर

व्यक्ति पर्याय में प्रगटे। उसका ध्यान हो तो वह ध्यान कहलाये। परन्तु जिसकी शक्ति में विकल्प में माल नहीं होता। एक समय की पर्याय का ध्यान करे तो पर्याय में नयी पर्याय होने की सामर्थ्य नहीं।

मुमुक्षु : उकेल नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसमें उकेल? उल्टा होता है। अज्ञान का उकेल हुआ करता है।

एक समय का भगवान पूर्ण स्वरूप अनन्त गुण का एक निवृत्तरूप उसके लक्ष्य से शक्तियों का जो खजाना, उसमें जितनी एकाग्रता (हो), उतना खजाना पर्याय में खिलता जाता है। वह खजाना पर्याय में खिलता जाये, अर्थात् व्यक्त होता जाये। आहाहा! अब कितनों ने तो सुना भी न हो ऐसा। इच्छामि पडिक्कमणा... तस्स मिच्छामी दुक्कडम। आता है न। ... पाठ आता है। स्थानकवासी में आता है, मन्दिरमार्गी में आता है। कहो, समझ में आया?

उन शुद्धात्मा के ज्ञान से विमुख,... देखो, भगवान शुद्धात्मा प्रभु पूर्ण स्वरूप। अभी उसके ज्ञान में यह बात ख्याल में भी न आवे तो ख्याल आये बिना नजर करने का वीर्य स्फुरित कहाँ से हो? कोई भी चीज़ ऊँची है, ऐसा नजर करे, फिर ऊँची लगे तो वहाँ नजर स्थिर हो। वरना तो ऐसा का ऐसा ऊपर नजर करके चला जाये। उसी प्रकार आत्मा एक समय में इतने गुणवाला है, ऐसी जिसके ख्याल में बात आवे तो वह ख्याल अन्दर में लख्य करे और नजर करके स्थिर हो। समझ में आया? **उन शुद्धात्मा के ज्ञान से विमुख, कुमति, कुश्रुत, कुअवधिरूप...** लो! कहते हैं, कदाचित् ऐसा उघाड़ हो दूसरे लक्ष्य से। कितने ही करते हैं न ध्यान और फलाना। शरीर निरोग हो, ढींकणा ऐसा हो, ऐस जाप हो, ऐसे हो और उसमें कुमति, कुश्रुत और कुअवधि कदाचित् प्रगटे, लो! वह विभंग सात द्वीप और सात समुद्र देखे अज्ञानी आत्मा के लक्ष्य के ध्यान बिना। मिथ्यादृष्टि को ऐसा राग आदि मन्द पड़ जाये, विभंग अज्ञान हो जाये। सात द्वीप, सात समुद्र देखे। वापस निगोद की दशा हो जानेवाली है। वह विभंग आवृत हो जानेवाला है। समझ में आया? कहते हैं कि दूसरे के लक्ष्य से... यह ... नहीं कहते हैं कि फलाना हो,

चमत्कार हो, वचनसिद्धि हो जाये, ऐसा ध्यान करे तो यह हो। परन्तु उसमें आत्मसिद्धि होगी? यह कह न। समझ में आया?

शुद्धात्मा के ज्ञान से विमुख, कुमति, कुश्रुत, कुअवधिरूप अज्ञान से परिणत हुए जीवों को... लो! **केवलज्ञान की प्राप्ति कैसे हो सकती है?** अर्थात्? जिसकी शक्ति में केवल—अकेला ज्ञान, केवल दर्शन-आनन्द पड़ा है, ऐसे गुणरूप एक भगवान आत्मा का जिसने लक्ष्य माँडा नहीं, उसे कार्यरूप से केवलज्ञान कैसे हो? उस बिना के लक्ष्य में जितने विकल्प आदि किये हों अन्यमति के धारणा में, ध्यान में तो राग मन्द हो जाये तो कुमति, कुश्रुत और विभंग अज्ञान होता है। अन्यमति में बाबा हो कितने विभंगज्ञान हो, हों! हाँ, सात द्वीप, सात समुद्र को जाने मन से।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सात द्वीप और सात समुद्र। नन्दीश्वर आठवाँ द्वीप है न। उसे नहीं। क्योंकि भगवान तीर्थंकर की शाश्वत मूर्तियाँ हैं, आठवें द्वीप में है। बावन जिनालय हैं। एक-एक जिनालय में १०८ प्रतिमायें हैं। सब होकर कितनी है? ५६१६। वे प्रतिमायें विराजती हैं आठवें द्वीप में। ... ऐसा कि सात द्वीप और सात समुद्र (देखे) तो वह आठवाँ? आठवें द्वीप में चारों ओर (तेरह ऐसे) बावन, (कुल) बावन जिनालय हैं एक-एक। बावन जिनालय शाश्वत, जैसे यह चन्द्र-सूर्य शाश्वत है। किसी ने रचे नहीं, ऐसे के ऐसे हैं अनादि के। इसी प्रकार यहाँ शाश्वत प्रतिमा और शाश्वत मन्दिर हैं। तुम्हारे घर में हो वह? आठवें द्वीप में हो वह। क्या? आठवाँ द्वीप है आठवाँ। सुना है कभी भी अभी तक धन्धा के कारण? धन्धा की मजदूरियाँ की है अकेली। सत्य बात है। सच्ची बात है इनकी? आठवाँ द्वीप है भाई! नन्दीश्वर द्वीप है। आहाहा! शाश्वत रत्न की (प्रतिमायें हैं)। कहते हैं, उनके ध्यान से राग होता है। यहाँ तो यह कहते हैं। यह अज्ञानियों को बहुत तो ध्यान हो मिथ्यादृष्टियों को, उसमें सात द्वीप, सात समुद्र देखे। वह आठवाँ न देखे, उसका आया भाई यह तो जरा। शास्त्र में पाठ है। सात द्वीप, सात समुद्र देखे। असंख्य समुद्र, असंख्य द्वीप तो वह देख सकता ही नहीं। उसमें आठवाँ नहीं आवे। देखो, एक न्याय तो आया अन्दर। तीर्थंकर की (अरिहन्तों की) शाश्वत प्रतिमायें विराजती हैं। अज्ञान की भूमिका में वह द्वीप भी दिखाई नहीं देता। द्वीप देखे

तो उसे विचार आवे कि यह क्या? यह शाश्वत प्रतिमायें रत्न की! इन्द्र बारह महीने में अष्टाह्निका में आठ-आठ दिन भगवान के पास जाते हैं, पूजा करते हैं, घुंघरू बाँधकर नाचते हैं। बालक की भाँति नाचे इन्द्र अर्धलोक का स्वामी। भक्ति है न, विकल्प है। ऐसा ... तो यह क्या है? और तीर्थंकर क्या? तीर्थंकर कैसे होंगे? यह तो स्थापना तीर्थंकर है। भावतीर्थंकर कैसे होंगे? कुदरत के नियम कैसे कि भावतीर्थंकर सदा ही केवली होते हैं अर्थात् उनकी प्रतिमा भी अनादि शाश्वत ऐसी होती है। यह वस्तु का स्वरूप ऐसा है। समझ में आया? आहाहा!

सर्वज्ञ परमात्मा—तीर्थंकर से कभी दुनिया खाली नहीं होती। ढाई द्वीप में तीर्थंकर साक्षात् विराजते (होते हैं)। इसके अतिरिक्त खाली नहीं होते। तो बाहर दूसरे भी ऐसी प्रतिमायें और मन्दिरों से खाली यह दुनिया नहीं होती। ओहोहो! समझ में आया? भगवान सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ से ढाई द्वीप खाली नहीं होता। तो दुनिया में ढाई द्वीप के अन्दर वे मन्दिर कितने ही हैं। और बाहर मेरु पर्वत के ऊपर मन्दिर हैं। ढाई द्वीप के बाहर यह आठवाँ द्वीप में मन्दिर है। वह वस्तु का स्वरूप ऐसा है, हों! भगवान ने कहा है, परन्तु वह जानकर कहा है, उसका हेतु सब है। सर्वज्ञ परमात्मा शाश्वत् सर्वज्ञरूप से विराजते हैं, वे बारम्बार एक के बाद एक हुआ ही करते हैं। तो वहाँ ऐसी प्रतिमायें भी जगत में अकृत्रिम, अनादि-अनन्त विराजमान होती है। यह व्यवहार है, वह निश्चय है। समझ में आया? जगत का ऐसा ही स्वरूप है। वह किसी ने रचा नहीं, किया नहीं। ऐसा कैसे? इसके न्याय से अन्दर में समझ में आये उसे बैठ जाये, ऐसी बात है। क्या हो? .... दिया जाये ऐसा है? ऐसे भगवान का न देखे वह अज्ञानी, ऐसा कहना है, लो! व्यवहार भगवान को नहीं देखे, आठवें द्वीप को नहीं देखे, लो!

यह आत्मा का ध्यान करते हुए ऐसा अवधिज्ञान हो जाये (कि) असंख्यात द्वीप समुद्र देखे। असंख्यात द्वीप समुद्र देखे। आहाहा! समझ में आया? अरे! उसकी कहाँ बात है? यहाँ तो केवलज्ञान की बात है। तीन काल, तीन लोक को देखे—ऐसा केवलज्ञान होता है। भगवान केवलज्ञान की मूर्ति, ऐसे अनन्त गुण का एक निवृत्तरूप उसके लक्ष्य से, उसके ध्येय से, उसे लक्ष्य में लेकर स्थिर होने से, ऐसा कहते हैं। निर्विकल्प ध्यान होने पर उसे केवलज्ञान की प्राप्ति न हो, उसके पहले किसी को मति-

श्रुत विशेष निर्मल होता है, अवधि होता है, मन:पर्यय होता है। कोई, समझ में आया?

केवलज्ञान की प्राप्ति कैसे हो सकती है? जिसे केवलज्ञानमय प्रभु जहाँ ऐसा पूर्ण रूप का लक्ष्य श्रद्धा में, ध्येय में नहीं आया, उसे केवलज्ञानरूपी पूर्ण परमात्मदशा कहाँ से प्रगट होगी? उसे ऐसी दशा प्रगट होगी कुमति, कुश्रुत, कुअवधि। ओहोहो! आचार्य किस ढंग से बात करते हैं न! भाई! जिसमें पूँजी पड़ी है, पूँजी कहते हैं न? (गुजराती में) मुडी (कहते हैं)। पूरी मुडी-पूँजी पड़ी है, भगवान तेरा आत्मा, हों! उस आत्मा की पूँजी में एकाग्र होने से उस पूँजी की प्रगटता व्यक्त में केवलज्ञान आदि हो। इसके अतिरिक्त के किसी के भी लक्ष्य से, ध्यान से तीन काल में केवलज्ञान होता नहीं, उसे सम्यग्दर्शन भी होता नहीं। मिथ्याज्ञानादि, कुश्रुतादि होता है। चार गति में भटकता है। कहो, समझ में आया? **केवलज्ञानादि की प्राप्ति कैसे हो सकती है? कभी नहीं हो सकती।** स्व के ध्यान से तीन काल का ज्ञान होता है। इस एक के अतिरिक्त दूसरे किसी के ध्यान से तीन काल का ज्ञान नहीं होता। अल्प काल का ज्ञान होता है अज्ञान। वह तो वापस आच्छादित हो जायेगा, और निगोद में चला जायेगा। समझ में आया?

भावार्थ :- अब थोड़ा डालते हैं। **यद्यपि विकल्प सहित अवस्था में...** कहते हैं कि अन्दर जब तक निर्विकल्प ध्यान में लक्ष्य न जाये, उससे पहले थोड़ा विकल्प हो शुभराग। **शुभोपयोगियों को...** ऐसा। शुद्ध उपयोग में जब चला जाये अन्दर में, उसे तो यह विकल्पवाला लक्ष्य होता नहीं। परन्तु **शुभोपयोगियों को चित्त की स्थिरता के लिये...** देखो, यह हेतु है। उसमें उसका ध्यान करना है, इसलिए वहाँ रहना है, ऐसा हेतु नहीं। समझ में आया? उसका हेतु तो अन्दर में एकाकार होना है। परन्तु अन्दर में एकाकार होने से पहले अभी अशुभ से हटता न हो, वह इस शुभ में आवे। उसका लक्ष्य तो अन्दर में जाना है। इसके लिये कहते हैं कि **चित्त की स्थिरता के लिये विषय-कषायरूप खोटे ध्यान के रोकने के लिये जिनप्रतिमा तथा णमोकारमंत्र...** अक्षर शब्द पड़े हैं न? **'जिनप्रतिमाक्षरादिकं ध्येयं भवतीति'** यह व्यवहारध्येय। व्यवहारध्येय का अर्थ कि वह अशुभ से हटकर विकल्प में आया है। उसका हेतु यहाँ रुकना, ऐसा नहीं। उसका हेतु तो अन्दर जाने का है, तब उसे व्यवहार विकल्प का ध्येय कहा जाता है।

यदि मात्र विकल्प का ही ध्येय करके यहाँ अन्दर जाना है, ऐसी दृष्टि न हो तब तो वह मिथ्याज्ञान का ध्यान है। समझ में आया?

कहते हैं कि भगवान की प्रतिमा या भगवान के णमोकार मन्त्र कि जिसमें अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु—पंच परमेष्ठी, जो आत्मामय वीतराग-विज्ञानघन हैं। वे पाँचों पद वीतरागी-विज्ञानघन के हैं। तो वीतरागी-विज्ञानघन के विकल्प जो आवे विचार में आवे पहले। परन्तु उसका हेतु वापस हटकर अन्दर में जाना है। तब तो कहते हैं कि पहले चित्त स्थिरता में से ऐसा होता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : .... पृथक् पड़े न?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, कुछ पृथक् नहीं। ऐसा का ऐसा पड़ा है। अकेला-अकेला राग में अकेला पड़ा हो और अन्दर हटकर अन्दर में नहीं जाना, तो अकेला राग और सब नरक, निगोद के ध्यान में पड़ा है।

अन्दर स्वभाव के ऊपर लक्ष्य करना नहीं। मिथ्यात्वभाव में पड़ा है। मिथ्यात्व का फल तो निगोद है। वास्तव में मिथ्यात्व का फल निगोद ही है। सम्यक्त्व का फल मोक्ष है। चार गति तो बीच में शुभाशुभ परिणाम का फल है। तत्त्व का आराधकपना, वह मुक्ति; तत्त्व का विराधकपना, वह निगोद। दो ही गति बड़ी है ऐसी। ... अनन्त काल रहे अनन्त जीव। वहाँ अनन्त काल रहे अनन्त जीव। वह अनन्त दुःखी, वह अनन्त सुखी। तत्त्व का आराधक वह मुक्ति; तत्त्व का विरोधक वह निगोद। बीच में शुभाशुभ परिणाम आ जाये, उसे यह चार गति है बीच में। वहाँ से कहाँ हटा है? शुभ उपयोग में अकेला आया, परन्तु उसका लक्ष्य वहाँ से हटकर चैतन्य के ऊपर लक्ष्य नहीं, दृष्टि की नहीं, वह तो बाहर से हटा ही नहीं। वह तो वापस उसमें आ जायेगा। आहाहा! समझ में आया?

देखो न, शास्त्र में कहा है कि जो मिथ्यादृष्टि है, उसे शुभ उपयोग आवे, हो। दृष्टि खोटी परलक्ष्यी दृष्टि है, स्व की खबर है नहीं। परलक्ष्य से अनेक प्रकार के विकल्प का, भेद का, विपरीत मान्यता के बहुत प्रकार (होते हैं)। उसमें उसे शुभराग हो तो पुण्य बँध जाये। और कैसा बँध जाये? पन्द्रह क्रोड़ाक्रोड़ी (सागर) साता बँध जाये, लो! पन्द्रह क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम की साता बँध जाये। समकिती को इतनी बँधे नहीं। पन्द्रह

क्रोड़ाक्रोड़ी (सागरोपम) सातावेदनीयकर्म उसे बँध जाये। तो उसे त्रस में कितना रहना है? दो हजार सागर और यह पन्द्रह क्रोड़ाक्रोड़ी (सागरोपम) स्थिति। उसे कहाँ भोगने का समय है? पुण्य बाँधे हुए, उसे भोगने का इतना समय भी नहीं। त्रस में रहना दो हजार (सागर)। यहाँ पन्द्रह क्रोड़ाक्रोड़ी (सागरोपम) स्थिति बाँधी। मिथ्यादृष्टि के परिणाम शुभ आये, उससे भले बँधा, परन्तु वापस अब अशुभ परिणाम... मिथ्यात्व तो है, परन्तु उसके वापस परिणाम अघाति बाँधने के अशुभ हो जायेंगे। अशुभ होकर, स्थिति तोड़कर अन्तर क्रोड़ाक्रोड़ी करके निगोद में चला जायेगा। समझ में आया? आहाहा!

और सम्यग्दृष्टि को उसे अन्तः क्रोड़ाक्रोड़ी का कर्म बँधेगा थोड़े में थोड़ी (स्थिति), हों! तीर्थंकरगोत्र बाँधे तो... अब यहाँ इतना उसे रहना नहीं, अन्तः क्रोड़ाक्रोड़ी। उसे तो एक-दो भव में मुक्ति में जाना है। वृत्ति है शुद्ध के ऊपर। शुद्ध परिणाम किये हैं। विशेष शुद्धता हुई और अन्तः क्रोड़ाक्रोड़ी की स्थिति तोड़कर, कर्म का अभव करके मुक्ति में जायेगा। वह पन्द्रह क्रोड़ाक्रोड़ी (करके), अन्तः क्रोड़ाक्रोडी (तोड़कर) त्रस छोड़कर स्थावर में जायेगा। आहाहा! अरे रे! दीर्घ दृष्टि हुई नहीं न, इसलिए दीर्घ उसके फल और दीर्घ उसका स्वरूप क्या है, यह उसे ख्याल में आता नहीं।

यहाँ तो जो जिनप्रतिमा और णमोकार लिया है, वह स्वलक्ष्य में स्थिर होने को। दृष्टि तो वहाँ है, परन्तु अन्दर जाने के लिये अन्दर पहला विकल्प जरा अशुभ से हटकर... देखो, ऐसा है न? **विषय-कषाय के खोटे ध्यान के...** यह वंचना, परन्तु वापस आया है शुभ विकल्प में, मात्र स्थिर होना है अन्दर इसलिए। इसलिए पहले यहाँ आया है। जाना है अन्दर। अकेले अन्दर की दृष्टि और लक्ष्य नहीं और अकेले विषय-कषाय को रोकने के लिये ऐसा परिणाम आवे, उसका फल अन्दर में जाने का नहीं, उसका फल चार गति में भटकने का है। अरे! गजब बात, भाई! थोड़ा माहात्म्य डालो तो ठीक रहेगा... थोड़ा सा।

खोटे ध्यान के रोकने के लिये... ऐसा शब्द है। ध्यान तो वह करना है अन्दर। समझ में आया? परन्तु एकदम न हो तो पहले लक्ष्य तो अन्तर में जाने का है। दृष्टि तो वह हुई है। अब? अशुभ से रोकने के लिये जरा ऐसे विकल्प आते हैं। उसका पुण्य

बँध जाता है और वहाँ से हटकर अन्दर में जाता है, उसे शुभ उपयोग का व्यवहारध्यान कहा जाता है। परन्तु जिसे अकेला ही यह हो पड़ा है। शुभराग ही अकेला ध्यान और ध्येय हो पड़ा है, वह तो मिथ्यादृष्टि है। उसे तो अशुभ से हटा है, ऐसा भी है ही नहीं। मिथ्यात्व, वही महा अशुभ है और उसे अशुभ परिणाम वापस हुए बिना रहेंगे नहीं। मिथ्यादृष्टि है। दृष्टि खोटी, इसलिए अशुभ परिणाम है। अभी शुभ भले हो, परन्तु वापस अशुभ हो जानेवाले हैं। शुभ पलटकर परिणाम अशुभ हो जानेवाले हैं। मिथ्यात्व तो कायम ऐसा का ऐसा रहनेवाला है। आहाहा! समझ में आया?

तो भी निश्चय ध्यान के समय... देखो, देखो! कहते हैं कि भले पहले मन स्थिरता के लिये आवे, परन्तु वहाँ से हटकर निश्चय अन्तर के स्वरूप के लक्ष्य में आने के लिये वह **आत्मा ही ध्याने योग्य है,...** वहाँ तू आत्मा को ध्येय बनाकर, लक्ष्य बनाकर अन्तर में यह आत्मा, उसका ध्यान करनेयोग्य है। गजब बातें, भाई! कितने ही कहते हैं, परन्तु अब हमारे साधारण समाज को क्या समझना? परन्तु आत्मा समाज ही साधारण नहीं। तू किसे साधारण कहता है? ऐसा यहाँ कहते हैं। महा अनन्त गुण का पिण्ड है। साधारण में किसलिए खपता है मुफ्त का? हमारे लिए दूसरा कोई सरल रास्ता होगा?

यह रामजीभाई पूछते थे तब। रामजी हंसराजभाई। अमेरली, हों! पहले चातुर्मास था न जब (संवत) १९८६ का। दस लाख रुपये तब कहलाते थे। वह पैसे हुए वे थोड़े दस लाख ... ८६ की बात है। कितने वर्ष हुए? ३५ वर्ष हुए। यह तो वहाँ यह बात आवे कितनी ही। यहाँ तो ऊँची बात तो उस समय भी थी। तब कहे, यह हमारा जठर पचा नहीं सकता। ऐसा बोले थे जरा। जठर। कुछ दूसरा कहो। (हमने) कहा, जठर तैयार करो। इसके बिना दूसरा उपाय नहीं है। ऐसा कि यह कुछ (सरल उपाय हो तो)। गाँधी की लाईन में पड़े थे न वे तो। गाँधी की लाईन में थे। खादी और वह आवे न! अखबार में बहुत महिमा की उन लोगों ने। खादी में पड़े, फिर यह किया, ... करके। बहुत की। परन्तु उस समय बोले थे एकबार, महाराज! यह जठर पचा सके, ऐसा नहीं, हों! (हमने कहा) जठर तैयार करो। सर्दी में सालमपाक के लिये जठर तैयार नहीं? पण्डितजी! सालमपाक नहीं होता? सालम... सालम होता है। मैसूरपाक होता है सफेद। यह सर्दी

में समझे न? सर्दी के दिनों में। जठर। ऐसा कि हमारा जठर अभी पचा नहीं सकता, ऐसा कहेंगे? पचायेगा अवश्य, करो करो भाई सालम करो। दस रुपये का सेर, पच्चीस रुपये का सेर। ऊँचा-ऊँचा हो, हों! ... वहाँ वह इनकार नहीं करेगा कि मेरा जठर पचा नहीं सकेगा। लाओ-लाओ थोड़ा दो रुपयाभार खाऊँगा। परन्तु सवेरे घर में दो रुपया (भार) खाऊँगा और चार महीने रुपयाभार खाऊँगा। बहुत तौल न हो तो। परन्तु सर्दी में खाये फिर गर्मी, चातुर्मास जरा धूल में व्यवस्थित रहे, ऐसा मानता है। मर जायेगा तुरन्त। उसमें क्या है?

मुमुक्षु : बारह ही महीने व्यवस्थित चले।

पूज्य गुरुदेवश्री : चले बारह महीने। मर जायेगा वापस तू। ... परन्तु सालमपाक खाये उसकी तुमने जठर को ... है कभी? रोटी प्रतिदिन खाते हों। रोटी, दाल, भात, सब्जी। अब उसमें सालमपाक घर में बनाया। तो इनकार करोगे? लाओ-लाओ। भले थोड़ा परन्तु टुकड़ा लाओ-लाओ। न्यालभाई!

मुमुक्षु : खाने की रुचि है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : बस, रुचि है। इसी प्रकार तत्त्व की रुचि यदि हो (तो) लाओ ऊँचे में ऊँची बात भी हम पचा सकेंगे। समझ में आया? ऐसा नहीं चलता, कहा। इनकार करो, यह यहाँ नहीं रास आता। ... कुछ धूल में भी नहीं।

यहाँ तो कहते हैं **निश्चय ध्यान के समय शुद्ध आत्मा...** मक्खन जैसा अन्दर सालमपाक उसे अन्दर दृष्टि में लेकर पचानेयोग्य है। ध्यान करनेयोग्य है, ऐसा कहते हैं। वहाँ हाँ पाड़ते हैं या नहीं? जरा बीमार हो तो कहे नहीं, नहीं, लाओ-लाओ रुपया भार चखने दो कैसा मीठा है। ऐसा कहे। यह सवा पाँच रुपये का सेर सालमपाक बनाया है। एक बार सुना हुआ बहुत वर्ष पहले। ... पाँच का सेर कैसा होगा, कहा। सवा पाँच रुपये का सालमपाक सेर। ले जाये लोग। गृहस्थ हो, वे ले जाये दो सेर, पाँच सेर सर्दी में। वहाँ न कहे कि मुझे रोटी मुश्किल-मुश्किल से पचे, उसमें यह कैसे खाना? भाईसाहेब! लाओ न थोड़ा चखूँ तो सही। आधा रुपयाभार चखूँगा, बस। ऐसा करते-करते... घर के लोग आग्रह करके खिलावे।

यहाँ भगवान कहते हैं, खा, जठर तैयार कर। इनकार न कर। वाडीभाई! इनकार न कर, इनकार न करे, भाई! तू आत्मा है न, प्रभु! तेरे गुण में तो केवलज्ञान प्रगटे, ऐसी सामर्थ्य है न। तेरी जठर में तो कर्म जल जाये, ऐसा तेरा जठर है। जलकर राख हो जाये, ऐसा तेरा जठर अन्दर चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य है। उसका तुझसे इनकार कैसे किया जाये कि नहीं, नहीं यह मेरा नहीं। हाँ कर, हाँ कर। भगवान आत्मा एक समय में शुद्ध चैतन्यप्रभु, उसका कहते हैं कि विचार—लक्ष्य करके उसे ध्येय बनाकर ध्यान करनेयोग्य है।

★ ★ ★

गाथा - १५९

१५९। **आगे शुभाशुभ विकल्प से रहित जो निर्विकल्प (शून्य) ध्यान, उसको जो ध्याते हैं,...** शून्य-शून्य। १५९ है न?

२९०) सुण्णउँ पउँ झायंताहँ वलि वलि जोइयडाहँ।
समरसि-भाउ परेण सहु पुण्णु वि पाउ ण जाहँ॥१५९॥

आहाहा! ऐई! शून्य ध्यान कर। शून्य-शून्य। शून्य अर्थात् विकल्प नहीं, ऐसा। शून्य अर्थात् शून्य हो जा, ऐसा नहीं। विकल्प से शून्य। स्वरूप से तो भरपूर चैतन्य है। भगवान आत्मा पूर्ण कलश भरा हो न। ऐसा कलश-कलश नहीं, वह कलश? भरितअवस्थ, आता है न। उसमें भी है। ऐई! आये हैं पण्डितजी? देखो, '**भरितावस्थापदं**' है? दूसरी लाईन। '**भरितावस्थापदं**' शब्द पड़ा है। संस्कृत में है १५९। वह यह कलश है, देखो न कलश है या नहीं काशीघाट का कलश देखो ऐसे। तो आत्मा ऐसा अन्दर आकार से है काशीघाट के कलश जैसा। यह लक्ष्य को छोड़ दे तो अन्दर काशीघाट के कलश जैसा (प्रत्यक्ष होगा)। यह अकेला आनन्द के रस का... समझे न? मौसम्बी के पानी से भरा हो कलश और तृषा लगी हो (तो) गटक... गटक... गटक... चढ़ा जाये। उसी प्रकार यह आत्मा। देखो, ऐसे... ऐसे... ऐसे... काशीघाट समझ में आया? काशीघाट का कलश आता है। यह शरीर भी वैसा आकार से है। आत्मा भी ऐसे आकार से अपने

कारण से, हों! उसके कारण से वह और इसके कारण से यह। दोनों भिन्न-भिन्न कारण से हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मांडी है कब परन्तु? दोनों जनें इकट्ठे थे तो यह मांडी है और पृथक् हुए तो यह मांडी है वापस दूसरी। यह कभी विचारा है कभी यह? सच्ची बात है या नहीं? बस तब। ... बस यह कहा। उस दुकान की मँडाणी थी पहली। शक्कर लेकर। क्या कहलाता है वह? पगड़ी देकर मकान में लगे थे दोनों। मिला तब अब इस शरीर का हुआ वापस। यह तो होली चला ही करती है। यह क्या है उसे पहिचान न, कहते हैं। मोहनभाई! कहते हैं अब वह तो मर गया। उसे हुआ करेगा। तू तेरी कल्पना करेगा, इसलिए उसमें कुछ होगा? तीन काल में नहीं होगा। उसकी पर्याय का काल स्वकाल परमाणु का है, उस स्वकाल में वह पर्याय हुए बिना रहेगी नहीं। तुझे उसकी पर्याय का स्वकाल बदलना है या तुझे बदलना है? क्यों बराबर है या नहीं? बाबूभाई! आहाहा! परमाणु के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव है। काल उसका स्वकाल है। स्वकाल के चतुष्टय में वह स्वयं अपनी पर्याय से परिणम रहा है। तेरे कारण से तू चिन्ता करेगा, इसलिए यहाँ कुछ फेरफार होगा? मुफ्त जायेगी तेरी चिन्ता और वहाँ होना होगा वह होगा। इसलिए वह चिन्ता छोड़ना, ऐसा उसका फल आना चाहिए। पूरे दिन मांडवी, ऐसे न मांडवी, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्विकल्प वह तो एक को लक्ष्य कर सबको बात है न इकट्ठी? वह तो सामने पूछे उसकी बात हो।

निर्विकल्प (शून्य) ध्यान उसको जो ध्याते हैं, उन योगियों को मैं बलिहारी करता हूँ,... आचार्य स्वयं कहते हैं, मैं तुझ पर वारी जाता हूँ, भाई! आहाहा! वलायें नहीं लेते? भाई! तेरे दुःख लेते हैं। यहाँ तो वारी जाऊँ बापू! आहाहा! तूने आत्मा का ध्यान किया, भाई! जिसने संसार का तट नजदीक कर डाला। ऐसे चिदानन्द भगवान की अन्तर दृष्टि मांडकर ध्यान (किया), बलि जाऊँ तेरे ऊपर। तेरी पूजा करूँ, पूजा करूँ।

बलि बलि जाऊँ, ऐसा शब्द है। आहाहा! बलिहारी तेरी, भाई! देखो, योगीन्द्रदेव भी धर्मानुराग में प्रशंसा में चढ़े हैं, देखो! उन्हें धर्मानुराग है। वाह सन्तो! हे धर्मात्माओ! जिसने भगवान को... यह आगे कहेंगे अभी, हों! समझ में आया? यह आगे कहेंगे। १६० में बाद में कहेंगे। यह उज्जड़ वस्तु को बसा दे और थे जो भरे हुए, उसका नाश किया, बलिहारी है तेरे ध्यान की, ऐसा कहेंगे। यह १६० में कहेंगे। समझ में आया?

'शून्यं पदं ध्यायतां' विकल्प रहित ब्रह्मपद को ध्यावनेवाले... देखो, ब्रह्म अर्थात् आत्मा। भगवान आनन्दपदस्वरूप है। ब्रह्म अर्थात् आनन्द है। अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द है। आहाहा! सालमपाक और मौसंबी, वह मूसलीपाक की बात हो तो उसके मुख में पानी आता है। ऊँची-ऊँची जहाँ बात हो, वहाँ तो मावा का क्या कहलाता है? गुलाबजामुन। मावा का गुलाबजामुन घी में तला हुआ ऐसा का ऐसा। बिना दाँत का मनुष्य भी चबा जाये फड़ाक-फड़ाक। आये नहीं, उससे पहले मुख में पानी आवे।

कहते हैं कि यह एक बार सुन तो सही आत्मा और आत्मा सुनकर वीर्य की स्फुरणा तो एक पानी ला। पानी तो ला। पानी अर्थात् वीर्य। तेज-तेज। पानी नहीं इसमें, ऐसा नहीं कहते? इसमें कुछ पानी नहीं। पानी (बल) बिना का है। पानी अर्थात् बलरहित है, ऐसा। कहते हैं, नहीं वाड़ी भाई अपने? काठियावाड़ में तो कहते हैं। हिन्दुस्तान में वहाँ क्या कहते होंगे? पानीवाला है यह लड़का, ऐसा कहे। बल वाला। और यह पानी बिना का है। यहाँ कहते हैं कि आत्मा पानीवाला है।

भगवान! उसके ब्रह्मपद को देख विचार करके अन्तर में, लक्ष्य में लेता है उन **योगियों की मैं बार-बार मस्तक नमाकर पूजा करता हूँ,...** लो! बलि बलि जाऊँ। आहाहा! करने जैसा यह तूने किया, बापू! ऐसा कहते हैं। जो कुछ मनुष्यदेह पाकर करने जैसा तूने किया। वारी जाऊँ तेरे ऊपर। आचार्य नग्न दिगम्बर सन्त जंगल में बसते थे। समझ में आया? गृहस्थाश्रम में भी अपना ध्यान अन्तर (में) कर सकता है। नहीं कर सकता, ऐसा नहीं। यह अभी के निपटारा कर दिया है सबने। ऐसा ध्यान नहीं होता, फलाना नहीं होता, फलाना नहीं होता। यह तो मुनि को होता है। सुन न अब। सम्यग्दृष्टि को होता है। समझ में आया? थोड़ा हो, बहुत काल में हो। मुनियों को बहुत स्थिरता होती है, एकदम होता है।

ऐसा भगवान, उसे अनुभवप्रकाश में कहते हैं कि ऐसा ध्यान अभी नहीं होता। तब दीपचन्दजी कहते हैं कि आत्मा की भावना की चिन्ता छोड़ दी तूने। क्योंकि यह होगा नहीं... होगा नहीं... इसलिए यह होगा। अब रहा तुझे करने का अशुद्ध। तुझे आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है, उसकी दृष्टि करने का तूने निषेध किया। उसका ध्यान नहीं होता, उसका लक्ष्य नहीं होता, उसका यह नहीं होता। बड़ी छियानवें हजार स्त्रियाँ जिसके घर में पद्मिनी जैसी थी, उसे ध्यान करने का अवसर मिलता था। तेरे घर में छियानवें करोड़ नळिया भी नहीं। नळिया क्या कहलाता है? यह नळिया कहते हैं न, पण्डितजी!... ऐसा लिखा है उसमें, हों! दीपचन्दजी ने लिखा है। छियानवें करोड़ तो तेरे घर में नळिया भी नहीं और ऊँचा नहीं। और उसके घर में छियानवें हजार स्त्रियाँ पद्मिनी जैसी थीं। तो उन्हें छोड़कर ऐसे बैठा है ऐसे ध्यान करने। बैठते थे चक्रवर्ती। समझ में आया? छह खण्ड का राज। भिखारी ने सुना न हो कभी। कौन जाने छह खण्ड कैसे (होंगे)? छह खण्ड में कोई नहीं होता दूसरा सामने खड़ा व्यक्ति। ऐसी जिनकी पुण्य प्रकृति। इतना जिनका बल, इतना जिनका सामर्थ्य। बैठा हो ... एक ओर विषय की वृत्ति हो गयी थी, जहाँ फिरकर बैठा ध्यान करने। वहाँ गयी विषय की वृत्ति और भोग कहाँ गये, खबर नहीं। ... अन्दर। ऐसा आत्मा अपने पुरुषार्थ से गृहस्थाश्रम में भी कर सकता है। निषेध न कर। निषेध करने से अकेला आर्तध्यान और रौद्रध्यान का हकार होगा। यह होगा नहीं। नहीं होगा।

जिन योगियों के अन्य पदार्थों के साथ समरसीभाव है,... देखो, समभाव। अर्थात् यह ठीक-अठीक के विकल्प छोड़ दे, ऐसा कहते हैं। **और जिनके पुण्य और पाप दोनों उपादेय नहीं हैं।** शुभभाव और अशुभभाव दोनों आदरणीय नहीं। अकेला भगवान ज्ञानस्वरूप चिदानन्द एक श्रद्धा में लेकर ध्यानेयोग्य है। उसकी कहते हैं कि मैं बारम्बार बलि-पूजा करता हूँ। इस प्रकार अपनी प्रशंसा वर्णन की।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आषाढ़ कृष्ण १२, रविवार, दिनांक - २५-०७-१९६५
गाथा - १५९ - १६०, प्रवचन - १७९

१५९ गाथा, परमात्मप्रकाश दूसरा भाग। उसमें शब्दार्थ हो गया है। भावार्थ। जरा बात सूक्ष्म है, परन्तु यथार्थ है, उसकी इसे बराबर दृष्टि और श्रद्धा करनी चाहिए। यह श्रद्धा के निर्मल परिणाम बिना इसे आत्मा की ओर का झुकाव स्थिरता का होगा नहीं। इसलिए पहली चीज़—वस्तु क्या है ? उस वस्तु में दृष्टि और एकाग्र होने से आत्मा को शान्ति, सुख और धर्म का मार्ग प्रगट होता है, यह इसे पहले निर्णय करना चाहिए।

भावार्थ :- शुभ-अशुभ मन, वचन, काय के व्यापार... देखो ! यह शरीर, वाणी, मन तो जड़ है। उनकी ओर के झुकाववाला शुभ-अशुभ व्यापार भाव। क्या कहते हैं ? कि **जो वीतराग...** अर्थात् राग, पुण्य-पाप के विकल्परहित चीज़, **परम आनन्दमयी...** आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दमय स्वरूप है अन्तर वस्तु। **सुखामृत...** सुख का अमृत सागर आत्मा, उसके **रस का आस्वाद...** ऐसा भगवान आत्मा वीतराग परम आनन्द-सुख अमृत, उसके रस का आनन्द का अनुभव। **वही उसका स्वरूप है, ऐसी आत्मज्ञानमयी है...** ऐसा लेना। भाई ! पण्डितजी ! ऐसा है न ? **आस्वाद, वही उसका स्वरूप है, ऐसी आत्मज्ञानमयी परमकलाकर...** देखो, भगवान आत्मा वीतराग—राग पुण्य-पाप के शुभाशुभ विकल्प से रहित और अकेला सुखामृत। सुख अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्द के अमृत से भरपूर आत्मा है। किसका ? रस का आस्वाद। ऐसा जो आत्मा, उसका अतीन्द्रिय स्वभाव आनन्द का, उस आनन्द का आस्वाद, आनन्द का अनुभव। **वही उसका स्वरूप है, ऐसी आत्मज्ञानमयी...** आत्मज्ञान उसे कहते हैं कि जो आत्मा के परम आनन्द का आत्मज्ञान में रस का स्वाद आवे। ऐसी **आत्मज्ञानमयी परमकला...**

मुमुक्षु : वाक्य बहुत बड़ा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बड़ा वाक्य है। परन्तु धीरे-धीरे बात करते हैं। समझ में

आया? क्या कहा? भगवान आत्मा कैसा है यह आत्मपदार्थ? कि यह मन, वाणी, देह वह तो जड़ से तो भिन्न तत्त्व है।

मुमुक्षु : कब?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अभी की बात है। कब की बात कहाँ चलती है यह?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ अभी नहीं। कहा न, आत्मा में नहीं। उसे आत्मा कहते हैं कि जिसमें जड़पना नहीं; उसे आत्मा कहते हैं कि जिसमें शुभ और अशुभ के विकार आस्रवतत्त्व नहीं; उसे आत्मा कहते हैं कि जिसमें वीतराग परमानन्द का रस पड़ा है, उसे आत्मा कहते हैं। यह नौ तत्त्व में आत्मा किसे कहना, उसकी बात चली यह तो। वाडीभाई! आत्मा ऐसा बड़ा! उसे आत्मा कहते हैं कि यह शरीर, वाणी, मन जो मिट्टी है, उससे तो (भिन्न है)। वह तो जड़तत्त्व है। वह जड़ कहीं आत्मतत्त्व में नहीं।

मुमुक्षु : .... एकमेक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : एकमेक है नहीं तीन काल में। वह तो एक समय की पर्याय। पुण्य-पाप के परिणाम के साथ अनित्य पदार्थ और विकल्प साथ में है। शरीर के साथ तो एक समय भी अनित्य तादात्म्य भी नहीं। और यह क्या कहा? भगवान आत्मा जो सम्यग्दर्शन का विषय, जो आत्मज्ञान का विषय है। वह आत्मज्ञान कैसा है, वह यहाँ चलता है, देखो! ... आत्मा। यहाँ तो पहले से शुरु किया है कि यह मन, वाणी, देह से भिन्न, वह तो ठीक। मन, वाणी, देह के व्यापार से भिन्न। अर्थात् शुभाशुभभाव से आत्मतत्त्व भिन्न चीज़ है। यह तो नास्ति से बात की। अब अस्ति क्या? कि **वीतराग परम आनन्दमयी सुखामृत-रस का आस्वाद...** यह भगवान आत्मा तो अकेला वीतराग, निर्दोष आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द का पुतला—मूर्ति आत्मा है। उसका आनन्द का आस्वाद-अनुभव, **वही उसका स्वरूप है,...** किसका? कि आत्मज्ञानमयी परमकला। बहुत सूक्ष्म।

भगवान आत्मा का आत्मज्ञान उसे कहते हैं, सम्यग्दर्शन उसे कहते हैं, आत्मज्ञान

उसे कहते हैं कि जो परम आत्मज्ञान की कला द्वारा आत्मा के अतीन्द्रिय के स्वाद को अनुभव करे, उसे आत्मज्ञान की-सम्यग्दर्शन की कला कहा जाता है। यह और क्या हुआ वापस? शरीर और कर्म के साथ तो एक समय भी तादात्म्य नहीं। क्योंकि वह जड़ है। रहे पुण्य और पाप के भाव जो आस्रवतत्त्व। दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, जप का विकल्प उठता है, वह राग-विकार-आस्रव है। वह आस्रवतत्त्व आत्मा की एक समय की पर्याय में अनित्य तादात्म्यरूप से है। त्रिकाल द्रव्य और त्रिकाली स्वभाव के साथ एक समय भी अनित्यरूप से भी तद्रूप से तादात्म्य वह नहीं। छोटाभाई! यह सब समझना पड़ेगा, हों! रुपये वहाँ मिले ऐसा कुछ नहीं पाया। पाया आवे उसमें क्या हो गया वहाँ पाया? समझ में आया?

भगवान आत्मा... यहाँ तो अस्ति-नास्ति दो से अनेकान्त किया। शुभाशुभ व्यापार जो है, वह विकल्प और आस्रवतत्त्व है और भगवान आत्मा परमानन्दमय भरपूर आत्मतत्त्व आनन्द का रस, वह आत्मतत्त्व है। उसका आस्वाद। पुण्य-पाप का आस्वाद— अनुभव नहीं और आत्मा के आनन्द का आस्वाद, ऐसी जो आत्मज्ञानमय परमकला। समझ में आया? **ऐसी आत्मज्ञानमयी परमकलाकर...** यह आत्मज्ञान उसे कहते हैं, सम्यग्दर्शन उसे कहते हैं कि जो भगवान परमानन्द की मूर्ति प्रभु की अन्तर में कला एकाग्र द्वारा आत्मज्ञानमयी अर्थात् आत्मा का ज्ञान, उसमय एकाकार हो गया। आहाहा! सूक्ष्म बातें, भाई! यह तो मूल बात है। अनन्त काल से इसने लक्ष्य में ली नहीं। समझ में आया? इसने ऐसी की ऐसी बाहर की यह क्रिया करें, यह करें, दया पालें, व्रत पालें, धर्म होगा। (ऐसा मानकर) मर गया मिथ्यादृष्टि में अनन्त बार।

मुमुक्षु : स्वर्ग तो मिले न।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वर्ग अर्थात् क्या? वह तो स्वांग है एक वेश का। अघातिकर्म का फल तो वह स्वांग है। वह कहीं आत्मा का स्वांग नहीं, आत्मा का वेश नहीं। बाहर का स्वांग बदला। नारकी का स्वांग और देव का स्वांग हुआ। उसमें आत्मा को क्या आया? समझ में आया?

यहाँ भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा वीतराग ने आत्मा को एक समय में

कैसा देखा? उसे अन्तर आत्मज्ञानमयी कला द्वारा अनुभव करे, उसे आत्मधर्म कहा जाता है। जादवजीभाई! भारी कठिन यह। ऐसा कि वहाँ तत्त्व की बात नहीं, जैन की बात ... जैन की उसे श्रद्धा ही नहीं। कौन जाने कैसे चले गये हैं वेश के कारण। अरे! जैन परमेश्वर की व्यवहार से भी श्रद्धा न हो तो वह वेश छोड़ देना चाहिए। परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव कहते हैं, उनकी छह द्रव्य की, नौ तत्त्व की जिसे बिल्कुल श्रद्धा न हो, तो उसे छोड़ देना चाहिए। उसे जैन की श्रद्धा (नहीं)। दुनिया को ठगना नहीं चाहिए। यहाँ तो जैन की दूसरी अलौकिक श्रद्धा है। वह तो छह द्रव्य, नौ तत्त्व, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह भी एक शुभराग है। परन्तु इतनी ऐसी जिसे श्रद्धा नहीं, वह तो बाहर वाड़ा का भी जैन नहीं। हम जैन नहीं, ऐसा उसे प्रसिद्ध कर देना चाहिए। इस वेश में रहकर बेचारे उन सुननेवालों को खबर नहीं होती। कुछ होगा, कुछ होगा। अपने महाराज हैं।

यहाँ तो कहते हैं कि भाई! यह छह द्रव्य, नौ तत्त्व के विकल्पवाली श्रद्धा, वह भी राग की श्रद्धा, राग है, वह सम्यग्दर्शन नहीं, वह आत्मज्ञान नहीं। शास्त्र का ज्ञान ग्यारह अंग, नौ पूर्व का। वह आत्मज्ञान नहीं। पंच महाव्रत के परिणाम, वे आत्मचारित्र नहीं। वह सब राग है, राग है, विकल्प है। उससे भिन्न भगवान अकेला परम शान्त वीतराग आनन्द की मूर्ति आत्मा है वह। उसका आस्वाद, उसका स्वाद। स्वाद कहते हैं हिन्दी में? स्वाद, आस्वाद, आस्वाद। यह मर्यादा से स्वाद ... उसका स्वाद, दूसरा स्वाद नहीं। समझ में आया? आहाहा! अरे भगवान! तेरी तो महिमा क्या, यह वीतराग की वाणी में आयी नहीं, भाई! तू इतना बड़ा, वह तुझे तेरी कीमत नहीं होती और दुनिया की चीज़ की कीमत आँकना। यह पैसा और स्त्री, पुत्र और शरीर। यह पाप के परिणाम की कीमत सेवता, पुण्य के परिणाम की कीमत आँकना, वह तेरी कीमत उसमें चली जाती है। दया, दान, व्रत के शुभ परिणाम की कीमत आँकनेवाला आत्मा को अकीमती बनाता है। समझ में आया? छोटाभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अर्थात् क्या? ... अब यहाँ सुनने को निवृत्त होगा या नहीं?

करोड़-करोड़ धूल में मिले तो उसमें आत्मा को क्या और न मिले तो भी आत्मा को क्या? आत्मा अनन्त गुण का पति है, यह अभी कहेंगे। यह गुण और गुणी का भेद भी जिसमें नहीं। यह अभी समरस की बात करते हुए कहेंगे। समरसीभाव भगवान आत्मा ऐसा चैतन्यमूर्ति भगवान, उसे मन, वाणी, देह से भिन्न श्रद्धा करके, पुण्य-पाप के राग के विकल्पों की कीमत छोड़कर, भगवान आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसका आनन्द का आस्वाद, **वही उसका स्वरूप है,...** किसका? **ऐसी आत्मज्ञानमयी परमकलाकर...** आत्मज्ञान की परमकला का ऐसा स्वरूप है। कैसा? कि जो आत्मज्ञान चौथे गुणस्थान में हो, चौथे गुणस्थान अविरति सम्यग्दृष्टि का आत्मज्ञान, आत्मा के आनन्द का स्वाद ले, उसे आत्मज्ञान की कला कहा जाता है। प्रकाशचन्दजी! समझ में आया?

ऐसी आत्मज्ञानमयी परमकलाकर... यह दुनिया की सब कला शून्य लगाने जैसी है। यह कमाने की और यह एम.ए. की, एल.एल.बी. की। किसकी तुम्हारे? प्रवीणभाई! चश्मा की, आँख की। आँख की कहे न। यह आँख से देखे, ऐसे हुआ... ऐसा हुआ... आँख देखे और उसमें यह हुआ है और यह फूला पड़ा है, ढींकणा हुआ है। यह सब कला चार गति में भटकने की कला है। आत्मज्ञानमयी कला। भाषा कैसी प्रयोग की है! समझ में आया? '**स्वसंवित्तिमयी या सा परमकला**' ऐसा शब्द पड़ा है। आहाहा! भगवान आत्मा की चीज़ में तो अकेला आनन्द का पिण्ड आत्मा। जैसे मावा का पेडा पड़ा हो न, मावा। मावा बनाते हैं न, मावा? तो उसका पेड़ा बनावे न? पेड़ा। पेंडा क्या कहते हैं? पेड़ा। उसी प्रकार आत्मा में अकेला आनन्द का मावा पड़ा है। अतीन्द्रिय आनन्द का मावा। उसमें एकाग्र हो तो आत्मा के आनन्द के स्वाद के पेड़ा मिले। जादवजीभाई! समझ में आया? आहाहा!

अरे! यह बात जिसे अभी कान में सुनने को मिले नहीं। वह कब विचारे? कब श्रद्धा करे? और कब अनुभव में लावे? आहाहा! कहते हैं, यहाँ तो अकेली मक्खन की बात है। यह परमात्मप्रकाश तो अकेला मक्खन वर्णन किया है। माखण कहते हैं न? मक्खन-मक्खन। कहते हैं कि प्रभु! एकबार सुन तो सही, भाई! सब बात भूल जा। मैंने

ऐसा जाना है, मैंने ऐसा किया है, मैंने ऐसा माना है। एक बार भूल जा सब। भूल जा और भगवान कैसा है, उसे लक्ष्य में ले। वह आत्मा तो ऐसा है कि अतीन्द्रिय आनन्द का मावा, अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड आत्मा है। उसे आत्मज्ञानमयी कला द्वारा उसका आस्वाद -अनुभव करना, इसका नाम धर्म और मोक्ष का मार्ग है। बाबूलालजी! भाई! समझ में आता है?

देखो, एक शब्द पड़ा है वहाँ से। '**शुभाशुभमनोवचनकायव्यापारैः शून्यं**' '**शून्यं**' तब वह पद कैसा है? कि '**वीतराग परमानन्दैकसुखामृतरसास्वादरुपा स्वसंवित्तिमयी या सा परमकला**' आहाहा! टीका भी की है न! समझ में आया? बहुत अधिक पढ़ा हो, इसलिए यह समझ में आये, ऐसी कुछ चीज़ नहीं और कम ज्ञान हो तो यह दृष्टि सम्यक् न हो, ऐसा कुछ नहीं। आहाहा! और व्रत पालता हो तो यह सम्यग्दर्शन हो, ऐसा कुछ नहीं। वह तो पुण्य परिणाम है। उससे सम्यग्दर्शन तीन काल में नहीं होता। दया, दान, व्रत, भक्ति पालता हो, करता हो तो ऐसा सम्यग्ज्ञान हो, ऐसा नहीं है। क्योंकि वह परिणाम पहले कह दिये। शुभाशुभ व्यापार से रहित भगवान है। समझ में आया?

आत्मा उसे कहा, उसे है ऐसा वह है। भगवान ने ऐसा देखा और वैसा तेरा आत्मा है। है वह, परन्तु दृष्टि में ले तो उसे भान हो कि पुण्य-पाप के शुभाशुभ विकल्प दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, जप, काम, क्रोध के भाव, उस व्यापाररहित आत्मा है। इसलिए उस व्यापार द्वारा आत्मा ख्याल में आवे या आत्मा की दृष्टि हो या आत्मज्ञान हो, ऐसा है नहीं। समझ में आया? आहाहा! बहुत संक्षिप्त भाषा की। ऐसा कहा शुभाशुभ मन, वचन, काया के व्यापाररहित। अर्थात् क्या कहना चाहते हैं? कि भाई! यह शरीर, वाणी, मन तो भिन्न अजीवतत्त्व है, परन्तु तुझमें शुभाशुभभाव हो मन, वचन, काया के लक्ष्य से निमित्त में, तेरे उपादान में शुभ और अशुभ, दया, दान, काम, क्रोध, व्रत (भाव हो), उससे वस्तु रहित है। तो उससे वह प्राप्त हो, ऐसा है नहीं। आहाहा! यह सब पक्का करके आये हैं। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा!

कहते हैं, वीतराग परमस्वरूप तेरा है न, प्रभु! तुझे कैसा, तुझे किस प्रकार से

पहिचानना ? कि यह अमुक पिता का पुत्र, ऐसा पहिचानना ? भगवान ऋषभदेव परमात्मा नाभिराजा के पुत्र, ऐसा पहिचानना ? कि नहीं। मरुदेवी के पुत्र, ऐसा पहिचानना ? कि नहीं। परम औदारिकशरीरवाला आत्मा, ऐसा पहिचानना ? कि नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? आत्मा आयुष्यवाला भगवान, ऐसा पहिचानना आत्मा और ऐसा आत्मा है ? कि नहीं। एक करोड़पूर्व का आयुष्य। यह भगवान को करोड़ पूर्व का है न, सीमन्धर भगवान। यह ऋषभदेव भगवान को चौरासी लाख पूर्व का। इस प्रकार से आत्मा को पहिचानना ? कि नहीं। तब उसे परम औदारिकशरीरवाला पहिचानना ? वाणीवाला पहिचानना ? मनवाला पहिचानना ? ऐसा आत्मा है ? कि नहीं। तब उसे पुण्य-पाप के परिणाम हो, उनसे पहिचानना ? ऐसा आता है ? कि नहीं। कहो, समझ में आया ?

वह वेदान्त कहता है न नेति... नेति... कहते हैं न पण्डितजी ! कि यह नहीं.. यह नहीं। परन्तु यह नहीं (तो) है क्या तब ? यहाँ यह कहते हैं। यह नहीं... यह नहीं... यह नहीं... परन्तु है क्या ? यह दो बातें करते हैं। यह नहीं, परन्तु यह है। अकेली नेति-नेति करे, ऐसा नहीं चलता। यह नहीं... यह नहीं... यह नहीं... यह नहीं... यह तो श्रीमद् ने कहा, 'अबाध्य अनुभव जो रहे, वह है जीवस्वरूप।' आत्मसिद्ध में कहा है। यह अबाध अनुभव जो रहे, ऐसी अस्ति वापस स्थापित की है। आत्मसिद्धि में। ऐसा कि यह मन नहीं, वाणी नहीं, देह नहीं, फलाना नहीं, फलाना नहीं। पश्चात् ? कि कम करते... करते... करते... बाद समझते हैं ? बाद कहते हैं ? अबाध्य अनुभव। कम करते... करते... करते... जो कुछ बाकी चीज़ रहे अनुभवस्वरूप आत्मा, उसे आत्मा कहा जाता है। है न उसमें ? उसमें है वह। वहाँ भी न सुने तो क्या काम आवे ? ...भाई ! यह होशियार मनुष्य हो, उसे ख्याल तो हो न कि भाई ऐसा अर्थ होता था और यह होता है यहाँ।

'अबाध्य अनुभव...' इसके पहले क्या शब्द है ? '...अबाध्य अनुभव जो रहे...' अबाध कहने से कम करते... करते... नहीं, वाणी नहीं। यह तो भाई ने कहा न कि ना कितना कहना है ? इसलिए और यह याद आ गया। आत्म भगवान कर्म नहीं, शरीर नहीं, वाणी नहीं, कुल नहीं, कुटुम्ब नहीं, आयुष्य नहीं, फलाने का पुत्र, फलाने का

पिता, यह नहीं। मोतीरामजी! तब? कि अब यह मन, वचन और काया यह? तो वह नहीं। तब कहे उसमें शुभाशुभभाव होवे वे? वह भी नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें भी अभी निकालने का बाकी ... लेंगे। यही गुणी और यह गुण, ऐसा भेद भी उसमें नहीं। यह बाद में नीचे लेंगे। समझ में आया?

ऐसा आत्मस्वरूप, उसे आत्मज्ञानमयी। भाषा कैसी की है? '**स्वसंवित्तिमयी**' शब्द प्रयोग किया है न? '**स्वसंवित्तिमयी**' शब्द प्रयोग किया है संस्कृत। '**स्वसंवित्ति**' अर्थात् अपना संवेदन आत्मज्ञान जिसके द्वारा। आत्मज्ञान द्वारा आत्मा के आनन्द का स्वाद आवे, उसे आत्मज्ञान और उसे सम्यग्दर्शन कहा जाता है। कहो, समझ में आया? **परमकलाकर भरपूर जो ब्रह्मपद-शून्यपद...** ब्रह्म अर्थात् शून्य... और शून्य अर्थात् पुण्य-पाप के विकल्प। **निज शुद्धात्मस्वरूप...** अपना निज शुद्धात्मा। देखो, कम करते-करते वस्तु यह। वस्तु कितनी? कैसी? कि अपने आत्मा का स्वभाव शरीर प्रमाण भिन्न तत्त्व, उसके क्षेत्र में, उसके भाव में निजानन्द से भरपूर पदार्थ स्वयं है। समझ में आया? आहाहा! **उसको ध्यानी...** ऐसे स्वरूप को एकाग्र करना, सम्यग्दर्शन द्वारा, आत्मज्ञान द्वारा और चारित्र द्वारा आत्मा का आश्रय करके आस्वाद करे, ऐसा ध्यानी। **रागरहित...** उसे फिर विकल्प होता नहीं। **तीन गुप्तिरूप समाधि के बल से ध्यावते हैं,...** देखो, ऐसे आत्मा को मन, वचन और काया के झुकाव की ओर से हटकर ऐसे भगवान आत्मा को पहले ख्याल में, समझण में, श्रद्धा में लिया था, उसे मन, वचन और राग से दूर करके स्वरूप का ध्यान करे, उसे शान्ति और समाधि होती है।

उन ध्यानी योगियों की मैं बार-बार बलिहारी करता हूँ,... आहाहा! यह तो उत्कृष्ट बात मुनि की ली है, परन्तु पहले सम्यग्दर्शन में भी आत्मज्ञान की कला द्वारा ही आत्मा ज्ञात होता है, इसके अतिरिक्त किसी कला से ज्ञात हो, ऐसा नहीं। समझ में आया? आचार्यदेव योगीन्द्रदेव महा दिगम्बर मुनि थे। छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलनेवाले भावलिंगी सन्त थे। अमृत का उत्कृष्ट आस्वाद लेनेवाले। उत्कृष्ट अर्थात् स्वसंवित्ति विशेष लेनेवाले। ऐसे मुनि कहते हैं कि अहो! जो कोई ऐसे आत्मा को त्रिगुप्ति मन,

वचन और काया से हटकर, पुण्य-पाप के विकल्प से हटकर, पूर्णानन्द प्रभु की ओर के स्वाद में, ध्यान में रहता है, ऐसे ध्यानी को मैं बलिहारी जाता हूँ। उसके मस्तक पर मैं वारी जाता हूँ, ऐसा कहते हैं। **उसके मस्तक पर मैं अपने को वारता हूँ।** यह दूसरा श्लोक है न? १६०। उसमें आयेगा। १६० की दूसरी लाईन है, नीचे। **उसके मस्तक पर मैं अपने को वारता हूँ।** वारी जाऊँ, भाई! आहाहा! धन्य अवतार तेरा! देखो, स्वयं तो मुनि-आचार्य हैं, परन्तु उन्हें महिमा इसकी है। कोई आचार्य और मुनि हुए और बाहर में इज्जत बढ़ गयी, शिष्य बढ़ गये, राजा, महाराजा माननेवाले हो गये, इसलिए बड़े हैं। उन्हें वे महत्ता दृष्टि में है नहीं। आहाहा! अथवा लाखों लोगों में व्याख्यान करना आवे, लोग ऐसे प्रसन्न हों, इसलिए बड़े। कहते हैं, नहीं। हमको वे बड़े नहीं लगते। आहाहा! उन्हें हम बलिहारी जाते हैं, वारी जाते हैं (कि) जो आत्मा यह पुण्य-पाप के विकल्प और वाणी तो कहीं रह गयी। उनसे रहित अपने स्वसंवेदनज्ञान में ध्यान करके टिकते हैं, उन्हें हम बलिहारी जाते हैं। आहाहा! उनकी हम प्रशंसा (करते हैं), धर्मानुराग द्वारा हमको उनकी प्रशंसा आती है। है तो विकल्प धर्मानुराग, परन्तु हमको विकल्प द्वारा भी ऐसी प्रशंसा होती है। दूसरी हमारे प्रशंसा हृदय में आती नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया?

ऐसे हजारों राजाओं के साथ दीक्षा ली और एक व्यक्ति ने अकेले दीक्षा ली। हजारों ने ली, इसलिए बड़ा कहलाये? नहीं। हम कोई कहते नहीं। हम तो आत्मा के अन्दर के आत्मज्ञान-दर्शनमय परमकला द्वारा अन्दर आत्मा के आनन्द का योग साधते हैं स्थिरता, बस! उन्हें हम बड़े प्रशंसा (योग्य) कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? सभा को रंजन करना आवे, बोलना आवे, ऐसे बराबर श्लोक बोले, ऐसे देशी राग बसन्त, ... क्या कहलाता है? वसंततिलका। एक बार वसन्त मालती जैसा हो गया था। वस्तु मालती की दवा है न। वसंततिलका आता है न। क्या है? आहाहा! 'भक्तामर प्रणत मौली मणी प्रभाणां' ऐसे मानो... वह शार्दुल... व्याख्या है न वह? शार्दुल। कहते हैं कि वह कुछ कला (नहीं है), वह तो कण्ठ की कला वह जड़ की। हमको उसका माहात्म्य है नहीं। आहाहा!

यह कला जो भगवान आत्मा के परम आनन्द की जिस कला द्वारा आस्वाद लिया जाये, उसमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों समाहित हो जाते हैं। उस आत्मा के आनन्द के स्वाद में तीनों समाहित होते हैं। सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र। इसके अतिरिक्त बाकी कोई शुभाशुभभाव में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता नहीं। व्यवहारचारित्र से रहित यहाँ तो कह दिया है। शुभ परिणाम रहित अर्थात् व्यवहार दर्शन-ज्ञान-चारित्र से रहित, ऐसे आत्मस्वाद को आत्मज्ञानमय कला द्वारा आस्वादता है, उसे हम वारी जाते हैं और वही जगत को करनेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसे श्री योगीन्द्रदेव अपना अन्तरंग का धर्मानुराग प्रगट करते हैं,... देखो, **और परम योगीश्वरों के परम स्वसंवेदनज्ञानसहित महा समरसीभाव है।** अब कहते हैं कि समरसीभाव किसे होता है? ऐसे योगी को वीतरागभाव समरस होता है। ऐसे समता-समता बातें करे। बहुत समता। लकड़ियाँ मारे तो भी क्रोध न करे। ऐसी समता-फमता नहीं, ऐसा कहते हैं। यह समता की व्याख्या ही नहीं। समता की व्याख्या यह है कि पूर्णानन्द प्रभु की ओर परमकला द्वारा रागरहित आत्मा का वेदन, वीतरागभाव, उसे समता कहा जाता है। यह दुनिया में अभी नहीं वह? राज के लिये मरते हैं, नहीं यह राज के लिये? क्या कहलाते हैं वे? सत्याग्रह। सत्याग्रह के लिये मरे। आहाहा! भारी समता! यह समता-बमता नहीं। समता की व्याख्या दूसरी भगवान के घर में है।

मुमुक्षु : शहीद हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : शहीद हो। यही कहता हूँ न। ऐसे बहुत देखे हैं न। एक लड़का मरते-मरते बोलता गया। अमरेली में था। प्रेमचन्दभाई के मामा का पुत्र। हमने तो सब बहुत देखे हैं न! मैं वहाँ जा आया। मरते हुए ऐसा बोलता था, ऐसा करो... ऐसा करो... ऐसा करो... ऐई! ऐसा करो। यह प्रेमचन्दभाई के मामा का पुत्र है। मरते हुए... और इसलिए कहा... सिर पर लकड़ियाँ पड़े तो भी (कुछ नहीं)। यह समता की व्याख्या ही नहीं। भगवान उसे समरस, समभाव, समता कहते हैं कि जिसे पुण्य-पाप के विकल्प के रागरहित भगवान आत्मा, उसे आत्मज्ञानमयी दृष्टि से समभाव में परिणमन करता है, उसे हम समरसभाव, समता कहते हैं। यह व्याख्या भगवान के घर की है।

दुनिया अपनी कल्पना से समता मान ले कि आहाहा! भारी करते हैं, ऐसा करते हैं। सब शून्य है। समझ में आया? लोक के लिये, देश के लिये मर जाते हैं न? समता कहलाती होगी या नहीं वह? नहीं? वल्लभदासभाई!

परम योगीश्वरों के परम स्वसंवेदनज्ञान सहित महा... महा समरसीभाव है। देखो, ... ऐसा कहते हैं। दो विशेष परम है न! चौथे से आगे बढ़ते हैं, ऐसा। वरना तो पाठ में तो अकेली परमकला ली है। समझ में आया? **'वीतरागपरमाह्लादसुखेन परमसमरसीभावाम्'** पाठ इतना किया है। **'वीतरागपरमाह्लादसुखेन परमसमरसीभावाम्'** परम शब्द पड़ा है सही न। चौथे गुणस्थान में... यह तो मुनि की बात है न। चौथे में उसे समभाव है, जितना अनुभव प्रगट हुआ है अनन्तानुबन्धीरहित, उतना समभाव है। श्रावक को अप्रत्याख्यानावरणीय रहित शान्ति, सम्यक् अनुभवसहित प्रगट हुई उतनी शान्ति है। मुनि को तो परमसमरसीभाव है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! परमसंवित्ति भी परम उत्कृष्ट है और भाव वीतरागपना भी मुनि को छठवें-सातवें गुणस्थान में। छठवें-सातवें गुणस्थान में महामुनि जिन्होंने पर से रहित होकर, स्व से सहित होकर, पर से रहित होकर और स्व से सहित होकर भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उसे अन्तर एकाग्र होकर वेदता है, आत्मा के समरस की समता के अमृत का अनुभव करता है। योगीश्वर स्वयं कहते हैं (कि) बलि जाता हूँ तेरी... राजमलजी! आहाहा! अब यहाँ तो बाहर की तकरार के आगे निवृत्त नहीं होता। यह किया और यह व्रत पालन किये, यह मैंने किया। अब छोड़ न। वह तो विकल्प हैं। वहाँ कहाँ व्रत-फ्रत था? क्यों, शिखरचन्दजी?

समरसीभाव का लक्षण ऐसा है कि जिनके इन्द्र और कीट दोनों समान,... अथवा जिसे शुभाशुभ परिणाम भी जहाँ एकरूप बन्ध के कारण भासित होते हैं, उसे शुभाशुभ परिणाम के फल भी सब समान भासित होते हैं। फल। इन्द्र, वह शुभ परिणाम का फल; कीड़ा, वह अशुभ का फल। जिसे शुभाशुभ परिणाम का ही जहाँ निरर्थकपना भासित हुआ है, उसके फल का भी जिसे निरर्थकपना भासित होता है। कहो, समझ में आया? राजा, बड़े सेठिया, पाँच-पाँच करोड़ की आमदनी। भाई! धर्म तो धन के आधार से रहे। धनवन्त वैसे हों तो धर्म में मदद करे, पैसे दे। गरीब मनुष्य कहाँ से देते

होंगे? इसलिए धर्म धन के आधार से रहे। सच्ची बात होगी? धन के आधार से धर्म-फर्म नहीं। ऐई! छोटाभाई! यह बहुत वर्ष पहले कहा न, (संवत्) १९८१ में वे डगली-डगली थे न। लींबड़ी। केशवलालभाई थे। कैसे? मोहनभाई... मोहनभाई। पैसे दिये उसने कुछ। फिर यहाँ व्याख्यान में आवे। हमारे पास तो तत्त्व की अमुक बात हो। पैसा-बैसावाले की कुछ बात न हो। इसलिए एकान्त में आये। महाराज! यह पैसेवाले का धर्म में कुछ स्थान है या नहीं? (हमने) कहा, नहीं। परन्तु कहे, यह पैसेवाले पचास-पचास हजार दे, लाख-लाख दे तो पाठशालायें हों, विद्याशालायें हों, उपाश्रय हों, यह सब मन्दिर हों, इनमें कुछ उसका भाग नहीं? कहा, कुछ भाग नहीं, सुन न। पैसेवाले का भाग कैसा? वल्लभदासभाई!

यहाँ तो पैसा, पैसे का भाव वह पाप। और पूर्व में पुण्य किया हुआ, उसका मिला हुआ वह दोनों पुण्य-पापरहित भगवान आत्मा है। उसकी जिसने दृष्टि, ज्ञान और एकाग्रता की, तो उसकी महत्ता और उसकी कीमत है। बाकी किसी की कीमत-फीमत है नहीं। बाहर में गरीब दिखता हो आठ वर्ष का बालक अनाथ अर्थात् कोई माँ-बाप न हो, परिवार न हो, एकदम काला शरीर हो। आठ वर्ष का बालक। तो भी आत्मा की दृष्टि और आत्मज्ञान हुआ है और पुण्य-पापरहित आत्मा की कला खिली है। तो वह करोड़ों-अरबोंपतियों के... उनसे वह महा ऊँचा है। उनसे ऊँचा कहा तो उसकी कीमत कुछ होगी, यह भी है नहीं। जाति ही अलग है। आठ वर्ष का बालक हो, हरिजन हो, परन्तु यदि आत्मज्ञान; पुण्य-पाप के रागरहित चिदानन्दमूर्ति प्रभु है, ऐसी दृष्टि और कला खिली है, राजा, महाराजा सब उसके पास स्थूल है, कहते हैं। उनकी कीमत है नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... किसका तोलो? यह तो पहली बात की। मस्तिष्क में रखी थी। उससे यह बड़ा है, इसलिए यह कुछ थोड़ा बड़ा है, ऐसा है? समझ में आया? आहाहा! आत्मधन की सम्पदा, लक्ष्मी, उसकी कीमत है या बाहर की कीमत है? सातवें नरक का नारकी समकिती और यहाँ बड़े चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त मिथ्यादृष्टि, सब तुच्छ

पद के धनी, हल्के पद के धनी। वह महान केवलज्ञान पद का धनी होनेवाला है। समझ में आया? वहाँ ऐसा नहीं आया हों, कि बहुत वाँचना आवे तो बड़ा कहलाये, हजारों लोग उसे वन्दन करे, तो बड़ा कहलाये। बहुत शास्त्र कण्ठस्थ किये हों और पानी के पूर की भाँति शास्त्र वाँचता हो तो बड़ा कहलाये (-ऐसा नहीं है)। भगवान अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति प्रभु है। उसे वीतराग आनन्द और रागरहित एकाकार होकर आनन्द का ध्यान करे, उसकी हम प्रशंसा करते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... कम करने का बहुत, ऐसा कहते हैं। बहुत निकाल डालने का। लाख के काँच के टुकड़ों में एक हीरा पड़ा हो। कटका कहते हैं न? काँच के टुकड़े। एक हीरा पड़ा हो तो निकालना किसलिए? एक उठा लेना। ... इसी प्रकार पुण्य-पाप, पुण्य-पाप के फल सब काँच के टुकड़े हैं। भगवान हीरा अन्दर चिदानन्दमूर्ति आनन्दकन्द वीतराग सर्वज्ञस्वभाव से भरपूर है। उसकी दृष्टि और उसका ज्ञान और स्थिरता उठाये, सब पड़ा रहा, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। समझ में आया? यह तो परमात्मप्रकाश है न! मक्खन की बातें अकेली की हैं। अथवा देखो!

चिन्तामणि रत्न और कंकड़ दोनों समान हों। ठीक! चिन्तामणि रत्न। ऐसे हाथ में लेकर चिन्तवन करे कि लाख बँगला होओ, तो तुरन्त हो जाये। चिन्तामणि रत्न। लाख बँगला कहे तो हो जाये। करोड़ द्वारिका हो जाओ। करोड़ द्वारिका। सोना के गढ़ और मणिरत्न के कंगूरे। ऐसा वार्ता में ... शास्त्र में द्वारिका। सोना के गढ़ और मणिरत्न के कंगूरे। हाथ में चिन्तामणि (रखकर) कि ऐसा बने। बन जाये द्वारिका। क्या है परन्तु? कहते हैं। वह चिन्तामणिरत्न और कंकर अकेला कि जिसकी पाई की कीमत नहीं होती और उसकी इच्छा करने से कुछ नहीं मिलता। वह कंकर और चिन्तामणि रत्न दोनों समान हैं। आहाहा! समझ में आया? श्रीमद् में नहीं आया?

रजकण या रिद्धि वैमानिक देव की,
सबको माना पुद्गल एक स्वभाव जब।
घोर तपश्चर्या में भी मन को ताप नहीं,

सरस अन्न में नहीं मन को प्रसन्न भाव जब।
रजकण या रिद्धि वैमानिक देव की,
सबको माना पुद्गल एक स्वभाव जब।
अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा?

...भाई! कुछ कीमत रजकण की—सर्वार्थसिद्धि की नहीं रही। सर्वार्थसिद्धि के भाव की भी नहीं रही। जिस भाव से सर्वार्थसिद्धिपना मिले, उसकी कीमत ज्ञानी को कुछ है नहीं। समझ में आया?

अरे भाई! धर्मरत्न को लेना, महा महँगी कीमत करनी पड़े, ऐसी है। एक हीरा भी लेने जाये तो उसके प्रमाण में कीमत भरनी पड़े। यह तो चैतन्य रत्न महा अनन्त गुण का रत्नाकर सागर भगवान आत्मा, उससे बड़ा दुनिया में कोई नहीं। भगवान बड़े तो वे उनके घर के। समझ में आया? इस घर के बड़े कोई नहीं। आहाहा! ऐसा समरसीभाव। समझ में आया? ऐसे स्वसंवेदनज्ञानसहित समरसीभाव है। ज्ञान के साथ वीतरागभाव लिया। स्वसंवेदनज्ञान है और उसे ऐसा समभाव है, ऐसा। दो ज्ञान और चारित्र, ऐसा। ऐसे मुनियों को हम बलिहारी लेते हैं। शिष्य की बात करते हैं। नीचे चौथे गुणस्थान के प्रमाण में ज्ञान और रागरहित हो, पाँचवें के प्रमाण में क्षयोपशम और ज्ञान तथा रागरहित रहे। छठवें में उसके प्रमाण में... वीतरागभावसहित समरसभाव हो।

अथवा ज्ञानादि गुण और गुणी निज शुद्धात्म द्रव्य इन दोनों का एकीभावरूप परिणमन वह समरसीभाव है,... क्या कहना है? कि भगवान आत्मा परम वीतरागस्वरूप से चैतन्य पदार्थ है। उसकी वर्तमान पर्याय; गुण अर्थात् पर्याय। गुण-गुणी के एक भाव का अर्थ, गुण-गुणी तो एक है ही, परन्तु बात तो ऐसी ली है कि **ज्ञानादि गुण और गुणी...** इसका अर्थ कि गुण और गुणी तो एक ही है, परन्तु वर्तमान पर्याय को पर्यायवान के साथ एकत्व करना... उस पर्याय को राग के साथ एकत्व करे, वह संसार है। उस पर्याय को पर्यायवान गुणी के साथ गुण को; गुण अर्थात् पर्याय, उस पर्याय को गुणी के साथ एकत्व करना, उसका नाम समभाव है। उस पर्याय को राग के साथ एकत्व करे, वह विषमभाव और मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया?

ज्ञान की पर्याय को राग के साथ एकत्व मानना, वह मिथ्यात्वरूपी विषमभाव है। जो ज्ञान की पर्याय को वीतराग परम... आत्मा पर्यायवान द्रव्य, उसके साथ एकाकार... यह कहते हैं, देखो! **ज्ञानादि गुण...** अर्थात् पर्याय **और गुणी निज शुद्धात्मद्रव्य इन दोनों का एकीभावरूप परिणमन...** एकरूप अभेद परिणमन ज्ञान की पर्याय को पर्यायवान की कीमत में लगाने से जो वीतरागी परिणमन हो, उसे समरसीभाव कहा जाता है। अरे! समता की व्याख्या ऐसी है। कितने ही तो ऐसे साधारण लोग होते हैं कि प्रकृति ऐसी ... ओहोहो! बहुत समता। ऐसी समता नहीं। बहुतों की तो प्रकृति का ऐसा स्वभाव होता है। साधारण कम बोले, ऐसा बोले। इससे कहीं समरसी समता है, ऐसा है नहीं।

यहाँ तो विकल्प बिना की पूरी चीज़ ऐसा भगवान आत्मा, उसकी वर्तमान पर्याय से गुण से गुणी को एकाकार करना, ऐसा जो भाव, उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप समरसभाव कहा जाता है। आहाहा! अभी तो ... क्या करना? ऐसे राग का विकल्प साथ में एकत्व करना गुण में। गुण अर्थात् पर्याय में। मिथ्यात्वभाव, विषमभाव, संसारभाव, पाखण्डभाव, अज्ञानभाव। भगवान आत्मा के अन्तर के मूल वीतरागीस्वभाव-सन्मुख वर्तमान पर्याय को एकाकार करना, बस इसका नाम समरसीभाव है। इसका नाम समता और इसका नाम वीतरागभाव है। ऐसे तो सब बहुत कहे, वीतराग-वीतराग करे। ऐसे वीतराग नहीं चलता। राग और पुण्यरहित ऐसा प्रभु भगवान, उसका स्वरूप तो शाश्वत है। उसकी वर्तमान दशा को उसमें एकाकार करके विषमता टलकर समता हो, उस दशा को भगवान समरसीसमता कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी सत्य बात भी जहाँ कान में पड़े नहीं और बाहर में थोथा में मानकर बैठे कि यह किया। हम काम करते-करते आगे बढ़ गये हैं। बढ़े हैं। धूल में भी बढ़े नहीं, सुन न! पाप में बढ़े हैं। यह राग की मन्दता के भाव से आगे बढ़े तो मानो हम कुछ बढ़े हैं। और वह जो गृहस्थाश्रम में समकिती पड़ा हो। ओहोहो! स्त्री, पुत्र, परिवार, भोग, धन्धा वहाँ बढ़े। ... हमने राग घटा दिया और हम बढ़ गये हैं। मिथ्यात्व में बढ़े हो, सुन न! समझ में आया? जहाँ अन्दर राग की मन्दता की भी कीमत हुई, उसे भगवान आत्मा की कीमत नहीं। एक म्यान में दो नहीं समाते।

वीतराग कहते हैं, प्रभु! यह वीतरागता आयी कहाँ से? बाहर से आयी है? लटकती थी कहीं? सर्वज्ञ वीतरागी विज्ञान, वीतरागी विज्ञान पर्याय प्रगट हुई, वह आयी कहाँ से? सर्वार्थसिद्धि में से आती है? पूर्व की पर्याय में से आती है? राग में से आती है? निमित्त में, शरीर के बल से आती है? ... वीतराग-विज्ञानता आती है? वह वीतराग-विज्ञान की पर्याय त्रिकाल भगवान आत्मा में से आती है। जादवलालजी! उसका तो जिसे माहात्म्य नहीं, उसकी जिसे दृष्टि नहीं, उसकी जहाँ खबर नहीं, वहाँ वीतरागता आवे कहाँ से? इसलिए आचार्य जरा स्पष्टीकरण करते हैं कि गुण-गुणी का एकरूप परिणमन। अर्थात्? ... भगवान की पर्याय में विकार के साथ एकपना था। वह मिथ्यात्व विषमभाव था। श्रद्धा विपरीत, ज्ञान खोटा, अस्थिरता भी विपरीत। अस्थिरता अर्थात् ... वह ज्ञान का गुणी के साथ एकत्व करने से, जो एकत्व सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के परिणाम हो, उसे समरस और समता कहा जाता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... कौन सा? चारित्र? अस्थिरता कही न। सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान की दृष्टि होकर उसमें रहा अन्तर एकाकार, वह चारित्र। छह काय की मन्दता का राग है, वह चारित्र है ही नहीं। मिथ्यादृष्टि को कोई (कषाय) मन्द चारित्र नहीं, परन्तु सम्यग्दृष्टि को मन्द कषाय, वह चारित्र नहीं। समझ में आया? आहाहा!

उसकर सहित हैं,... देखो, देखा! **परिणमन वह समरसीभाव है, उसकर सहित हैं, जिनके पुण्य-पाप दोनों ही नहीं हैं।** वीतराग समभाव विशेष है न? मुनि की दशा की बात है न? ऐसे चौथे गुणस्थान में भी पुण्य-पाप है, परन्तु उसमें दृष्टि और दृष्टि के विषय में पुण्य-पाप नहीं। अस्थिरता के भाग में है, परन्तु दृष्टि में और दृष्टि के विषय में पुण्य-पाप नहीं समकिती को। अस्थिरता का पुण्य-पाप भाव है। मुनि को तो वह भी पुण्य-पाप की अस्थिरता छूटकर स्थिर हो गये हैं, इसलिए उन्हें पुण्य-पाप स्थिरता में भी है नहीं। समझ में आया?

ये दोनों शुद्ध, बुद्ध चैतन्य स्वभाव परमात्मा से भिन्न हैं,... भगवान आत्मा अकेला शुद्ध निर्मल। बुद्ध अर्थात् अकेला ज्ञान का पिण्ड प्रभु। ज्ञान का पिण्ड। समझ

में आया? ... पेड़ा याद रहे। मावा लो अकेला। वह मावा अन्दर में से यह। यहाँ तो मैं दृष्टान्त और वह देता था। महिलायें आटा नहीं बाँधती? पहले दस सेर, घर बड़ा हो, आटा बाँधे पाँच सेर, सात सेर। आठ-दस व्यक्ति बाहर हो तो। गूँथे तेल डालकर व्यवस्थित करके ऊपर तेल चोपड़कर, (वरना) सूख जाये। ऊपर का भाग सूख जाये। फिर धीरे-धीरे एक-एक आटे से रोटी बने। लोट को क्या कहा जाता है? लोई-लोई। लोई कहते हैं न उसे। उसे गूँथकर व्यवस्थित करके रखे और फिर ऊपर तेल चोपड़े। वह क्या कहलाती है लकड़ी की? कथरोट। नाम सब भूल जाते हैं। उससे लेकर करे। ... होवे तो वह तो सब रोटी को इकट्ठी करके ... बीच में थोड़ा आटा डाले। सूखा सहज। दोनों एक न हो जाये। ऊपर का भाग और नीचे का भाग एकमेक न हो जाये, इसलिए मोड़ते हुए अन्दर थोड़ा आटा डाले जरा। देखा है? यहाँ तो सबका देखा हुआ है। अपने कहाँ? फिर वह कपड़ा रखे ऐसे-ऐसे। क्या कहलाता है? ऐसे रखे तब वह गेंद हो। उसमें हवा भरनी चाहिए न अन्दर। हवा भरे बिना गेंद किस प्रकार हो? इसी प्रकार यहाँ राग और पुण्य के विकल्प से भगवान को भिन्न-पृथक् रखकर दो के बीच सिर मारा है, (पृथक्) कर। पुण्य और पाप भिन्न रह गये, एक भगवान रह गया भिन्न। ऐसी दृष्टि में जिसने गूँथा है। उसकी समय-समय में निर्मल पर्याय को लोई फैलकर रोटी होती है। आहाहा! ऐसी बात!

ये दोनों शुद्ध, बुद्ध चैतन्यस्वभाव परमात्मा से भिन्न हैं, सो जिन मुनियों ने दोनों को हेय समझ लिया है,... यहाँ तो समझ लिया है, वह तो चौथे गुणस्थान में समझ लिया है। परन्तु यहाँ तो दोनों में अस्थिर छोड़कर स्थिरता कर डाली है। **परमध्यान में आरूढ़ हैं,...** यह महा आत्मा के आनन्द के रस में सराबोर है। 'मांही पड्या ते महासुख माणे, देखनारा ते दाझे जोने। माही पड्या ते महासुख माणे।' इस आनन्द के कन्द में पड़ा हो अन्दर। पेट में भूख हो, ... शरीर हो। परन्तु अन्दर में पड़ा है आत्मा के ध्यान में 'माही पड्यो ते महासुख माणे, देखनारा ते दाझे जोने।' ... अब सुन न! वह मोक्ष में जायेगा और तू जायेगा नरक में। वह हाथी के ऊपर बैठा हो बड़ी सोने की, मणिरत्न की अंबाडी हो न? अंबाडी हो न मणिरत्न की? ऐसे खम्मा-खम्मा अन्नदाता। दोनों

ओर चँवर ढुरते हों और वह बबूल के नीचे बैठा हो। खम्मा अन्नदाता नरक में जाने की तैयारीवाला। उसको खम्मा करनेवाला कोई बाहर में नहीं। अन्दर में खम्मा प्रभु! तेरे पूर्णानन्द की दशा में। उसमें एक भी खण्ड नहीं होता, ध्यान में मस्त है, अल्पकाल में परमात्मा हो जायेगा। नवकार में लोग उसका ध्यान करेंगे। समझ में आया? यहाँ कहते हैं, ऐसे परमात्मा परम धाम में आरूढ़ जो हो परमात्मस्वरूप में। **उनकी मैं बार-बार बलिहारी जाता हूँ।** ओहोहो! एक-एक श्लोक में मक्खन के पिण्ड बुने हैं अकेले।

★ ★ ★

गाथा - १६०

आगे फिर भी योगीश्वरों की प्रशंसा करते हैं — १६०।

२९१) उव्वस वसिया जो करइ वसिया करइ जु सुण्णु।
बलि किज्जउँ तसु जोइयहिँ जासु ण पाउ ण पुण्णु॥१६०॥

जो ऊजाड़ हैं,... उस उज्जड़ को बस्ती बसाते हैं। उस उज्जड़ में बस्ती बसाते हैं। उज्जड़ अर्थात्? भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, उसका शुद्ध उपयोग, उसकी पर्याय में नहीं था। उसकी पर्याय में पुण्य और पाप के विकार थे। उसमें आत्मा उसकी पर्याय में उज्जड़ था। उज्जड़ समझते हैं? बस्तीरहित, अरे! आत्मा की प्रजा बिना का आत्मा था। पुण्य और पाप के विकल्प, वे आत्मा की प्रजा नहीं। वह आत्मा की वस्तु नहीं। वह आत्मा भगवान अखण्डानन्द प्रभु वीतरागी समरसी का तत्त्व, उसकी पर्याय में अपनी प्रजा बिना की बस्ती बिना का था। उसने उज्जड़ को बस्ती बनाया। किसी का ज्ञानानन्द में शुद्ध उपयोग किया। यह शुद्ध उपयोग किया, वह उसकी बस्ती कहलाती है। यह उज्जड़ को बस्तीवाला किया। समझ में आया? भाषा ... एक-एक गाथा में बदले न्याय भी बदलता है। बातें तो ऐसी की ऐसी हैं। कि यह उसे बस्ती नहीं थी, ऐसा कहना है। भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण वीतरागीघन होने पर भी उसकी प्रजा नहीं थी, पर्याय उसकी प्रजा नहीं थी। उसकी बस्ती नहीं थी। पुण्य-पाप की बस्ती, वह आत्मा की बस्ती नहीं।

ऐसे शुद्धोपयोगरूप परिणामों को... देखो, **स्वसंवेदनज्ञान के बल से बसाता है,...** कैसी शैली ली है ? इसका तो न्याय कि भगवान ! तेरी पर्याय में यह नौवें ग्रैवेयक जाने के भाव शुभ हों, तो भी वह तेरी बस्ती नहीं। तेरी पर्याय तो बस्ती रहित उज्जड़ है। आहाहा ! यह पंच महाव्रत के परिणाम भी बस्ती बिना के उज्जड़ है। यह तेरी बस्ती नहीं। आहाहा ! तेरी बस्ती तो आत्मा की ओर दृष्टि करके शुद्ध उपयोग, शुद्ध उपयोग का व्यापार, वह तेरी प्रजा, वह तेरी प्रजा और वह तेरी बस्ती। वह उज्जड़ को बस्ती किया। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

आषाढ़ कृष्ण १३, सोमवार, दिनांक - २६-०७-१९६५
गाथा - १६० - १६१, प्रवचन - १८०

१६० गाथा चलती है। परमात्मप्रकाश, दूसरा भाग है। उज्जड़ को बस्ती करे और बस्ती को शून्य करे। यह गाथा आयी है। **जो प्रगटरूप नहीं बसते हैं,...** अर्थात्? इस आत्मा में अन्तर ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि स्वभाव परिपूर्ण पड़ा है। उसे जिसने पर्याय में प्रगट किया नहीं, उसकी पर्याय उज्जड़ है। उज्जड़ प्रयुक्त होता है न हिन्दी में? उज्जड़। जंगल खाली-खाली। देखो! आचार्य महाराज गाथा बदलते हुए न्याय बदलते हैं जरा-जरा थोड़ा। भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में अन्तर ज्ञान, आनन्द, शान्ति अर्थात् चारित्र, स्वच्छता, विभुता, प्रभुता ऐसी अनन्त शक्तियाँ तो अन्दर शक्ति सत्त्वरूप से है। उसे जिसने वर्तमान पर्याय में—अवस्था में प्रगट किया नहीं, उसकी पर्याय अपनी पर्याय से उज्जड़ है। समझ में आया? जो पुण्य और पाप की पर्याय है, मिथ्यात्व, राग-द्वेष की पर्याय, वह आत्मा की पर्याय नहीं। वह शुद्ध पर्याय, वह आत्मा की है; अशुद्ध पर्याय, वह आत्मा की नहीं। क्योंकि वह आस्रवतत्त्व, मलिनतत्त्व है। वह आत्मा की प्रजा नहीं। आहाहा! लादूलालजी!

भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्णरूप स्वरूप शुद्ध, ज्ञान-आनन्द से तो भरपूर है। कौन? **प्रगटरूप नहीं बसते हैं,...** परन्तु पर्याय में जो शुद्धता के गुण पड़े हैं, उनकी वर्तमान पर्याय में प्रगटरूप निर्मल अवस्था नहीं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वह आत्मा की निर्मल अवस्था है, वह शुद्ध परिणति है। वह आत्मा की पर्याय अर्थात् प्रजा और बस्ती है। वह अनादि से पर्याय अपनी खाली है, उज्जड़ है। **प्रगटरूप नहीं बसते हैं,...** समझ में आया? यह तो पहला '**उव्वस**' शब्द है न? '**उव्वस**' अर्थात् उज्जड़। उज्जड़ है इसका अर्थ किया। आत्मा की वर्तमान पर्याय उज्जड़ है। उज्जड़ है अर्थात्? जंगल है। जंगल अर्थात्? खाली है। खाली अर्थात्? अपना शुद्धस्वभाव पवित्र

उसकी दृष्टि, ज्ञान और शान्ति की दशा का अभाव, उसे यहाँ जंगल और उज्जड़ कहा जाता है।

अनादिकाल से वीतराग चिदानन्दस्वरूप शुद्धात्मानुभूतिरूप शुद्धोपयोग परिणाम... देखो, **उनको सब निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान के बल से बसाता है,...** 'बसता है' शब्द पड़ा है। अनादिकाल की पर्याय प्रगट नहीं, उसे वीतराग, राग बिना अपना चिदानन्दस्वरूप, उसकी अन्दर दृष्टि, श्रद्धा का परिणमन करके, उसका राग से भेदज्ञान और आत्मा का स्वसंवेदनज्ञान पर्याय में करके और स्वरूप में शान्ति आदि की स्थिरता प्रगट करे, उसे वीतराग **चिदानन्दस्वरूप शुद्धात्मानुभूतिरूप...** उसे शुद्ध आत्मा की अनुभूतिरूप **शुद्धोपयोग परिणाम...** वह शुद्धोपयोगरूपी परिणति, वह आत्मा की बस्ती बसाती है। समझ में आया? आचार्य की शैली ही कोई दूसरे ढंग की है। भाई! तेरी परिणति, राग-द्वेष विकार, शुभाशुभ, वह कहीं तेरी परिणति नहीं। तेरी परिणति तो निर्मल स्वभाव ऐसी परिणति हो तो वह तेरी परिणति और प्रजा कहलाती है। समझ में आया?

परमात्मपुराण में दीपचन्दजी ने लिया है कि अभव्य को ज्ञान की परिणति ही नहीं, अभव्य को ज्ञान की परिणति ही नहीं। क्योंकि ज्ञान की परिणति उसे कहते हैं कि स्वज्ञान की दृष्टि करके शुद्ध स्वभाव की रुचि का परिणमन करके जो निर्मल ज्ञान की दशायें हों स्वज्ञेय करके, उस परिणति को ही ज्ञान की परिणति कहा जाता है। जो ज्ञान की परिणति अकेले पर को जानने का काम करे और स्व को जानने का काम न करे, उस परिणति को ज्ञान परिणति, स्व की परिणति, स्व की पर्याय नहीं कहा जाता। गजब बात, भाई! यह लड़के हों तो वह आत्मा की प्रजा है या नहीं? यहाँ तो कहते हैं कि लड़के भी तेरी प्रजा नहीं, कर्म तेरी प्रजा नहीं, शरीर तेरी पर्याय नहीं। प्रजा कहो या पर्याय कहो। यह मिथ्या भ्रमणा, पुण्य-पाप जितना मैं, पर के कार्य करूँ—ऐसी भ्रमणा और राग तथा द्वेषरूप शुभाशुभभाव, वह भी आत्मा की प्रजा, पर्याय नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मज धूल में लिखे। आत्मज कहाँ है? बात सच्ची लिखते

हैं ऐसा। भाई कहते हैं ऐसा। आत्मज। शरीर से उत्पन्न करना, ऐसा। शरीर, वह आत्मा उसके घर का उसे। आत्मज लिखते हैं सही, बात सच्ची। इस शरीररूपी आत्मा से उत्पन्न हुआ, ऐसा। शरीर को आत्मा माना।

यहाँ तो भगवान योगीन्द्रदेव आचार्य महामुनि सन्त हैं, आचार्य हैं। छठवें-सातवें (गुणस्थान में) आनन्द की भूमिका में वे झूलते हैं। जरा विकल्प आया, अरे! आत्मा! जो स्वभावरूप से अन्तर अनादि काल से शान्ति, आनन्द पड़े हैं, उन्हें तूने श्रद्धा में, ज्ञान में, वर्तमान दशा में प्रगट किये नहीं। उज्जड है, जंगल में पड़ा है, उज्जड़ है, बस्ती रहित है। उसे जिसने **शुद्धात्मानुभूतिरूप शुद्धोपयोग परिणाम उनको अब निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान के बल से बसाता है,...** देखो, बसता है शब्द पड़ा है। बसता है, क्यों किया है? बसाता चाहिए। अपने को हिन्दी कहाँ बराबर आती है? यह तुम रात्रि में सब करते हो, इसलिए थोड़ा-थोड़ा ... बसाता है चाहिए। यह तो बसता है।

जो कोई आत्मा अन्तर स्वरूप परमानन्द की मूर्ति, उसकी रुचि, उसका ज्ञान और उसमें लीनता, ऐसे परिणाम को अपनी वर्तमान अवस्था में बसाता है, वह बस्तीवाला कहलाता है। वह बस्तीवाला कहलाता है। बाकी सब बाँझ कहलाते हैं। कहो, मीठालालजी! मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेषभाव अकेली जिसकी अवस्था में विकारता पड़ी है, उसे यहाँ भगवान बाँझ कहते हैं। तेरी बस्ती तुझे नहीं, तुझे प्रजा हुई नहीं, हों! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो होता है। समझ में आया? तेरी प्रजा हम उसे कहते हैं, भगवान तीन लोक के नाथ... यह मिथ्याभाव, शुभाशुभ परिणाम से मेरा कल्याण और शुभाशुभ परिणाम, उतना मैं — ऐसी विकारी पर्याय, उसमें जिसकी बुद्धि, रुचि और दृष्टि है, ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव अनादि स्वरूप जो गुप्त चैतन्यचमत्कार है, उसका अनादर करके विकार के परिणाम में ही अपना अस्तित्व स्वीकार कर पड़ा है, उसे यहाँ बस्ती रहित कहते हैं। कहो, यह एक लड़का न हो तो लड़के के लिये मर जाये बेचारा लेने के लिये। गोद का। गोद ले, क्या कहलाता है वह? गोद-गोद। गोद ले। यह

हैरान-हैरान हो गया है। हैरान ही होता है न, क्या है? पाँच-पचास लाख हो। गोद ले तो फिर वह स्वयं तो खर्च नहीं कर सके। उसे पूछना पड़े। वह गोद लिया तो उसे पूछना पड़े कि बापू! देख यह पचास लाख है। तुझे गोद लिया है। परन्तु मुझे बीस लाख खर्च करना है। बापू! अब ऐसे खर्च नहीं किये जाते। नहीं लेना था तो।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, नहीं होता। यह तो हमको तो सबकी खबर है न। नहीं होता पूछे बिना। बापू! हम तुम्हारे पीछे आये। तुमने उत्साह से, हर्ष से गोद में बैठाया है। (गुजराती में) खोळे कहे न खोळा? खोळे कहे न? गोद में। यह गोद में बैठाते हैं। गोद में बैठाया कहलाता है। कहते हैं कि बाँझ है, तूने गोद में बैठाया तो भी हैरान हो गया मुफ्त का। ईश्वरचन्दजी! इस आत्मा में प्रजा प्रगट करना, इसका नाम बस्तीवाला कहा जाता है। इसके बिना सब बाँझ और अपुत्र कहलाते हैं। कहो, धर्मचन्दजी!

मुमुक्षु : सहायता करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी सहायता नहीं करते। पाप में निमित्त होते हैं। अधिक खर्च करना हो तो इनकार करे। नहीं बापू! अधिक खर्च नहीं किया जाता, हों! हमारे ... जीवन व्यतीत करना है। तुम्हारी प्रतिष्ठा रखने के लिये, प्रतिष्ठा रखने के लिये मुझे रखा है। तुम्हारा पुत्र हूँ या नहीं? तो तुम्हारी प्रतिष्ठा जितनी मुझे रखनी पड़ेगी या नहीं? ऐसा कहकर माखन चोपड़े। ऐई! मीठालालजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अस्ति से कहनेवाला है वह।

कहते हैं, अरे! भगवान आत्मा जिसमें वीतराग चिदानन्द का सहजानन्दस्वरूप पड़ा है, उसका जिसने अन्तर दृष्टि में अपने पूर्णानन्द का स्वीकार किया, विकार और संयोग का स्वीकार का निषेध हो गया, उसे पूर्णानन्द की अनुभव दृष्टि होने से जो ज्ञान, श्रद्धा और शान्ति प्रगट हुई, वह उसकी बस्ती कही जाती है। वह प्रजा। प्रजावान आत्मा, उसकी पर्याय तो निर्मल (होती है), उसे पर्याय कहा जाता है। कहीं मलिन कहीं, निर्मलानन्द भगवान की मलिन प्रजा, अंगारा प्रजा, यह वह कहीं प्रजा कहलाये?

कुलअंगारा नहीं कहते? ऐसा लड़का जगे। कुल का अंगारा जगा, ऐसा कहते हैं या नहीं? कुल को जलाने जगा। ऐसा नहीं कहते कि भाई! तू मेरा उत्तराधिकार तो रखेगा। कुलअंगारा जगा।

भगवान ऐसा कहते हैं कि भाई! तेरे सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा के स्वभाव में से जितनी अन्दर श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति निकाले (प्रगट करे), उतनी तेरी प्रजा। बाकी मिथ्यात्व और राग-द्वेष परिणाम, वे कुलअंगार प्रजा है। वे आत्मा के कुल को जलाते हैं। वह कुल को बस्ती नहीं करते। आहाहा! किस शैली से बात करते हैं आचार्य! वीतरागभाव का वर्णन करते हैं। परमात्मप्रकाश का वर्णन है। भाई! तू परमात्मस्वरूप है न! तो परमात्मस्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति प्रगटे, वह तेरी बस्ती कहलाये। तूने वे परिणाम उपयोग तुझमें बसाये। शुद्ध उपयोगरूपी परिणाम। बाकी पुण्य-पाप और अशुद्ध उपयोग, वह तेरी बस्ती नहीं। कहो, समझ में आया?

अब निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान के बल से... देखो, वापस इस बल से, हों! क्या कहा? वह पुण्य का विकल्प जो रागादि था, उसके बल द्वारा यह बस्ती बढ़ी, हुई—ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। क्या कहा? थोड़ी कषाय की मन्दता किंचित् थी मलिन पर्याय, उसका कुछ सहारा मिला कि उसके कारण से यह निर्मल अवस्था की प्रगट दशा हुई, ऐसा है नहीं। कुलअंगारा से निर्मल अवस्था हुई, बस्ती हुई—ऐसा है? नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पहला कहना किसे? यह तो १३वीं गाथा में स्पष्टीकरण किया — ४१३ समयसार। अनादिरूढ़, व्यवहारमूढ़, निश्चय अनारूढ़। ऐसा अमृतचन्द्राचार्य महाराज कहते हैं। अरे! कषाय की मन्दता, उसे व्यवहार कहना किस प्रकार? वह तो अनादिरूढ़ की प्रकृति के परिणाम अनादि के हुए हैं। और हम तो उसे व्यवहारमूढ़ कहते हैं। जब निश्चय आरूढ़ हुआ, ज्ञायकमूर्ति की दृष्टि की, शुद्ध चैतन्य हूँ, पवित्र हूँ—ऐसी प्रतीति और ज्ञान हुआ, तब राग बाकी रहा, उसे व्यवहार कहा जाता है। जब व्यवहार का जाननेवाला जगा, तब व्यवहार जाना। वरना तो व्यवहारमूढ़ कहा जाता है। समयसार ४१३ गाथा। अमृतचन्द्राचार्य ने बहुत स्पष्ट करके...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : साधन-फाधन भी नहीं। वह तो निमित्त का ज्ञान कराने के लिये (बात है)। निमित्तरूप से ऐसा एक विकल्प मन्द था, उसे सम्यग्ज्ञान स्व के आश्रय से हुआ, तब ऐसा निमित्त था, ऐसा ज्ञान कराने के लिये उसे व्यवहार साधन कहा जाता है। वस्तु ऐसी है। दूसरे प्रकार से गड़बड़ करे तो वस्तु में चले, ऐसा नहीं। जो दुनिया चले, वह तो यह कहते हैं कि अनादि से चलता है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पीछे-पीछे क्या? है ही नहीं न! आत्मा में कषाय मन्द है ही नहीं, फिर पीछे क्या? कल कहा नहीं था? राग मन्द, उसका कारण और आत्मा की पर्याय कार्य, ऐसा आत्मा का कोई गुण है ही नहीं। राग कारण और आत्मा का गुण कार्य, ऐसा कोई गुण नहीं। और आत्मा को कारण आत्मा हो और राग कार्य हो, ऐसा आत्मा का गुण है ही नहीं। पर्यायदृष्टि में अज्ञानी ने उठाईगीर ने खड़ा किया है। एक समय की अवस्था में व्यवहार खड़ा किया है। समझ में आया? बात बापू! ऐसी है कि उस वस्तु का भान हुआ, फिर राग रहा, उसे व्यवहार कहा जाता है, तथापि वह आत्मा की पर्याय से उत्पन्न हुआ, ऐसा नहीं। अथवा वह राग मन्द है, इसलिए यहाँ निर्मल पर्याय टिकी रही है, उत्पन्न हुई है, बढ़ेगी — ऐसा नहीं है। बहुत सूक्ष्म बात, भाई! यह आत्मा को मानना और जानना वह, बापू! कोई महत् बात है। समझ में आया? आत्मा अर्थात् कि वीतरागी विज्ञानघन आत्मा। उसमें राग-फाग आया कहाँ आत्मा के अन्दर? वह तो आस्रवतत्त्व में गया। समझ में आया?

कहते हैं, **निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान के बल से...** हों! पाठ ऐसा है न अन्दर? देखो, '**शुद्धात्मानुभूतिपरिणामान् परमानन्दनिर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानबलेनेदानीं**' ऐसा शब्द है। यह हेतु ... पाठ में दूसरा है। भाई! जितनी आत्मा की महिमा और महत्ता है, उतनी नहीं देकर राग को महत्ता देने से आत्मा के स्वभाव का अनादर हो जाता है। परमात्मा स्वयं स्वरूप अनन्त शान्ति, अनन्त आनन्द, अकेले वीतरागी विज्ञानघन में अनन्त गुण पड़े हैं। ऐसे भगवान को राग के कारण से उसे कुछ हो, वह भगवान शुद्धात्मस्वभाव की असातना है, अनादर है।

मुमुक्षु : अनादर हुआ तो ....

पूज्य गुरुदेवश्री : लाभ होगा चार गति में भटकने का। निगोद में जाने का लाभ होगा। बाबूलालजी! ... कहो, समझ में आया या नहीं? जयपुर में एक ... था न? जयपुर गये तब तुम थे? नहीं। जयपुर में थे, तब चर्चा के समय। अरे भगवान! आहाहा! एक परमात्मा स्वयं हो, उसे ऐसा कहे, महाराज! आप स्वयं मेरे यहाँ पधारे, वह मेरे राग के कारण से पधारे अथवा मैंने पूर्व में राग बाँधा था, उसकी आपको सहायता मिली, इसलिए आपको यहाँ आना पड़ा। मेरे पुण्य के कारण से आपको आना पड़ा। वह अनादर करता है। वह वस्तु को समझता नहीं।

भगवान पूर्णानन्द प्रभु ऐसा, उसकी पर्याय में अनादि से अंशबुद्धि के आदर में, पुण्य-पाप के विकल्प के आदर में अनादर त्रिकाल स्वभाव का करता है। इसलिए भगवान आचार्य कहते हैं कि उसकी पर्याय उज्जड़ है। उस उज्जड़ को बस्ती करनी हो तो भगवान निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान के बल से ही पर्याय होती है। आहाहा! एकान्त लगे लोगों को, हों! अनेकान्त ऐसा लगे कि घड़ीक में ऐसा और घड़ी में ऐसा और घड़ीक में ऐसा। देखो, अरे! ५५ मिनिट वीतरागता से वीतराग हो, ऐसी प्ररूपणा करना और पाँच मिनिट ऐसी प्ररूपणा करना, वरना अनेकान्त नहीं रहेगा। (अर्थात्) कि राग से भी कथंचित् वीतरागता प्राप्त होती है। पण्डितजी! इसने सुना होगा न! पण्डितजी ने तो बहुत सुना हो न? यह आया है, हों! दर्शन में आया है, वह नयदर्शन में। जिनेन्द्र। उसमें आया है। दो-तीन बोल देखे। अरे कहा, यह भगवान के नाम से क्या करते हैं? है न? देखो, कल देखा था थोड़ा। ५५ मिनिट तक ऐसा व्याख्यान देना कि वीतराग वीतरागपने से होता है, वीतराग का भाव। परन्तु पाँच मिनिट अनेकान्त करने के लिये इतना तो कहना चाहिए कि कथंचित् राग से भी वीतरागता होती है। कितना है? पृष्ठ लिखा है? मैंने कुछ नहीं लिखा। वरना अनेकान्त नहीं रहता। पक्षपात और आग्रह हो जाता है। एकान्त हो जाता है। यदि राग की मन्दता से कथंचित् प्रकार से भी यदि वीतरागपने को साधन न हो तो अनेकान्त टूटकर एकान्त हो जाता है। व्यवहार की बात ही... यहाँ तो व्यवहार अर्थात् परद्रव्य कहा, ऐसा कहते हैं।

स्वद्रव्य का साधन स्वद्रव्य के साधन से होता है। परद्रव्य के साधन से स्वद्रव्य का साधन नहीं होता। ऐसी जरा सूक्ष्म बात है, भाई! उसे स्वद्रव्य के साधन से भान हुआ, तब उसके पूर्व के राग को नैगमनय से साधन का आरोप दिया जाता है और वर्तमानरूप से, व्यवहाररूप से जाननेयोग्य है। इसके अतिरिक्त कुछ भी आगे बात जाये तो सत्य का खून हो जाता है। बात ऐसी है, भाई! क्या हो? तीन लोक के नाथ का विरह पड़ा। जगत के जीव अपनी कल्पना से शास्त्रों के अर्थ करने लगे और आत्मा की जाति क्या है, उसकी महिमा उड़ गयी, महिमा रह गयी यह बाहर की। आहाहा! या तो मन्दिर बनाओ और यह किया। वह क्या कहलाता है? गजरथ-गजरथ। गजरथ कहते हैं न पण्डितजी! क्या कहते हैं? गजरथ बुलाओ और लाख-दो लाख खर्च करो, हो-हो, अरे भगवान! बापू! वीतरागमार्ग बापू दूसरी चीज़ है। होवे, वह शुभभाव होता है। परन्तु तुम ऐसा मान लोगे कि यह गजरथ निकाला, इसलिए धर्म हो गया, (-ऐसा बिल्कुल नहीं है)।

मुमुक्षु : धीरे-धीरे।

पूज्य गुरुदेवश्री : धीरे-धीरे। धूल में भी धीरे-धीरे नहीं होता। जहर खाते-खाते धीरे-धीरे कस्तूरी की डकार आयेगी, (ऐसा) बिल्कुल नहीं।

मुमुक्षु : मन्दिर बनावे न!

पूज्य गुरुदेवश्री : मन्दिर कौन बनाते हैं? बनाया नहीं है। मैंने तो पहली बात की साधारण। वह तो उसके कारण से बनता है। परमाणु की परावर्तन की पर्याय के काल में बनता है, तब शुभ परिणामवाले को निमित्त कहने में आता है। तो शुभ परिणाम है, दूसरा कुछ है नहीं। उससे धर्म हो जायेगा, संसार नाश हो जायेगा (-ऐसा है नहीं)।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... करे तो ... करेगा। उससे होगा? वह तो शुभ करेगा अपने से। हो, निमित्त होता है। निमित्त बिना भगवान के आत्मा का विचार नहीं करता? सिद्ध भगवान ऐसे हैं, लो! ऐसा नहीं करता? तब वह आत्म विकल्प हुआ तो सिद्ध निमित्त हुए। यहाँ कहाँ सिद्ध हैं? पूर्णानन्द प्रभु केवलज्ञान से भरपूर परमात्मा, ऐसा पूर्ण... कहीं

है... उसके ज्ञान में है कि इस समय में यह विकार इसका आयेगा। परन्तु यहाँ ज्ञान आने पर वह विकल्प उठा, उसमें वह निमित्त सिद्ध हुए। उसमें सिद्ध ने किया क्या?

मुमुक्षु : .... की कृपा होगी।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कृपा कौन करे? यहाँ विकल्प आया, तब निमित्त कहलाया? या विकल्प आये बिना निमित्त कहलाया? प्रकाशचन्दजी! भाई! बहुत झगड़ा है दुनिया के साथ। आहाहा! यहाँ तो प्रकाश प्रगट करने की बात है। अन्धेरा निकालकर प्रकाश प्रगट करना हो, उसमें ... होना चाहिए। हो, वस्तु हो। नहीं? व्यवहार है। व्यवहार से भगवान को उपादेय वन्दन करनेयोग्य, पूजा करनेयोग्य, ऐसे व्यवहार यदि ऐसा न हो, तब तो भगवान की पूजा, वन्दन आदर चला जाता है। होता है, परन्तु उसका अर्थ ऐसा कर बैठे कि ऐसे विकल्प और ऐसे संयोग से आत्मा के अन्तर में जाया जा सकेगा, वह राग और पर का लक्ष्य लेकर स्वलक्ष्य में जाया जा सकेगा, वह वस्तु के स्वरूप में नहीं है। बराबर है.... ? लादूलालजी! क्या चलती है, यह तुम्हारे सब सेठिया और सब कुछ बात चलाते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसने किया है? किसने कहा है? वह तो वहाँ हुआ है। पहले से कहते नहीं आते? वह तो पुद्गल के परावर्तन के काल में पानी का लोढ़ जैसे चढ़े और गाँव के पास आवे, वह पुद्गल का परावर्तन होता था, उस काल में वह होने की पर्याय होती है। तब बाहर के शुभ उपयोगी जीव को निमित्त कहा जाता है। वह कारीगर करता है निमित्त, उसे तो शुभ भी नहीं, उसे तो अशुभ है। उसे तो अशुभ है। पैसा लेने के लिये करता है वह तो। कारीगर कहते हैं न क्या कहते हैं? कारीगर। उसे कहाँ करना है? वह तो पैसे के लिये (करता है)। तब वह अशुभ परिणाम है, उन्हें निमित्त कहा गया है, लो! समझ में आया?

भाई! चीज़—वस्तु ही ऐसी कोई है कि छह द्रव्य, नौ तत्त्व, पंचास्तिकाय आदि का स्वरूप वास्तविक स्वतन्त्र और उसमें भगवान आत्मा एकदम निरपेक्ष रागरहित, राग की जिसे अपेक्षा दृष्टि, ज्ञान और आचरण में नहीं, ऐसा भगवान दृष्टि में लिये बिना वह

उज्जड़ है, ऐसा यहाँ भगवान योगीन्द्रदेव आचार्य ऐसी बात करते हैं न! आहाहा! ऐसी बात दिगम्बर सन्त ही कर सकते हैं। दूसरे को तो वस्तु की ... ऐसे-ऐसे हो जाये। वाड़ा रहे नहीं, सम्प्रदाय नहीं रहे, उसे ठीक नहीं लगे, बड़े सेठिया यह सब बैठे हैं, इन्हें ठीक नहीं लगे, पैसा-बैसा नहीं खर्चे। यह तो नागा बादशाह से आघा। अन्दर में भी नग्न। बिल्कुल वृत्ति की दरकार नहीं। हम आत्मा हैं। हम वीतराग निर्विकारी, निर्विकल्प आनन्दकन्द स्वयप हैं। हमारे साधन के लिये हमारी निर्मल पर्याय का साधन भगवान आत्मा में साधक नाम का गुण पड़ा है। साधक कहो, करण कहो। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण, यह छह (कारक) शक्ति आत्मा में पड़ी है। यह करण नाम का गुणवाला आत्मा है। ऐसे करण के गुणवाला आत्मा कि उसके साधन से यह हो, ऐसे आत्मा को माने तो उसने आत्मा माना कहलाता है। राग के साधन से होता है, ऐसा माने तो उसने आत्मा के साधन से, साधनगुण से ऐसे गुणवाला उसने माना नहीं। समझ में आया? वस्तु तो ऐसी है। ऐसी त्रिकाल वस्तु।

कहते हैं, **स्वसंवेदनज्ञान के बल से बसाता है,...** ऐसा कहते हैं, देखो, ... इस उज्जड़ को बसावे और '**वसिया करइ जु सुण्णु**' और बसे हुए को शून्य करे। दो बातें। शून्य को बस्ती करे और बस्ती को शून्य करे। दो सिद्धान्त में पूरी इतनी गाथा उतारी है। अरे! जो पुण्य-पाप के परिणाम, अब बाद में कहेंगे, उसे शून्य करना है पर्याय में से। शून्य करना है, उसमें से अशून्यपना प्रगट होगा? क्या कहा? जो परिणाम शुभाशुभ और भ्रान्ति, उसे शून्य करना है और वह शून्य करके अशून्यपना अर्थात् कि बस्तीपना प्रगट करना है। वह तो त्रिकाल ज्ञायक भगवान आत्मा की अन्तर रुचि, अन्तर का ज्ञान, अन्तर निर्मलता, वह पर्याय द्वारा प्रगट होती है। शून्य करने का है, उस द्वारा नहीं। उसका तो अभाव करना है। वह अभाव करना है, उसके द्वारा यह भाव हो, ऐसा नहीं हो सकता। न्यालचन्दभाई! वस्तु यह है। उसे श्रद्धा में पक्का करना पड़ेगा पहले। वह श्रद्धा ऐसी पक्की नहीं करे तो धर्म का मूल पहले श्रद्धा है। और वह श्रद्धा ऐसी करेगा तो उसके अनुभव में दृष्टि जायेगी। वरना किसी प्रकार से नहीं जायेगी। यह आत्मा जैसे गुणवाला और जितने सामर्थ्यवाला है, उसे दूसरे प्रकार से कल्पित कर माने तो आत्मा का अन्दर दृष्टि का अनुभव किसी प्रकार से नहीं होगा।

आत्मा में कर्ता, कर्म, करण नाम के गुण अनादि-अनन्त पड़े हैं। तो ऐसा करण कि जिसके साधन द्वारा उसमें पर्याय प्रगट होती है। ऐसे गुणवाला वह आत्मा है। ऐसे गुणवाला न मानकर राग के साधन द्वारा यह होता है, जो निमित्त का ज्ञान कराने को साधन कहा है, उसके द्वारा यहाँ होता है, वह आत्मा के साधनगुण उससे यहाँ प्रगट हो, ऐसे गुणवाले को वह आत्मा मानता नहीं। वस्तु ऐसी है तीन काल, तीन लोक में। यह वीतरागमार्ग के अतिरिक्त अन्यत्र यह बात हो नहीं सकती। समझ में आया?

निज स्वादनरूप स्वाभाविक ज्ञानकर... देखो, **निज स्वादनरूप स्वाभाविक ज्ञानकर... शुद्ध परिणामों की बस्ती निज घटरूपी नगर में भरपूर करता है।** वह नगर बसाता है। आहाहा! समझ में आया? है? ... कहो, समझ में आया इसमें? समझ में आया इसमें? ऐसा कहा। दिगम्बर सन्तों ने भी कैसे काम किये हैं! कहाँ और कहाँ पुकार। जिसकी पर्याय में मलिनता अकेली रहती है, उसे हम उज्जड़ जंगल कहते हैं। अरे! पुण्य परिणाम बसे तो? पुण्य परिणाम दया, दान, व्रत, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग बसे तो? उज्जड़ है उज्जड़। भगवान आत्मा अपने स्वादनरूप। देखो, राग में स्वाद तो पर का स्वाद है। वह शुभ विकल्प भी परस्वाद है, मलिन स्वाद अथवा दुःख है। यहाँ कहते हैं **निज स्वादनरूप स्वाभाविक ज्ञानकर...** हाँ तो पाड़, भाई! रुचि तो कर और श्रद्धा को पक्की कर। धर्म की ऐसी वास्तविक श्रद्धा के जोर बिना किसी प्रकार से आत्मा अपना वीर्य, ऐसे पूर्णता का स्वतन्त्र श्रद्धा में स्वीकार बिना, वह वीर्य स्वतन्त्र अन्दर की ओर ढलेगा ही नहीं। ऐसी चीज़ जैसी है, उसे उस प्रकार से प्रतीति किये बिना उस वस्तु का आदर होगा ही नहीं। समझ में आया?

स्वादनरूप स्वाभाविक ज्ञानकर शुद्ध परिणामों की बस्ती... देखो, अशुद्ध परिणाम नहीं। और यहाँ **बस्ती निज घटरूपी नगर में...** आत्मनगर। भगवान आत्मा अनन्त गुण का बड़ा प्रभु नगर। न-कर। कर जिसमें कुछ कर नहीं सिर पर। कर्जरहित चीज़, रागरहित चीज़। ऐसा कहते हैं। नगर कहलाता है न नगर? भगवान आत्मा संसार के उदय के भाव बिना का भगवान, उसके सिर पर कर्ज कुछ है ही नहीं। ऐसा आत्मनगर, उसकी अन्तर दृष्टि करके जो निर्मल पर्याय, श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति को बसावे

वह ... नगर को भरपूर करता है। वह भरपूर बस्ती को करता है। समझ में आया? है न वह **'उव्वस वसिया' और...** यह एक शब्द का अर्थ हुआ इतना **'उव्वस सविया'** पुण्य को बसाता है, बस इतना अर्थ हुआ। ... अब **'वसिया करइ जु सुण्ण'** शून्य कर दे।

और अनादिकाल से जो शुद्ध चैतन्यरूप निश्चयप्राणों के घातक... देखो, पाठ में तो **'हिंसा'** लिया है भाई अन्दर। देखो, घात **'निश्चयहिंसा'** देखो। **'निश्चयहिंसा'** कही है उसे। है? **'शुद्धचैतन्यनिश्चयप्राणस्य हिंसकत्वान्मिथ्यात्वविकल्पजालमेव निश्चयहिंसा'** यही हिंसा है। हिंसा किसे कहना? पर की हिंसा कौन कर सकता है? स्वयं भगवान ज्ञाता-दृष्टा अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसे नहीं स्वीकार कर, पुण्य और पाप के विकल्प का स्वीकार बहुमान अधिकपने माना है, यह मुझे लाभ करेंगे, कहते हैं कि वह चैतन्यप्राण की हिंसा है। आहाहा! इतना गजब, भाई! कहते हैं **'शुद्धचैतन्यनिश्चयप्राणस्य हिंसकत्वा'** उसकी हिंसा करनेवाला। **'मिथ्यात्वविकल्पजालमेव'** **'मिथ्यात्वविकल्प-जालमेव'** यहाँ तो मिथ्यात्व को कहा। भ्रमणा, राग की, पुण्य की, व्यवहार की, निमित्त की, संयोग की, वह मुझे लाभ करेगी, इसका अर्थ (यह कि) जो लाभ करे, वह उससे भिन्न नहीं पड़ता। जिससे लाभ माने, वह उससे भिन्न नहीं करता। इसका अर्थ कि जिससे लाभ माने, उससे एक हूँ, ऐसा वह मानता है। समझ में आया इसमें? आहाहा!

भगवान आत्मा... शुद्ध चैतन्यप्राण जिसके, ऐसा भगवान, उसे मिथ्या भ्रान्ति द्वारा पुण्य से यह, पाप से यह, राग से यह, निमित्त से यह, संयोग से मुझे यह लाभ होगा। इसका अर्थ कि मैं सब एकरूप हूँ। जिससे लाभ मानता है, वह एकरूप हूँ, ऐसा उसने माना। एकरूप माना, उसने ही आत्मा के चैतन्यप्राण जो पर से भिन्न है, उसकी उसने हिंसा की। कठिन पड़े, लो, अभी के... यह लोग कहे... तुम्हारी पुस्तकें निकाल डालो बाहर। निकाल डाल। कौन निकाले? बापू! अरे भगवान! तू भी भगवान है, परन्तु अभी तेरी पर्याय में... क्या हो? जब तक वास्तविक तत्त्व... एकान्त है, यह शास्त्र एकान्त है। भगवान है न! वह भी भगवान है न, भाई! कैसी शैली परन्तु, ओहोहो! और प्रभु वह उल्टा करे तो उसकी पर्याय में विपरीतता इतनी आवे। समझ में आया?

कहते हैं कि **अनादिकाल से जो...** अब कहते हैं। वह ... किया। अब **अनादिकाल**

से जो शुद्ध चैतन्यरूप निश्चयप्राणों के घातक ऐसे मिथ्यात्व रागादिरूप विकल्पजाल हैं,... समझ में आया? **उनको निज स्वरूप नगर से निकाल देता है,...** दुश्मनों को नगर में से निकाल और बस्ती सज्जन को बसा। समझ में आया? भगवान आत्मा अपने शुद्ध चैतन्यस्वभाव की सम्हाल करने से, उसका आश्रय करने से, उसे स्वाधीनरूप से दृष्टि में लेने से जो शुद्धता प्रगट होती है, उस द्वारा मिथ्यात्व, राग-द्वेष के विकल्प को निकाल दे, शून्य कर दे। समझ में आया? अनेकान्त की व्याख्या लोग ऐसी करते हैं न। इससे होगा... इससे होगा... परन्तु इससे होगा और दूसरे से नहीं होगा, ऐसा अनेकान्त है। अस्ति-नास्ति विरुद्ध शक्ति का प्रकाशित होना अनेकान्त है। इससे होगा, इससे होगा, इससे होगा यह अस्ति और उससे होगा अस्ति। यह तो दो अस्ति से हुआ। अनेकान्त की व्याख्या ऐसी नहीं है। स्व के आश्रय से हो, राग के आश्रय से नहीं होगा, यह अस्ति-नास्ति से वस्तु का अस्तित्व प्रकाशित करनेवाला अनेकान्त अमृत है। वह अनेकान्त अमृत है। वह अनेकान्त है। अनेकान्त को ऐसा कर डाला। मनवाया, माना। कहो, समझ में आया?

उनको निज स्वरूप नगर से निकाल देता है, उनको उज्जड़ कर देता है, ऐसे परमयोगी की मैं बलिहारी हूँ,... ऐसे धर्मात्मा को वारी जाता हूँ, कहते हैं। इसके सिर के ऊपर से वारी जाऊँ, ऐसा कहते हैं, देखो, **अर्थात् उसके मस्तक पर मैं अपने को वारता हूँ।** खम्मा अन्नदाता तुमको! समझ में आया? तुम्हारे मारवाड़ में बहुत बोले अन्नदाता... अन्नदाता। खबर है न? बहुत बोले, खबर है। मुझे तो पहली खबर पड़ी न, वहाँ पालेज साधु आये थे स्थानकवासी मारवाड़ी। साथ में और उनकी आर्यिका हो न। वह आ गये थे। फिर उन्हें उतारा था ... वे बारम्बार बोला करे। अपने को किसी दिन मारवाड़ की बहुत खबर नहीं। छोटी उम्र की बात है। साधु आवे तो अन्नदाता! अन्नदाता! ऐसा करे साधु को, उसके गुरु को। क्या है अन्नदाता? स्थानकवासी साधु हो न ... धर्मशाला में उतारे थे पालेज में। अन्नदाता! अन्नदाता! अन्नदाता तो वह कहलाता है कि अन्न जिसमें आत्मा के आनन्द का पोषण मिले। वह आनन्द अन्नदाता (कहलाये)। व्यवहार से त्रिलोक के नाथ भी अन्नदाता कहलाये। समझ में आया? इस आत्मा का खुराक आनन्द का जो मिले और जिसमें निमित्त हो, उसे अन्नदाता कहा जाता है।

कहते हैं, ऐसे **परमयोगी की मैं बलिहारी हूँ, अर्थात् उसके मस्तक पर मैं अपने को वारता हूँ।** समझ में आया? **'जोइयहिं बलिर्मस्तकस्योपरितनभागेनावतारणं'** पूरे शरीर का ऊँचा भाग उसके ऊपर अवतार करता हूँ। वह राजा होता है न, उसे ऐसा करे। क्या कहलाता है वह? ... घोल करे। सोना की ईंट लेकर घोल करे। राजा जब आवे न! ऐसे-ऐसे करे। नजर ऐसी... वह ऐसा करे। कोई ऐसा राजा बाहर से आया हो तो नगरसेठ हो न... वनेचन्द सेठ बात करते। नगरसेठ थे न।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह तो ठीक परन्तु हमारे तो यह वनेचन्द सेठ नगरसेठ वांकानेर के। वे स्वयं नगरसेठ थे। तो सब यहाँ ... बैठे थे। सब बात करते थे। हमारे ऐसे घोल करना पड़े। गीनी देना पड़े गीनी। फिर ऐसा करना पड़े। घोल अर्थात् आरती। मूल तो आरती जैसा उतारकर यह पैसा छोड़कर आरती करे वह। मान... कहलाये।

यहाँ कहते हैं कि **उसके मस्तक पर मैं अपने को वारता हूँ।** तेरी आरती मैं उतारता हूँ, ऐसा कहते हैं, लो! आहाहा! **इस प्रकार श्रीयोगीन्द्रदेव परमयोगियों की प्रशंसा करते हैं।** समझ में आया? **'एवं श्रीयोगीन्द्रदेवाः गुणप्रशंसां कुर्वन्ति।' जिन योगियों के वीतराग शुद्धात्मा तत्त्व से विपरीत पुण्य-पाप दोनों ही नहीं है।** दृष्टि में तो नहीं है, परन्तु स्थिरता में भी निकाल दिया। अस्थिरता निकाल दी, ऐसा कहते हैं। अकेला वीतरागभाव घुलता है। वीतरागभाव अकेला-अकेला वीतरागभाव घुलता है ऐसे। रागरहित अकेला राग के अभावस्वभाव चिदानन्द है, ऐसे सन्तों को वारी जाता हूँ। ओहोहो! उनकी प्रशंसा मैं तो करता हूँ। राग को बहुमान देनेवाले की प्रशंसा मैं नहीं करता। १६० (गाथा) हुई।

★ ★ ★

गाथा - १६१

१६१ (गाथा)।

२९२) तुट्टइ मोहु तडित्ति जहिँ मणु अत्थवणहँ जाइ।
सो सामइ उवएसु कहि अण्णेँ देविं काइँ॥१६१॥

प्रभाकर भट्ट प्रश्न करते हैं। इनके शिष्य हैं, वे प्रश्न करते हैं। **आगे एक दोहे में शिष्य का प्रश्न और चार दोहों में प्रश्न का उत्तर देकर निर्विकल्पसमाधिरूप परम उपदेश को फिर भी विस्तार से कहते हैं**—शिष्य का प्रश्न ही ऐसा है। **हे स्वामी! मुझे उस उपदेश को कहो...** देखो, शिष्य भी यह माँगता है। भगवान! मुझे ऐसा उपदेश करो कि **जिससे मोह शीघ्र छूट जावे,...** दूसरा मुझे कुछ चाहिए नहीं। ऐसा उपदेश दो। मोह छूट जाये, पूर्ण आत्मा की प्राप्ति हो, ऐसा मुझे उपदेश दो। ऐसा नहीं कि भगवान मुझे कुछ ऐसा उपदेश दो, हों! कि कुछ राग का, व्यवहार का... होगा... होगा... ऐसा मुझे उपदेश दो कि मोह का नाश हो, ऐसा उपदेश दो। एक ही बात। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : चला आता है। पूछता है गुरु के निकट। चला आता है क्या? अब ऐसा झट दो, लम्बी बात नहीं, कहते हैं। यहाँ तो मोह छूटे, (ऐसी) एक ही बात करो, ऐसा कहते हैं। यहाँ दूसरी बात जरा कहते हैं। दूसरे देव का मुझे क्या काम है? ऐसा कहते हैं न अन्त में। यह सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा ने कहा हुआ उपदेश, उसका मुझे काम है, ऐसा कहना चाहते हैं। मुझे तो तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर ने जो कहा मोह के अभाव की बात (कही), उसके उपदेश में मोह के अभाव की ही बात आयी है। वह मुझे उपदेश करो। दूसरे देव का मुझे अब क्या काम है? दूसरी बातें करनेवाले बहुत देव हों जगत में, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह सर्वज्ञदेव परमात्मा का ही उपदेश सच्चा होता है, दूसरे का सच्चा होता नहीं। दूसरे ने गप्प मारी है सबने भगवान के नाम से। अल्पज्ञ में सर्वज्ञ माना और रागी में वीतरागी माना, कहीं ध्यान किया और ऐसा किया। ॐ ॐ किया। मर गये हुए सब हैं। इस चैतन्य को समझते नहीं। कहो, समझ में आया?

और चंचल मन स्थिरता को प्राप्त हो जावे,... देखो, यह पर की ओर का मन अस्थिर है, वह समाप्त हो जाये और मेरे स्वरूप में स्थिर हो जाऊँ, ऐसा उपदेश मुझे दो। दूसरी बातें मुझे चाहिए नहीं। भगवान ऐसा कुछ कहो कि पुण्य बाँधूँ, फिर स्वर्ग में जाऊँ, पैसा मिले, वह कुछ मुझे नहीं चाहिए, कुछ चाहिए नहीं। स्वर्ग का सुख भी नहीं चाहिए और स्वर्ग के सुख के कारण का भाव भी नहीं चाहिए। मुझे तो सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर त्रिलोक के नाथ जिन्होंने सर्वज्ञ-वीतरागपने की पर्याय प्रगट की, उन्होंने जो उपदेश किया, वह उपदेश मुझे दो। आहाहा! इस प्रार्थना में भी वापस इस प्रकार की पात्रता चाहिए है न। भगवान! हमको तो यह दो, हों! सब देव भले हो, परन्तु तीन लोक के नाथ एक समय में जिन्हें सर्वज्ञदशा और जिन्हें उत्पाद, व्यय और ध्रुव जगत के तत्त्व एक समय के तीन, समय के भाग नहीं पड़ते, परन्तु समय में उत्पाद, व्यय और ध्रुव एक द्रव्य के तीन (भाग) जिसने जाने। आहाहा! अशुद्धता टले, शुद्धता उत्पन्न हो, वस्तु टिके एक समय में, ऐसा जिन्होंने जाना। ऐसे एक द्रव्य का नहीं, परन्तु अनन्त द्रव्यों का, वह भी राग के आश्रय बिना ज्ञान की निर्मल पर्याय प्रगट करने से पर्याय को जानने से दूसरा ज्ञात हो गया। ऐसे भगवान ने जो कहा है, वह उपदेश मोह के नाश का है। समझ में आया? ... उसमें अम्बर में ऐसा करना, ध्यान करना चाहिए। वह अम्बर अर्थात् आत्मा। वह अम्बर अज्ञानी कहता है, वह नहीं। सुन न! यहाँ तो सर्वज्ञ भगवान अम्बर तो आत्मा, निर्विकल्प आत्मा को अम्बर कहते हैं। यह बात लेना चाहते हैं। श्वास चढ़ाऊँ, मैं ऐसा करूँ, फिर श्वास ऐसे निकालना, ऐसी बाकी क्रिया-फ्रिया भगवान के घर की नहीं। कदाचित् प्राणायाम जरा चंचल मन को स्थिर रखने के लिये कहा है, परन्तु वह तो हेतु यह है कि अशुभ में से हटकर आया, अब जाना है तो उसमें, इसके लिये यहाँ थोड़ा कहा था। समझ में आया? परन्तु उसमें से मुझे ऐसा लाभ होगा, यह कुम्भक और रेचक को, क्या कहा यह? समझे न? पूरक न! कहेंगे अभी सब। उसका मुझे कुछ काम नहीं। मुझे तो परमात्मा त्रिलोकनाथ जिस दशा को प्राप्त हुए, जिस साधन से प्राप्त हुए, उन भगवान ने जो कहा हो, वह मुझे मोह के नाश का उपाय एक ही कहो। मोह को रखने का नहीं। उसमें सब आ गया। मिथ्यात्व और राग-द्वेष रखने का नहीं, मिथ्यात्व और राग-द्वेष के नाश का उपाय क्या है, वह मुझे बताओ। समझ में आया?

चंचल मन स्थिरता को प्राप्त हो जावे, दूसरे देवताओं से क्या प्रयोजन है? '**अण्णेँ देविं काइँ**' तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमेश्वर जिन्होंने वीतराग-विज्ञानघन की पर्याय प्रगट की है। वीतराग-विज्ञानघन तो आत्मा है, परन्तु जिन्होंने प्रगट की, पूर्ण वस्तु जिन्होंने प्रगट की, भगवान! इस देव के अतिरिक्त मुझे दूसरे देव का क्या काम है? आहाहा! जैन परमेश्वर वीतराग के परमेश्वर हुए। वीतरागी पर्यायरूप से परम ईश्वर हुए, ऐसे वीतराग परमेश्वर, उनके अतिरिक्त मुझे दूसरे किसी देव का काम नहीं। सम्प्रदाय की बात नहीं, वस्तु की पर्याय की बात है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौने देने आवे धूल में? कौन देता था? उसे क्या करना था? देखो न, अभी एक देवी आती है, रुपये देती है। ... रख जा... पैर नहीं छुयेंगे तुझे। स्पष्ट कहते हैं। ... में आती है। कौन जाने कौन है, एक आवे। रुपयावाला... पचास। बस पचास के अन्दर। पाँच, दस, पन्द्रह, बीस, पच्चीस, पचास बस। वह उठा ले। उठाकर रख आवे बैंक में। और ले जाये तो? वापस कहे कि देखो हम चरण नहीं छुयेंगे, हों! तू चाहे जो हो। वह कहे, ऐसे फलाना हैं। फलाना-बलाना जो हो वह, हम किसी के पैर नहीं छूते। हम जैन परमेश्वर को मानने वाले हैं। हम वीतरागदेव को माननेवाले (हैं), किसी देव-देवला को माननेवाले नहीं। ऐसे दो-तीन हजार इकट्ठे हो गये हैं। तीन हजार। अभी तक तीन हजार आये हैं। वह तो वहाँ से आवे और रख आवे बैंक में। यह मोहनभाई के वह प्राणभाई मास्टर। मोहनलाल कानजीजीवा के मुनीम। प्राणभाई! प्राणलाल न? प्राणलाल। वह तो इनके पुत्र की दुकान हैं बड़ी वहाँ भोपाल में। ... उसके ... पास कोई आता है। होवे वह सही। वह बोलता है, तब ऐसा कहता है कि वह कौने में पच्चीस पड़े, वे पचास पड़े। ऐसा कहे, तब यह कहे, मैं ले लूँ। एक बार नहीं लिये तो फिर चले गये। फिर ... तुरन्त लेकर बैंक में रख आऊँ। जाये तो बैंकवाले के। मुझे क्या है? ऐसे तीनेक हजार रुपये आये हैं अभी तक अभी। यह तो स्पष्ट बात है। प्राणभाई कहते हैं। बहुत ... कोई हो। परन्तु उसमें है धूल में अब? मैंने तो ऐसा कहा था कि बहुत सफाई... दो, पाँच, पचास क्या करना? यह लवण समुद्र के नीचे जहाज

के जहाज डूब गये हैं। नीचे कितने ही चाँदी के पाट पड़े हैं और मणिरत्न और हीरा नीचे बहुत डूबे हैं। ले आवे न एक वहाँ से पाँच-पच्चीस हीरा ले आवे। ऐसे में क्या धूल में? तो खबर पड़े कि तू व्यन्तर है इतना। बाकी उससे कुछ लाभ है नहीं। व्यन्तर को तो ऐसा कहीं न कहीं से और नोट ले आना, ऐसा वह ले आवे। उसमें अन्तर क्या है? लवणसमुद्र के नीचे। तब नहीं ... गया था एक बार जहाज। छप्पनिया के पहले नहीं? 'कासम तारी वीजळी भरदरिये वेरण थई।' तब तो बहुत ... बहुत विवाह के किये हुए वर थे। बहुत गहने पहने हुए सोना के बड़े-बड़े। बहुत क्या कहलाये? बारात-बारात। बारात थी अन्दर में और नया जहाज। नया जहाज किया हुआ। कासम था। 'कासम तारी वीजळी रे भरदरिये वेरण थई।' वह जहाँ गयी वहाँ पानी उछले। अरे कासम! यह क्या हुआ भाई! नयी है यह। डूबी। यह सब बारातें। जान, समझ में आया न? वर-वर। दूल्हा-दूल्हा तुम्हारे कहते हैं। दूल्हा की बारातें थी सब। गहने-बहनें पहने हुए सब पड़े हैं नीचे। अभी सब नीचे हैं। लाओ न, कहा वहाँ से। ... उसमें कुछ आदर-फादर की यहाँ बात नहीं। अब ऐसा तो भूतड़ा अनन्त बार आये। क्या है तुझे?

यह (संवत्) १९८४ में हमने कहा था। ८४ में राणपुर थे न। एक बाई कहे, यदि फलाने इतनी लम्बी सुपारी है और कंकु की एक पुड़िया है। लम्बी सुपारी इतनी। वह क्या है, कहा? कोई बाजार में कोई दुकान अच्छी में से तू खोज आयी इतनी लम्बी सुपारी। उसमें नया क्या किया तूने? ऐसा होता है कहीं? हीरा-माणेक ले आवे न, उसमें पड़े हैं। यह महाराज मुझे मानते नहीं। किसका माने तुझे बापू? फिर देवी आना बन्द हो गयी। ढोंग किसका करती है यह? ऐसे के ऐसे ढोंग! देवी आती है और यह सुपारी लाई। खोज आयी होगी लम्बी पैसा-दो पैसा देकर लम्बी। और एक बड़ी कंकू की पुड़िया रखी। हम मानते नहीं देव-देवी को, कहा। देव हो तो उसके लक्षण दूसरे होते हैं। ऐसी साधारण बातें करके, मनुष्य ले सके वह तू लावे, उसमें क्या हो गया तुझे? वह कहे, महाराज किसी को मानते नहीं। जाओ। वह ... वढवाण में। (संवत्) १९८२ का चातुर्मास। हजारों लोग चल निकले और ढोंग अन्दर हों। वे लोग उतरे न दो-पाँच मनुष्य रखे हुए। उन्हें पूछ ले। कैसे आये हो? क्या नाम है पूछे। फिर यहाँ से

बुलावे कौन आया? फलाना। आओ तुम्हारा... है। वह कहे, आहाहा! मेरे पास सब आवे। कहे महाराज... अरे! ढोंगी मर गया न, मुफ्त में भी कुछ नहीं। धूल ही धूल है, कहा। फिर धूल कही वहाँ उसे खबर पड़ी कि महाराज ऐसा कहते हैं। चल-चल ढोंग। देवी-देवला के ढोंग करके मार डाला जगत को। उसका बन्द हो गया अब। उसका वहाँ बन्द हो गया। उसका बन्द हो गया। वहाँ तो हजारो लोग जैनों के। वह भी चले। गहल-मूर्ख लोग।

यह कहते हैं कि हमारे तो सर्वज्ञदेव जिन ने कहा हुआ यह वीतराग और सर्वज्ञ हुए। उन्होंने राग और अल्पज्ञता टाले। उन्होंने जो उपदेश किया, वह उपदेश चाहिए है मुझे मोह टालने के लिये, बाकी मुझे कुछ नहीं चाहिए। आहाहा! समझ में आया? अब वैमानिक देव अनन्त बार हुआ, क्या है परन्तु अब? नौवें ग्रैवेयक गया। उसमें नयी क्या चीज़ है? भगवान शान्ति के अंकुर फूटे। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन रत्न जिसकी कीमत में मुक्ति मिले ऐसे रत्न को भगवान हमको बताओ कि जिससे हमारी मुक्ति हो। ऐसा यहाँ कहते हैं। हमारे दूसरा कुछ नहीं चाहिए। दूसरा हमारे उपदेश सुनना नहीं, कहते हैं। ऐसे थोथा करनेवाले बहुत हैं। समझ में आया?

भावार्थ :- प्रभाकरभट्ट श्रीयोगीन्द्रदेव से प्रश्न करते हैं कि हे स्वामी! वह उपदेश कहो कि जिससे निर्मोह... देखो, मोहरहित **शुद्धात्मद्रव्य से पराङ्मुख मोह शीघ्र जुदा हो जावे,...** यह निर्मोह ऐसा भगवान आत्मा, इससे पराङ्मुख ऐसा मोह वह शीघ्र नाश हो जाये, यह बात बताओ। एक ही बात। आहाहा! वापस दो गुलाँट मारकर बात की न? आत्मा कैसा है? कि मोहरहित है। मिथ्यात्व, राग-द्वेष, विकल्प आदि रहित है। ऐसे आत्मा में, जो पर्याय में मोह दिखता है, उस आत्मा को मोहरहित हो, ऐसा उपदेश बताओ। समझ में आया? याचना देता है देखो न! यह तो कुछ थोड़ा देना भाईसाहेब! थोड़ा यह रखना। हमारा थोड़ा रखना—थोड़ा रखना। थोड़ा सा राग रखना, हों! यह थोड़े से राग की सहायता हो तो। एक ही बात विकार का अभाव और विकाररहित चिदानन्दस्वभाव की प्राप्ति, बस, एक ही बात है मुझे। दूसरी कोई कुछ चाहिए नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : जरा भी नहीं। ऐसा माँगे तो वह माँगता ही नहीं, भिखारी है। किसका माँगता है? क्या चाहिए है इसमें? विकल्प चाहिए है तुझे? उसका फल चाहिए है तुझे धूल का? मिट्टी का फल चाहिए है या चिदानन्द अनन्त गुण का स्वामी प्रभु, सहजानन्दस्वरूप पूर्णानन्द का नाथ, जिसे एक क्षण में हिलावे, एक क्षण में हिलावे दूसरी... ऐसे जागृत होकर मैं परमात्मा। ऐसा भगवान का उपदेश हमको प्राप्त हो कि जिससे हम भगवान होंवें। हमारे दूसरा कुछ नहीं चाहिए। आहाहा! लो! ऐसी बात उसमें रखी है। ... उसमें उपदेश दिया न। ... परन्तु मुझे एक ही बात। निर्मोही प्रभु है, उसे पर्याय में मोह है, उसका अभाव हो, एक ही बात करने की। आहाहा! समझ में आया?

शीघ्र जुदा हो जावे, अर्थात् मोह के उदय से उत्पन्न समस्त विकल्प-जालों से रहित जो परमात्मा पदार्थ उसमें मोह-जाल का लेश भी न रहे,... जैसा स्वभाव में नहीं, वैसा पर्याय में न रहे, ऐसा उपदेश बताओ। इसके अतिरिक्त मुझे कुछ नहीं चाहिए। देखो, **निर्विकल्प शुद्धात्म भावना से विपरीत...** देखा! विकल्परहित भगवान आत्मा, उसकी एकाग्रता, उससे **विपरीत नाना विकल्पजालरूपी चंचल मन वह अस्त हो जावे। हे स्वामी! निर्दोष परमाराध्य जो परमात्मा, उससे अन्य जो मिथ्यात्वी देव, उनसे मेरा क्या मतलब है? ऐसा शिष्य ने प्रश्न किया, उसका एक दोहा-सूत्र कहा।** लो! उसका उत्तर चार दोहों में कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

: प्रकाशक :
श्री कुंदकुंद-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
विले पार्ला, मुंबई
www.vitragvani.com